'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।3।5।

भाग 107	पौष 2027 विक्र०, 1892 शक दिसम्बर 1970	संख्या 12

यूरेनियम-विघटन

□ विष्णु दत्त शर्मा

यूरेनियम परमाणु प्रकृति का सबसे भारी अणु है तथा परमाणु ऊर्जा का मूल स्रोत है। यूरेनियम के पूर्ण अणु के न्यष्टि में 92 प्राणु और 146 क्लीवाणु होते हैं। चूँकि सभी अणु असंयोग अवस्था में विद्युतीय उदासीन हैं, अतः न्यष्टि में बाहर की ओर 92 विद्युदणु हैं।

लीथियम के आइसोटोप

चित्र 1

परमाणु से ऊर्जा किस प्रकार प्राप्त होती है? इसको समझने से पूर्व आइसोटोप के विषय में जानना परम आवश्यक है। डाल्टन के सिद्धांत के अनुसार किसी तत्व के सभी अणुओं का परमाणु भार समान होता है। परन्तु दो वैज्ञानिकों, जे० जे० थाम्पसन तथा एफ० डब्ल्यू आस्टन ने यह सिद्ध कर दिया कि डाल्टन का यह सिद्धांत ठीक नहीं है। इन्होंने अन्वेषण द्वारा बतलाया कि बहुत से तत्व ऐसे हैं जिनमें परमाणु भार भिन्न होते हैं।

ऊपर के चित्र में लीथियम के दो भिन्न परमाणु दिखाये गये हैं। सभी लीथियम परमाणु अपने न्यष्टि में तीन धनात्मक प्रभार रखते हैं। प्रत्येक लीथियम अणु के सबसे बाहरी अक्षि में एक विद्युदणु होता है। फिर भी लीथियम अणु के दो भेद हैं। एक प्रकार के अणु में परमाणु भार 6 तथा न्यष्टि में 3 प्राणु और 3 क्लीवाणु होते हैं। दूसरे प्रकार के अणु में परमाणु भार 7 तथा न्यष्टि में 3 प्राणु और 4 क्लीवाणु होते हैं। रासायनिक दृष्टि से ये दोनों अणु एक समान हैं। अतः एक तत्व के परमाणु जिनका

प्रभार न्यष्टि में समान है परन्तु परमाणु भार में भिन्न हैं, उस तत्व के आइसोटोप कहलाते हैं। तत्व के सभी आइसोटोपों की न्यष्टियों में प्राणु की संख्या समान होती है अतः ये क्लीवाणु ही हैं जो कि संख्या में भिन्न हैं और भिन्न परमाणु भार उत्पन्न करते हैं।

यूरेनियम के दो प्रधान आइसोटोप हैं जिनको वैज्ञानिकों ने यू–235 व यू–238 रूपाँकन किया है। यू–238 की न्यष्टि में 146 क्लीवाणु हैं जबकि यू–235 की न्यष्टि में केवल 143 क्लीवाणु हैं। प्राकृतिक यूरेनियम में 99.3 प्रतिशत यू–238 का अंश है तथा यू–235 केवल 0.7 प्रतिशत अथवा यों कहिये कि यू–238 के 140 पौंड के मिश्रण के साथ एक पौंड यू–235 की प्राप्ति होती है।

यह यू–235 ही वह परमाणु है जिससे विखण्डन विधि द्वारा ऊर्जा मुक्त होती है। सन् 1939 ई० में आटोहान तथा फिज स्ट्रासमेन दो जर्मन वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया कि जब मंद गति से चलने वाले क्लीवाणु यू–235 परमाणु के साथ प्रस्फोट होते हैं तो परमाणु अंशों में छिटक जाते हैं। इस विधि को आणविक विखण्डन कहते हैं। गणना द्वारा ज्ञात हुआ कि एक पौंड यू–235 से 1,14,00,000 किलोवाट प्रति घंटे ऊर्जा मुक्त होती है। वास्तव में यू–235 की परमाणु संख्या (92) वही है जो कि साधारण यूरेनियम की, जो कि यू–235 द्वारा प्रदर्शित की जा सकती है। जब इस आइसोटोप के परमाणु के न्यष्टि से एक क्लीवाणु टकराता है तो यू–236 की उत्पति होती है।

यू–235 + 1 क्लीवाणु=यू–236
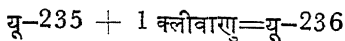
यू–236 स्थायी परमाणु न होने के कारण तुरंत छिन्न-भिन्न हो जाता है। फलस्वरुप बहुत से क्लीवाणु और दो समान भार वाले पदार्थ, जो दो अणु की न्यष्टि हो जाते हैं, की रचना होती है तथा इनकी परमाणु-संख्या का योग 92 होता है। इस प्रकार मुक्ति प्राप्त क्लीवाणु दूसरे यू–235 परमाणु पर धावा बोलता है। यह संयोग अधिक क्लीवाणुओं के उद्विरण से युक्त नये विखण्ड़न की रचना करता है। इस प्रकार यू–235 के अन्दर शृंखला प्रति प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है और फलस्वरूप एक सेकन्ड के अंश में ही ऊर्जा की विशाल मात्रा मुक्त होती है। इसके लिये निम्न दो ढंग अपनाये जा सकते हैं।

1—यू–235 की संख्या बढ़ाने से।

2—क्लीवाणुओं की ग्रेफाइट या भारी पानी (व्युहाणु-भार 20) में गुजारने की गति को धीमी करने से।

वह पदार्थ जो क्लीवाणुओं की गति को धीमी करने के प्रयोग में लाया जाता है, शामक कहलाता है।

प्लूटोनियम का प्रस्फोट जब क्लीवाणुओं द्वारा होता है तो इसकी शृंखला विखण्डन क्रिया आरम्भ हो जाती है और यही कारण है कि इसका महत्व दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। जैसा कि अभी बतलाया गया है कि प्लूटोनियम का उत्पादन यू–235 से उत्सारित क्लीवाणुओं द्वारा यू–238 की न्यष्टि से टकराने से होता है और इस प्रकार इसका विखण्डन हो जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक यूरेनियम धातु में मिश्रित एक ही अनुपात में यू–238 कच्चे पदार्थ के रूप में और यू–235 ऊर्जा श्रोत के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

प्लूटोनियम, ग्रेफाइट तथा यूरेनियम धातु के बने चट्टे में तैयार किया जाता है। शामक क्लीवाणुओं की गति को धीमा करता है ताकि यू-235 की अधिक विखन्डन प्रतिक्रिया को स्थिर रख सके तथा यू-238 का न्यष्टि साधारण गति से विचरित क्लीवाणुओं को पकड़ सके। एक क्रियाशील चट्टा प्रचुर मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न करता है। इस प्रकार का चट्टा भविष्य में व्यापारिक उष्णता और शक्ति के लिये परमाणु ऊर्जा का मुख्य स्रोत होगा। यूरेनियम के साथ-साथ थोरियम (परमाणु-संख्या 90) तथा प्रोटेक्टीनियम (परमाणु-संख्या 91) भी परमाणु ऊर्जा के स्रोत के रूप में उपयोग किये जा सकते हैं।

इस विधि को करने के कई ढंग हैं। मंथन विधि-यह विधि क्रीम पृथक करने के ही समान है। यदि यूरेनियम, गैसीय अवस्था में अथवा द्रव अवस्था में, विशाल गति के साथ घुमाया जाता है तो हल्के परमाणु (अनुपाट्य 235-आइसोटोप से सम्बंधित) ऊपर आ जाते हैं जैसे क्रीम दूध को नीचे तली पर छोड़ कर ऊपर आ जाती है। इस

विधि से आइसोटोप पृथक अवश्य हो जाते है किन्तु इसके लिये अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है यहां तक कि कार्यान्वित करना भी दुर्लभ हो जाता है।

दूसरी विधि विद्युतचुम्बकीय पृथक्करण है। इस ढंग में यदि यूरेनियम का आयनीकरण हो जाता है तो परमाणु एक शक्तिशाली चुम्बक द्वारा आर्कषित हो जाते हैं। यदि इन आयनों की धारा एक चुम्बकीय क्षेत्र से गुजारी जाये तो हल्के आयनों का पथ भारी आयनों के पथ से भिन्न होता है। चुम्वकीय आकर्षण के कारण व्यकुंचन में जो अन्तर होता है उसका मुख्यतः उत्तरदायित्व भार में जो अन्तर हुआ, उस पर है। इस प्रकार दो भिन्न रश्मियां दो भिन्न-भिन्न पात्रों में एकत्र की जा सकती हैं।

तीसरी विधि गैसीय प्रसारण की है। सर्व प्रथम यूरेनियम को दूसरे तत्व के साथ मिलाकर गैसीय यौगिक बनाया जाता है। उदाहरणार्थ–यूरेनियम तथा फ्लोरीन के संयोग करने पर यूरेनियम हेक्सा-फ्लोराइड प्राप्त होता है। फ्लोरीन तथा यू–235 के संयोग से बने व्यूहाणु यू–238 व क्लोरीन के व्यूहाणु से हल्के होते हैं। गैसीय प्रकृति का मूल नियम है कि हल्के व्यूहाणु भारी व्यूहाणु की अपेक्षा अधिक तेज चलते हैं। यदि यूरेनियम हेक्सा-फलोराइड रन्ध्री दीवार अथवा किसी दूसरे छोटे छिद्र वाले अवरोधक के बीच गुजारा जाये तो हल्के व्यूहाणु भारी व्यूहाणु की अपेक्षा शीघ्र पार हो जाते हैं। अवरोधक एक प्रकार की जाली होती है, जिसमें असंख्य छोटे छिद्र वाली प्लेट होती है और प्रत्येक छिद्र लगभग $\frac{1}{105}$ इंच चौड़ा होता है। यदि कुछ नलियां ली जायें और उन पर बराबर फासले पर अवरोधक रखे जायें। तत्पश्चात उन नलियों में गैस गुजारी जाये तो जो व्यूहाणु पाइप के मुख पर सर्वप्रथम आयेंगे वे यूरेनियम के सबसे हल्के परमाणु होंगे। इस विधि में बहुत ही परिश्रम करना पड़ता है, यहां तक कि 99 प्रतिशत शुद्ध यूरेनियम–235 को प्राप्त करने के लिये भी गैस को लगभग 4,000 अवरोधकों से गुजारना पड़ता है। अवरोधक पहियों का स्वयं का कुल क्षेत्रफल कई एकड़ हो जाता है। नलियां भी कई हजार मील लम्बी होती जाती हैं।

कैलिफोर्निया युनिवर्सिटी के वैज्ञानिक डा० जे० आर० ओपिनहेमर के निर्देशन में लास अल्मास (न्यू मैक्सिको) में स्थित विशेष प्रयोगशाला में बम के रूपांकन का कार्य सौंपा गया। डा० ओपिनहेमर के साथ संयुक्त राज्य के बहुत से गुणी विज्ञानवेत्ता कार्य कर रहे थे। नील वोहर चैडविक, फर्मी तथा हंस वेथे आदि बहुत से प्रसिद्ध विदेशी वैज्ञानिक भी इस अनुसंधान शाला में एकत्रित हुये थे। ओपिनहेमर के सहयोगी वैज्ञानिकों द्वारा सरल की गई तकनीकी समस्याओं के विस्तार व जटिलता का अनुमान लगाना कठिन नहीं है।

सबसे बड़ी समस्या बम के अधिस्फोटन के लिये युक्ति की है। सैद्धान्तिक रूप से परमाणुबम अनुपाट्य पदार्थ का केवल महासंकट मात्र है। सदैव वायुमंडल में कुछ ऐसे पथ-भ्रष्ट क्लीवाणु रहते हैं जो जैसे ही अनुपाट्य पदार्थ महां संकट बना वैसे ही, एक या अधिक पथ-भ्रष्ट क्लीवाणु शृंखला-प्रतिक्रिया आरम्भ कर देते हैं। तत्पश्चात् असाधारण तीव्र गति से यह प्रतिक्रिया होती है और फलस्वरूप तुरन्त विस्फोट हो जाता है। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि बम निर्माण के तुरन्त बाद यदि विस्फोट न किया जाये तो बम को बनाना असम्भव है। **यदि काष्टा सीमा से बाहर अनुपाट्य पदार्थ को चिनने से ही केवल प्रस्फोट (बम) बनाया जाय** तो यह किसी भी कार्य के उपयोग **में नहीं आ सकता।**

प्रत्येक हथियार के लिये उचित समय पर घोड़ा दावने की युक्ति होनी चाहिये। परमाणु हथियार में युक्ति ऐसी होनी चाहिये जो अधः काष्टा भार को अचानक ही महा संकट पदार्थ में परिवर्तित कर दे। विस्फोट के उसी क्षण तक पदार्थ को अचानक महासंकट बनाने के लिये दो-तीन सम्भव तरीके हैं। एक तरीका है कि सम्पूर्ण अनुपाट्य पदार्थ को भिन्न पिन्डों में रखा जाय। दोनों पदार्थ अधः काष्टा होंगे किन्तु संयोग अवस्था में महासंकट का रूप धारण कर लेते हैं। यदि किसी बन्दूक द्वारा लघु पिण्ड को गोली के रूप में दीर्घ पिन्ड पर फायर किया

जाये तो संयुक्त भार महा संकट हो जाता है।

दूसरी विधि है, जिसको उपलक्षण के नाम से पुकारते हैं। अनुपाट्य पदार्थ की कुछ मात्रा जो कि पतले गोलाकार कवच के रूप में अधः काष्टा है, ठोस गोलार्ध के रूप में दबा कर काष्टा अथवा महासंकट बनाया जा सकता है। कवच के बाहर रखे हुये रासायनिक विस्फोटक को फायर करने से यह घटना हो सकती है। रासायनिक विस्फोटक अन्दर की ओर दबाव पदार्थ को महासंकट स्थिति की ओर ले जाता है। यदि पदार्थ का घनत्व बढ़ा दिया जाये तो अधःकाष्टा भार भी महा संकट बन सकता है।

एक अन्य तकनीकी समस्या के विषय में भी निश्चित होना चाहिये कि क्लीवाणु की न्यूनतम संख्या बाहर बच कर भागने से नष्ट हो जाती है। स्वतंत्र क्लीवाणु पदार्थ से बच कर भाग निकलने के पश्चात भी परावर्ती पदार्थ से टकराकर पुनः उसी पदार्थ में आ जाते हैं। ऐसा आवरण क्लीवाणु-परावर्तक अथवा अन्तक्षेप कहलाता है। अन्तक्षेप विस्फोट की शक्ति को दूसरे ढंग से बढ़ाता है। जैसे ही विस्फोट आरंभ होता है तो विस्फोटक पदार्थ इधर उधर उड़ते हैं तथा इधर उधर के विसर्जन के परिणामस्वरुप विस्फोटन समाप्त हो जाता है। अन्तक्षेप विसर्जन का अवरोध करता है तथा विखंन्डन प्रतिक्रिया के प्रजनन व उससे मुक्त ऊर्जा के लिये कुछ समय देता है। इस प्रकार विस्फोट की हिंसात्मक कार्यवाही बढ़ जाती है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि बम में विद्यमान सभी अनुपाट्य पदार्थों का विखण्डन नहीं होता। किन्तु प्रत्येक दशा में ज्योंही अविखण्डनीय पदार्थ काष्टा सीमा से नीचे गिर जाता है त्योंही शृंखला-प्रतिक्रिया रुक जाती है। किसी-किसी विस्फोट में तो पदार्थ का अचानक फैलाव होने के कारण प्रतिक्रिया रुक जाती है। हिरोशिमा में प्रयोग किये गये बम में अनुपाट्य पदार्थ की मात्रा का अनुमान लगभग 50 किलोग्राम था, जबकि नागासाकी पर डाले गये बम में भार कम था। वास्तव में बम के अन्दर पदार्थ की जिस मात्रा का विखण्डन होता है उसका भार केवल १ किलोग्राम होता है। बम में अन्तक्षेप आदि सहित कुल भार लगभग 5 टन होता है। एक किलोग्राम यूरेनियम अथवा प्लूटोनियम का पूर्ण विखण्डन इतनी ऊर्जा मुक्त करता है जितनी टी० एन० टी० (ट्राई-नाइट्रो-टालुइन) का 20,000 टन। एक टन टी० एन० टी० में इतनी विस्फोटक क्षमता होती है कि वह एक बड़ी इमारत को गिरा सकती है तथा 100 से अधिक व्यक्तियों की जान ले सकती है।

● ●

● राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से ही विज्ञान का प्रचार एवं प्रसार सम्भव है

● विज्ञान की लोकप्रियता में हिन्दी ने चार चाँद लगाये हैं

शब्दों के चिन्त्य अनुवाद

□ डा० शिवगोपाल मिश्र

अनुभवी विद्वानों का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि मौलिक लेखन सरल होता है किन्तु किसी के विचारों का अनुवाद करना अपेक्षतया कठिन कार्य है। इधर कुछ वर्षों से वैज्ञानिक पुस्तकों के लिये अंग्रेजी से हिन्दी अनुवादों की धूम मची हुई है। शिक्षा मंत्रालय की ओर से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली की कई किस्तें छप कर बाजारों में उपलब्ध हैं जिनके आधार पर अंग्रेजी–हिन्दी अनुवाद किये जा रहे हैं। कहा जाता है कि ऐसा व्यक्ति, जो हिन्दी और अंग्रेजी जानता हो तथा विज्ञान में निष्णात हो, धड़ल्ले से अनुवाद कर सकता है। यह सच है कि इसी परम्परा का आजकल निर्वाह हो रहा है। इंटर तक की पाठ्य पुस्तकों में इतनी हिन्दी रहती है कि विज्ञान सम्बन्धी कोई भी विचार धारा सहज भाव से हिन्दी के माध्यम से व्यक्त की जा सकती है। किन्तु जिन्होने हिन्दी सीखी ही नहीं, वे क्या करें ?

अच्छे अनुवाद के लिये हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओं पर समान अधिकार होने के साथ विज्ञान-विषय का अधिकारिक ज्ञान अपेक्षित है। जिन्होंने स्नातक कक्षाओं तक या स्नातकोत्तर कक्षाओं तक विज्ञान की किसी भी शाखा का अध्ययन किया है वे अभ्यास द्वारा अपने अपने विषय में अनुवाद का कार्य करने के लिये उपयुक्त हैं किन्तु उन्हें अपने हिन्दी ज्ञान की परीक्षा करनी होगी। यदि उन्होंने हिन्दी के शब्दों का ठीक से अध्ययन एवं मनन नहीं किया तो सम्भावना यही है कि वे अनुवाद कार्य के प्रति पूर्ण न्याय नहीं कर सकेंगे। मात्र शब्दावलियों से समानार्थी शब्दों का चयन अनुवाद को न तो सार्थक बना सकता है, न उसमें प्राण ला सकता है। यदि अनुवाद में मूल की आत्मा के दर्शन न हों, तो ऐसा अनुवाद निरर्थक है और उसे पढ़ने वाले भँवर में फँस कर रह जावेंगे, वे या तो अर्थ का अनर्थ समझेंगे या कुछ भी नहीं समझ पावेंगे। ऐसी स्थिति से बचने के लिये हिन्दी के शब्दों का अर्थ गाम्भीर्य समझना आवश्यक है। खेद है कि न तो हिन्दी के अध्यापक न ही विज्ञानवेत्ता इस ओर जागरूक हैं। शायद ही ऐसी आलोचनायें या ऐसे उल्लेख होते हों जिनमें शब्दों के त्रुटिपूर्ण प्रयोगों का चुनाव करके सही अर्थों या सही प्रयोगों को बताया गया हो। यह अत्यन्त शोच्य स्थिति है। बिना ऐसी समालोचना के वैज्ञानिक कार्यों में हिन्दी को दृढ़ आधारभूमि नहीं मिल पावेगी। जो जैसे चाहे प्रयोग करे – यदि यही प्रवृति चलती रही तो अंधेर मच जावेगा। यदि राष्ट्र भाषा हिन्दी को विज्ञान की भाषा बननी है तो इस पक्ष की ओर शतत ध्यान देना होगा और ऐसी पुस्तकें लिखनी होगी जिनमें शुद्ध तथा अशुद्ध प्रयोगों का उल्लेख हो।

मैं लगातार 14 वर्षों से 'विज्ञान और 'अनुसन्धान पत्रिका' के सम्पादन कार्यों से सम्बद्ध रहा हूँ। इधर "वेल्थ आफ इंडिया" तथा कई अन्य पुस्तकों के हिन्दी अनुवादों को देखने का अवसर मिला है। मुझे स्वयं यह अनुभव हुआ है कि आज भी ऐसे अनेक अंग्रेजी शब्द हैं जिनके लिये हमारे पास उपयुक्त शब्द नहीं है जिसके कारण या तो हमें गोलमोल करके वाक्य बनाना पड़ता है या वाक्य को बढ़ाना पड़ता है या शाब्दिक अनुवाद न करके भावार्थ रखना पड़ता है। यह ठीक है कि किसी

गद्यांश का भावार्थ उतना ही भावपूर्ण होगा जितना कि शब्दार्थ किन्तु क्या यह सच नहीं है कि हमें थोड़े शब्दों में अनुवाद करने का अभ्यास करना चाहिए।

विज्ञान के विद्वानों को दोष नहीं दिया जा सकता। अधिकांश अंग्रेजी–हिन्दी कोषों में दिये गये अर्थ या तो भोड़े होते हैं, या उनमें वांछित अर्थ रहते ही नहीं। इधर दो एक कोश प्रकाश में आये हैं जिनमें पारिभाषिक शब्दावली के शब्दों को स्थान दिया गया है अतः उचित कोश का चुनाव करके अनुवाद कार्य में कुछ उन्नति दिखाई जा सकती है किन्तु दुर्भाग्यवश नौसिखियों के लिये उचित मार्ग दर्शन नहीं है न वे इस दिशा में अधिक कुछ जानना ही चाहते हैं। फिर जो परिणाम निकलता है, वह भयंकर भूल के रूप में होता है।

यदि कोई विद्वान ऐसी भूलों को लेखमाला के रूप में प्रकाशित करने को तैयार हो तो 'विज्ञान' में उसे सहर्ष स्थान प्रदान किया जावेगा। मै स्वयं इस विषय में विस्तार से लिखने के सम्बन्ध में सोचता रहा हूँ किन्तु इस समय वैसा छिद्रान्वेषण नहीं कर पाऊँगा क्योंकि मैं दूसरे कार्य में संलग्न हूँ। बानगी के लिये कुछ उदाहरण देकर लेख समाप्त करूँगा। आशा है इसे प्रत्यालोचना की दृष्टि से न पढ़कर हमारे पाठक इससे लाभ उठाने तथा और आगे कार्य करने की दृष्टि से पढ़ेंगे।

(1) Trace : इस शब्द के हिन्दी समानार्थी अनुरेख, रंच आदि हैं। समस्या यह है कि अनुरेख और रंच का व्यवहार कहां और कैसे किया जाय। यदि विद्वान अनूदक अंग्रेजी प्रयोग से परिचित है किन्तु हिन्दी शब्दों के अर्थ नहीं जानता तो जो अनुवाद होगा वह ऐसा होगा — मान लो कि किसी यौगिक के अवयवों की मात्रा का उल्लेख है यदि उसमें कोई तत्व Trace में है तो, फिर हिन्दी में उसका "अनुरेख" होगा। आप ही बतायें यह अनुरेख यहाँ अनर्थ होगा और हिन्दी की श्रीवृद्धि में कालिख पुतेगी ?

(2) Cwt : यह हण्ड्रेडवेट का अंग्रेजी संक्षिप्त रुप है। यह भार की इकाई है। यदि अनूदक इसे 'कुंतल' लिख दे तो ? शायद अनूदक को पता होगा कि कुंतल का अंग्रेजी क्विन्टल है और वह Q से लिखा जाता है। स्पष्ट है कि उसे न तो अंग्रेजी, न ही हिन्दी शब्दों का ठीक से पता है।

(3) Ore : इसका समानार्थ है अयस्क। किसी महोदय ने किसी कोश म इसका अर्थ 'पिंड' देखा तो उसे भा गया क्योंकि उसके अर्थ वह समझता है। उसे यह नहीं समझ में आता कि 'अयस्क' क्या है। अतः वह इसे नहीं प्रयोग में लाता।

(4) Meal: भोजन या खली। अनुवाद है ग्वानो का भोजन 10 पौंड की दर से डाला जावे। स्पष्ट है कि 'भोजन' का प्रयोग गलत हुआ है। यहाँ खली से अभिप्रेत है।

(5) Cultural Practices: अनुवाद हुआ है कर्षण सम्बन्धी अभ्यास। निस्सन्देह कृषि शब्दावली के सम्पर्क में न रहने के कारण ऐसा प्रयोग हुआ है। इसका अनुवाद होना चाहिए था कृषि सम्बन्धी पद्धतियाँ या प्रथायें।

(6) Yield : उपलब्धि, लब्धि, प्राप्ति — ये इसके समानार्थी हैं किन्तु अनूदक 'उत्पाद' लिखता है तो स्पष्ट है कि उसे Product तथा Yield में अन्तर नहीं जान पड़ता।

(7) Raise : उठाना, उगाना। "फसल उठाई जाती है" – यह कैसा अनुवाद होगा ?

ऐसे न जाने कितने प्रयोग हैं जिनको देख कर एक क्षण हँसी आती है किन्तु दूसरे ही क्षण चिन्तातुर हो जाना पड़ता है कि राष्ट्र भाषा हिन्दी का कल्याण नहीं हो सकता। अभी तो हमारी जड़ें ही कमजोर हैं, कहाँ से पत्र पुष्प लगें भाषा वल्लरी में। इसके लिये माली बनकर कठिन साधना करनी होगी।

● ●

निद्रा—जीवन का एक तिहाई भाग

□ श्याम मनोहर व्यास

जीवन में निद्रा का भी विशेष महत्व है। थकान मिटाने और शक्ति संचय के लिये पर्याप्त नींद लेना आवश्यक है। एक ऐतिहासिक प्रसंग है :—

सिकन्दर का सेनापति सेल्यूकस युद्ध की थकान के बाद रात्रि को प्रगाढ़ निद्रा में मग्न था। सिकन्दर ने उसे आवश्यक कार्यवश बुलाया, पर गहरी निद्रा में सोने के कारण वह उठा नहीं। प्रातः काल वह सम्राट से मिलने गया। अन्य दरबारी सोच रहे थे कि सिकन्दर उसे प्राण दण्ड देगा पर सिकन्दर ने उससे कहा :— "सेल्यूकस ! मेरा सारा साम्राज्य तुम ले लो और अपनी नींद मुझे दे दो।"

सम्राट नैपोलियन युद्ध क्षेत्र में भी भोजन के उपरान्त आधा घण्टा सोता था।

पत्रकार व लेखक पं० बनारसी दास चतुर्वेदी का नियम है भोजन के पश्चात् दो घण्टे तक सोना। इस कार्य में वे कभी भी अनियमित न रहे।

नींद मनुष्य की चिर संगिनी है, जीवन दायिनी है। प्रत्येक प्राणी के लिये निद्रा आवश्यक है। नींद नहीं आने की शिकायत करने वाले व्यक्ति के चेहरे के भावों को ध्यान से देखने पर आपको पता चलेगा कि उसके मुख-मण्डल पर कितनी सुस्ती एवं दीनता छा जाती है।

सचमुच नींद सबको प्यारी लगती है। नींद स्फूर्ति का संचार करती है। हम अपने जीवन का एक तिहाई भाग निद्रा देवी को समर्पित करते हैं। विज्ञानवेत्ता संसार के अन्य रहस्यों की तरह नींद के रहस्य का भी धीरे धीरे पता लगा रहें हैं।

नींद है क्या ?

हमारे शरीर की सामान्यतः दो अवस्थायें होती हैं:—
(1) निद्रावस्था और (2) जागृतावस्था

स्वप्नावस्था निद्रावस्था का ही एक पूरक भाग है। इन दोनों अवस्थाओं का नियन्त्रण हमारे मस्तिष्क के दो छोटे छोटे अवयव करते हैं। शारीरिक विज्ञान में इन्हे 'रेक्टिक्युलर फार्मेशन' और 'हाइपोलैग्मस' कहते हैं। हमारा मस्तिष्क स्नायुओं के द्वारा शरीर के सभी अंगों से जुड़ा है। ये अंग स्नायुओं के सहारे मस्तिष्क को सदा कोई न कोई सूचना भेजते रहते हैं। मस्तिष्क एक यन्त्रालय है जिसमें लगभग डेढ़ अरब कोष हैं और वे विद्युन्मय हैं। जागृतावस्था में 'रेक्टिक्युलर फार्मेशन' और 'हाइपो-लैग्मस' इन सूचनाओं को नया रूप प्रदान करते हैं और उनके बारे में निर्णय लेने के लिये मस्तिष्क को सक्रिय करते हैं।

कई घण्टे कार्य करने के पश्चात् ये अवयव थकान अनुभव करते हैं और कार्य करना बन्द कर देते हैं। इनके अभाव में मस्तिष्क सूचनायें ठीक प्रकार से ग्रहण नहीं कर पाता। और वह निष्क्रिय हो जाता; यही नींद की अवस्था है।

हल्की नींद में ऐसी व्यवस्था हो सकती है कि हमारा नियन्त्रण-कार्यालय कुछ विशेष प्रकार के संवेदनों और सूचनाओं को ही पुनः प्रसारित करे और बाकी को नहीं। यदि आप दिल्ली या बम्बई के किसी उपनगर में रहते हैं और प्रतिदिन लोकल ट्रेन में बैठकर दफ्तर जाते हैं; तो आपने देखा होगा कि बहुत से लोग ट्रेन में चढ़ते ही

सो जाते हैं और अपना स्टेशन आते ही जाग कर उतर जाते हैं। अक्सर ऐसे व्यक्ति कहा करते हैं कि निद्रा पर उनका पूरा नियन्त्रण हैं। कई व्यक्ति जितने बजे उठने का संकल्प करते हैं ठीक उतने बजे उनकी नींद खुल जाती है !

जब शरीर यह अनुभव करने लगता है कि, काफी आराम मिल चुका तो स्नायुओं द्वारा यह सन्देश मस्तिष्क में पहुँच जाता है और नियन्त्रण—कार्यालय के दरवाजे खुल जाते हैं। यही नींद का टूटना या जागरण है।

स्वाभाविक निद्रा और मूर्च्छा में बड़ा अन्तर है। मूर्च्छा की अवस्था में कोई संवेदन चाहे वह कितना ही तीव्र क्यों न हो मस्तिष्क तक नहीं पहुँचता। नींद में मस्तिष्क का शरीर के विभिन्न अंगों से सम्बन्ध नहीं टूटता है। नींद में थकान उत्पन्न करने वाला टाक्सिन विष समाप्त हो जाता है।

निद्रा और स्वप्नावस्था

निद्रा की एक और अवस्था है वह है स्वप्नावस्था। स्वप्न में हम चेतन से एक ऐसे अचेतन जगत् में पहुँच जाते हैं जहाँ व्यक्तिगत अनुभूतियों से प्रभावित एक से एक अनोखी घटनायें घटती हैं। इन घटनाओं में कभी कभी सत्य का आभास भी होता है। मनोवैज्ञानिकों के कथनानुसार मनुष्य के स्वप्न उसकी अतृप्त कामनाओं की मानसिक रूप से पूर्ति करते हैं। निद्रावस्था में मन नीति पूरक भी हो उठता है और अत्यन्त निष्पक्ष भाव से उस व्यक्ति विशेष के कार्यों का विश्लेषण करता है। यदि कोई अनुचित कार्य किसी से हो जाता हैं तो मन स्वप्न जगत् में कोई एक ऐसा दृश्य उपस्थित करता है जिसमें उस व्यक्ति को कष्ट का अनुभव होता है। इस प्रकार मन शरीर को उसके अनुचित कार्य पर खण्डित कर अपनी नीति परायणता की अभिव्यक्ति कर सन्तुष्टि भी पा लिया करता है।

मनुष्य की भिन्न भिन्न वृतियाँ मिश्रित होकर स्वप्न के वैचित्र्यमय उपकरणों के रूप में सुषुप्ति की अवस्था में उसे दिखायी पड़ती हैं, इसलिये मनुष्य उन प्रतीकों का ठीक ठीक विश्लेषण भी नहीं कर पाता।

निद्रा और स्वप्न का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। निद्रा ही स्वप्नों के लिये आवश्यक वातावरण तैयार करती है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार प्रत्येक व्यक्ति आठ घण्टे की स्वस्थ नींद में 2 घण्टे स्वप्न देखता है। अक्सर स्वप्न रात्रि के अन्तिम पहर में देखे जाते हैं। जब निद्रा का अन्तिम चरण होता है।

नींद के शत्रु

चिन्ता और मानसिक तनाव निद्रा के प्रबल शत्रु हैं। चिन्ता केवल मानसिक क्रिया ही नहीं है वरन् उसका शारीरिक पहलू भी है। चिन्ता स्नायुओं में तनाव उत्पन्न करती है। चिन्ता से ही अनिद्रा का रोग उत्पन्न होता है। बहुत से व्यक्ति नींद की गोलियाँ खा कर चिन्ता व तनाव से मुक्त होकर सुख की नींद सोना चाहते हैं पर यह ठीक नहीं है। गोलियों के नशे से मनुष्य सो जायगा पर गोलियों का हल्का विष शरीर को मानसिक व शारीरिक रूप से अवश्य निर्बल करेगा। इसके लिये यह उपाय ठीक है कि आप स्नायुओं को शिथिल छोड़ दें, मस्तिष्क को विचार मुक्त करदें, चिन्ता व तनाव स्वतः कम हो जायेंगे और आप सुख की नींद सो सकेंगे।

नीद में दिल की धड़कन प्रायः प्रति मिनट 54 होती है। गहरी नींद में आदमी साँस गहरी लेता है। उस समय उसका रक्त चाप भी कम हो जाता है। नींद से उठने पर दिल की धड़कन और रक्त वाहिनियों पर रक्त का दबाव बढ़ने लगता है। साथ ही, शरीर की उष्णता भी बढ़ने लगती है !

जब उठने का समय आता है तो पहले शरीर के अवयव धीरे धीरे सक्रिय होने लगते हैं। यह प्रक्रिया सोने की प्रक्रिया से उल्टे क्रम में होती है। मस्तिष्क सबसे बाद में चैतन्य होता है। इन्द्रियां भी धीरे धीरे जागती

[शेष पृष्ठ 22 पर]

अंगुली-छाप द्वारा अपराध का ज्ञान

□ विष्णु दत्त शर्मा

तर्क-वितर्क करने के पश्चात, गुप्तचर विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी से ज्ञात हुआ कि घरों में चोरी अथवा डकैती दो प्रकार से की जाती है। (1) दीवार तोड़कर (नक़ब लगाना, सेंध लगाना) (2) दर्वाजा अथवा खिड़की तोड़कर। भारतीय अपराधी इतना तकनीकी दृष्टि से चतुर नहीं होता जितना कि पश्चिमी देशों का। जिस समय एक चोर घर में खिड़की मार्ग से अंदर जाता है, चाहे शीशा तोड़कर अथवा ताला तोड़कर, तो उसे यह ध्यान नहीं रहता कि कहाँ-कहाँ पर हाथ लगा है? क्योंकि उसका ध्यान केवल घर में रखे सामान पर होगा अथवा कोई देख न ले। अतः यह स्वाभाविक है कि वह जिन-जिन वस्तुओं को घर में स्पर्श करेगा उन सभी को ले जाने में असमर्थ होगा। उदाहरणार्थ दरवाजे की लकड़ी, दीवार का प्लास्टर, खिड़की का काँच, मेज तथा अन्य ऐसी वस्तुएँ होंगी जिनको वह स्पर्श करेगा। ऐसे सभी पदार्थों पर अंगुलियों का निशान पड़ जाना स्वाभाविक है। यह दूसरी बात है कि वहाँ अंगुली का निशान है अथवा हथेली का।

परम पिता परमात्मा एक ऐसा कलाकार है जिसने सृष्टि की रचना की और असंख्य मनुष्यों के शरीर भिन्न-भिन्न बनाये हैं। प्रत्येक मनुष्य का शरीर दूसरे मनुष्य के शरीर अंग से बिल्कुल ही बनावट में भिन्न होता है, यहाँ तक कि उसके शरीर की त्वचा भी भिन्न-भिन्न बनावट की है। हाथ का अंगूठा, हथेली अथवा पैर के तलुवे की बनावट का परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न डिजाइन है। अतः इन डिजाइनों द्वारा व्यक्ति विशेष को पहिचाना जा सकता है। खाल (त्वचा) की ऊपरी सतह को ऐपीडर्मिस कहते हैं जिसमें कोषों की पाँच सतहें होती हैं। इन सतहों में एक सतह तन्तु की भी होती है। ध्यानपूर्वक त्वचा का अध्ययन करने पर ऐसा देखा गया है कि उसमें छिद्र होते हैं जिनसे पसीना बाहर आता रहता है। यह पसीना शरीर में व्याप्त त्वगवसा, लवण तथा पानी के कारण होता है। त्वगवसा से चर्बीयुक्त पदार्थ उत्पन्न होता है। यहाँ पर यह बतलाना पर्याप्त होगा कि इस प्रकार की चर्बी आदि उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियाँ बच्चे के जन्म से पूर्व ही बन जाती हैं और मृत्यु समय तक ही रहती हैं। कटने, जलने अथवा किसी बीमारी के कारण हाथ का डिज़ाइन अस्थायी रूप से अवश्य बदल जाता है किन्तु हाथ का उभार तथा रेखायें एक समान एवं स्थायी रहती हैं। जब मनुष्य किसी वस्तु को छूता है तो उस चिकनाई के कारण उस वस्तु पर हाथ का चिन्ह अधिक स्पष्ट दिखाई देगा। ऐसा भी देखा गया है कि चोर अपने शरीर में तेल मर्दन करता है कि पकड़ने वालों के हाथ से वह सरलतापूर्वक छुड़ा कर भाग जाये। किन्तु यह तेल हाथों में स्याही पैदा कर देता है तथा हाथ के निशान और भी भली प्रकार दिखाई दे जाते हैं।

इन अंगुलियों के निशानों को नाना प्रकार से व्यक्त करके देखा जा सकता है और स्थायी लेखा रखने के लिये फोटो लेना अत्यंत अनिवार्य है। ये निशान ब्रुश, पाउडर, पारदर्शक सेल्यूलोज टेप, रबर उठाने वाली पट्टी, फोटोग्राफी कागज, कैमरे, स्याही, गद्दी, रोलर तथा अंगुली-छाप आवर्धक से अच्छी प्रकार देखे जा सकते हैं।

पाउडर द्वारा अंगुली के निशानों को व्यक्त करने के लिये पाउडर के रंग का चयन करना बहुत आवश्यक है। पाउडर

का चयन बहुत से कारणों पर आधारित है। पाउडर के प्रयोग का तात्पर्य फोटोग्राफ में अधिक वैषम्य बढ़ाना है। प्रयत्न यह किया जाना चाहिये कि भूरे रंग की पृष्ठभूमि पर गहरे काले रंग का फोटो तैयार हो। किन्ही-किन्ही विशेषज्ञों को श्वेत पृष्ठभूमि पर काले रंग के निशान का अध्ययन करना सरल होता है। ऐसी अवस्था में सफेद रंग के पाउडर से धूलिकरण करने के उपरांत फोटो लिया जावे तत्पश्चात उसकी स्लाइड तैयार की जानी चाहिये। साधारणतया श्वेत पृष्ठभूमि पर काला पाउडर तथा काली पृष्ठभूमि पर सफेद पाउडर का ही प्रयोग किया जाता है। किन्तु यदि बहुरंगी वस्तु पर अंगुली का निशान है तो उसमें रंग चयन में असुविधा होती है। उदाहरणार्थ यदि अंगुली का निशान सफेद तथा नीले रंग की पृष्ठभूमि पर पड़ता है तो वैषम्य बढ़ाने के लिये लाल रंग के पाउडर का प्रयोग करना उचित एवं न्याय संगत होगा।

पाउडर के चयन में दूसरे आधार को भी ध्यान में रखना चाहिये कि पाउडर अंगुली-अंकित स्थान पर चिपक जाता है। अतः पाउडर ऐसा होना चाहिये जिससे अधिक मात्रा या कम मात्रा में नहीं चिपके अन्यथा फोटो उचित रूप में नहीं आवेगा। इस विषय में एल० सीं० निकॉल्स का कार्य महत्वपूर्ण था। निकॉल्स अपने कार्य में निम्न निष्कर्ष पर पहुँचा :—

1. अंगुली-छाप पाउडर का प्रयोग अधिक मात्रा पर निर्भर नहीं करता।
2. रवेदार पाउडर से महीन (बरीक) पिसा पाउडर उत्तम है।
3. अंगुली-छाप पाउडर में चूर्ण समान गुण होना आवश्यक है।

4. साधारणतया यह पाया गया है कि काले रंग के पाउडर से भूरे रंग का पाउडर अधिक चिपकता है। काँच, चाकू तथा चांदी जैसे पदार्थ पर भूरे रंग का पाउडर ही प्रयोग करना उचित होगा। प्रत्येग रंग के पाउडर की अपनी विशेषता होती है जो स्थान-स्थान पर, वस्तु-वस्तु पर निर्भर करती है। अंगुली-छाप लेने का तात्पर्य यह है कि हाथ का उभार व रेखाओं की किनारी जीवन-पर्यन्त एक व्यक्ति की अद्वितीय तथा स्थायी रहती है। जिनका फोटो लेना अनिवार्य है वे अंगुली-छाप मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं :—

1. गुप्त निशान :—आँखो से दिखाई न देने वाले।
2. सांचे में ढले निशान :—रक्त से रंजित अंगुलियों द्वारा छोड़े गये निशान।
3. उठे हुए निशान :—हाथ की अंगुलियों द्वारा उठाई गई अथवा चिपकी हुई धूल से बने नमूने।
4. स्याहीयुक्त निशान :—लेखा हेतु स्याही द्वारा लिया गया कार्ड पर निशान।

फोटोग्राफी द्वारा घटनास्थल पर मिले अंगुली-छाप का संतोषजनक अध्ययन बहुत कुछ पाउडर के चयन पर निर्भर करता है कि निशान को भली-भांति किस प्रकार व्यक्त किया जाए। जबकि अन्य कार्यों के लिये उचित फिल्म तथा प्रकाश की आवश्यकता है। नीचे कुछ पाउडर सूत्र लिखे गये हैं जिनको भिन्न-भिन्न दशाओं में प्रयोग करके गुणों का अध्ययन करना चाहिये कि इन पर तापक्रम, आर्द्रता तथा वायुमंडल का क्या प्रभाव पड़ता है :—

अंगुली-छाप पाउडर-सूत्र

1.	लैम्प ब्लैक	70 भाग
	ग्रेफाइट	20 भाग
	अकेशिया चूर्ण	10 भाग
2.	चारकोल	74 भाग
	अल्यूमीनियम (बारीक)	24 भाग
	ड्रेगन् रक्त	2 भाग
3.	लेड ऑक्साइड (ब्राउन)	60 भाग
	चारकोल (हड्डी)	30 भाग
	फुलर मिट्टी	1 भाग
	अल्यूमीनियम	1 भाग
4.	अल्यूमीनियम	75 भाग
	चारकोल	20 भाग
	ड्रेगन रक्त	5 भाग

5. लिकोपोडियम	90 भाग
साउडन रेड III	10 भाग
6. लेड ऑक्साइड (नारंगी)	90 भाग
अकेशिया	8 भाग
अल्युमीनियम	2 भाग
7. मर्करी और चॉक	85 भाग
अल्यूमीनियम	15 भाग
8. फैरिक ऑक्साइड	85 भाग
पोटेशियम एसिड टारटरेट	10 भाग
अल्यूमीनियम स्टीयरेट	3 भाग
टैल्क	2 भाग
9. सफेद—जिंक ऑकसाइड	
10. भूरा—जिंक ऑकसाइड	98% भार
अल्यूमीनियम लाइनिंग पाउडर	2% भार
11. लाल—आयरन ऑकसाइड	99·75% भार
अल्यूमीनियम लाइनिंग पाउडर	0·25 भार
12. सुनहरी—लैड क्रोमेट (लैमन पीला)	65% भार
गहरा गोल्ड लाइनिंग पाउडर	35% भार
13. काला—मैंग्नीज डाई ऑक्साइड	85% भार
ग्रेफाइट (चूर्ण)	14.75% भार
अल्यूमीनियम लाइनिंग पाउडर	0·25% भार

14. प्रतिदीप्त—ऐन्थासीन, बारीक पिसा चूर्ण। भिन्न-भिन्न रंगों के लिए तकनीकी एवं रासायनिक रूप से शुद्ध दोनों का प्रयोग।

उपरोक्त सभी पाउडरों को स्वच्छ तथा शुष्क बोतल में भरकर रखना चाहिये।

अंगुली-छाप प्रायः सभी वस्तुओं पर रह जाती है। यह दूसरी बात है कि वे किन्हीं पदार्थों पर कम और किन्हीं पर अधिक दिखाई देती है। घटनास्थल पर उपस्थित सभी वस्तुओं, जैसे काँच, चीनी तथा धातु के बर्तन, दीवार, फ़र्श, लकड़ी का सामान तथा अन्य ऐसा सामान जो कि घर, दफ्तर तथा दुकान में उपयोगी हों, का परीक्षण करना चाहिये। गुप्त चित्र की तलाश करने के लिये फ्लैश प्रकाश का प्रयोग करना चाहिये। जिस वस्तु
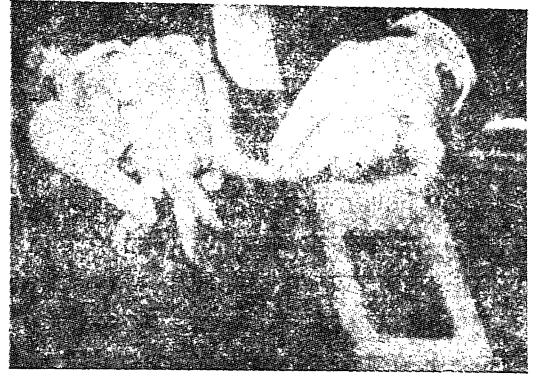
स्याही पैड पर अंगुली-छाप लेने का सही ढंग
चित्र 1(अ)
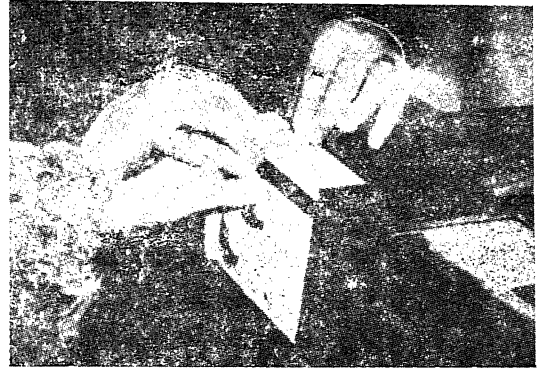
अंगुली-छाप—कागज पर करने का ढंग
चित्र 1(ब)

का निरीक्षण करना हो उस पर प्रकाश की किरणें तिरछी डालनी चाहिये ताकि अंगुली-छाप दृष्टि गोचर हो जावे और पाउडर से धूलिकरण किया जा सके। तत्पश्चात इसका फोटोग्राफ लिया जा सकता है। गुप्त चित्र को व्यक्त करने के लिये रासायनिक पदार्थ भी प्रयोग किये जाते हैं जो कि पदार्थ पर डालने से क्रिया करते हैं और परिणामस्वरूप अंगुली-छाप दिखाई दे जाता है। जैसा कि

पहले बताया जा चुका है कि अंगुली-छाप किसी वस्तु पर हाथ रखने से आ जाता है और इसका कारण हाथ में उत्पन्न पसीना अथवा लगाया गया तेल है। पसीने में 98% पानी और शेष पोटेशियम क्लोराइड, सोडियम क्लोराइड, सल्फेट, फॉसफेट, कार्बोनेट, लैक्टिक एसिड, वसा-अम्ल, ग्लूकोज तथा यूरिया होते हैं जो रासायनिक पदार्थ डालने से क्रिया करते हैं। इन रासायनिक पदार्थों में आयोडीन, सिल्वर नाइट्रेट, ऑसमियम टेट्रा ऑक्साइड प्रधान हैं। जहाँ पर सतह बहुरंगी हो वहाँ पर साधारण पाउडर से अंगुली-छाप का फोटो तैयार नहीं हो सकता। अतः ऐसी परिस्थिति में ऐन्थ्रासीन पाउडर से उस छाप को धूलिकरण किया जाता है और अंधेरे में पराबैंगनी प्रकाश से पाउडर के प्रतिदीप्त गुणों के कारण फोटो लिया जा सकता है।
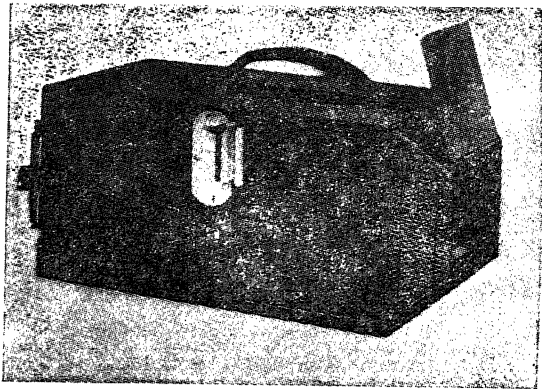
अंगुली-छाप कैमरा
चित्र 2

रंगीन सतह पर अंगुली-छाप का फोटो लेने के लिए फिल्टर का प्रयोग किया जा सकता है। जिसपर अंगुली के निशान दोनों ओर दिखाई दें, ऐसे शीशे पर फोटो लेना कठिन है। किन्तु सोडरमन तथा ओ-कोनैल की विधि के अनुसार फोटो लेना सरल हो गया है। उन्होंने बतलाया कि ऐसे समय में काँच को एक ओर से काला रंग दो और श्वेत पाउडर डालकर फोटो लो। अन्यथा एक तरफ से सफेद रंगकर काला पाउडर डालने से फ़ोटो लिया जा सकता है। चेहरा देखने वाले शीशे पर अंगुली-छाप का फोटो लेना कठिन होता है। कारण कि निशान का प्रतिबिम्ब भी दिखाई देता है। अतः ऐसी स्थिति में शीशे के पीछे लगे सिल्वर परत को खुरच कर उतारने के पश्चात् सोडरमन तथा ओ-कोनैल विधि द्वारा फोटो लेना सरल हो जाता है।

ऐसे स्थान जहाँ पर चिकनाई अधिक हो, (जैसे रसोई की खिड़कियाँ तथा दीवारें आदि) मर्करी एवं चाक पाउडर छिड़ककर अंगुली छाप का चित्र लिया जा सकता है किन्तु चिकनाई की अधिकता में आयोडीन का धुआँ अधिक प्रभावशाली पाया गया है। मकान के दरवाजे, लकड़ी की अलमारियाँ तथा अन्य लकड़ी के सामान पर सिल्वर नाइट्रेट का घोल पिचकारी से छिड़ककर घटनास्थल पर ही फोटो लिये जा सकते हैं। किन्तु यदि कोई वस्तु भार में हल्की है और सुगमता से उठाई जा सकती है, (जैसे चाकू के हत्थे, लाठी का टुकड़ा आदि) तो प्रयोगशाला में ही लाकर परीक्षण करना चाहिये। सिल्वर नाइट्रेट से कपड़ों पर लगे अंगुलियों के निशानों को भी व्यक्त किया जा सकता है। तौलिया जैसा खुरदरा कपड़ा प्राप्त होने पर अंगुलियों के निशान स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देंगे। इस प्रकार घटनास्थल से प्राप्त कपड़ा पहले सिल्वर नाइट्रेट के घोल में डुबो दिया जाता है और बाद में सूर्य के प्रकाश में कुछ समय रखने पर अंगुली-छाप का फोटो ले लिया जाता है। यदि कपड़े पर ऐसा कोई चिन्ह नहीं है तो कपड़े को पानी में भली-भाँति धोने के बाद अमोनियम हाइड्रोसल्फाइड के हल्के घोल में डाल देते हैं। इस विधि को दो बार करने के पश्चात् सूर्य प्रकाश में सुखा देते हैं। चमड़े तथा नाखून आदि पर कॉपर पाउडर द्वारा अंगुली-छाप व्यक्त कर लेते हैं। फलों आदि पर लेड कार्बोनेट का पाउडर डालने से अंगुली-छाप का ज्ञान हो जाता है। मोम, पैराफीन, मक्खन, चर्बी तथा साबुन आदि पर अंगुली-छाप का फोटो तिरछी प्रकाश की किरणें डालने से व्यक्त किया जा सकता है। घटनास्थल पर काँच के गिलास तथा बोतल आदि मिलने पर प्रयोगशाला में

लाकर उनमें रंगीन पानी डाल देना चाहिये ताकि अंगुली-छाप भली-भाँति दिखाई दे। तत्पश्चात् अल्यूमीनियम अथवा श्वेत पाउडर छिड़ककर चिन्ह व्यक्त किया जा सकता है जिसका फोटो लेना सरल है।
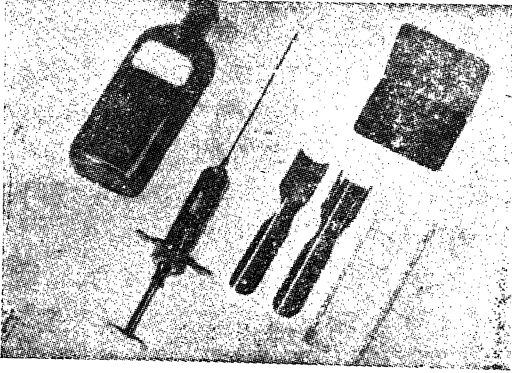
शव के अंगुली-छाप लेने में उपयोगी-यंत्र
चित्र 3

कभी-कभी यह आवश्यक होता है कि पहिचान मात्र के लिये मृत शरीर के अंगुली-छाप लिये जाँये। यदि शव (लाश) ऐसा हो जिसके हाथ ठीक अवस्था में पाये जावें और अंगुली-छाप लेना कठिन नहीं है। किन्तु सदैव ऐसी दशा या स्थिति नहीं-होती। सर्वप्रथम स्याही के प्रयोग से अंगुली-छाप लेने का प्रयास किया जावे। यदि इस प्रयोग में असफलता मिलती है तो रेडियोग्राफी विधि का सहारा लेना उत्तम होगा। इस विधि के लिये पिघले हुए सफेद पेट्रोलियम जैली में लाल लैड ऑक्साइड मिलाया जाता है। जब यह मिश्रण ठोस अवस्था में आ जाय तो इसको त्वचा पर तेजी से रगड़ें। फालतू मिश्रण को ध्यानपूर्वक हटाकर अंगुली को एक खोल (कैसेट) में रखकर रेडियोग्राफ तैयार कर लेना चाहिये।

मृत शरीर की अंगुलियों को एल्कोहल, गर्मपानी, ऐंटिसेप्टिक साबुन के घोल अथवा डटॉल आदि द्रव से साफ़ कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् हवा में पूर्णतया सुखा लेना चाहिये। अंगुली के जोड़ों को घुमाते हुए
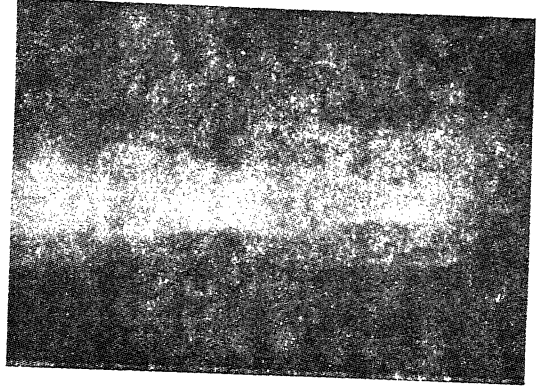
अंगुली का रेडियोग्राफ
चित्र 4

मुलायम कर लें और एक स्याही लगी वक्र चम्मच में दबाने के पश्चात एक दूसरी ऐसी ही वक्र चम्मच में दबायें जिसमें कि कागज लगा हो। यदि अंगुलियाँ इतनी सख्त हो गई हों अथवा सिकुड़ गई हों तो कलाई से हाथ काट लेना उचित होगा। इस प्रकार हाथ काटने से अंगुलियाँ और अधिक सिकुड़ जायेंगी। ऐसी अवस्था में अंगुली के ऊपरी भाग अथवा अंगुली के प्रथम जोड़ के नीचे पिघले पैराफीन, हवा, गर्म पानी, वैसलीन तथा ग्लीसरीन आदि का इंजैक्शन देना चाहिये ताकि अंगुली की त्वचा ऊपर उभर जावे। जब अंगुली पर्याप्त उभर जावे तो किसी भी उपरोक्त विधि से अंगुली-छाप लेना चाहिये।

यदि मृत शरीर ऐसी दशा में हो कि अगुली-छाप लेना कठिन है तो त्वचा को अंगुली से हटाकर फॉर्मल्डीहाइड में डुबो कर स्याही पैड पर दबाकर कागज पर छाप लेना चाहिये। त्वचा हटाने के लिये तो कभी कभी शरीर के उस भाग को उबालना भी अनिवार्य हो जाता है। अंत में जब सब साधनों द्वारा विफलता मिलती है तो अंगुली की सतह में लैड कार्बोनेट, बेरियम सल्फेट तथा बिस्मथ बाई कार्बोनेट आदि का मुलम्मा चढ़ाकर रेडियोग्राफ
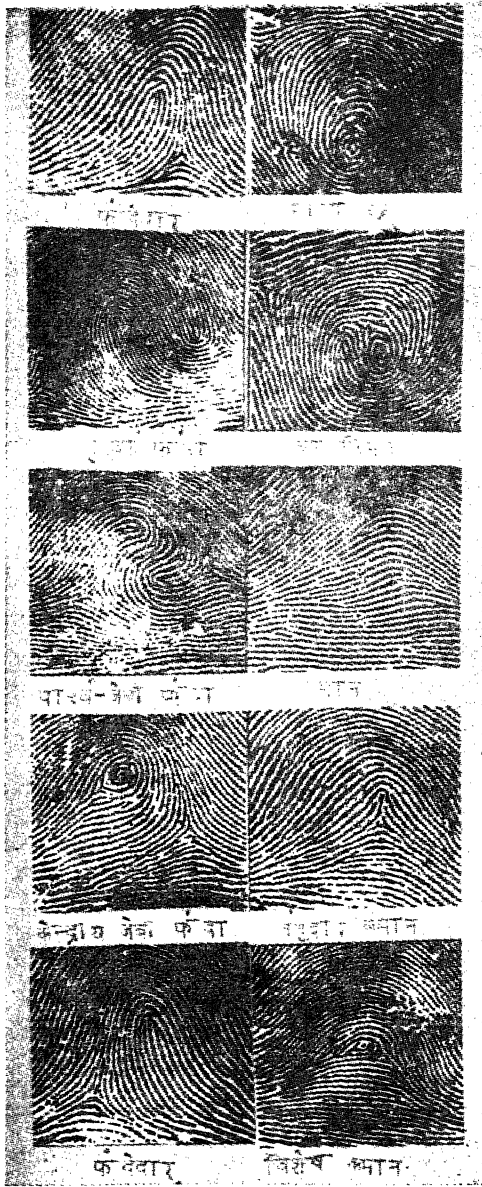
अंगुली-छाप के कुछ मूल डिजाइन
चित्र 5

द्वारा फोटो लेना ही श्रेयस्कर होगा। अंगुली-छाप की भांति पैरों के निशानों का भी अध्ययन किया जाता है। अंगुली-छाप का फोटो लेने में फिल्टर का भी बहुत महत्व है।

आजकल अंगुली-छाप लेने की एक अद्‌भुत विधि ज्ञात की गई है। यांत्रिक बनावट, शक्ल तथा साइज में बहुत कुछ महिलाओं के उपयोग में आने वाली "लिपस्टिक" से मिलती-जुलती अंगुली-छाप छड़ी का प्रयोग किया जाने लगा है। इस छड़ी द्वारा अंगुली पर निशान डालकर कागज पर विधिवत् छाप ले ली जाती है।

ऐसे बहुत से व्यक्ति होते हैं जो अपना भेष बदलकर अपराध करते हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में अवसर पड़ने पर लघुकोणीय लैंस लगाकर चलचित्र लेना चाहिये जिससे उसके चलने, हाथ हिलने, सिर हिलने आदि से पहचाना जा सके।

• •

गणितीय प्रेरण

□ ओम प्रकाश दूबे

यदि कोई पूछता है कि सिद्ध करो (क − ख), $\left(\text{क}^{\text{य}} - \text{ख}^{\text{य}}\right)$ का एक गुणनखण्ड है। इसके उत्तर में प्रायः लोग कहते हैं, यदि य=1 के लिये उपरोक्त कथन सत्य है और य=2 के लिये भी उपरोक्त कथन सत्य है, तथा य=3 के लिये (क − ख), $(\text{क}^3 - \text{ख}^3)$ का एक गुणनखण्ड है, इसी प्रकार किसी भी पूर्णांक संख्या के लिये उपरोक्त कथन सिद्ध किया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार का उत्तर सही नहीं है। इसका कारण निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा। उदाहरण 1 :— यदि य का मान 1 से 1,000 तक लिया जाय तो 1+2+3+4+..........+य $= \frac{\text{य}(\text{य}+1)}{2} + (\text{य} - 1)(\text{य} - 2) \ldots (\text{य} - 1000$ सही है।

किन्तु यदि य=1,001 ले लिया जाय तो दिया हुआ परिणाम सही नहीं होगा। इससे यह सिद्ध होता है कि इस प्रकार के परिणाम केवल पूर्व निर्धारित य के मान के लिये सही है न कि य के सभी मानों के लिये। उदाहरण 2 :— यदि $\text{य}^2 - \text{य} + 41$ दिया हुआ है तो सिद्ध करो कि $\text{य}^2 - \text{य}+41$, य के सभी मानो के लिये एक अभाज्य* संख्या है।

इस कथन की सत्यता की जांच करने के लिए हम य का भिन्न-भिन्न मान लेते हैं। यदि य=1 लिया जाय तो $\text{य}^2 - \text{य}+41=1^2 - 1+41$ एक अभाज्य संख्या है।

य=2 के लिये $\text{य}^2 - \text{य} + 41=2^2 - 2+41 = 43$ भी एक अभाज्य संख्या है।

इसी प्रकार पर देखा जा सकता है कि य=1, 2, 3, . . .40 के लिये $\text{य}^2 - \text{य} + 41$ एक अभाज्य संख्या है। किन्तु यदि यह कहा जाय कि उपरोक्त कथन य के सभी मानों के लिये सत्य है तो गलत होगा, क्योंकि य=41 के लिये $\text{य}^2 - \text{य}+41=41^2$ अभाज्य संख्या नहीं है।

बहुत से परिणामों की जांच करने के लिये यह विधि कठिन भी है।

उदाहरणार्थ "समस्त धनात्मक पूर्णांक य के लिये $\frac{\text{य}^5}{5} + \frac{\text{य}^3}{3} + \frac{7\text{य}}{15}$ एक पूर्णांक है" यह कथन सत्य है। किन्तु य का बड़ा मान लेने पर, जैसे य=3509895, उपरोक्त कथन की सत्यता सरलता से नहीं सिद्ध की जा सकती है।

इस प्रकार के परिणामों को सिद्ध करने के लिये सबसे अधिक सदुपयोगी एवं सरल विधि का नाम गणितीय प्रेरण है। अब सबसे पहले गणितीय प्रेरण का प्रथम सिद्धान्त दे रहा हूँ।

कल्पना किया प्रत्येक प्राकृतिक संख्या य के लिये $\text{च}_{\text{य}}$ एक परिणाम है, तो

(1) च_1 सत्य है।

(2) यदि प्राकृतिक संख्या र के लिये $\text{च}_{\text{र}}$ सत्य है तो $\text{च}_{\text{र}+1}$ भी सत्य है। अन्ततोगत्वा कहा जा सकता है कि परिणाम $\text{च}_{\text{य}}$ सभी प्राकृतिक य के लिये सत्य होगा।

अब उपरोक्त प्रमेय का स्पष्टीकरण करूँगा।

मान लिया निम्नलिखित परिणाम सिद्ध करना है।

*अभाज्य—वह संख्या है जो केवल अपने तथा एक से विभाजित होती है।

सिद्ध करो कि प्रत्येक य के लिये $1+2+3+\ldots\ldots+\text{य} = \frac{\text{य}(\text{य}+1)}{2}$

माना, प्रत्येक य के लिये $\text{च}_{\text{य}}$, $1+2+3+\ldots+\text{य} = \frac{\text{य}(\text{य}+1)}{2}$ को प्रदर्शित करता है। अतः च_1 के लिये

$$1 = \frac{1(1+1)}{2} = 1$$

और च_2 के लिये

$$1+2 = \frac{2(2+1)}{2} = 3,$$ —इत्यादि इत्यादि।

प्रमेयानुसार, यदि च_1 सत्य है, यानी $1 = \frac{1(1+1)}{2}$

तथा $1+2+3+\text{———}+\text{र} = \frac{\text{र}(\text{र}+1)}{2}$

तो माना जा सकता है कि

$$1+2+3+\text{———}(\text{र}+1) = (\text{र}+1)\frac{(\text{र}+2)}{2}$$

अतएव प्रत्येक य के लिये हम कह सकते हैं कि

$$1+2+3+\text{————}+\text{य} = \text{य}\frac{(\text{य}+1)}{2}$$

गणित जानने वालों के लिये गणितीय प्रेरण एक बहुत शक्तिशाली हथियार है, जिसकी सहायता से प्राकृतिक संख्या से सम्बन्धित अनेक परिणामों को तथा अनेकों दूसरे प्रकार के परिणामों को सिद्ध किया जा सकता है।

उदहारणार्थ, यदि क एक वास्तविक संख्या है, तो हम $\text{क}^1 = \text{क}$

तथा $\text{क}^{\text{र}+1} = (\text{क}^{\text{र}})\text{क}$, जहाँ र एक धनात्मक पूर्णांक है, को लिख सकते हैं।

इसके अनुसार $\text{क}^{\text{य}}$, प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक य के लिये, सिद्ध किया जा सकता है। मान लिया कुछ धनात्मक पूर्णांक के लिये $\text{क}^{\text{य}}$ को नहीं सिद्ध किया जा सकता। तो धनात्मक पूर्णांकों का समुच्चय म, जिसके लिये $\text{क}^{\text{य}}$ की परिभाषा नहीं की गयी, अरिक्त होगा। माना ट, म में एक सबसे छोटा पूर्णांक है, तो ट$=1$, क्योंकि क की परिभाषा की जा चुकी है। अतः $(\text{ट}-1)$ एक धनात्मक पूर्णांक होगा। क्योंकि $(\text{ट}-1)$, ट से छोटा है और $\text{क}^{\text{ट}-1}$ सत्य है।

अतः प्रेरित परिकल्पना द्वारा,

$$\text{क}^{(\text{ट}-1)+1} = (\text{क}^{\text{ट}-1})\text{क}$$

और $\text{क}^{\text{ट}} = (\text{क}^{\text{ट}-1})\text{क}$

अतएव $\text{क}^{\text{ट}}$ की परिभाषा की जा सकती है। इससे विरोधाभास मिलता है, क्योंकि ट, म में नहीं है।

परिणामतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक य के लिये $\text{क}^{\text{य}}$ सत्य है।

इसी प्रकार से गणितीय प्रेरण के और भी अनेक उपयोग हैं।

उदाहरणार्थ-सिद्ध करना कि $\frac{\text{य}^5}{5}+\frac{\text{य}^3}{3}+\frac{7\text{य}}{15}$, प्रत्येक य के लिये, पूर्णांक है।

य$=1$, के लिये,

$$\frac{\text{य}^5}{5}+\frac{\text{य}^3}{3}+\frac{7\text{य}}{15} = \frac{1}{5}+\frac{1}{3}+\frac{7}{15} = 1$$

अतः य$=1$ के लिये परिणाम सत्य है।

मानलिया य$=$र के लिये भी सत्य है।

तो हम आशा करते हैं कि

$\frac{\text{र}^5}{5}+\frac{\text{र}^3}{3}+\frac{7\text{र}}{15}$ एक पूर्णांक होगा।

इसके सरल करने पर,

$$\frac{(\text{र}+1)^5}{5}+\frac{(\text{र}+1)^3}{3}+\frac{7(\text{र}+1)}{15} = \left(\frac{\text{र}^5}{5}+\frac{\text{र}^3}{3}+\frac{7\text{र}}{15}\right) + (\text{र}^4+2\text{र}^3+3\text{र}^2+2\text{र}+1)$$

किन्तु $र^5+2र^3+3र^2+2+1$ एक पूर्णांक है तथा

$$\frac{र^5}{5}+\frac{र^3}{3}+\frac{7र}{5}$$ भी एक पूर्णांक है।

क्योंकि हमने मान लिया है।

इसलिये

$$\frac{(र+1)^5}{5}+\frac{(र+1)^3}{3}+\frac{7(र+1)}{15}$$ एक पूर्णांक होगा।

अतः $य=र+1$ के लिये परिणाम सत्य है। और गणितीय प्रेरण की सहायता से उपपत्ति पूरा हो गया।

किन्तु गणितीय प्रेरण का प्रयोग करते सयम विशेष ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि गलत प्रयोग से बहुत भद्दा परिणाम मिल सकता हैं।

उदाहरणार्थ—यदि य एक धनात्मक पूर्णांक है और म एक समुच्चय है जिसमें केवल वास्तविक संख्यायें हीं हैं, तो म की सभी संख्याएँ बाराबर होनी चाहिये। यह एक गलत प्रमेय है।

$य=1$ के लिये प्रमेय स्पष्टतः सत्य है।

मानलिया $य=र$ के लिये भी प्रमेय सत्य है तो $य=र+1$ के लिये प्रमेय की सत्यता देखनी चाहिये।

मानलिया च एक समुच्चय है जिममें केवल $(र+1)$ वास्तविक संख्यायें, जैसे—$क_1$, $क_2$, $क_र$, ———, $क_2$, हैं।

प्रेरित परिकल्पना द्वारा

$क_1=क_2=क_3=————=क_र$ होना चाहिये। किन्तु यदि च से $क_1$ निकाल दें तो केवल र वास्तविक संख्यायें, जैसे $क_2$, $क_3$, . . , $क_र+1$, मिलती हैं और प्रेरित परिकल्पना द्वारा

$क_2=क_3=————=क_र+1$ होगा।

अतः प्रमेय सिद्ध हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि गणितीय प्रेरण के गलत प्रयोग से गलत परिणाम प्राप्त हो जाते हैं।

गणितीय प्रेरण का दूसरा सिद्धान्त बिना उपपत्ति के लिख दे रहा हूँ। मानलिया प्रत्येक पूर्णांक य के लिये $च_य$ एक प्रमेय है। जब च सत्य है और माना कि प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक र के लिये तथा प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक म के लिये, जो र से छोटा है, $च_म$ सत्य है तो $च_र$ भी सत्य है। अतएव प्रमेय $च_य$ सत्य है।

● ●

हमारी बदलती आस्थायें—I

□ सम्पादक

जो विद्वान अंग्रेजी से हिन्दी के अनुवाद—कार्य में संलग्न हैं उन्हें यह भली-भांति ज्ञात है कि पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में हमारी मान्यतायें और आस्थायें किस प्रकार बदलती रही हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले से लेकर अब तक की दीर्घ अवधि में विचारकों एवं मनीषियों ने विभिन्न वैज्ञानिक शब्दों के लिये भिन्न भिन्न हिन्दी समानार्थी शब्द प्रदान किये हैं। इस प्रसंग में कुछ शब्दों का उल्लेख आवश्यक है। उदाहरणार्थ Temperature शब्द। इसके लिये 'तापक्रम' शब्द प्रचलित था। बाद में 'ताप' शब्द स्वीकार हुआ और अब यही सर्वमान्य है। इसी प्रकार Crystal शब्द है। पहले इसके लिये 'रवा' फिर मणिभ, स्फटिक, क्रैलास तथा अन्त में क्रिस्टल शब्द स्वीकार हुये। आजकल क्रिस्टल शब्द प्रचलित है।

जो लोग प्रारम्भ में विज्ञान की हिन्दी शब्दावली से सम्बद्ध थे और फिर जिन्होंने उसके विकास की गतिविधियों से अपने को दूर कर लिया वे जब अनुवाद करते हैं या मूल रूप से कुछ लिखते हैं तो अपने समय के शब्दों को व्यवहार में लाते हैं और नई पीढ़ी के उपहास तथा छिद्रान्वेषण के पात्र बन जाते हैं। इसमें दोष किसका है? ज्ञान निरन्तर परिवर्तनशील एवं प्रगतिशील है। उससे अपना सम्पर्क बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि नूतनतम पत्र-पत्रिकाओं, कोशों आदि का अध्ययन किया जाय। वस्तुतः यही वैज्ञानिक दृष्टि है किन्तु कुछ लोग इससे कतराते हैं और प्राचीन परम्परा का निर्वाह करना और कराना चाहते हैं।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित लगभग एक दर्जन शब्दावलियाँ आज वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद के लिये मूलभूत सामग्री बन चुकी हैं। यदि कोई यह चाहे कि उनकी अवहेलना करते हुये वह एकतानता ला सकेगा तो कठिन है। जो लोग आज भी डा० रघुबीर के कोश या अन्य अंग्रेजी-हिन्दी के कोशों के बल पर अनुवाद करके अपना योग देना चाहते हैं तो उनका श्रम निरर्थक सिद्ध होगा। किन्तु यह भी आवश्यक नहीं प्रतीत होता कि अनूदक सदैव भारत सरकार द्वारा प्रदत्त शब्दावलियों का अक्षरशः पालन करे।

यहाँ हम कुछ ऐसे शब्दों का उल्लेख कर रहे हैं जो पारिभाषिक शब्दावलियों में जिस रूप में हैं वे उस रूप में अनूदकों तथा लेखकों को मान्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ—ऐसे तीन शब्द हैं—ऐल्कोहल, फ्लोरीन, अमोनिया। इनके लिये शब्दावली में क्रमशः ऐल्कोहाल, फ्लुओरीन तथा एमोनिया रूप मिलते हैं। जब हम इन शब्दों का बारम्बार प्रयोग करते हैं तो उच्चारण तथा लेखन-सौन्दर्य की दृष्टि से शब्दावली में दिये गये रूपों का अतिक्रमण करके उन्हें सहज रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

तो क्या ये रूप गलत नहीं हो गये? उत्तर होगा—नहीं। सदैव बँधी लीक पर नहीं चला जा सकता। उपर्युक्त तीनों शब्दों के सम्बन्ध में इसी दृष्टि से विचार करना चाहिये। वे अधिक सहज लगते हैं।

पाठकों को ऐसे अनेक शब्द मिले होंगे जिनके सम्बन्ध में उनकी अपनी विचारधारायें हो सकती हैं। यह उपयुक्त समय है अब उन पर भलीभाँति विचार-विमर्श किया जा सकता है। अतः पाठकगण अपने विचार सम्पादक तक प्रेषित कर सकते हैं जिन्हें पत्रिका में उचित स्थान दिया जावेगा।

(क्रमशः)

बाढ़ की खेती

पानी फसल का जीवन भी है और जानलेवा भी। अक्सर पूरबी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कुछ क्षेत्रों में इतना पानी भर जाता है कि जिन क्षेत्रों से खाने के लिये अन्न मिलता है वहां बरसात भर पानी ही पानी लहराता रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में बाढ़ के कारण नीची भूमि में बने मकानात या तो ढह जाते हैं या रहने के अयोग्य हो जाते हैं। उन क्षेत्रों को ऊँचा करने की योजना पिछले दशक में चलायी भी गयी थी लेकिन जैसा कि तमाम योजनाओं का हश्र होता है, उस योजना के बावजूद, बाढ़ की खबरों से गांव की विपन्नता वैसे ही अखबारों में उजागर होती रही जैसे पहले होती थी। रहने के लिये अगर अस्थायी तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की कोई दूसरी व्यवस्था हो भी गई, तो भी उनके रहने-सहने और गुजर बसर करने के लिये अनाज नहीं मिल पाता। उनके खेतों में बरसात भर बेकाबू पानी रहने के कारण, उस का प्रभाव आगामी फसलों पर भी पड़ता है। बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों में गरीबी एक बार घर कर गई तो फिर निकलकर जाने का नाम नहीं लेती।

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में अनाज की पैदावार में बाधा न पड़े इसके लिये खोजबीन बहुत दिनों से जारी है। धान का पौधा बरसात को झेलने के लिये विख्यात है। यह प्रकृति से ही अर्धजलीय पौधा है। यदि इसके लिये उपयुक्त किस्में चुनी जाएं तो गहरे पानी में या बाढ़ वाले इलाके में धान जीवित रहता है। धान की इन किस्मों की एक विशेषता यह होती है कि ये पानी के बढ़ने के साथ बराबर बढ़ते रहते हैं और दूसरे यह कि पानी की धारा की तेजी को भी झेलने की शक्ति रखते हैं। एक किस्म चकिया 59 की सिफारिश बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लिए की गई थी जिसकी बुवाई नम खेतों में मई मास में ही कर देनी चाहिये। वर्षा होते ही ये बीज उग आते हैं और बाढ़ आने तक काफ़ी बढ़ जाते हैं। इसके बोते समय बीज की मात्रा कुछ अधिक रखनी चाहिए—दो कारणों से—एक तो यह कि कुछ बीज गर्मी में बेकार हो जाते हैं, कुछ हवा में उड़ जाते हैं और कुछ पौधे भी धारा के साथ बहाव में बह जाते हैं। बीज बोते समय यदि इन बातों का ध्यान कर लिया गया है तो बीज को गहरे में बोया जायेगा। इससे पौधे मजबूत रहेंगे।

पटसन या जूट—रेशेवाली फसलों में—बाढ़ वाले इलाके के लिए बड़ी सफल फसल मानी गयी है। इसमें मेहनत कम लगती है और पैसा भी अच्छा देती है। अगर खरीफ़ के मौसम में धान के चारों ओर जूट की बुवाई कर दी गयी होती है तो बाढ़ की तेज धारा का प्रभाव धान के पौधों पर अपेक्षाकृत कम हो जाता है। रबी के खेत कटने के बाद जूट की बुवाई फौरन ही कर देने से इस की अच्छी फसल होती है। जे० आर० सी० 321, 212, और 5854 इस की अच्छी और उन्नत किस्में हैं।

गन्ने की खेती को भी बाढ़ का पानी नुकसान पहुँचा सकता है। लेकिन कुछ किस्में ऐसी हैं जैसे बी० ओ० 3, 17, 32 और सी० ओ० 3561। अगर ये किस्में कुछ दिनों तक पानी में पूरी तरह से डूबी भी रहती हैं तो उससे विशेष हानि नहीं होती। गन्ना बहुत देर तक बाढ़ की मार को नहीं झेल सकता। उसके लिए पानी घट जाने पर ही उसकी बुवाई करना उचित रहता है।

बाढ़ का पानी जहां निश्चित समय तक रहता हो, वहां के लिये सिंघाड़ा और ढैंचा बहुत अच्छी फसल समझी गई हैं। सिंघाड़ा का बाजार अच्छा है। हरा सिंघाड़ा और सुखाने के बाद उस का आटा भी बाजार में अच्छे दामों पर बिकता है। जिन में साल के पांच महीने पानी रहता हो वहां सिंघाड़े के बेल रोप देना बहुत लाभदायक होता है। इन जगहों में अक्सर जलकुंभी या सिवार बहुत पैदा हो जाती है। जलकुंभी से कंपोस्ट खाद तैयार करने में सहायता मिलती है। उसे निकाल कर फेंकने में जितना परिश्रम लगता है वह सारा खेत के काम आ जाता हैं। ढ़ैंचा बहुत क्षमता वाला पौधा होता है। इस में तेज धारा में ठहरने की भी शक्ति है। ढैंचा का प्रयोग हरी खाद के लिए विशेष रूप से किया जाता है।

बाढ़ के दिनों में फसल लेने के लिये कुछ पहले से ही तैयारी करनी पड़ती है। होता यह है कि किसान बाढ़ को दैवी विपत्ति मानकर उसे अपने आर्थिक जीवन का अंश बना लेता है और पानी के द्वारा लाई गई उपजाऊ मिट्टी को ही अपने भाग्य का देय मान कर चुप रह जाता है। इसीलिए बहुधा पानी हट जाने के बाद कछार वाले क्षेत्र में वह अनाज छींट कर भी अपने लिए कुछ न कुछ उगा लेता है। कठिनाई तब होती है जब इन खेतों में नवम्बर-दिसम्बर तक पानी भरा रहता है और फसलों की रबी की बुवाई भी पिछड़ जाती है। राजकीय कृषि बाढ़ अनुसंधान केन्द्र घघराघाट द्वारा किये गये प्रयोगों से यह पता चला है कि कुछ फसलें ऐसी है जिन्हें यदि बाढ़ वाले इलाकों में रबी में बोया जाये तो वे दुगनी से तिगुनी उपज तक दे सकती हैं। के० 70 एक ऐसी ही फसल मानी गयी है जो यदि 15 जनवरी तक भी पानी हट जाने के बाद बोई जाये तो गेहूँ या दूसरी फसलों से अच्छी उपज दे सकती है। यदि दलहनी फसल लेना चाहें तो मसूर की फसल सब से अच्छी हो सकती है। दिसम्बर के अंत तक मसूर की बुवाई यदि कर दी जाये तो चने या मटर से दुगनी उपज देती है और बाजार में अच्छा पैसा मिल सकता है। मसूर की उन्नत किस्म टाइप 6 अच्छी रहती है।

देर से बोई जाने वाली फसलों में गेहूँ की भी कई किस्में बराबर निकाली जा रही हैं। एक तो बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लाभ के लिए दूसरे खरीफ की फसल से देर में खाली होने वाले खेतों के लिए। एन० पी० 430 गेहूँ की एक ऐसी किस्म है जो बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लिए अच्छी साबित हुई है।

● ●

विज्ञान-वार्ता

चन्द्रतल पर स्वचालित गाड़ी द्वारा अन्वेषण

17 नवम्बर को सोवियत वैज्ञानिकों ने मानव रहित चन्द्रयान लूना-17 द्वारा आठ पहियों की एक छोटी सी सफेद स्वचालित गाड़ी लूनोखोड-1 चन्द्रतल पर उतार कर चन्द्रमा की खोज में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। यह गाड़ी जिसकी पहियों में सायकिल जैसी तीलियाँ लगी हैं, यान के उतरने के स्थान से 20 मीटर दूर चली और वहाँ से अत्यत स्पष्ट चित्र पृथ्वी को भेजने लगी। टेलीविजन द्वारा गाड़ी की स्थिति तथा उसके आस पास की तली के सम्बन्ध में प्राप्त सूचना के आधार पर इस गाड़ी का पृथ्वी पर से नियंत्रण तथा संचालन किया गया। वैज्ञानिक उपकरणों, रेडियो संचार यंत्रों तथा टेलीविजन तंत्रों के अतिरिक्त फ्रांसीसी वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किया गया लेसर प्रवर्तक भी इस गाड़ी में लगा है। इन यंत्रों की सहायता से जो सूचना पृथ्वी पर भेजी जावेगी वह अत्यन्त वैज्ञानिक महत्व की होगी। सोवियत वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रकार के अन्वेषण में लागत कम पड़ेगी और मानव जीवन का खतरा भी नहीं रहेगा। 24 नवम्बर से 'चन्द्र रात्रि' आरम्भ होने पर 'लूनोखोड' ने $14\frac{1}{2}$ दिन के लिये अपना कार्य रोक दिया क्योंकि उस समय ताप —150° से० हो गया। सूर्य की ऊर्जा मिलने पर वह पुनः गति मान हो जायगा।

समुद्र से कैन्सर रोधी औषधियां

कैलिफार्निया स्थित विश्वजीव अनुसन्धान संस्थान के निर्देशक डा० ब्रूस हाल्सटेड ने कहा है कि समुद्र में सहस्त्रों जीव ऐसे विद्यमान हैं कि जिनके शरीर से कैन्सर का इलाज करने के लिये उपयुक्त औषधियां प्राप्त की जा सकती हैं। डा० ब्रूस के अनुसार आगामी भविष्य में भिन्न रोगों के लिये सैकड़ों प्रकार की औषधियां प्राप्त करने के लिये समुद्र एक उत्तम साधन स्रोत सिद्ध होने लगेगा। समुद्र में बहुत से ऐसे विष रसायन भी विद्यमान हैं जो सोडियम सायनाइड से दस हजार गुना अधिक विषैले हैं।

बिजली से दर्द पर विजय

बीसवीं शती के आरम्भ में हुये शोधों के आधार पर ऐसा लगा कि कोई न कोई अहानिकर वेदनाहर मिल ही जावेगा। फ्रांस के एक शोधकर्ता डा० एस० लेड्यूक ने एक जानवर के सिर में इलेक्ट्रोड लगाकर विद्युत धारा प्रवाहित की। इससे पशु के शरीर पर कोई भी शल्य-चिकित्सा करनी सम्भव हो गयी एवं पशु निश्चेष्ट पड़ा रहा। विद्युत-तरंग हटाने पर जानवर की बेहोशी दूर हो गयी और वह बिल्कुल स्वस्थ दिखाई देने लगा। इस सफल परीक्षण के पश्चात् अनुसंधानकर्ता ने इसका प्रयोग अपने शरीर पर किया एवं इसे पूरी तरह निरापद तथा सफल पाया। इस विद्युत क्रिया का नाम "इलेक्ट्रोनारकोसिस" रखा गया। कुछ समय पश्चात् इस विधि के अनेक दोष जैसे—रोगी का एकाएक आपरेशन की मेज पर गति करने लगना, श्वास-प्रश्वास एवं हृदय पर प्रतिकूल प्रभाव आदि प्रकाश में आये।

उपर्युक्त दोषों से मुक्त विधि के सम्बन्ध में निरन्तर प्रयास होते रहे एवं अब शोधकर्त्ताओं ने एक विशेष प्रकार की विद्युत धारा का पता लगाया जिसने बहुत सी जटिलतायें दूर कर दीं। इस क्रिया में सिर पर इलेक्ट्रोड रखकर ऊँची आवृत्ति की विद्युत तरंग प्रेषित की जाती है जो कि

वाह्य तंतुओं को बिल्कुल परेशान नहीं करती। मस्तिष्क के अन्दर ये धारायें एक दूसरे पर प्रतिक्रिया करके कम आवृत्ति की तरंग उत्पन्न करती हैं जो विद्युत की सहायता से रोगी को चेतनाशून्य कर देती है। बिजली से बेहोश करने की यह विधि बड़े पैमाने पर सर्जरी में तभी इस्तेमाल की जा सकेगी जब दर्द को रोकने वाली बिजली की प्रक्रिया का स्पष्ट पता चल जायेगा।

● ●

[पृष्ठ 8 का शेषांश]

हैं। पहले स्पर्श शक्ति आवी है, फिर श्रवण शक्ति, घ्राण शक्ति आदि जागृत होती हैं।

विभिन्न प्रकार के निद्रा प्रेमी

शिकागो विश्वविद्यालय के निद्रा विशेषज्ञ डा० नैथानील क्लीटमैन ने मनुष्यों को दो वर्गों में बाँटा है:—

(1) प्रभातप्रिय और (2) सन्ध्या प्रिय

प्रभातप्रिय व्यक्ति शीघ्र उठते हैं और स्फूर्ति से कार्य करते हैं। इसका कारण यह है कि जिन व्यक्तियों का शरीर शीघ्र गर्म होकर दिन के मध्य भाग में उष्णता की सीमा पर पहुँच जाता है वे शीघ्र उठते हैं और जो व्यक्ति देर से उठते हैं उनका शरीर देर से उष्णता को प्राप्त होता है।

ब्रह्म मुहूर्त्त में नींद खुलने से शरीर को शुद्ध आक्सीजन प्राप्त होती है और शरीर चुस्त रहता है। यदि आपका तापमान दिन के 12 बजे से 3 बजे तक सर्वाधिक रहता है तो आप प्रभातप्रिय हैं और यदि आपके शरीर का तापमान शाम के 5 बजे से 8 बजे तक सर्वाधिक रहता है तो आप सन्ध्या प्रिय हैं।

सुबह उठना सामाजिक व पारिवारिक दृष्टि से उत्तम है। सोने के पूर्व हाथ-पैर धोकर सोना चाहिये। स्वच्छ वस्त्रों पर ही सोना चाहिये। सोते समय चिन्ता मुक्त होना चाहिये। रात्रि को हल्का भोजन लेना चाहिये। इससे निद्रा गहरी आयेगी और चित्त हल्का रहेगा। जीवन का एक तिहाई भाग निद्रा में व्यतीत होता है इसलिये इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। गहरी व स्वस्थ नींद मनुष्य को स्वस्थ और दीर्घायु बनाती है।

● ●

सम्पादकीय

अनुवाद ही अनुवाद

भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिये अंग्रेजी में प्राप्य अधिकाँश गौरव ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है। विशेषतः विज्ञान सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकों एवं सन्दर्भ ग्रंथों के अनुवाद कराये जाने की वृहद् योजना कार्यान्वित की जा रही है।

ऐसे ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद की योजना में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारें समान रूप से अपना अपना योग दे रही हैं। विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों की लम्बी लम्बी सूचियों में कुछ नई और कुछ पुरानी पुस्तकों के नाम सम्मिलित हैं जिन्हें अनूदित करने के लिये नये और पुराने दोनों ही तरह के अनुवादकों को कार्य सौंपा जा चुका है या जाने वाला है। कुछ अनुवाद कार्य प्रकाशित भी हुआ है। किन्तु जो कुछ प्रकाशित हुआ है उसकी न तो समालोचना हो पाई है, और न इधर लोगों का ध्यान ही गया है। सच बात तो यह है कि अनुवादकों को अपना 'मेहनताना' मिल जाने से वे प्रसन्न हैं और हमारे नेता इसलिये प्रसन्न है कि हिन्दी में कुछ साहित्य उपलब्ध हो गया है और वह राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी बन सकती है।

किन्तु मूल प्रश्न कुछ दूसरा ही है। क्या हिन्दी में केवल अनुवाद ही होता रहेगा ? या मौलिक लेखन पर भी ध्यान दिया जावेगा ? कुछ लोग कहेंगे कि इस समय दोनों पर बल दिया जा रहा है। किन्तु जो प्रगति हुई है वह सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। आज अनुवाद का बाजार गरम है। कारण कि अनुवाद से जो पारिश्रमिक मिलता है वह आकर्षक है और मौलिक लेखन से प्राप्त होने वाली राशि से कम नहीं होता। फिर सभी अनुवादक मौलिक पुस्तकें नहीं लिख सकते और लिख भी लें तो उनके लिये प्रकाशक नहीं मिल पावेंगे। अतः आज अनुवाद कार्य सबसे सुरक्षित एवं सम्मानजनक कार्य बन गया है।

किन्तु क्या अनुवादकों ने अपनी अर्हताओं एवं उत्तरदायित्वों की ओर थोड़ा भी ध्यान दिया है ? क्या यह सच नहीं है कि अधिकाँश अनुवादकों के पास वे योग्यतायें नहीं हैं जो सफल अनुवादक के लिये अनिवार्य होती हैं ? न अनुवाद कार्य के लिये सभी प्रकार के कोश ही उपलब्ध हैं।

अनुवाद का कार्य कोई आसान कार्य नहीं होता। सफल अनुवाद कार्य 'परकाया प्रवेश' जैसा है। अच्छा अनुवाद न तो शाब्दिक होता है और न भावानुवाद। अनुवादक को न केवल अपनी भाषा में पारंगत होना चाहिए वरन् उसे विदेशी भाषा के शब्द-गाम्भीर्य से परिचित होना चाहिए। केवल पारिभाषिक शब्दावलियों या कोशों की सहायता से सफल अनुवाद कर पाना कठिन है। अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद के लिये ऐसे कोशों की भी अवश्यकता है जिसमें विदेशी भाषाओं के कठिन और विशिष्टार्थ बोधक शब्दों का संग्रह तथा अर्थ निर्देश हो। आनुषंगिक सामग्रियों में निघंटुओं की अत्यावश्यकता पड़ती है। हिन्दी में कोश तो हैं परन्तु निघंटु नहीं है जिनसे क्लिष्ट शब्दों के अर्थ प्राप्त हो सकें। प्रामाणिक अनुवाद के लिये हिन्दी में कोश-कार्य के अधिकाधिक विकास की आवश्यकता है।

अनुवाद करते समय अनुवादक को भाषा की प्रकृति, काल और सम्बद्ध विषय पर ध्यान रखना आवश्यक होगा। फिर अनुवाद कार्य 'संस्थागत' होना चाहिए व्यक्तिगत नहीं। अनुवादक को अपनी 'अहं' को भूलकर 'बहुजन हिताय'

कार्य करना होगा। उसे अनुवाद-योजना का संचालन करते समय उसमें संगठन एवं संचालन की ऐसी क्षमता होनी चाहिए। प्रकाशकों की अभिरुचि एवं राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुये नूतनतम पुस्तकों का अनुवाद कराना होगा। जो साहित्य पुराना पड़ गया है उसमें श्रम का अपव्यय वृथा है। वैसे भी अनुवाद कार्य द्वितीय श्रेणी का कार्य माना जाता है अतः यदि योग्यता, उद्देश्य एवं साधनों का ठीक से समायोजन नहीं हो पाता तो सम्भावना यही है कि सारा कार्य अकार्य सिद्ध हो जावे। संतुलित योजना के द्वारा अनुवाद कार्य को अग्रसर करना होगा।

लेखकों से निवेदन

'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | अगहन २०२७ विक्र०, १८९२ शक नवम्बर १९७० | संख्या ११

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन

☐ डा० शिवगोपाल मिश्र

'विज्ञान-सप्ताह' के अवसर पर चिन्तन के लिए सामग्री

● 'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' ने ११ जुलाई १९७० की बैठक में यह तय किया कि देश भर में नवम्बर के प्रथम सप्ताह को 'विज्ञान सप्ताह' के रूप में मनाया जावे। यह सप्ताह विविध प्रकार के आयोजनों से पूर्ण रहे। व्याख्यान हों, प्रदर्शिनियाँ लगाई जावें, स्पर्धायें आयोजित हों। इससे विज्ञान की लोकगम्यता में सहायता पहुंचेगी— सम्पादक

हिन्दी में नवलेखन, हिन्दी नई कविता, अकविता आदि पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। शायद वह हिन्दी साहित्य की अपनी बात है। किन्तु हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन का अभी तक ठीक ठीक मूल्यांकन नहीं हुआ है। शायद हिन्दी के साहित्यकार इसे विजातीय विषय मानते हैं या फिर नितान्त, असाहित्यिक, भौतिक एवं अविचारणीय।

विज्ञान विश्वजनीन है किन्तु जहां तक उसके समझने-समझाने का प्रश्न है वह भाषा के माध्यम से ही हल होगा। किसी भी देश का साहित्य यदि उसी देश की भाषा में होता है तो वह उच्चकोटि का होता है। विदेशी भाषा का आश्रय लेने से सोचने-विचारने की शक्ति जाती रहती है और रचा गया साहित्य आम जनता के काम का नहीं होता। उस तक उसकी पहुँच ही नहीं हो पाती। इसीलिये विज्ञान जैसे विश्वजनीन विषय के लिये भारत देश में हिन्दी के अपनाये जाने की दलीलें की जाती हैं। यह भी सच है कि इस दिशा में सफलता प्राप्त हुई किन्तु वह सन्तोष-जनक नहीं कही जा सकती।

हिन्दी है राष्ट्रभाषा अवश्य, किन्तु उसका राग

बेसुरा है। जितने भी नेता-गण हैं वे अपना अपना राग अलापते हैं। दुर्भाग्य है कि विज्ञान की बारी आते आते या तो वीणा के तार ही टूट जाते हैं या राग ही बिगड़ जाता है। आज भी विज्ञान की शिक्षा का माध्यम क्या हो, इस विषय में एक मत नहीं है। इसे दुर्भाग्य नहीं तो क्या कहें ? सफलता की कुंजी विज्ञान है और उसे हम आम जनता से दूर ही दूर रखे जा रहे हैं। यह कब तक चलेगा ? स्पष्ट है कि यह आपा-धापी अधिक दिनों तक चलने वाली नहीं।

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की प्रक्रिया पुरानी है। उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में अंग्रेज मिशनरियों ने हिन्दी में पशु पक्षी सम्बन्धी कई पुस्तकें प्रकाशित कीं। फिर राष्ट्रीयता के उपासक हमारे देशवासियों ने लेखन की बाग अपने हाथ में ली। ऐसे ही सन्धि-काल में, १९१३ ई० में "विज्ञान परिषद्" की स्थापना की गई और न केवल वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें लिखी गईं वरन् एक पत्रिका "विज्ञान" का मासिक प्रकाशन भी प्रारम्भ किया गया। अनेकानेक तरुण वैज्ञानिकों ने हिन्दी के माध्यम से विज्ञान की सेवा का व्रत लिया; जिसका शुभ फल यह निकला है कि आज ५० वर्षों के पश्चात् एक ऐसी लेखक-पीढ़ी विश्राम लेने जा रही है जिसे हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन के सूत्रपात, उसके संवर्धन, संशोधन, परिमार्जन सभी का श्रेय दिया जा सकता है। आज हिन्दी में जितना भी साहित्य है उसके सृजन का पूरा नहीं तो कम से कम ८०% श्रेय इसी पीढ़ी को है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश का नक्शा बदला। हिन्दी हिन्दी नहीं रही। वह राष्ट्र भाषा बन गई। परन्तु हिन्दी प्रेमियों पर जैसे नशा छा गया। वे अपने कर्तव्यों की इति मान बैठे। मात्र सोचने से हिन्दी वैज्ञानिक पठन-पाठन के लिये ग्राह्य नहीं हो सकती थी। उसे तो और दायित्व-पूर्ण एवं संयमित मनन, सृजन, लेखन की आवश्यकता थी। यदि लोगों को सन्तोष हुआ तो इसलिये कि धीरे धीरे २० वर्षों में इण्टर तक की कक्षाओं के लिये वैज्ञानिक विषयों की भाषा हिन्दी हो ली। उसमें पारिभाषिक शब्दा-वली का निर्माण किया जा चुका है और अनेक उत्तम पाठ्य ग्रंथों का अनुवाद प्राप्त है। अब प्रत्येक हिन्दी भाषी राज्य में अपनी अपनी हिन्दी ग्रंथ अकादमी है जो विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के लिखाने या अनूदित कराने का सारा कार्य-संचालन करेगी। हमारे शिक्षा मंत्री भी भारत में हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान किये जाने के कायल हैं।

परन्तु प्रगति क्यों नहीं हो रही है ? आये दिन अंग्रेजी और हिन्दी का विवाद क्यों खड़ा किया जाता है और भारत को उत्तर और दक्षिण में या हिन्दी-अहिन्दी में विभाजित करके क्यों बातें की जाती हैं ? यह हमारा ही दोष है। हम दोषी हैं।

भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है किन्तु उसे वह समादृत पद नहीं प्राप्त है। उसे सीखने को कौन कहे, उसे लादे जाने की बात उकसाई जाती है। ऐसी दशा में विज्ञान सम्बन्धी जो भी हिन्दी लेखन हो सकता है वह हिन्दी भाषी राज्य करेंगे। यह सच है कि इससे पूर्ण राष्ट्र का सहयोग नहीं प्राप्त होगा और जब हिन्दी में रचित ग्रंथों के प्रचार-प्रसार की बात होगी तो उन्हें सीमित दायरे में सिमट जाना पड़ेगा। अच्छा तो यह हुआ होता कि इन २३ वर्षों में पूरे देश के विद्वान हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करके एक साथ बैठ कर विज्ञान जैसे कठिन विषयों का साथ साथ प्रतिपादन करते, ग्रंथ रचते और अध्यापन करते। राष्ट्र इस सुअवसर से वंचित ही रह गया।

यह सच है कि वैज्ञानिक लेखन में पाठ्य पुस्तकों के लेखकों ने श्रम किया है किन्तु लेखन की एकमात्र विद्या यही तो नहीं है। लोकप्रिय लेख, प्रामाणिक ग्रंथों का प्रणयन, उत्तम ग्रंथों का साधिकारिक अनुवाद—ये अन्य साधन हैं जिनका आश्रय लेना चाहिए था। पाठ्य-पुस्तकें तो चर्वित चर्वण हैं। वे लेखक और पाठक दोनों उत्पन्न करती हैं। किन्तु उच्चकोटि के लेखक नहीं। पत्रिकायें उत्तम साधन हैं गम्भीर से गम्भीर विषयों को सरल एवं रोचक शैली में प्रस्तुत करने के। देश में ऐसी वैज्ञानिक पत्रिकाओं का अभाव है। गिनी चुनी पत्रिकायें हैं—विज्ञान, विज्ञान प्रगति, विज्ञान लोक, खेती, किसान भारती, लोक विज्ञान आदि। किन्तु

इनमें वैज्ञानिक विषयों की झांकी मात्र है। विषय का प्रतिपादन कहां हो पाता है। ऐसे प्रकाशकों एवं लेखकों का अभाव है जो स्तरीय विज्ञान पत्रिकायें प्रकाशित करें और उत्तम कोटि के लेख लिखें। मौलिक ग्रंथों की ओर से तो लोग उदासीन ही प्रतीत होते हैं। हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश ने अवश्य ही इस दिशा में कुछ प्रयास किया है किन्तु उसे प्रयास ही कहा जावेगा क्योंकि छपाई में अशुद्धियों के साथ ही पुस्तकों के सम्पादन में अन्यमनस्कता एवं विषय-सामाग्री के लेखन में उतावली या थोथापन के दर्शन होते हैं। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, विज्ञान परिषद्, नागरी प्रचारिणी सभा के छुटपुट प्रयासों की सराहना ही की जा सकती है। ये संस्थायें आर्थिक संकट के कारण पूरे मनोयोग से कार्य नहीं कर पा रहीं अन्यथा इनसे अच्छा कार्य हो सकता था। नेशनल बुक ट्रस्ट ने भी पुस्तकों के लिखाने एवं प्रकाशित कराने की अच्छी योजना बनाई है।

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन का सर्वोपरि उत्तरदायित्व हिन्दी ग्रंथ अकादमियों पर है। उन्हें न केवल उत्तम अंग्रेजी के वैज्ञानिक ग्रंथों के अनुवाद कराने का भार सौंपा गया है वरन् मौलिक लेखन के लिये योग्यतम व्यक्तियों का चुनाव करके उनसे पुस्तकें लिखाने का भी अधिकार दिया गया है। यदि मनोयोग से पूरी योजना कार्यान्वित की जाय तो कई हजार पुस्तकें अनूदित हो सकती हैं और मूल रूप से लिखी जा सकती हैं किन्तु प्रश्न है कि क्या इतने उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य के लिये हिन्दी भाषी राज्यों में लेखक प्राप्य हैं। उत्तर होगा नहीं।

स्थिति बड़ी गंभीर है। जो उच्चकोटि के वैज्ञानिक हैं वे हिन्दी के नहीं वरन् अंग्रेजी के माध्यम से अपना सारा कार्य करते रहे हैं। यदि हिन्दी में लिखने के लिये उनकी सेवायें प्राप्त भी हों सकें तो सन्देह है कि उच्चकोटि की पुस्तकें लिखी जा सकेंगी। दूसरी ओर लेखकों का वह समुदाय है जो लिखने और अनुवाद करने में समान रूप से निपुण है — किन्तु ऐसे लेखक कम ही हैं और वे सुपरिचित व्यक्ति हैं। उनकी कार्यक्षमता सीमित है। वे न तो सभी पुस्तकें लिख सकते हैं, न सारा अनुवाद ही कर सकते हैं।

हिन्दी लेखन के क्षेत्र में लेखकों का यह अभाव खलने वाला है। शोच्य यह है कि आज तक हिन्दी लेखन में निष्णात बनाने के लिये न तो कोई पुनश्चर्या केन्द्र खोला गया न कोई वर्कशाप ही आयोजित की गई। कुछ लोग तो बिना आवश्यक तैयारी के ही हिन्दी लेखक बन गये हैं। ऐसे नीम हकीमों से खतरा है वे प्रगति में बाधक हो सकते हैं।

इधर 'भारत की सम्पदा' नाम से वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् ने अंग्रेजी के "वेल्थ आफ इंडिया" का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की योजना बनाई है। उसके लिये हिन्दी भाषी राज्यों के सैकड़ों विद्वानों का सहयोग प्राप्त करके अनुवाद कराया गया है। सम्भवतः यह पहला व्यापक प्रयास है जिसमें हिन्दी जानने वालों को अवसर प्रदान किया गया है। हिन्दी लेखन की दिशा में ऐसे ही प्रोत्साहनों की आवश्यकता है। सुप्त बीजों में से ही अंकुर निकलने हैं और उन्हे प्रकाश में आकर पल्लवित होना है।

● ●

मॉस बाउअर प्रभाव

□ श्याम लाल काकानी

मॉस बाउअर सन् १९५८ में जब मॉक्स प्लॉक संस्था, हैड्लबर्ग में अनुसन्धान कार्य कर रहे थे, तो उन्होने ठोसों में परिवन्ध नाभिकों द्वारा रिकॉयल रहित गामा किरणों के उत्सर्जन एवं अवशोषण क्रिया का पता लगाया। उन्हीं के नाम के पश्चात् इसका नाम मॉस बाउअर प्रभाव रखा गया। यह खोज इतनी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई कि १९६१ में उनको सर्वाधिक सम्मान का पारितोषिक 'नोबल पुरस्कार' प्रदान कर सम्मानित किया गया।

मॉस बाउअर प्रभाव का साधारण अर्थ यह है कि क्रिस्टल में परिबद्ध नाभिक, कुछ विशेष परिस्थितियों में, बहुत कम समय के लिये रिकॉयल रहित निम्न ऊर्जा की गामा किरणें उत्सर्जित करते हैं। रिकॉयल घूर्ण, सम्पूर्ण क्रिस्टल द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। चूंकि क्रिस्टल का द्रव्यमान या संहृति, उत्सर्जित नाभिक की तुलना में अधिक होता है, अतः ऊर्जा स्थानान्तरण पूर्ण उपेक्षणीय होता है। ऐसी गामा किरणें परमाणुओं की तापीयगति के कारण विस्तृत नहीं हो पाती हैं, अतः उनका अनुनादी अवशोषण हो जाता है।

नाभिकीय अनुनादी अवशोषण

किसी भी नाभिक की दो अवस्थायें हो सकती हैं :- (१) मूल अवस्था (२) उत्तेजित अवस्था। जब इन दोनों अवस्थाओं में संक्रमण होता है तो गामा किरणों का उत्सर्जन या अवशोषण होता है। संक्रमण की उर्जा का मान लगभग 10^4 eV होता है। उत्सर्जित और अवशोषित गामा किरणों की चौड़ाई लगभग 10^{-8}eV होती है। इन दोनों का अनुपात अनुनादि की तीक्ष्णता को प्रकट करता है। अतः गामा किरणों के लिए,

$$\text{अनुनाद की तीक्षणता} = \frac{\text{संक्रमण की ऊर्जा}}{\text{गामा किरणों की चौड़ाई}}$$

$$= \frac{10^4}{10^{-8}} = 10^{+12} \text{ होगी।}$$

एक परमाणु के लिए अनुनाद की तीक्ष्णता का मान 10^{+8} के लगभग होता है। अब तक ज्ञात प्रणालियों में नाभिकों में गामा किरणों का अनुनाद ही प्रकृति में सबसे अधिक समस्वरित तीक्ष्ण प्रणाली है।

नाभिकीय अनुनादी अवशोषण क्रिया में, मुख्य रुप से उत्तेजित अवस्था में नाभिक द्वारा ऊर्जा क्षय और गामा किरण का उत्सर्जन शामिल है। इसका उपयोग समान अवस्था वाले नाभिक को उसी अनुनादी अवस्था में उत्तेजित करने के लिए किया जाता है। यह विधि बहुत ही चयनात्मक है, क्योंकि तीक्ष्ण परिभाषित नाभिक की अवस्था के लिए, उत्सर्जक और अवशोषणकारी की ऊर्जा में किंचित् मात्र अन्तर ही अनुनादी अवशोषण क्रिया को रोकने में सक्षम होता है।

एक नाभिक जो ऊर्जा अवस्था Eo से जीवन समय T में गामा किरण का उत्सर्जन करता है। ऐसे नाभिक के लिए ऊर्जा और घूर्ण संरक्षण के नियम लागू होंगे। इन नियमों के अन्तर्गत, जब नाभिक गामा किरण का उत्सर्जन करेगा तो उसमें रिकॉयल होगा। परिणाम को हम निम्न सूत्र से प्रदर्शित कर सकते हैं।

$$R = \frac{E_0^2}{2MoC^2} \qquad (१)$$

जबकि सूत्र में

E_0→नाभिक की ऊर्जा

M_0→उत्सर्जित या अवशोषणकारी नाभिक की स्थिर संहति

C→प्रकाश का वेग

R→रिकॉयल

इस क्रिया में हमने यह माना है कि E_0 का मान R से बहुत अधिक होगा ($E_0 >> R$)।

समीकरण १ से यह भी स्पष्ट है कि उत्सर्जित गामा किरण की ऊर्जा E_0 के स्थान पर E_0-R होगी। इसी प्रकार वह नाभिक जो गामा किरण का अवशोषण करेगा, उसकी ऊर्जा E_0+R होनी चाहिए, क्योंकि अवशोषण क्रिया में नाभिक को उत्तेजित करने के लिए आवश्यक ऊर्जा एवं रिकॉयल ऊर्जा भी गामा किरणें ही प्रदान करती हैं अतः अनुनाद क्रिया के लिए उत्सर्जन और अवशोषण क्रियायें अत्यधिक परस्पर व्यापी होना आवश्यक है या दूसरे शब्दों में $2R \leqslant$ रेखा चौड़ाई।

अब तक हमने केवल स्वतंत्र नाभिक को लेकर ही विचार किया है। अतः उन नाभिकों, जो क्रिस्टल में बद्ध हैं की स्थिति पर विचार करने के लिये जालकों में विभिन्न परमाणुओं के बीच युग्मन पर विचार करना अति आवश्यक हो जाता है। जालक युग्मन प्रभाव को गतिज प्रभावी संहति से प्रदर्शित करते हैं। अतः ऐसे नाभिकों के लिए, जो किसी ठोस या क्रिस्टल में बद्ध हैं, रिकॉयल मान निम्न सूत्र से प्रकट किया जा सकता है :—

$$R = \frac{E_0}{2M_{eff}C^2} \qquad (२)$$

यहाँ पर उत्सर्जित नाभिक, क्रिस्टल जालक में बद्ध होने से, अपना रिकॉयल घूर्ण आवश्यक रूप से सम्पूर्ण क्रिस्टल के संहति केन्द्र को स्थानान्तरित कर देता है। चूंकि संहति का मान बहुत अधिक होता है, इसलिए रिकॉयल में लुप्त ऊर्जा प्रायः नगण्य हो जाती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है, कि उप्लब्ध ऊर्जा का क्षय या विक्षेप रिकॉयल के अतिरिक्त अन्य कई विधियों जैसे जालक की कम्पन अवस्था में परिवर्तन से, जालक में फोनोन के निर्माण से जिनकी आवृत्ति wi से प्रदर्शित कर सकते हैं; सम्भव हो सकती है। ऐसी स्थिति में उत्सर्जित गामा किरण के लिए उपलब्ध ऊर्जा (E) का मान निम्न समीकरण से प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$E = E_0 - \Sigma n h \omega i$$

जब कि

E→ उत्सर्जित गामा किरण की ऊर्जा

h→ प्लाँक का स्थिरांक

ωi→ फोनोन की आवृति

अगर फोनोन ऊर्जा, गामा किरण की ऊर्जा की तुलना में, जिसको हाइजन बर्ग अनिश्चितता सिद्धान्त से ज्ञात कर सकते हैं, अधिक हो तो उत्सर्जित गामा किरण का अनुनादी अवशोषण नहीं होगा। ऐसी अवस्था में जालक कम्पनों का क्वान्टाइजेसन होगा, जिससे इनके ऊर्जा का स्थानान्तरण स्वेच्छ तरीके से संभव नहीं होगा। ऐसे संक्रमणों से, जो क्रिस्टल जालकों में फोनोन को उत्तेजित नहीं कर सकते हैं, बद्ध नाभिक रिकॉयल रहित गामा किरण का उत्सर्जन करते हैं। यह क्रिया भी जालक समष्टि पर निर्भर करती है। यह क्रिया अति महत्वपूर्ण होती है एवं बहुत कम समय के लिए होती है।

उपयोग

मॉसबाउअर प्रभाव की सन् १९५८ में खोज के पश्चात् भौतिक शास्त्रियों ने इस नई खोज का उपयोग भौतिक विज्ञान के कई विविध क्षेत्रो में किया है।

इसका अति नाटकीय उपयोग पृथ्वी सतह पर गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में गतिमान फोटोन की रेड शिफ्ट या लाल विचलन को नापने में हुआ है। यह लाल विचलन करीब एक मीटर का 10^{-16} वां भाग होती है। इस खोज की दूसरी प्रमुख उपयोगिता परमाणुओं की ऊष्मीय गति के कारण द्वितीय क्रम डॉप्लर प्रभाव को देखने में भी हुई है। भौतिक शास्त्रियों ने इसकी सहायता से कई ऐसे

[शेष पृष्ठ २२ पर]

धरती की कहानी

□ महेश मिश्र

धरती, जो हमारी माँ है, सदियों से हम इस धरती को देखते आ रहे हैं। इसे प्यार किया, इसके लिए संघर्ष किया, यहाँ तक कि इसके लिए प्राण तक उत्सर्ग कर दिए। वही धरती, जिसने हमारे पूर्वजों को पाला, हमें पालती है और हमारी संतानों को पोषण देगी। क्या है? कैसे पैदा हुई? किस तरह यह पौधों को जन्म देती है? क्या कभी हमने इन सब बातों पर विचार किया है?

शायद आप नहीं जानते-फूलों से सजी, फलों से लदी और हरित परिधान धारण किये जिस धरती पर आप मुग्ध हैं उसे इस अवस्था में आने में, हजार दो हजार नहीं वरन् करोड़ों वर्ष लगे हैं। समय के इस सीमाहीन अंतराल में कितने थपेड़े खाए हैं, हमारी धरती ने। धूप, वर्षा शीत, लू, अंधड़ और भूचालों को अपने ऊपर झेला, उनके प्रहारों से अपने अंग-अंग को चूर हो जाने दिया और तब आज इतनी तपस्या के बाद धरती को यह रूप मिला, वह शस्य श्यामला कहलाई।

प्रायः यह समझा जाता है कि 'भूमि' या धरती' चट्टानों का चूर्ण मात्र है परन्तु यह भ्रम है। भूमि एक नैसर्गिक पदार्थ है जिसमें जैविक गति विधियाँ निरंतर चलती रहती हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भूमि एक वृहत् कारखाना है जिसमें असंख्य जीव निरंतर कार्यरत हैं जो पौधों के विकास के लिए समुचित वातावरण तैयार करने और उनके भोजन पानी की व्यवस्था में जुटे रहते हैं, तो अनुचित न होगा। यही कारण है कि आज वैज्ञानिकों ने भूमि को जीवित पदार्थों की श्रेणी में रखा है। अत: भूमि का अध्ययन भी अन्य जीवों और पौधों की तरह किया जाना आवश्यक है।

धरती का जन्म

हमारी पृथ्वी आदिकाल में पिघला हुआ लावा मात्र थी। लावा ठंडा हुआ, चट्टानें बनी। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी की सतह पर्वतों की चोटियों से लेकर दस मील पृथ्वी के गर्भ तक फैली हुई है। अनेक भूगर्भ-शास्त्रियों के मतानुसार, पृथ्वी का अन्तरतम तल अभी भी गर्म ठोस धातु के रूप में है जो क्रमशः कम गहरी सतहों से घिरा है।

पृथ्वी की उपरी सतह में स्थित चट्टानों से ही हमारी 'धरती' का विकास हुआ है। पृथ्वी तल पर स्थित चट्टानें अपनी उत्पति और संरचना के आधार पर तीन प्रमुख भागों में विभाजित की गई हैं—

१—आग्नेय चट्टानें

२—परतदार चट्टानें

३—परिवर्तित चट्टानें

आग्नेय चट्टानें पृथ्वी तल पर स्थित लावे के ठंडे होकर जमने से बनी हैं जबकि परतदार एवं परिवर्तित चट्टानें आग्नेय चट्टानों से ही उत्पन्न चट्टानें हैं। आग्नेय चट्टानों का चूर्ण समुद्रतल में अथवा झीलों के तल में परतों के रूप में एकत्र होता रहता है और कालांतर में भारी दबाव के कारण परतदार चट्टानों में परिवर्तित हो जाता है। परतदार चट्टानें समुद्र तट पर बहुतायत से पाई जाती हैं।

परिवर्तित चट्टानें, आग्नेय अथवा परतदार चट्टानों के परिवर्तन से बनती हैं। भारी दबाव और अधिक ताप के कारण इन चट्टानों के स्वरूप संरचना तथा गुणों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे संगमरमर, चूने की चट्टानें इत्यादि।

चट्टानें ही धरती की माँ हैं। चट्टानें समय के थपेड़ों से चूर-चूर हुई और धरती को जन्म दिया। ये चट्टानें जो कठोर हैं, किस तरह इस रूप में आईं, यह भी अत्यंत रोचक विषय है। कहते हैं—समय किसी को नहीं छोड़ता जो बना है वह मिटेगा और जो मिटा है वह बनेगा। यह आदि सत्य सभी पर खरा उतरता है—क्या जीव-जन्तु, क्या पौधे और क्या ही ये चट्टानें सभी बनते और मिटते रहते हैं। सृष्टि का यही नियम है।

सृष्टि की भौतिक, रासायनिक और जैविक शक्तियाँ निरंतर इन चट्टानों पर अपना प्रभाव डालती रहती हैं और कालावधि में उन्हें जर्जर कर चकनाचूर कर देती हैं। शताब्दियों तक ये शक्तियां निरंतर अपने प्रहार इन चट्टानों पर करती रहती हैं तब कहीं इन कठोर चट्टानों को तोड़ने में सफल हो पाती हैं।

भौतिक शक्तियाँ

बहता जल, हिम, ताप, अंधड़, तूफान, भूचाल, भूस्खलन् ज्वालामुखी आदि अनेक वे शक्तियां है जो चट्टानों को तोड़कर उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में परिवर्तित कर देती हैं। ये शक्तियाँ मुख्यतः चट्टानों के आकार में ही परिवर्तन करती हैं उनके गुणों में कोई परिवर्तन नहीं लातीं।

बहता जल, किनारे स्थित चट्टानों को धीरे-धीरे काटता रहता है। जल में बहते रोड़े आपस में टकराकर अथवा रगड़ खाकर पिस जाते हैं। चट्टानों की दरारों में भरा जल ठंड पाकर जम जाता है फलस्वरूप उसके आयतन में वृद्धि होती है जिससे दरारें चौड़ी हो जाती हैं और चट्टानें टूट जाती हैं।

मरुस्थलों में दिन में प्रचंड गर्मी के कारण चट्टानें फैलती हैं किन्तु रात में अत्यधिक ठंड होने से तत्काल सिकुड़ती हैं। फैलने और सिकुड़ने की प्रक्रिया बार-बार होने से चट्टानें जर्जर हो जाती हैं। कभी-कभी तप्त चट्टानों पर एकाएक वर्षा हो जाने से भी वे चटककर टूट जाती हैं।

अधंड अपने वेग से चट्टानों को लुढ़का देते हैं और ये लुढ़कती चट्टानें अपने ही भार से अथवा जबर्दस्त टकराव के कारण टूट कर चकनाचूर हो जाती हैं। वेग से बहती हवाएं अपने साथ बारीक रेत भी उड़ा ले जाती हैं जो आपस में टकराकर और भी पिस जाती है, अथवा इनकी बौछार से चट्टानें प्रभावित होती हैं।

तूफान में, पानी की शक्तिशाली बौछारें, समुद्रतट् पर स्थित चट्टानों को निरंतर पीटती रहती हैं, फलस्वरुप वे धीरे धीरे टूटती रहती हैं।

रासायनिक शक्तियाँ

ये शक्तियाँ अदृश्य रूप से अपना प्रभाव डालती हैं। प्रत्यक्ष में इनका कोई आभास नहीं होता, किन्तु ये शक्तियां अनवरत् अपना कार्य करती रहती हैं। इनके द्वारा चट्टानों में आमूल परिवर्तन होकर उनका रंग-रूप तक परिवर्तित हो जाता है। रासायनिक शक्तियों में मुख्यतः पांच शक्तियों का समावेश होता है–(१) आक्सीकरण (२) जल योजना (३) कार्बनीकरण (४) विलयन और (५) निक्षेपण।

वायुमंडल की आक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बनडाईआक्साइड गैस एवं आर्द्रता, खनिज पदार्थों पर अपने विशेष प्रभाव डालती है, फलस्वरुप चट्टानें घुलकर, नरम होकर अथवा चटककर चूर्ण हो जाती हैं। चट्टानों के खनिज पदार्थ वायुमंडल की आक्सीजन से क्रिया कर ऐसे घटकों को जन्म देते हैं, जो आसानी से टूट-फूट जाते हैं। इसी प्रकार वायुमंडल से प्राप्त अथवा अन्य कार्बनिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न कार्बन डाई आक्साइड गैस पानी में घुलकर कार्बोनिक अम्ल बनाती है। कार्बोनिक अम्ल की विलायक क्षमता पानी की अपेक्षा कहीं अधिक है। इसी प्रकार अन्यान्य रासायनिक क्रियाएं रात-दिन चलती रहती हैं जो चट्टानों के चूर्ण होने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

जैविक शक्तियाँ

वस्तुतः जैविक शक्तियाँ स्वयं में कोई शक्तियाँ नहीं हैं वरन् वे तो माध्यम हैं जिनके द्वारा भौतिक और रासायनिक शक्तियों का संचालन होता है। जीव-जगत के तमाम सदस्य जैसे असंख्य जीवाणु, क्षुद्र कीड़े, पौधे और अन्य

उच्च श्रेणी के जीव भी चट्टानों के तोड़-फोड़ के कार्य में अनवरत् संलग्न रहते हैं।

प्रायः हम देखते हैं चट्टानों की सतह पर जमी काई अपने साथ ही चट्टानों की पपड़ी को भी अलग करती जाती है। पौधों की जड़ें विशेष अम्ल उत्पन्न करती हैं जो चट्टानों के खनिज पदार्थों को घोलकर उन्हें कमजोर बनाता है। इसी प्रकार उच्च श्रेणी के पौधों की जड़ें जो चट्टानों की दरारों में फैलती हैं भौतिक दबाव डालकर चट्टानों को तोड़ देती हैं। पौधों की जड़ों का भौतिक रूप से चट्टानों को तोड़ने की अपेक्षा उनका रासायनिक कार्य ही अधिक महत्वपूर्ण है। समस्त पौधों की जड़ों से अम्ल निकलता है जो चट्टानों की कठोरता को समाप्त कर उसे वातावरण के प्रभाव के लिए और अधिक उपयुक्त बना देता है।

पौध-जगत की तरह ही जीव-जगत भी अपना कार्य करता है। पृथ्वी में रहने वाले असंख्य जीवाणु, फफूंद, कीड़े मकोड़े अपनी क्रिया-कलाप से अनजाने ही चट्टानों को तोड़ने में सहायक होते हैं। तत्वों की खोज में जीवाणु चट्टानों के खनिज-पदार्थों पर आक्रमण कर उन्हें उनसे पृथक कर देते हैं, पारिणाम स्वरूप चट्टानें कमजोर हो जाती हैं। सभी जीवाणु जो सड़न-क्रिया में सहायक होते हैं कार्बन डाई आक्साइड गैस - उत्पन्न करते हैं, जो पानी के साथ संयोग कर कार्बोनिक अम्ल उत्पन्न करती है। इस अम्ल में चट्टानों के खनिज पदार्थ आसानी से घुल जाते हैं।

उच्च जगत के प्राणी जैसे मनुष्य, बैल, घोड़ा, हाथी इत्यादि अपनी चहल-पहल एवं कार्य-कलाप से चट्टानों को क्षति पहुँचाते हैं। आवश्यकतानुसार मनुष्य चट्टानों की कांट-छाँट भी करते रहते हैं। इस प्रकार चट्टानों का ह्रास होता रहता है।

धरती का विकास

चट्टानों के चूर्ण मात्र से पौधों का उगना संभव नहीं है। वर्षों तक चट्टानों के चूर्ण में रासायनिक एवं जैविक क्रियाएं चलती रहती हैं और तब पौधों के उगने के लिए आवश्यक तत्व और वातावरण तैयार हो पाता है। भूमि का विकास सतहों में होता है। पृथ्वी की उपरी सतह से लेकर अंदर चट्टानों तक भूमि विभिन्न सतहों में विकसित होती है।

अंग-विन्यास या ढांचे के संदर्भ में हम अक्सर 'प्रोफाईल' शब्द का उपयोग करते हैं। भूमि को खोदकर उसकी कटी हुई दीवार को हम ध्यान से देखें तो हमें विभिन्न सतहें दिखाई देती हैं जो रंग-रूप और संरचना में एक दूसरे से भिन्न होती हैं। यही भूमि का विन्यास है। इन सतहों का निर्माण, उनकी गहराई एवं स्पष्टता कालावधि के साथ परिपक्व होती है। अतः जिस भूमि में सतहें जितनी स्पष्ट होंगी भूमि उतनी ही परिपक्व (Mature) कहलाएगी।

ढांचे (Profile) में प्रयुक्त प्रत्येक सतह को अंग्रेजी में हॉरिजन (Horizon) कहते हैं। जिस तरह डाक्टर शरीर की रचना का अध्ययन करने के लिए उसकी चीर-फाड़ करता है, उसी प्रकार भूमि की रचना, उसके संगठन एवं इतिहास को जानने के लिए, मृदा वैज्ञानिक, भूमि की खुदाई कर, उसकी सतहों का अध्ययन करता है।

संसार के विभिन्न भागों में पाई जाने वाली भूमि में उनकी सतहों के निर्माण में एकरूपता हो सकती है। किन्तु यह तभी सम्भव है जब उन स्थलों की जलवायु, पैतृक खनिज पदार्थ, वनस्पति, पृथ्वीतल, काल आदि में भी एकरूपता हो।

पृथ्वीतल और भूमि में अंतर उसके जन्म और विकास की इस कहानी का हमारे जन-जीवन में क्या उपयोग हो सकता है? भूमि-विज्ञान का उद्भव ही मनुष्य की भूख से हुआ है। निरंतर बढ़ती जनसंख्या को यथेष्ट भोजन उपलब्ध कराने की समस्या, वैज्ञानिकों के सामने है। अकाल और भुखमरी की विभीषिका सारे संसार को अपने चंगुल में चपेटे है। १९वीं शती के प्रारंभ तक लोगों का ध्यान इस ओर नहीं था। किन्तु समय की आवाज ने वैज्ञानिकों को बाध्य किया और तब इसी शती के उत्तरार्ध में रूस में सर्वप्रथम भूमि-विज्ञान पर कार्य आरंभ हुआ। तब से अब तक अन्यान्य खोजें इसके अंतर्गत हुईं और भूमि-विज्ञान को स्वतंत्र मान्यता प्राप्त हुई।

● ●

हिन्दी में रसायन विज्ञान के शिक्षण पर साहित्य तथा सामग्री

□ डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

विज्ञान के सभी विषय उच्चतम स्तर तक विद्यार्थी की मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाये जांय, इस सम्बन्ध में सिद्धांततः समस्त प्रबुद्ध तथा चिंतनशील वर्ग एक-मत है। किसी भी विषय के आधारभूत सिद्धान्तों एवं संकल्पनाओं को समझने तथा आत्मसात कर लेने हेतु, छात्रों के लिये सर्वोत्कृष्ट माध्यम उनकी मातृ भाषा ही हो सकती है। पठित विषय की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति, नूतन संकल्पनाओं का सृजन तथा लेखन, अनुसंधान कार्य के विवेचन में सरलता, चिन्तन की गहराई, आत्मगौरव की भावना का विकास, मातृभूमि तथा राष्ट्र की प्रतिष्ठा आदि के दृष्टिकोण से शैशव से ही जिस मातृभाषा का प्रयोग विद्यार्थी के द्वारा किया जा रहा है, वही सर्वाधिक उपादेय हो सकती है। कोई भी विदेशी भाषा, शब्द भंडार एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रयोगों की व्यापकता की दृष्टि से भले ही समृद्ध हो, यदि उसे शिक्षण का माध्यम बनाया जाय तो छात्रों की बौद्धिक तथा अन्य आन्तरिक मानसिक शक्तियों का बड़ा भाग तथा समय उस भाषा को सीखने में ही व्यय हो जाता है। इतना होने पर भी उनमें पर्याप्त आत्म-विश्वास, विषय बोध की गहनता तथा अभिव्यक्ति की स्पष्टता नहीं आ पाती। जितना परिश्रम और समय विदेशी भाषा को सीखने में व्यय होता है उसके आधे से भी कम का, मातृभाषा के हेतु प्रयोग करने पर, अवशिष्ट समस्त समय एवं शक्ति, विषय विशेष में दक्षता तथा विशेषज्ञता प्राप्त करने तथा अनुसंधान आदि का, अपना मौलिक योगदान देने में उपयोजित हो सकती है। किन्तु हमारे देश के इतिहास तथा विभिन्न प्रान्तों की भिन्न भिन्न भाषाओं, सांस्कृतिक परम्पराओं आदि की पृष्ठभूमि के आधार पर जब समस्त राष्ट्र के हेतु व्यवहार्या एक भाषा, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से सामंजस्य, तीव्रगतिशील तथा विकासशील अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान के समानान्तर हमारी राष्ट्रीय गति तथा विकास, विभिन्न विदेशी राष्ट्रों से ज्ञान के आदान-प्रदान की सुगमता, अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में श्रेष्ठता प्राप्ति आदि के दृष्टिकोणों से जब विचार किया जाता है तो, "मातृभाषाओं अथवा राष्ट्रभाषा के माध्यम से विज्ञान के शिक्षण" के सम्बन्ध में कई समस्याएं उठती हैं। इस लेख में इन सबके संबंध में विश्लेषण तथा समाधान आदि प्रस्तुत न करते हुये 'हिन्दी माध्यम द्वारा रसायन-विज्ञान के शिक्षण पर साहित्य एवं सामग्री' के संबंध में सूचनात्मक एवं समीक्षात्मक सिंहावलोकन, संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिन्दी के ही समान, उत्तरी भारत की सभी भाषाएं तथा बोलियां, यथा गुजराती, मराठी, बंगला, उड़िया, मैथिली, निमाणी, मालवी, ब्रज आदि संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं तथा हिन्दी के बहुत निकट हैं। इन सभी में लेखन के हेतु, देवनागरी लिपि का प्रयोग, न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ सरलता तथा सफलता पूर्वक किया जा सकता है। अतः विशुद्ध हिन्दी भाषी प्रान्तों जैसे कि मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि में किये गये, रसायनशास्त्र के शास्त्रीय भण्डार की वृद्धि से अन्य कई निकटवर्ती अहिन्दी भाषी प्रान्त अवश्य लाभान्वित होंगे। लिपि एक होने से तथा भाषा साम्य के कारण अन्य प्रान्तीय जनों को हिन्दी में लिखे ग्रंथों तथा अन्य साहित्य को पढ़ने एवं समझने में सरलता होगी। भावनात्मक एकीकरण तथा रसायन विज्ञान के ज्ञान के अंतप्रान्तीय आदान-प्रदान के हेतु दीर्घकालीन प्रभाव

की दृष्टि से ये प्रयास निस्संदेह लाभकारी होंगे। सहिष्णुतापूर्वक, सभी भाषाओं का सहयोग लेते हुये, उनका सम्मान एवं समृद्धि करते हुये हिन्दी को राष्ट्रभाषा (सम्पर्क भाषा, राजभाषा तथा समस्त राष्ट्र का सच्चा एकीकरण करने वाली सूत्र भाषा) के रूप में विकसित करने सम्बंधी लक्ष्य की वास्तविक पूर्ति में रसायन विज्ञान सम्बंधी साहित्य का अपना महत्वपूर्ण योगदान होगा यह निर्विवाद है। दक्षिण भारतीय भाषाएं, जैसे कि तेलगू, कन्नड़ आदि भी संस्कृत से उत्पन्न हैं या बहुत प्रभावित हैं। रसायन विज्ञान के शास्त्रीय तथा तकनीकी शब्द संस्कृत उपसर्गों, प्रत्ययों, धातुओं आदि का ही आधार लेकर निर्मित किये गये हैं। अतः ऐसे शब्दों के प्रयोग पर आधारित, हिन्दी भाषा में लिखे गये ग्रन्थ कालान्तर से दक्षिण भारत में भी प्रचलित एवं लोकप्रिय होते चलेंगे, क्योंकि दक्षिण भारत के विद्वानों एवं विद्यार्थियों को भी इन्हें समझना कठिन नहीं होगा। यह स्थिति समूचे राष्ट्र के लिये कितनी श्रेयस्करी होगी इसे सफलतापूर्वक कल्पित किया जा सकता है।

उपर्युक्त भूमिका के आधार पर इस लेख में विवेचनीय विषय वस्तु को व्यवस्थित तथा सुविधापूर्ण अध्ययन की दृष्टि से हम निम्नलिखित शीर्षकों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

(क) रसायन पर साहित्य

(i) रसायन विज्ञान पर साहित्य के सृजन, अनुवाद आदि के लिये आवश्यक शब्दावली (समस्याएं तथा समाधान)

(ii) पाठ्यग्रन्थ : माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक, स्नातक स्नातकोत्तर स्तर के।

(iii) अनुसंधान साहित्य : रसायन की भिन्न शाखाओं सम्बंधी अनुसंधान पत्रिकाएं, अनुसंधान स्तर की पुस्तिकाएं (मोनोग्राफ), मानक ग्रंथ, विश्वकोष, आदि का सृजन एवं अनुवाद।

(iv) लोकप्रिय तथा अन्य साहित्य (बाल साहित्य, रोचक विषय वस्तु युक्त पत्रिकाएं, वैज्ञानिकों के प्रेरक जीवन चरित्र, प्राचीन भारत में किया गया रसायन का विकास, आदि)।

(ख) सामग्री

(i) चलचित्र

(ii) भित्ति चार्ट (आवर्त सारणी, औद्योगिक उत्पादन की विधियां आदि।

(iii) अन्य दृश्य-श्रव्य सामग्री, यथा भाषा, संकेतों आदि से युक्त प्रतिरूप आदि।

इन शीर्षकों पर क्रमशः विचार किया जायगा।

(क) रसायन पर साहित्य

(i) साहित्य सृजन तथा अनुवाद का आधार: सर्वमान्य, मानकशब्दावली :—

(अ) **सामान्य विवेचन**:— स्वतंत्रता के पूर्व एवं पश्चात्, रसायन पर हिन्दी में कई ग्रन्थ लिखे गये। हिन्दी विश्वभारती, विज्ञान आदि जैसी पत्रिकाएं प्रकाशित की गयीं किन्तु भिन्न भिन्न हिन्दी भाषी प्रान्तों के विभिन्न लेखक, अपने अपने विवेकानुसार अथवा विविध शब्दकोषों का आधार लेकर एक ही शब्द के हेतु भिन्न भिन्न हिन्दी पर्यायों का उपयोग करते थे, जैसे आक्सीजन के लिये ओषजन, प्राणवायु आदि। इससे भ्रमात्मिका स्थिति उत्पन्न हो गई थी तथा हिन्दी माध्यम की उपादेयता शिक्षक एवं विद्यार्थी जगत् में आलोचना का विषय बन गयी थी। लगभग २० वर्षों के अनुभवों एवं प्रयासों के आधार पर समस्या के निराकरण के हेतु तथा सभी लेखक एक जैसे शब्दों का प्रयोग कर सकें, इस दृष्टि से, केन्द्रीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के स्थायी आयोग ने मानक शब्दावलियां प्रकाशित कर दी हैं। रसायन विज्ञान के शिक्षकों, लेखकों, अनुवादकों के लिये उक्त आयोग के निम्न प्रकाशन उपयोगी होंगे।

(i) **विज्ञान शब्दावली I**:— इसमें रसायन, वनस्पति विज्ञान, भूगोल, गणित, भौतिकी तथा प्राणिविज्ञान सम्बंधी स्नातक स्तर के ग्रन्थों के हेतु उपयोगी प्रायः सभी अंग्रेजी

शब्दों के पर्याय प्राप्य हैं (ii) विज्ञान शब्दावली II: इसमें गणित एवं भौतिकी के स्नातकोत्तर स्तर के शब्द संगृहीत किये गये हैं। यह भी, भौतिक रसायन एवं रसायन की अन्य शाखाओं के स्नातकोत्तर स्तर के ग्रन्थ लेखन में सहायक हो सकती है। (iii) विज्ञान शब्दावली III: स्नातकोत्तर, रसायन शब्दावली, इसमें रसायन के स्नातकोत्तर स्तर के लेखन में उपयोगी शब्द प्राप्य हैं। इस प्रकार, रसायन के साहित्य सृजन के हेतु संकल्पनात्मक तथा शब्दों की एकरूपता तथा प्राप्यता सम्बन्धी गुरुतर कठिन कार्य, पर्याप्त अंशों तक संपन्न हो चुका है। लेखकों के लिये ग्रन्थ लेखन तथा अनुवाद एवं अनुसंधान लेख लेखन अब समस्या नहीं रह गयी है। इन शब्दावलियों में अप्राप्य शब्दों के लिये अन्य शब्दकोष आदि देखे जा सकते हैं उदाहरणार्थ, अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोषः भार्गव, अमरकोष, हलायुध कोष, वाचस्पात्यापिधान, संस्कृत-हिन्दी कोषः, आपटे, पारिभाषिक शब्द संग्रह (हिन्दी निर्देशालय, १९६२ संस्करण), आदि। समस्या उपस्थित होने पर, अकादमियों के संचालकों अथवा स्थायी आयोग के अधिकारियों से पत्र व्यवहार किया जा सकता है।

(आ) शब्दावली के निर्माण के हेतु निदेशक नियमः-- समस्त शिक्षकों के हेतु नव साहित्य सृजन, अनुवाद, सामान्य लेखन, कक्षा–शिक्षण आदि में सुविधा हो, स्पष्ट विचार हों तथा उपयोगिता हो, इस दृष्टि से, उन निदेशक नियमों का सारांश यहां प्रस्तुत कर देना उचित होगा जो कि केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय के द्वारा पर्यायवाची शब्दों की रचना तथा शब्दावली के सृजन आदि के हेतु, प्रयुक्त किये गये हैं[1–2]।

(I) निम्नलिखित अवस्थाओं में अंतर्राष्ट्रीय पदों, संज्ञाओं आदि का केवल मात्र लिप्यंतरण (Transliteration) कर दिया जाय। (i) तत्वों तथा यौगिकों के नाम, उदाहरणार्थ, हाइड्रोजन, कार्बनडाइआक्साइड, इत्यादि (ii) चार, माप, तथा भौतिक परिणामों से सम्बंधित समस्त मात्रक एवं इकाइयां आदि, जैसे, केलोरी, ऐम्पियर, इत्यादि (iii) नामों पर आधारित पद, उदाहरणार्थ, वोल्टमापी, फारेनहाइट तापक्रम (iv) द्विपदीय नाम, यथा डाइ-पेन्टीन (इनका बहुधा उपयोग, प्राणिकी एवं वनस्पति-शास्त्र में किया गया है)। (v) नियतांक जैसे कि π, N इत्यादि (vi) वे विदेशी शब्द जो कि सामान्य राष्ट्रीय उपयोग में लाये जाते हैं, उदाहरणार्थ, रेडियो, इलेक्ट्रान आदि (vii) अंक प्रतीक, संकेत एवं सूत्र, यथा, sin, cos, log, आदि। प्रतीकों के हेतु देवनागरी लिपि का भी प्रयोग किया जा सकता है, उदाहरणार्थ, Centimeter के लिये सें० मी० का। ज्यामितिक ग्रन्थों में क ख ग, त्रिभुज क्ष त्र ज्ञ आदि अक्षरों का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु त्रिकोण मिति में रोमन तथा ग्रीक अक्षरों का प्रयोग हो हो, उदाहरणार्थ, sin A, cos B आदि।

(II) अत्यधिक गूढ़ता, रूढ़वादिता, तथा शुद्धिवादिता से बचा जाय एवं संकल्पनात्मक शब्दों का अनुवाद कर लिया जाय। अनुवाद या नव-शब्द-सृजन क्रिया में भी प्रान्तों में प्रचलित शब्दों का स्मरण रखते हुये, संस्कृत भाषा का आधार लेकर, निम्नलिखित नियम निदेशक रहें।

(i) संस्कृत उपसर्गों तथा धातुओं एवं संज्ञाओं का उपयोगः—उदाहरणार्थ Proposal, resolution, एवं motion शब्दों के लिये क्रमशः प्रस्ताव, संस्ताव एवं उपस्ताव शब्द लिये गये हैं। Convergent के लिए अभिसारी तथा Divergent के लिए अपसारी शब्द दिये गये हैं। संकाल्पनिक यथार्थता की रक्षा करते हुए स्थिरता प्रदान करने की दृष्टि से एक जैसे अर्थों से युक्त प्रतीत होने वाले शब्दों के लिये हिन्दी पर्याय स्थिर कर दिये गये हैं, जैसे सौरभ या सुवास (aroma), सुरस (fiavour) सुगन्ध (fragrance)

१–पारिभाषिक शब्द संग्रह : केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारतसरकार, १९६२ संस्करण, पृष्ठ xxii-xxviii; एवं

२–विज्ञान शब्दावली, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, १९६४ संस्करण, पृष्ठ xv-xvi

(ii) अनुलग्नता विधि का उपयोग किया जाय :— जैसे कि (numerical) के लिये पर्याय है संख्यात्मक (यहां आत्मक-अनुलग्न है ।)

(iii) संयोजन एवं समास विधि का उपयोग :—धर्मी, धारी, मान, मूलक, निष्ठा, मापी, लेखी आदि शब्दों द्वारा अन्य तत्सम तथा तद्भव शब्दों का समास कर नूतन शब्द निर्माण यथा वर्ण-लेखी, रेडियम-धर्मी, तापमान, चालकता-मूलक, तापमापी आदि ।

(iv) संकल्पना की रक्षा हो—केवल शाब्दिक अनुवाद न हो :— बैरोमीटर शब्द का शाब्दिक अनुवाद, भारमापी होगा, किन्तु वास्तविकता का स्मरण रखते हुए वायुदाब-मापी शब्द रखा गया है । इसी प्रकार, सेकंडरी सेल के लिये द्वितीयक (सेकंडरी) सेल न रखते हुये संचायक सेल शब्द रखा गया है । संचायक सेल शब्द, मूल अंग्रेजी शब्द (त्रुटिपूर्ण!) से भी अधिक अर्थवाही है । कई स्थलों पर इसी प्रकार, मूल त्रुटिपूर्ण शब्दों के स्थान पर उत्तम शब्द सुझाये जा सकते हैं । उदाहरणार्थ ज्वरमापी (क्लिनिकल थर्मामीटर) ।

(v) सामान्यतः सर्वत्र प्रचलित हो चुके शब्द, उचित अनुवाद के बिना यथावत ले लिये जांय : उदाहरणार्थ अणु (मालीक्यूल), परमाणु (एटम), तार (टेलिग्राफ) आदि ।

(vi) प्राचीन भारतीय साहित्य में बाहुल्य से प्रयुक्त शब्द यथावत ले लिये जांय, जैसे वाहिनी (बटालियन), कलन (कैलक्युलस) ।

(vii) अन्य विदेशी भाषाओं के सामान्य प्रचलित शब्द यथावत् ले लिये जांय, उदाहरणार्थ, टॉर्च, मशीन, एंजिन प्रिज़्म, लावा आदि ।

(viii) संकल्पना की यथार्थता की रक्षा के लिये तथा शब्दार्थ को स्थिरता प्रदान करने के लिये, प्रचलित शब्दों के स्थान पर नये शब्द स्थापित किये जांय । उदाहरणार्थ, Heat के लिये ताप शब्द बहुधा प्रयुक्त होता था किन्तु अब ऊष्मा शब्द ले लिया गया है, जबकि 'ताप' शब्द का प्रयोग Temperature के लिये किया जाने लगा है । इसी प्रकार energy (ऊर्जा), Power (शक्ति), Strength (सामर्थ्य, सबलता), शब्दों के सम्बन्ध में है ।

(ix) संकर शब्द भी प्रयुक्त हो सकते हैं :— अंग्रेजी या अन्य भाषाओं के शब्दों में संस्कृत उपसर्ग, प्रत्यय आदि युक्त कर नवीन शब्दों का निर्माण जैसे कि क्रिस्टलीकरण, क्रिस्टलन, आयनीकरण, वलय-स्टैंड, वोल्टता आदि ।

(x) **शब्दों के लिंग** :—सामान्यतः अंतर्राष्ट्रीय एवं विदेशी शब्दों का पुलिंग में प्रयोग ही जैसे 'वोल्ट था' । किन्तु प्रबल के कारण होने पर स्त्रीलिंग प्रयुक्त किया जा सकता है, जैसे कि 'वोल्टता थी' ।

(xi अनुस्वार का प्रयोगः—आनुनासिक व्यंजन के स्थान पर अनुस्वार के उपयोग का वरण किया जा सकता है, किन्तु सर्वदा नहीं, उदाहरणार्थ, पंचम, समांग (न म समाङ्ग नहीं) जबकि कुछ शब्दों में प्रचलित आनुनासिक का प्रयोग ही उत्तम होगा उदाहरणार्थ, लेन्स एवं पेटेन्ट (न कि लेंस या पेटेन्ट या पेटेण्ट)

(xii) आदि वृद्धि :—संस्कृत के नवरचित सामासिक शब्दों में आदि वृद्धि के नियम की उपेक्षा की जा सकती है किन्तु सर्वदा नहीं, उदाहरणार्थ, व्यवहारिक, लाक्षणिक शब्द आदि वृद्धि से युक्त रूप में प्रयुक्त हों ।

(xiii) संधि तथा समासः—दुरूह संधियों से बचा जाय । शब्दों के मध्य हाइफन लिख कर दो शब्दों की संधि या समास प्रदर्शित किये जांय ।

(xiv) हलन्त, विसर्ग आदि का उपयोग :—हलन्त एवं विसर्गों के प्रयोग में संशुद्धता का स्मरण रखा जाय । उदाहरणार्थ, रूपवत, सामान्यतः, विकल्पतः, आदि ।

(इ) टिप्पणियां :—शब्दावली के सम्बन्ध में, सामान्य परिचर्चा में सुगमता तथा साहित्य सृजन में इसके उपयोग के अवसर पर सुविधा हो इस दृष्टिकोण से इस स्थल पर कुछ विचारणीय बिन्दु प्रस्तुत करना समुचित होगा ।

(i) दूरगामी परिणामों को लक्ष्य में रखते हुये शब्दों के निर्माण अथवा चयन एवं लेखन तथा उच्चारण में पर्याप्त सावधानी तथा एकरूपता की रक्षा आदि की आवश्यकता है । उदाहरणार्थ, मिथेनाल, मिथेनल, मिथेनॉल, इनमें मिथेनाल शब्द अशुद्ध है, अन्य दो शब्द

क्रमशः ऐल्डिहाइड तथा एल्कोहॉल का प्रतिनिधित्व करते हैं यहां यह प्रेक्षणीय है कि विज्ञान शब्दावली (१९६४ संस्करण पृ० ३) में Methanol के लिये शब्द मेथेनाल दिया गया है, जबकि, विज्ञान शब्दावली III में, Methanol के लिये मेथेनेल शब्द दिया गया है इन दो शब्दों 'में' मे तथा 'मैं' एवं 'नै' सम्बन्धी उच्चारण भेद पर्यवेक्षणीय है। उच्चारण, प्रचलित उच्चारणों के समान नहीं है। इन उच्चारणों के सम्बन्ध में प्रयुक्त नियमों का संकेत भी शब्दावली में होना आवश्यक था, जोकि वर्तमान प्रकाशनों में उपलब्ध नहीं है। कुछ और उदाहरण प्रस्तुत करना भी उपयुक्त होगा। एसिट-अमाइड वाले प्रचलित उच्चारण का शब्द ऐसेट-ऐमाइड (पृ० ३, शब्दावली भाग I) यहां यदि ऐसेट शब्द ऐमाइड से पृथक् लिखा गया है तो ऐसेट में ट् हलन्त होना था। ऐसीट उच्चारण भी संभावित या अधिक उत्तम होता, क्योंकि ऐसीटिक अम्ल के लिये 'ऐसीटिक' अम्ल शब्द प्रयुक्त किया गया है। सम्भवतः उक्त लेखन पद्धति में अंग्रेजी वर्ण विन्यास (स्पेलिंग) के प्रतिबिम्बन का लक्ष्य रखा गया हो। किन्तु लेखन पद्धति में स्थैर्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उसी पृष्ठ पर Acetal के लिये ऐसेटल (तुलना कीजिये ऐसेट ऐमाइड से) न रखते हुये ऐसीटैल रखा गया है। यहां 'से' एवं 'सै' सम्बन्धी अंतर ध्यानाकर्षणीय है। इसी प्रकार आक्जेलेट उच्चारण वाले प्रचलित शब्द के हेतु शब्दावली भाग I में आक्सेलेट तथा Oxalic acid के लिये आक्सेलिक अम्ल लिखा गया है जबकि स्नातकोत्तर शब्दावली भाग ३ में oxalate के लिये आक्सेलेट तथा Oxalic acid के लिये आक्सैलिक अम्ल शब्द लिखे गये हैं। यहां 'वज़े', 'वसें', वसै के अंतर पर्यवेक्षणीय हैं। मात्राओं के प्रयोगों के हेतु स्पष्ट और स्थिर विनिमयों का निर्माण तथा संकेत आवश्यक है। हिन्दी और संस्कृत भाषाओं का देवनागरी लिपि में लेखन करने पर लेखन तथा उच्चारण की एकता रहती है, अतः शब्दो के लेखन में सजगता आवश्यक है, ताकि उच्चारण की अशुद्ध परम्परा न पड़ जाये। संक्रमण के इन २०-२५ वर्षों में किये गये कार्यों के दूरगामी परिणाम होंगे, यह सर्वदा स्मरण रखना आवश्यक होगा।

(२) एक ही शब्द Complex (ion या अणु) के लिये जहां विज्ञान शब्दावली भाग I (पृ० १०९) में स्पष्टतः संकर शब्द का प्रयोग है, वहीं स्नातकोत्तर शब्दावली (पृ० २३) में संकुलन शब्द का प्रयोग है। ऐसे प्रयोगों के सम्बन्ध में समानता तथा स्थिरता आवश्यक है। अनुसंधान लेखों की सारांश पुस्तिका के सम्पादन के अवसर पर, वर्तमान लेखक को यह अनुभव हुआ है कि एक ही शब्द Complex के लिये विभिन्न लेखकों ने जटिल, संकर, समिश्र, संकुल आदि का प्रयोग किया है। यह सम्भवतः शब्दावली के सावधानीपूर्वक अवलोकन न कर पाने अथवा अन्य कारणों से हुआ है। हम सब यह स्पष्टतः तय कर लें कि संमिश्र शब्द का प्रयोग Complex number या Complex Impedance–जबकि जटिल शब्द का प्रयोग, Complex data या Complex Problem के संदर्भ में करेंगे, इसी प्रकार संकर एवं संकुल शब्दों के अर्थ स्थैर्य के सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है।

(iii) शब्दावली में कई ऐसे शब्द हैं जिनके हेतु एक साथ कई पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं; उदाहरणार्थ, Constant के लिये नियत, स्थिर, अचर, अचल, एक समान, सतत, अविरत शब्दों का प्रयोग किया गया है। संगोष्ठी के हेतु प्राप्त लेखों तथा अन्य ग्रन्थों के अध्ययन से लेखक ने यह पाया है कि एक ही शब्द Stability Constant के लिये लेखकों ने स्थायित्व स्थिरांक, अचर, नियतांक आदि का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में भी एक समानता आवश्यक है। उदाहरणार्थ, सार्वत्रिक स्थिर अंकों जैसे N, π आदि के लिये नियतांक शब्द का प्रयोग हो, जबकि K आदि वैयक्तिक प्रयोगों द्वारा प्राप्त स्थिर अंकों के लिये स्थिरांक शब्द का प्रयोग हो। अचर शब्द का प्रयोग किसी चलनशील वस्तु के किसी स्थान पर स्थिरता के हेतु प्रयोग हो। अतः इस प्रकार के एक ही शब्द के विभिन्न संकल्पनात्मक पर्यायों के लिये व्यावहारिक स्थिरता सम्बन्धी समस्या भी विद्वद्वृन्द के लिये विचारणीय है।

(iV) शब्दावली में Excretion तथा Emission

दोनों ही शब्दों के लिये हिन्दी पर्याय, उत्सर्जन प्राप्त होता है। यह स्पष्ट है कि दोनों शब्दों के संकाल्पनिक अर्थ भिन्न हैं अतः भिन्न पर्यायों की यथासंभव व्यवस्था आवश्यक है। वैसे संदर्भानुसार एक ही शब्द का भिन्न अर्थों में प्रयोग करने की परिपाटी है, किन्तु शब्द भण्डार की वृद्धि तथा अभिव्यक्ति की उत्तम परिशुद्धता की दृष्टि से, ऐसे समस्त उदाहरणों में भिन्न भिन्न शब्द स्थिर करना उत्तम होगा।

(v) शब्दावली में मुद्रण की भी कई अशुद्धियां प्रतीत होती हैं। इनके प्रति भी सावधानी आवश्यक है। उदाहरणार्थ Butanol के लिये ब्यूटोनाल है जबकि Butaldehyde के लिये ब्यूटेलिडहाइड। ऐसी छोटी मोटी अशुद्धियां अगले संस्करणों में दूर की जा सकती हैं तथा लेखकगण स्वविवेक का उपयोग कर इनका शुद्ध रूप प्रयुक्त कर सकते हैं।

(vi) अनुसंधान स्तरीय ग्रन्थों के लेखन में, विदेशी लेखकों के नामों के शुद्ध उच्चारणात्मक लेखन तथा अनुसंधान पत्रिकाओं के नामों के लेखन में एकरूपता हो इस दृष्टि से भी शब्दावली के अंत में संक्षिप्त परिशिष्ट युक्त की जा सकती है या अलग से एक संक्षिप्त सूची प्रकाशित की जा सकती है। उदाहरणार्थ, Regnault का रेन्यू, रेना, रेगनाल्ट, रेनाल, क्या उच्चारण हो? इस सम्बन्ध में विभिन्न भाषाओं के विशेषज्ञ मिल कर मतैक्य प्राप्त करें। इसी प्रकार J.Amer.Chem.Soc को जे० अमेरि० केम० सोसा० या जे० अमेर० केम्० साक०, क्या लिखा जाय इस सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देशावली हो।

(vi) जहां क्लिष्टता, अत्यधिक संस्कृत निष्ठता, शुद्धिवादिता एवं सुधार विरोधिता से बचना आवश्यक है, वहीं अत्यधिक सरलीकरण, सामान्य वर्ग की अनावश्यक पुष्टि, समालोचना के प्रति असहिष्णुता अथवा लोकप्रियता के मोह से ऊपर रखना आवश्यक होगा। अतः कुछ संस्कृत निष्ठ नाम जिनकी पृष्ठभूमि में मातृकान्यास, तंत्र तथा पाणिनीय जैसे व्याकरणों के गहन सिद्धान्त हैं उनको यथावत् लेना उत्तम होगा। उदाहरणार्थ "अहम्" जैसे शब्द, जिनके प्रयोग की पृष्ठभूमि में तंत्र, योग, दर्शन तथा माहेश्वर सूत्रों आदि की महान परम्परा रही है, यथावत लेना चाहिये। इसी प्रकार और भी कई विचारणीय बिन्दु हैं, जिन पर परिचर्चा की जा सकती है।

रसायन पर शास्त्रीय साहित्य सृजन में हिन्दी की साहित्य शैली की रक्षा की आवश्यकता

विदेशी भाषाओं के ग्रन्थ का आधार लेकर, मौलिक अथवा अनुवाद गत– साहित्य के सृजन के अवसर पर यह अपेक्षित है कि हम हिन्दी की प्रांजला, साहित्य तथा शैली को बनाये रखें। बहुधा कई मौलिक ग्रन्थों, अथवा अनुवाद ग्रन्थों में अंग्रेजी भाषा की शैली और प्रभाव स्पष्ट झलकते हैं तथा विषय वस्तु का बोध तो दूर, वाक्यों का अर्थ समझना भी दुष्कर हो जाता है। शब्दशः अनुवाद न करते हुये वाक्य या कण्डिका (पेराग्राफ) का मन्तव्य पूर्णतः समझ कर, भावानुवाद प्रणाली, जिसमें, हिन्दी का प्रवाह बना रहे, अधिक उपयुक्त होगी। रसायन के किसी विषय या उपविषय को दीर्घकाल तक पढ़ाने वाले, हिन्दी के जानकार विद्वान् से ही उस विषय के संबंधित मौलिक ग्रन्थ लिखाये जायं या अनुवाद कार्य कराया जाय तो उत्तम होगा।

पाठ्य ग्रन्थ :

माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर : जहां तक माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर के हेतु रसायन विज्ञान के शिक्षण सम्बन्धी साहित्य का प्रश्न है, हिन्दी माध्यम के कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं तथा विद्यार्थी, व्यापक रुप में हिन्दी माध्यम का ही वरण करते हैं। इस स्तर के उत्तम ग्रन्थों के निर्माण में जहां सैद्धान्तिक विवरणात्मक परिशुद्धता एवं आधुनिकतम विकास के साथ अनुरूपता का स्मरण रखना आवश्यक है, वहीं लिखे गये शब्दों की उच्चारण की शुद्धता तथा संकल्पनात्मक स्थिरता पर भी उतना ही बल दिया जाना चाहिये। प्रारंभिक कक्षाओं से लेकर अंतिम कक्षाओं तक एक जैसा शाब्दिक उच्चारण और शब्दिक अर्थ हो। संकर एवं संकुल शब्दों

जैसी उपर्युक्त स्थितियां उत्पन्न न हों।

स्नातक स्तर :—स्नातक-स्तर पर भी रसायन की विभिन्न शाखाओं में पर्याप्त पाठ्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ पाठ्य ग्रन्थ उत्तम कोटि के हैं, तथा प्रदर्शनी में भी रखे गये हैं। इन ग्रन्थों के सृजन में भी सैद्धान्तिक शुद्धता के साथ, शैली, भाषा प्रवाह, बोधगम्यता, उच्चारण तथा लेखन की परिशुद्धता तथा एक समानता का लक्ष्य आवश्यक है।

स्नातकोत्तर स्तर:—समस्या मूलतः स्नातकोत्तर स्तर के ग्रन्थों के निर्माण तथा प्रकाशन की है। यह हर्ष का विषय है कि मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आदि की रचना अकादमियों ने इस ओर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया है। जहां रसायन की विभिन्न शाखाओं के विदेशी भाषाओं के (विशेषतः अंग्रेजी) के उत्तम, प्रचलित तथा मानक ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य हो रहा है, वहीं विश्वविद्यालयों के निष्णात विद्वानों के द्वारा, मौलिक पुस्तिकाएं (मोनोग्राफ) तथा ग्रन्थों की रचनाएं भी करवायी जा रही हैं। मध्यप्रदेश में डा० प्रभुदयालजी अग्निहोत्री के कुशल संचालन में यह कार्य संतोषजनक गति से प्रगतिशील है। अन्तिम दो तीन वर्षों में कई छात्रोपयोगी पुस्तिकाएं, पाठ्यग्रन्थ तथा मानक ग्रन्थ एवं अनुसन्धान स्तरीय पुस्तकें प्राप्य हो सकेंगी। पाश्चात्य मानक ग्रन्थों के अनुवाद तथा भारतीय विद्वानों द्वारा लिखी गयीं स्नातकोत्तर स्तरीय मौलिक पुस्तिकाओं, मानक पाठ्य ग्रन्थों आदि से रसायन विज्ञान का हिन्दी माध्यम में साहित्य, समृद्ध हो जाने पर, अनुसन्धान स्तरीय कार्य, पत्रिका प्रकाशन आदि भी तीव्र गति से होने लगेगा।

ग्रन्थ लेखन में विषय वस्तु के बोध में सुगमता हो, भाषा यथासम्भव सरल हो तथा अभिव्यक्ति में स्पष्टता हो, ये लक्ष्य सर्वदा सामने रखा जाना आवश्यक है किन्तु स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्य ग्रन्थों में भाषा की प्रांजलता स्वाभाविक रूप से होगी ही। शास्त्रीय प्रकृति के उच्च-स्तरीय ग्रन्थों में, विशिष्ट संकल्पनाओं के वाहक शब्द, पाठक, विद्वानों तथा विद्यार्थियों को प्रारम्भ में भले ही कठिन, प्रतीत हों तथा भाषा भी भले ही संस्कृत निष्ठा क्लिष्टा प्रतीत हो, किन्तु शाब्दिक अभिव्यन्जन के सूक्ष्म स्तर तक ले जाने, विषय के गांभीर्य की अनुरूपता, अनुसंधान कार्यों में सहयोग, मौलिक चिन्तन में गहराई आदि की दृष्टि से यह स्थित वरणीय होना चाहिये। क्योंकि अभी का कार्य परम्पराओं का निर्माता होगा तथा शताब्दियों तक प्रभावशाली होगा, अतः इस संक्रमण काल में हम सब सहिष्णु रहें तथा परिश्रम के हेतु तत्पर रहें। जन सामान्य के लिये लिखे जाने वाले लोकप्रिय साहित्य की भाषा से इन ग्रन्थों की भाषा की तुलना नहीं की जानी चाहिये। बी० एस-सी० स्तर तक हिन्दी माध्यम से पढ़कर आने वाले छात्र के हेतु वैसे भी स्नातकोत्तर स्तरीय हिन्दी ग्रन्थ भाषा की दृष्टि से कठिन प्रतीत नहीं होंगे।

पाठ्यग्रन्थों में विदेशी विद्वानों के ग्रन्थों के संकल्पनात्मक तथा अन्य चित्र किंचित् संशोधन के साथ सधन्यवाद लेकर अधिकतम संख्या में देने से, विषय बोध तथा ग्रन्थ लोकप्रियता की दृष्टि से हितकर कार्य होगा। इसी प्रकार अधिकतम मौलिक संकल्पनात्मक चित्र दिया जाना भी श्रेयस्कर होगा।

पाठ्यग्रन्थों तथा मानक ग्रन्थों एवं अनुसंधान स्तरीय पुस्तिकाओं का कलेवर अनावश्यक रूप से न बढ़ जाये इस दृष्टि से उन अनुसंधान लेखों तथा समीक्षाओं एवं सन्दर्भ-ग्रन्थों की लम्बी सूची न देते हुये, यदि उस ग्रन्थ का ही संदर्भ दे दिया जाय जिसके आधार से, वे समस्त सन्दर्भ लिये गये हैं तो यह कार्य निष्ठापूर्ण, समय, शक्ति और अर्थ व्यय से रक्षा का कार्य होगा। अत्यन्त आवश्यक या वास्तविक रूप में देखे गये अनुसन्धान संदर्भ ही दिये जांय। सामान्यतः स्वयं लेखक एवं पाठक इन मौलिक संदर्भों को कदाचित देखते हैं। शोधकर्ता ही इनका उपयोग करते हैं। ग्रन्थों के अंत में द्विविध शब्दावली (हिन्दी, अंग्रेजी, अंग्रेजी-हिन्दी) देना प्रारम्भिक कुछ वर्षों तक किये गये प्रकाशनों में उपयुक्त होगा। हिन्दी में रसायन विज्ञान पर किये गये प्रारम्भिक प्रकाशनों में न लाभ, न हानि का दृष्टिकोण अपनाना उचित होगा।

इससे प्रकाशनों की लोकप्रियता तो बढ़ेगी ही, किन्तु हिन्दी के प्रयोग के लक्ष्य की सिद्धि में सफलता मिलेगी।

अनुसंधान साहित्य (पत्र पत्रिकाएं, मानक सारणियां, मानक कोष आदि)

(विश्वगत विकास से सामञ्जस्य एवं विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त)

हिन्दी में रसायन पर अनुसंधान-साहित्य नगण्य सा ही है। विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद द्वारा अनुसंधान पत्रिका का प्रकाशन होता है। इसी प्रकार, 'विज्ञान-प्रगति' आदि मासिक तथा त्रैमासिक पत्र भी, देहली आदि स्थानों से प्रकाशित होते हैं। अनुसंधान साहित्य के विकास के हेतु समीक्षात्मक त्रैमासिक पत्रिकाएं रसायन की विभिन्न शाखाओं में अनुसंधान पत्रिकाएं यथा, भौतिक रसायन अनुसन्धान पत्रिका, जीव रसायन अनुसंधान पत्रिका आदि प्रकाशित की जा सकती हैं। कार्य को त्वरा, सौष्ठव, शक्ति एवं कार्यभार के विकेन्द्रीकरण, सबको समान अवसर आदि को दृष्टिपथ में रखते हुये, विभिन्न विश्वविद्यालयों के रसायन विभागों को इन पत्रिकाओं के प्रकाशन के हेतु कार्यभार सौंपा जा सकता है। उचित अनुदान तथा योग्य विद्वान सहकारियों तथा कार्यालय-सहयोगियों के हेतु आंशिक समयात्मक सेवाओं के स्पष्ट प्रतिबन्धों का निर्माण कर, आकर्षक वेतन तय किये जा सकते हैं तथा सुविधाएं दी जा सकती हैं। यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि, स्नातकोत्तर स्तर पर विदेशी भाषाओं (विशेषतः अंग्रेजी तथा फ्रेंच, एवं रूसी आदि) का अध्ययन अनिवार्य करना होगा। यह यहां के विद्वानों के विदेश प्रेषण, वहां से आधुनिकतम विकास का ज्ञान प्राप्त करने तथा विदेश में प्रकाशित उत्तम साहित्य को हिन्दी जगत में लाने की दृष्टि से आवश्यक होगा। भाषागत दृष्टि से भी विश्वविद्यालयों में केन्द्रीकरण किया जा सकता है। कुछ विश्वविद्यालय फ्रेंच में, अन्य रूसी आदि में विशेषता लिए रहें। ऐसे विश्वविद्यालयों को संबन्धित श्रेष्ठ विदेशी निबन्धों, अनुसंधान लेखों तथा ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य सौंपा जा सकता है।

छात्रों का चयन आदि

सामान्यतः विद्यार्थियों की निस्यंदन क्रिया उच्चतर माध्यमिक स्तर से ही प्रारम्भ हो जाती है। सफल हुये छात्रों का बड़ा प्रतिशत, व्यवसाय अथवा तकनीकी आदि क्षेत्रों में चले जाते हैं अथवा नौकरी करते हैं। स्नातकोत्तर स्तर पर अनुसंधान की पात्रता तथा रूचि रखने वाले प्रतिभावान छात्र ही स्नातकोत्तर तथा शोध स्तर तक आ पावें यह व्यवस्था श्रेयस्करी होगी। ऐसे छात्रों में हिन्दी में लेखन तथा भाषा विशेष हिन्दी में अनुवाद आदि की योग्यता उत्पन्न की जाने तथा उनकी प्रतिभा को चमकने का अवसर देने तथा प्रोत्साहन सम्बंधी व्यापक योजनाएं बनाना भी आवश्यक है। अनुसंधान साहित्य निर्माण की धारा अजस्र रूप से बहती रहे, इस हेतु यह एक महत्वपूर्ण सुझाव माना जा सकता है। हिन्दी में रसायन सम्बन्धी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय स्तर से सामंजस्य, ज्ञान के आदान-प्रदान की सुगमता, प्रतियोगिता में श्रेष्ठता की दृष्टि से इस ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

कुछ सुझाव

भारत की विभिन्न हिन्दी अनुसंधान पत्रिकाओं की "रसायन सारांशिका" (केमिकल एब्स्ट्रैक्ट्स) भी प्रकाशित की जा सकती है। रसायन पर किये गये विश्वगत अनुसंधान कार्य पर वार्षिक विवेचनाएं, त्रैमासिक समीक्षाएं भी प्रकाशित की जा सकती हैं।

अनुसंधान कार्य में मानक-सारणियों, पारिभाषिक कोशों, विश्वकोषों आदि की आवश्यकता होती है। ऐसे मानक ग्रन्थों, सारणियों आदि के प्रकाशन की भी आवश्यकता है। इस सम्बंध में गम्भीर विचार के बाद, स्पष्ट योजना बनाकर नैष्ठिक एवं त्वरित क्रियान्वय उपादेय होगा।

लोकप्रिय एवं अन्य साहित्य

रसायन विज्ञान के प्रति रुचि तथा हिन्दी माध्यम की अभिव्यक्ति की सरलता के प्रति बाल मन तथा

सामान्यजन आश्वस्त एवं आकर्षित हों इस दृष्टि से दैनंदिन के उपयोग में आने वाली रासायनिक वस्तुओं, अभिक्रियाओं, घटनाओं आदि के सम्बन्ध में रोचक तथा सरल भाषा में दिये गये वर्णनों वाली मासिक पत्रिकाएं, पुस्तिकायें 'क्या ? क्यों ? कैसे ?' आदि प्रकाशित किये जा सकते हैं। इस तरह का प्रतिनिधि साहित्य विज्ञान लोक (आगरा), विज्ञान (इलाहाबाद) तथा विज्ञान प्रगति (दिल्ली) तथा अन्य छात्रोपयोगी ग्रन्थों में पाया जा सकता है। छन्दों तथा सूत्र प्रणाली का उपयोग कर भी प्रारम्भिक छात्रों के उपयोग के हेतु हिन्दी में पुस्तिकाएं लिखी जा सकती हैं। यह कार्य असंभाव्य नहीं है। महान गणितज्ञ भास्कराचार्य की लीलावती रसरत्न समुच्चय, पारद संहिता आदि ग्रन्थ इस तथ्य के प्रमाण हैं कि छन्द, सूत्र प्रणाली का उपयोग सफलतापूर्वक बालोपयोगी तथा सुबोध्य विज्ञान साहित्य के सृजन में किया जा सकता है।

विद्यार्थियों में प्रारम्भ से ही, अनुसंधान जिज्ञासा, कठोर श्रम, साधन तथा तप की प्रवृति उत्पन्न करने के दृष्टिकोण से, हिन्दी में वैज्ञानिकों की प्रेरक जीवनियां प्रकाशित की जा सकती हैं।

स्वराष्ट्र निष्ठा एवं आत्म गौरव की भावना के विकास के दृष्टिकोण से वैदिक वाङ्मय में रसायनशास्त्र, कणाद एवं कपिल के वैशेषिक एवं सांख्य दर्शनों के तथा जैन दर्शन के परमाणुवाद सम्बन्धी चिंतन पर रोचक एवं शास्त्रीय पुस्तिकायें, प्रकाशित की जा सकती हैं। भारतीय रस साहित्य पर नागार्जुन, वागभट्ट, गोविंद भगवत्पाद, तीसट आदि के कार्यों का विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। प्राचीन भारत में रसायन के विकाश पर बहुत कार्य किया जा सकता है। इस क्षेत्र में डा० सत्यप्रकाश के कई श्रेष्ठ ग्रन्थ पर्यवेक्षणीय हैं। यद्यपि प्रारम्भ में युगानुरूप छात्रोपयोगी साहित्य के सृजन को महत्व देना होगा किन्तु जीवनी, इतिहास आदि से सम्बन्धित साहित्य का भी कई कारणों से अपना विशिष्ट महत्व है अतः इस ओर भी ध्यान दिया जाना उचित होगा।

लोकप्रिय मासिक पत्रिकाओं तथा साप्ताहिकों को रसायन स्तंभ प्रकाशन के हेतु आर्थिक सहयोग या अन्य प्रकार से प्रोत्साहन एवं प्रेरणा दिया जा सकता है। स्वयं अकादमी रसायन पर लोकप्रिय मासिक पत्र प्रकाशित करवा सकती है।

रसायन के शिक्षण के हेतु सामग्री

फिल्में : फिल्म प्रदर्शनों के माध्यम से रसायन के गूढ़ सिद्धान्तों को मनोरंजक रुप में, सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है। इस क्षेत्र में USAID तथा NCERT के समन्वित प्रयासों से चलाई जा रही, ग्रीष्म शिक्षण संस्थाओं में किये गये सफल फिल्म प्रदर्शन हमारे लिये प्रेरक हो सकते हैं। इन फिल्मों का हिन्दी भाषान्तरण सरलतापूर्वक किया जा सकता है। गुजराती में ऐसा प्रयोग किया जा चुका है। अतः हिन्दी माध्यम को लोकप्रिय बनाने के हेतु, उच्चतर माध्यमिक तथा स्नातक स्तर की संक्षिप्त फिल्में भी निर्मित एवं वितरित करना एक प्रभावशाली कार्य होगा।

चार्ट : देवनागरी अक्षरों एवं हिन्दी माध्यम में प्रस्तुत भित्ति चित्र भी मानक शब्दावलियों के आधार पर निर्मित कराये जायें। हिन्दी माध्यम को लोकप्रिय एवं इसकी सक्षमता तथा अकादमी और इसके द्वारा किये गये कार्यों की ओर सभी का ध्यान आकर्षित करने तथा जन मानस के निर्माण के हेतु प्रतिनिधि प्रयोग के रुप में "आवर्त सारणियां" विभिन्न आकारों में प्रकाशित की जा सकती हैं। प्रारम्भ में बृहदाकार विस्तृत सारणियां कक्षाओं में अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से स्नातकोत्तर तथा स्नातक संस्थाओं को निःशुल्क या नाम मात्र के मूल्य पर वितरित की जा सकती हैं। वैसे, सारणियां भित्ति चार्टों के रूप में अभी भी प्राप्य हैं किन्तु उनमें परिवर्द्धन तथा संशोधन अपेक्षित है। समस्त शिक्षक तथा छात्र वर्ग में पुस्तक आकार की तथा पोस्ट कार्ड के आकार की सारणियां निःशुल्क वितरित की जा सकती हैं। इस कार्य पर, अधिक व्यय न आ पायेगा और हिन्दी माध्यम तथा अकादमियों के कार्यों की सफलता की दृष्टि से लाभ अधिक

होगा। इसी प्रकार स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के उपयोग के हेतु विविध संकल्पनाओं सम्बंधी चार्ट यथा औद्योगिक स्तर पर रासायनिक यौगिकों के निर्माण आदि के प्रक्रमों के शिक्षण में सहायता के हेतु भित्ति चार्ट निर्मित कराये जा सकते हैं।

क्रिस्टलों के प्रतिरूप, अणुओं के संघटन के परिचायक प्रतिरूपों के चित्र अथवा काष्ठ एवं मृत्तिका के प्रतिरूप बनवाये जा सकते हैं, जिनमें जहां भी सम्भव हो हिन्दी के संकेतों और देवनारी लिपि के अक्षरों का प्रयोग हो।

कुछ सामान्य सुझाव :

उपर्युक्त विवेचन में परिचर्चा की सुगमता के हेतु विचार बिन्दु प्रस्तुत करने के प्रयास के साथ ही संक्षिप्त सूचिनात्मिका समीक्षा भी दी गयी है। इस अवसर पर हिन्दी में रसायन विज्ञान के शिक्षण सम्बन्धित साहित्य एवं सामग्री के विकास के सम्बंध में निम्नलिखित सुझावों, की ओर ध्यानाकर्षण करना भी उपयुक्त है जिनका समय तथा सुविधा पाकर क्रियान्वय करना श्रेयस्कर होगा।

(i) हिन्दी भाषी प्रान्तों में सभी विश्वविद्यालयों के रसायन विभाग योजनापूर्वक, कार्य विभाजन तथा नियोजन का स्मरण रखते हुये हिन्दी में अनुसंधान पत्रिकायें प्रकाशित करें।

(ii) छात्रों की लेखन शक्ति के विकास, उनकी प्रतिभा को चमकने का अवसर देने तथा प्रतिभाशाली छात्रों के चयन में सुविधा के लक्ष्य से, स्नातकोत्तर स्तरीय पत्रिकाएं प्रकाशित की जाँयें।

(iii) मध्यप्रदेश या समस्त हिन्दी प्रान्तों के रसायनज्ञों की संस्था निर्मित की जाय जिसका लक्ष्य हिन्दी में रसायन के साहित्य का विकास हो। इसे अकादमियाँ सब सम्भव सहायतायें दें। इसके गठन के हेतु आधार रूप में 'इंडियन केमिकल सोसायटी' का संगठन लिया जा सकता है। इस संस्था की शाखायें तथा उपशाखायें विभिन्न स्थलों पर हों।

(iv) प्रति वर्ष साप्ताहिक ग्रीष्म-गोष्ठियाँ आदि आयोजित की जावें, जिसमें वर्ष भर के विकास तथा कार्यकलापों से विद्वानो को परिचित कराया जाये। इन गोष्ठियों में साहित्य तथा सामग्री प्रदर्शनियां, अनुसंधान लेख वाचन, निबंध वाचन, परिचर्चाओं, कक्षा-गत व्याख्यानों आदि के आयोजन किये जायं।

(v) श्रेष्ठ लेखकों तथा विद्वानों को समुचित रूप में सम्मानित करने के हेतु, पुरस्कार आदि की व्यवस्था की जावे

(vi) हिन्दी भाषी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर तक हिन्दी माध्यम से अध्ययन-अध्यापन अनिवार्य कर दिया जाय।

(vii) रसायनज्ञों की विभिन्न पदों पर (विशेष कर शिक्षण सम्बंधी पदों पर) नियुक्तियों के हेतु वरण करने के अवसर पर विषय के ज्ञान के साथ ही हिन्दी के ज्ञान को प्राथमिकता दी जाये।

(viii) उच्चतर माध्यमिक स्तर तक संस्कृत अनिवार्य कर दी जाये, क्योंकि हिन्दी के अध्ययन में इसका महत्व स्वयं सिद्ध है।

(ix) अकादमी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, विश्वविद्यालय एवं राज्य शासन तथा विभिन्न विद्यालयों के रसायन विज्ञान विभाग, मिलकर सम्मिलित रूप से प्रत्येक रसायन विभाग में हिन्दी मुद्रांकन यन्त्रों (टाइप राइटर) की व्यवस्था करें। इससे कार्यालयीय स्तर पर भी हिन्दी का उपयोग होगा। जहां भी संभव हो, रसायन सम्बन्धी पत्रव्यवहार हिन्दी माध्यम से ही हो। रासायनिक पदार्थों के विक्रेताओं, अन्य विक्रेताओं आदि से क्रय आदेश आदि के समय हिन्दी में ही पत्र-व्यवहार किया जाय तथा उनसे भी हिन्दी में ही पत्रोत्तर की अपेक्षा की जाय।

(xi) रसायन उद्योगों तथा सम्बन्धित विज्ञापन समितियों को नाम पट्टों, प्रचार पत्रों, पत्र व्यवहार आदि में हिन्दी के प्रयोग के लिये प्रेरित किया जाये तथा इस हेतु निःशुल्क सहायता की व्यवस्था की जाये।

[शेष पृष्ठ २२ पर]

परमाणु शक्ति एवं भारत

परमाणु शक्ति की ओर अग्रसर होने के सम्बन्ध में जितना विचार-विमर्श भारत में हो रहा है उतना विश्व के शायद ही किसी अन्य देश में हुआ हो। विश्व के परमाणु शक्ति में सशक्त पाँच देशों में इस क्षेत्र में विस्तार के सम्बन्ध में कभी भी इतना विचार नहीं किया गया। विश्वशान्ति का नारा लगाने वाले अनेक देश परमाणु शक्ति में अपने को सशक्त बनाने में अनवरत लगे हुये हैं।

भारतीय जनमत परमाणु शक्ति विस्तार के सम्बन्ध में तीन प्रकार के विचार प्रस्तुत करता है। एक समुदाय ऐसा है जो परमाणु शक्ति विस्तार एवं उसके विस्फोट को साथ साथ चाहता है। ये ऐसे लोग हैं जो हमारे परमाणु शक्ति विरोधी शर्त पर किये गये दस्तखत को तोड़ने के पक्ष में है। इनके मतानुसार ट्राम्बे अणुशक्ति संस्थान में प्राप्य प्लूटोनियम का प्रयोग परमाणु शक्ति विस्तार में बिना किसी शोधन के किया जा सकता है। यह भी सोचा जा रहा हैं कि यह कार्य पाँच वर्ष के अन्दर पूरा किया जा सकता है। दूसरा समुदाय परमाणु शक्ति के विस्तार के पक्ष में तो है परन्तु इसके तुरन्त विस्फोट का विरोधी है। इस समुदाय का मत है कि ट्राम्बे में प्राप्य प्लूटोनियम २३९ आइसोटोप का प्रयोग परमाणु शक्ति विस्तार में नहीं हो सकता, इसके लिये प्लूटोनियम २४० आवश्यक है। रानाप्रताप सागर एवं कलपक्कम संस्थान परमाणु शक्ति विस्तार में प्रयोग करने योग्य प्लूटोनियम का उत्पादन कर सकते हैं परन्तु इसकी लागत अलाभकर होगी। अतः यदि भारत परमाणु शक्ति का विस्तार चाहता है तो उसे एक नये संस्थान का निर्माण करना होगा जो मात्र परमाणु बम में प्रयोग करने योग्य प्लूटोनियम का उत्पादन करेगा। ऐसे संस्थान की स्थापना में कम से कम तीन वर्ष लगेंगे। यह संस्थान भारी पानी का प्रयोग करेगा, जो कि राना प्रताप सागर एवं कलपक्कम योजनाओं के अलावा होगी। ऐसी स्थिति में हमें भारी पानी की अपनी क्षमता को भी बढ़ाना पड़ेगा। यह कार्य भी तीन-चार वर्ष में पूरा हो पायेगा। तीसरा समुदाय परमाणु शक्ति विस्तार का पूर्णतया विरोध करता है। इस विचार धारा को मानने वाले परमाणु शक्ति विस्तार से विश्व-शान्ति को खतरा होने का दम भरते हैं।

भारतीय वैज्ञानिकों का विश्वास कि प्लूटोनियम बम उतना शक्तिशाली नहीं होगा जितना कि अन्य देशों के मेगाटन बम हैं। वर्तमान परिस्थिति में मेगाटन बम के निर्माण के लिये युरेनियम २३५ की आवश्यकता पड़ेगी जो कि प्रकृति में प्राप्य कुल युरेनियम का १/१४० वाँ भाग ही होता है। भारत में युरेनियम के स्रोत बहुत अधिक नहीं हैं। इस प्रकार युरेनियम की प्राप्त मात्रा के आधार पर केवल ३००० मेगाटन शक्ति का विस्फोट किया जा सकता है। इतनी शक्ति अर्जित करने के लिये लगभग ६०,०००० से

७५,०००० लाख रुपये व्यय करना पड़ेगा। इतना धन थोड़ी सी शक्ति के लिये व्यय करना उचित नहीं होगा। थोरियम के स्रोत भारतवर्ष में सर्वाधिक हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुये स्वर्गीय डा० भाभा ने भारत के लिये अधिक समय लेने वाली परमाणु शक्ति योजना का प्रस्ताव किया था। योजना के प्रथम चरण में प्लूटोनियम २४० के उत्पादन की बात कही गयी थी। दूसरे चरण में प्लूटोनियम का प्रयोग रिऐक्टर के ईंधन के रूप में होना था। इस चरण में थोरियम से युरेनियम २३३ उत्पन्न करने की योजना थी। योजना के तीसरे एवं अन्तिम चरण में बहुमुखी परमाणु शक्ति विस्तार की रुपरेखा तैयार की जा सकती थी।

थोरियम से युरेनियम २३३ का प्राप्त करना शक्तिशाली रिऐक्टर पर निर्भर करता है। प्रयोगात्मक स्थिति में ऐसे रिऐक्टर को कलपक्कम संस्थान में लगाया जा रहा है। यह संस्थान फ्रांस के सहयोग से शुरु किया जा रहा है। यदि रिऐक्टर के अन्दर थोरियम की उपस्थिति होगी तो अन्तिम प्राप्त उपज युरेनियम होगी।

डा० साराभांई द्वारा प्रस्तुत योजना बहुत ही सुलझी हुई एवं विस्तृत है। इस योजना के अनुसार अपने देश में परमाणु शक्ति विस्तार विनाशकारी न हो कर देश की बहुमुखी उन्नति का एक महत्वपूर्ण अंग होगा। यह योजना अपने अन्तिम चरण में परमाणु बम विस्फोट के अत्यन्त निकट होगी। इससे वे लोग भी संतुष्ट रहेंगे जो तुरन्त विस्फोट की विचारधारा रखते हैं।

विश्व के कई राष्ट्र जिनमें चीन भी एक है परमाणु शक्ति में सशक्त बनने की घोषणा कर चुके हैं। इस प्रकार इन देशों की स्थल सेना पूर्ण रूप से परमाणु शक्ति का लाभ प्राप्त करती है। कुछ लोगों के मतानुसार डा० साराभाई द्वारा प्रस्तुत की गई योजना विश्व में गलतफहमी पैदा करेगी। ये लोग जर्मनी एवं जापान द्वारा प्रस्तुत परमाणु शक्ति सम्बन्धी योजना को भूल जाते हैं जो कि अधिक विनाशकारी प्रभाव छोड़ती है। देश के कर्णधारों को यह जानना होगा कि आज सैनिक शक्ति परमाणु शक्ति के बिना प्रभावकारी नहीं होगी। सेना को आवश्यक परमाणु शस्त्रों से सज्जित करना होगा। वर्तमान वायुसेना जो लोह बमों का प्रयोग करती हो विज्ञान का दुरुपयोग कर रही है। आज अत्यंत संवेदनशील यंत्रों की आवश्यकता है जिससे कि स्थल, जल एवं वायु सेनायें एकसूत्र होकर कार्य कर सकें।

व्यापार व्यवस्था के लिये भी परमाणु शक्ति चालित जहाज एवं पनडुब्बियाँ अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। शिकारी पनडुब्बियों में भी यह व्यवस्था अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। आत्मरक्षा के लिये भी परमाणु शक्ति का विभिन्न उपयोग किया जा सकता है। उपरोक्त बातों को को देखते हुये देश के वैज्ञानिकों, विशेषकर अणुशक्ति संस्थान के लिये यह खुली चुनौती है कि वे आगे बढ़े एवं इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दें जिससे कि अपना देश भी सर्वतोन्मुखी विकास कर सके एवं विश्व के सशक्त राष्ट्रों में इसकी गणना हो। सरकार को वैज्ञानिकों की सहृदयता पूर्वक सहायता करनी होगी नहीं तो हम पीछे ही रह जाँयगे।

● ●

पाठकों से निवेदन

"विज्ञान" के प्रचार एवं प्रसार के सम्बन्ध में आपके सुझाव आमंत्रित हैं।

विज्ञान-वार्ता

यू० पी० ३०१

गेहूँ की उन्नतिशील बौनी जातियों के विकास अभियान की यू० पी० ३०१ एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके पौधों की अधिकतम् ऊँचाई ६०-७० से० मी० होती है। ऊँचाई में कम होने के कारण इसके गिरने का भय नहीं रहता। गन्ने की कतारों के बीच में लगाने के लिए यह सर्वोत्तम किस्म निर्धारित की गई है। यह किस्म गेहूँ की कल्यान सोना किस्म से करीब १० दिन पहले तैयार हो जाती है।

यू० पी० ३०१ किट्ट रोगों से प्रभावित नहीं होती। इसके लिये १३५ कि० ग्रा० नाइट्रोजन ५०-६० कि० ग्रा० फास्फोरस एवं ४० कि० ग्रा० पोटाश प्रति हेक्टेयर के हिसाब से खेत में डालना पड़ता है। खाद की उचित मात्रा, समय पर सिंचाई एवं अन्य आवश्यक कृषिकार्यों के समय मिलजाने पर इसकी उपज ५०-६५ क्विटल प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है। इसकी चपातियाँ भी बहुत अच्छी होती हैं। प्रोटीन की मात्रा कल्यान सोना से २० प्रतिशत अधिक होने के कारण इसकी चपातियाँ अधिक पौष्टिक भी होती हैं।

संकर आम

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली के उद्यान विभाग में आम की जाति सुधारने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। यहाँ से विकसित आम की नई किस्म "संख्या ६५" के फलों का वजन औसतन ३०७ ग्राम पाया गया है। यही नहीं इसके फल में लगभग ७५ प्रतिशत गूदा होता है केवल आकार में वृद्धि ही नहीं इसका स्वाद भी अन्य आम के फलों से अच्छा होता है। इस किस्म की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह हर साल फल देने वाली किस्म है। संकर आम फलोत्पादकों को अनेक रूप से लाभ पहुचायेंगे ऐसा विश्वास है।

अणु-द्रवण अनुसन्धान के क्षेत्र में प्रगति

संसार के विभिन्न भागों के वैज्ञानिक विगत २० वर्षों से नियंत्रित अथवा श्रृंखलाबद्ध अणु-द्रवण की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

उनके अनुसन्धान का अन्तिम लक्ष्य एक ऐसा द्रवण प्रति-क्रियावाहक यन्त्र का निर्माण करना है जो सुलभ सस्ते ईंधन का उपयोग कर प्रचुर परिमाण में विद्युतशक्ति का उत्पादन करने में समर्थ हो। इसमें ईंधन के स्थान पर समुद्री जल में पाए जाने वाले भारी उद्जन (ड्युटीरियम) का उपयोग किया जाएगा।

यद्यपि इस क्षेत्र में हो रहे अनुसन्धान की रफ्तार इस कारण बहुत धीमी है क्योंकि द्रवण प्रक्रिया के लिए विद्युत प्रभावित कणों द्वारा उत्पन्न अत्यन्त तप्त गैस को एक स्थान पर संचित करने की जरूरत है। ये कण एक-दूसरे के प्रति विकषर्ण का भाव रखते हैं।

इस प्रकार की प्रचण्ड ताप वाली गैस, जिसे 'प्लाज्मा' कहते हैं, किसी भी मामूली कण्टेनर (खोल) को क्षण भर में भाप बना सकती है। अतएव, अनुसन्धानकर्ता ऐसे चुम्बकीय क्षेत्रों का निर्माण करने के बारे में परीक्षण कर रहे हैं जो इस प्लाज्मा को 'वेकुअम चैम्बर' के मध्य भाग में सीमित करने अथवा पकड़ रखने में सक्षम हो। लेकिन, कठिनाई यह है कि विद्युतशक्ति इस प्लाज्मा से होकर प्रवाहित हो

सकती है तथा चुम्बकीय क्षेत्र पर उसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया के कारण चुम्बकीय क्षेत्र में गड़बड़ी पैदा हो जाती है तथा 'प्लाज्मा' गैस लीक कर जाती है।

इस कठिनाई पर विजय प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं तथा सैनडियागो, कैलिफोर्निया स्थित 'गल्फ जनरल एटोमिक' के एक वैज्ञानिक डा० टिहायर ओकावा ने इस दिशा में काफी प्रगति होने की सूचना दी है। डा० टिहायर ने बताया है कि वह एक ऐसी विधि का परीक्षण कर रहे हैं जिसके अन्तर्गत वह प्लाज्मा को ०.०७ सेकेण्ड तक बिल्कुल स्थिर रखने में सफल हुए हैं। अब तक किए गए प्रयोगों में 'प्लाज्मा' को जितने समय के लिए स्थिर किया जा सका है, उससे यह समय १० गुना अधिक है। डा० ओकावा की यह विधि अभी बिल्कुल प्रयोगात्मक अवस्था में है तथा उसका उद्देश्य 'अणु द्रवण' करना नहीं हैं।

● ●

[पृष्ठ ५ का शेषांश]

वैज्ञानिक तथ्यों की पुष्टि की है, जो अब तक संभव नहीं थी।

सन् १९६२ के लगभग कई रसायनशास्त्रियों को इस नई खोज की संभाव्य क्षमताओं का अहसास हुआ। तब से रसायनिक बन्धनता, क्रिस्टल संरचना, इलेक्ट्रान घनत्व इत्यादि गुणों के अध्ययन में इसका विस्तृत उपयोग हुआ है। अब तक ऐसे ३० तत्वों की खोज की जा चुकी है, जो मॉसबाउअर प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। इनमें अति प्रमुख तत्व Ir^{191}, Fe^{57}, Sn^{119} उल्लेखनीय है। मॉसबाउअर स्पेक्ट्रोमीटर का निर्माण हो चुका है, जिसकी सहायता से यह सब संभव हो सका है। निसंदेह मॉसबाउअर प्रभाव की खोज विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

● ●

[पृष्ठ १८ का शेषांश]

(xii) रसायन साहित्य के सृजनकर्ता लेखकों, अनुवादकों आदि को प्रोत्साहित करने के लिये विशेष सुविधायें दी जावें। अध्ययनार्थ ग्रन्थों के क्रय, लेखन सामग्री के क्रय, चित्र निर्माण आदि के हेतु समुचित आर्थिक सहायता दी जाय। श्रेष्ठ पुस्तकालयों के ग्रन्थों के अध्ययन तथा उपयोग हेतु यात्रा सम्बन्धी या ग्रन्थों को लेखक तक पहुंचाने में सुविधा सम्बंधी व्यवस्थाएं की जायें। ऐसे लेखक-शिक्षकों पर से, दैनंदिन का शिक्षण सम्बन्धी कार्यभार कुछ कम कर दिया जाय तथा उनके प्रोत्साहन के हेतु सभी सम्भव कार्य किये जायें।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि निष्ठापूर्वक वे सब प्रयत्न योजनाबद्ध रुप में किये जायें जिनसे हिन्दी में रसायन विज्ञान पर साहित्य एवं सामग्री का सब स्तरों के हेतु तथा रसायन के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टतम रूप में तथा तीव्रगति से विकास हो।

● ●

सम्पादकीय

ये कृषि मेले :

सितम्बर मास में दिल्ली के पूसा महाविद्यालय तथा पन्तनगर के कृषि विश्वविद्यालय में कृषि मेलों का आयोजन हुआ था। यह प्रतिवर्ष का नियम है। इस अवसर पर देश भर के या कई प्रदेशों के किसान, विशेषरुप से उन्नतिशील किसान, एकत्र होते हैं और अपनी अपनी समस्याओं को कृषि विशेषज्ञों के सम्मुख रखते हैं, कृषि सम्बन्धी एक वर्ष में हुई उन्नति को आँखों से देखते और अनुभव करते हैं। तथा नवीन ज्ञान एवं अनुभव लेकर वापस जाते हैं। ये कृषि मेले कृषकों के कुम्भपर्व या हज-यात्रायें बन चुके हैं।

कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना के पूर्व देश के विभिन्न भागों में कृषि प्रदर्शिनियाँ लगती थीं जिनमें कृषि विशारदों एवं कृषकों की यह सामान्य धारणा थी कि जुताई तथा कृषि कर्यों के लिये नये नये औजारों के ईजाद हो जाने से कृषि कार्य सुगम हो जावेगा किन्तु ज्यो ज्यों अनुसन्धान होते रहे, यह देखा गया कि कृषि उत्पादन बढ़ाने में कृषि यन्त्रों का उतना हाथ नहीं है जितना कि फसलों की नई किस्मों के विकास, खादों के चुनाव तथा उचित सिंचाई के साधनों का है। एक प्रकार से सारा कृषि-दर्शन ही पलटा खा गया है।

आज का किसान उन्नतिशील और अग्रणी है। वह गेहूँ धान, आलू, अरहर-सभी की नई किस्मो के सम्बन्ध में जानकारी चाहता है। वह कुछ सर्वथा नवीन फसलों के विषय में जानना चाहता है। चुकन्दर, सोयाबीन, अंगूर आदि ऐसी ही फसलें हैं जिनके प्रति उसकी अगाध रुचि है। वह इन्हें उगाकर धन कमाना चाहता है। अब वह खुशहाल है।

आज का किसान गेहूँ और धान की नई किस्में बोकर इतनी अधिक उपज प्राप्त करने में समर्थ हुआ है कि वह कृषि में युगान्तर काहामी बन चुका है। उसे "हरित क्रान्ति" में विश्वास हो उठा है। उसे खेती लाभकर पेशा जान पड़ी है। वह पेट भर खाने लगा है और अधिक उपजाकर अपने देशवासियों के लिये बचाने भी लगा है। उसने ६-७ वर्षों में सुजलां सुफलां शस्यश्यामलाँ भारत भूमि को चरितार्थ कर दिया है। उसने पहली बार चैन की साँस ली है। उसे विश्वास हो चला है कि संसार से भुखमरी का अन्त किया जा सकता है। वह कृतसंकल्प है कि अधिक से अधिक उपज पैदा करके दिखावेगा। तभी तो वह कृषि मेलों की ओर आकृष्ट होता है और वहाँ जाकर अधिकारियों से अपनी समस्याओं का हल चाहता है।

यह शुभ लक्षण है। एक ओर जहाँ इन मेलों से उन विद्यालयों को आत्म प्रचार का अवसर मिलता है, वहीं उन्हें अपने किये हुये कार्यों को घर घर तक पहूँचाने का आत्मिक सुख भी मिलता है। उनके कार्य की अग्नि परीक्षा भी होती है और भविष्य के लिए नवीन द्वार खुलते हैं। उन्हें कुछ नया कर दिखाने के लिये प्रेरणा मिलती है ऐसा ही है इन कृषि मेलों का प्रभाव।

सन्तोष होता है इन मेलों की उपलब्धियों पर। किन्तु अभी भी बहुत कुछ करना शेष है। अभी भी कृषक उर्वरकों की उचित प्रयोग-विधियों से परिचित नहीं हैं। वे अब भी दुरभिसन्धि में फँसे हैं कि उनका प्रयोग करें या पैसे की बचत करें।

कृषकों को कृषि-साहित्य के सम्बन्ध में रुचि है किन्तु वांछित साहित्य अभी तैयार नहीं हो पाया। भाषा की

समस्या विशेषज्ञों के समक्ष बाधक है। कौन लोकप्रिय भाषा में उच्चस्तरीय ज्ञान को ढाले।

भारतीय समुन्नति की दिशा में कृषि मेलों का अतीव महत्व सिद्ध हो चुका है। देश की ७०% से भी अधिक जनता के लिये लोक संस्कृति के प्रतीक मेले प्रेरणा के स्रोत हैं। वे वहाँ जाकर तरह तरह की वस्तुयें खरीद और बेच सकें, इसका भी साथ साथ प्रबन्ध हो सके तो इनकी उपयोगिता और भी बढ़ जावे। एकाध पत्रिकायें उनकी भूख को शमित नहीं कर पावेंगी।

किन्तु एक ओर जहाँ कृषि विज्ञान अपनी सार्थकता सिद्ध करता है वहाँ विशुद्ध विज्ञान आज भी प्रचार की प्रवृत्ति से सर्वथा दूर जा पड़ा है। आज तक 'विज्ञान' मेले क्यों नहीं लगे? विडम्बना ही कहें कि विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के यत्न नहीं हो रहे हैं। इतना साहित्य आखिर किसके लिये रचा जा रहा है! क्या सांइस कांग्रेस ही ही विज्ञान मेला है? या फिर संग्रहालय एवं विश्वविद्यालय इन मेलों के प्रतिरूप हैं? सामान्य जन को विज्ञान से बडी दुराशा हुई है। वह अपने को लोकप्रिय या लोकगम्य न बनाकर दुर्गम बनाये रखना चाहता है आखिर क्यों? यह कब तक चलेगा?

लेखकों से निवेदन

'विज्ञान'' की सेवा रचनायें भेज कर करें। रचनायें हिन्दी में हों एवं पृष्ठ के एक ओर हासिया छोड़कर टंकित हों।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | कार्तिक २०२७ विक्र०, १८९२ शक अक्टूबर १९७० | संख्या १०

रेगिस्तान में पानी

□ डा० शिव प्रकाश

राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा चलाये गये 'भुखमरी से बचाओ' के अभियान में 'प्यास बुझाओ अभियान' भी सम्मिलित है । संसार में खाद्य समस्या अधिकतर उन देशों में विकट है जहाँ पानी का अभाव है और यदि पानी है भी तो उन साधनों की कमी है जिनके द्वारा सिंचाई का समुचित प्रबन्ध हो सके । पानी के अभाव का प्रभाव भूमि, पौधों तथा जीवों सभी पर पड़ता है । हमारे देश में भी राजस्थान प्रान्त के कुछ भागों में जल का सर्वथा अभाव है और प्रयत्न जारी है कि किसी प्रकार इस समस्या का हल हो सके । सहारा संसार का सबसे बड़ा रेगिस्तान है। यहाँ जीवन कितना कठिन है इसकी कल्पना भी कर पाना संभव नहीं है । निकटवर्ती तेरह देशों की करोड़ों जनता अब भी पानी की कठिनाई का सामना कर रही है। कहा जाता है कि इस रेगिस्तान में बालू के नीचे पानी का बहुत बड़ा भंडार है जो वहाँ की सारी कठिनाई को दूर कर सकने के लिये पर्याप्त है । प्राचीन काल से पृथ्वी के नीचे यह पानी बह रहा है। पाताल तोड़ कुओं का पाया जाना इसके प्रमाण हैं ।

एक समय था जब कि सहारा उष्ण कटिबन्ध में भारी वर्षा के क्षेत्र में था और यहाँ कई नदियाँ भी बहती थीं । इस काल में यह देश हरा-भरा था । नियोलीथिक तथा पेलियोलीथिक समय के बने हुये कुछ औजारों का पाया जाना यह प्रकट करता है कि किसी समय यहाँ पर काफी अच्छी आबादी रही होगी । किन्तु आज ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर यही भाग है जहाँ संसार में सबसे कम संख्या में लोग रह रहें हैं । कुछ क्षेत्र तो ऐसे हैं जहाँ वर्ष भर में २५ मिलीमीटर से अधिक वर्षा नहीं होती है । अधिकतम वर्षा १२५ मिलीमीटर है । गर्मी इतनी पड़ती है कि दिन का तापमान १२०°F तक पहुँच जाता है । इन परिस्थितियों में जो लोग रहते हैं वे वास्तव में प्रकृति से लड़ाई लड़ कर ही अपने जीवन निर्वाह का प्रबन्ध कर पाते हैं ।

सहारा के जलभृत (aquifer) में पाये जाने वाले

पानी का स्रोत उस समय से सम्बन्धित है जब सहारा में पर्याप्त वर्षा हुआ करती थी। अब भी रेगिस्तान की परिधि पर के भागों में जो वर्षा होती है उसके द्वारा इन जलभृतों में से खर्च हो जाने वाले पानी की पूर्ति होती रहती है। रेत के नीचे पाये जाने वाले पानी की खोज उस समय हुई जब मिट्टी के तेल को ढूँढ़ने के लिये सर्वेक्षण किया जा रहा था। यह पानी सात प्रमुख बेसिनों में पाया जाता है और इसकी क्षमता १५०,०००,००० लाख घनमीटर है। उद्गमो से प्रति वर्ष ४०,००० लाख घनमीटर जल की पूर्ति होती रहती है।

अछिद्र तलहटी के ऊपर पाया जाने वाला पानी ऊपर की पर्तों के दाब के कारण ऊपर उठता है और इसी से पाताल तोड़ कुंये का निर्माण होता है। पृथ्वी के तल तक पानी पहुँच पायेगा या नहीं यह निश्चित नहीं रहता और इसलिये इसे पम्प की सहायता से ही ऊपर लाया जा सकता है अथवा पृथ्वी के नीचे नहरों में होकर गुरुत्व बहाव के द्वारा लाया जा सकता है। यह पानी सदैव गतिशील रहता है। पाताल तोड़ कुंओं में विशेषतया यह पानी काफी दूर से चल कर ही पहुँचता है। वह गति गुरुत्व के कारण होती है। सहारा में वाष्पन की क्रिया भी पानी की ऊर्ध्वाधर गति में सहायक होती है।

जीव वैज्ञानिक सर्वेक्षण द्वारा भी पृथ्वी के नीचे के पानी का पता चलता है। रेगिस्तान में पाई जाने वाली टिड्डियों की जानकारी रखने वाले विशेषज्ञों के अनुसार यह कीड़े आर्द्र वातावरण में ही अंडे देते हैं और वहीं उनकी परवरिश करते हैं। सहारा में यह देखा गया है कि यह टिड्डियाँ सूखे स्थानों पर भी अंडे दिया करती हैं। स्पष्ट है कि टिड्डियों को यह आभास रहता है कि उस स्थान पर पानी का अदृश्य स्रोत है। अतः किसी सूखे स्थानों पर टिड्डियों द्वारा अंडा दिया जाना इस बात का द्योतक है कि उस स्थान पर पृथ्वी के नीचे बहने वाले पानी का कुण्ड है।

पृथ्वी के नीचे पानी का यह भण्डार पर्तों में विद्यमान रहता है। ये पर्तें आपस में मिलती नहीं हैं इसलिये इस पानी की आयु का पता लगाना संभव है। इसके लिये रेडियो-ऐक्टिव विधि को प्रयुक्त किया गया है। पानी में उपस्थित ट्राइटियम, कार्बन १४, अथवा यूरेनियम या थोरियम के समस्थानिकों की मात्रा के आधार पर ही आयु का पता लगाया जाता है। अब तक के परिणाम अपूर्ण हैं क्योंकि प्राप्त आँकड़े अपर्याप्त हैं। आयु निर्धारित करने में १३०० से ५७०० वर्ष तक अनिश्चिति होने की संभावना रहती है क्योंकि न्युबियन धूल में कार्बन की मात्रा कम होती है। कार्बन के स्रोत हैं घुले हुये कार्बोनेट, वायु में उपस्थित कार्बन डाइ-ऑक्साइड तथा मिट्टी में मिले कार्बनिक पदार्थ ? अब तक जो पानी सबसे लम्बी आयु का पाया गया है वह है मिश्र के पश्चिमी रेगिस्तान में पाये जाने वाले पानी की आयु जो कि २५००० वर्ष है।

सहारा में भूमिगत पानी के स्रोत को विकसित करने के पूर्व इस बात को जानना होगा कि पानी की खपत कितनी है। एक अनुमान के अनुसार एक वर्ष में २०,००० लाख घनमीटर पानी की खपत है जिसका केवल थोड़ा सा ही अंश मानव की आवश्यकता के लिये है। यदि यहाँ की जन-संख्या प्रति वर्ष २% की दर से भी बढ़ती रहे तो माँग की पूर्ति की जा सकती है। सबसे बड़ी समस्या है सिंचाई की। वर्तमान जानकारी के अनुसार सिंचाई के लिये प्रति सेकन्ड एक हेक्टर के लिये एक लिटर पानी की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ के प्रचलन के अनुसार खजूरी की छतरी के नीचे फलों के पेड़ लगाये जाते हैं और इनके नीचे तरकारी पैदा की जाती है। इस तीन सतही पद्धति के लिये सिंचाई करना अधिक सरल हो जायगा। इसके अतिरिक्त पानी के खारेपन को दूर करने की भी योजना को कार्यान्वित करना होगा। किसी कुंये में जिसमें प्रति सेकण्ड २० लिटर पानी निकल रहा हो एक वर्ष में ६०० मीट्रिक टन नमक तैयार हो सकता है। साथ ही साथ इस समस्या को भी ध्यान में रखना पड़ेगा कि पानी की खपत तथा उसकी पूर्ति में संतुलन बना रहे। इन सभी समस्याओं का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाधान हो जाने से रेगिस्तान में भूमिगत पानी का मनुष्य, पशु तथा पेड़ पौधों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की व्यवस्था में प्रयोग हो सकेगा और आज जो चमकते हुये बालू के कणों से भरे लम्बे मरुस्थल हैं हरे-भरे लहलहाते खेतों से भर जाँयेंगे। ● ●

फल-उत्पादकों को 'बी-९' वरदान स्वरूप

□ महेश मिश्र

पौधों की वृद्धि को नियंत्रित कर अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये वैज्ञानिकों ने कई रासायनिक पदार्थों को खोज निकाला है। हारमोन और विटामिन की उपयुक्त मात्रा का पौधों पर छिड़काव करके अथवा इंजेक्शन के माध्यम से अन्दर प्रविष्ट कराकर पौधों में आशाजनक वृद्धि की जा सकती है।

पौधों के वृद्धि-नियंत्रक यौगिकों में 'बी-९' का समावेश फल-उत्पादकों के लिए अत्यन्त लाभकारी है। अमरीकी रबर कम्पनी के द्वारा अन्वेषित 'बी-९' के उपयोग से बागवानी में आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। पेन-सिलवानिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एल० डी० टर्की ने अपने प्रयोगों में बी-९ का उपयोग फलों के वृक्षों पर किया, परिणामस्वरूप उन्होंने देखा कि फलों की उपज में अत्यधिक वृद्धि हुई। बी-९ के प्रयोग से फलोत्पादन में वृद्धि के अलावा पाले से होने वाली हानि में भी कमी आ गई थी, वृक्षों की एकान्तर वर्षों में फल धारण करने की प्रवृत्ति खत्म हो गई और वे हर वर्ष फल देने लगे। इससे फलोत्पादकों की एक बड़ी समस्या का हल निकल आया है। फलोत्पादन में एक वर्ष के अन्तर से फल-धारण करने की प्रवृत्ति से किसानों को बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। जिस वर्ष फल आते हैं तो बाजार में इनकी अधिकता होने से मूल्य बहुत ही कम मिल पाता है। दूसरे वर्ष फल न आने पर वह हाथ पर हाथ रखे बैठा रहता है। बी-९ के प्रयोग से पौधों की लम्बाई में यद्यपि कमी आ जाती है परन्तु उसकी वाह्य-वृद्धि खूब होती है। पेड़ में अधिक शाखाएं और पत्तियाँ पैदा होती हैं। पौधे घने और मजबूत होते हैं। डालियाँ मजबूत और मोटी निकलती हैं।

बी-९ के चमत्कारी प्रभाव को सेब के वृक्षों पर सर्वाधिक प्रभावकारी पाया गया है। प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि इसके छिड़काव से सेब उत्पादन में अत्यन्त वृद्धि होती है। वृक्ष फलों से लद जाते हैं तथा स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि डालियाँ फल के भार से टूटने लगती हैं। इससे न केवल फलों की संख्या में वृद्धि होती है वरन् फलों का रंग भी शीघ्र ही लाल हो जाता है। जिससे बाजार में समय से पहले आ जाने से अपेक्षाकृत अधिक दाम मिल जाते हैं।

बी-९ से उपचारित वृक्षों से उत्पादित फल, अनुपचारित फलों की अपेक्षा अधिक टिकाऊ और कड़े होते हैं। यद्यपि उपचारित वृक्ष के फल शीघ्र ही लाल हो जाते हैं किन्तु वे अधिक दिनों तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं। इस प्रकार, उनको बाहर भेजने में सुविधा होती है। शीघ्र ही फलों के खराब होने से निर्यात की समस्या को, बी-९ के प्रयोग द्वारा काफी हद तक कम किया जा सकता है। फलों को काफी अवधि तक न खराब होने का कारण, उनमें बी-९ के प्रयोग से श्वासोच्छ्वास में कमी होना बताया गया है।

बी-९ का प्रभाव वृक्षों पर तत्काल तो होता ही है तथापि इसका असर दूसरे वर्ष तक भी देखा गया है। उपचारित वृक्षों में दूसरे वर्ष भी अधिक फलोत्पादन तथा फलों का जल्दी ही लाल हो जाना परिलक्षित हुआ है। फलों की संरक्षित रहने की अवधि भी उसी प्रकार बढ़ी हुई पायी गयी है, जिस प्रकार प्रथम वर्ष के फलों की थी। बी-९ के इस शेष रहे असर से उसके उपयोग में काफी मितव्ययिता की आशा की जा सकती है।

[शेष पृष्ठ ७ पर]

वेदों के वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी उल्लेखों का समीक्षात्मक अध्ययन

□ आनन्दीलाल शर्मा एवं डा० विजयेन्द्र शास्त्री

मनुष्य के ज्ञान-गौरव के विकास की परम्परा में उसकी जिज्ञासु प्रवृति ही अग्रगण्य रही है। उसका ध्यान सर्व-प्रथम उसके चारों ओर व्याप्त वनस्पति जगत, विचरण करने वाले प्राणी तथा नभ में प्रदीप्त सूर्य, चन्द्र, तथा तारा-गण ने आकृष्ट किया होगा। इसी क्रम में यदि किसी मनुपुत्र ने क्षुधा तथा तृषा से पीड़ित होकर किसी वनस्पति का भक्षण कर लिया होगा और उससे उसकी क्षुधा-पिपासा को शान्ति मिली होगी, यही वनस्पति की उपादेयता का श्रीगणेश होगा। ऐसे ही यदि वृण या घाव अथवा रोग-ग्रस्त किसी व्यक्ति ने जड़ी-बूटी का अनायास सेवन कर लिया होगा और उसने स्वास्थ्य लाभ किया होगा, तो उससे भेषज-विज्ञान उद्भूत हुआ होगा।

इस ज्ञान-विज्ञान के उद्भव और विकास का सुस्पष्ट प्रमाण अप्राप्य है किन्तु भारत में इसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं गौरवमयी रही है। हमारे आर्ष-ग्रन्थ वेदों में, जिन्हें कि संसार के प्रचीनतम ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त है, तथा जिनमें जीवन के हर पहलू की वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विवेचना है, वनस्पतियों की प्रकृति, गुण-दोष तथा उनकी उपयोगिता का भी स्पष्ट दिग्दर्शन होता है।

यद्यपि वेदों में विभिन्न वनस्पतियों के अध्ययन सम्बंधी कई ऋचाएं प्राप्य हैं, तथापि पाश्चात्य एवं भारतीय वैज्ञानिकों के वनस्पति-शास्त्र के ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वेदों में वनस्पति शास्त्र के ज्ञान के सम्बन्ध में समुचित ध्यान नहीं दिया गया है तथा समीक्षात्मक विवरण भी प्रस्तुत नहीं किया गया है। अतः प्रस्तुत लेख में वेदों में वनस्पति-विज्ञान की प्राचीन परम्परा के दिग्दर्शन का विनम्र प्रयास किया गया है तथा प्राचीन ज्ञान से अर्वाचीन विज्ञान के सामंजस्य का प्रयत्न किया गया है।

वेदों में अश्वत्थ, खदिर, कुष्ठ, सोम, पलाश, न्यग्रोध, पिप्पली, विल्व, उदुम्बर, अपामार्ग आदि १५० से भी अधिक वनस्पतियों का, उनके गुणधर्मों तथा उपयोगों सहित उल्लेख हुआ है। यदि इसकी सूची प्रस्तुत की जाय तो वह बहुत लम्बी होगी, इसलिये प्रस्तुत लेख में कुछ प्रमुख वनस्पतियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है एवं वेदों में वर्णित इन वनस्पतियों के गुणधर्मों की तुलना आधुनिक शोधों के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों से की गयी है। विस्तृत विवेचन अन्यत्र प्रकाशनीय लेखमाला में प्राप्य होगा। भारतीय संस्कृत में अश्वत्थ अर्थात् पीपल बड़ा पवित्र एवं महत्वपूर्ण वृक्ष माना जाता है। अथर्ववेद में इसका उल्लेख पुरुष वृक्ष के रूप में किया गया है, यथा—

पुमान् पुंसः परिजातो अश्वत्थो खदिरादधि।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि येच माम्॥
अथर्व० ३।२।६।१

अर्थात् अत्यन्त वीर्य वाले पुरुष वृक्ष पीपल और गायत्री सारोत्पन्न अत्यन्त बली खदिर के संयोग से निर्मित अश्वत्थ मणि धारण करने पर वह मेरे शत्रुओं का नाश करे।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि वेदों की ऋचाओं में किसी न किसी देवता के प्रति स्तुति की गई है ताकि वह इच्छित उद्देश्य की पूर्ति करने में सहायक हो, जैसे कि उपर्युक्त ऋचा में शत्रु-नाश के लिये प्रार्थना की गई है। परन्तु जैसी कि भारतीय वाङ्मय की विशेषता रही है,

कथा एवं दृष्टान्तों के द्वारा शिक्षा प्रदान करना सुहृद्भेद है वैसे ही स्तुति के माध्यम से इन ऋचाओं में वनस्पतियों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कि वनस्पतियों की परिस्थिति गुण तथा उपयोगिता सम्बन्धी संकेत भी हैं।

द्वेष का योग-दर्शन-परक अर्थ है–दुःख उत्पादन करने वाला (दुःखानुशयी द्वेष :–योगदर्शन ८।२) – क्योंकि रोग दुःख ही देते हैं, अतः यदि रोगों का मानवीकरण किया जाय, तो उन्हें द्वेषी कहा जा सकता है। द्वेषकारक रोगों का नाश ही पीपल के औषधगत गुणों की ओर संकेत करता है। रोगों रूपी द्वेषियों के नाश के हेतु पीपल के उपयोग के सम्बन्ध में आयुर्वेद एवं आधुनिक साहित्य में निम्न जानकारी प्राप्य है :—

अश्वत्थ के गुणधर्म–श्वयथु विलयक, रूक्षक, छर्दिघ्न और उबकाई को दूर करने वाला विशेषतः फोड़े बैठाने वाला है। छाल में कषाय सत्व (Tannin), रबड़ (काउ-चुक) और मोम होता है, छाल को उबालकर उस काढ़े से दंतवेष्टशोध और मुखपाक में कवलग्रह कराते हैं।

वैद्यराज दलजीत सिंह–यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान, पृष्ठ ३२२

The bark is astringent and is used in gonorrhoea ... Fruits are laxative and seeds are cooling. The leaves and young shoots are used as purgative...Infusion of bark is given internally in scabies......The bark contains some tannin and is used for preparing leather and for dyeing. K. R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants, Vol. III-P. 2318

उपर्युक्त सूक्त में अश्वत्थ के साथ साथ अन्य वनस्पति खदिर का भी उल्लेख है, जिसे खैर या कत्था (Acacia-Catechu) कहते हैं। इसका और भी अन्य स्थानों पर उल्लेख है, जैसे

अभिव्ययस्व खदिरस्य सारम्। ऋग्० ६।५३।१६

यह शीत संग्राही, रक्तप्रसादक, व्रणलेखक और उदर कृमि नाशक है। दाँतों से खून आने और गल शुण्डिका में यह विशेष लाभकारी है, इसका अतिसार में उपयोग होता है। व्रणों में मलहम बनाकर इसका उपयोग किया जाता है।

वैद्यराज दलजीत सिंह–यूनानी द्रव्यगुण-विज्ञान, पृष्ठ १६०

The bark contains tannin, which is used for tanning and dyeing.

K, R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants Vol. II P. 926

वेदों में वनस्पतियों के पारिस्थितिकीय उल्लेखों का एक उदाहरण नीचे उद्धृत है :—

असितं ते प्रलयनमस्थानमसितं तव।
असिकन्यो स्योषधे निरसो नाशया पृषन्॥
अथर्व० १।५।२३।३

अर्थात्–हे नील औषधे! तेरा उत्पन्न होने का स्थान भी काला है और जिनके सम्पर्क में तू आती है, उन्हें भी काला कर देती है। तू असित वर्ण वाली है, और तेरा स्वभाव भी ऐसा ही है, इसलिये तू लेपने आदि से कुष्ट और धब्बे आदि रोगों को दूर कर दे।

The plant is Indigofera tinctoria. It is a small herb to shrub. It yields a dye Indigo which is used in dyeing. Indican is the principal glucoside.

Hill A. F.,—Economic Botany—P. 129

वेदों में पलाश (Butea monosperma) का भी यत्र-तत्र वर्णन मिलता है, जोकि पर्ण के नाम से संदर्भित है। इसे गायत्री के गिरे हुए पंख से अथवा सोम के गिरे हुये पत्ते से उत्पन्न हुआ माना गया है यथा

विसोमेन वा एके पशु बंधने यजन्ते।
ससोमेनैके दिवि वै सोम आसीतं गायत्री वयो भूत्वा।
हरत्तस्य यत्पर्णमिच्छिद्यत तत्पर्णस्य पर्णत्वम्॥
शतपथ—१।१७।२।८

यजुर्वेद (३५।४) में भी इसका उल्लेख है, इसको ब्रह्म वा सोम माना गया है—

सोमो वै पलाशम्

शतपथ ६।६।३।७

गुणधर्म—छाल और पत्र संग्राही, वीर्य पुष्टिकर, उदरकृमिनाशक, बाजीकर और मूत्रार्तवजनक है,——बीज; वातानुलोमक, उदरकृमिनाशक, चतुर्थक ज्वर नाशक, लेखन, व्रणकारक, सर्प वृश्चिक विषघ्न है। गोंद; शुक्रस्तम्भन वीर्यपुष्टिकर, उपशोषक और आमाशय संग्राहक है।

वैद्यराज दलजीत सिंह—यूनानी द्रव्यगुण—विज्ञान, पृ. ३१४

Butea monosperma has ornamental flowers yields dyes. The bark and gum contains tannic and gallic acid. Seeds contain Moodooga oil or kind-tree oil......Seeds are anthelmintic and antidote for snake bite......Gum is given in diarrhoea and dysentry.

K. R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants P. 786, 87

अथर्ववेद के चौथे काण्ड के १७, १८ व १९ सूक्त अपामार्ग (Achyranthes aspera सम्बन्धी है जैसे—

अपामार्ग त्वया वयं सर्व तदपमृज्महे। आदि उक्त सूक्तों में अपामार्ग की पारिस्थितिकी, कार्यिकी, आकारिकी सम्बन्धी विस्तृत व्याख्या की गई है। इसी प्रकार—

औदुम्बेरण मणिना पुष्टि कामाय वेधसा—

अथर्व० १९।३१।१

वस्तुतः ३१ वां सूक्त औदुम्बर मणि के विषय में है। औदुम्बर (Ficus glomerata) का चिकित्सा की दृष्टि से बड़ा महत्व है। इस वृक्ष की छाल, आक्षीर (latex) तथा फल उक्त दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

इसी के सजातीय वृक्ष वट या बरगद (Ficus bengalensis) जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में न्यग्रोध (न्यक् + रोह) के नाम से हुआ है, यथा—

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन्॥

अथर्व० ४।८।३७।४

All the species of Ficus belong to the family Urticaceae. They have almost identical characters. The inflorescence is hypanthodium and fruit Syconus......They contain latex-a milky juice. Many Spp. start their life as epiplyter......Latex is used in rheumatism and lumbago. Infusion of bark is used in dysentery diarrhoea and diabetes. The leaves are applied as poultice to abscess.

K. R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants Vol. III-P. 2314

उपमा के लिये भी वेदों में वनस्पतियों का उल्लेख हुआ है यथा—

उर्वारुकमिव बन्धनात्—

ऋग्० ७।५९।१२

उपर्युक्त सूक्त में बन्धन की उपमा उर्वारुक (cucumber) से की गई है। उर्वारुक की संजनी (tendril) इस वनस्पति के आरोहण में सहायक है और आश्रय तथा आश्रित में ही उपर्युक्त इंगित है।

पिप्पली (Piper longum) का उल्लेख वेदों में निम्नानुसार है:—

पिप्पली क्षिप्त भेषज्यूतानि भेषजी। — —

अथर्व० ६।१११।१०९

अर्थात् पिप्पली क्षिप्त वात रोग की औषधि है, यह रोग को पूरी तरह बाँधने में समर्थ है।

आयुर्वेद में पिप्पली को गर्म, खुष्क, दीपक, वातानुलोमक, वाजीकर, उष्णताजनक तथा श्वयथुविलयक माना गया है। पीपलामूल पिप्पली की बेल की जड़ है, जो ग्रंथिल, कड़ी और भारी होती है। पीपलामूल का गुण विशेषतः दीपन और पाचन का है।

Piper longum is a twiner. It contains an alkaloid known as Piperine, which has got medicinal value.

Hill A. F., Economic Botany-P. 452

अथर्ववेद में बिल्व (Aegle marmelos) का उल्लेख निम्नानुसार है:—

महान वे भद्रो बिल्वो महान भद्र उदुम्बर।

अथर्व० २०।१३६।१५

शतपथ ब्राह्मण में खदिर के साथ इसका उल्लेख है।
(१३।४।४।६)

आयुर्वेद में इसका फल सर्द और खुष्क माना गया है। यह संग्राही, रक्त स्तंभण, दीपन और प्रवासिका में गुण-दायक है। जड़ की छाल ज्वरघ्न है। इसी प्रकार आधुनिक शोधों के अनुसार—

The principal constituent of the pulp is Marmelosin. It also contains sugar, pectin, tannin, essential oil etc. The boiled or roasted unripe fruit is used in diarrhoea and dysentery. The seeds and fruits yield a dye.

K. R. Kirtikar & B. D. Basu-Indian Medicinal Plants-Vol. I- P. 501

अन्त में एक और वनस्पति का उल्लेख किया जा रहा है, जोकि वेदों में बहुचर्चित है, परन्तु जो अत्यंत विवादास्पद भी है। उस वनस्पति का नाम है – "सोम"।

सोम को औषधियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है यथा—

यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषांकतः।
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः॥
अथर्व० ६।१५।३

ऋग्वेद के नवम मंडल तथा "चरक सोम वल्क" ४।१५ में सोम के विषय में विस्तार से वर्णन है। वैसे सोमलता या सोमवल्ली के संबंध में बड़ा विवाद है। वैदिक कालीन और ब्राह्मण कालीन ग्रंथों में इसका इतना विस्तार से वर्णन है कि इसे कल्पित नहीं माना जा सकता। डा० एटकिन्सन के अनुसार यह पौधा एफ़ेड्रा पेचीक्लाडा (Ephedra Pachyclada) है और जिसका नाम हरिरुद घाटी में हुम या यहमा है। डा० बोर्नमूलर इस पौधे को एफ़ेड्रा डिस्टाच्या (Ephedra distachya) निरूपित करते हैं।

सोम के भेषजीय गुणों की पुष्टि आधुनिक शोधों द्वारा हुई है —

Ephidrine is the derivative of Ephedra spp., which has proved most valuable in asthma and cough disorders.

सोम के इन गुणों के ज्ञात होने के कारण ही प्राचीन मनीषी नियमित रूप से सोमपान करते थे, जिससे कि वे स्वस्थ और प्रसन्न रहकर जीवन यापन कर सकें।

इसके अतिरिक्त और भी कई अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो यह प्रदर्शित करते हैं कि प्राचीन काल में भी भारतीय वनस्पति विज्ञान की परम्परा पर्याप्त विकसित एवं उन्नत रही है।

● ●

[पृष्ठ ३ का शेषांश]

बी-९ का फलोत्पादन में कारगर उपयोग उसके प्रयोग करने की विधि पर निर्भर करता है। इसका उपयोग करने के पहले उपयुक्त मात्रा, घोल की सान्द्रता, एवं छिड़काव का समय आदि बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है। अनुचित सान्द्रता एवं छिड़काव का गलत समय लाभ के बजाय हानि भी पहुँचा सकता है। 'बी-९' का छिड़काव फल आने के थोड़ा पहले करने पर भारी मात्रा में फलों का उत्पादन होता है परन्तु फूल आने के बाद छिड़काव करने से कच्चे फलों का गिरना शुरू हो जाता है।

बी-९ के संभाव्य उपयोग और उसके बाजार में शीघ्र ही उपलब्ध होने पर फलोत्पादन में क्रान्ति लाई जा सकती है।

● ●

पोजीट्रॉन किरणें

□ डा० अरुण कुमार सक्सेना

पोजीट्रॉन किरणों के बारे में वर्णन करने के पहले सर्वप्रथम पोजीट्रॉन पर प्रकाश डालना आवश्यक होगा। किसी का भी अचानक यह प्रश्न कर बैठना कि पोजीट्रॉन है क्या ? स्वाभाविक है। वास्तव में पोजीट्रॉन इलेक्ट्रॉन का ही प्रतिकण है। यह इलेक्ट्रॉन के एक सम होता है जब कि इलेक्ट्रॉन का आवेश ऋणात्मक होता है। पोजीट्रॉन की खोज का श्रेय एण्डर्सन को है। पोजीट्रॉन जब पदार्थ के अन्तर्परमाणुक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो वहाँ वे अधिक समय तक स्वतंत्र अवस्था में नहीं रह सकते क्योंकि इस क्षेत्र में इलेक्ट्रॉन विद्यमान रहते हैं। पोजीट्रॉन तथा इलेक्ट्रॉन पास-पास होने पर एक दूसरे को नष्ट करने की प्रवृति रखते हैं। यह जान कर आश्चर्य होगा कि ये छोटे-छोटे कण भविष्य में ऊर्जा प्राप्त करने के असीम भण्डार हैं।

प्रायः ये किरणें प्रकृति में दो प्रकार के उत्पादकों से प्राप्त होती हैं :—

(१) रेडियोऐक्टिव समस्थानिकों द्वारा

(२) गामा किरणों के द्वारा

बहुत से रेडियोऐक्टिव समस्थानिक पोजीट्रॉन का उत्सर्जन करते हैं जिनकी ऊर्जा शून्य तथा २mev के बीच होती है। ऊर्जा का यह मान रेडियोऐक्टिव क्षय द्वारा निर्धारित होता है।

पोजीट्रॉन का दूसरा स्रोत गामा किरणें हैं। जिन गामा किरणों की ऊर्जा १.०२mev से अधिक होती है वे परमाणुओं से क्रिया करके इलेक्ट्रॉन-पोजीट्रॉन युग्म उत्पन्न करती हैं। कॉस्मिक किरण बौछारों में इस क्रिया का विशेष महत्व होता है।

वास्तव में ऊपर की इन दोनों विधियों से निकलने वाले पोजीट्रॉन किरणों की ऊर्जा तथा उनकी तीव्रता या तो क्षीण होती है या उसको नियंत्रित करना कठिन होता है। भौतिकी में इनके द्वारा कुछ विशेष अध्ययन सरलता से हो जाते हैं उदाहरणार्थ—प्रोटान प्रकीर्णन का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

रेखीय इलेक्ट्रॉन त्वरक ऐसे यंत्र है जिनके द्वारा इलेक्ट्रानों को अधिक ऊर्जा में त्वरित किया जा सकता है। पोजीट्रॉनों को इस दशा में लाने के लिये रेखीय इलेक्ट्रॉन त्वरक के अन्दर एक विशेष कला में पोजीट्रॉनों को भेजा जाता है। प्रयोगशालाओं में इन किरणों को उत्पन्न करने की एक और विधि सोची गई। ऐसे पोजीट्रॉनों का उच्च ऊर्जा के इलेक्ट्रॉनों में 'लक्ष्य' की बमबारी करके उत्पन्न किया जा सकता है। उच्च ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉनों से बमबारी करने पर प्रोटॉन प्राप्त होगा जिससे इलेक्ट्रॉन तथा पोजीट्रॉन का युग्म मिलेगा। इसी आधार पर सर्वप्रथम प्वारे, वेमस्टाइन तथा पईन ने स्टैनफोर्ड मार्का वृर्तीय त्वरक द्वारा पोजीट्रॉन किरणों को उत्पन्न किया। इस प्रयोग में उत्पन्न पोजीट्रॉन किरणों की तीव्रता प्रति त्वरक सैकड़ों पोजीट्रॉन के तुल्य थी तथा इसकी ऊर्जा २००mev थी।

इस विधि से वैज्ञानिकों ने स्टैनफोर्ड, कोर्नल केम्ब्रिज, हेमबर्ग, ओस्वाय तथा नोब्रोसिविस्र्क की प्रयोगशालाओं के त्वरकों के द्वारा कार्य को और आगे बढ़ाया। आजकल १२.०mev ऊर्जा तथा तीव्र पोजीट्रॉन किरणें उत्पन्न की जा रही हैं।

[शेष पृष्ठ १४ पर]

हमारे ग्रह तथा उनकी अंतरिक्ष यात्रा

□ कु० कुलभूषण बक्शी

यह जान कर आश्चर्य होता है कि हम जिस पृथ्वी पर रहे हैं वह इस सम्पूर्ण व्योम (Space) में एक कण की भाँति लटक रही है। प्रायः इस पृथ्वी पर के लोग, अन्य तमाम ग्रहों तथा उपग्रहों के बारे में सोचते रहे हैं और वहाँ तक पहुँचने के प्रयास करते रहे हैं। अभी हाल ही में मनुष्य चन्द्रमा (जो पृथ्वी के सबसे करीब है) के तल पर पाँव रखने में सफल हुआ है तथा चन्द्रमा सम्बंधी अनेक तथ्यों की जानकारी प्राप्त हुई है। चन्द्रमा का क्षेत्र-फल अफ्रीका के बराबर है अतः उस पूरे क्षेत्र की खोज करने में कई वर्षों का समय लगेगा। अभी तो एक बार में दो दो की जोड़ी में अंतरिक्ष यात्री हर तीसरे या चौथे महीने भेजे जाते रहेंगे। योजना यह भी है कि वहाँ कुछ लोगों को बसाया जाय और वहाँ से सूचना इकट्ठी करके भेजी जाय। यदि ऐसा हो गया तो अन्वेषण का कार्य बहुत सरल हो जायगा। ऐसा विचार है कि कुछ यात्राओं के बाद आदमी वहाँ रहने का अभ्यस्त हो जायेगा।

चंद्रयात्रा से केवल वैज्ञानिक ही नहीं वरन भूगर्भशास्त्री तथा खगोलवेत्ता भी इससे लाभ उठायेंगे जो अब तक पृथ्वी के गहन वायुमंडल से सुन्दर नक्षत्रों को ठीक से देखने या पहचानने का असफल प्रयत्न वर्षों से करते आ रहे हैं। चन्द्रमा को आधार बना कर अन्य ग्रहों पर यान भेजना अत्यन्त सुगम हो जायेगा क्योंकि धरती के गुरुत्वाकर्षण से बाहर जाने के लिये यान की गति जहाँ २४,००० मील प्रति घंटा होनी चाहिये वहां चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण से बाहर जाने के लिये, केवल ५,३०० मील प्रति घंटा की गति से काम चल सकेगा।

नासा (NASA) के अध्यक्ष के अनुसार सन १९८० तक चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच नियमित रूप से आवागमन शुरू हो जायेगा। यात्रा भी पहले की अपेक्षा सस्ती हो जायेगी। आज तो तीन यात्रियों के आने जाने पर २, ८०,००, ००,००० रुपयों का खर्च बैठता है। लेकिन इस स्थिति के आने तक सौरमंडल के अन्य सदस्यों तक मनुष्य पहुँच चुका होगा। इन ग्रहों में 'मंगल' सर्वप्रथम होगा। ४,२०० मील व्यास वाला यह ग्रह आकार में पृथ्वी का आधा है। यह ग्रह भी पृथ्वी की भाँति अपनी कीली पर घूमता है और यहाँ एक दिन पृथ्वी के एक दिन से केवल ४१ मिनट लम्बा है। अमरीकी अन्वेषक मैरिन २४ द्वारा भेजे गये २१ चित्रों द्वारा यह पता चलता है कि यहाँ का धरातल चन्द्रमा की ही भाँति है इस पर भी चन्द्रमा की भाँति ज्वालामुखी क्रेटर हैं जो तीन मील से लेकर ७० मील व्यास तक के हैं।

सौर्यमंडल के अन्य सदस्यों की अपेक्षा मंगल ग्रह पर जीवन की सम्भावना अधिक है यद्यपि बैरोमीटर द्वारा इसके आसपास वायुमंडल का आभासमात्र ही मिला है। मंगल पर पानी मिलने की भी सम्भावना है क्योंकि इसके ध्रुवों पर गहरी सफेदी दिखाई देती है जो बसंत ऋतु में हल्की तथा सर्दियों में गहरी हो जाती है। वैज्ञानिकों का मत है कि इसके ध्रुवों पर बर्फ जमी रहती है जो गर्मी में पिघल जाती है इसी कारण इसके तल पर हरि-याली या वनस्पति देखी गई है जो पिघली बर्फ के पानी के कारण स्वयं उत्पन्न हो जाती है।

मंगल ग्रह पर यान भेजना हर दो वर्ष पर सम्भव है जब वह परिक्रमा करते-करते पृथ्वी के नजदीक आ जाता है। ऐसा एक अवसर जून १९६९ में आया था, अगला

जुलाई १९७१ में आयेगा। सूर्य से मंगल की दूरी १४,२०,००,००० मील है। पृथ्वी सूर्य से ९,३०,००,००० लाख मील दूर है। मंगल सूर्य की प्रदक्षिणा पृथ्वी के दो वर्षों में कर सकता है। पृथ्वी से मंगल की न्यूनतम दूरी ३,४०,००,००,००० मील है और जब यह पृथ्वी से दूर सूर्य की दूसरी तरफ होता है तो यही दूरी २०,००,००,००० मील हो जाती है।

मंगल की भाँति प्लूटो भी एक ग्रह है, यह अपनी कक्षा में पृथ्वी से ३,६८,०२,००,००० मील की न्यूनतम दूरी पर है। इस ग्रह की यात्रा में ४१ वर्ष का समय लगता लेकिन बीच के और ग्रहों का सहारा लेकर यही लगभग आठ वर्ष में पूरी की जा सकती है। प्लूटो के बाद अन्य यात्रायें बृहस्पति, यूरेनस और नेपच्युन की हो सकती हैं जो अन्य ग्रहों की सहायता लेने पर नौ वर्षों में पूर्ण होगी।

नासा अधिकारियों की योजना के अनुसार इन बाहरी ग्रहों की यात्रा प्रारम्भ होने तक मंगल ग्रह पर कई अभियान जा चुके होंगे। जुलाई तथा अगस्त १९६९ में मैरिनर ६ तथा मैरिनर ७ मंगल ग्रह पर भेजे गये थे। सन् १९७१ में दो और मैरिनर यान भेजे जायेंगे। सन् १९७३ में मानव रहित अंतरिक्ष यानों द्वारा मंगल पर यंत्र उतारने की योजना है। मंगल ग्रह के कक्ष में १० दिन तक परिक्रमा करने के बाद ४०-४० पाउण्ड भार के यंत्रों के कैपस्यूल उतरेंगे। मंगल तक मानव-सहित यान भेजने की समस्या, चंद्रमा से कहीं जटिल है। चंद्रमा तक आने-जाने में मनुष्य को १० दिन तक जीवित रहने के लिये अपने साथ खाना, पानी तथा आक्सीजन यान में रखना पड़ता है। परन्तु मंगल ग्रह तक पहुँचने के लिये आठ महीने लगेंगे। अतएव भोजन सामग्री चंद्रमा से पचास गुनी अधिक रखनी होगी। चंद्र यात्रा के समय अपोलो यान में पीने का पानी हइड्रोजन तथा आक्सीजन के संश्लेषण द्वारा तैयार किया गया था परन्तु मंगल की यात्रा में एक बार इस्तेमाल किये हुये पानी को पुनः प्रयोग में लाने की व्यवस्था करनी होगी। इसके लिये यात्रियों के मूत्र को शोधित करके पीने योग्य बनाना तथा उनके निःश्वास द्वारा निकली कार्बनडाइआक्साइड में से आक्सीजन को पुनः प्राप्त करने के परीक्षण किये जा रहे हैं। मंगल पर जाने वाले यान चंद्रमा पर जाने वाले यानों की अपेक्षा पाँच गुने भारी होंगे क्योंकि लम्बा रास्ता पार करने के लिये यान के साथ तीन की बजाय पाँच या छः सैटर्न राकेट लगेंगे।

इस विशाल सौर्य मंडल का एक अन्य सदस्य शुक्र है। शुक्र जब सूर्य की परिक्रमा करता हुआ पृथ्वी के अत्यधिक निकट आता है तो दोनों के बीच की दूरी २,४०,००,००० मील होती है। १२ फरवरी सन् १९६१ को रूस ने वीनस-१ मानव रहित यान शुक्र की तरफ भेजा था जो यंत्रों की गड़बड़ी के कारण मार्ग में ही नष्ट हो गया था। बाद में अमरीका ने भी शुक्र की तरफ यान भेजा था और फिर रूस ने दूसरा वीनस भेजा जो शुक्र पर उतर गया था। शुक्र सूर्य की परिक्रमा २२५ दिनों में करता है अर्थात् यह पृथ्वी के निकटतम हर १९वें महीने आता है। शुक्र की कक्षा के बाहर निकलने के लिये यान की गति २४,००० मील प्रति घंटा होनी चाहिए जो पृथ्वी की कक्षा से निकलने के लिये आवश्यक गति से ८०० मील कम है।

सूर्य और शुक्र के बीच एक और छोटा ग्रह बुद्ध है। वहाँ इतनी गर्मी पड़ती है कि यात्रा की बात सोची भी नहीं जा सकती परन्तु मानव रहित यान वहाँ भी भेजने की योजना है।

मंगल के ऊपर भी अनेक ग्रह हैं जिसे खोजने का प्रयत्न वैज्ञानिक कर रहे हैं। बृहस्पति का व्यास ८८,७०० मील है जो पृथ्वी के व्यास का १० गुना है इसे सूर्य की परिक्रमा करने में १२ वर्ष लगते हैं। सूर्य से इस ग्रह की औसत दूरी ४८,४०,००,००० मील है। इस ग्रह का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से ढाई गुना है अतः वहाँ से अंतरिक्ष यान की वापसी उड़ान बहुत मुश्किल होगी।

बृहस्पति के बाद शनि है जो सूर्य से ८८,५०,००,००० मील दूर है। आकार में यह बृहस्पति जितना हो

है। शनि के बाद यूरिनस है। ऐसा अनुमान है कि यूरेनस के वायुमंडल में काफी हाइड्रोजन तथा मीथेन गैसे हैं। यूरेनस के बाद नेपच्युन हैं तथा उसके बाद प्लूटो है। प्लूटो सूर्य से ३,६८,००,००,००० मील है इस ग्रह का सूर्य की परिक्रमा करने का मार्ग अनिश्चित है।

सौर्य मंडल में और भी नक्षत्र हैं जिनकी दूरी सूर्य से इतनी अधिक है कि उसे करोड़ों या लाखों मील में व्यक्त करना असुविधा पूर्ण है। अतः इन दूरस्थ नक्षत्रों की दूरी प्रकाश वर्षों में की जाती है। एक प्रकाश वर्ष ५८,६५,७९,६०,००,००० मील के बराबर होता है। प्लूटो के बाद जो नक्षत्र हमारे सबसे निकट है वह है "एल्फा सेटोरी ए" जो सूर्य से ४·३ प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। यही नहीं, इसके अलावा भी कुछ नक्षत्र ऐसे हैं जिनका प्रकाश हमारे तक पहुँचने में कई करोड़ वर्ष लगते हैं। कुछ ऐसे भी नक्षत्र हैं जो अब तक ज्ञात नहीं किये जा सके हैं।

अतः यह ज्ञात कर लेने के बाद कि अंतरिक्ष में हम अकेले नहीं हैं ऐसी सम्भावना हो सकती है कि इनमें से किसी ग्रह पर कोई ऐसे प्राणी हों जो वैज्ञानिक ज्ञान में हमसे आगे हों। हो सकता है कि ऐसे ग्रह के निवासी भी पृथ्वी तथा अपने पास के अन्य ग्रहों पर पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हों। हो सकता है कि उड़न तश्तरियों का सम्बंध किसी ग्रह से ही हो। यदि सौरमंडल के बाहर के नक्षत्रों तक पहुँचने की बात सोची जाय तो अंतरिक्षयानों की अबतक की प्राप्त अधिकतम गति नहीं के बराबर है। प्रकाश की गति जो १,८६,००० मील प्रति सेकण्ड है, की आधी गति भी हम प्राप्त कर लें तो शायद इन नक्षत्रों की यात्रा संभव और सुगम हो जाय।

वैज्ञानिक अंतरिक्ष योजना के साथ-साथ जन कल्याण की भी बात सोच रहे हैं। इस विचार की शुरुआत आलू के एक खेत से की गई जिसकी इन्फ्रारेड फिल्म पर ऊपर की कुछ तस्वीरें देख कर ज्ञात हुआ कि खेत के जो भाग चित्र में गहरे उतरे थे उनमें कीड़े लग गये थे। ऊपर से सागर तल के भी इन्फ्रारेड फ़िल्म पर लिये गये चित्रों से यह पता चल सकेगा कि प्लवंग (मछलियों का भोजन) कहाँ पर अधिक है और कहाँ पर कम और इस तरह कहाँ पर मछलियाँ अधिक मिल सकेंगी यह पता लगाया जा सकता है।

तूफानी मौसम की पूर्व सूचना देकर उपग्रह मनुष्यों की जान बचाने में अभी से हाथ बटाने लगे हैं। मानसून कहाँ से उठकर कहाँ जा रहा है यह इन्हीं उपग्रहों से जान लिया जाता है। संचार के लिये दो उपग्रह—एक अंध महासागर पर और दूसरा प्रशान्त महा सागर पर-कुछ दिनों से उड़ रहे हैं जिनके द्वारा अमरीका और ब्रिटेन व यूरोप के बीच टेलीविजन का सम्बंध बहुत सुगम हो गया है। टेलीफोन के लिये भी यह उपग्रह काम में लाये जाते हैं। अब तो इस तरह के उपग्रह बनाने व उड़ाने की भी योजना है जो एक जगह का कार्यक्रम प्रसारित न करके स्वयं ही प्रोग्राम दिया करेंगे। आगे चल कर अंतरिक्ष स्टेशन भी बनाये जायेंगे जिनमें १०० तक की संख्या में वैज्ञानिक रहा करेंगे जो अंतरिक्ष का अध्ययन करेंगे तथा तत्सम्बंधी सूचनायें भेजा करेंगे।

ग्रह तालिका

ग्रह	व्यास (मीलों में)	कीली पर घूमने का समय	सूर्य की परिक्रमा में लगने वाला समय	सूर्य से दूरी (मीलों में)
बुद्ध	३१००	८८ दिन	८८ दिन	३ करोड़ ६० लाख
शुक्र	७७००	अनिश्चित	२२५ दिन	६ करोड़ ७० लाख
पृथ्वी	७९२७	२३ घंटा ५६ मि०	३६५¼ दिन	९ करोड़ ३० लाख
मंगल	४२००	२४ घंटा ५७ मि०	६८७ दिन	१४ करोड़ २० लाख
वृहस्पति	८८७००	९ घंटा ५१ मि०	१२ वर्ष	४८ करोड़ ४० लाख
शनि	७५१००	१० घंटा १४ मि०	२९½ वर्ष	८९ करोड़ ५० लाख
यूरेनस	३०१००	१० घंटा ४२ मि०	८४ वर्ष	१७८ करोड़ २० लाख
नेपच्युन	३३००	१५ घंटा ४८ मि०	१६५ वर्ष	३७९ करोड़ ३० लाख
प्लूटो	७९००	अज्ञात	२४८ वर्ष	३६८ करोड़

किसान की समस्यायें एवं उनसे मुक्ति—१

□ डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

फसलोत्पादन में किसान का साक्षात्कार सर्वप्रथम भूमि से होता है। वह यह जानने का प्रयास करता है कि अमुक मृदा-किस्म में कौन सी फसल सर्वाधिक लाभकर रूप में उगाई जा सकती है एवं किस प्रकार की भूमि में खेती करना न्यूनतम लाभ प्रदान करेगा या हानि कर होगा। उसका यह प्रयत्न स्वाभाविक एवं वांछनीय है कि इन मिट्टियों में खेती करने के लिये कौन कौन से साधन प्रयोग में लाये जाँय जिससे कि ऐसी समस्यायुक्त मिट्टियों में भी फसलोत्पादन लाभकारी सिद्ध हो सके।

भारतीय किसान के समक्ष मृदा सम्बन्धी प्रमुख समस्या है उनके क्षारीय एवं अम्लीय रूप में परिवर्तित हो जाने की। इन समस्या रूप क्षारीय मिट्टियों के निर्माण की प्रथम अवस्था सोडियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम के घुलनशील लवणों का एकत्रित होना है। ये लवण इनके क्लोराइड एवं सल्फेट होते हैं। यही नहीं, ऐसी मिट्टियों में पोटैशियम के कार्बोनेट एवं बाईकार्बोनेट तथा बोरान की भी अधिकता पाई जाती है। इसके बाद की अवस्था में सोडियम सर्वाधिक रूप में उपस्थित होता है। ऐसी मिट्टियाँ प्रायः ऐसे क्षेत्रों में अधिक पाई जाती है जहाँ जल निकास अत्यन्त खराब होता है। दूसरा कारण भूमिगत जल की सतह का अत्यन्त निकट होना पाया गया है।

घुलनशील लवणों एवं सोडियम का मृदा की सतह में एकत्रीकरण पौधों की वृद्धि में कई रूपों में बाधक होता है। वे मिट्टियाँ जिनमें केवल घुलनशील लवण ही अधिक मात्रा में उपस्थित होते हैं प्रायः सामान्य मिट्टियों से भी अधिक जल निकास की क्षमता प्रदर्शित करती हैं जिससे कि जल शीघ्र ही पौधे की जड़ क्षेत्र के बाहर चला जाता है एवं पौधे जल की न्यूनता से प्रभावित होते हैं। ऐसी मिट्टियों में लवणों की अधिकता के कारण उपलब्ध जल को भी पौधे अवशोषित नहीं कर पाते एवं इस प्रकार इनकी वृद्धि प्रभावित होती है। सोडियम की अधिकता के कारण मृदा का जल-निकास एकदम बन्द हो जाता है एवं पानी सतह के नीचे नहीं जा पाता। इस प्रकार की मिट्टियाँ क्षारीय मिट्टियाँ होती हैं जिनकी भौतिक दशा उस लवणीय मिट्टी की अपेक्षा, जिसमें घुलनशील लवण मिले रहते हैं, अधिक शोचनीय होती है। इन मिट्टियों का पी-एच. (PH) ८·५ से अधिक होता है।

इन मिट्टियों में केवल जल निकास की ही समस्या नहीं होती। इनकी अन्य भौतिक दशायें भी असाधारण रूप से बिगड़ जाती हैं। मिट्टी के कणों की सजावट खराब हो जाने के कारण इसका रूप बिगड़ जाता है जिसका सीधा प्रभाव पौधों की वृद्धि पर पड़ता है। इस प्रकार इन मिट्टियों का निर्माण किसान की आर्थिक दशा को अपरोक्ष रूप में प्रभावित करता है। सोडियम के तथा अन्य घुलनशील लवणों की प्रमुख समस्या के साथ-साथ इन मिट्टियों में बोरान की विषालुता का संकट भी किसान के सामने आता है। बोरान की विषालुता से प्रभावित फसल एकदम नष्ट हो जाती है एवं किसान असहाय सा फसल को सूखते हुये देखता रहता है।

अन्य आवश्यक तत्वों की प्राप्यता क्षारीय मिट्टियों में अत्यन्त कम हो जाती है जिससे यदि पौधे लवणीय मिट्टियों में उगते भी हैं तो आवश्यक तत्वों की न्यूनता से प्रभावित होकर पूर्ण वृद्धि नहीं कर पाते एवं किसी न किसी तत्व की विषालुता या न्यूनता के कारण असमय ही काल

कवलित हो जाते हैं ।

दूसरे प्रकार की समस्या रूप मिट्टियाँ अम्लीय मिट्टियाँ हैं । ये अधिकतर तराई एवं अधिक कार्बनिक पदार्थ युक्त स्थानों में पाई जाती हैं। इन मिट्टियों में फास्फोरस की न्यूनता, अल्यूमीनियम एवं मैंगनीज की विषालुता का अध्ययन विस्तृत रूप से हो रहा हैं। परन्तु अभी तक इन समस्याओं के बारे में कोई व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया है । इन मिट्टियों में प्रायः जल-निकास अत्यन्त तीव्र गति से होता है । यही कारण है कि सतह के तत्व प्रायः जल के साथ नीचे जाकर एकत्रित होते हैं एवं सतह की अपेक्षा नीचे की मिट्टी अधिक समृद्ध होती है । इन मिट्टियों का पी-एच (PH) ६·५ से कम होता है । ऐसी स्थिति में इन मिट्टियों में फसलोत्पादन असम्भव होता है एवं यदि सम्भव भी हुआ तो अलाभकर होता है ।

अब प्रश्न उठता है कि इस आधारभूत समस्या से कैसे मुक्ति मिले । कौन से साधन अपनाये जाँय कि ये मिट्टियाँ कृष्य भूमि में परिवर्तित की जा सकें । इसके साथ ही साथ इन साधनों की प्रयोग में लाते समय आर्थिक पहलू पर विचार कर लेना भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है । इस दिशा में हमारे देश के वैज्ञानिकों का ध्यान काफी समय पहले से आकर्षित हो चुका है । इन मिट्टियों में सफलतापूर्वक उगने वाली फसलों की किस्में विकसित की जा रही हैं । इनको सुधारने के सरलतम साधनों के सम्बन्ध में खोज हो रही है । परन्तु अभी तक पूर्ण सफलता किसी भी क्षेत्र में सम्भव नहीं हो सकी है । कुछ पहलुओं को जिन पर विचार किया जा सकता है इस लेख में प्रस्तुत किया जा रहा है ।

लवणीय मिट्टियों में मुख्य कठिनाई उनमें घुलनशील लवणों का अधिक होना है । इन मिट्टियों में पानी भर कर घुलनशील लवणों को खेत के बाहर निकाला जा सकता है । यह क्रिया कई बार दुहरानी पड़ेगी । इसके लिये कम खर्च में प्राप्य सिंचाई के पानी का मिलना आवश्यक है । पानी को प्रयोग करने के पहले उसका रासायनिक विश्लेषण कर लेना चाहिये अन्यथा यह भी सम्भव है कि प्रयुक्त पानी स्वयं ही हानिकर लवणों से युक्त हो एवं मिट्टी सुधरने के स्थान पर और अधिक खराब हो जाय । इस विधि को सफलता पूर्वक तभी प्रयोग किया जा सकता है जब जलनिकास की व्यवस्था अत्यन्त उच्च कोटि की हो । इस विधि की सफलता मृदा के नीचे जलस्तर की गहराई पर भी निर्भर करती है । यदि जलस्तर अत्यन्त पास होगा तो लवण जो घुल कर नीचे जाँयगे ग्रीष्म ऋतु में पुनः ऊपर आ जाँयगें एवं समस्या का समाधान स्थायी नहीं होगा । ऐसे स्थानों पर घुलनशील लवणयुक्त पानी को निकासनालियों द्वारा बाहर निकाल देना अधिक उपयुक्त होगा । यदि मिट्टी में लवणीयता कम मात्रा में ही हो तो इस क्रिया के चलते हुये वे फसलें उगाई जा सकतीं है जो अधिक पानी में वृद्धि कर सकती हों । ऐसी फसलों में धान, बरमूडा घास एवं सेसाबैनिया प्रमुख हैं । इस क्रिया के मध्य में ही प्रायः जलनिकास समस्या सामने आती है । इसके लिये यदि पानी में कैल्सियम की थोड़ी भी मात्रा बनाये रखी जाय तो यह क्रिया ठीक से चलती रहती है एवं लवणीय मृदा का स्थायी सुधार सम्भव हो सकता है ।

क्षारीय समुदाय की मिट्टियों में केवल घुलनशील लवणों का निकास ही मृदा सुधार की इति नहीं होती । इन मिट्टियों में सोडियम का विनिमेय रूप में उपस्थित होना सर्वाधिक कठिनाई प्रस्तुत करता है । इस कठिनाई से मुक्ति पाना भी अधिक दुष्कर है । सोडियम की उपस्थिति ही अधिक पी-एच का कारण होती है । इस समस्या से मुक्ति पाने के लिये जल, जिसका कि मृदा सुधार में प्रयोग करना हो कैल्सियम युक्त होना चाहिये । पानी का कैल्सियम सोडियम के स्थान पर विनिमेय क्रिया द्वारा ग्रहीत होगा एवं सोडियम स्वतंत्र होकर जल के साथ बाहर निकल जायगा । इस प्रकार एक सामान्य मिट्टी का जन्म होता है । यह फसलोत्पादन के क्षेत्र में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

कुछ क्षारीय मिट्टियों में कैल्सियम अघुलनशील रूप में विद्यमान रहता है । यदि साधारण पानी के साथ साथ ऐसी व्यवस्था हो जाय कि कैल्सियम के इस अघुलनशील स्रोत को

घुलनशील बनाया जा सके तो समस्या का समाधान सस्ता एवं आसान हो जायगा। इसके लिये मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग वांछनीय है। ऑक्सीकरण के फलस्वरूप ये कार्बनिक पदार्थ अम्लों को जन्म देते हैं जो दुर्बल अम्ल होते हुये भी मृदा में उपस्थित जिप्सम को घुलनशील बनाने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार कैल्सियम उपर्युक्त क्रिया द्वारा सोडियम का स्थान ग्रहण कर लेता है।

रासायनिक विधियाँ जो सुधार के लिये प्रयुक्त की जा सकती हैं तीन प्रकार की हैं : प्रथम प्रकार की वे विधियाँ हैं जिनमें घुलनशील कैल्सियम स्रोत प्रयोग किये जाते हैं। इनमें कैल्सियम क्लोराइड एवं कुछ हद तक जिप्सम का नाम लिया जा सकता है। इनका प्रयोग अम्लीय मिट्टियों के सुधार के लिये भी किया जा सकता है। अम्लीय मिट्टियों में विनिमेय स्थानों पर हाइड्रोजन के स्थान पर कैल्सियम का स्थापित होना मृदा सुधार का अन्तिम रूप होगा। सक्रिय एल्युमीनियम कैल्सियम युक्त मिट्टियों में कम सक्रिय हो जाता है एवं इस प्रकार इसके विषालु प्रभाव से भी छुटकारा मिल जाता है। दूसरे प्रकार का कैल्सियम स्रोत कम घुलनशील है। इसके अन्तर्गत लाइमस्टोन को रखा जाता है। क्षारीय मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ के साथ इसका प्रयोग अधिक उपयोगी सिद्ध होगा, परन्तु अम्लीय मिट्टियों की अम्लता स्वयं ही इसको घुलनशील बना देगी। तीसरे प्रकार की वे विधियाँ हैं जो अम्लता उत्पन्न करती हैं। यह विधि केवल क्षारीय मिट्टियों के लिये काम में लाई जा सकती है। इसके अन्तर्गत सल्फ्यूरिक अम्ल, सल्फर, एवं लोहा तथा एल्युमीनियम के सल्फेट प्रमुख हैं। यह विधि उन क्षारीय मिट्टियों में अधिक लाभकारी होती है जिनमें कैल्सियम की प्रचुर मात्रा अघुलनशील रूप में उपस्थित होती है। इन तीन रासायनिक विधियों से लाइमस्टोन का प्रयोग सबसे कम खर्चीला है। परन्तु इसका प्रयोग वहीं किया जा सकता है जहाँ अम्लता उत्पन्न होती हो। अन्यथा यह पूर्णतया अक्रिय रहता है।

अम्लीय मिट्टियों के सुधार के लिये जैसा कि बताया जा चुका है चूने का प्रयोग ही सुलभ साधन है। इन मिट्टियों में लाइमस्टोन को अत्यन्त सुगमतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। इन सभी सुधार साधनों की मात्रा मृदा की भौतिक तथा रासायनिक स्थिति पर निर्भर करती है। इसके लिये किसान को किसी समीपस्थ कृषि वैज्ञानिक की सहायता लेनी चाहिये। वैज्ञानिकों को भी देश के हित में इतना सहृदय होना चाहिये कि प्रत्येक किसान की समस्या को गम्भीरतापूर्वक सुनें, विचार करें एवं उचित राय दें जिससे कि इन समस्या जमीनों से छुटकारा मिले तथा किसान के साथ साथ राष्ट्र की खाद्य समस्या में भी सुधार हो सके। यह पुनीत कार्य सहयोग से ही पूर्ण हो सकेगा।

● ●

[पृष्ठ ८ का शेषांश]

इसके कई उपयोग हैं। सर्वप्रथम इससे प्राप्त पोजीट्रॉन-प्रोटॉन तथा इलेक्ट्रॉन प्रोटॉन प्रकीर्णन प्रयोगों की ३०० mev पर तुलना करने पर नाभिकीय संरचना सिद्धान्त का परीक्षण हो जाता है, इलेक्ट्रॉन किरणों तथा पोजीट्रॉन किरणों की आपस में टक्कर का अध्ययन किया जा सकता है। इन किरणों के और भी अन्य बहुत से उपयोग हैं और कुछ का अध्ययन अभी भी चल रहा है। पोजीट्रॉन किरणों का पदार्थ द्वारा अवशोषण का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि इसकी सहायता से पदार्थ के विनाश हो जाने का जो सैद्धान्तिक तर्क है उसकी पुष्टि की सम्भावना अत्यधिक पाई जाती है।

● ●

उपग्रह अभियान से लाभ

उपग्रह प्रक्षेपण से देश के सुदूर स्थानों से भी सीधे संचार व्यवस्था कायम की जा सकती है। सम्पूर्ण देश के लोग किसी सूचना अथवा दर्शनीय बात को इस व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय टेलीविजन योजना के माध्यम से एक साथ देख एवं सुन सकते हैं। इसका प्रयोग डाक एवं तार विभाग में भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है, विशेषतः उन द्वीपों में जहाँ सीधे संचार व्यवस्था का प्रबन्ध नहीं है जैसे अन्डमान-निकोबार द्वीप। देश के बड़े-बड़े व्यापारिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के शहर यथा दिल्ली, मद्रास, बम्बई, कलकत्ता आदि के बीच सीधी टेलीफोन व्यवस्था कायम की जा सकती है जिस पर कि न्यूनतम ५ पैसे टैक्स लगाने पर भी अनुमानतः ५० करोड़ रुपये प्रति वर्ष का लाभ हमारी सरकार को हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त हमारा सुरक्षा विभाग भी इनका प्रयोग नेफा एवं लद्दाख जैसे दलदले स्थानों से सम्पर्क बनाये रखने में कर सकता है। उपग्रहों का प्रयोग जल सेना द्वारा बीच समुद्र में फँसे जहाज एवं किनारे पर खड़े जहाजों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित करने में किया जा सकता है। इसी प्रकार विभिन्न उड्डयन केन्द्रों के बीच सीधी संचार व्यवस्था बनाये रखने के लिये भी इनका प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न स्थानों से निकलने वाले समाचार पत्र प्रकाशन संस्थान भी इनसे लाभान्वित हो सकते हैं।

यही नहीं, पूरा संसार इस व्यवस्था से एक सूत्र में बाँधा जा सकता है। पिछले वर्ष अमेरिका के साथ हुये समझौते के अनुसार नेशनल एयरोनाटिक्स एवं स्पेस ऐड-मिनिस्ट्रेशन १९७२ ई० में एक शैक्षणिक ध्येय युक्त उपग्रह छोड़ेगा जिसके प्रयोग से भारत एक साथ अपने ५०० गाँवों के निवासियों को शैक्षणिक व्यवस्था के माध्यम से शिक्षित बनाने में सफल हो सकता है। सफलता हमारे एवं सरकार के बीच के सहयोग पर निर्भर करेगी। १९७८ ई० में भारत स्वयं इसी प्रकार के उपग्रह को छोड़ेगा एवं यह अमेरिका के उपग्रह का स्थान ग्रहण कर लेगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिस दिन भारत अन्तरिक्ष योजना में सफल हो जायगा वह दिन भारतवासियों के तकनीकी उन्नति का सुनहरा दिन होगा। देश हर दिशा में उन्नतिशील हो सकेगा एवं सारा देश एक सूत्र में बँध जावेगा।

महिला वैज्ञानिक सम्मानित

ह्यूस्टन (टेक्सास) स्थित एम० डी० एन्डर्सन अस्पताल और ट्यूमर संस्थान की जीव-विज्ञान विशारदा डा० मार्जरी डब्ल्यू० शा को "अमेरिकन एसोसियेशन ओव् यूनिवर्सिटी वीमेन' (ए० ए० यू० डब्ल्यू०) का १९७० का सफलता-पुरस्कार प्रदान किया गया है।

प्रशस्ति-पत्र में संस्थान ने कहा है कि डा० शा एक विशिष्ट विदुषी और चिकित्सिका हैं जिनका मानवीय-अनु-

वंशिकी सम्बन्धी अनुसंधान रोगों के लिए निश्चित निदान और चिकित्सा-व्यवस्था प्रस्तुत करता है।

डा० शा इस समय कीटनाशक दवाइयों और मिलावटी भोज्य सामग्री जैसी औषधियों एवं रसायनों से क्रोमोसोम (गुणसूत्रों) को पहुँचने वाली क्षतियों का अध्ययन कर रही हैं। उनके मौजूदा अनुसंधान का उद्देश्य मनुष्य की आनुवंशिक विरासत को सुरक्षित रखना है, जो उनके अनुसार तेजी से होने वाले वातावरणीय परिवर्तनों—विकिरण, औद्योगिक रसायनों, दवाइयों, भोजन में मौजूद रासायनिक तत्वों और विषाणुओं—का शिकार हो सकती है।

डा० शा ने १९४६ में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से आनुवंशिकी में 'मास्टर' को उपाधि प्राप्त की थी। किन्तु उन्होंने मिशिगन विश्वविद्यालय में १९५३ तक अपना डाक्टरी प्रशिक्षण प्रारम्भ नहीं किया—वह वर्ष था जब उनकी सुपुत्री 'किंडरगार्टेन, में दाखिल हुई थी।

डा० शा को १९५७ से सेन्ट जोसेफ हास्पिटल (एन-औबोंर, मिशिगन) से 'आनर्स' के साथ डाक्टरी की डिग्री प्राप्त हुई। इसके बाद उन्होंने मिशिगन विश्वविद्यालय के मानवीय आनुवंशिकी विभाग में कार्य प्रारम्भ किया। पांच वर्ष के भीतर वह 'इन्स्ट्रक्टर' के पद से 'सह-प्रोफेसर' के पद पर पहुँच गयीं।

आनुवंशिकी में उनकी दिलचस्पी सदैव पूर्णतः वैज्ञानिक ही नहीं रही है। १९६० से १९६७ तक वह विश्वविद्यालय की आनुवंशिकी सलाहकार रहीं। इस पद पर वह विवाहित युगलों को आनुवंशिक बीमारियों से सम्बद्ध उनके पारिवारिक इतिहास और उनकी संतानों पर उनके संभावित प्रभाव के बारे में बताया करती थीं और अक्सर उन्हें उनकी चिंताओं से मुक्ति दिलाया करती थीं।

डा० शा के पति भी चिकित्सक हैं तथा उनका विषय भी आनुवंशिकी है। जब उन्होंने एम० डी० ऐन्डर्सन अस्पताल और ट्यूमर संस्थान में मेडिकल जेनेटिक्स के प्रमुख का पद संभाला तो पूरा परिवार ह्यूस्टन आ गया।

डा० मार्जरी शा इस समय राष्ट्रीय उड्डयन और अंतरिक्ष प्रशासन के ह्यूस्टन स्थित कार्यालय में अनुसन्धान कार्य कर रही हैं। उनके अनुसंधान का विषय अन्तरिक्ष-यात्रा के दौरान अन्तरिक्ष-यात्रियों को पहुँचने वाली क्रोमोसोम सम्बन्धी क्षतियाँ हैं।

३,००० डालर का जो 'सफलता पुरस्कार' उन्हें प्राप्त हुआ है उसे वह 'कानून का अध्ययन' करने में खर्च करने की सोच रही हैं क्योंकि उनको विश्वास है कि दूषण को रोकने के लिए 'विधायन' अनिवार्य है। उनका विचार है कि दूषण भावी पीढ़ियों के लिए एक भयानक खतरा पैदा कर रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय संचार व्यवस्था का माध्यम अरवी उपग्रह केन्द्र

इस वर्ष के अन्त तक पूना से ८० किलोमीटर उत्तर की ओर एक छोटा सा गाँव भारत का अंतर्राष्ट्रीय संचार व्यवस्था केन्द्र बन जायगा। यह उपग्रह अभियान के फलस्वरूप हो सका है।

उपग्रह चालित संचार व्यवस्था केन्द्र की स्थापना के लिये अरवी को ही सर्वप्रथम चुना गया था। यह केन्द्र व्यापारिक संचार व्यवस्था केन्द्र होगा। यह केन्द्र १९६९ में ७२ राष्ट्रों से संचार व्यवस्था बनाये रखने के लिये भारतीय समुद्र के ऊपर छोड़े गये तृतीय इन्टेस्लाट (Inteslat) उपग्रह से सम्बन्ध स्थापित करेगा। इस प्रकार छोड़े गये तीन उपग्रह सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बाँधने में सक्षम होंगे।

अरवी उपग्रह संचार केन्द्र जो कि एस्काम योजना (ascom Project) के नाम से जाना जाता है अणु शक्ति विभाग (Deparment of atomic energy) द्वारा संचार मंत्रालय के लिये बनाया गया है। यह ८ करोड़ लागत से बनाया गया केन्द्र अरवी एवं बम्बई को सूक्ष्म तरंगों के माध्यम से जोड़ता है। बीच में गिरावली, चिकली एवं मैथेरान नामक उपकेन्द्र भी स्थापित किये गये हैं।

अरवी केन्द्र मुख्य अरवी गाँव से २ किलोमीटर की

दूरी पर है। यह केन्द्र चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ है। केन्द्र में २९.५ मीटर व्यास की गोली ऐन्टेना (antenna) लगी हुई है जो सूक्ष्म तरंगों के माध्यम से सूचनायें भेजने एवं ग्रहण करने का काम करती है। इसका निर्माण अत्यन्त जटिल है। यह केन्द्र ६०० टेलीफोन एवं टेलीविजन उपकरणों को एक साथ संचालन करने की क्षमता रखता है एवं १२ अंतर्राष्ट्रीय केन्द्रो के समाचार एक ही समय में ग्रहण कर सकता है।

इस योजना को सफलीभूत बनाने के लिये अपने देश के निम्न संस्थान योगदान करेंगे :—

१. ऐस्काम योजना

२. अहमदाबाद का भू उपग्रह केन्द्र

३. ट्राम्बे का प्रोटोटाइप अभियंत्रण केन्द्र

४. भाभा शोध केन्द्र

५. ट्राम्बे नगर-योजना केन्द्र

६. भारतीय टेलीफोन संस्थान

७. अन्य सम्बन्धित संस्थान

इस योजना के संचालन के लिये आवश्यक उपकरणों को मँगाने हेतु कनाडा सरकार ने भारतवर्ष को ४० लाख कनाडियन डालर का ऋण देने का निश्चय किया है! यह राशि भारतीय रुपयों में ढाई करोड़ रुपये के बराबर होगी। सभी इलेक्ट्रानिक उपकरण मेसर्स आर० सी० ए० लिमिटेड, मान्ट्रिएल, कनाडा द्वारा भेजे गये हैं। अहमदाबाद भू उपग्रह केन्द्र के डाइरेक्टर एस्काम योजना के मुख्य अधिकारी रहेंगे।

उड़ीसा के प्रस्तर-शिल्पी

उड़ीसा अपने मन्दिरों और उन्हें अलंकृत करने वाली मूर्तियों के लिए विख्यात है अतएव, यह स्वाभाविक है कि उड़िया लोगों के हाथकरघे के सिल्क और बच्चों के सुन्दर खिलौनों में उस कला-प्रेम के दर्शन हों जिसका विकास दीर्घकाल में हुआ है।

इनकी अद्भुत कारीगरी का पता चाँदी, लकड़ी और सेलखड़ी पर की जाने वाली अत्यन्त सुन्दर और सूक्ष्म नक्काशी तथा कैनवस पर बनाये जाने वाले आकर्षक धार्मिक चित्रों से भी चलता है।

उड़ीसा के दस्तकारों में पुरी के उन कारीगरों का विशिष्ट स्थान है जो पत्थर को तराश कर सुन्दर कृतियां तैयार करते हैं। उनकी इन कृतियों की प्रशंसा जनता के साथ-साथ कवियों ने भी की है।

पुरी में जगन्नाथ के सुप्रसिद्ध मन्दिर से कुछ ही दूरी पर पाथुरियासाही नामक एक स्थान है जहाँ पत्थर की मूर्तियाँ बनाने वाले कोई १५० कारीगर रहते हैं। इतिहासवेत्ताओं के अनुसार, उड़ीसा के राजा नरसिंह देव प्रथम ने सन् १२११ में इन कारीगरों के पूर्वजों को इस स्थान पर बसने में मदद दी थी।

हाल में अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड ने प्रस्तर-शिल्पियों के लिए पथुरिया-साही में एक प्रशिक्षण-केन्द्र आरम्भ किया है। वहाँ इस समय ९ प्रशिक्षणार्थी हैं। भुवनेश्वर महापात्र उनके शिक्षक हैं। वह १९३० के दशक में कई वर्षों तक शान्ति-निकेतन के विश्वभारती कला भवन में कार्य कर चुके हैं।

उड़ीसा राज्य सरकार के हस्तशिल्प अधिकल्पना एवं प्रशिक्षण केन्द्र ने भी भुवनेश्वर में २ वर्ष के प्रशिक्षणक्रम की व्यवस्था की है।

पुरी के प्रस्तर-शिल्पियों की कृतियों ने प्रशंसा प्राप्त करने के अलावा अमेरिका से डालर भी कमाये हैं। १९६४ में न्यूयार्क में जो विश्वमेला हुआ था उसमें भारतीय मण्डप में रखी पुरी की प्रस्तर-शिल्प कृतियों ने बहुत अधिक आकृष्ट किया था।

कैंसर नियंत्रण की ओर एक नया कदम

इस नई जानकारी से की कैंसर को उलटा, रोका और उसके स्थान पर नयी सामान्य कोशिकाओं का विकास किया जा सकता है, पहली बार एक वास्तविक आशा बंधती है कि मनुष्य में इस बीमारी के सभी रूप अंततः नियंत्रित किए जा सकेंगे।

कैंसर विशेषज्ञ यह नहीं कह सकते कि ऐसा कब हो

सकेगा। किन्तु, उनका यह विश्वास है कि कुछ तरह के कैंसरों पर आगामी वर्षों में अवश्य ही नियंत्रण किया जा सकेगा और लगभग ३० वर्षों में सभी तरह के कैंसरों को ठीक करने की व्यवस्था हो जायेगी।

एक लम्बे अरसे से इस बात पर विश्वास किया जाता है कि ट्यूमर के विकास को एक बार शुरू हो जाने पर उलटा नहीं जा सकता। नया ज्ञान इस सिद्धान्त को संशोधन करने पर जोर दे रहा है।

नये सिद्धान्त के अनुसार कैंसर के विकास को, वह चाहे विषाणुओं, रासायनिक पदार्थों, विकिरण, बुढ़ापे या किसी कारण से क्यों न हुआ हो कोशिकाओं के कुछ दोषपूर्ण आनुवंशिक तत्वों की सक्रियता को दबा कर और उनमें सामान्य एवं स्वस्थ ऊतकों का पुनः विकास करके हमेशा के लिए रोका जा सकता है।

विषाणु और कैंसर सम्बन्धी बीस वर्ष के अनुसन्धान कार्य के बाद डा० ह्यूवर भी कैंसर के बारे में मूलतः डा० ब्राउन के सिद्धान्त को ही मानते हैं अर्थात् कैंसर का रोग कुछ दोषपूर्ण आनुवंशिक तत्वों के कारण होता है। उन्होंने पहले माने जाने वाले इस सिद्धान्त को गलत बताया कि आनुवंशिक तत्वों के पूरकों के समूहों के एक स्थान पर एकत्र होने से कोशिकाएँ ट्यूमर की शकल ले लेती हैं और उससे कैंसर होता है।

डा० ह्यूवर का कहना है कि कैंसर के बीज विषाणुओं के रूप में और कुछ मामलों में दोषपूर्ण आनुवंशिक तत्वों के रूप में प्रत्येक इन्सान में गर्भावस्था से ही होते हैं। फ़िर भी, ज्यादातर लोगों में आनुवंशिक तत्वों की मशीनरी उसे दबाये या बुझाये रहती है।

● ●

निवेदन

नवम्बर के प्रथम सप्ताह को 'विज्ञान दिवस' के रूप में मनाकर विज्ञान को लोकगम्य एवं लोक प्रिय बनाने के लिए समस्त भारतीय विज्ञान पत्रिकायें व्रत लें। समय आ गया है कि इस स्तर पर उतर कर विज्ञान जैसे विषय की दुर्बोधता के हौवे को दूर किया जाय। इसके लिये अधिकारी विद्वान आगे बढ़ कर हाथ बटावें —— लेख लिखें, व्याख्यान दें और स्पर्धाओं का आयोजन करके पुरस्कार प्रदान किये जाने की योजना बनावें।

विज्ञान-वार्ता

१० मिनट में एक किलो चावल

भारत में भ्रमण करते समय अमरीकियों से अक्सर यह प्रश्न किया जाता है कि अमेरिका में वस्तुओं के मूल्य क्या हैं। अमेरिकी लोग इन प्रश्नों का उत्तर डालरों और सेन्टों में दे सकते हैं और इन मूल्यों को रुपयों में भी बताया जा सकता है। किन्तु इससे बात सामान्यतः स्पष्ट नहीं होती क्योंकि अमेरिकी मजदूर अधिक कमाता है और वह जो चीजें खरीदता है उसका उसे अधिक मूल्य देना पड़ता है।

किन्तु हाल में अमेरिकी श्रमविभाग से सम्बद्ध श्रम सांख्यिकी कार्यालय की ओर से प्रकाशित कुछ आँकड़े सामने आये हैं। अमेरिकी लोग जो चीजें खरीदते हैं उनके मूल्यों को इन आँकड़ों द्वारा समय में बदल दिया गया है। इन आंकड़ों को देख कर यह मालूम किया जा सकता है कि सामान्य अमेरिकी मजदूर को ये चीजें खरीदने लायक धन कमाने में कितना समय लगता है। उदाहरण के लिये एक अमेरिकी को एक किलो चीनी खरीदने के लिये ५ मिनट काम करना होगा और एक जोड़ी अच्छा जूता खरीदने के लिये ६ घंटे ५३ मिनट। यहाँ कुछ अन्य उदाहरण दिये जा रहे हैं :

१ किलो मक्खन	३५ मिनट
१ दर्जन अण्डे	१२ मिनट
१ लिटर दूध	५ मिनट
एक किलो चावल	१० मिनट
१ × ६ गज का छपा हुआ मोटा सूती कपड़ा	५४ मिनट
साधारण पैन्ट (पुरुष)	१ घंटा ४३ मिनट
पुरुष का ऊनी (वर्स्टेड) सूट	२४ घंटे १२ मिनट
ट्रांजिस्टर रेडियो, टेबेल मॉडल	५ घंटे ५६ मिनट
२ दरवाजों वाला रेफ्रिजेरेटर फ्रीजर	१३ घंटे २४ मिनट
सिनेमा का सामान्य टिकट	३२ मिनट
२० सिगरेटों का पैकेट	७ मिनट
१ किलो गेहूँ का आटा	४ मिनट
१ किलो आलू	२ मिनट
बाल कटाई (पुरुष)	४६ मिनट
१ किलो काफी	३३ मिनट
१ किलो चाय	५२ मिनट
८ सिलिण्डर की सामान्य आकार की मोटर गाड़ी	२६ सप्ताह २ दिन

अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों को मार्ग में ही नष्ट करने वाली प्रणाली का सफल परीक्षण

अमेरिका ने अपनी भूमि की ओर अग्रसर हो रहे अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्र विरोधी प्रणाली (ए वी एफ) का पहली बार सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

यह सफल परीक्षण २८ अगस्त को किया गया जब कि ए वी एफ प्रणाली में प्रयुक्त एक स्पार्ट, प्रक्षेपणास्त्र क्वाजलीन परीक्षण स्थल से प्रशान्तमहासागर में उस दिशा में दागा गया था (यह जिधर से अमेरिकी अन्त-र्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्र मिनटमैन-६ आ रहा था)। यह मिनिटमैन, प्रक्षेपणास्त्र ६७२० किलोमीटर दूर कैलिफोर्निया स्थित अड्डे से दागा गया था।

अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों को मार्ग में ही रोक देने वाले प्रक्षेपणास्त्र का नाम 'स्पार्टन' है। यह १६·५ मीटर

लम्बा है तथा इसकी मार कई सौ किलोमीटर है। दूसरा प्रक्षपेणास्त्र 'स्प्रिंट' है यह आठ मीटर लम्बा है। तथा इसकी मार४७ किलोमीटर तक है। यह उन अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों को नष्ट करने में समर्थ है जो स्पार्टन की पकड़ से बच निकलेंगे।

विभिन्न अंगों के जोड़ने का सफल प्रयास

जर्मन सोसायाटी फार सर्जरी इनम्युरिख (फेडरेशन रिपब्लिक आफ जर्मनी) की ८७वीं कांग्रेस के अवसर पर पश्चिमी बर्लिन के एक चिकित्सक दल ने कटे हुए अंगों की सफलतापूर्वक सिलाई करके काम लायक बनाकर चिकित्सा जगत में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया है। बर्लिन के पाँच प्रमुख शल्य चिकित्सकों के दल ने सफल शल्य चिकित्सा द्वारा अंगों की सिलाई करने का विस्तृत वर्णन दिया है।

विद्युत-विश्लेषी झिल्लियाँ

विद्युत विश्लेषण की विधि अपनाकर उत्पादन की गति को तीव्र करने की प्रणाली ने अनुसन्धाकर्ताओं को गत दो दशाब्दियों में बहुत आकृष्ट किया है। केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान, भावनगर ने यही विधि नमक उत्पादन में भी अनेक प्रकार से अपनायी है। विद्युत विश्लेषण प्रक्रिया के लिये सदैव विशेष किस्म की झिल्लियों की आवश्यकता हुआ करती है। संस्थान ने नमक उत्पादन के लिये विशिष्ट झिल्लियाँ तैयार की हैं जिनके द्वारा विद्युद्विश्लेषण प्रक्रिया के दौरान घोलों में आयनों का परस्पर विनिमय बहुत ही सुगमता से अपेक्षित गति से हो सकता है। इनका उपयोग ऋणाग्रों एवं धनाग्रों पर उत्पादों को एकत्रित करने के लिये होता है। इनके कारण जहाँ उत्पादन की गति तीव्र होती है, वहीं उत्पाद की शुद्धता भी आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाती है। समुद्र के भीतर चलते हुये जहाजों में खारे पानी से पीने योग्य पानी प्राप्त करने में भी इन झिल्लियों का उपयोग किया जा सकता है।

मानवरहित यान द्वारा चन्द्रमा की सफल उड़ान

रूस द्वारा छोड़ा गया मानव रहित अन्तरिक्षयान लूना-१६ चन्द्रमा की यात्रा पूरी करके पृथ्वी पर वापस आगया। लूना-१६ अपने साथ चन्द्र धूलि भी लाया है। यद्यपि अमेरिका की अपोलो-११ की उड़ान में आर्म्सट्रांग आदि अपने-साथ साथ चन्द्र धूलि लाये थे पर मानव रहित यान का चन्द्रमा पर उतरना, वहां से धूलि इकट्ठी करना और पृथ्वी पर सकुशल वापस आ जाना बहुत बड़ी सफलता है। अन्तरिक्ष उड़ानों के इतिहास में इस कृति द्वारा एक नया अध्याय जुड़ गया है और विज्ञान तथा तकनीकी उन्नति में में आशातीत सफलता मिली है। यह यान १३ सितम्बर को छोड़ा गया था और २४ सितम्बर को मास्को से दक्षिण-पश्चिम में २२५० किलोमीटर दूर कजाखिस्तान में घोषित समय से केवल ६ मिनिट के अन्तर से धूलधारित कैप्सूल पृथ्वी पर उतरा। जिस तकनीकी बारीकी, सुरक्षा, अल्पव्यय तथा खोजों की अत्यधिक सम्भावना के साथ यह उड़ान पूरी हुई है, इसे सोवियत वैज्ञानिक महान विजय समझते हैं और अन्य सभी पिछली उड़ानों से इसे सर्वोपरि मानते हैं। इस सफलता से उत्प्रेरित होकर सोवियत वैज्ञानिक मंगल तथा अन्य ग्रहों की धूलि एकत्रित करने से लिए मानव रहित यानों की उड़ानों की ओर प्रयास करने की सोचने लगे हैं।

अमेरिका की दो अपोलो-यात्राएँ रद्द

अमेरिका की अन्तरिक्ष एजेन्सी ने अपोलो अन्तरिक्ष यात्रियों की शेष छः यात्राओं को रद्द करने की घोषणा की है। उसने यह भी घोषणा की है कि १९७२ के मध्य तक कार्यक्रम का समापन भी कर दिया जायेगा।

अमेरिका के राष्ट्रीय उड्डयन और अन्तरिक्ष प्रशासन (नैसा) के प्रशासक डा० टामस ओ० पेन ने कहा कि अपोलो १५ और १९ की यात्राओं को रद्द करने का निर्णय 'अत्यन्त' ही अनिच्छापूर्वक लिया गया है। यह निर्णय बजट में हुई कटौती का सामना करने तथा नये

कार्यक्रमों के लिए निधि सुरक्षित रखने के लिए किया गया। नये कार्यक्रमों में आकाशीय प्रयोगशाला, १९७२ के अन्त में छोड़ जाने वाले अन्तरिक्ष स्टेशन, अन्तरिक्ष शटल और १९७० के दशक के अन्त में स्थापित किए जाने वाले बड़े अन्तरिक्ष स्टेशन आदि शामिल हैं।

अपोलो की उड़ानों का नये सिरे से नियोजन किया गया है और उनके नाम भी नये सिरे से रखे गए हैं। नव-नियोजित अपोलो-१४ से अपोलो १७ तक की उड़ानें लगभग ६ महीने के अन्तर से की जायेंगी। उनका व्योरा निम्न प्रकार है:

अपोलो-१४ : इसके कार्यक्रम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वह ३१ जनवरी, १९७१ को छोड़ा जाएगा। उसमें अन्तरिक्षयात्री एल० शेपर्ड, स्टुअर्ट रूसा और एडगर मिचेल जायेंगे। कार्यक्रम के अनुसार चन्द्रमा की 'फ्रा मोरा' नामक पठारी भूमि पर अवतरण किया जायेगा।

अपोलो-१५ : अन्तरिक्षयात्री डेविड स्काट, अलफ्रर्ड वार्डन और जेम्स अर्विन होंगे। जुलाई १९७१ में प्रक्षेपण, होगा। गंतव्य का निर्णय होना शेष है।

अपोलो-१६ : इसके लिए अन्तरिक्ष यात्रियों या उतरने के स्थान का चुनाव अभी नहीं किया गया है। प्रक्षेपण जनवरी १९७२ में होगा।

अपोलो-१५ के अन्तरिक्ष यात्री अपने साथ एक चलने वाली गाड़ी ले जायेंगे और उसके द्वारा वे अपने चन्द्रयान से ४० किलोमीटर दूर तक घूम-फिर कर चन्द्रमा सम्बन्धी तथ्यों का पता लगाएँगे।

चन्द्रतल पर चलायी जाने वाली अन्तरिक्ष यात्रियों की इस गाड़ी पर आजकल काम हो रहा है। यह बिजली से चलने वाली चार पहियों की एक जीप है। इस पर बैठ कर अन्तरिक्षयात्री चन्द्रमा के तल पर घूमेंगे और जो असाधारण वस्तु देखेंगे उसे एकत्र करेंगे तथा चन्द्रमा से सम्बद्ध दिलचस्प बातों की खोज करेंगे।

अपोलो-१५ की यात्रा से ही अपोलो यान के कमाण्ड कक्ष में एक स्वचालित यन्त्रपुंज फिट कर दिया जायेगा जिस समय अपोलो दो अन्तरिक्षयात्रियों को चन्द्रयान द्वारा चन्द्रतल पर भेज चुकेगा और अपोलो का मुख्य यान चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहा होगा उस समय यन्त्रपुंज चन्द्रमा का अध्ययन करेगा।

इन सभी यात्राओं में अणुशक्ति से चलने वाला एक यन्त्रपुंज भी साथ भेजा जायेगा जिसे अन्तरिक्ष यात्री चन्द्रमा पर स्थापित करेंगे। ऐसे पहले यन्त्र-पुंज का नाम 'अलसेप' रखा गया था। वह अपोलो-१२ के अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा १९६९ में चन्द्रमा पर स्थापित किया गया था।

सूर्य से पानी गर्म करने वाला हीटर

नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला ने सौर ऊर्जा का सहारा लेते हुये पानी को गर्म करने के लिये एक नये किस्म का हीटर विकसित किया है। इस वाटर-हीटर को मकानों की ऊपरी छतों पर लगा दिया जाये तो यह गर्म पानी की सप्लाई करने वाली टंकियों का काम कर सकता है। इस हीटर में सौर ऊष्मा एकत्रित करने की एक सरलतम प्रणाली है और पूरा यन्त्र लकड़ी के कुचालक बक्से में बन्द रहता है। सोलर वाटर-हीटर का परीक्षण उप-भोक्ताओं द्वारा किया जा चुका है और इसे पूर्णतः संतोष-जनक पाया गया है। व्यापारिक स्तर पर उत्पादन के लिये इसके निर्माण की प्रविधि को पेटेण्ट किया जा चुका है। उत्पादन के लिये आवश्यक अधिकांश सामग्री देश में ही उपलब्ध है। एक यूनिट के हीटर में एक हजार रुपये तथा दो यूनिटों के हीटर में डेढ़ हजार रुपये लागत अनु-मानित की गयी है। भारत में जाड़े के दिनों स्नान आदि के लिये गर्म पानी की बहुत आवश्यकता पड़ती है। एक यूनिट का सोलर वाटर-हीटर औसत भारतीय परिवार के लिये आवश्यक गर्म पानी की मात्रा सप्लाई कर सकता है। प्रविधि के विस्तृत विवरण राष्ट्रीय अनुसन्धान विकास निगम, मण्डी हाउस, नई दिल्ली से प्राप्त किये जा सकते हैं।

पेट्रोलियम निर्माण में मूल्यवान मिट्टियां

देहरादून स्थित भारतीय पेट्रोलियम संस्थान ने पेट्रोलि-

यम उद्योग के लिये आवश्यक मिट्टियों के विकास की दिशा में अपने अनुसन्धान प्रयासों को बढ़ाया है। पेट्रोलियम उद्योग में पेट्रोल तथा उसके सहजात उत्पादों के निर्माण हेतु विशिष्ट किस्म की मिट्टियों का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की कुछ प्राकृतिक तथा कृत्रिम मिट्टियों को को लेकर उनकी उपयोग संभावनाओं को संस्थान ने परखा है। अन्वेषण में विशेष ध्यान इस बात का रखा गया है कि मिट्टियों के उन्हीं मिश्रणों का निर्माण किया जाय जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हों। साथ ही इसके लिए पेट्रोलियम निर्माण पर पड़ने वाले भारी व्यय को भी कम करने का पूरा प्रयास है। आशा की जाती है कि इन मिट्टियों को देश में ही उपलब्ध करने, इनके द्वारा आवश्यक सामग्री तैयार करने से पर्याप्त विदेशी मुद्रा बचायी जा सकेगी और पेट्रोलियम उत्पादन की लागत में भी कमी हो सकेगी।

सर्वोतम चुम्बकीय पदार्थ

रेथियम स्थित एक प्रतिरक्षा प्रयोगशाला में एक ऐसा धातु-क्रम तैयार किया गया है जो अपने चुम्बकत्व में अब तक ज्ञात अन्य चुम्बकीय पदार्थों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। सूक्ष्मतरंग ट्यूबों में प्रयुक्त होने वाले मंहगे प्लैटिनम कोबाल्ट चुम्बकों की अपेक्षा यह चुम्बक कम मूल्य का होते हुये भी अधिक शक्तिशाली सिद्ध होगा।

इस नये चुम्बक में कोबाल्ट के साथ दुर्लभ-मृत्तिकाओं से एक तत्व समेरियम को मिश्रित किया गया है। यह मिश्रण सामान्य चुम्बकों की अपेक्षा चार गुना और प्लेटिनम-कोबाल्ट की अपेक्षा दो गुना अधिक चुम्बकीय शक्ति लिये हुये है। उच्च तापमान पर भी इस चुम्बक की तीव्रता पर सरलता से कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके साथ ही इस चुम्बक की एक और विशेषता यह है कि सामान्य चुम्बकों की अपेक्षा यह बहुत ही हल्का होता है। कुछ प्रचलित चुम्बक सामग्रियों की अपेक्षा कोबाल्ट-समेरियम मिश्रण भार में चार गुना कम है। इसका कारण यह है कि मिश्रण के दो अवयवों में से एक धातु न होकर मृत्तिका है। इस अन्वेषण की दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि प्लेटिनम जैसे दुर्लभ तत्व की अपेक्षा समेरियम अधिक सुगमता से उपलब्ध है।

लेखकों से अनुरोध

कृपया लेख प्रेषित करते समय आवश्यक चित्र भेजना न भूलें। उनके ब्लाक बनवाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।

—सम्पादक

सम्पादकीय

१. बेकार वैज्ञानिकों के लिये कार्य का सुझाव

डा० एम० एस० स्वामीनाथन, डाइरेक्टर, भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, दिल्ली ने डा० जाकिर हुसेन स्मृति व्याख्यान माला के अन्तर्गत अपने एक विशद व्याख्यान में कुछ मूलभूत बातों की ओर जनता एवं सरकार दोनों ही का ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने १९५८ तथा १९६८ ई० के विश्वविद्यालयों से पढ़कर निकलने वाले विज्ञान की विविध शाखाओं के डिग्रीधारी छात्रों की संख्या देते हुये यह स्पष्ट कर दिया है कि १९७३ के अन्त तक भारतवर्ष में कृषि स्नातकों में से लगभग ९ हजार और कृषि इंजीनियरों में से लगभग ७०० बेकार होंगे। आश्चर्य है कि आज भी ७०% से अधिक लोगों की जीविका एवं व्यवसाय का साधन कृषि है अतः वे छात्र जो कृषि विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने के बाद नौकरी की उम्मीद लगाते हैं उन्हें निराश होकर खेती की ओर मुड़ना ही होगा। शायद राष्ट्रपति के इस कथन का रहस्य यही है "प्रत्येक घर को फैक्टरी और प्रत्येक एकड़ को चरागाह में परिणत करो"। तब हर कृषि छात्र अपने गाँव को लौटेगा, उसे शहर की ओर आँख उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

डा० स्वामीनाथन के व्याख्यान का सारांश यह है कि भविष्य में शिक्षित बेकारी का बोलबाला होगा। इससे बचने के लिये उन्होंने जो सुझाव रखा है वह व्यवहार में लाया जा सके तो शायद व्याप्त असन्तोष कम हो। डा० स्वामीनाथन का कहना है कि साल में कम से कम दो महीने तक प्रत्येक छात्र चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभिन्न प्रोजेक्टों में कार्य करे। कार्य करने के लिये प्रत्येक छात्र को १५० रु० मासिक खर्च मिले। इससे विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले २० लाख छात्रों पर प्रतिवर्ष ८० करोड़ रुपये की धनराशि व्यय होगी जो चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की लागत का केवल १०% है। इतने से अल्प व्यय से अति व्याप्त असन्तोष को कम किया जा सकता है। राष्ट्रीय उत्थान के लिये यह मंगलकारी योजना अवश्य ही मनन करने तथा व्यावहारिक रूप प्रदान करने के योग्य है। काश कि हमारी सरकार इस ओर ध्यान देकर छात्र-आन्दोलन के मूलभूत कारण को समझने का यत्न करती।

२. लूना-१६ की चन्द्र यात्रा

सोवियत वैज्ञानिकों ने लूना-१६ को चन्द्रमा तक पहुँचा कर और बिना किसी मानव-सहयोग के चन्द्रतल से चट्टानों एवं मिट्टी को एकत्र करके, सफलतापूर्वक लौटा कर अपनी अभूतपूर्व उपलब्धि का परिचय दिया है। निस्सन्देह अमरीकी वैज्ञानिकों ने चन्द्रतल में मानव भेजकर उसके नमूने एकत्र करने में ११ मास पूर्व ही सफलता प्राप्त कर ली थी किन्तु इस रूसी सफलता की विशेषता यह है कि इसमें मनुष्य के बिना ही मिट्टी की खुदाई, डिब्बा में उसका बन्द होना आदि मशीनों के द्वारा सम्पन्न किये गये। रूसी वैज्ञानिकों का यह विश्वास रहा है कि चन्द्रमा तक मनुष्य को भेजना खतरे से खाली नहीं, इसीलिये उन्होंने यह मानवरहित यान भेजकर जो कार्य सम्पन्न किया है वह विशेष चर्चा का विषय बन गया है। अब रूस और अमरीका की अन्तरिक्ष विज्ञान सम्बन्धी उपलब्धियाँ समकक्ष हैं। देखें भविष्य में किस दिशा को हवा बहती है।

३. डी. डी. टी. की निर्दोषिता

हाल ही में हिन्दुस्तान इन्सेक्टीसाइड लिमिटेड ने एक पुस्तिका प्रकाशित करके वहु बदनाम डी. डी. टी. को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसमें सारांश रूप में यह कहा गया है कि भारत में डी. डी. टी. का प्रयोग जिस मात्रा में किया जा रहा है वह किसी भी हालत में घातक सिद्ध नहीं हो सकती। भारत में तो इसके अधिक उत्पादन की ओर ध्यान देना चाहिए।

ऐसा लगता है कि डी. डी. टी. के दूसरे कारखाने की स्वीकृति मिलने के पूर्व हिन्दुस्तान इन्सेक्टीसाइड लिमिटेड ने यह एक प्रकार से आत्मश्लाघा कर डाली है। इसका कहना है कि डी. डी. टी. के प्रयोग से कुछ जाति की पक्षियों तथा पशुओं के विलोप होने का मूल कारण उसका त्रुटिपूर्ण छिडकाव रहा है। चूहों मे होने वाले कैंसर का वास्तविक कारण डी. डी. टी. की अत्यधिक मात्रा है जो कभी भी मनुष्यों को नहीं मिल सकेगी। अतः यह असम्भव ही समझना चाहिए कि कभी मनुष्यों को डी. डी. टी. के कारण कैंसर होगा। मात्र डी. डी. टी. की उपस्थिति का पता लगा लेने से यह नहीं समझना चाहिए कि वह घातक है। घातक होने के लिये उसकी न्यूनतम मात्रा की सीमा का उल्लंघन होना चाहिए। किन्तु क्या ऐसा सम्भव है ?

किन्तु हमें इतने से ही संतुष्ट होकर बैठ नहीं जाना है। यदि डी. डी. टी. का कुप्रभाव आज नहीं परिलक्षित होता तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिए कि कालान्तर में वह घातक नहीं बन जावेगा। यह सर्वविदित तथ्य है कि डी. डी. टी. का संग्रह मनुष्यों की वसा में होता रहता है जिसके फलस्वरूप नाना प्रकार के रोग हो सकते हैं। फिर एक बार प्रविष्ट होने पर इसका विनष्टीकरण दुःसाध्य है। यही नहीं, भूमि उर्वरता तथा समुद्री पशुओं पर डी. डी. टी. का घातक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि वर्ष प्रतिवर्ष अमरीका जैसे उन्नत देशों में डी. डी. टी. के प्रयोग करते रहने पर भी फसल की ठीक से सुरक्षा नहीं हो पाती। हम सबों ने अपने देश में डी. डी. टी. के छिडकने से मलेरिया-उन्मूलन होते देखा है किन्तु मच्छरों की संख्या में तो वृद्धि ही हुई है ? ऐसा क्यों ? इसीलिए न, कि डी. डी. टी. के द्वारा अन्य ऐसे प्राणी भी समाप्त हो जाते हैं जो रोग फैलाने वाले कीटों पर प्रकृति में नियन्त्रण बनाये रखते हैं। अतः सरकार को डी. डी. टी. के निर्माण करने में सतर्कता बरतनी ही होगी।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | आषाढ़ २०२७ विक्र०, १८९२ शक जुलाई १९७० | संख्या ७

नियंत्रित तापनाभिकीय ऊर्जा

• श्याम लाल काकानी

नियंत्रित तापनाभिकीय क्रिया से ऊर्जा प्राप्त करने का सिद्धान्त अति सरल है। हाइड्रोजन के तीन समस्थानिक होते हैं—**हाइड्रोजन** ($_1H^1$), **ड्युटरान** ($_1H^2$ या D) और **ट्राइटियम** ($_1H^3$ या T)। जब दो ड्युटरान नाभिकों या ड्युटरान और ट्राइटियम नाभिकों या ट्राइटियम और हाइड्रोजन नाभिकों में संगलन क्रिया होती है, तो ऊर्जा प्राप्त होती है। इस ऊर्जा को **संगलन ऊर्जा** कहते हैं। इन क्रियाओं को निम्न समीकरणों से प्रदर्शित कर सकते हैं :—

$$_1H^2 + _1H^2 \rightarrow _1H^3 + p + 4{\cdot}0 \text{ Mev}$$
$$\rightarrow _2He^3 + n + 3{\cdot}2 \text{ Mev}$$

$$_1H^2 + _1H^3 \rightarrow _2He^4 + n + 17{\cdot}6 \text{ Mev}$$

$$_1H^2 + _2He^3 \rightarrow _2He^4 + p + 18{\cdot}3 \text{ Mev}$$

जबकि $p \rightarrow$ प्रोटान, $n \rightarrow$ न्यूट्रान

$^2He^3 \rightarrow$ ट्राइहीलियम

$^2He^4 \rightarrow$ हीलियम
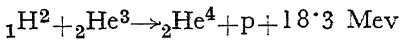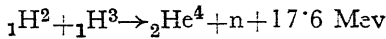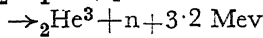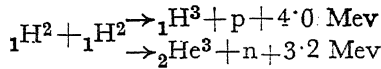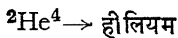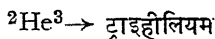
नियंत्रित नाभिकीय ऊर्जा की उपयोगिताओं का क्षेत्र बहुत व्यापक है। अत्यधिक महत्वपूर्ण उपयोगिता के क्षेत्रों में ऊर्जा-समस्या का अन्तिम समाधान अर्थात् असीमित ऊर्जा के विकास में सहयोग का वर्णन प्रसंगोचित होगा।

यद्यपि संगलन क्रिया से नियंत्रित नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त करने का सिद्धान्त अति सरल प्रतीत होता है, किन्तु वास्तविकता में उतना ही कठिन है। अगर वैज्ञानिक संगलन क्रिया से नियंत्रित ऊर्जा प्राप्त करने में सफल हो गए तो संगलन रिएक्टर की आधारभूत आवश्यकताएं निम्न होंगी :—

(अ) प्लाज्मा आयनों की ऊर्जा $nkT \cong 10$ kev

[$n \rightarrow$ आयनों की संख्या
$kT \rightarrow$ प्रत्येक आयन की ऊर्जा]

अर्थात् ताप $T \cong 10^8 k$

(ब) प्लाज्मा घनत्व $(n) \cong 10^{15} \frac{\text{आयन्स}}{\text{घन से॰मी॰}}$

(स) चुम्बकीय क्षेत्र का मान (B) $\cong 20$ किलो गास

(द) D–T क्रिया के लिए प्लाज्मा सृजन का समय $\cong \frac{1}{10}$ सेकण्ड

और D–D क्रिया के लिए प्लाज्मा सृजन का समय $\cong$ 10 सैकन्ड

उपर्युक्त वर्णित आवश्यकताओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि संगलन क्रिया से नियंत्रित ऊर्जा प्राप्त करने के लिए यह क्रिया अत्यधिक ऊँचे ताप (10^8K) पर सम्पन्न होनी चाहिए। अब तक वैज्ञानिकों ने आघात नलियों (Shock Tubes) में 10^7K ताप प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली है। न्यूट्रान तापमापी इस ताप को नापने में प्रयुक्त किए जाते हैं।

अत्युच्च ताप पर ड्युटरान, ट्राइटियम या हीलियम नाभिक जिनमें संगलन क्रिया होती है, प्लाज्मा में परिवर्तित हो जाते हैं। अतः उच्च तापीय प्लाज्मा पर प्रयोग करने या नियंत्रित ऊर्जा प्राप्त करने के लिए प्लाज्मा का सृजन करना आवश्यक हो जाता है, जिससे लगातार कई संगलन क्रियाएँ सम्भव हो सकें। अगर प्लाज्मा का घनत्व अधिक हो तो संगलन क्रियाओं के लिए सृजन का समय कम हो सकता है, लेकिन उस अवस्था में ऊर्जा अति तीव्रता से निकलेगी [जैसे हाइड्रोजन बम में]। अतः नियंत्रित ऊर्जा के लिए प्लाज्मा का घनत्व, 10^{15} $\frac{\text{आयन्स}}{\text{घन से० मी०}}$ के लगभग होना चाहिए। आज प्रमुख समस्या ऐसे आधान पात्र की आती है, जिसमें 10^8K ताप पर 10^{15} $\frac{\text{आयन्स}}{\text{घन से० मी०}}$ घनत्व के प्लाज्मा का सृजन निहित समय के लिए किया जा सके। यहाँ समस्या यह नहीं है कि कोई भी पदार्थ इतने ऊँचे ताप पर ठोस नहीं रह सकता है किन्तु समस्या यह है कि इतने ऊँचे ताप पर प्लाज्मा को ठंडी दीवारों के सम्पर्क में आने से कैसे रोका जाय? प्लाज्मा की ताप चालकता किसी भी पदार्थ से कई लाख गुनी अधिक होती है, अतः यह तत्काल ही ठंडा हो जायगा।

मानव निर्मित प्लाज्मा-सृजन के लिए गुरुत्वाकर्षण बल का उपयोग पूर्ण रूप से अनुपयोगी सिद्ध हुआ है। नाभिकों में परस्पर वैद्युत प्रतिकर्षण के कारण, वैद्युत क्षेत्रों का उपयोग भी संभव नहीं हो सकता है। अतः प्लाज्मा-सृजन के लिए चुम्बकीय क्षेत्र ही विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

चुम्बकीय क्षेत्र में प्लाज्मा सृजन का सिद्धान्त

चुम्बकीय क्षेत्र, कक्ष के रेखीय एक भट्टी का कार्य करता है, जो आयनों की दीवार से दूर रहता है। चुम्बकीय क्षेत्र से लम्बवत् गति करने वाले आवेशित कण का पथ वृत्ताकार होता है, जिससे आयनीकृत कण स्वयं पूर्ण रूप से चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा दो दिशाओं में अन्तर्विष्ट हो जाता है। चूँकि वृत्ताकार परिपथ में गति करने वाले कण से वृत्ताकार धारा उत्पन्न होती है, अतः कण का चुम्बकीय क्षेत्र में इस प्रकार अन्तर्विष्ट होना बहुत मँहगा पड़ता है क्योंकि, वृत्ताकार धाराओं से एक अतिरिक्त चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है जो मूल चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा के विपरीत होता है इससे तप्त प्लाज्मा क्षेत्र पर चुम्बकीय क्षेत्र का परिमाणित बल बहुत कम हो जाता है। मूल चुम्बकीय क्षेत्र में इस कमी को प्रतिचुम्बकन (Dimagnetism) कहते हैं। प्लाज्मा सतह पर कणों की कक्षीय धाराओं से यह कमी होती है। सतही धारायें, मूल चुम्बकीय क्षेत्र से इस प्रकार परस्पर क्रियायें करती हैं, जिससे एक बल उत्पन्न होता है, जिसका मान प्रायः उस बल के बराबर होता है जो प्लाज्मा दाब के संतुलन के लिए आवश्यक होता है।

[प्लाज्मा दाब $=$ nkT]

प्लाज्मा कणों के दाब को संतुलित करने के लिए चुम्बकीय क्षेत्र में एक विशिष्टता होती है। चुम्बकीय क्षेत्र के द्वारा विशिष्ट दाब का मान $\frac{B^2}{8\pi}$ (B$\rightarrow$चुम्बकीय क्षेत्र का मान) के बराबर होता है। अतः प्लाज्मा दाब आन्तरिक चुम्बकीय क्षेत्र एवं वाह्य चुम्बकीय क्षेत्र में संतुलन के लिए, प्लाज्मा का दाब और आन्तरिक चुम्बकीय विशिष्ट दाब का मान $\left(\frac{B_1^2}{8\pi}\right.$, B_1 आन्तरिक चुम्बकीय क्षेत्र का मान) बाह्य चुम्बकीय क्षेत्र का विशिष्ट दाब $\left(\frac{B_2^2}{8\pi}\right.$, B_2 लगाए गए बाह्य चुम्बकीय क्षेत्र का मान) के बरा-

बर होना चाहिए।

$$nkT + \frac{B_1^2}{8\pi} = \frac{B_2^2}{8\pi}$$

यही चुम्बकीय क्षेत्र में प्लाज्मा सृजन का आधारभूत सिद्धान्त है। उदाहरण के लिए 5000 गास चुम्बकीय क्षेत्र का मान 1 वायुमण्डलीय दाब के बराबर होता है, प्लाज्मा जिसका दाब 100 वायुमण्डलीय दाब के बराबर हो, सृजन के लिए कम से कम 50,000 गास चुम्बकीय क्षेत्र की आवश्यकता होगी।

चुम्बकीय बोतल सिद्धान्त

इस विधि में प्लाज्मा को एक निर्वात प्रकोष्ठ में रखा जाता है, जिससे प्लाज्मा का सम्पर्क बाह्य हवा से न हो सके। प्लाज्मा आयनों को दीवार से दूर रखने के लिए चुम्बकीय क्षेत्र इस प्रकार उत्पन्न किया जाता है, जिससे चुम्बकीय बल रेखाएँ प्रकोष्ठ सतह के रेखीय होती हैं। चुम्बकीय क्षेत्र में प्रत्येक प्लाज्मा कण या आयन का पथ कुंडलिनी जैसा होता है। कई विभिन्न प्रकार की चुम्बकीय बोतलों से प्लाज्मा सृजन के प्रयत्न किए गए हैं, लेकिन ऐसी चुम्बकीय बोतल का निर्माण संभव नहीं हुआ जो लीक न करती हो।

चुम्बकीय दर्पण सिद्धान्त

इस विधि में, प्लाज्मा आयनों को इस प्रकार फँसाया जाता है, जैसे सूर्य कण पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में फँसते हैं। विसर्जन प्रकोष्ठ जिसके चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करने के लिए कुण्डलीनुमा तार लगाया जाता है, उसमें प्लाज्मा अन्तःक्षित कराया जाता है। प्लाज्मा आयनों या कणों को दर्पणों के बीच चुम्बकीय क्षेत्र का मान बढ़ाकर फँसाया जाता है, तथा क्रमिक अवस्थाओं में रुद्धोष्म (Adiabatic) संकुचन विधि से ऊष्मा दी जाती है। वास्तव में इस विधि में सृजन के लिए अक्षीय एवं अरीय संकुचन साथ साथ कार्य करते हैं। इस विधि में भी प्लाज्मा अस्थिरता एवं कम्पन के कारण तापीय स्थायीकरण नियत समय के लिए संभव नहीं हो सका है।

उभयाग्र या आरक्षी घेरा ज्यामिति सिद्धान्त

इस विधि में प्लाज्मा सृजन के लिए चुम्बकीय क्षेत्रों को विशेष रूप से निर्मित किया जाता है जैसे स्टेलैरेटर में चुम्बकीय क्षेत्र टोरस के आकार का होता है। वास्तव में स्टेलैरेटर विधि में प्लाज्मा सृजन के लिए चुम्बकीय क्षेत्र इस प्रकार उत्पन्न किया जाता है कि एक चुम्बकीय बल रेखा का अनियतरूपेण अनुकरण हो, जिससे केवल एक वृत्त का ही निर्माण होकर पूर्ण ट्रोयाडल (Toroidal) सतह उत्पन्न हो।

स्टेलैरेटर विधि में, एक ऐसी सिरोरहित वृत्तज नली, जो टोरस (torus) के आकार की होती हैं, उसमें तप्त गैस भर दी जाती है। इस नली के चारों ओर तार की कुण्डलियाँ लपेटी जाती हैं, जिससे बाह्य चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार की नली प्रयुक्त किए जाने का मुख्य कारण यह है कि नली में प्रतिसाम्य के कारण सिरों पर प्लाज्मा से ऊर्जा हानि नहीं होती है।

तप्त प्लाज्मा का सृजन

तप्त प्लाज्मा सृजन की विभिन्न विधियों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते है :—

(१) **निम्न ऊर्जा इंजेक्शन विधियाँ**—इन विधियों में एक शीतल गैस को जिसका घनत्व 10^{13} से 10^{16} अणु घन से० मी० होता है, आयनीकृत करके निम्न तापीय प्लाज्मा उत्पन्न किया जाता है। विभिन्न विधियों द्वारा इस प्लाज्मा का ताप 10^8K तक पहुँचाने के लिए ऊष्मा दी जाती है। सारणी १ में निम्न ऊर्जा इंजेक्शन विधि और उन स्थानों का नाम जहाँ पर इनके द्वारा नियंत्रित नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त करने के प्रयास जारी है, अंकित हैं।

(२) **उच्च ऊर्जा इंजेक्शन विधियाँ**—इस श्रेणी के अन्तर्गत सृजन की ऊर्जा विभिन्न विधियों में कणों का पुंज होता है जिसकी ऊर्जा इतनी होती है, जिससे संगलन क्रिया सम्पन्न हो सके। इन कणों के पुंज को चतुराई से निर्मित चुम्बकीय क्षेत्रों द्वारा फँसाया जाता है। इस सिद्धान्त पर आधारित विभिन्न विधियों का उल्लेख सारणी २ में किया गया है।

सारणी १

निम्न ऊर्जा इंजेक्शन विधियाँ

विधि	स्थान	सिद्धान्त	ऊष्मा देने की विधि
अक्षीय पिन्च	१ लॉस अल्मास वैज्ञानिक प्रयोगशाला । २ लाउरेन्स विकिरण	गैस में धाराओं के प्रवाह से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है । ज्यामिति रेखीय ।	तीव्र चुम्बकीय संकुचन विधि से
थीटा पिन्च	१ लॉस अल्मास वैज्ञानिक प्रयोगशाला । २ नवल अनुसन्धान प्रयोगशाला ।	गैस में धाराओं के प्रवाह से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है । ज्यामिति ट्रोयाड़ल (Toroidal)	,,
पायरोट्रान संकुचन दर्पण मशीन	लाउरेन्स विकिरण प्रयोगशाला	वाह्य कुण्डलियों में धाराओं से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है । सिरों पर अति तीव्र बल लगाया जाता है । ज्यामिति रेखीय ।	रुद्धोष्म संकुचन से
स्टेलैरेटर	प्रिंसटन	वाह्य कुण्डलियों में धाराओं के प्रवाह से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जाता हैं । ज्यामिति ट्रोयाडल ।	(१) ओमिक विधि (Ohmic) (२) आयन विधि

सारणी २

उच्च उर्जा इंजेक्शन विधियाँ

विधि	स्थान
१ आणविक आयन विधि ।	ओकरिज राष्ट्रीय प्रयोगशाला
२ ऊर्जस्वी उदासीन इंजेक्शन विधि ।	लाउरेन्स विकिरण प्रयोगशाला
३ उभयाग्र में इंजेक्शन विधि ।	लास अल्मास वैज्ञानिक प्रयोगशाला
४ अस्ट्रान	लाउरेन्स विकिरण प्रयोगशाला

प्लाज्मा अस्थिरता एवं कम्पन

विभिन्न विधियों में यह देखा गया है कि प्लाज्मा में अस्थिरता एवं कम्पन उत्पन्न हो जाने से प्लाज्मा सृजन निश्चित समय के लिए सम्भव नहीं हो सकता है अतः नियंत्रित ऊर्जा प्राप्त करने के लिए प्लाज्मा अस्थिरता एवं कम्पन समस्या का समाधान भी आवश्यक है।

प्लाज्मा अस्थिरता से तात्पर्य यह है कि प्लाज्मा के एक सिरे और दूसरे सिरे में सहकारी क्रिया से इस प्रकार के क्षेत्र और गतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे प्लाज्मा का कुछ भाग सृजन क्षेत्र से तीव्र गति से दूर हटने लग जाता है। दूसरे शब्दों में वह स्थिति, जिसमें लघुविरूपता, मूल विरूपता के आकार को बढ़ने में सहायता करके एक ऐसे बल का निर्माण करती है, जिसे बृहत विरूपता कहते हैं। यही बृहत विरूपता, प्लाज्मा अस्थिरता के लिए उत्तरदायी होती है। विभिन्न सृजन विधियों में विभिन्न प्रकार की बृहत विरूपताएँ उत्पन्न होती देखी गई हैं। इनको दूर करने का कोई सामान्य हल प्राप्त नहीं है। विभिन्न सृजन विभिन्न विधियों में विभिन्न तकनीकी ज्ञान की सहायता से विरूपता वलों की समस्याओं का निराकरण कर उचित समय के लिए प्लाज्मा सृजन का प्रयास जारी है।

निष्कर्ष : लगभग पिछले २० वर्षों से नियंत्रित संगलन ऊर्जा प्राप्त करने के उद्देश्य से, प्लाज्मा सृजन की विभिन्न विधियों का अध्ययन विश्व की कई प्रमुख प्रयोगशालाओं में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा किया जा रहा है। यह उल्लेखनीय है कि विभिन्न प्रयासों से प्लाज्मा सृजन में संतुलन प्राप्त होने लगा है, यद्यपि सृजन समय अभी बहुत कम है लेकिन चुम्बकीय कूप सिद्धान्त, चुम्बकीय कर्तन लघु परिपथ सिद्धान्त और उष्मागतिकी से निर्देश इस क्षेत्र में अनुसन्धान को नया आयाम प्रदान कर रहे हैं। यद्यपि ऐसी कोई विधि नहीं है जिससे यह भविष्यवाणी की जा सके कि कब तक नियंत्रित नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त की जा सकेगी लेकिन यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में हम समुद्र के पानी में निहित असमाप्य ऊर्जा को प्राप्त करने एवं अन्तरतारकीय उड़ानों के स्वप्नों को साकार होते हुए अवश्य देखेंगे।

● ●

रहने को भूमि कहां शस्य कहां ?

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि सन् २००० तक पृथ्वी पर रहने के लिए मनुष्यों को स्थान नहीं मिल पावेगा। जिस गति से पिछले पचास वर्षों में जनसंख्या में वृद्धि हुई है उसे देखते हुये यह सोचना युक्तियुक्त होगा कि २००० ई० तक पृथ्वी पर सांस लेना मुश्किल हो जावेगा। कृष्य भूमि के सीमित होने तथा प्रति एकड़ पैदावार में वृद्धि न कर सकने से भोजन की समस्या उग्र रूप धारण कर लेगी। यही नहीं, उन्नत राष्ट्रों द्वारा जिस गति से पृथ्वी के गर्भ से खनिजों का उत्खनन हो रहा है उसे देखते हुये यह भी सोचना ठीक ही होगा कि कालान्तर में खनिजों का भी भण्डार क्षीण हो जावेगा।

इस पृथ्वी पर कोई भी भण्डार अक्षय नहीं। वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही इस ओर दृष्टि रखनी होगी। आगे आने वाली पीढ़ियां अवश्य ही घाटे में रहेंगी। चाहने पर भी उन्हें मनमानी ढंग से खर्च के लिये वस्तुयें नहीं मिल पावेंगी।

यदि कोई उसका संरक्षक या त्राता बन सकता है तो वह समुद्र की विपुल जल राशि है जहां से सभी जीवों का विकास हुआ ; मनुष्य को उसी का मुखापेक्षी बनना होगा। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है ?

लुप्तप्राय जन्तु–गेण्डा

● रामेश वेदी

बहु उपयोगी जीवः—लगभग दो हजार साल पहले भारत के एक चिकित्सक महर्षि चरक ने गेण्डे के विभिन्न अंगों में भेषजीय उपयोगिता प्रतिपादित की थी। मध्ययुग में युरोप में भी इसके सींग के विचित्र गुणों की धाक थी। लन्दन की दवासाजी में १७४१ तक सींग की माँग के प्रमाण हमें मिल जाते हैं। उस वर्ष छपी भेषज संहिता (फार्माकोपिया) में गिनाई गई आवश्यक औषध द्रव्यों की सूची में यह परिसंख्यात है।

लिंस्खोटन (१५६०) ने देखा था कि गेण्डे के दाँत, नाखून, सींग, माँस, खाल, खून, लीद और पेशाब भी भारत में बहुत से रोगों की चिकित्सा में काम आते हैं। उसने खुद भी उन्हें आजमाया था और अपने अनुभव में सचमुच लाभदायक पाया था। वे आगे लिखते हैं कि सभी गेण्डे एक समान अच्छे नहीं होते। अलग-अलग प्रकार के जंगलों में तरह-तरह की बूटियाँ खाने से उनके सींग तथा देह की बनावट में अन्तर आ जाता है इसलिए उनके अंग-प्रत्यंग के गुण भी बदल जाते हैं।

हुवक ने रिपोर्ट दी थी कि लीद के अलावा इसके प्रत्येक भाग की चीन में इतनी अधिक माँग है कि मलय पेनिन्सुला में यह नष्ट हो रहा है। फ्लावर ने लिखा था कि मलय निवासी के लिए गेण्डे को मारकर चीनियों को बेच देना अधिक मुनाफे का धन्धा था क्योंकि किसी भी युरोपियन से उन्हें जिन्दा गेण्डे का इतना दाम नहीं मिलता था।

सींग-सर्व गुण सम्पन्न—सींग के गुणों के बारे में इस प्रकार के विश्वास सारी दुनिया में कम या अधिक प्रचलित हैं। भारत, तिब्बत, ब्रह्मदेश, चीन, थाईलैंड और न जाने कितने ही देशों में व्यापक रूप से विश्वास किया जाता है कि सींग में बाजीकरण गुण निहित है। खोई हुई शक्ति, यौवन और पुरुषत्व को प्राप्त करने के लिए इसका चमत्कारी प्रभाव माना जाता है। मलय में इस के सींग को चुला कहते हैं। मलय के आदि-वासी इसे अत्यन्त मूल्यवान पुंसत्व शक्तिवर्धक पदार्थ मानते हैं।[1] इसलिए इन सभी देशों में सींग की खपत है। पुरानी दिल्ली के बाजारों में मैंने मजमा लगाकर दवाइयां बेचने वालों के पास गेंडे का सींग देखा है। बाजिकरण तिलों और गठिया के लिए इसे अन्य उपयोगी तेलों के निर्माण में इसे अन्य जान्तव पदार्थों के साथ मिला कर पका लेते हैं।

लिंस्खोटन (१५६०) ने ईस्ट इण्डीज की यात्राओं में इस सींग को विष के निवारण के लिए तथा अनेक रोगों में उपयोगी औषध लिखा था[2]। अरबों का विश्वास था कि इस सींग से बनाये प्याले में पेय पदार्थ लिए जाँयँ तो विष का असर नहीं होता। पुराने जमाने में लोग इस सींग के बड़े सुन्दर कामदार प्याले बना लिया करते थे। विश्वास

१—मलय मैजिक, वाटर विलियम स्कीट, १६०००, पृ० १५०।

२—वांयजेज टु दि ईस्ट इण्डीज, लिंस्खोटन १५६०।

किया जाता था कि इनमें विष की पहिचान हो जाती है। कहा जाता है कि विष मिलाये गये भोजन को इसमें रखा जाय तो उसका रंग बदल जाता है। वह फट जाता है। इसी तरह विषैला पेय इसमें डाला जाय तो वह उफन जाता है। अपने दुश्मनों की चालों से बचने के उद्देश्य से पूर्वी एशिया के राजे-महाराजे गेण्डे के सींग से बने बरतनों में भोजन और पेय लिया करते थे। अत्यन्त मूल्यवान् ये बर्तन साधारण व्यक्ति **की** पहुँच से बाहर थे। अब तो ये अत्यन्त दुर्लभ हैं। सर जार्ज वाट के विवरण से पता चलता है कि १८९२ ई० में भी गेण्डे के सींग से बने प्याले भारत में मिल जाते थे।

रोगों और बुरी शक्तियों से बचने के लिए चरक के समय कुमारों को जो गण्डे-तावीज धारण कराये जाते थे उनमें गेण्डे के सींग की नोक इस प्रयोजन के लिए ग्रहण की जाती थी[1]। खाल और हड्डी के छोटे-छोटे टुकड़े रोगों से बचने के उद्देश्य से अनेक देशों में धारण किये जाते हैं।

अनेक जगह यह धारणा थी कि पानी से भरे पतीले में गेण्डे का सींग रात भर पड़ा रहने दिया जाय तो वह पानी अद्भुत गुणों से युक्त हो जाता है। परिवार के सदस्य तथा पड़ोसी लोग उसमें से एक चम्मच प्रतिदिन प्रसाद के रूप में पीते थे।

पूर्वी एशिया में एक अद्भुत विश्वास है कि आसन्न-प्रसवा स्त्री के सिरहाने के नीचे गेण्डे का सींग रख दिया जाय तो यह प्रसव के कष्टों को कम कर देता है। जिन लोगों के पास यह सींग होता है वे गर्भिणी स्त्रियों को किराये पर देते हैं और प्रत्येक प्रसव के लिये लगभग ३० पौण्ड की राशि लेते हैं।

फ्लेअरर द्वारा तालीफ शरीफ के १८३३ में किये गये अनुवाद में बताया है कि स्त्री के कमरे में सींग की धूनी देने से भी प्रसव सुखकर हो जाता है।

१—मणयश्च धारणीयाः कुमारस्य, खड्गरुरुगवय वृषभाणां जीवितामेव, दक्षिणेभ्यो विषाणेभ्यो ग्राणि गृहीतानि स्युः। —चरक, शारीर स्थान–८, ६२।

युरोप में विश्वास था कि सींग से बने प्याले में पानी रख कर पीने से मृगी के दौरे दूर हो जाते हैं।

तालीफ शरीफ (१८३३) के अनुसार सींग को जला कर मस्सों पर धूनी देना बवासीर का बहुत बढ़िया इलाज है। सींग से बने प्याले में रखा बासी जल पीना भी इस रोग में लाभदायक माना जाता है।

गेण्डे का पेशाब निःसंक्रामक माना जाता है। बरतन में भरकर मुख्य द्वार पर भूतों, पिशाचों और रोगों को भगाने के लिए टाँगा जाता है। कुछ लोग तो पेशाब को पीते भी हैं। कलकत्ता में पहले पेशाब की बहुत माँग थी[1]। वहाँ यह दो रुपये प्रति बोतल के हिसाब से बिक जाता है।

खालः—गेण्डे की खालें चीन को निर्यात होती थीं। वहाँ उनसे एक श्लिषी (जेली) बनाई जाती थी जो दवा मे काम आती थी।

मांस—पवित्र भोजन और पथ्य

दूसरे मांसों के समान गेण्डे का मांस भी प्राचीन भारत में आहार का पदार्थ रहा है। सुश्रुत के समय तो यह पवित्र समझा जाने लगा था और श्राद्धों में पितरों को समर्पित किया जाता था। सुश्रुत के टीकाकार आचार्य उल्लण ने भी इसे पितरों के लिए हितकर लिखा है। यह कसैला है, रुक्ष है, स्रावों को सुखाता है, मूत्र कम करता है, कफ नाशक है और वायु को हरता है[2]। चरक ने इस मांस को अभिष्यन्दि, बल बढ़ाने वाला, शरीर में स्निग्धता बढ़ाने वाला, पुंसत्वशक्ति बढ़ाने वाला, मधुर, रंग को निखारने वाला, वायु को हरने वाला और थकान को उतारने वाला माना है[3]। यह मांस को बढ़ाने

१—ए डिक्शनरी आफ दि इकानोमिक प्राडक्ट्स आफ मलय पेनिन्सुला, आई० एच० बर्किल पृ० १८९४।

२—कफघ्नं खड्गपिशित कषायमनिलापहम्।
पित्र्यं पवित्रमायुष्यं बद्धमूत्रं विरुक्षणम्॥
—शुश्रुत, सूत्रस्थान ४६, १०३।

३—खड्गमांसमभिष्यन्दि बलकृन्मधुरं स्मृतम्। स्नेहनं बृहणं वर्ण्यं श्रमघ्नमानिलापहम्। चरक, सूत्रस्थान २७, ८४-८५।

वाला आहार है इसलिए राजयक्ष्मा (तपेदिक) में मांस का जब क्षय हो जाता है तब मसालों के साथ पकाया हुआ गेंडे का मांस रोगी को खिलाया जाता था। रोगी इसे खाने में अरुचि दिखाता था तो उसे भैंस के मांस के नाम से दे देते थे[1]।

डाक्टर हेमिल्टन ने अपनी बरार पुस्तक में लिखा है कि उसके समय में भी हिन्दू चिकित्सक मांस को उबाल कर घी के साथ टायफस ज्वर की अंतिम अवस्थाओं में देते थे। तालीफ शरीफ (१८३३) में मांस को वायु विकारों को दूर करने वाला बताया है।

नेपाल में भी गेंडे का मांस स्वादु और पवित्र माना जाता है। वहां विश्वास किया जाता है कि पितरों को इस पशु का मांस और खून अत्यधिक पसन्द है। उच्च वर्ग के हिन्दू और अधिकतर गुरखे इसके शरीर के अन्दर घुसकर पितरों को इसके खून का तर्पण देते हैं। श्राद्ध के दिनों में सींग से बनाये हुए प्याले में दूध की लस्सी को भरकर पितरों को समर्पित किया जाता है। जिन लोगों के पास सींग नहीं होता वे इसकी खाल से बनाये पात्रों के द्वारा श्राद्धकर्म कर लेते हैं।

गेण्डे का शिकार–राजाओं का प्रिय शौक

गेण्डे का शिकार खेलना वीरता का कार्य समझा जाता रहा है। राजाओं का यह प्रिय शौक था। गुप्तकालीन सोने के एक सिक्के पर कुमार गुप्त (४१४-४५५ ईस्वी पश्चात्) को गेण्डे का शिकार करते हुए अंकित किया गया है। मृगया के इस प्रभावशाली अंकन में महाराजा नंगे बदन एक चुस्त घोड़े की नंगी पीठ पर बैठे हैं। वेग से भगाकर उन्होंने घोड़े को गेण्डे के सामने ही ला कर खड़ा कर दिया है और उसे तलवार से ललकार रहे हैं।

बहादुरी का प्रदर्शन करने के लिए क्षत्रियों, राजाओं, और शासकों द्वारा गेण्डे के शिकार का यह सिलसिला सदा चलता रहा है। मुगल शासन में हमने इसके अनेक उदाहरण दिखाये हैं। अंग्रेजों के राज्यकाल में इस आखेट में खूब वृद्धि हुई। तत्कालीन रियासतों के नरेशों ने अपनी बहादुरी के कारनामें प्रकट करते हुए बताया है कि किस प्रकार उन्होंने सैकड़ों गेण्डों की निर्मम हत्यायें कीं। १८७६ ई० की ओरिएण्टल स्पोर्टिंग मेगज़ीन में अभिलिखित है कि बंगाल में एक आखेटक ने एक दिन में गेंडों पर सौ गोलियां चलायी थी। इसमें छह गेंडे तो मारे गये और २५ जख्मी हुए। १८७१ और १९०७ ई०के बीच एक महाराजा ने दो सौ आठ गेण्डे मारे थे।

ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ फरवरी १९६१ ई० में जब भारत की राजकीय यात्रा पर आई थीं तब उनके पति ड्यूक ने नेपाल की तराई में दक्षिणपश्चिम में स्थित मेगोली स्थान पर एक मादा शेर और एक मादा गेण्डे का शिकार किया था। आखेट की भारतीय साहसिक परम्परा से इस शिकार की कोई तुलना नहीं की जा सकती। यहाँ शिकारी दल ऊँचे मचानों पर सुरक्षित आश्रय में था और सैकड़ों आदमी व पशु हांके में लगे थे। ३७५ हाथियों ने छह फुटी जंगली घास के वन को घेर लिया था। हांके में पहले शेरनी सामने आयी जिसका एक ही गोली से काम तमाम हो गया। उसके बाद मादा गेंड़े को हाँका गया। दो गोलियों से वह मार गिरायी गयी।

यह एक सामान्य विश्वास था कि गेण्डे की मोटी खाल को गोली नहीं छेद सकती। गोली के द्वारा मारे जाने पर यह धरती पर ऐसे गिरता है, मानों घुटने मोड़ कर बैठा हो। मरने के बाद भी यह इसी आसन में बैठा रहता है।

राज्याभिषेक के समय महाराजा द्वारा गेण्डे का शिकार करना एक धार्मिक परम्परा है जो अब तक निभायी जा रही है। मारने के बाद उदरगुहा में स्थित आंतों और आमाशय को निकाल कर अलग कर दिया जाता है। उदरगुहा में बैठ कर तब राजा पूजा करते हैं। इसी तरह उदरगुहा में बैठ कर महाराजा श्राद्धकर्म सम्पन्न करते हैं।

[शेष पृष्ठ २३ पर]

१—गजखड्गितुरंगाणां वेशवारीकृतं भिषक्। दद्यान्महिषशब्देन माँसं मांसाभिवृद्धये। चरक' चिकित्सत स्थान ८, १५४।

अति सर्वत्र वर्जयेत

● डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

पौधों के समुचित विकास के लिये १६ तत्व आवश्यक पाये गये हैं जिन्हें आवश्यक मात्रा के आधार पर दो श्रेणियों में रखा जा सकता है

(१) मुख्य तत्व—ऐसे तत्व, जो पौधों के लिये अधिक मात्रा में आवश्यक होते हैं। इस श्रेणी में कार्बन, हाइड्रोजन आक्सीजन, सल्फर, कैल्शियम, मैगनीशियम, नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम रखे गये हैं। कुछ काल पूर्व क्लोरीन भी इसी श्रेणी का तत्व माना जाता था। किन्तु यह दूसरी श्रेणी के तत्वों के साथ रखा जाता है।

(२) सूक्ष्म मात्रिक तत्व— वे तत्व जो पौधों के विकास के लिये अत्यन्त अल्प मात्रा में आवश्यक होते हैं। ताँबा, जस्ता, मैंगनीज़, मालिब्डनम, बोरान एवं लोहा इस श्रेणी के छह सदस्य हैं। वर्तमान समय में जब कि नित्य फसलों की नई-नई उन्नतिशील किस्मों का विकास किया जा रहा है, खेतों में डाले जाने वाली नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम की मात्रा में वृद्धि होना स्वाभाविक है। कारण यह है कि ये उन्नतिशील किस्में जहां एक ओर अधिक उपज देकर लाभ पहुँचाती हैं वहीं दूसरी ओर तत्वों का अधिक अवशोषण करके उस खेत की उर्वराशक्ति को कम करती जाती हैं जिससे प्रति वर्ष खादों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि ये उन्नतिशील किस्में पुरानी किस्मों की अपेक्षा पोषक तत्वों की डेढ़ गुनी अधिक मात्रायें अवशोषण करती हैं। परिणामतः इन किस्मों के बोने पर शस्य वैज्ञानिकों ने नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम को अधिक मात्रा में खेतों में डालने की सिफारिश की है और हमारे अबोध किसान इन किस्मों से अधिकाधिक उपज लेने की आकांक्षा से नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पेटैशियमयुक्त खादों का प्रयोग बढ़ाते जा रहे हैं। वस्तुतः जैसे-जैसे इन खादों की मात्रा बढ़ाई जाती है, फसल द्वारा अवशोषित सभी तत्वों की मात्रा में वृद्धि होती जाती है। परन्तु अभी तक हमारी धरती माँ के इन लालों का ध्यान केवल त्रिदेव-त्रितत्व नाइट्रोजन, फारफोरस एवं पोटैशियम पर ही केन्द्रित है।

त्रितत्वों का प्रभाव

१. नाइट्रोजन—इन त्रितत्वों के अधिकाधिक प्रयोग से जो मुसीबत उठ खड़ी होती है वह सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की उपलब्धि है। नाइट्रोजन युक्त खादों की अधिक मात्रा डालने से इन सूक्ष्ममात्रिक तत्वों पर क्या प्रभाव पड़ता है अभी इसका स्पष्टीकरण नहीं हो पाया। फिर भी यह देखा गया है कि नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग मैंगनीज की प्राप्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

२. फास्फोरस—आजकल सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की प्राप्यता पर फास्फोरस का प्रभाव अध्ययन का विषय बन रहा है। देश में अब कई शोध प्रयोगशालाओं में इस विषय में शोध कार्य भी हो रहा है। हमारी प्रयोगशाला में (रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) भी इस क्षेत्र में कार्य हो रहा है। अभी तक जो परिणाम मिले हैं, उनको देखने से यह पता चलता है कि यदि फास्फोरस का प्रयोग बिना किसी रोक टोक के होता रहा तो ताँबा तथा जस्ता की उपलब्धि क्षीण होती जावेगी। इसका कारण यह है कि एक तो उन्नतिशील किस्में देशी किस्मों की अपेक्षा अन्य

तत्वों के साथ सूक्ष्ममात्रिक तत्वों का भी अधिक अवशोषण करती हैं जिससे मिट्टी का भंडार धीरे धीरे रिक्त होता जाता है। दूसरे, फास्फोरस के साथ ताँबा तथा जस्ता अविलेय रूप में अवक्षेपित हो सकते हैं, जिससे उन्नतिशील जातियों में अन्य आवश्यक तत्वों की अधिक मात्रा डालने पर भी ताँबा तथा जस्ता की न्यूनता के कारण उनकी उपज घट जावेगी। लोहा की प्राप्यता पर भी प्रतिकूल प्रभाव के फल पाये गये हैं। फास्फोरस की अधिक मात्रा होने से जो कठिनाई उत्पन्न होती है उसका दूसरा पहलू भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। मैंगनीज़ एवं मालिब्डनम की प्राप्यता फास्फोरस की उपस्थिति में बढ़ जाती है। फास्फोरस का अधिक प्रयोग मैंगनीज़ की प्राप्यता को विषालुता स्तर तक पहुँचा सकता है फलस्वरूप अधिक फास्फोरस का प्रयोग उपज बढ़ाने के स्थान पर मैंगनीज की विषालुता पैदा कर के फसल नष्ट कर सकता है।

३ **पोटैशियम**—पोटैशियम अधिक मात्रा में उपलब्ध होने पर स्वयं विषालुता के स्पष्ट लक्षण प्रदर्शित करता है। ऐसी स्थिति में पौधे झुलसे हुये नजर आने लगते हैं। हमारी प्रयोगशाला में हुये प्रयोगों में प्राप्त फलों से यह विदित होता है कि अधिक मात्रा में पोटैशियम का प्रयोग मैंगनीज़ की प्राप्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। ऐसे ही परिणाम अन्य विदेशी वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं में भी प्राप्त हुये हैं। पोटाश की अधिक मात्रा मृदा को क्षारीय बना देती है। इस प्रकार यह ताँबा, जस्ता, मैंगनीज़ एवं लोहा की प्राप्यता को तो कम कर देता है किन्तु बोरान एवं मालिब्डनम की प्राप्यता को बढ़ा देती है। फलतः पोटैशियम की अधिकता एक ओर जहाँ स्वयं फसल को नुकसान पहुँचाती है वहीं कुछ अन्य तत्वों की प्राप्यता को न्यून करके तथा कुछ की विषालुता को बढ़ा करके फ़सल को बहुमुखी क्षति पहुँचाती है। कहा भी है, "अति सर्वत्र वर्जयेत"।

अम्लीय मिट्टियों की समस्या: जिन अम्लीय मिट्टियों में उन्हें सुधारने के लिये चूने का प्रयोग किया जाता है सूक्ष्म मात्रिक तत्वों से सम्बन्धित कुछ समस्यायें देखी जाती हैं। मिट्टी की अम्लीयता को कम करके सामान्य पी० एच० पर लाने तक कोई विशेष समस्या नहीं उत्पन्न होती किन्तु चूने का अधिक प्रयोग करने से जैसा कि प्रायः होता हैं अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। मैंगनीज़ की प्राप्यता अत्यन्त कम हो जाती है। यह देखा गया है कि चूने की उपस्थिति में द्विसंयोजी मैंगनीज़ आक्सीकृत हो कर मैंगनीज़ डाई आक्साइड में परिणत हो जाता है जिसकी प्राप्यता अल्प है। यही नहीं, मैंगनीज़ डाइ आक्साइड एवं द्विसंयोजी मैंगनीज परस्पर क्रिया करके मैंगनीज़ को बिल्कुल अप्राप्य बना सकते हैं। जस्ता तथा ताँबा के क्षारकीय कार्बोनेट चूने की उपस्थिति में ही अवक्षेपित होते हैं जो पौधों के लिये अप्राप्य हैं। चूने की अधिक मात्रा फास्फोरस की प्राप्यता पर भी प्रभाव डालती है। चूनायुक्त मिट्टियों में मालिब्डनम की प्राप्यता बढ़ कर विषालुता का रूप धारण कर सकती है। चूने की उपस्थिति में मैंगनीज़ की प्राप्यता पर फास्फोरस का अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता अतः जहाँ कहीं भी फास्फोरस जनित मैंगनीज़ की विषालुता देखी जाय चूने का प्रयोग लाभकर हो सकता है।

जीवांश का योगदान

कुछ किसानों का अन्धविश्वास है कि मिट्टी में जितना ही जीवांश (कार्बनिक पादर्थ) होगा, मिट्टी उतनी ही उपजाऊ होगी। परन्तु जीवांश की अत्यधिक मात्रा होने पर ताँबा एवं जस्ता जनित न्यूनता रोग देखने को मिल सकते हैं। जीवांश की उपस्थिति में मैंगनीज़, फास्फोरस एवं मालिब्डनम की प्राप्यता बढ़ती देखी गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी कारक की अति, विषालुता या किसी अन्य तत्व की न्यूनता का कारण बन जाती हैं।

हमारे देश के मृदा एवं शस्य वैज्ञानिकों के लिये यह चुनौती है कि वे इस क्षेत्र में कार्य आरम्भ करें एवं किसानों को प्रत्येक फ़सल एवं उसकी जाति विशेष के लिये खाद की ठीक ठीक मात्रा बतावें, जिससे कि वे बिना सोचे-समझे खादों के प्रयोग से होने वाले हानिकारक प्रभावों से बच सकें।

● ●

भारतीय रसशास्त्र एवं हेमवती विद्या (कीमिया) का सिंहावलोकन

● डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

इसके पूर्व के लेख में हमने देखा था कि किस प्रकार प्रथम संस्कार स्वेदन से प्रारंभ करके पारा सोलहवें संस्कार क्रामण तक आते आते, वेधन करने की अर्थात् हलकी धातुओं को सोने में बदलने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। हमने शत सहस्त्र, कोटि तथा अयुत वेधी पारद एवं वेधन क्रिया के पाँच प्रकारों लेप, क्षेप, कुन्त, धूम एवं शव्द के बारे में भी जानकारी प्राप्त की थी। तांबे को सोने में बदलने की एवं लेप वेध की क्रिया पर भी विहंगावलोकन किया था।

प्रस्तुत लेख में चांदी, लोहा आदि धातुओं को पारे की सहायता से सोना बनाने की कुछ विधियों का सिंहावलोकन कर, हम आधुनिक रसायन शास्त्र की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या पारे से सोना बनाया जा सकता है?

चाँदी से सोना बनाना:- काक चंडीश्वर तंत्र में दी गई विधि के अनुसार शुद्ध पारा ५ तोला, शुद्ध गंधक ५ तोला तथा नौसादर २॥ तोला लेकर खरल में तीन दिन तक घोटे और फिर इन सबके मिश्रण को कपरोटी की हुई आतशी शीशी में भर कर, बालुका यंत्र में दी हुई विधि से मन्द एवं तीक्ष्ण अग्नि में तपाये। इस विधि से रस सिन्दूर के समान जो पदार्थ प्राप्त हो उसे गंधक के तेल में पीस कर चाँदी के पतरों पर गजपुट विधि से लेप कर तीन पुट देने से चांदी सोने में बदल जावेगी। कहा भी है "रसं शुद्धं तथा शुद्धं गंधकम् चैव तत्समं---पुट त्रयात्भवेत् स्वर्णम् इति सिद्धै: सुनिश्चितम्"

अन्य विधि :- अट्ठानबे भाग चाँदी एवं एक भाग शुद्ध स्वर्ण को एक भाग शुद्ध संस्कृत पारे से मिलाकर वेध करे तो सब स्वर्ण बन जाते हैं। इसी विधि को शतांश बेध विधि भी कहते हैं।

चाँदी एवं तांबे को सम्मिलित रूप से सोना बनाने की शतांश विधि के अनुसार ४९ भाग चाँदी में ४९ भाग शुद्ध तांबा तथा एक भाग स्वर्ण एवं एक भाग शुद्ध संस्कृत पारा मिलाने पर समूचा मिश्रण स्वर्ण बन जाता है। "चन्द्रमेकोन पाशन्तथा शुद्धस्य भास्वतः। बन्हिरेको रसं चैकः शतांश विधिरीरितः"।

लोहे से सोना बनाना:- मैनसिल चार भाग, संस्कृत पारद और शुद्ध गंधक एक भाग मिलाकर आतशी शीशी में भरकर मुख पर मुद्रा कर दें। फिर खड़िया मिट्टी जिसमें अधिक हो ऐसा जल और लोह चूर्ण मिलाकर शीशी पर लेप करे एवं शीशी को भूधर यंत्र में तपाये। लोह स्वर्ण बन जायेगा।

सीसे से सोना बनाना:- अभ्रक, पारा, मैनसिल, गन्धक समान भाग लेकर, हीराकसीस, सीसा तथा स्वर्ण से मर्दन कर भूधर यंत्र में पकाने पर स्वर्ण बन जाता है।

खोट बन्धन विधि से पारे द्वारा हेमवती विद्या :- जिस विधि से पारा अपनी चंचलता त्याग कर गुटिकाकार होता है एवं खूब तपाने एवं धोंकनी से धमन करने पर भी नहीं उड़ता उसे खोट बन्धन विधि कहते हैं। इसकी कई विधियों में से एक इस प्रकार है "सालूर कुटिलार्कस्थ रम्भापामार्ग भस्मना। हस्तीव बध्यते वक्र लोह खण्डिकया रसः॥" अर्थात् अभ्रक, बंग और तांबे के मिश्रित चूर्ण में रखा हुआ पारा केला तथा अपामार्ग के क्षार में

बालुका यंत्र में दी हुई विधि से अग्नि देने पर पारा बँध जाता है ठीक वैसे ही जैसे लोहे की टेढ़ी कड़ी वाली मेखला से हाथी। इस खोटबद्ध पारद से भिन्न धातुओं को सोना बनाने की कई विधियाँ रस ग्रंथों में हैं।

राँगे से चाँदी बनाना:- लज्जावंती के रस में एक भाग पारा, एक भाग पीला अभ्रक, एक भाग सैंधा नमक मिला कर पाँच पहर तक खरल में घोटे और एक सेर राँगे में आतशी शीशी में गरम करे तो राँगे से चाँदी बन जाती है।

पारद भस्म को कोटिवेधी बनाने की क्रिया:- निघंटु रत्नाकर में इसकी विधि इस प्रकार दी है-पारद भस्म एक पल, नागेश्वर पाँच पल तथा सुवर्ण एक पल, इन तीनों को मिलाकर मूषा में तब तक धौंकता जावे जब तक कि नाग और सोना न जल जावे। इस प्रकार सौ बार करे। इससे कोटिवेधी पारा तैयार हो जाता है। इस कोटि वेधक पारे से ऊपर दी हुई विधियों के अनुसार ताँबा, लोहा, चाँदी आदि की करोड़ गुनी मात्रा सोने में बदली जा सकती है।

प्राचीन रसाचार्य अपनी स्वर्ण निर्माण की विधियों के प्रति पूर्णतः आश्वस्त थे क्योंकि उपर्युक्त विधियों से प्राप्त सोने को बाजार में बेचने का भी स्पष्ट निर्देश किया गया है जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट होता है :—

"विद्धं रसेन यद्द्रव्यं, पक्षार्द्ध स्थापयेद्भुवि।
नगरे तत आनीय, विक्रीणीत विचक्षणा॥

अर्थात् शुद्ध संस्कृत पारे से वेधन द्वारा प्राप्त स्वर्णादिक द्रव्य को पृथ्वी में (गड्ढे में) सात दिन रखे और फिर शहर में आकर उसे बेच दे।

आधुनिक दृष्टिकोण

लेखमाला के प्रारंभिक योगों में हमने स्वर्ण प्राप्ति की विभिन्न विधियों का सिंहावलोकन किया। यहाँ यह कहा जा सकता है कि स्वर्ण प्राप्त करने के प्रयत्न अपने मूल रूप में तो सफल नहीं हो सके किन्तु अनवरत अध्यवसाय करते करते विकास की इस सीढ़ी पर तो आधुनिक वैज्ञानिक पहुँच ही चुके हैं कि उन्होंने एक तत्व से दूसरा तत्व एवं एक धातु से दूसरी धातु को नाभिक प्रक्रियाओं (न्यूक्लियर रिएक्शन्स) द्वारा प्राप्त करना संभव कर दिखाया है। किन्तु नाभिक प्रक्रियाओं द्वारा पारे का स्वर्ण में परिवर्तन एवं अन्य तत्वों के पारस्परिक परिवर्तन अत्यधिक खर्चीले एवं कष्टसाध्य हैं एवं जन साधारण के लिये अनुपयोगी हैं। प्रकृति भी रेडियम, यूरेनियम आदि तत्वों में अपनी कीमियागिरी प्रदर्शित करती रहती है। रेडियम के परमाणु अनवरत रूप से अनन्त समय तक विघटित होते रहते हैं एवं कई मध्यस्थ धातुओं में रूपान्तरित होकर अन्ततोगत्वा सीसे में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी तरह की अन्य कई प्राकृतिक प्रक्रियाएँ भी होती रहती हैं। अतः एक तत्व को दूसरे तत्व में भौतिक साधनों एवं प्रक्रियाओं द्वारा बदल देना न तो प्रकृति के क्षेत्र में न ही मानवीय प्रयत्नों या कृत्रिमता के क्षेत्र में ही असंभव है। इसलिये यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि आधुनिक रसायन शास्त्रियों द्वारा साधारण रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा तत्वों में परिवर्तन ले आना एवं हलकी धातुओं को सोने में परिवर्तित कर दिखाना संभव नहीं हो सका है। आधुनिक विकास के प्रकाश में तो यहाँ तक भी कहा जा सकता है कि सामान्य रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा धातुओं का तात्विक रूपान्तर प्रायः असंभव ही है।

आइये अब हम आधुनिक रसायन शास्त्रीय दृष्टि से प्रस्तुत प्रश्न पर समीक्षात्मक विचार करें। इस हेतु थोड़ी भूमिका आवश्क है।

आधुनिक रसायन शास्त्र की दृष्टि से प्रत्येक तत्व का अपना एक निश्चित परमाणु संगठन होता है जो कि उस तत्व को अपनी विशेषताएँ प्रदान करता है एवं किसी अन्य तत्व के परमाणु से वैभिन्य प्रदर्शन में सहायता देता हैं। किसी भी तत्व के सभी परमाणु एक जैसे होते हैं (आइसोटोप अपवाद हैं)। मोटे रूप में परमाणु का संगठन सौर मंडल के संगठन जैसा होता है। लार्ड रदरफोर्ड के परमाणु संगठन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक परमाणु की

सूर्य के समतुल्य एक केन्द्र या नाभि होती है जिसमें प्रायः उसकी पूरी मात्रा एकत्र हो जाती है । इस नाभि का निर्माण होता है दो तरह के भारी कणों के द्वारा जिनके नाम हैं प्रोटान (धनात्मक परमाणु) एवं न्यूट्रान्न (विद्युत विभवहीन परमाणु) । इस केन्द्र के ग्रासपास ग्रलग ग्रलग कक्षाग्रों में इलेक्ट्रान नाम के लगभग भारविहीन ऋण विद्युतात्मक कण ग्रनवरत प्रदक्षिणा किया करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि पृथ्वी, बुध ग्रादि उपग्रह सूर्य के चारों ग्रोर । उदाहरणार्थ पारे के प्रत्येक परमाणु में केन्द्र में ८० प्रोटान एवं १२० न्यूट्रान होते हैं । इस तरह पारे के केन्द्र में २०० इकाई का भार होता है (हाइड्रोजन के परमाणु से लगभग २०० गुना भार) एवं ऐसे केन्द्र के चारों ग्रोर ८० इलेक्ट्रान चक्कर लगाते रहते हैं । पहली कक्षा में २, दूसरी कक्षा में ८, तीसरी में १८, चौथी में ३२, पाँचवी में १८ एवं छठी में २ इस प्रकार कुल हुए ८० इलेक्ट्रान । चित्र रूप में पारे का परमाणु संगठन सरल तरीके से इस तरह बताया जा सकता है ।
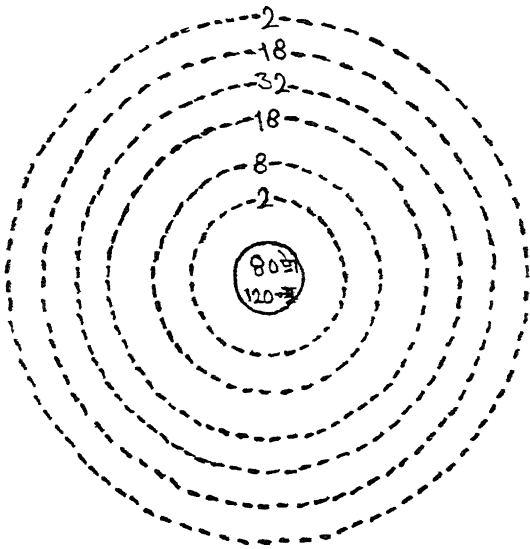
मरक्युरी (Hg) या पारे का परमाणु ग्रालेख
Fig. 1

प्रो:—धनात्मक प्रपराणु

न्यू—विद्युतः विभवहीन प्रपराणु

इ—ऋणात्मक प्रपराणु

⊙—केन्द्र

◌—कक्षाएँ (इलेक्ट्रानन प्रक्षिणा की)

वैसे ग्राधुनिकतम विकास की दृष्टि से तो परमाणुग्रों के संगठन को तरंग तंत्र (वेव मेकैनिक्स) के प्रकाश में देखना चाहिये किन्तु यह विषय बड़ा दुरूह एवं गणितात्मक तथा भावात्मक है ग्रतः हम सुबोधगम्यता की दृष्टि से बोहर-समरफील्ड पद्धति के ग्राधार पर ही ग्रध्ययन करेंगे । जिन धातुग्रों की हेमवती विद्या (कीमियागिरी) पर रस शास्त्रों में विशेष विवरण मिलता है उनमें से कुछ के परमाणु संगठन के परिचायक चित्र इस प्रकार हैं ।
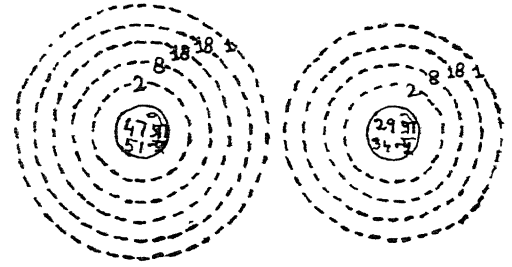
Silver रजत   Copper ताम्र
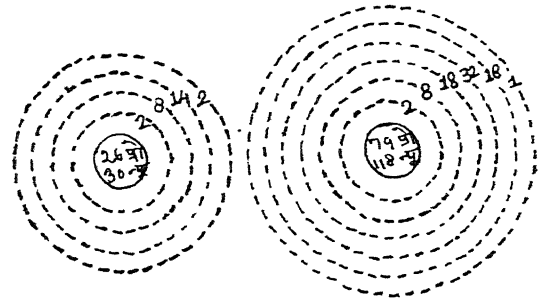
Iron लोह   Gold स्वर्ण

Fig. 2

पारे की सहायता से हल्की धातुओं का सोने में परिवर्तन क्या संभव है ?

चित्रों से स्पष्ट है कि उदाहरणार्थ, यदि लोहे को सोना बनाना हो तो लोहे के प्रत्येक परमाणु का संगठन बदल कर उसे सोने के परमाणु संगठन के समान करना होगा। इस लक्ष्य के लिये लोहे के प्रत्येक परमाणु की नाभि में जब तक २६ प्रोटान से बढ़ाकर ७९ प्रोटान एवं ३० न्यूट्रान से बढ़ाकर ११८ न्यूट्रान तक की संख्या न ले जाई जायेगी तब तक लोहा सच्चे अर्थों में सोना न बन सकेगा। प्रत्येक लोह परमाणु के चारों ओर ऋण विद्युतात्मक इलेक्ट्रान के कई दृढ़ परकोटे हैं। इनको बेधते हुए अत्यंत तीव्र गतिशील प्रोटान को भी लोहे की नाभि तक पहुँचा देना एवं वहाँ जमा देना अत्यधिक दुष्कर कार्य है, फिर ७९-२६=५३ प्रोटान एवं ११८-३०=८८ न्यूट्रान ले जाकर जमा देना तो बहुत दूर की बात रही। और फिर यह प्रक्रिया भौतिक एवं नाभिक (फिजिकल एण्ड न्यूक्लियर) ही कही जाएगी न कि रासायनिक (केमिकल)। इसी तरह पाठकगण चांदी, तांबा आदि के बारे में चिन्तन कर सकते हैं।

रासायनिक प्रक्रिया में जब दो परमाणु मिलकर एक यौगिक अणु बनाते हैं तो अन्तिम परकोटे वाले इलेक्ट्रान मात्र अभिक्रिया करते हैं और इन क्रियाओं के लिये बहुत कम शक्ति की आवश्यकता होती है जबकि नाभिक प्रक्रिया द्वारा प्रोटान आदि को किसी परमाणु के केन्द्र तक पहुँचा देने में अत्यधिक शक्ति की अवश्यकता होती है। इसके लिये साइक्लोट्रान जैसे विशाल, खर्चीले यंत्र लगते हैं। गतिशील प्रोटान आदि को मात्र केन्द्र तक पहुंचा देना ही नहीं वरन् वहाँ जमा देना भी लक्ष्य है। बहुधा अभिप्रेषित प्रोटान पहले से ही केन्द्रस्थ प्रोटान द्वारा विकर्षित कर अन्य दिशाओं में फेंक दिये जाते हैं। लाखों परमाणओं पर लाखों प्रोटान का वेध करने पर किसी एक परमाणु में प्रोटान जम जाता है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि कितना कठिन है यह कार्य।

'विज्ञान' के जून अंक में लिखित अठारह संस्कारों की विधियाँ एवं तदनन्तर स्वर्ण निर्माण की विधियां, सभी मूलतः रासायनिक हैं। इनसे पारे, चाँदी, ताँबें के बाहरी परकोटों में ही किंचित् परिवर्तन लाया जा सकता है। इससे अधिक नहीं। अतः सूक्ष्म दृष्टि से उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सभी पाठक यह अच्छी तरह विचार कर सकते हैं कि चाँदी, लोहे, ताँबे आदि के परमाणुओं में आमूल परिवर्तन कर उन्हें सोने में बदल देना कहाँ तक संभव हो सकता है ?

स्वयं पारे को सोने में परिवर्तन की संभाव्यता (नाभिक रसायन शास्त्रीय दृष्टिकोण)

मेन्डेलीफ की आवर्त सारणी में सोना और पारा पास-पास हैं। सोने के ठीक बाद पारद का स्थान आता है। सोने का परमाणु अंक ७९ है एवं परमाणु भार १९७ जब कि पारे का परमाणु अंक ८० है एवं परमाणु भार २००। अतः स्वयं पारे को सोने में बदलने की संभावनाओं पर वैज्ञानिक आशान्वित हो सकते हैं, लेकिन रासायनिक विधि से नहीं। एक संभावना इस प्रकार हो सकती है-यदि पारे के परमाणु को एक प्रोटान से इस तरह विद्ध किया जाय कि वह पारे की नाभि में क्षण मात्र ठहर कर एक हीलियम गैस के परमाणु के रूप में बाहर आ जाय तो पारे का स्वर्ण अपने आप बन जायगा।

तो पारे को सोने में बदलना संभव हो सकता है, लेकिन सामान्य रासायनिक विधि से नहीं। तांबा, लोहा, चांदी आदि को तो साधारण विधि से पारे की सहायता से सोने में बदलना संभव ही नहीं है।

आधुनिक वैज्ञानिकगण तरंगतांत्रिक संभावना (वेव मेकेनिकल प्राबेबिलिटी) एवं न्यून शक्ति मार्ग (लो इनर्जी पाथ), द्विमुख गुहा प्रभाव (टनेल इफेक्ट) आदि तक पहुँच चुके हैं जिनके द्वारा उन गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है जो साधारण रासायनिक सैद्धान्तिक उपलब्धियों से संभव न था। इस दृष्टि से, चूँकि पारे से सोना बनाने की विधियाँ, उनके सम्बन्ध में किंवदन्तियां, विश्वास

एवं वास्तविक प्रयत्न शताब्दियों से भारत में चले आ रहे हैं अतः जब तक अन्तिम रूप से शोध करके यह निर्णय न कर दिया जाय कि पारे को उक्त विधियों से सोने में बदलना शत प्रति शत असंभव है तब तक नकारात्मक निर्णय देना सच्ची वैज्ञानिकता नहीं होगी। कम शक्ति की आवश्यकता वाले नाभिक संयोजन (न्यूक्लियर फ्यूजन) आदि के दृष्टिकोण से भी आधुनिक वैज्ञानिक विचार कर सकते हैं। रेडियमधर्मिता (रेडियो एक्टिविटी) के प्रकाश में भी इस प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। कृत्रिम रेडियोधर्मिता (आर्टिफिशियल रेडियोएक्टिविटी) एवं तज्जन्य श्रृंखलाबद्ध नाभिक प्रक्रियाओं (न्यूक्लियर चैन रिएक्शन्स) के दृष्टिकोण से भी विचार करना अनुचित न होगा। लेकिन ये विषय गंभीर हैं। इन पर विस्तृत विचार यहाँ अभिप्रेय न होगा।

समीक्षा एवं उपसंहार

प्रस्तुत लेखमाला के पहले भागो में हमने पारे की सहायता से हलकी धातुओं को सोना बनाने की विधियों का एवं पारे के संस्कारों आदि का पर्यवेक्षण किया। शास्त्र-श्रद्धालु पाठक अवश्य ही इनसे कौतुकान्वित हुए होगें। इस समय भी भारतवर्ष में कई व्यक्ति हैं जो इस प्रकार के चुटकुलों एवं किंवदन्तियों के आधार पर लोह एवं देह शुद्धि के प्रयत्नों के पीछे काफी समय, पैसा एवं शक्ति लगा रहे हैं। उनके प्रयत्न तात्विक दृष्टि से सफल नहीं हो सकते इतना तो विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है। भले ही उपर्युक्त विधियों से पीले रंग की कोई धनी, सोने जैसी मिश्रधातु या धातुओं के संश्लिष्ट यौगिक जो सोने के समान दीखते हो, प्राप्त हो सकते हों किन्तु १९७ परमाणु भार वाला एवं ७९ परमाणु अंक वाला, १९.३ अपेक्षिक घनत्व वाला तथा १०९४ सेन्टीग्रेड ताप पर हरे द्रव के रूप में पिघलने वाला शुद्ध तात्विक स्वर्ण (गोल्ड एलिमेंन्ट) प्राप्त करना इन विधियों से असंभवप्राय है। इस उक्ति के पीछे पूर्वाग्रह नहीं तथ्यात्मक चिन्तन है जो कि लेखमाला के अन्तिम भाग में पाठकों के सामने रखा जा चुका है। शुद्ध तत्व के अन्वेषणेच्छुक किसी भी मनीषी को न तो पूर्वाग्रही होना चाहिये, न ही दुराग्रही। विज्ञान तभी आगे बढ़ता है। फिर भी यह समग्र विषय शोध का बड़ा अच्छा विषय है। आधुनिक रसायनशास्त्री पारे के सभी संस्कारों को प्रयोगशाला में करके "प्रत्येक संस्कार के अन्त में पारे का क्या हो जाता है ?" इसे परिभाषित कर सकते हैं। स्वर्ण बनाने की विभिन्न विधियों की प्रक्रियाएँ करके वे देख सकते हैं और शोध कर सकते हैं कि सोने जैसी आखिर क्या वस्तु बन जाती है ? क्रिया की प्रत्येक सीढ़ी पर क्या क्या परिवर्तन होते हैं इनका विस्तृत परीक्षण किया जा सकता है। प्रस्तुत लेखमाला के लेखक ने इसी सम्बन्ध में एक व्यापक शोधकार्य तथा ज्ञानकोप लेखन की योजना तैयार की है। इस दिशा में किया गया कार्य निश्चय ही मौलिक तथा जन कल्याणकारी होगा, भारतीय पृष्ठभूमि के अनुरूप होगा एवं ठोस एवं उपादेय उपलब्धियाँ करायेगा। इस अवसर पर आधुनिक रसायनशास्त्रियों तथा प्राचीन पद्धति के विद्वान रसशास्त्रियों एवं आयुर्वेदाचार्यों का इस दिशा में ध्यान आकर्षित करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता।

● ●

बधाई

डा० हरगोबिन्द खुराना ने जीव का कृत्रिम संश्लेषण करके भविष्य में 'कृत्रिम जीव' के लिए द्वार खोल दिए हैं। उनकी इस अद्भुत खोज के लिए 'विज्ञान' परिवार उन्हें बधाई दे रहा है—सम्पादक

नई चर्चायें : नए दौर :

१. हिन्दी का जोर

प्रयाग वि० वि० में इस वर्ष स्नातक एवं स्नातकोत्तर सभी कक्षाओं की परीक्षाओं के वैज्ञानिक विषयों के पर्चे हिन्दी-अंग्रेजी में छपे। पर्चों के बँट जाने के बाद निरीक्षक अध्यापकों के बीच रोचक चर्चायें छिड़ती देखी गईं। कभी किसी प्रश्न के अंग्रेजी अंश का ठीक से हिन्दी अनुवाद नहीं था तो किसी हिन्दी अंश का अंग्रेजी मूल गलत था। कुछ पर्चों में अंग्रेजी में छपे वाक्य का हिन्दी रूपान्तर रह गया था तो कुछ में हिन्दी छापे की भयंकर भूलें थीं। शायद विश्वविद्यालय के इतिहास में प्रथम बार अध्यापकों के बीच हिन्दी अनुवादों को लेकर बहसें हुईं। इनमें से कुछ अध्यापकों का हाथ अवश्य ही इन रूपान्तरों में रहा होगा। फलतः वे अपने साथियों से अपनी प्रशंसा के लिये लालायित थे किन्तु बदले मे मिल रही थी नुक्ताचीनी। इससे वे तिलमिला कर रह गये। कहा जाता है कि हिन्दी रूपान्तर की महत्ता दो कारणों से है—पर्चा बनाने वाले को अधिक पारिश्रमिक मिलता है तथा अंग्रेजी में कमजोर छात्रों के लिये हिन्दी रूपान्तर प्रश्न को सही सही समझने में सहायक होता है।

यह शुभ लक्षण है। इससे हिन्दी का भविष्य उज्वल होगा। बिना चर्चा का विषय बने उसे आदर नहीं मिल सकता। काश कि अध्यापक एवं छात्र हिन्दी की महत्ता को व्यावहारिक रूप में समझ पाते।

इतने पर भी छात्रों का एक नगण्य अंश (२%) ही हिन्दी में अपने उत्तर लिखता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़के हिन्दी को प्रश्रय देते नजर आये। गणित की अपेक्षा रसायन एवं भौतिकी में अधिक छात्रों ने हिन्दी में उत्तर लिखे। ये ऐसे छात्र हैं जिनके समक्ष अपने अन्तर की पुकार-आत्म प्रेरणा-अधिक बलवती है। वे इसके कुपरिणाम की परवाह नहीं करते जबकि छात्रों का अधिकांश कम नम्बर पाने के भय से चाहते हुये भी हिन्दी में उत्तर नहीं लिखता। उनके लिये परीक्षा अध्यवसाय है। वे उसमें सफल होना परम लक्ष्य बनाते हैं। अध्यापक भी उन्हीं को प्रश्रय देते हैं।

● **एक प्राध्यापक**

२. हिन्दी में प्रश्नपत्र क्यों नहीं छपे ?

इस वर्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा पूर्व-आयुर्विज्ञान परीक्षा (पी० एम० टी०) का समापन बड़ा खेदजनक रहा। परीक्षा में बैठने के लिए निर्धारित न्यूनतम योग्यता इण्टरमीडिएट है। इण्टरमीडिएट परीक्षा के सभी प्रश्नपत्रों के हिन्दी अनुवाद भी साथ में छापे जाते हैं एवं कक्षा की पढाई भी हिन्दी में ही होती है। परन्तु विचित्र बात देखने को मिली जब पी० एम० टी० के कुछ विद्यार्थी मुझसे मिले एवं यह शिकायत की कि प्रश्नपत्र पूर्णतः अंग्रेजी में होने के कारण उनकी समझ में नहीं आये। यदि ये ही प्रश्नपत्र हिन्दी में भी छपे होते तो वे प्रश्नों का उत्तर अधिक अच्छी तरह से दे पाते।

अतः मैं पी० एम० टी० परीक्षा से संबंधित अधिकारियों का ध्यान उन निरीह परीक्षार्थियों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जो अंग्रेजी में होने के कारण प्रश्नपत्र न समझ सकने से उनके उत्तर टीक से नहीं लिख पाये। आशा है इस वर्ष उनकी स्थित पर सहृदतापूर्वक विचार किया जायेगा एवं अगले वर्ष प्रश्नपत्रों के हिन्दी अनुवाद भी छापे जायेगें जिससे न्यूनतम योग्यता वाले परीक्षार्थी भी समान से रूप प्रश्न को समझ एवं लिख सकें।

● प्रेम चन्द्र मिश्र, शोध-छात्र

१. फिर से समुद्र मंथन

विश्व में पेट्रोलियम के कुल उत्पादन का छठां अंश सागर तल के कुओं से प्राप्त हो रहा है। आशा की जाती है कि भविष्य में भी विश्व में पेट्रोलियम की कुल पूर्ति का पांचवां अंश महासागरों और बड़ी झीलों के नीचे से प्राप्त होगा। अकेले खनिज तेल ही महासगरों की तलहटियों को खनिज उत्पादन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण तत्व बनाने के लिए पर्याप्त है। किन्तु ये जल क्षेत्र इस समय अन्य बहुमूल्य कच्ची सामग्रियां भी उत्पन्न कर रहे हैं, और आशा की जाती है कि सम्भवतः अगले दशाब्द के भीतर वे व्यापारिक दृष्टि से और भी दूसरे खनिजों के प्रतिस्पर्द्धी स्रोत बन जायेंगे। इन सम्भावनाओं के कारण उन प्रयासों की अनिवार्यता बढ़ जाती है, जो समुद्रों से ढके पृथ्वी के ७० प्रतिशत भाग के नीचे विद्यमान साधनों के स्वामित्व, नियमन और प्रयोग के सम्बन्ध में किसी न किसी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के लिए इस समय किये जा रहे हैं। अकेले अमेरिका से सटे महासागर-तलीय क्षेत्रों में ही १९६९ में अनुमानतः २३८ करोड़ ३० लाख डालर मूल्य के खनिज पदार्थों का उत्पादन हुआ, जो उसके पूर्ववर्ती वर्ष से ३५ करोड़ डालर अधिक था। किन्तु इस समय सागर तल के नीचे से जितनी खनिज सम्पदा प्राप्त की जा रही है, उसका अल्पांश ही अमेरिका द्वारा उत्पन्न किया जा रहा है। विश्व में सागर तल से प्राप्त कुल खनिज तेल और गैस का एक तिहाई अंश अमेरिका के निकटवर्ती सागर के नीचे से प्राप्त होता है, जबकि उसका शेष दो-तिहाई अंश २० से अधिक अन्य देशों के निकटवर्ती समुद्रों और वेनेज्वेला की माराकेबो नामक झील के नीचे से प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न महाद्वीपों के लगभग ६० अन्य देशों के निकटवर्ती महासागरीय क्षेत्रों में भी उनकी खोज की जा रही है।

कुछ देशों के सागरतटों के पास की जलगर्भीय खानों से लोहे और कोयले का उत्खनन हो रहा है। समुद्री खानों के द्वारों को भूमि पर गाड़ दिया जाता है, और प्रायः समुद्र की ओर ८ मील तक सुरंग बैठा दी जाती हैं। कहीं-कहीं तटवर्ती समुद्र की तलहटी से जाल द्वारा बालू को बाहर खींच लिया जाता है, और उसमें से हीरे और लोहे को पृथक कर लिया जाता है।

भविष्य में महासागरों के गर्भ से सोना, फास्फेट, कोबाल्ट, मैंगनीज जैसे अनेक खनिज तथा महासागरीय तलहटी के नीचे की चट्टानी परतों में बन्द शुद्ध पेय जल भी प्राप्त होने की आशा है।

गहरे समुद्री क्षेत्रों में मैंगनीज के गुल्म शायद व्यापारिक स्तर पर उत्खनित होने वाले प्रथम खनिज पदार्थ होंगे। यद्यपि इन गुल्मों में लगभग २४ प्रतिशत मैंगनीज और लगभग १/४ प्रतिशत कोबाल्ट मिश्रित होता है, फिर भी मुख्यतः कोबाल्ट के कारण ही गहरे महासागर में उत्खनन आकर्षक सिद्ध होगा। इन गुल्मों में लोहा, कांसा और तांबा भी पाया जाता है।

२. गर्भ-निरोधी गोलियां

अब लोग जनसंख्या-विशेषज्ञों के इस कथन से चिन्तित हो उठे हैं कि 'यदि जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान गति जारी रही तो अगले ३० वर्ष में पृथ्वी की वर्तमान ३ अरब ५० करोड़ जनसंख्या दुगनी हो जाएगी। इसके बाद, अगले ३० वर्षों में जनसंख्या बढ़ कर १४ अरब पहुँच जाएगी। पुनः ३० वर्ष बाद २८ अरब; उसके ३० वर्ष बाद ५६ अरब। और, इसके बाद क्या ? १ खरब ! यह ऐसी स्थिति होगी जब लोग मुश्किल से गुजर-बसर कर पाएंगे।'

हम जानते है कि यह स्थिति नहीं आ सकती। यह स्थिति नहीं आएगी ।

एकमात्र प्रश्न यह है : क्या हम—विश्व में रहने वाले सभी लोग अपनी बुद्धि और संकल्प का उपयोग कर जनसंख्या-वृद्धि के पागलपन को स्वयं ही रोक देंगे अथवा प्रकृति के ऊपर छोड़ देंगे कि वह स्वयं पहल करे तथा अपने दीर्घकाल से सुविदित प्रभावकारी परन्तु नृशंस तरीकों पोषण का अभाव, रोग और सामूहिक भुखमरी —द्वारा यह कार्य सम्पन्न करे।

विगत दशक में, छोटे-छोटे परिवार रखने की भावना से प्रेरित होकर तथा गर्भ-निरोधक गोलियों की सहायता से अमेरिकी जनों ने अपने यहाँ जनसंख्या-वृद्धि की गति में ५० प्रतिशत तक कमी कर ली है। अब वहाँ जनसंख्या-वृद्धि की दर २ प्रतिशत से घट कर केवल एक प्रतिशत तक ही रह गई है। अमेरिका में लगभग ८५ लाख महिलाएँ इन गर्भ-निरोधक गोलियों का उपयोग करती रही हैं। कई लाख अमेरिकी महिलाएं इससे कम प्रभावशाली गर्भ-निरोधक उपायों का भी सहारा ले रही हैं। फलतः अमेरिका की जनसंख्या-वृद्धि की गति निरन्तर घटती जा रही है—हर वर्ष १ प्रतिशत के लगभग ११० अंश के बराबर—यद्यपि १९६९ में पहली बार जन्म-दर में कुछ हल्की सी वृद्धि दृष्टिगोचर हुई है।

हाल में, अमेरिका में गर्भ-निरोधक गोलियों के बारे में जो वक्तव्य व्यापक तौर पर प्रचारित किये गये हैं उनके कारण गर्भ-निरोधक गोलियों का सेवन करने वाली अमेरिकी महिलाओं में से १८ प्रतिशत ने 'गोली' का सेवन करना छोड़ दिया है। इसके अलावा २३ प्रतिशत ने यह संकेत दिया है कि वे 'गोली' सेवन न करने के बारे में सोच रही हैं। किन्तु क्या यह एक बहुत बड़ी विपत्ति साबित नहीं होगी ? पर्याप्त संख्या में सुलभ प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'गोली' काफी सुरक्षित है और डाक्टरी परामर्श और देख-रेख में उसका उपयोग जारी रखा जा सकता है। कुछ डाक्टर 'गोली' के सेवन से उत्पन्न प्रभावों एवं शारीरिक विकारों की गम्भीरता तथा अन्य सम्भावित खतरों के बारे में सहमत नहीं हैं। अन्य सभी औषधियों की तरह 'गर्भ-निरोधक' गोलियों के भी कुछ बुरे प्रभाव हो सकते हैं लेकिन वह उन महिलाओं के लिए जो अपने परिवार का नियोजन करना चाहती हैं, तथा समाज के लिए बहुत ही लाभप्रद हैं।

अब तक गोली के सम्बन्ध में निम्न बातें स्पष्ट हो चुकी हैं :-

१. गर्भ-निरोधक गोलियां, यदि नियमित रूप से उनका सेवन किया जाए, शत-प्रतिशत सफल गर्भ-निरोध औषधि है तथा गर्भ-निरोध के अब तक विदित उपायों में सबसे अधिक प्रभावशाली है।

२. इसके कुछ ऐसे प्रभाव पड़ते हैं जो कुछ महिलाओं के लिए काफी गम्भीर सिद्ध होते हैं इसलिए इनका सेवन उचित परामर्श और देश-रेख में किया जाए।

३. इसके कुछ सम्भावित दुष्परिणाम—जैसे कैंसर होने की सम्भावना—उन महिलाओं में अभी तक सिद्ध नहीं किए जा सके हैं, जो 'गोली' का सेवन करती हैं।

गर्भ-निरोध के सुधरे हुए जिन साधनों की आशा की जा रही है वे चाहे वर्ष में एक बार बांह में टीका लगाने की शक्ल में हों, महीने में एक बार गोली खाने के रूप में हों, प्रातः खाई जाने वाली गोली के रूप में हों अथवा अन्य किसी रूप में हों, उनसे अवांछित बच्चों की संख्या कम करके मानव जाति की बड़ी भलाई की जायेगी।

किन्तु इस समस्या का एक दूसरा पहलू भी है। अभी हाल में कैलिफोर्निया और राजधानी वाशिंगटन के न्या-

यालयों ने गर्भपात के मर्यादित कानूनों को भी अवैध करार दिया है। देर-सवेर में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को यह फैसला करना होगा कि क्या समाज किसी महिला को ऐसा बच्चा पैदा करने के लिए बाध्य कर सकता है, जिसे वह नहीं चाहती। बहुत से राज्यों ने अपने यहाँ गर्भपात विषयक अपने कानूनों में ढील दे दी है या वे ऐसा करने पर विचार कर रहे हैं। ग्रेट ब्रिटेन में तो गर्भपात सम्बन्धी कानून शिथिल किये भी जा चुके हैं, और भारत में इस मामले पर विवाद चल रहा है।

संसार भर की दृष्टि से विचार करें तो यह बात असंदिग्ध रूप में सामने आती है कि कानून-सम्मत गर्भ-पात से—जैसा कि जापान और पूर्वी यूरोप के कई देशों में है—और अन्यत्र अवैध रूप में होने वाले गर्भपातों से अब सन्तानोत्पादन की संख्या में इतनी कमी हो रही है जितनी गर्भ-निरोध के सभी साधनों से मिल कर नहीं होती।

सूर्य की ऊर्जा और मनुष्य

पृथ्वी पर होने वाली, लगभग सभी प्रक्रियाएँ सूर्य की कृपा से होती हैं। इतना होने पर भी मनुष्य सूर्य के मुक्त-दान—विकीर्ण ऊर्जा— के एक बेहद छोटे अंश का ही उप-योग कर रहा है।

व्यवहारिक सौर-तकनीक (सौर ऊर्जा के व्यावहारिक उपयोग का विज्ञान) का जन्म सन् १८७८ में तब हुआ जब फ्रांसीसी वैज्ञानिक अगिस्तिन मौशो ने एक समाचारपत्र छापने के लिए अपने प्रतिष्ठान में सौर ऊर्जा का उपयोग किया था। उस दिन से आज तक संसार भर के वैज्ञानिक और आविष्कारक सूर्य को पृथ्वी के "औद्योगिक-घेरे" में बाँधने की कोशिशों में जुटे हुए हैं। परन्तु यह एक कठिन समस्या है। यही कारण है कि आज के युग में सौर-ऊर्जा को "नये" शक्ति स्रोतों की सूची में शामिल किया जाता है।

मनुष्य को सूर्य की ऊर्जा की बहुत आवश्यकता है। फ्रेडरिक जूलियो क्यूरी का विचार था कि सौर-ऊर्जा को इस्तेमाल करने की समस्या परमाणुविक-ऊर्जा पर नियंत्रण पाने की समस्या से कहीं ज्यादा जरूरी है। वे कहा करते थे कि सौर-ऊर्जा को नियंत्रित करने का अर्थ बड़ी-छोटी खोजों के लिए मार्ग प्रशस्त करना ही नहीं बल्कि समस्त राष्ट्रों की समृद्धि भी है।

आज मनुष्य बिजली के बिना रह नहीं सकता। बिजली हमारे दैनिक जीवन का अंग और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का आधार बन गयी है तथा परिवहन-व्यवस्था की मुख्य प्रेरक शक्ति भी है। विद्युतीकरण की प्रक्रिया में मानव-क्रिया-कलापों के सभी अंग समाविष्ट हैं और बिजली की माँग दिन पर दिन तेजी के साथ बढ़ती चली जा रही है। अनुमान लगाया गया है कि सन् २००० तक विश्व का विद्युत-शक्ति संतुलन आज की तुलना में २०० गुना अधिक हो जायेगा। परन्तु आज भी विद्युत का मुख्य आधार वही रासायनिक ईंधन है जो सहस्राब्दियों से पृथ्वी के गर्भ में एकत्र होता रहा है।

कई अनुसंधान कर्ताओं ने भविष्यवाणी की है कि आज से दो या तीन सौ वर्ष बाद पृथ्वी के गर्भ में स्थित खनिज ईंधन का भंडार समाप्त हो जायेगा और तब मनुष्य के सामने एक गम्भीर समस्या उठ खड़ी होगी। यह कुछ ऐसी सम्भावनाएँ हैं जिनके प्रति वर्तमान मानव-पीढ़ी उदासीन नहीं रह सकती। यह सच है कि इन भविष्यवाणियों की सत्यता संदिग्ध है परन्तु केवल समय के सन्दर्भ में। पृथ्वी के कुछ प्रदेशों में तो ईंधन की कमी अनुभव भी की जाने लगी है। एक दिन ऐसा भी आयेगा जब, अन्ततः, ईंधन की कमी और परिणामतः विद्युत-शक्ति की कमी नग्न यथार्थ बन जायेगी।

खनिज ईंधन की कमी से सिर्फ विद्युत-उत्पादन पर ही ऐसा कुप्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि इससे कई अन्य घटकों पर भी प्रभाव पड़ेगा। प्राकृतिक ईंधन—कोयला, तेल और गैस—रासायनिक उद्योग के कच्चे माल का महत्वपूर्ण स्रोत है। इस उद्योग से अनेक मूल्यवान पदार्थ बनते हैं इसलिए, भावी पीढ़ी के दृष्टिकोण से, इस अमूल्य वस्तु को ताप-बिजलीघरों की भूखी-भट्टियों का पेट भरने के लिए इस्तेमाल

करना इसका सर्वोत्तम उपयोग नहीं कहा जा सकता।

विज्ञान को इन समस्याओं का हल खोजना है और वह इस काम में जुटा हुआ है। पृथ्वी के भूताप-स्रोतों तथा सागरीय-तरंगों की शक्ति को विद्युत उत्पादन के काम में लाया जाने लगा है। परन्तु शक्ति के यह स्रोत अभी दुर्लभ हैं। परमाणुविक बिजलीघरों की संख्या बढ़ तो रही है पर वे शक्ति की अत्यधिक आवश्यकता की समस्या को कठिनाई से ही हल कर सकते हैं। एक तो इस प्रकार के बिजलीघर बहुत खर्चीले होते हैं, दूसरे उन्हें बनाते समय रेडियो-सक्रिय पदार्थों से मनुष्य का कारगर बचाव करने तथा रेडियो-सक्रिय-मल का समुचित बन्दोबस्त करने की आवश्यकता भी होती है।

वैज्ञानिकों का विचार है कि शक्ति-स्रोत के रूप में तापनाभिकीय-संश्लेषण में सर्वाधिक सम्भावनाएँ हैं। इसके लिए आवश्यक तापनाभिकीय ईंधन—भारी हाइड्रोजन-समुद्रों में भरा पड़ा है। सन् २००० के शक्ति उत्पादन स्तर पर भी यह ईंधन करोड़ों वर्षों के लिए पर्याप्त है। परन्तु इस ईंधन के प्रयोग की समस्या को हल करना आसान नहीं।

हाइड्रोजन बम बनाने में तो कोई खास देर नहीं लगी, पर अनेक देशों के अनेकानेक वैज्ञानिकों द्वारा वर्षों प्रयत्न करने के बाद भी तापनाभिकीय-शक्ति को चुम्बकीय घेरे में बाँध कर मनवोपयोगी बनाने में सफलता नहीं मिली। तापनाभिकीय-प्रक्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित करने की समस्या आसानी से हल होने वाली समस्या नहीं है। इसके अलावा तापनाभिकीय-शक्ति-इंजीनियरी की भी एक सीमा है। पता लगाया गया है कि अगर तापनाभिकीय-पाइलों से निकलने वाली शक्ति पृथ्वी तक पहुँचने वाले सौर-विकिरण के दसवें भाग तक भी पहुंच जायेगी तो पृथ्वी का तापमान सात डिग्री सेंटीग्रेड तक जा पहुंचेगा जबकि ताप-सहिष्णुता की सीमा चार पर ही समाप्त हो जाती है।

जैसा कि स्पष्ट है, विद्युत-उद्योग की तकनीकी प्रगति विधि शक्ति-स्रोतों के व्यापक उपयोग से ही सम्भव है और इस मामले में सौर-ऊर्जा की उपेक्षा से हमारा काम नहीं चल पायेगा। इससे पृथ्वी के ताप-संतुलन पर प्रभाव नहीं पड़ता और वायुमंडल दूषित नहीं होता। इसके अलावा इसकी अन्तिम विशेषता यह है कि शक्ति का यह स्रोत वस्तुतः अक्षय है। सौर-विकिरण से (सिद्धान्ततः) लगभग ८०,०००,०००,०००,०००,००० किलोवाट घंटा बिजली प्रतिवर्ष उत्पन्न की जा सकती है। निकट भविष्य में मनुष्य जाति की विद्युत आवश्यकता उपर्युक्त खगोलीय संख्या से अधिक नहीं हो सकती है।

इसी बात को ध्यान में रखकर संसार भर के वैज्ञानिक सूर्य से विकीर्ण होने वाली ऊर्जा के उपयोग की समस्या पर गम्भीरता से ध्यान दे रहे हैं।

काम की बातें

आप देखकर जान लें कि कितनी ऊर्जा (शक्ति) आप व्यय कर रहे हैं दैनिक कार्यकलापों में

काम	कैलौरी/घंटा	काम	कैलौरी/घंट
पढ़ना	२५	ट्रक चलाना	१००
फोन पर जबाब देना	५०	खाना पकाना	१००
हिसाब किताब करना	५०	ट्रैक्टर चलाना	१५०
श्रुतलेख लिखाना, लिखना	५०	फर्श बुहारना	१५०
कपड़े पहनना-उतारना	५०	कपड़े धोना	२००
कार चलाना	५०	बागवानी	२५०
खाना खाना	५०	बढ़ईगिरी	२५०
स्वेटर बुनना	५०	बिस्तर बिछाना	३००

काम	कैलोरी/घंटा	काम	कैलोरी/घंटा
टाइप करना	५०	आरा चलाना	५००
बरतन धोना	७५	दांत साफ करना	१००
नहाना	१००	बाल सँवारना	१००
ताश खेलना, टेलविजन देखना	२५	शिकार करना	४००
गाना	५०	तैरना (आराम से)	४००
पियानो बजाना	७५	बैडमिंटन	४००
स्कूटर चलाना	१००	नाव खेना (आराम से)	४००
मोटर-साइकिल चलाना	१५०	टेनिस (सिंगल्स)	४५०
मछली पकड़ना	१५०	हाकी	५५०
चित्र बानाना (पेंटिंग)	१५०	बास्केट बाल	५५०
टहलना (आराम से)	२००	साइकिल चलाना (तेज)	६००
गाल्फ, घुड़सवारी	२५०	नाचना (तेज)	६००
शफ्ल बोर्ड, बोलिंग	२५०	फुटबाल	६००
साइकिल चलाना (धीमे)	३००	तैरना (तेज)	८००
टहलना (धीमे)	३००	कुश्ती	८००
नाचना (धीमे)	३५०	दौड़ना (तेज)	९००
साफ्टबाल, टेनिस (डबल्स)	३५०	वालीबाल-बेसबाल	३५०

स्मरण रहे कि स्वस्थ पुरुष के लिये प्रतिदिन ३५०० कैलारी ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है जिसे वह भोजन से प्राप्त करता है।

● अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें

● हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है और उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।

विज्ञान-वार्ता

छिडकाव द्वारा यूरिया का प्रयोग

ऐसा अनुमान कि भारतवर्ष में जितने क्षेत्रफल में गेहूँ उगाया जाता है उसका ७०% वर्षा पर निर्भर करता है अथवा बारानी या शुष्क कृषि होती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यद्यपि सभी राज्यों में कृषि-उत्पादन की नवीन योजनायें कार्यान्वित हुई हैं किन्तु बारानी क्षेत्र के कृषकों ने न तो उर्वरकों का प्रयोग किया है और न अन्य उन्नत विधियों को अपनाया ही है। नमी की कमी अथवा सिंचाई के साधन उपलब्ध न होने से यह रुकावट आई है।

किन्तु इधर राजस्थान के कोटा जिले में एक प्रयोग किया गया जिसमें सान्द्र यूरिया का छिडकाव हवाई जहाज द्वारा हुआ जिससे गेहूँ की फसल में काफी वृद्धि हुई। यह प्रयोग भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, सरकार के कृषि विभाग एवं अमरीकी सहायता के सहयोग द्वारा सम्पन्न किया गया। इसमें मँडोला नामक ग्राम में २ हजार हेक्टेयर पर प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में यूरिया की दो सान्द्रतायें प्रयुक्त की गई—२०% तथा ४०% यूरिया विलयन। प्रतिएकड़ में ३२ लीटर विलयन का छिड़काव हवाई जहाज द्वारा किया गया। यूरिया उर्वरकों के साथ जीवनाशी मैलाथियन, डाइमेथोएट, सुमिथेयान तथा डाइथेन का भी व्यवहार किया गया। जब ७५-८० दिन की फसल के ऊपर यह छिडकाव किया गया तो पत्तियों को कोई क्षति नहीं हुई। इससे प्रति हेक्टेयर ४५% तथा ३०% गेहूँ की अधिक उपज हुई। इस प्रकार ४०% यूरिया के छिडकाव से प्रति हेक्टेयर ६·८ क्विंटल गेहूँ की तुलना में १० क्विंटल गेहूं की उपज हुई।

टमाटरों का चटकना

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना के अनुसंधानो से पता चला है कि बोरान तथा कैल्शियम का अलग अलग या मिला कर छिड़काव करने से टमाटरों का चटकना कम हो जाता है।

दवाओं का छिड़काव रोपाई के करीब एक महीने बाद १० दिन के अंतर से किया गया। गर्मियों की फसल पर तीन बार तथा सर्दियों की फसल पर चार बार छिड़काव किया गया।

इस उपचार से सर्दियों के टमाटरों के चटकने से २६·४ प्रतिशत तथा गर्मियों के टमाटरों में ८·७ प्रतिशत कमी हुई।

संकर बाजरा की रोपाई सम्भव

उत्तर भारत के किसान संकर बाजरे को चोब कर या यंत्र से बोने की अपेक्षा रोपाई करके उगायें तो उन्हें अधिक पैदावार मिलेगी। नयी दिल्ली की भारतीय कृषि अनुसंधानशाला ने परीक्षणों द्वारा इसका पता लगाया है।

परीक्षणों में रोपाई करके ली गयी फसल से प्रति हैक्टर २६·६ क्विंटल तथा यंत्र द्वारा बोयी फसल से २३.६ क्विंटल और चोब कर बोयी फसल से २२·३ क्विंटल पैदावार मिली। इसी प्रकार चारे की पैदावार भी प्रति हैक्टर क्रमशः ५६·३ क्विंटल, ६०·१ क्विंटल और ५० क्विंटल मिली।

प्रयोग करके देखा गया है कि संकर बाजरे की रोपाई

में देरी होने पर, यदि अगस्त के मध्य तक भी फसल रोप दी जाये, तो प्रति हैक्टर बाजरे की पैदावार २० क्विंटल तक मिल जाती है।

धान की नई किस्में एवं धान क्रान्ति

इस वर्ष खरीफ की फसल में बोने के लिये कटक में हुई वर्कशाप की संस्तुति के आधार पर 'केन्दीय किस्म निर्धारण समिति' धान की नौ उन्नतिशील किस्मों को वितरण के लिये मान्यता देने जा रही है।

इन किस्मों से दो १०५ दिन में तैयार होने वाली आई० ई० टी० ३५५ एवं ४०० जातियाँ कृषि अनुसन्धान संस्थान, कोयम्बटूर द्वारा निकाली गई हैं।

केन्द्रीय धान अनुसन्धान संस्थान, कटक से भी चार नई किस्मों का विकास हुआ है। इसमें से एक ९० दिन में पकने वाली सी० आर० ४२-३८ किस्म है जो बीजू फसल के लिये उपयुक्त है। इसको सूखे एवं ऊँचे स्थानों में भी उगाया जा सकता है। दूसरी सी० आर० ४४-११ किस्म है। इसमें तने का छेदक नहीं लगता। अन्य दो किस्में सी० डी० १०-४५३७ एवं सी० आर० ७-६ चावल के लिये उत्तम हैं।

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद ने ताइचुंग नेटिव १ एवं बांसमती के संयोग से सावरमती एवं जमुना दो नई किस्में निकाली हैं। सावरमती में बाँसमती की सुगंध है एवं जमुना का चावल उत्तम प्रकार का होगा।

धान अनुसन्धान संस्थान फिलिपाइन द्वारा टँगरो वाइरस मुक्त आई० आर० २० किस्म निकाली गई है। यह अन्य भारतीय किस्मों की तुलना से १४०० कि० ग्रा०/हैक्टेयर की अपेक्षा ५००० कि० ग्रा०/हैक्टेयर उपज देगी।

इन नई किस्मों से धान बोने की दिशा में एक नया मोड़ आयेगा क्योंकि इनसे क्षेत्र विशेष की पसन्द का ध्यान रखते हुये किसान अधिकतम लाभ उठा सकते हैं।

● ●

[पृष्ठ ८ का शेषांश]

चौर-आखेट

गेण्डे का शिकार करने की कानूनन मनाही है और इसके लिए कठोर दाण्डिक विधान है। इसके बावजूद भी बड़े पैमाने पर इसका अविवेकता से चौर-आखेट किया जा रहा है। आखेट्य-चौरों का गेण्डे के सींगों के बड़े-बड़े दाम देने वाले व्यक्तियों की कभी नहीं है। १९५९ ई०में जोरहाट से प्राप्त एक समाचार में बताया गया था कि काजिरंगा संश्रय में जनवरी से जुलाई तक के सात महीनों में नाजायज शिकार में कम से कम ग्यारह गेण्डों की जानें गई थीं। सन्देह किया जाता है कि इस पशु के मांस व सींग का व्यापार देश के बाहर बड़े पैमाने पर चलता है। सींग मुख्यतया चीन भेजा जाता था। १९२९ ई० में चानियों की मांग पूरा करने के लिए एक हजार से अधिक गेन्डे सींग के लिए मारे गये थे। १९६२ ई० में नेफा पर आक्रमण के समय चीनियों ने बड़ी निर्दयता व लोलुपता से गेण्डों को मारा और जख्मी किया था। नेपाल में भी गेण्डे के शिकार पर रोक है और नाजायज शिकार करने वाले को पांच-छह साल की कड़ी कैद की सजा दी जाती है।

● ●

सम्पादकीय

बम या बमबम

संसद में रह रह कर यह बहस उठती रहती है कि भारत को परमाणु बम बनाना चाहिए अथवा नहीं। किन्तु कांग्रेस सरकार वचनवद्ध है कि भारतवर्ष परमाणु ऊर्जा का सम्प्रयोग केवल शान्तिपूर्ण कार्यों के लिये ही करेगा। फिर भी भारत की अधिकांश राजनीतिक पार्टियाँ इस मत की हैं कि जब भारत के पास समुचित साधन उपलब्ध हैं तो चीन तथा पाकिस्तान की ओर से होने वाले आक्रमणों से देश की रक्षा के निमित्त हमें परमाणु बम बनाने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। हमें इस में जो भी धन लगे उसे लगाना चहिए क्योंकि देश की अखंडता को स्थिर रखना ही होगा। अतः प्रश्न है कि भारत में परमाणु बम बनेगा भी या केवल "बमबम" ही होता रहेगा।

इधर परमाणु ऊर्जा संस्थान, ट्राम्बे, के संचालक डा० विक्रम साराभाई ने एक दसवर्षीय योजना प्रस्तुत की है जिसमें न केवल नाभिकीय शक्ति के उत्पादन का उल्लेख है वरन् देश में उपग्रहों के निर्माण एवं उनके प्रक्षेपण का भी संकेत है। उनके अनुसार १९८० तक भारतवर्ष उपग्रह छोडने में समर्थ हो सकेगा। किन्तु इस योजना के लिये प्रचुर धन चाहिए।

यह उल्लेखनीय बात है कि परमाणु बम बन जाने के बाद शक्तिशाली प्रक्षेपणास्त्रों की आवश्यकता होती है। चीन ने अंतरिक्ष में उपग्रह भेजकर यह सिद्ध कर दिया है कि वह परमाणु-राष्ट्रों की पंक्ति में है। उसके पास ५००० मील तक की मार करने वाले शक्तिशाली राकेट हैं जिससे भारत को वास्तविक खतरा उत्पन्न हो गया है। किन्तु इतने के बावजूद भी चीन अभी प्रति-प्रक्षेपणास्त्र नहीं निर्मित कर पाया।

भारत के पास प्लुटोनियम तथा यूरेनियम का प्रचुर भंडार है जिसके द्वारा वह परमाणु भट्ठी की सामग्री मुहैया कर सकता है; देश में प्रशिक्षित इंजीनियरों एवं कुशल वैज्ञानिकों का भी अभाव नहीं है कि कार्य में बाधा पड़े किन्तु यदि हिचकिचाहट है तो बस धन की और समय की। भारत कितने भी यत्न क्यों न करे, कम से कम १२ वर्ष लग जावेंगे सम्पूर्ण तैयारी में। यदि एक परमाणु बम बनाकर रुक जाना हो तो ७-८ करोड रुपये काफी हैं। परमाणु शस्त्रागार को सज्जित करने के लिए कम से कम ५० जेट बमवर्षक चाहिए, और चाहिए कम से कम १०० प्लुटोनियम बम। फिर इनके लिये लम्बी मार वाले प्रक्षेपणास्त्र चाहिए।

यह सच है कि एक बार परमाणु बम बनाकर उनका परीक्षण करना होगा और तब हमारे देश के राजनीतिज्ञों को दर्प का अनुभव होने पर अनावश्यक रूप से युद्ध में रत होने के लिये बहाना मिल सकता है। जो समझदार हैं वे ठीक ही सोचते हैं कि भारत की आर्थिक दशा ऐसी नहीं कि वह इतनी खर्चीली योजना की ओर मुहँ फेरे। पहले आर्थिक सम्पन्नता के लिये ही परमाणु ऊर्जा का सम्प्रयोग होना चाहिए। किन्तु यदि राष्ट्र को बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखना है तो अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करना ही होगा। भले ही वह आज की आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण न लगे किन्तु कालान्तर में वह वरदान सिद्ध हो सकती है। अतः समझ-बूझ कर ही भारत को अगला कदम उठाना होगा। ● ●

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | ज्येष्ठ २०२७ विक्र०, १८९२ शक जून १९७० | संख्या ६

दक्षिण अफ्रीका की सोने की खानें*

● डा० सत्य प्रकाश

गत वर्ष (१९६९ ई०) मुझे अगस्त मास से अक्टूबर मास तक दक्षिण अफ्रीका में रहने का अवसर मिला। दक्षिण अफ्रीका स्वतंत्र देश है, जिसमें चार प्रदेश हैं, नेटाल ट्रान्सवाल, केपप्राविन्स और आरेंजफ्रीस्टेट। अनेक बातों के लिए यह प्रसिद्ध है। भारत की खोज के लिए वास्को-डिगामा पुर्तगाल से चला और अपनी यात्रा में उसने केप-आव्-गुड्होप (सदाशा अन्तरीप) की खोज कर डाली, और अपनी पताका वहाँ लहरायी। यूरोप वालों को धीरे-धीरे दक्षिण अफ्रीका का पता चला, और खेती की लालच में वहाँ बसने लगे। गन्ने और अंगूर एवं सन्तरों (मैण्डेरिन) के बागों से यह देश सुहावना बन गया। धीरे-धीरे यहाँ की सोने की खानों से युरोपवासियों का परिचय हुआ। बस थोड़े से समय (लगभग ६० वर्षों) में यह देश कुबेर-पुरी बन गया।

जब मैं ट्रान्सवाल के प्रसिद्ध नगर जोहेन्सबर्ग में पहली बार हवाई जहाज से ७ अगस्त को उतरा तब नहीं जानता था कि यह कितना धनी नगर है। बाद को अपने व्याख्यानों के लिए जब वहाँ पहुँचा, तब पता चला कि यह सारा नगर सोने की खानों पर बसा हुआ है। जोहेन्सबर्ग के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में पहुँचा तब पता चला कि विश्वविद्यालय का नाम विटवाटर्सरैण्ड-विश्वविद्यालय है। जोहेन्सवर्ग जिस भूमि पर बसा है उसे विटवाटर्सरैण्ड या संक्षेप में रैण्ड कहते हैं। आरेन्ज और लिम्पोपो नदियों के बीच के दोआब को रैण्ड कहा जाता है। इसके तीन विभाग हैं—पश्चिमी रैण्ड, मध्य रेण्ड और पूर्वी रैण्ड। पश्चिमी रैण्ड के बाद दूरस्थ पश्चिमी रैण्ड भी है। जोहेन्सबर्ग समुद्र तल में ६००० फुट ऊँचाई पर है और हीरे की खानों वाले नगर किम्बरले से २९८ मील, लेडीस्मिथ से ३५० मील उत्तर में, और पोर्ट एलिजवेथ से ७१४ मील दूर है।

* 'विज्ञान क्लब' में दिया गया भाषण

कहा जाता है कि भूगर्भ के अतीत इतिहास में वह भूमि जहाँ जोहेन्सबर्ग है एक अन्तरीय सागर (इनलैन्ड सी) था, जो कालान्तर में भूभाग के नीचे आ पड़ा। इस स्थल की उपयोगिता का प्रथम श्रेय जार्ज हैरिसन को है (१८८६ ई०)। और तबसे "विटवार्टर्सरैण्ड स्वर्ण खानों" की घोषणा सार्वजनिक रूप से हुई। इसके पूर्व का इतिहास भी महत्व का है जो संक्षेप में इस प्रकार है—

१८०६ :जान बैरोज ने जो केप-प्रदेश के गवर्नर का सचिव था, इस प्रदेश के पर्वतों के नक्शे तैयार किए। किम्वदन्ती थी कि इन पर्वतों में सोना है।

१८५३ : जान हेनरी डेविस नामक व्यक्ति ने जिसे भूगर्भ शास्त्र से थोड़ा सा परिचय था ट्रांसवाल में सोने का पता लगाया। जब इस बात का पता ट्रान्सवाल के अधिकारियों को लगा, तो उन्होंने डेविस को अपने देश से भगा दिया। उन्हें डर था कि कहीं विदेशियों को इस बात का पता चल गया, तो वे ट्रान्सवाल पर आक्रमण कर देंगे।

१८५४ : केप प्रदेश के वोरसेस्टर स्थान पर सोने का पता लगा।

१८६८ : सोने को खानों में से निकालने के लिए दो दक्षिण अफ्रीकी कम्पनियाँ बनीं, जिनका उद्देश्य टाटी-गोल्ड फील्डों (टाटी) से सोना निकालना था। यह स्थान वह है, जिसे अब बौट्स्वाना कहते हैं। दक्षिण अफ्रीका से बाहर ट्रांसवाल के उत्तर पश्चिम में वह स्थल है।

१८७० : नैटाल की उमट्वालूमी नदी के तट पर सोने की खानों की कुछ खोदाई हुई जिसका विवरण प्रकाशित हुआ।

१८७१ : उत्तर ट्रान्सवाल के वाटरबर्ग के 'एर्स्टलिंग' में स्वर्णखान में काम करने वाली पहली कम्पनी बनी।

१८७३ : "पिलिग्रिम्स-रेस्ट" नामक स्थान पर प्रथम बार वस्तुतः असली सोना शुद्ध रूप में निकाला गया।

१८७४ : आस्ट्रेलिया के हेनरी ल्यूइस ने विटवार्टर्स रैण्ड में नदी की बालू में सोना पाया।

१८८२ : डि-काप स्वर्णभूमि का पता चला, जिसमें पूर्वी ट्रान्सवाल में सोने की खुदाई का काम आरम्भ हुआ।

१८८६ : विटवाटर्सरैण्ड के स्वर्ण-क्षेत्र की सार्वजनिक घोषणा।

१८८८ : क्लेर्क्सडार्प में सोने की खोदाई का काम आरम्भ।

१९३३ : कार्बन लीडर रीफ (कोयले की अस्तर खान) की खोज और दूरस्थ पश्चिमी रैण्ड में स्थित स्वर्णक्षेत्र में कार्य।

१९४१ : क्लर्क्सडार्प स्वर्णक्षेत्र में अति नीची गहराई पर कार्य का आरम्भ।

१९४५ : फ्रीस्टेट स्वर्ण क्षेत्र की खोदाई का आरम्भ।

१९५६ : इवैण्डर-स्वर्णक्षेत्र की खोदाई का आरम्भ।

खनन प्रबन्ध : संसार में सभ्यता के आरम्भ में ही स्वर्ण से मनुष्य परिचित रहा। ऋग्वेद और यजुर्वेद और बाद के ब्राह्मण साहित्य में स्वर्ण और स्वर्ण से बने शतमानों और स्वर्णाभरणों का उल्लेख है। कहा जाता है कि ईसा से २७०० वर्ष पूर्व उर की रानी-शब-अद स्वर्णाभरण का प्रयोग करती थी और उसके साथ जो सोना दफनाया गया, वह आज ४६०० वर्ष बाद भी उतनी ही चमक का बना हुआ है। कहा जाता है कि विश्वव्यापी प्रयत्नों के बाद भी गत दस हजार वर्षों में जितना सोना पाया गया है, उसे इकट्ठा कर किया जाय, तो उससे कठिनाई से तेलवाला एक कार्गो जहाज भर पावेगा। इस स्वर्ण राशि में एक तिहाई सोना वह होगा, जो गत ८० वर्षों में दक्षिणी अफ्रीका से मिला है।

दक्षिण अफ्रीका की खानों में मनुष्य भूगर्भ में लगभग २-२.५ मील की गहराई तक पहुँच गया है। भूगर्भ में इससे अधिक नीचे मनुष्य कभी उतरा ही नहीं। आज अफ्रीका की इन खानों में ढाई लाख आदमी भूमि की गहराई में प्रतिदिन कार्य कर रहे हैं।

दक्षिण अफ्रीका में प्रतिवर्ष १००० टन सोना (२८ हजार मन) निकाला जाता है, और इतना सोना निकालने

के लिए आठ करोड़ (८०,०००,०००) टन शिला-खण्ड पीसना पड़ता है। इस २८ हजार मन सोना का आयतन १० फुट घन (१०×१०×१० घन फुट) होता है।

खनन-क्षेत्र लगभग क्षेत्रफल में ४ वर्ग मील है और इसकी ऊपर पृष्ठ भूमि पर इमारतें तैयार करने में १० लाख टन मिट्टी समतल की गयी है। यदि ६० वर्ष इन खानों में काम चलता रहा, तो इतने दिनों में इतना सोना यहाँ से निकाल लिया जायगा, जितना सोना समस्त पृथ्वी पर १७५०-१८५० तक के १०० वर्षों में भी नहीं निकला था। खानों में काम करने वाले जल पम्प जितना पानी प्रतिदिन पम्पन करेंगे, वह पानी १३ लाख की आबादी वाले जोहैन्सवर्ग की आवश्यकता से कहीं अधिक होगा। एक टन शिला अस्तर तोड़ने के लिए २½ (ढाई) टन हवा की आवश्यकता होती है। इस काम के लिए खानों में चलने वाले वातायन पंखे प्रति मिनट २,२००,००० घन फुट हवा संचालित करते हैं। ऊर्जा प्रदान करने वाले यंत्रों में २१८,००० अश्व शक्ति है। खानों के भीतर ५०० लोकोमोटिव (स्वचालित वाहन) काम करते हैं।

खनन क्षेत्र : दक्षिण अफ्रीका में सोने की ५० के लगभग बड़ी खानें हैं जिनसे प्रतिवर्ष ३०,०००,००० औन्स सोना तैयार होता है (लगभग १००० टन) अर्थात् पश्चिमी दुनियाँ में जितनी सोने की खपत है उसका तीन-चौथाई भाग, और संसार भर में जितना सोना प्राप्त होता है उसका ६६ प्रतिशत; समस्त संयुक्तराष्ट्र अमरीका में प्रतिवर्ष जितना सोना प्राप्त होता है, उससे कहीं अधिक सोना तो कुछ अकेली कम्पनियाँ साल भर में निकाल लेती हैं। विटवार्टसरैण्ड के खनन-संघ द्वारा एक वर्ष में जितना सोना निकलने लगा है, उतना सोना १९०० ई० से पूर्व किसी शती में भी समस्त संसार में नहीं निकाला गया था।

ट्रांसवाल में इतना सोना आया कहाँ से इसकी मीमांसा अनेक भूगर्भ शास्त्रविदों ने की है। यहाँ के सोने की कहानी २,५००,०००,००० (ढाई अरब) वर्षों का इतिहास है। विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि जब यह धरती बच्चा थी उस समय इसके महाद्वीप अपने स्थायी स्थलों पर नहीं आ पाये थे, उस समय प्रकृति की विशाल शक्तियाँ इस धरती पर आक्रमण कर रही थीं—वायु का दाब, ताप, और तूफानी प्रभंजन उथल-पुथल मचा रहे थे। उस समय सोने के पर्वतों का सोना ग्लेशियरों (हिमनदों) और नदियों में वह कर एक विशाल आन्तरिक-सागर (इनलैन्ड सी) में पहुँच गया। यह सागर बाद को चट्टानों से पट गया। यह आन्तरिक सागर ही वह स्थल है जो ट्रांसवाल के नीचे दबा हुआ है, और जिसके ऊपर ट्रांसवाल का हरितक्षेत्र बसा हुआ है।

इस आन्तरिक समुद्र में वह वह कर संसार के पर्वतों से सोना आने लगा, और इस समुद्र के किनारे के कंकड़-पत्थरों के बीच में जमा होने लगा। यह समुद्र कैस्पियन सागर के आकार का रहा होगा। लाखों वर्षों के बाद जब जलवायु में परिवर्तन हुआ तो यह समुद्र ऊपर से पट गया। भीतर का पानी सूख गया, और भूमि का सोना पृथ्वी के भीतर दब गया, पृथ्वी तबसे हिरण्यगर्भा बन गयी। आज इस प्रकार यह सोना ऊपरी धरातल से २५००० फुट की गहराई पर दबा पड़ा है। कोई एक जगह नहीं बल्कि लगभग ६ इंच मोटी धारी के भीतर जो आन्तरिक समुद्र का तट था।

ट्रान्सवाल-सोने का अयस्क कोई आम श्रेणी का तो नहीं है, और संसार की अन्य खानों की अपेक्षा इससे सोना प्राप्त करना कठिन भी है। (अच्छी श्रेणी के अयस्क कैलिफोर्निया (दक्षिण अमरीका), यूकोन (आस्ट्रेलिया) में और पूर्वी ट्रांसवाल के बारबर्टन में हैं। किन्तु यहाँ के अयस्कों की खानें बड़ी विशाल हैं, और इनमें सोने का होना सन्देहजनक नहीं है, इसलिए दक्षिण अफ्रीका की खानों की विशेषता है।

विटवार्टसरैण्ड नद क्षेत्र में सात खानें बहुत बड़ी और महत्व की हैं। (१) ईस्ट रैण्ड, (२) सेण्ट्रल रैण्ड, (३) वेस्ट रैण्ड (ये तो गोल समुद्र का उत्तरी किनारा हैं) (४) दूरस्थ वेस्ट रैण्ड, (५ क्लेर्क्सडार्प गोल्ड-फील्ड, (६) आरेंज फ्रीस्टेट, और (७) इवैण्डर। जैसे सोने की लंका

थी, या कुबेर पुरी थी, उसी तरह से इन सात क्षेत्रों के कारण दक्षिण अफ्रीका स्वर्ण भूमि या संसार का सबसे धनवान स्थल बन गया।

६ जून १८८६ ई० की बात है। उस समय दक्षिण अफ्रीका प्रजातंत्र का अध्यक्ष स्टीफेनस जारेनस पाल-क्रूगर था। इसे एक कृषक हैरिसन से पत्र मिला, जिसमें सोने की खोज की बात घोषित की थी। बड़ी विनम्रता से उसमें ये शब्द थे 'आई थिंक, आई हैव फाउन्ड ए पैबुल गोल्ड' मैं समझता हूँ, मैंने सम्पत्ति प्रदायक स्वर्णक्षेत्र का पता लगा दिया है।" प्रेसिडेण्ट के आदेश से दो कमिश्नर (सी० जोहेनेस यूर्वर्ट और जोहेन रिसिक) नक्शा तैयार करने के लिए नियुक्त किए गए। तबसे उस धरती के भाग्य खुले जो आज जोहेन्सबर्ग के नाम से संसार में विख्यात है।

जोहेन्सबर्ग जलमार्ग से बहुत दूर है—पास में न तो नदी है और न समुद्र। बहुत दिनों तक सोने की खोदाई का काम ७५ मील लम्बे एक कटि क्षेत्र में होता रहा जिसे "रीफ" (दी रीफ) कहते थे। इसमें तीन स्वर्ण क्षेत्र थे—सेन्ट्रल रैण्ड (मध्य रैण्ड), वेस्ट रैण्ड (पश्चिमी रैण्ड) और ईस्ट रैण्ड (पूर्वी रैण्ड)। इन क्षेत्रों में अनेक नगर धीरे-धीरे बस गए-जैसे जोहेन्सबर्ग, जर्मिस्टन, रुडेपोर्ट क्रूगर्सडार्प रैण्डफाण्टाइन, वाक्सबुर्ग ब्रैकपैन, बिनोनी, स्प्रिंग्स और निगेल। मुझे इन अनेक नगरों में जाने का अवसर मिला। दूरस्थ पश्चिमी रैण्ड स्वर्णक्षेत्र की खोज बाद को हुई। इसकी खानों में पानी निकला, जिससे काम में बाधा पड़ी। चुम्बकत्वमापी यंत्रों द्वारा इस क्षेत्र का विस्तार में अध्ययन डा० एडोल्फ क्राहमान ने किया। अति प्राचीन लावा के नीचे दबे हुए स्वर्ण प्रस्तरों का जब पता चला तो इस रीफ का नाम वेण्टर्सडार्प काण्टेक्ट रीफ पड़ा। कुछ समय बाद एल्सबर्ग रीफ और कार्बन लीडर से भी परिचय हुआ।

अनेक स्थलों पर स्वर्ण क्षेत्र डोलोमाइट के आवरण से संरक्षित है। इस डोलोमाइट क्षेत्र के भीतर लाखों टन पानी, कीचड़ और मिट्टी है। इंजीनियरों ने क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए द्रव सीमेण्ट का बड़ी मात्रा में प्रयोग किया (सीमेन्टन प्रक्रम), जो पानी को सोख ले। कहीं कहीं पानी के स्रोतों को बाँधा, पानी को पीछे हटाया। कुछ दिनों पहले वेस्ट ड्राइफ़ोण्टाइन को प्रतिदिन ३६,००० ००० गैलन पानी खान से बाहर उलीचना पड़ता था। इस सब काम के लिए अतुल धनराशि व्यय की गयी है। दूरस्थ वेस्टरैण्ड को ९००,०००,००० रैण्ड (९०, करोड़ दक्षिणी अफ्रीका सिक्का=९ अरब रुपया) इस व्यवस्था के लिए खर्च करना पड़ा है।

दूरस्थ वेस्ट रैण्ड के प्रयास से प्रोत्साहित होकर एक और स्वर्णक्षेत्र का पता चला, जो क्लेर्क्सडार्प के निकट है, और जहाँ यूरेनियम भी मिलता है। इन खानों में से वफेल्सफौण्टाइन, हार्टेबीस्ट फौण्टाइन, वालरीफ्स आदि भी प्रसिद्ध है।

आरेंज फ्रीस्टेट की खानों का पता १६ अप्रैल १९४६ को अकस्मात चला। पातालफोड़ यंत्र पर काम करने वाले एक मिस्तरी हेविटसन को गेडुल्ड क्षेत्र में काम करते पृथ्वी के भीतर ५ फर्लांग नीचे पर शिला का एक विस्तृत क्रोड-खंड मिला, जिसमें थोड़ा सा सोना था। इस क्रोड खंड में २३०३७ इंच पेनीवेट की मात्रा सोने की थी। इंच पेनी वेट इकाई में शिला खंड को आँका जाता है।

इंच पेनीवेट इंच = रीफ की चौड़ाई × प्रतिटन सोने की मात्रा (पेनीवेट में)। गेडुल्ड शब्द का अर्थ "धैर्य" है, और बड़ा धैर्य रखने पर इस खान में से सोना निकल सका।

नवीनतम खानों में से प्रमुख तो इवैण्डर है। सोमवार १ जनवरी को १९५६ को खोदाई का कार्य खुले मैदान में एक स्थान किनरॉस पर आरम्भ हुआ। बृहस्पतिवार को वहाँ दो मकान बन गए, और शुक्रवार तक सारा नगर बसाया जाने लगा। कार्य तत्परता का यह ज्वलन्त उदाहरण है। आज यह स्वर्णक्षेत्र १० × ५ वर्ग मील में फैला हुआ है और २५,००० व्यक्ति यहाँ काम करते हैं।

इस प्रकार दक्षिणी अफ्रीका के सात स्वर्ण क्षेत्र ३०० मील लम्बे चाप पर स्थित हैं। यह स्पष्ट है कि जितने

श्वेत वर्ण यूरोपीय इस क्षेत्र में बसे हुए हैं, उतने अन्यत्र नहीं। यह सब श्वेत वर्णों की एकमात्र सम्पत्ति है।

सोने का परिष्करण : जिस रीफ में से सोना निकालना होता है उसकी मोटाई ३ फुट से ८ फुट तक (औसत ३½ फुट) होती है। कर्मचारी मजदूर इस रीफ की जाँच करते हैं, और जब उन्हें निश्चय हो जाता है कि रीफ स्थायी है, और जान का खतरा नहीं है, तब वे इसमें ३-३½ फुट गहरे छेद करते हैं। इन छेदों में विस्फोटक भर दिए जाते हैं। विस्फोटकों की सहायता से चट्टान चूर चूर कर दी जाती है, और यह चूरा खान से बाहर निकाला जाता है।

साधारण यांत्रिक परिष्करण के बाद इसे गलाया जाता है। इस प्रकार जो कच्चा सोना या बुलियन मिलता उसका रंग सुनहरा हरा होता है। यह ईंटों में ढाला जाता है, और प्रत्येक ईंट १००० औंस की होती है। इसमें ८८ प्रतिशत सोना, ९ प्रतिशत चाँदी और ३ प्रतिशत जस्ता, लोहा, ताँबा (कभी कभी कुछ प्लैटिनम भी) होता है। सारे अफ्रीका में तैयार किया बुलियन एक केन्द्रीय परिष्करण शाला में भेज दिया जाता है जिसे 'रेंण्ड रिफाइनरी' कहते हैं, और जो जर्मिस्टन में है। यहीं सोने का परिष्करण होता है, और मुद्रा वाला सोना तैयार होता है।

इस रैण्ड रिफाइनरी में शतप्रतिशत शुद्ध सोना तैयार नहीं करते। केवल ९९९० भाग / १०,००० भाग शुद्धता का करते हैं। बाजारों में ९९.५ प्रतिशत सोने की माँग अधिक है, जिसमें ०.५ प्रतिशत चाँदी भी हो। चाँदी होने से कभी कभी सोने के लक्षणों में कोई विशेष अन्तर नहीं आता। कभी कभीं कुछ अन्य धातुओं की विद्यमानता पर भी आपत्ति नहीं की जाती, यदि वे अत्यल्प माना में हों।

आभरण बनाने वाले व्यवसायी तो कैरटों में सोने के मूल्य को आँकते हैं। १८ कैरट सोने का अभिप्राय उस सोने से है जिसमें १८/२४ भाग शुद्ध सोना हो। २२ कैरट सोना तो आभरणों के लिए बहुत अच्छा माना जाता है।

जर्मिस्टन परिष्करण शाला के द्वार पर प्रतिदिन १२१,००० सूक्ष्म औंस सोना आता है। यहां से प्रतिदिन सोने के ३०० बार (दण्ड) और १२,५०० सूक्ष्म औंस चाँदी निर्यात होती है।

सोने के अन्तिम परिष्करण का कार्य प्रसिद्ध सायनाइड विधि से सम्पादित होता है। इस परिष्करण से पूर्व पारद के साथ उनका संरस (अमलगम) तैयार करते हैं।

स्वर्ण खनन संबंधी कम्पनियाँ :

दक्षिणी अफ्रीका में इस समय स्वर्ण-खनन के कार्य में सहयोग देने वाली प्रमुख सात कम्पनियाँ निम्न हैं—

१—एंग्लो एमेरिकन कारपोरेशन आव् साउथ एफ्रीका, लिमिटेड।
२—एंग्लो ट्रांसवाल कानसालिडेटेड इनवेस्टमेन्ट कम्पनी, लिमिटेड।
३—जनरल माइनिंग एण्ड फिनान्स कारपोरेशन, लिमिटेड।
४—गोल्डीफील्ड्स आव् साउथ एफ्रीका, लिमिटेड़
५—जोहेनेसबर्ग कानसालिडेटेड इन्वेस्टमेन्ट कम्पनी, लिमिटेड़।
६—रैंडमाइन्स, लिमिटेड।
७—यूनियन कारपोरेशन, लिमिटेड।

खनन संबंधी व्यय का अनुमान :

ऐसे खान पर जो प्रति मास १८०,००० टन अयस्क का खनन और उपयोग करती हो, अनुमानिक व्यय ६०,००००००, रैंड है। एक रैंड हमारे दस रुपये के मूल्य का है (आधापौण्ड)। यह व्यय लगभग इस प्रकार है—

खोदाई के कार्य में	रैण्ड	२५,०००,०००
रिडक्शन प्लांट (चूर्ण तैयार करने पर)		९,०००,०००
जमीन के भीतर की विकास आयोजना		७,०००,०००
कम्प्रेस्ड एयर (संपीडितावायु)		१,७५०,०००
बिजली		२,५००,०००
वेण्टिलेशन (स्वच्छ हवाप्रवाह)		७५०,०००
में पानी पम्प करने		१,०००,०००
अन्य फुटकर भूगर्भ संयंत्रों पर		२,०००,०००
ऊपर की इमारतें		१,७५०,०००
यातायात साधन		१५०,०००
कर्मचारियों के मकानों और उनकी सुविधाओं पर		८,५००,०००
सामान्य व्यय		५००,०००
	योग	६०, ०००, ०००

पारद के अष्टादश संस्कार एवं स्वर्ण निर्माण की विधियाँ

● डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

पारे के द्वारा देह एवं लौह शुद्धि के लक्ष्यों के निमित्त मुख्यतः जिन अठारह संस्कारों के नाम बताये जाते हैं उनकी परिभाषाओं को, उनके महत्व को, एवं संस्कारों को, प्रायोगिक रूप से करने की विधियों को थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ विविध रूप में भारतीय रसशास्त्र के ग्रन्थों में वर्णित किया है। वर्णन की शैली साहित्यिक, आलंकारिक एवं मनोरंजक है तथा एक ही शब्द के लिये विभिन्न पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे अभ्रक लिये गगन, भेक आदि शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। वस्तुओं के परिमाणों के वर्णन में तथा तपाने के ताप, समय आदि के संबंध में आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार विवरण प्राप्त नहीं हैं। अतः ग्रन्थों के आधार पर श्लोकों के शुद्ध एवं वास्तविक अर्थ लगाकर कार्य प्रारम्भ कर सकना या मात्र पढ़ पढ़ कर प्रयोगशाला में कार्य करने से सफलता प्राप्त करना प्रायः दुरूह पाया गया है। गुरु परम्परा द्वारा प्रायोगिक ज्ञान की प्राप्ति ही अद्यावधि एक सुगम एवं निरापद पथ माना गया है अतः प्रस्तुत लेख में अठारह संस्कारों की परिभाषाओं एवं उनकी क्रियाविधियों का संकेतकारक विहंगावलोकन मात्र किया जा रहा है। विस्तृत जानकारी के इच्छुक पाठकगण निष्णात आचार्यों एवं प्रयोग करने वाले विद्वानों से सम्पर्क कर सकते हैं तथा सिद्ध नागार्जुन, भिक्षु गोविंद, नित्यनाथ सिद्ध ढुण्ढुकनाथ, यशोधर, कायस्थ चामुण्ड, गोपालकृष्ण भट्ट, गोविन्दाचार्य, तीसट, प्राणनाथ आदि प्रमुख रसविद्या विशारद आचार्यों के विरचित निम्नलिखित प्रमुख ग्रन्थ देख सकते हैं—रस रत्नाकर, रस रत्न समुच्चय, रस हृदय तन्त्र, पारद संहिता, रसार्णव, रसेन्द्र चिन्तामणि, रस संकेत कलिका, रसेन्द्र सार संग्रह इत्यादि।

जैसा कि कहा जा चुका है पारद की चैतन्यमयता एवं मानवीकरण संबंधी कल्पना की गई है। अतः पारद के अन्तर्निहित दोषों को हटाने के लिये जो सर्वप्रथम कार्य किया जाता है वह है स्वेदन अर्थात् पसीना लाना। अतः पारद का प्रथम संस्कार है स्वेदन।

(१) **स्वेदन** : इस संस्कार के लिये पारद को पोटली बनाकर दोला यंत्र में क्षार एवं अम्लौषधियों के साथ पकाना पड़ता है। इस क्रिया से पारद के दोष ढीले होकर छूटने योग्य हो जाते हैं।

(२) **मर्दन** : मर्दन अर्थात् रगड़ना। विहित औषधियों के साथ एवं रसों के साथ स्वेदित पारद को घोटा जाता है तो वह लुगदी या कल्क जैसी वस्तु का रूप ले लेता है।

(३) **मूर्च्छन** : इस अवस्था में पारद को मूर्च्छित या बेहोश कहा जाता है। यह हुआ मूर्च्छन संस्कार।

(४) **उत्थापन** : बेहोश या मूर्च्छित पारे को डमरू यंत्र में ताप द्वारा उड़ाकर पुनः क्रियाशील अवस्था में लाना, उत्थापन संस्कार कहलाता है।

(५) **पातन** : पातन (सब्लिमेशन) अर्थात् गिराना। उपर्युक्त संस्कारों के दौरान भी जो दोष न निकल सकें उन्हें हटाने के लिये पारे में विभिन्न पदार्थ मिलाकर उसका तीन तरह से उर्ध्व, अधः एवं तिर्यक पातन संस्कार करते हैं। इस हेतु उत्थापित पारद को उपर्युक्त पातन यंत्रों में ताप देकर, उड़ाकर एकत्र कर लेते हैं।

(६) **रोधन या बोधन** : उपर्युक्त संस्कारों में कष्ट सहते सहते पारा मरणप्राय या नपुंसक सा हो जाता

है। उसे पुनः शक्तिशाली एवं जागृत करने के लिये यह संस्कार किया जाता है। इस हेतु पारे को तीन दिन तक घड़े में सेंधव नमक के जल में रखा जाता है।

(७) नियमन : बोधित या शोधित पारा अत्यधिक चंचल (मोबाइल) एवं अनियंत्रित हो जाता है। उसे अपने नियंत्रण में लाने के लिये ताकि अगले संस्कार स्वेच्छा एवं सफलतापूर्वक किये जा सकें यह संस्कार किया जा सकता है। इस हेतु पारद का स्वेदन नागरमोथा, इमली मांगरा, धतूरा, आदि औषधियों के स्वरसों में किया जाता है।

(८) दीपन : नियमित पारा, अगले संस्कारों में भूखा बनकर धातुओं एवं पदार्थों के समुचित भक्षण के योग्य हो सके एवं औषधोपयोग में शुद्ध एवं साथ ही शक्तिशाली रूप में लाया जा सके इसलिये दीपन संस्कार किया जाता है। इस हेतु नियमित पारद को पंच लवण, काली मिर्ची आदि के चूर्ण एवं कांजी मिलाकर दोला यंत्र में अनवरत रूप से तीन दिन तक स्वेदित किया जाता है।

दीपन के पश्चात् अनुवासन किया जाता है। जो किन्हीं ग्रन्थों के मत से संभाव्य बीस या उन्नीस संस्कारों में नवां संस्कार है। इसे दीपन का अनुसंस्कार कहा जा सकता है। पारद की भूख और अधिक प्रदीप्त करने के लिये दीपनोपरांत प्राप्त पारे को जंभीरी निम्बू के रस में सूर्य की तीक्ष्ण धूप में मिट्टी या पत्थर के बर्तन में रखने से दीप्त पारद अनुवासित हो जाता है।

पारद के उपर्युक्त आठ संस्कार आयुर्वेद में अनिवार्य माने गये हैं। अष्टम संस्कार तक आते आते पारद की सात केंचुलियाँ (दोष) तथा अन्य दोष छूट जाते हैं एवं लोह शुद्धि के उपयोग की वास्तविकता प्राप्त कर लेता है।

पारद के अग्रिम संस्कार इस प्रकार हैं–

(९) गगन ग्रास या अभ्रक भक्षण : टंकण एवं कृष्णाभ्रक आदि को दिये हुए प्रमाण में लेकर मूषा में तीव्रता से तप्त करने पर अभ्रक सत्व प्राप्त होता है एवं अष्ट संस्कृत पारे का क्रमशः चौसठवां, बत्तीसवां, सोलहवां, एवं आठवां हिस्सा अभ्रक सत्व एवं प्रत्येक बार सोलहवां हिस्सा बिड लेकर कच्छप यंत्र में तपाने पर पारा अभ्रक सत्व खा लेता है। इस भक्षण संस्कार से पारे की भूख एवं पाचन शक्ति बढ़ जाती है। यहां बिड पर भी संक्षिप्त टिप्पणी उचित होगी।

बिड : बिड की तुलना आदमी के उपयोगी पाचक चूर्णों एवं चटनियों से की जा सकती है। बिड प्राप्त होता है दी हुई जड़ी-बूटियों को जलाकर, भस्म कर, उनके क्षारीय भस्मों को गौमूत्र में डाल कर एवं सुखा कर। भिन्न भिन्न प्रयोगों के लिए भिन्न भिन्न बिड होते हैं, जैसे कि वड़वानल, ज्वालामुख, हंसपाक आदि। अगले प्रायः सभी संस्कारों में बिड का प्रयोग किया जाता है।

(१०) चारण : चारण अर्थात् चबाना, खिलाना। इसके अन्तर्गत पारे को कई पदार्थ चराये जाते हैं जिसमें वह अग्रिम गर्भद्रुति आदि की पात्रता प्राप्त कर सके। अभ्रक, स्वर्ण आदि का पारद में अन्तर्भूत हो जाना ही चारण है। इस कार्य के लिये अभ्रक सत्व ताप्य सत्व, पारे आदि को बराबर मात्रा में लेकर तप्त खल्व लकड़ी में कत्थे की की आग में मर्दित करते हैं और तपाते हैं।

(११) गर्भद्रुति : अग्नि के बिना ही पारद द्वारा ग्रास की गई धातुओं का पारद के गर्भ में घुलकर द्रव (द्रुति) बन जाना ही गर्भ द्रुति है। सुवर्णमाक्षिक सत्व एवं अभ्रक तत्व तथा पारा बराबर लेकर तत्व में घोटने से गर्भद्रावी पारद निर्मित हो जाता है।

(१२) बाह्य द्रुति : मूषा के भीतर अभ्रक आदि को वज्र वल्ली के रस और सांवर्चल आदि औषधियों के साथ बाहर ही पृथकतः पिघला कर पारे में अग्रिम संस्कार जारण के लिये मिलावें तो यह क्रिया बाह्य द्रुति कहलावेगी। गर्भद्रुत पारद में ही बाह्यद्रुति संभव है।

(१३) जारण : जारण अर्थात् बाह्यद्रुति द्वारा मिलाने -गर्भ स्वर्ण, अभ्रक सत्व आदि पदार्थों का पारे में जलाने की सीमा तक पकाना। जारण के संबंध में परिभाषा दी गई है 'जारण हि नाम गालन पातन व्यतिरेकेण धन हेमादि ग्रास पूर्वक पूर्वावस्था प्रतिपन्नत्वम्' (रसेन्द्र सार

संग्रह) । इस संस्कार के अन्तर्गत विविध प्रकार की वस्तुओं के जारण होते हैं जैसे गंधक, अभ्रक, नाग, वंग, स्वर्ण, रौप्य आदि के। पारे से छह, आठ, बारह, सौ आदि गुना गंधक लेकर कच्छप यंत्र में तपाने से षड्गुण, अष्टगुण शतगुण जारित पारद प्राप्त होता है। षड्गुण गंधक जारित पारद एक न्यूनतम आवश्यकता बतलायी गयी क्योंकि इसके बिना देह एवं लौह शुद्धि की अग्नि क्रियाएं असंभव हैं। विभिन्न धातुओं के जारण के विभिन्न प्रकार बतलाये गये हैं। धातुओं के जारण के लिये उनके बीज लिये जाते हैं जैसा कि स्वर्ण बीज, रौप्य बीज आदि। धातु बीजों के निर्माण की भी विशिष्ट विधियाँ होती हैं। जारण के कई भेद हैं जैसे धन सत्व, समुख, निर्मुख, वासना मुख, वाल, वृद्ध आदि। इन जारणाओं के विभिन्न परिणाम होते हैं।

(१४) रंजन : रंजन अर्थात् रँगना। इस संस्कार में पारे को तरह तरह का रंग दिया जाता है एवं उसमें अन्य वस्तुओं को रंग देने की शक्ति उत्पन्न की जाती है ताकि इच्छित वर्णन की इच्छित धातु प्राप्त हो सके। रंजन संस्कार के लिये सिद्ध किये हुए स्वर्ण एवं रौप्य आदि बीजों को विविध धातुओं एवं रक्त वर्ण वाली जड़ी बूटियों के रसों (रंजन तेल) के साथ अन्य मूषा में रखकर तपाते हैं एवं एकरस कर देते हैं। इससे पारे में हरे, पीले आदि रंग उत्पन्न हो जाते हैं। यह हुआ रंजन संस्कार।

(१) सारण : पारद में सरक सरक कर दी हुई धातु में अन्दर तक प्रवेश करने की शक्ति उत्पन्न करना सारण कहलाता है। द्वन्द्व मेलापक करने वाली औषधियों की उपस्थिति में मालकांगनी, करंज आदि द्रव्यों का सारण तैल तैयार किया जाता है। इस सारण तेल एवं धातुओं (रांगा, सीसा आदि) को कई तरह की चर्बियों एव रंजित पारद के साथ काफी लम्बे समय तक तपाया जाता है। इस क्रिया से पारद में अगले संस्कार क्रामण की उद्भावना प्रारंभ हो जाती है।

(१६) क्रामण : यह संस्कार सारित पारद में वह गुण उत्पन्न करता है जिससे वह हल्की धातुओं के कण-कण में प्रविष्ट होकर (क्रामण कर) उन्हें सोने से परिवर्तित होने के योग्य बना दे। हिंगुल मारित तीक्ष्ण लोह या स्वर्ण माक्षिक मारित ताम्र लौह को आक के दूध या काँजी आदि भावना द्रव्यों के साथ तथा इन्द्रगोप, रक्त कान्तक आदि के कल्क के साथ सारित पारद को अन्धमूषा में तपाने से क्रामण सम्पन्न होता है। मैनसिल से मारा हुआ सीसा तथा शुद्ध हरिताल से मारा हुआ रांगा ये दोनों क्रमशः सुवर्ण एवं चाँदी बनाने में क्रामणक का कार्य करते हैं। कहा भी है "शिलया निहितो नागो, वर्ग वा तालकेन शुद्धेन। क्रमशः पीते शुक्ले, क्रामणम् एतत् समुद्दिष्टं"।

(१७) वेध : वेध अर्थात् बींधना। क्रामण संस्कृत पारे की सहायता से हलकी धातुओं को अच्छी तरह बींध कर सोने में बदलने से संबंधित एवं प्रस्तुत लेखमाला के शीर्षक से सीधा संबंध रखने वाला यह संस्कार है। पाठकों के कौतुक एवं मनोरंजन की दृष्टि से हम इस पर किंचित विस्तार से विचार करेंगे।

क्रामण संस्कृत पारद वेध करने योग्य हो जाये इस लिये उसे कई तेलों के मिश्रण में घंटों मर्दन करना पड़ता है। धरणीधर संहिता में कहा गया है, "अथ वेध विधान हि कथयामि सुविस्तरम्।...धूर्त तैल महेः तैलम् कंगुणी तैलमेव व।...यामैकं मर्दिमं सम्यक् पारदो वेध कृत् भवेत्॥ "अर्थात् धतूरा, खस, कांगनी, जलमांगरे के बीज, सींगिया जत्त कन्हेर, कन्हेर की जड़, समुद्र शोष के तैल एवं अन्य क्रामण तैलों का मिश्रण लेकर क्रामण संस्कारित पारद के साथ एक प्रहर तक मर्दित करने से वेध संस्कार सम्पन्न होता है। दी हुई विधियों से क्रिया करने पर शत, सहस्त्र, लक्ष एवं अयुत वेधी तक पारद तैयार किया जा सकता है, अर्थात् अपने से सौ, हजार, लाख, अरब आदि गुनी तांबां, लोहा आदि धातुओं को वेधक पारा सोने में बदल सकता है।

वेधन कर्म पाँच प्रकार का बतलाया गया है। लेप वेध, क्षेप वेध, कुन्त वेध, धूम वेध और शब्द वेध। इन क्रमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

लेप वेध : यह अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली पारे से सम्पन्न होता है। धातु का बाह्य स्तर ही स्वर्ण बनता है। तांबे, लोहे के महीन वरकों पर इस पारे का लेप कर अन्धमूषा में तपाने से वे स्वर्ण में बदल जाते हैं।

क्षेप वध : क्षेप अर्थात् फेंकना। पिघले हुए चांदी, तावे आदि में क्षेप वेधक पारा डालकर उन्हें स्वर्ण बना देना है क्षेप वेध।

कुन्त वेध : सीसा, चांदी या तांबा अलग पात्र में एवं कुन्तवेधी पारा अलग पात्र म पिघला कर दोनों द्रवों को मिलाने पर यदि स्वर्ण बने तो यह क्रिया हुई कुन्तवेध।

धूम वेध : जिस पारे को गर्म करने से उसकी वाष्प या धुंए के स्पर्श मात्र से लोहा, चांदी आदि स्वर्ण बन जावे तो वह पारा हुआ धूमवेधक एवं क्रिया हुई धूमवेध।

शब्द वेध : शब्द वेध समर्थ पारद की गोली मुँह में रखकर फुंकनी से तप्त लोहे या सीसे आदि को फूंक मारने मात्र से यदि सोना बन जाये तो यह क्रिया हुई शब्द वेध।

अब हम कुछ विधियों का पर्यवेक्षण करेंगे जोकि तांबा, चांदी, लोहा आदि धातुओं को सोने में परिवर्तित करने के लिये प्राचीन रस ग्रन्थों में दी गई हैं।

पत्र लेप विधि : शुद्ध चांदी एवं तांबे के महीन पत्र लेकर उन्हें कई बार अम्लवर्गीय औषधियों में भावित करे एवं क्रामण संस्कारोक्त औषधियों से लेपन कर तदनन्तर सुवर्णादि बीजरहित ग्रास जीर्ण पारे से लेपन करे एवं पुट देवे। इससे वर्क के ऊपरी हिस्से स्वर्ण हो जावेंगे।

तांबे से सोना बनाना : सम भाग सुवर्ण बीज ग्रास पारे को यदि अपने से सौगुने पिघले तांबे में मिलाया जाय तो वह तांबे को सोने में बदल देता है। एक अन्य विधि के अनुसार यदि चार तोले पारे में तीन तोला सुवर्ण बीज युक्त तांबा मिला दिया जाय एवं इन दोनों के मिश्रण में सौ गुना अधिक साधारण पिघला तांबा मिलाया जाय तो समूचा मिश्रण स्वर्ण में परिवर्तित हो जायेगा।

इसी तरह से लोहा, सीसा, चांदी, मिश्र धातुओं आदि को स्वर्ण में परिवर्तित करने की विधियों के भी विवरण प्राप्त होते हैं। इन सबके संबंध में संक्षिप्त विवेचन हम इस लेखमाला के अग्रिम पुष्प में करेंगे एवं आधुनिकतम वैज्ञानिक विकास के प्रकाश में इस समीक्षा का प्रयास करेंगे कि पारे एवं सोने में रासायनिक दृष्टि से क्या संबन्ध है एवं उनका पारस्परिक परिवर्तन भौतिक विधियों से किस प्रकार संभव है? विशुद्ध रासायनिक विधियों से स्वयं पारे को सोने में बदलना या पारे की सहायता ले हलकी धातुओं को सोने में बदलना संभव है या नहीं?

● ●

कितना महँगा

डाक्टरों का कहना है कि चुम्बन से न केवल संसर्ग रोग फैलने की आशंका है वरन् प्रत्येक चुम्बन से २० सेकंड आयु कम होती है और हृदय की कम्पन गति दूनी हो जाने से रक्त चाप बढ़ता है जिससे कालान्तर में बीमारी हो सकती है। किन्तु क्या इससे स्त्री-पुरुषों के बीच चुम्बन में कमी आ सकेगी?

लुप्तप्राय जन्तु–गेण्डा

● रामेश वेदी

पारिवरिक जीवन : पालतू ढोरों तथा वन्य मृगों से गेण्डे का दाम्पत्य जीवन भिन्न होता है। उनके समान इसमें बहुपत्नी-प्रथा नहीं देखी जाती। नर गेण्डे के हरम में एक ही पत्नी होती है।

संवेशन के समय कामासक्त गेण्डे अपनी प्रेयसी के नितम्बों तथा उसकी सींग की नोक को स्पर्श करने में सुख मानते हैं। जंगल में संवेशन के चार उदाहरण, फरवरी के अन्त से अप्रैल के अन्त तक, देखे गए हैं। चार साल में एक बार गर्भधारण किया जाता है। सत्रह-अठारह महीने तक बच्चा मां के गर्भ में रहता है। कुछ प्राणिशास्त्रियों ने यह अवधि उन्नीस महीने लिखी है परन्तु नेपालियों का विश्वास है कि गर्भधारण करने की कुल अवधि सामान्यतया एक साल होती है। मादा गेण्डा साल के किसी भी समय बच्चे को जन्म दे देती है। एक व्यांत में एक ही बच्चा पैदा होता है। जन्म के समय शिशु गेण्डे का भार लगभग १६० किलोग्राम होता है। एक बार पेट चीर कर गर्भाशय में से बच्चा निकाला गया था जिसके सब अंग बन चुके थे। इसका भार ५४ किलोग्राम था और लम्बाई १२४ सेन्टी-मीटर (चार फीट एक इंच) थी।

माँ बड़ी सावधानी से शिशु की रक्षा करती है। उसे अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देती। घास चरते हुए वह माँ के आगे-आगे रहता है। यही बात अफ्रीकी सफेद गेण्डे में देखी जाती है जो भारतीय गेण्डे के समान ही घास चरने वाला है। ये दोनों जातियाँ घनी और ऊँची घास वाले जंगलों में रहती हैं जहाँ अफ्रीका में तो बब्बर शेर से और भारत में बाघ से बचाने के लिए शिशु को आगे रखने की आदत पड़ गई है। शेर छोटे बच्चे को ही मार सकता है, पूरे गेण्डे को मारना उसके बस में नहीं है। दूसरी ओर कोंपलों को कुतर कर खाने वाले गेण्डों की जातियों में बच्चों को आगे रखने की सावधानी बरतना आवश्यक नहीं होता क्योंकि ये ऐसे जंगलों में रहते हैं जहाँ वृक्ष और घासें घनी नहीं होतीं, छितरी और छोटी झाड़ियों में चरता हुआ गेण्डा दूर से ही खतरे को पहचान जाता है। अफ्रीकी काले गेण्डे के शिशु अपने माँ-बाप के पीछे चलते हैं। काफी बड़ा हो जाने तक बच्चे को माँ-बाप का संरक्षण मिलता रहता है। इसका एक कारण यह है कि चार साल तक तो वह माँ का दूध पीता है।

बन्दी जीवन में सन्तति : पशुवाटिकाओं में जब इनकी ठीक तरह सार-सम्हाल की जाती है तो वहाँ इनकी सन्तति भी बढ़ती रहती है। बन्दी-जीवन में गेण्डे के प्रसव के उदाहरण मिल जाते हैं। काजीरंगा संश्रय (संक्चुरी) से पकड़ी हुई एक मादा गेण्डा १९६१ के मध्य जून में कलकत्ता से जापान भेजी जाने वाली थी। अलीपुर पशुवाटिका में कठघरे के अन्दर ही उसने एक बच्चे को जन्म दिया। अब प्रश्न यह उठा कि क्या बच्चे को भी माँ के साथ ही जापान भेज दिया जाय? बच्चे की यात्रा का किराया तथा यात्रा में उस कोमल शिशु के कष्टों का

और ऐसी ही अनेक बातों का विचार करते हुए उसे माँ से अलग कर अलीपुर पशु-वाटिका में ही रखने का निश्चय किया गया। एक मास की आयु के भोले-भाले बच्चे के वियोग में ही उसकी माँ रानी को विदेश यात्रा के लिए अकेला रवाना होना पड़ा।

गेण्डे का जीवन-काल लगभग साठ बरस है। अनुमान है कि बन्दी-जीवन में इनकी आयु कुछ बढ जाती है। पुराने विश्वासों में पशु-जगत् में सबसे अधिक उम्र एक-शृंगी गेण्डे की कही जाती है। पहले जमाने के लोगों की मान्यताओं के अनुसार यह कम से कम दो हजार साल तक जिन्दा रहता है।

रोग : काजीरंगा वन जन्तु विहार में गेण्डों को अपने प्राकृतिक जीवन में भी रोगों से आक्रांत होते पाया गया है। पशु-जगत् रोगों के फूट पड़ने से संश्रय को सैकड़ों दुर्लभ गेण्डों से वंचित हो जाना पड़ता है। वन्य जीवन की रक्षा के उद्देश्य से स्थापित भारतीय मण्डल (वाइल्ड लाइफ प्रिजर्वेशन वोर्ड) ऐसे रोगों के आक्रमण से इन्हें बचाने में प्रयत्नशील रहता है।

दिल्ली की पशु-वाटिका में मोहन गेण्डे को किसी रोग से आक्रांत होते नहीं देखा गया।

चिड़िया घरों तथा जंगलों में भी कुछ पक्षी गेण्डों की पीठ पर बैठे उसके शरीर पर शरण पाने वाले पराश्रयियों को चुगते रहते हैं। ये पक्षी गेण्डे के अच्छे मित्र हैं। इससे गेण्डे को दो लाभ होते हैं—एक तो पराश्रयियों से मुक्ति और दूसरा यह कि ये पक्षी किसी भी अजनबी को देख कर उड़ जाते हैं और गेण्डे को सावधान हो जाने का संकेत मिल जाता है।

जीवन के आरम्भिक वर्षों में गेण्डे का सबसे बड़ा दुश्मन शेर होता है—बबर शेर और धारीदार शेर दोनों ही। बंदी हो जाने पर इसे शेरों से खतरा नहीं रहता। इसके बल और सामर्थ्य को देखकर उनकी इस पर हमला करने की हिम्मत नहीं पड़ती। बड़े गेण्डे का मुख्य शत्रु मनुष्य है।

हाथी से यदि मुकाबला हो जाय तो गेण्डा उससे डरता नहीं। कहा जाता है कि यह उसकी टाँगों के नीचे घुस कर उसके पेट पर चोट करने की कोशिश करता है। प्लीनी ने लिखा था कि हाथी के साथ लड़ने से पहले यह पत्थर पर रगड़ कर सींग को तेज कर लेता है।

गेंडे की पकड़ : गेण्डे को पकड़ना सचमुच बहुत कठिन काम है जिसमें वन-अधिकारियों को बड़े जोखिम का सामना करना पड़ता है। उनके आने-जाने के स्थानों पर नौ फुट लम्बे, पांच फुट चौड़े और छह फुट गहरे गढ़े खोदे जाते हैं। वनों में जगह-जगह पड़े हुए लीद के ढेरों के आस-पास गढ़े खोदना अधिक कारगर समझा जाता है। इन्हें घास-पात से इस तरह ढक दिया जाता है कि पशु को पता न चले। इनमें किसी समय गेण्डा गिर सकता है। वन-अधिकारियों की राय में रात्रि के समय गिरे तो अच्छा रहता है। हाथियों की खेदा पद्धति के समान यहाँ गेण्डों को घेर कर इधर हाँका नहीं जाता। कहा जाता है कि अपनी आदत के अनुसार जब वह मल विसर्जन के लिए उधर उलटा जा रहा होता है तो गढ़े में गिर जाता है।

सीधा-सादा गेण्डा जो अब तक शान्त भाव से घास के कोमल अंकुरों को निश्चिन्तता से चर रहा था गढ़े में गिरते ही एक भयंकर जीव बन जाता है। वह तुरन्त अपनी थूँथनी से गड्ढे की दीवार की मिट्टी को खोदना शुरू करता है। कई जगहों पर मिट्टी नरम और गीली होती है। इसे खोद कर वह कभी-कभी गड्ढे से बाहर निकलता हुआ भी देखा गया है।

गढ़े में गेण्डे के गिरने की खबर मिलते ही पकड़ने वाला दल रस्से, फावड़े, टोकरियाँ, पिंजरा आदि आवश्यक सामान ले कर वहाँ पहुँच जाता है। उन्हें देखते ही वह क्रोध में ललकारता है। परन्तु वहाँ उसकी परवाह करने वाला कोई नहीं होता। सावधानी से नजदीक पहुँचते हुए वन-कर्मचारी मोटे और मजबूत रस्सों के फन्दों को उसके शरीर पर फेंकना शुरू करते हैं। सबसे पहले उसकी बलशाली गरदन को वश में करना होता है। गरदन को जकड़ लेने के बाद अगला काम आसान हो

जाता है। उसी तरह फंदे फेंक कर गेण्डे को सात-आठ जगह से बांध लिया जाता है। रस्सों के दूसरे सिरे आस-पास के पेडों से बाँध दिये जाते हैं। इतने बंधनों में जकड़ा जाने के बावजूद भी वह छुटकारा पाने के अपने प्रयासों में जरा भी ढील नहीं करता। उस समय वह क्रोध और पशुबल का मूर्त रूप बना होता है। हुंकार कर पास आने वालों पर झपट उठता है।

बाँधने का काम पूरा हो चुकने पर गढ़े के एक ओर से मिट्टी हटा कर नाली खोदी जाती है। गढ़े की दीवार जब दो फुट रह जाती है तो रस्सों के सहारे नाली के अंतिम सिरे तक एक पिंजरा सरकाया जाता है। इसके खुले दरवाजों का मुख गढे की दीवार से सटा कर रखा जाता है। अगला काम अधिक जोखिम का है। कुछ सधे हुए कर्मचारी दो-फुटी दीवार को कस्सियों से काट कर पतला करना शुरू करते हैं। उन्हें अपने बिलकुल पास देख कर मुँह से झाग निकालता हुआ बन्दी उन पर बार-बार झपटता है। बुद्धिहीन यह विशाल दानव उस समय छूट जाय तो !

जब दीवार लगभग छः इंच मोटी रह जाती है तो खुदाई का काम रोक देते हैं। जो रस्से बन्दी पशु को इधर बढ़ने से रोक रहे थे उन्हें ढीला कर देते हैं। पिंजड़े के पीछे खड़ा एक कर्मचारी सफेद कपड़े को हिला कर पशु को भड़काने की कोशिश करता है। गुस्से में वह उस पर झपट पड़ता है। ऐसे एक दो हमलों में पतली दीवार टूट जाती है और गेण्डा पिंजड़े में दाखिल हो जाता है। फिर दरवाजे गिरा दिये जाते हैं।

इस कशमकश में जीव का कई बार सींग टूट जाता है या कोई दूसरा अंग क्षतिग्रस्त हो जाता है। १९६२ की जनवरी में पेरिस की जन्तु-शाला के लिए इन आरक्षित जंगलों से जो मादा गेण्डा पकड़ी जा रही थी, उसका यह प्राकृतिक शृंगार टूट गया था। तब असम सरकार को बाध्य होकर इस शूर्पणखा की पेरिस यात्रा रद्द कर देनी पड़ी थी। फिलेडलफिया की पशु-वाटिका की मांग के लिए पकड़े जाते हुए एक गेण्डे ने स्वतन्त्र होने की कोशिशों में गड्ढे के अन्दर ही दम तोड़ दिया था। इससे असम सरकार को इस मूल्यवान जीव से मिलने वाली भारी रकम की हानि उठानी पड़ी।

पशुओं का व्यापार करने वाले कुछ साहसिकों ने अफ्रीकी गेण्डे को पकड़ने में अद्भुत शौर्य और सूझबूझ का परिचय दिया है। गड्ढे खोदे बिना ही वे गेण्डे को सफलता पूर्वक पकड़ लेते हैं। जंगल से बाहर खुले मैदान में वे गेण्डे का पीछा करते हैं, पकड़ने वाले लोग दो-तीन दलों में अलग-केलग बँट कर ट्रकों में सवार हो जाते हैं।

गेण्डों को पकड़ने जाना एक आनन्ददायक यात्रा नहीं है। यह खतरे से भरा काम है। जब पकड़ने का कार्य शुरू होता है तो दल में प्रत्येक सदस्य के जिम्में अपना-अपना काम होता है। अपनी रक्षा करना भी उसके अपने जिम्मे होता है। दल के सदस्यों को तब न तो फुर्सत होती है और न ही उसके लिए संभव होता है कि वे अपने साथी केमरामैनों तथा दूसरे आलतू-फालतू लोगों की चिन्ता कर सकें। इन लोगों को भी सभी विपत्तियों का सामना करने के लिए सन्नद्ध होकर जाना होता है।

जिन ट्रकों में ये लोग सवार होते हैं वे खूब मजबूत बने होते हैं और लगभग पाँच टन वजन के भारी रहते हैं। छोटा-मोटा ट्रक तो गेण्डे के सींग की टक्कर से ही पलट जाय। सींग की चोटों से ट्रक के पार्श्व चलनी बन जाते हैं। ट्रक के देह की धातु को छेद कर सींग की नोक पार निकल जाती है। ऐसा लगता है कि तोपों से इन पर गोलियाँ दागी गई हैं। यह चोट अचानक ट्रक के मर्म स्थल पर लग जाय तो कई बार क्षति गम्भीर होती है। एक बार एक ताजा पकड़ा हुआ गेण्डा रस्सों मे जकड़ा हुआ धरती पर पड़ा था। जिस लारी द्वारा उसे पकड़ा गया था वह पास में खड़ी थी। वायरलेस द्वारा पकड़ने का समाचार आधार शिविर को भेज दिया गया था। वहाँ से वह ट्रक चल पड़ा था जिसमें गेण्डे को लादा जाना था। वशीकरण रस्सों में कसा हुआ गेण्डा मुक्त होने के लिए रह-रह कर जोर मारता। एक बार उसने ऐसा सींग मारा कि पास में खड़ी हुई लारी की पेट्रोल की टंकी बिंध

गई। पेट्रोल की धार फूट पड़ी। लारी को हटाने से पहले ही गेण्डे का सिर पेट्रोल के द्वारा बुरी तरह नहा गया।

अपने पीछे आते हुए ट्रकों को देख कर गेण्डा बेतहाशा भागता है। ट्रक जब बिलकुल पास आ जाता है तो वह अपने मजबूत सींग से जोर का वार करता है। सींग की टक्करों से वह ट्रक को नष्ट कर देना चाहता है।

शिकारी दल के सदस्य मौका पाते ही रस्से के फंदे फेंकते हैं। गले में पहला फंदा पड़ने के बाद गेण्डे के क्रोध की सीमा का अतिक्रमण होता है। परन्तु इससे उसकी निरंकुश गतिविधियों को वश में करने में सहायता मिलती है। एक इन्च मोटा रस्सा तीन टन वजनी बलशाली दानव के दर्प को भी क्रमशः कम करते रहते हैं। फिर ट्रक खड़ा कर लिया जाता है। युद्ध शुरू हो जाता है। गेण्डा पीछे को हटता है। रस्सा तन जाता है। अपने भारी सिर को ऊपर और नीचे उठा कर झटके देता है। रस्सा इतना छोटा कर लिया जाता है कि गेण्डा कम से कम ऊधम मचा सके। तब चार-पाँच जवान झट ट्रक से कूद पड़ते हैं। पहले पशु की पिछली टाँगों को और बाद में अगली टाँगों को कस कर बाँध देते हैं। यह सब कुछ मिनटों में ही कर लिया जाता है। तब ट्रक में लादने के उपक्रम शुरू होते हैं।

आदेश पालक ढोर : नया पकड़ा गया गेण्डा जंगलीपन और क्रोध दिखाता है। कुछ घण्टे तक वह कठघरे या बाड़े की दीवारों पर चोट करता रहता है। कोई-कोई गेण्डा ऐसा भी निकल आता है जो विरोध स्वरूप खाना नहीं ग्रहण करता। दो दिन तक यदि वह कुछ न खाये तो मर जाने से बचाने के लिए उसे मुक्त कर देना चाहिए।

पालक से प्रेम और दया का वर्ताव मिलने पर उसका स्वभाव बदल जाता है। विश्वास प्राप्त कर लेने पर वह अपनी जीभ से पालक को उसी तरह प्रेम प्रदर्शन के लिए चाहता है जैसे कि गाय या भैंस अपने मालिक को चाहती है। मद्रास के चिड़ियाघर के पालक से एक गेण्डा इतना हिल गया था कि पुकार पर वह पालतू ढोर के समान विनम्रता से आ खड़ा होता था। पालक उसकी पीठ पर सवार होकर दर्शकों में कुतूहल जागृत करता था। उस गेण्डे ने अपने को इतना विनम्र और एहसानफरोश बना लिया था कि अपने पालक के अलावा दूसरे लोगों को भी सवारी करा देता था।

चिड़ियाघरों में देखा गया है कि गेण्डे का बच्चा जितनी कम उम्र से पाला गया है उतना ही अच्छा वह पालतू बनता है। इस समय तो वह दुर्लभ प्राणी है परन्तु संरक्षण में रहता हुआ यदि यह अपनी संख्या को बढ़ा लेता है तो क्यों न इसे खेती-बाड़ी के कामों के लिए प्रशिक्षित किया जाय? आखिर मनुष्य जड़-बुद्धि भैंसों से भी तो काम ले रहा है!

सिन्धु घाटी की सभ्यता के लोग सम्भवतः गेण्डे को पाल कर रखते थे। मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त अधिकांश सीलों पर गेण्डा एक खुरली के पास खड़ा है। ठीक वैसी ही खुरली जैसी छोटे सींग वाले बैल के आगे है। सीलों के ऊपर खुदी हुई लिखावट को क्योंकि पढ़ा नहीं जा सका इसलिए यह कहना कठिन है कि वे इस पशु को खेती-बाड़ी के कामों में या भारवाहन के लिए इस्तेमाल करते थे अथवा शौकिया पालते थे।

गेण्डे के एक अनाथ बच्चे के विषय में कालिन विल्लौक (१९६४) ने बताया है। वह मादा बच्ची थी। नील के पास उसकी मां मर गयी थी। घेर कर उसे एक बड़े घेरे में रखा गया। जब वह बड़ी हो गई तो उसे जंगल में छोड़ देने का विचार आया। परन्तु वह उस जगह को छोड़ कर जाना ही नहीं चाहती थी। इसका कारण उसके दिल में बसा भय तथा आत्मविश्वास की कमी थी। जब वह बहुत नन्हीं थी तो उसे अपने घेरे के चारों ओर जंगल में बबर शेरों की गरज अक्सर सुनाई देती रहती थी। अब बड़ी हो जाने पर भी शायद वह सोचती थी कि बाहर की दुनिया न जाने कैसी खतरनाक है!

काजीरंगा अभयवन : काजीरंगा का वाइल्ड लाइफ सैंक्चुरी (वन्य जीवन संश्रय) ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी किनारे के साथ-साथ लगभग पच्चीस मील तक असम के मध्य में

मिकिर पहाड़ों के उत्तर तक चली गई है। १९०८ तक यह शिकारियों तथा चोरी-छिपे शिकार खेलने वालों का स्वर्ग था। परिणाम यह हुआ कि तब लगभग एक दर्जन गेण्डे ही वहाँ बचे। वन-अधिकारियों के लिए यह चिन्ता की बात थी। तब उस जंगल में शिकार खेलना बन्द कर दिया गया। १९२६ में काजीरंगा गेम सैंक्चुरी बन गई। १९४० के अन्त में इसका नाम बदल कर अधिकृत रूप से वाइल्ड लाइफ सैंक्चुरी रख दिया गया। इसका कारण यह था कि गेम शब्द से उन पशु-पक्षियों का बोध होता है जो विजय-चिन्हों या मांस के लिए मारे जाते हैं, जब कि वाइल्ड लाइफ से सभी जीवित प्राणियों का अर्थ ग्रहण होता है और इसमें उनके संरक्षण का भाव भी निहित है।

१९३० तक काजीरंगा अभयवन के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। पर्यटकों तथा गेण्डों का अध्ययन करने वाले दर्शकों को आकृष्ट करने की भी कोई योजना नहीं थी। प्राणियों में रुचि रखने वालों की निरंतर बढ़ती हुई दिलचस्पी को देख कर तब मुख्य वन संरक्षक ने इसे दर्शकों के लिए खोलने का निश्चय किया।

चोर-आखेट फिर बढ़ गया था। अभयवन की दक्षिणी सीमा से मिकिर कबीले के लोग भी चोरी-छिपे शिकार करने अन्दर घुस जाते। शिकारियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करने का निश्चय किया गया। वन-अधिकारी जब दौरे पर गये तो उन्हें हर एक मील पर चोर-आखेटकों के अड्डे मिले। एक दौरे में तो उन्हें गेण्डे की चालीस लाशें मिलीं जिसके सींग निकाल लिए गये थे।

अभयवन में गेण्डों को देखना : १९३८ में काजीरंगा अभयवन दर्शकों के लिए खोल दिया गया। शुरू में गेण्डे मनुष्य को देखने के आदी नहीं थे। अपने निवासों में अनधिकृत प्रवेश पर वे हमला करते थे। हाथी भी तब हमले का मुकाबला करने के लिए प्रशिक्षित नहीं थे। पीठ दिखा कर वे भाग खड़े होते थे। धीरे-धीरे ये अवस्थाएं बदलती गई। नवागन्तुओं को रोज देख कर गेण्डे आदी होते गये और अब तो वे तभी हमला करते हैं जब मादा गेण्डे के साथ बच्चा भी हो। काज़ीरंगा के दो गेण्डे तो इतने पालतू बन गये थे कि आगन्तुकों की आहट पाते ही वे जंगल से निकल आते थे। इनमें से एक तो बुढ़ापे के कारण और दूसरा किसी दुर्घटना में मर गया।

जंगली पशुओं को अपने प्राकृतिक आवास में अध्ययन करने तथा उनके फोटो लेने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए वहाँ विशेष सुविधाएं प्रदान की गई हैं। बीस फुट ऊंचे खम्भों पर एक मचान बनाया गया है। मचान क्या लकड़ियों से बनाया गया एक कमरा है, जिसके बरामदे में खड़े होकर घास के मैदानों में चरते हुए गेण्डों का अध्ययन किया जाता है। ये पशु क्योंकि रात में बाहर निकलते हैं इसलिए चांदनी रातों में इन्हें देखना अधिक अच्छा रहता है। संश्रय में कुछ हाथी भी दर्शकों के लिए रखे गये हैं। जब कुछ विशिष्ट पर्यटक गेण्डों के फोटो खींचने के उद्देश्य से यहां आते हैं तो हाथियों का एक काफिला जंगलों में से गेण्डों को घेर कर ऐसी जगह ला खड़ा करता है जहाँ से साफ और मन-चाहे फोटो लिये जा सकें।

काजीरंगा वन में घास बहुत घनी है और यह सोलह फीट तक जाती है। इसमें छिपे हुए गेण्डों को तलाश करना मुश्किल होता है। गेण्डे जब इसके अन्दर भागते हैं घास उनके बदन से टकराती हैं जिससे उसके ऊपरले सिरे हिल उठते हैं। हिलती हुई घास से पता चल जाता है कि गेण्डा किधर जा रहा है। हाथियों को उधर ही घुमा दिया जाता है। गेण्डा काफी तेज दौड़ सकता है परन्तु इस तरह पीछा करने पर जल्दी ही थक जाता है। इसमें दिशा का ज्ञान करने की बुद्धि प्रायः बिलकुल नहीं होती इसलिए सामान्यतया यह पुरानी घिसी-पिटी संकीर्ण पगडण्डियों पर ही आता हुआ दीख जाता है। ऊँची घास की पत्तियां क्योंकि तेज धार वाली होती हैं इसलिए इसके अन्दर वह लाचारी में ही घुसता है।

[क्रमशः]

मस्तिष्क की स्मरण-शक्ति

● डा० देवेन्द्र प्रसाद शर्मा

वैज्ञानिकों ने शरीर के सभी अंगों से मस्तिष्क के सम्बन्ध में जो रहस्यपूर्ण अद्‌भुत खोज की है वह अत्यन्त रोचक है। यह शरीर का वह भाग है जो जैवरासायनिक यंत्र से ओत-प्रोत है। मस्तिष्क ऊर्जा प्राप्त करता है, जिसके द्वारा वह अपने तन्तुओं को विघटित करके नये तन्तुओं को बनाता रहता है। यह तो मस्तिष्क का साधारण कार्य हुआ। इससे भी बढ़कर या इसके सामंजस्य से जो महत्वपूर्ण कार्य होता है, वह है, सोचने की शक्ति। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यह वह भाग है जो जटिल नाट्यशाला के समान है। यह कहना अनुचित न होगा कि वृक्क तथा यकृत की भाँति इसका भी कार्य किसी भी रूप में कम नहीं है। वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि फ्रायड नामक मनोवैज्ञानिक ने सम्मोहन प्रभावों पर जो कार्य किया उसमें मानस-सम्बन्धी प्रभावों पर अपेक्षाकृत अधिक कार्य किया गया है और मानस-विश्लेषण पर कम।

फ्रायड का मानस-सम्बन्धी प्रभावों पर जो कार्य हुआ है वह ठीक ही है किन्तु यदि ये दोनों कार्य एक साथ किये गये होते तो मस्तिष्क की क्रियाविधि के बारे में शीघ्र जानकारी हो सकती थी। वास्तव में यह कहना उचित होगा कि फ्रायड से भी पूर्व मस्तिष्क पर भौतिक-अन्वेषण कार्य के लिए कई कठिनाइयां थीं।

१७ वीं शताब्दी तक ऐसी धारणा थी कि मस्तिष्क का कार्य गैस के समान है जिसके फलस्वरूप गैस के रहस्य के बारे में भी कार्य किया गया। डेसकार्टिस नामक प्रख्यात वैज्ञानिक ने मस्तिष्क तथा पदार्थ को एक विचित्र उपापचय का रूप प्रदान किया। इस वैज्ञानिक की धारणा थी कि रक्त मस्तिष्क में सूक्ष्म कोमल वायु प्रदान करता है। इस प्रकार मस्तिष्क तथा पदार्थ का यह सिद्धान्त सदियों तक माना जाता रहा। अब भी इस सिद्धान्त को सभी मानते हैं। लेविस थूडिचम नामक वैज्ञानिक के एक अद्‌भुत अन्वेषण से यह माना जाने लगा कि मस्तिष्क में उपापचय स्वतंत्र रूप में होता होगा। लेविस थूडिचम की प्रारम्भिक शिक्षा जर्मनी में हुई किन्तु उसका अधिक समय इग्लैंड में ही व्यतीत हुआ। इस वैज्ञानिक का प्रशिक्षण औषधि-विज्ञान में था किन्तु रसायन-विज्ञान में अधिक रुचि होने के कारण, उसने मस्तिष्क की रासायनिक रचना पर मुख्य रूप से कार्य किया। यह वैज्ञानिक मस्तिष्क-विज्ञान का संस्थापक माना जाता है- जो जीवन पर्यन्त (१९०१) रोचक खोज करने में संलग्न रहा।

लेविस थूडिचम ने मस्तिष्क के समस्त अवयव ज्ञात किये जो उस समय के लिए महान कार्य था। इस वैज्ञानिक के पश्चात् मस्तिष्क-रसायनशास्त्र में वैज्ञानिकों की रुचि कम हो गई और अनुसन्धानकर्ताओं की कमी के कारण उपापचय पर होने वाला कार्य कम हो गया तथापि अन्य सूत्रों से मस्तिष्क के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त होता रहा। यह तो सभी जानते हैं कि यदि कोई क्रिया किसी तन्तु में होती है तो उसकी क्रियाशीलता का प्रभाव अन्य तन्तुओं में भी पहुँच जाता है। मस्तिष्क में शर्करा उपापचय का ज्ञान इसकी कोशिकाओं द्वारा नहीं हुआ बल्कि यीस्ट तथा कबूतर के यकृत से मिला। इन कार्यों से हम सोच सकते हैं कि मस्तिष्क उपापचय रूपी यंत्र की भाँति कार्य करता है।

यथार्थ में डेसकार्टिस के बाद की पीढ़ी यह प्रश्न कर सकती है कि यदि रसायनशास्त्री मस्तिष्क की यांत्रिक

क्रियाओं का पता लगा लें तो इसके कुल रासायनिक तत्वों तथा इसमें उत्पन्न विचारों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और इस प्रकार के परस्पर-सम्बन्ध स्थापित किये भी गये हैं। किन्तु यह प्राणिशास्त्र के अन्वेषण का फल है। उदाहरणार्थ विटामिन की कमी के कारण मस्तिष्क पर जैव-रासायनिक कमी के प्रभाव से कई बातों का पता चला।

मानसिक बाधाओं के कारण मस्तिष्क की पेलाग्रा बीमारी में भौतिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जो विटामिन की अत्यन्त कमी के कारण होता है। इस बीमारी के कारण रोगी में घबड़ाहट, चिड़चिड़ापन तथा क्रोध उत्पन्न हो जाता है! परन्तु निकोटिनिक अम्ल के उपयोग से ये लक्षण नष्ट हो जाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि मस्तिष्क तथा विटामिन के कार्यों में क्या सम्बन्ध है? मस्तिष्क में शर्करा के उपापचय से ऊर्जा प्राप्त होती है। विटामिन बी-१, बी-१२, तथा बायटिन सह-विटामिन हैं जो उपापचय में कार्य करते हैं। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि इन विटामिन की कमी से मस्तिष्क की शक्ति में अव्यवस्थित एन्जाइम-क्रम उत्पन्न होता है जो अस्थायी पागलपन की स्थिति पैदा करती है।

एक अन्य आकस्मिक खोज स्विस रसायनशास्त्री ने १९४३ ई० में की जिसका सम्बन्ध प्रोटीन तथा मस्तिष्क से था। उसने यह पदार्थ इरगाट (Ergot) पौधों से प्राप्त किया। इस वैज्ञानिक ने अपने ऊपर ही एक अन्वेषण किया। उसने लाइसरजिक अम्ल की थोड़ी मात्रा सूँघी जिससे उसका मस्तिष्क विचारशून्य हो गया और वह स्वप्न की तरह घर की ओर चल दिया। यह पदार्थ इतना प्रभावशाली है कि एक दाने का दस लाखवां भाग भी मतिभ्रम पैदा कर सकता है।

ऐसा ज्ञात है कि मस्तिष्क पर प्रभाव चाहे रासायनिक हो या भावना से उत्पन्न, उसके अन्तिम लक्षण एक-जैसे ही होते हैं। क्या हम रासायनिक अध्ययन से यह पता लगा सकते हैं कि मस्तिष्क किस तरह मांसपेशियों पर अधिकार प्राप्त कर उसे संचालित करता है?

मस्तिष्क की रचना तार संजाल की तरह है। नाड़ी कोशिकाओं में भी लम्बे तथा पतले तार होते हैं। उनमें से कुछ कई फीट लम्बे होते हैं जो स्पाइनल कार्ड (मेरुदण्ड) से होकर मांसपेशियों तक फैले होते हैं। इन्ही जाल रूपी यंत्रों से समाचार भेजा जाता है जो १२० फीट प्रति सेकण्ड की गति से चलते हैं। इसी से कार्य संपादन की आज्ञा मांसपेशियों को मिलती है। डा० ओटो ने इसी सम्बन्ध में रहस्यपूर्ण प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि अंगों में दो प्रकार की नड़ियाँ होती हैं—एक जो उत्तेजित करने का कार्य करती हैं तथा दूसरी जो अवरोध उत्पन्न करती हैं।

इस प्रकार मस्तिष्क नियंत्रण में भी दो प्रकार के अंग होते हैं जिसमें दो नाड़ियां होती हैं।

विज्ञान के विकास के साथ धीरे-धीरे वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क पर कार्य किया जिनमें से एक अंग्रेज मनोवैज्ञानिक सरहेनरी डेल का कार्य बहुत ही सराहनीय है। उन्होंने बताया कि ऐसीटोकोलीन एक बहुत प्रभावशाली पदार्थ है जो इन कार्यों में सहायता पहुँचाता है।

● ●

तत्व जो आवश्यक भी हैं विषालु भी

• डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

पौधे अपना भोजन भूमि से ग्रहण करते हैं। मनुष्य एवं पशु इन पौधों से प्राप्त उपज का उपयोग अपने आहार के लिए करते हैं। पौधे मिट्टी से तत्व की विभिन्न मात्राएं भूमि में तत्व की प्राप्त मात्रा के अनुसार अवशोषित करते हैं। यदि किसी विशेष मिट्टी में किसी तत्व विशेष की प्राप्य मात्रा अत्यधिक होती है तो यह निश्चित है कि उस मिट्टी में उगाई गई फसल तत्व विशेष को अधिक मात्रा में अवशोषित करेगी। यह भी सम्भव है कि यह मात्रा पौधे के लिए विषालु सिद्ध हो एवं पौधे की मृत्यु हो जाय। अब यदि फसल किसी रूप में पशुओं को खिलाई जावे तो उसमें विद्यमान विषालु तत्व पशु के शरीर में एकत्रित होकर किसी रोग को उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार या तो पशु की उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है या अधिक गम्भीर स्थिति में उसकी मृत्यु हो जाती है। आइये देखें, इन बहुरुपिये तत्वों को, जो आवश्यक होने के साथ-साथ विषालु भी हैं।

मालिब्डेनम पौधों के विकास के लिए आवश्यक सूक्ष्म-मात्रिक तत्व है जिसकी न्यूनता पौधों में अनेक रोगों को जन्म देती है एवं इसकी उचित प्राप्य मात्रा उपज पर संतोषजनक प्रभाव डालती है। जैसा कि अब तक के शोध कार्यों से विदित हैं मालिब्डेनम की अधिक प्राप्यता पौधों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती। पौधों में इसकी अधिक मात्रा में उपस्थिति, जो कि भूमि की प्राप्य मात्रा से सम्बन्धित है, उन पशुओं में रोग का कारण बनती है जो कि उस फसल को किसी न किसी रूप में आहार बनाते हैं। पशु के शरीर में इस तत्व की अधिक मात्रा एकत्र होने से मालिब्डेनोसिस रोग होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्वसन क्रिया में इस तत्व की आवश्यकता पड़ती है परन्तु परेशानी तब उत्पन्न होती है जब इस तत्व का जमाव अधिक हो जाता है। श्वसन क्रिया में बाधा पड़ने से पशु धीरे-धीरे मृत्यु का आलिंगन करता है। पशुओं में इसके कुप्रभाव को दूर करने के लिए तांबा का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी पाया गया है। इसके विपरीत यह भी पाया गया है कि चारे में मालिब्डेनम की मात्रा कम होने पर तांबा यकृत में बहुत अधिक जमा होने लगता है। तांबा के विषालु प्रभाव के कारण यकृत अपना काम करना बन्द कर देता है। फल यह होता है कि पशु की मृत्यु हो जाती है। इसके लिए चारे में मालिब्डेनम को मिलाना लाभकर पाया गया है।

लोहा एवं मैंगनीज—ये दो सूक्ष्ममात्रिक तत्व पौधों में एंजाइम क्रियाओं में सहायक होते हैं। इन दोनों की न्यूनता पौधों में अधिक रोगों को जन्म देती है। यह देखा गया है कि मिट्टी में इनमें से एक तत्व की अधिकता होती है तो दूसरे तत्व की न्यूनता अवश्यम्भावी है। इनकी न्यूनता से प्रभावित होने के साथ-साथ पौधे इनकी विषालुता से भी ग्रसित होते हैं। विषालुता की स्थिति प्रायः अम्लीय मिट्टियों में होती है जिसे चूना डाल कर ठीक किया जा सकता है। अभी पूर्ण रूप से इनके विषालु प्रभाव का अध्ययन पशुओं के ऊपर तो नहीं हो पाया, परन्तु कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि इनकी अधिकता से पशु भी प्रभावित होते हैं।

फ्लोरीन, आरसेनिक एवं सेलीनियम अभी पौधों के लिए आवश्यक तत्वों की श्रेणी में नहीं परिगणित होते, परन्तु इन तत्वों का पशु-स्वास्थ्य से विशेष सम्बन्ध है। फ्लोरीन नामक तत्व का दांत एवं हड्डियों के निर्माण से सीधा

सम्बन्ध है। इनकी पुष्टता के लिए प्रतिदिन भोजन या पेय जल के साथ पशु शरीर में ०.५ मिलीग्राम फ्लोरीन पहुँचना आवश्यक है। परन्तु १ मिलीग्राम से अधिक फ्लोरीन पशुओं की हड्डी एवं दांत दोनों को मज़बूत बनाने के बजाय कमजोर बना देता है। इसकी अधिकता से दांतों एवं हड्डियों से पपड़ी निकलने लगती है एवं वे कमजोर हो जाती हैं।

आर्सेनिक का प्रयोग पौधों पर कीटाणुओं की रोकथाम के लिए किया जाता है। यह भी पौधों के विकास के लिए आवश्यक नहीं है। इसकी छिड़की हुई मात्रा से यदि पौधे १४अंश/दस लक्षांश से अधिक ग्रहण कर लेते हैं तो उनकी वृद्धि रुक जाती है, पौधे छोटे रह जाते हैं, नई पत्तियाँ सूखने लगती हैं एवं असमय ही गिर जाती हैं। इसकी अधिकता से द्विबीजपत्री पौधे उगते ही सूख जाते हैं, अनाज वाले पौधे पहले पीले पड़ते हैं फिर दाने पड़ने के पूर्व ही सूखने लगते हैं। इससे बचने के लिए लौह सल्फेट का प्रयोग उपयोगी पाया गया है। सुपरफास्फेट एवं जस्ता का प्रयोग भी इसकी विषालुता कम कर देते हैं। इसकी न्यूनता के लक्षण दिखाई पड़ने का प्रश्न तो नहीं उठता परन्तु इसकी विषालुता अत्यन्त भयंकर होती है। इसे दूर करने के उपर्युक्त उपाय जितनी जल्दी किये जाँय उतनी ही जल्दी लाभ पहुँचता है।

सेलीनियम सम्भवतः पशु जीवन से सम्बन्ध रखने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। सूखे प्रदेशों में यह अधिक खतरनाक परिस्थिति उत्पन्न करता है। घास एवं अन्य चारे वाली फसलें प्रायः अधिक सेलीनियम नहीं संग्रह करतीं परन्तु कुछ सेलीनियम-रागी घासें १५०० अंश प्रति लाख तक सेलीनियम अवशोषित करती हैं। ये घासें केवल पशुओं के लिए ही हानिकर नहीं होतीं, किन्तु उस मिट्टी में भी सेलीनियम की प्राप्य मात्रा को बढ़ा देती हैं फलतः अगली चारे वाली फसल भी अधिक सेलीनियम अवशोषित करती है एवं पशु को खिलाने योग्य नहीं रह जाती। जो पशु ऐसी घास अधिक खाते हैं उनमें सेलीनियम की विषालुता सम्बन्धी 'अल्कली' एवं 'रतौंधी' का रोग हो जाता है। अल्कली रोग में पशु के खुर जगह-जगह से फट जाते हैं। रतौंधी का रोग अधिक विषालुता के कारण होता है। इस स्थिति में पशु की मृत्यु शीघ्र हो जाती है। यह देखा गया है कि सेलीनियम युक्त चारा मुर्गी को देने पर उसकी अंडा देने की शक्ति क्षीण हो जाती है। भोजन में ५ अंश/दस लक्ष से अधिक सेलीनियम का होना मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर है। अलसी की खली का प्रयोग इसके विषालु प्रभाव को दूर करने में लाभकारी है। सोडियम आर्सेनाइट की कम मात्रा (क्योंकि यह स्वयं अधिक विषालु है) एवं सल्फेट इसके विषालु प्रभाव रोकने के लिए प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

अन्य आवश्यक तत्व जो विषालु हो सकते कहीं-कहीं पर अपना प्रभाव दिखाते हैं। ये तत्व हैं:—बेरियम, निकेल, जस्ता एवं लेड। इनकी विषालुता इनके भण्डारों, फैक्टरियों के पास एवं उन जगहों पर जहां ये कीटाणुनाशक के रूप में डाले गये हों, देखी जाती है।

बेरियम अत्यन्त अधिकता की स्थिति में ही विषालु होता है। इसका कार्बोनेट पौधों एवं पशुओं दोनों के लिए घातक है। निकेल कम मात्रा में भी हानि पहुँचाता है। पौधों में १५० अंश/दस लक्ष निकेल उनके विकास को रोक देता है। कुछ अम्लीय मिट्टियों में जस्ते की अधिकता से पौधे प्रभावित होते पाये गये हैं। यहाँ विषालुता कम करने के लिए चूने का प्रयोग किया जाना चाहिए। लेड खानों के आस-पास पशुओं में इसके विषालु प्रभाव देखे गये हैं। पौधे अधिक लेड अवशोषित कर लेते हैं एवं इनको ग्रहण करने वाले पशु विषालुता के शिकार बनते हैं। पौधे कहीं-कहीं लेड आर्सेनेट के छिड़काव से प्रभावित होते पाये गये हैं। प्रायः इसका प्रभाव पौधों पर विषालु नहीं होता।

मिट्टी में पाये जाने वाले प्रायः सभी तत्व, यदि वे अत्यधिक मात्रा में हों, किसी न किसी रूप में पौधे पर एवं इस प्रकार पशु पर भी अपना विषालु प्रभाव डालते हैं। यह अधिकता मिट्टी में स्वाभाविक रूप से हो सकती है। या फिर खाद या छिड़काव के द्वारा डाले जाने के कारण हो सकती है। लेकिन प्रश्न अब यह उठता है कि यह विषालुता

किसी तत्व विशेष की अधिकता के कारण ही है या फिर इसका किसी अन्य तत्व के ऊपर अपरोक्ष रूप से प्रभाव डालने के कारण है। इसका विस्तृत अध्ययन वैज्ञानिकों द्वारा किया जाना चाहिए एवं हमारे अबोध किसानों को सरल रूप में इसका समाधान बताया जाना चाहिए, जिससे दिनोंदिन बढ़ रहे खादों के प्रयोग से कोई नयी समस्या आकर उन्हें निराश एवं हतोत्साह न कर दे।

● ●

पौधों के कारण पशुओं में जन्मजात विकार

प्रायः पशुओं के जन्मजात विकारों का सारा दोष प्रजनन की खराबी पर डाल दिया जाता था किन्तु अब इस दोष के भागी वे पौधे भी होंगे जो मादा पशु गर्भावस्था में खाते हैं। यथा कुटकी नामक चारा खाने से पैदा होने वाले मेमने के एक आँख हो सकती है या टाँगें विकृत हो सकती हैं। फली वाले खराब चारा के खाने से गायों की गर्भावस्था के ४० से लेकर ७० वें दिन तक प्रभाव पड़ता है। इससे उत्पन्न बछड़े-बछिया तिरछी टाँगों वाले, विकृत पीठ, गर्दन वाले तथा फटे तालु वाले होते हैं।

आपके निर्भीक विचार सादर आमंत्रित हैं—

परीक्षा का स्वरूप क्या हो ?

चाहे हाईस्कूल-इन्टर की परीक्षायें हों अथवा विश्वविद्यालय स्तर की परीक्षायें; सबों में परीक्षार्थियों द्वारा समान रूप से अनुचित साधनों का प्रयोग होते हुये देखा जाता है। और स्थिति इतना भीषण रूप धारण कर चुकी है कि निरीक्षक यदि अनुचित साधनों का प्रयोग करते हुये छात्रों को पकड़ लेते हैं या अंगुल्यानिर्देश कर देते हैं तो वे तत्काल वहीं पर या परीक्षा भवन से बाहर अथवा अपने घर में विविध प्रकार से आहत किये जाते हैं। इस वर्ष तो हद हो गई। निरीक्षकों पर निर्मम प्रहार किया गया है। स्थिति की गम्भीरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है है कि संसद भवन में इस सम्बन्ध में बहस हुई है। भारत के शीर्ष नेता इस मत के हैं कि या तो निरीक्षकों की सुरक्षा के उपाय निकाले जायँ या फिर परीक्षा की प्रणाली बदल दी जाय। आचार्य कृपलानी का सुझाव हमें सोचने के लिये प्रेरित करता है कि क्या सचमुच छात्रों को पुस्तकों के उपयोग करने की छूट दे दी जाय ? जब आये दिन परीक्षा भवनों से मनों किताबें तथा नोट्स बरामद किये जा रहे हों तो ऐसा कर देना कुछ हद तक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

आप उक्त सम्बन्ध में अपने विचार सम्पादक, विज्ञान तक प्रेषित करें जिससे हम इस प्रश्न-माला के सम्बन्ध में प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकें।

—सम्पादक

सार संकलन

हमारे वैज्ञानिक तीर्थ—२

आणविक बिजलीघर—तारापुर

● संकलित

बम्बई से ६५ मील उत्तर में भारत के आणविक युग के सबसे विस्मयकारी उपाख्यान को अभिनीत किया जा रहा है।

१६ जनवरी, १९७० को भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने भारत, अमेरिका तथा अन्य अनेक देशों के वैज्ञानिकों और इंजिनियरों के समक्ष तारापुर के आणविक बिजलीघर का उद्घाटन किया। यह उद्घाटन-समारोह पश्चिमी भारत के लाखों श्रमिकों, किसानों और गृहणियों के लाभ के लिए अणुशक्ति के विशाल साधनस्रोतों का विदोहन करने की दृष्टि से ७ वर्षों के प्रयत्नों की पूर्ति का प्रतीक है।

तारापुर में भारत का सबसे पहला आणविक बिजलीघर बनाया गया है। इसकी उत्पादन-क्षमता ४,००,००० किलोवाट है और यह एशिया में सबसे बड़ा आणविक बिजलीघर है। इसके चालू हो जाने से भारत की गिनती उन थोड़े से देशों में होने लगेगी, जहाँ आणविक बिजलीघर से काम लिया जाता है। इसमें अमरीकी अणु टेक्नालाजी के क्षेत्र में आविष्कृत नवीनतम विधियों का उपयोग किया गया है।

अणु-विज्ञान के क्षेत्र में, भारत की इस प्रगति का बहुत कुछ श्रेय डा० होमी जे० भाभा को है और उन्होंने भी इस समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। उनके जीवन में, जिसका अन्त कुछ वर्षों बाद बहुत ही दुखद ढंग से हो गया, यह एक अत्यन्त गर्व का दिन था। दुर्भाग्यवश वे अपने स्वप्न को साकार होते नहीं देख पाये।

'अग्नि' से 'अणुशक्ति' तक

जब गुफाओं में रहने वाले मनुष्यों ने सर्वप्रथम अग्नि को शक्ति-स्रोत के रूप में इस्तेमाल करना सीखा-मुख्यतः भोजन पकाने और गर्मी प्राप्त करने के लिये-तो मानव जाति के अभ्युदय की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ। प्रगति की दिशा में दूसरा कदम माईकेल फैरडे द्वारा १८३१ में एक प्रकार के 'डायनमो' का आविष्कार था। डायनमो द्वारा उत्पादित विद्युतशक्ति अन्य सभी शक्ति-स्रोतों से भिन्न है। विद्युतशक्ति किसी भी स्थान पर उत्पन्न की जा सकती है और उससे सैकड़ों मील दूर स्थित स्थान पर उसका उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार 'शक्ति' को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना सम्भव हो गया। फैरडे की इस खोज के फलस्वरूप अगली शताब्दी में प्रवाहित जल तथा कोयले और तेल जैसे प्राकृतिक ईंधनों में निहित शक्ति का दोहन करने के लिए विशाल योजनाएं क्रियान्वित की गई।

प्रकृति की शक्तियों का दोहन करने की दिशा में एक दूसरी उल्लेखनीय सफलता उस समय प्राप्त हुई जब

एनरिको फेर्मी ने १९४२ में शिकागो विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम श्रंखलाबद्ध नियंत्रित अणु-विस्फोट करने में सफलता प्राप्त कर ली। वैज्ञानिकों को यह बात बहुत पहले के विदित थी कि पदार्थ और ऊर्जा को एक-दूसरे में बदला जा सकता है तथा एक सूक्ष्म और अदृश्य अणु से एक टन कोयले से भी अधिक ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। फेर्मी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि यह प्रचण्ड शक्ति मुक्त की जा सकती है।

एक अणु में कितनी ऊर्जा निहित है उसका पता इन आँकड़ों से चल सकता है। तारापुर आणविक बिजलीघर में एक दिन में १७० पौण्ड यूरेनियम आणविक ईंधन (एक दीर्घकालीन समझौते के अन्तर्गत यह आणविक ईंधन अमेरिका सुलभ कर रहा है) खपता है। इससे उत्पन्न होने वाली शक्ति के समकक्ष शक्ति का उत्पादन करने के लिए (इसका उपयोग विद्युतशक्ति उत्पन्न करने वाले दो टरबाइनों का संचालन करने वाली भाप तैयारे करने के लिए होता है) १,२०,००,००० पौण्ड कोयले की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता कि लगभग ५०० मील दूर स्थित कोयले की खानों से रोज तीन ट्रेन कोयला यहाँ पहुचाया जाता।

जब हम तारापुर की ओर—अरब सागर के तट पर स्थित एक जटिल तथा विशालकाय भूरे रंग कीं घनाकार आकृतियों का पुँज—दृष्टि उठा कर देखते हैं तो यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि यह संसार में विद्युतशक्ति का एक विशालतम स्रोत है। यहां पर सब कुछ शांत नजर आता है। ३६६ फुट ऊंची एक वेंटिलेशन चिमनी (अन्दर की हवा के निकलने का मार्ग)—यह कुतब मीनार से भी ऊंची है—आसमान को छूती प्रतीत होती है। लेकिन इससे कभी भी कोई धुँआ निकलता नहीं दिखाई पड़ता जबकि कोयले को ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने वाले बिजलीघरों की चिमनियां हर समय, दिन और रात में गहरा धुँआ उगलती रहती हैं। अतः यह बात लोगों को बहुत आश्चर्यजनक लगती है।

तारापुर भारत के उज्ज्वल और सुदृढ़ भविष्य का एक प्रतीक है। हर वस्तु—भीतर और बाहर—विशाल और ठोस प्रतीत होती है। विशालकाय खिड़की रहित ऊँचे भवनों के समूह के सामने, दर्शक अपने को बौना सा अनुभव करता है। अन्दर, ४० मील लम्बी रंग-बिरंगी पाइप लाइनें—इनमें से किसी-किसी पाइपों की पेटी तो मनुष्य की ऊँचाई से भी अधिक मोटी है—जाती हैं, फिर सौ फुट नीचे उतर आती हैं, दर्शकों को चक्कर सा आने लगता है। और पृथ्वी से दोनों अणु प्रतिक्रियावाहक यन्त्रों के लगभग १०० फुट ऊंचे आकारों (जिसके अन्दर प्रतिक्रियावाहक यन्त्र स्थापित किया हुआ है) को देखना तो दर्शक को ऐसा लगता है मानो वह ऐसे धातु-दैत्य को देख रहा हो, जिसकी ऊपरी चमड़ी ५ इंच मोटे स्टेनलेस इस्पात की बनी है। इन अणु प्रतिक्रियावाहक यन्त्रों के अन्दर ही अणु में निहित ऊर्जा को मुक्त किया जाता है और उसका उपयोग जल को गर्म कर उसे वाष्प में परिवर्तित करने के लिए किया जाता है। यही वाष्प २,००,००० किलोवाट शक्ति वाले उन दो टरबाइनों को चलाती है, जो भारत में सबसे बड़े टरबाइन हैं। बिल्कुल नीचे इस्पात के दो विशालकाय फाटक लगे हैं जो उस सूखे कुएं के आधार के चारों ओर 'एअर लौक' का काम करते है जिसमें अणु प्रतिक्रियावाहक यन्त्र स्थापित किए गए हैं। यह वह क्षेत्र है जहां तापमान सदैव ५०० डिग्री फारेनहीट रहता है।

१४५ फुट ऊंचे भवन में हर मंजिल पर हर जगह विशाल मशीन पंक्तिबद्ध फिट हैं और ये सब परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। तापमान को कम करने वाली विशालकाय मशीनें जल और वायु के तापमान को बढ़ने नहीं देतीं। २,००० अश्वशक्ति क्षमता वाले बड़े-बड़े पम्प त्वरित वेग से बायलर तक पानी पहुँचाते हैं। ३ मंजिला आकार के एक बड़े कक्ष में दो ढ़के हुए टर्बोजेनरेटर अलग-अलग स्थापित हैं। मीलों लम्बे पाइप और केबल संयंत्र से होकर गुजरते हैं, जिनके कार्य बिजली घर के केन्द्र बिन्दु, कण्ट्रोल रूम, में पंजीकृत होते हैं।

तारापुर बिजलीघर का निर्माण करने में ६,५०० से

[शेष पृष्ठ २३ पर]

विज्ञान वार्ता

१. पद्मा धान के उगाने पर रोक

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् ने यह निश्चय किया है कि आगामी खरीफ फसल में पद्मा नामक धान की नई किस्म के बोने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जावे। इसका कारण यह है कि गत वर्ष बिहार के काफी विस्तृत भूभाग में पद्मा की फसल में टंगरो नामक वाइरस रोग लग जाने से पीलापन आ गया था। यह रोग पत्तियों के फुदक्कों की संख्या में वृद्धि के कारण उत्पन्न हुआ। यह भी अनुमान है कि सम्भवतः जिन्क तथा पोटैशियम की न्यूनता भी इस रोग के लिए उत्तरदायी हो।

२. कैंसर सम्बन्धी तथ्य

ऐसा अनुमान है कि प्रतिवर्ष में प्रति १ लाख व्यक्तियों के पीछे ८५ व्यक्तियों को कैंसर होता है जबकि संयुक्तराज्य अमरीका में यह संख्या १२०० तक है।* टाटा स्मारक अस्पताल, बम्बई द्वारा एकत्र किये गये आँकड़ों से पता चलता है कि ७५% कैंसरग्रस्त रोगियों के मुँह में, गले में तथा गर्दन में कैंसर होता। जो लोग पान या तम्बाकू खाते है उन्हें पान-सुपारी न खाने वालों की अपेक्षा ८ गुना अधिक कैंसर होता है। अविवाहित स्त्रियों की अपेक्षा विवाहिताओं में कैंसर होने की दुगनी सम्भावना रहती है। ऐसा अनुमान है कि ६०% कैंसरग्रस्त महिलाओं को यूटेरीन का कैंसर होता है। सभ्य देशों में प्रति १०० व्यक्तियों में से २० की मृत्यु कैंसर से होती है जिनकी आयु ४५ वर्ष से ऊपर होती है। कम सभ्य देशों में ४० से ५० वर्ष के उम्र वाले व्यक्ति कैंसर के शिकार होते हैं। यदि कैंसर का ठीक से निदान हो सके तो ऐसी आशा है कि ५०% रोगियों को मरने से बचाया जा सकता है।

आवश्यकता है कि परिवार नियोजन की ही भाँति कैंसर निरोधी अभियान चालू किया जाय।

*उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में कैंसर ग्रस्त रोगियों की संख्या विश्वभर में सर्वाधिक आँकी गई है।

दवाओं के दाम और स्वास्थ्य

आखिरकार सरकार को सद्बुद्धि आ ही गई। कई वर्षों के लगातार कहने-सुनने तथा जाँच के बाद सरकार ने दवाओं के मूल्य में भारी कमी किये जाने की घोषणा कर दी है। इससे जनता का हित सधेगा। १९६३ ई० में दवाओं के जो मूल्य निर्धारित हुये थे वे किन्हीं किन्हीं दवाओं में बाहर तैयार की गई दवाओं के मूल्यों की तुलना में ८० से लेकर ३०० प्रशित तक अधिक थे।

अब आवश्यक दवाओं के मूल्यों में, जिनमें विशेष रूप से १७ दवाओं का उल्लेख है, १० से लेकर ७०% तक की कमी घोषित की गई है। किन्तु देखना यह है कि दवा-उद्योग पर इसकी कैसी प्रतिक्रिया होती है। अधिकांश फैक्टरियों में क्षमता से कम उत्पादन होने के कारण दवाओं का मूल्य अधिक पड़ता है अतः सरकार द्वारा दवाओं के मूल्यों में भारी कमी घोषित होने से आशंका है कि कहीं आवश्यक दवायें बाजार से विलुप्त न हो जायें। फिर नागरिकों के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ेगा ?

नई किस्म का आटा

केन्द्रीय खाद्यमंत्रालय ने बम्बई के अनुकरण पर कलकत्ता तथा दिल्ली नगरों में "सम्बलित आटे" के प्रचार किये जाने का निर्णय किया है। अब आटे में प्रोटीन,

विटामिन, लोह तथा कैल्सियम मिला रहा करेगा। इनकी कीमत प्रति किलो ग्राम ४ पैसे होगी।

भावनगर तथा हैदराबाद की खाद्य प्रयोगशालाओं में नमक के साथ लोह, कैल्सियम तथा विटामिन (ए) मिलाये जाने के प्रयोग हो रहे हैं। राजस्थान के साँभर संस्थान में भी यही योजना लागू की जावेगी। इससे देश भर में प्रवर्द्धित लवण उपलब्ध हो जावेगा।

यूनीसेफ के सहयोग से शिशुओं के आहार के उत्पादन हेतु एक संयंत्र लगेगा जो वाल आमूल नामक खाद्य तैयार करेगा। दुग्धशालाओं से प्राप्त दुग्ध को सम्बलित करके मद्रास तथा बंगलोर के स्कूली छात्रों को उपलब्ध किया जा रहा है।

● ●

[शेषांश पृष्ठ २१ का]

अधिक नरनारियों ने रात-दिन काम किया है किन्तु अब कई सौ व्यक्ति ही उसका संचालन करते हैं। किसी एक समय बिजलीघर में केवल ३० व्यक्ति ही काम पर तैनात मिलेंगे उनमें से ५ व्यक्ति कण्ट्रोल रूम में काम करते हैं और अपने काम के आठ घण्टे का समय बिजलीघर के कार्यों और प्रतिक्रियावाहकों की सूचनाओं को पढ़ने में व्यतीत करते हैं। उसकी तीन दीवारों में—चौथी कांच की बनी है—यंत्रों, डायलों और मीटरों के पैनेल लगे हैं। कक्ष के प्रत्येक छोर पर लगा कन्सोल एक प्रतिक्रियावाहक को नियन्त्रित करता है, जबकि कमरे की लम्बाई भर फैला केन्द्रीय पैनल दोनों टरबाइनों और दोनों प्रतिक्रियावाहकों की सम्मिलित सेवाओं को नियन्त्रित करता है। प्रत्येक पैनल पर चमकते लाल रंग की 'स्कैम' बटन लगी है, जो आवश्यकता पड़ने पर तत्काल सभी १३८ नियंन्त्रण-छड़ों को खींच कर उन्हें प्रतिक्रियावाहकों के भीतर प्रविष्ट करके विखण्डन-क्रिया को बन्द कर सकती है।

तारापुर से बड़े पैमाने पर बिजली मिलते रहने का भरोसा हो जाने के फलस्वरूप महाराष्ट्र में बिजली होने के एक बड़े स्रोत—कोयना बाँध की मरम्मत का काम शुरू किया जा सकता है। कोयना जलाशय में पानी का स्तर घटाया जा रहा है ताकि उसकी देखभाल करके बाँध को सुदृढ़ किया जा सके।

तारापुर बिजलीघर अमेरिका के सहयोग से भारत में निर्मित ३० विद्युत्-परियोजनाओं में से है। इस बिजलीघर में पश्चिमी भारत की ट्रौम्बे और धुवारण जैसी अन्य विद्युत् परियोजनाओं के साथ निकट सम्पर्क से कार्य किया जाता है। इसके फलस्वरूप उस क्षेत्र के सभी बिजलीघरों का कार्यसंचालन अधिक सुचारु ढंग से होता है।

तारापुर बिजलीघर से पश्चिमी भारत को मिलने वाले लाभ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु इस परियोजना का निर्माण करने वाले भारतीय और अमेरिकी इंजिनियरों को जिस बात से अधिक आह्लाद प्राप्त होता है, वह है आणविक बिजलीघरों से भारत के भविष्य के लिए सामने आने वाली उज्ज्वल सम्भावनाएं। प्रचुर मात्रा में आणविक बिजली उपलब्ध होने से समूचे क्षेत्र का स्वरूप ही बदल जायेगा। उदाहरण के तौर पर समुद्र का खारा पानी साफ करके उससे मरुस्थलों की सिंचाई की जा सकेगी, बड़ी मात्रा में रासायनिक खाद का निर्माण किया जायेगा तथा अनगिनत कारखाने कायम किये जा सकेंगे। भारत में प्रचुरता की स्थिति लाने के लिए तारापुर बिजलीघर का उद्घाटन एक बड़ी मंजिल का सूचक होगा।

● ●

सम्पादकीय

अपोलो-१३ : चन्द्रमा पर राहु का कोप

किसे ज्ञात था कि अपोलो-१३ चन्द्रमा तक न पहुँच कर दुर्घटनाग्रस्त हो जावेगा ! शायद संसार भर के मानव इसे स्वीकार भी न करते यदि उनसे कहा जाता कि अन्तरिक्ष यान इस प्रकार विफल हो सकता है। तब शायद ऐसा कहने वाला महामूर्ख माना जाता। किन्तु दुर्घटना हो ही गई। यात्रा के बीच में ही आक्सीजन की टंकी फट गई और यान चालकों के वश में न रह पाया। धरती से यान पर टकटकी लगाये असंख्य अमरीकी एवं अन्य देशवासी एकदम साँस साध बैठे जब उन्हें इस दुर्घटना की खबर दी गई। शायद ही पृथ्वी तल का कोई ऐसा मनुष्य रहा हो जिसने अन्तरिक्ष यात्रियों की सकुशल वापसी के लिये ईश्वर से प्रार्थनायें न की हों।

अन्तरिक्ष अभियान में यह अभूतपूर्व घटना थी। ह्यूस्टन में स्थल पर कार्य करने वाली वैज्ञानिक टोली शायद ऐसी घटनाओं के लिये पहले से कटिबद्ध थी। उधर से दुर्घटना का पता लगा नहीं कि गणनायन्त्रों ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। यात्रा के दौरान इन गणनायन्त्रों पर अन्तरिक्ष-यान की गति, दिशा, भार आदि की वास्तविक जानकारी अंकित होती रहती है। इनकी सहायता से कण्ट्रोल अधिकारियों ने यह अनुमान लगाने में सफलता प्राप्त की कि कौन सी विद्युत शक्ति, राकेट शक्ति और कितना ईंधन, आक्सीजन तथा जल वहाँ मौजूद है। उसी के अनुसार अन्तरिक्ष यान को चन्द्रमा की ओर न जाने देकर पृथ्वी पर लौटाने की योजना कार्यान्वित की गई। यह कितनी बड़ी सफलता थी कि अन्तरिक्ष यान पूर्व निदिर्ष्ट स्थान पर उतारा जा सका ?

यह सच है कि कई बार चन्द्रमा पर मानव पदार्पण हो चुकने के बाद इस बार जिस आशातीत सफलता का आत्मविश्वास के साथ पूर्वानुमान किया गया था वह ध्वस्त हो गया है। किन्तु इसका वैज्ञानिक महत्व पहले से कहीं अधिक बढ़ चुका है। अब वैज्ञानिकों को अन्तरिक्ष यात्रा के संकटों का आभास हुआ है एवं वे भविष्य में और भी कठिन यात्रा की सम्भावनाओं के लिये प्रेरित हो कर कार्य करेंगे। हर बार सफल अवतरण होता ही रहे, इसकी कोई गारंटी नहीं रह गई।

सम्भव है कि अमरीकी अन्तरिक्ष सफलताओं में यह प्रयास कलंक सा दीखे और कुछ राष्ट्रों को ऐसा लगे कि अब अमरीका अगले प्रयासों को त्याग देगा। किन्तु जैसा कि अन्तरिक्ष यात्री लावेल के कथन से स्पष्ट है वे अब भी चन्द्रमा की यात्रा के लिए तैयार हैं। यह सच है कि इस बार चन्द्रमा पर राहु का प्रकोप हुआ है, चन्द्रमा के रहस्यों को जानने के मार्ग में बाधा आई है किन्तु वैज्ञानिक इससे डरने वाले नहीं। वे दुगुने उत्साह से कार्य करेंगे। धन का अपव्यय भौतिकवादियों को दहला सकता है किन्तु जिनके मन में लगन है वे उसकी परवाह नहीं करते। आज न सही कल; चन्द्रमा के रहस्यों का पूर्ण उद्घाटन होना ही है। यदि अमरीका तथा रूस द्वारा यह कार्य न हो सका तो शायद वही भारत या अन्य विकासशील राष्ट्रों द्वारा होकर रहेगा।

● ●

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | चैत्र २०२७ विक्र०, १८९२ शक मई १९७० | संख्या ५

देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर

● डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

कृषि शास्त्र के क्षेत्र में दिनों दिन बढ़ते हुये ज्ञान के साथ साथ पौधों के स्वस्थ विकास के लिये आवश्यक तत्वों में सूक्ष्म मात्रिक तत्वों को अधिकाधिक महत्व दिया जाने लगा है । इन तत्वों की आवश्यकता पौधों के लिए उतनी ही होती है, जितनी कि प्रमुख तत्वों की, परन्तु इनकी आवश्यक मात्रा प्रमुख तत्वों की अपेक्षा न्यून होती है । यही कारण है कि इनको 'सूक्ष्म मात्रिक तत्व' के नाम से पुकारा जाता है । ये सूक्ष्म मात्रिक तत्व हैं—ताँबा, जस्ता, मैंगनीज, बोरान, मालिब्डनम तथा लोहा । इन तत्वों की प्राप्य मात्रा यदि आवश्यकता से कम हुई तो पौधों का विकास रुक जाता है. एवं उनमें तरह तरह के रोगों के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं । यदि ये रोग समय पर आवश्यक तत्वों को डाल कर रोके नहीं जाते तो सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाती है एवं किसानों को मिलता है केवल पौधों का सूखा ढाँचा । यदि ये ढाँचे किसी रूप में भी जानवरों को खिलाये जाते हैं तो उनमें भी तत्वों की न्यूनता के कारण अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । इस प्रकार हम देखते है कि मिट्टी में इन तत्वों की न्यूनता पौधों के विकास को तो रोक ही देती है पशुओं पर भी हानिकर प्रभाव डालती है । ऐसे दोहरे नुकसान करने वाले ये सूक्ष्म मात्रिक तत्व कभी कभी मिट्टी में अधिक मात्रा में रहने पर भी पौधों को प्राप्य नहीं होते हैं ।

ध्यान देने पर यह विदित होगा कि मिट्टी की कुछ भौतिक तथा रासायनिक क्रियायें इनकी प्राप्यता पर प्रभाव डालती हैं । इन प्रभावकारी क्रियाओं में मिट्टी में चिकनी मिट्टी की मात्रा, मिट्टी का पी०एच०, चूने एवं कार्बनिक पदार्थों की मात्रा प्रमुख हैं । मृदा में इन तत्वों की समुचित प्राप्यता बनाये रखने के लिये इन कारकों पर ध्यान रखना आवश्यक है ।

प्रायः देश के किसी न किसी कोने से किसी रोग के लग जाने के कारण सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाने के समाचार मिलते रहते हैं । इसके लिये तरह तरह की अटकलें

लगाते-लगते उस साल की फसल पूर्णतया नष्ट हो चुकी होती है। अतः यह आवश्यक है कि फसल लेने के पहले मिट्टी की रासायनिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त हो। इसके साथ ही इन तत्वों की न्यूनता सम्बन्धी रोगों की समुचित जानकारी हो। आइये, देखें इन छोटे तीरों द्वारा बने गहरे घावों को एवं इन घावों की गहराइयों को।

ताँबाः हरे पौधों में ताँबे के न्यूनता जनित रोग विभिन्न पौधों में अलग अलग होते हैं। फिर भी इसका क्लोरोसिस रोग तो प्रायः सभी पौधों में देखा गया है। सिट्रस फलों में गोंद निकलना ताँबे की न्यूनता से उत्पन्न प्रमुख रोग है। चित्तीदार पत्तियों, शीर्ष डालियों का गिर जाना, अन्तर गाँठों का छोटा हो जाना, फलों का फट जाना आदि इस तत्व की कमी के लक्षण हैं।

अनाज की फसल में सफेद टिप, पीला टिप आदि रोग ताँबे की न्यूनता के कारण होते हैं। इन रोगों के होने पर पहले तो फसलों में बालें निकलती ही नहीं, यदि निकलीं भी तो वे छोटी होंगी एवं उनमें दाने बहुत ही कमजोर होंगे। इस प्रकार यह देखा गया है कि दाने की उपज भूसे की उपज से अधिक प्रभावित होती है।

पौधों में ताँबे की न्यूनता मिट्टी में कापर सल्फेट डालकर या इसके घोल का पौधों पर छिड़काव करके ठीक की जा सकती है। छिड़काव के द्वारा ताम्र की न्यूनता शीघ्रता से दूर की जा सकती है। मिट्टी में इस तत्व को डालने के पहले मिट्टी में चूने की मात्रा उसका पी-एच० एवं कार्बनिक पदार्थ के बारे में पूरा ज्ञान आवश्यक है। अधिक चूने एवं अधिक कार्बनिक पदार्थ वाली मिट्टी में ताँबे की प्राप्यता कम हो जाती है अतः ऐसी मिट्टियों में आवश्यकता से अधिक ताँबा डालना पड़ता है। पी-एच० का अधिक एवं बहुत कम होना ताँबे की प्राप्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इन कारकों की जितनी ही अधिक मात्रा मिट्टी में होगी, न्यूनता रोग उतना ही अधिक गहरा होगा।

जस्ता : जस्ते की न्यूनता का प्रमुख लक्षण है पत्ती की शिराओं एवं उसके आस-पास के स्थानों पर हरे रंग का अभाव। कहीं कहीं रोग की अत्यधिकता के कारण हरा रंग इस प्रकार अदृश्य हो जाता है कि पत्ती एकदम सफेद दृष्टिगत होने लगती है। इस तत्व की कमी होने पर पैलीसेड कोशिकायें आवश्यकता से अधिक बढ़ जाती है। इस प्रकार पत्तियाँ आवश्यकता से अधिक बड़ी दिखाई पड़ती हैं। इसकी कमी से टमाटर की जड़ें जगह जगह पर फूल जाती हैं। फलीदार पौधों में इसकी कमी से फलियों में दाने बहुत कम पड़ते हैं जिससे उपज बहुत घट जाती है। अभी हाल में धान का खैरा रोग इस तत्व की न्यूनता के कारण बताया गया है।

न्यूनता के लक्षण प्रतीत होने पर जिंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करना चाहिए। मिट्टी में डालने के पहले मिट्टी में उपस्थित चूने की मात्रा, कार्बनिक पदार्थ एवं पी-एच० का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

मैंगनीज़ः मैंगनीज़ की न्यूनता से पत्तियों की अन्तर-शिराओं से लगे हुये भाग हरीतिमा रहित हो जाते हैं। रोग की अति अवस्था में सम्पूर्ण पत्ती की यही अवस्था हो जाती है। दाने वाली फसलों में ग्रे स्पेक, सफेद स्ट्रीक ड्राई स्पाट, एवं लीफ स्पाट जैसे रोग इसकी न्यूनता के कारण होते हैं। मटर में मार्श स्पाट, आलू में पहला ब्लाइट, गन्ने का पहला जैसे हानिकर रोग इसी की न्यूनता के कारण होते हैं।

कमी के साथ कभी-कभी इसकी अधिकता से भी पौधे बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। तम्बाकू जैसी मुख्य फसल इसकी थोड़ी भी अधिकता नहीं बर्दाश्त कर सकती एवं असमय में ही इसकी पत्तियाँ सूखने लगती हैं।

यह तत्व जैसा कि विदित है चूने की मात्रा एवं मृदा की पी-एच० स्थिति से अन्य सूक्ष्म मात्रिक तत्वों से अधिक प्रभावित होता है। अतः इसका छिड़काव करना अधिक उपयुक्त है। चूंकि मैंगनीज डाई आक्साइड अधिक सस्ता साधन है अतः इसके सम्बन्ध में जानकारी आवश्यक है। यह पानी में अघुलनशील तो है परन्तु मिट्टी में डालने पर यदि उसमें कार्बनिक पदार्थ की पर्याप्त मात्रा है तो यह धीरे-धीरे घुलनशील होता रहता है।

बोरान: इसकी न्यूनता प्रायः अन्य सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की अपेक्षा अधिक देखी गई है इसलिये कृषि के लिये इसे हम प्रमुख सूक्ष्म मात्रिक तत्व की संज्ञा दे सकते हैं। इसकी न्यूनता के लक्षण पौधों की जाति के अनुसार बदलते रहते हैं। इसकी न्यूनता में प्रायः पौधों की जड़ें बिल्कुल नहीं बढ़ पातीं। परिणाम यह होता है कि फ्लोयम एवं जायलम कोश दोनों एक दूसरे में मिल जाते हैं। इस प्रकार पौधों में तत्व घोलों को ले जाने एवं ले जाने वाली नलिकायें टूट जाती हैं एवं खाद्य पदार्थ समुचित रूप में प्रत्येक भाग में नहीं पहुँच पाता। परिणामस्वरूप पौधा मर जाता है। प्रथम मृत्यु पौधे के वर्धन कलिका की होती है जिससे पौधे का बढ़ना रुक जाता है।

इसकी कमी से चुकन्दर का "हर्ट राट" सेव का इन्टरनल कार्क एवं अल्फाल्फा का "यलो टाप" अन्य प्रमुख रोग पाये गये हैं। शलजम का ब्राउन हर्ट रोग पूरी की पूरी फसल नष्ट कर देता है। बोरान की कमी हो जाने से पौधे का फूल एवं फल धारण करना, सेचन क्रिया, कोषों का विभाजन, नाइट्रोजन उपापचन, कार्बोहाइड्रेट उपापचन, हारमोन का वहन एवं प्रभाव तथा पौधों का पानी से सम्बन्ध आदि कार्य प्रभावित होते हैं।

मिट्टियों में अन्य तत्वों को डालते समय बोरान का कोई यौगिक भी मिलाया जा सकता है। इसको मिट्टी में डालते समय बोई जाने वाली फसल मिट्टी में मिलाने के ढंग एवं बोरान के स्रोत के बारे में ज्ञान आवश्यक है। मिट्टी में अधिक चूने की मात्रा इसकी प्राप्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

मालिब्डनम: यह पौधों के लिये आवश्यक तत्वों की शृंखला में जोड़ा जाने वाला अन्तिम आवश्यक तत्व है। लेकिन इसका प्रयोग इतनी तेज़ी से बढ़ रहा है कि वह दिन दूर नहीं जब यह सूक्ष्म मात्रिक तत्वों में प्रमुख तत्व गिना जाने लगेगा। यह भी एक आश्चर्यजनक बात है कि इसकी सबसे कम मात्रा पौधों के लिये आवश्यक होती है।

गोभी का ह्विपटेल रोग सर्वत्र पाया गया है। इस रोग से फसल पूरी की पूरी नष्ट हो जाती है। सरसों जाति की फसलें भी इस तत्व की कमी से बहुत अधिक प्रभावित होती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार ०.१ के ०.३ अंश प्रति दस लक्ष अंश मालिब्डनम मिट्टी में डालने से फसल की पैदावार बढ़ जाती है।

इस तत्व की प्राप्यता अन्य तत्वों की भाँति अधिक पी-एच० होने पर घटती नहीं अपितु बढ़ जाती है। इसकी कमी प्रायः अम्लीय मिट्टियों में पाई जाती है। इन मिट्टियों में कुल बोरान की मात्रा पर्याप्त होते हुये भी बोरान अप्राप्य अवस्था में होने के कारण फसल को प्राप्त नहीं हो पाता।

लोहा: इस तत्व की मिट्टी में उपस्थित मात्रा किसी भी प्रमुख आवश्यक तत्व से कम नहीं होती परन्तु इसकी पौधों के लिये आवश्यक मात्रा इसको सूक्ष्म मात्रिक तत्व श्रेणी में लाती है। इसकी प्राप्यता अधिक चूने वाली मिट्टियों में अत्यन्त कम हो जाती है। परिणाम यह होता है कि अनेक प्रकार के रोग पौधों को प्रभावित करते हैं। इसकी कमी से पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, पौधों का विकास रुक जाता है एवं फल यह होता है कि दाने नहीं पड़ते। फलों में इसकी कमी के लक्षण प्रायः हर एक मिट्टी में देखे गये हैं।

लोहे की न्यूनता को रोकने के लिये इसको प्राप्य अवस्था में मिट्टी में रख पाना अत्यन्त कठिन है। अमोनियम सल्फेट के साथ इसका प्रयोग लाभकर बताया जाता है।

मृदा विज्ञान के क्षेत्र में हुई शोधों से ज्ञात हुआ है कि इन तत्वों को इनके कीलेटों (Chelates) के रूप में डालना बहुत ही लाभकर है। विशेषकर जिन्क, मैंगनीज, तथा लोहा के कीलेट तो बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुये हैं।

आज जब कि प्रति दिन नई-नई अधिक उपजाऊ किस्में निकाली जा रही हैं सूक्ष्म मात्रिक तत्वों का कुछ ही दिनों में अभाव हो जाना अवश्यम्भावी है। अतः इन उन्नतिशील जातियों से पूर्ण फायदा उठाने के लिये यह

[शेष पृष्ठ ५ पर]

विस्फोटक पदार्थों के कुछ विशिष्ट उपयोग

● डा० अरुणकुमार सक्सेना

डाइनामाइट, प्लास्टिक जेली तथा टी० एन० टी० आदि विस्फोटक पदार्थों की विध्वंसक-क्षमता को देख-सुन कर लोगों के दिल काँप उठते हैं। इन पदार्थों से बने अस्त्र देखते-देखते बड़ी से बड़ी तथा मजबूत से मजबूत इमारत को क्षण भर में धराशायी कर देते हैं। बड़े से बड़े पुल जो वर्षों के अथक परिश्रम से बनाये जाते हैं, वे पलक मारते भू-लुण्ठित हो जाते हैं। यात्रियों से भरी तथा टैंकों से लदी रेल गाड़ियाँ क्षण भर में ताश के पत्तों के घर के समान नष्ट हो जाती हैं।

किन्तु शायद आपने कभी ध्यान नहीं दिया होगा कि ये पदार्थ उपयोगी भी हो सकते हैं! शायद आप इसे मानने के लिए तैयार भी न हों! किन्तु इन विस्फोटक पदार्थों के कुछ विशिष्ट उपयोग भी हैं, जिनसे मनुष्यों का उपकार भी होता है। जंगलों में बड़े-बड़े वृक्षों के काटने के पश्चात् जो ठूंठ बच रहते हैं, उनको भी इन पदार्थों की सहायता से अल्प समय में एवं नगण्य दामों में ठेकेदार निकलवा कर लाभ उठाते हैं। ये उपयोग कई प्रकार के हैं :

१– शंकु घान या आकृति मूलक घान

२– भू-दोलनी सर्वेक्षण

३– धातु का काम

४– जल के भीतर विस्फोट

शंकुधान या आकृतिमूलकधानः इसको मुनरो नामक वैज्ञानिक ने १८८८ ई० में अपने द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त पर आधारित द्वितीय महायुद्ध के दौरान निकाला था। उन्होंने इसका उपयोग मोटी-मोटी इस्पात की चादरों को कम समय में छेद करने के लिये किया था, जो आगे चल कर बजूका तथा PIAT आदि आधुनिक अस्त्रों को तैयार करने में सहायक हुआ। इन अस्त्रों की भेदन शक्ति इतनी अधिक होती है कि ये देखते-देखते पैटन टैंकों को भी कुछ ही क्षणों में भेद कर बेकार कर देते हैं। इसमें शंकु के आकार इस्पात के अत्यन्त कठोर टुकड़ों के पीछे बहुत ही अधिक विस्फोटक शक्ति वाले विस्फोटक पदार्थ रखे जाते हैं। इन अस्त्रों को जब छोड़ा जाता है, तो शंकु वाला भाग विस्फोटक की सहायता से अपनी धुरी पर तेजी से नाचता हुआ इस्पात की चादरों में क्षण भर में छेद कर अन्दर चला जाता है। आजकल इस सिद्धान्त का उपयोग कुए का मोहरा (well Casing) तथा खुली भट्टी के टैपिंग में होता है।

भू-दोलनी भविष्यवाणीः पृथ्वी में धातुओं तथा तेल के भण्डारों का पता लगाने के लिए सैकड़ों फुट गहराई तक पृथ्वी की जाँच की जाती है। भू-गर्भ वैज्ञानिक दिन-रात धातुओं तथा तेल के भण्डारों की खोज कर रहे हैं। इस कार्य के लिए भूकम्प के धक्के वाले मूल-सिद्धान्त पर आधारित तरंगों का उपयोग किया जाता है। इन प्रयोगों में वे पृथ्वी के भीतर सैकड़ों फुट नीचे विस्फोट कराते हैं तथा उनसे निकली हुई ध्वनि तथा कम्पन तरंगों को अपने उपकरणों से लेखापत्र पर अंकित कर लेते हैं। फिर व्याख्या करके पृथ्वी में लुप्त धातुओं तथा तेल को ज्ञात कर लेते हैं। इस प्रयोजन के लिए अमोनियम नाइट्रेट से बने विस्फोटक पदार्थों को बन्द कनस्टरों में गहराइयों में ले जाकर विस्फोट कराते हैं तथा उनसे उठे स्थिर-जल-दाब को नाप लेते हैं।

धातु का कामः आजकल विभिन्न प्रकार की धातुयें उपलब्ध हो रही हैं जो अत्यधिक कठोर होती हैं। उनको

मशीनों से एक विशेष आकार में ला पाना एक टेढ़ी खीर है। इन क्रियाओं तथा कार्यों के लिए विशेष प्रकार की बड़ी-बड़ी, मँहगी मशीनों को कार्य में लाना पड़ता है। यह कार्य इन विस्फोटक पदार्थों के द्वारा अत्यन्त आसानी से सम्पन्न हो जाता है। खुदाई भी आजकल इन पदार्थों के द्वारा आधुनिक रीति से हो रही है।

जलगत विस्फोट : आबादी बढ़ रही है। यातायात बढ़ रहा है। माल की खपत भी अपने पुराने रिकार्डों को तोड़ चुकी है। जहाज भी बड़े बन रहे हैं। ये बड़े-बड़े जहाज पुराने बन्दरगाहों के लिए एक समस्या बन गये हैं। आजकल बन्दरगाहों को भी गहरा किया जा रहा है जिससे बड़े से बड़े मालवाहक जहाज सीधे बन्दरगाहों पर सामान शीघ्रता से उतार सकें। इसको दृष्टि में रखते हुए पानी के अन्दर मोटी-मोटी चट्टानों को काटने के लिए विस्फोटकों का प्रयोग किया जा रहा है। रिपल राक बन्दरगाह से जो ब्रिटिश कोलम्बिया के सीपूर जलमध्य में हैं से ३,७०,००० टन चट्टानें इन विस्फोटकों की सहायता से उड़ा कर निकाली गई हैं और इन्हें बड़े-बड़े मालवाहक जहाजों के योग्य बना दिया गया है।

● ●

[पृष्ठ ३ का शेषांश]

आवश्यक है कि हमारे किसानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया जाय। इनके द्वारा जनित रोगों इनकी प्राप्यता को प्रभावित करने वाले कारकों एवं न्यूनता को दूर करने के लिये उपायों के बारे में किसानों को जानकारी दी जाय। किस फसल एवं किस मिट्टी में कितनी मात्रा किसी तत्व की डालनी है यह भी एक आवश्यक विषय है क्योंकि कमी के अलावा इनकी अधिकता भी पौधों एवं उनको खाने वाले पशुओं के लिये हानिकर है।

● ●

पोषण सम्बन्धी पाँच योजनायें

अमरीका की सहायता से भारत से निम्नवेतन भोगी व्यक्तियों के भोजन में सुधार की पंचसूत्री योजना कार्यान्वित होगी। इसके अंग होंगे :—

- नमक के साथ लोह तथा कैल्सियम की मिलावट
- आटा के साथ प्रोटीन, खनिज तथा विटामिनों का मिश्रण
- चाय बनाने के लिये दूध के स्थान पर ऐसी औषधि का प्रयोग जिसमें वानस्पतिक प्रोटीन होंगे
- आधुनिक बेकरियों (पावरोटी की शालाओं) से शृंखलित सूचना कार्यक्रम
- खाद्य विश्लेषण के लिये प्रयोगशालाओं की स्थापना करते समय आवश्यक उपकरण।

लोमहर्षक प्राणि लेखमाला—२

लुप्तप्राय जन्तु—गेण्डा

• राकेश बेदी

शरीर की बनावट: गेंडे का भार सामान्यतया दो-तीन टन होता है। उगाण्डा में एक सफेद मादा गेण्डा पकड़ी गई थी जिसका वजन साढ़े-तीन टन के लगभग था। अनुमान है कि धरती पर यह सबसे भारी जीवित प्राणी है। दो साल के बच्चे का भार लगभग आधा टन होता है। भारी-भरकम शरीर की तुलना में इसका कद छोटा होता है। एशिया की जातियों में भारत का एक सींग वाला गेण्डा सबसे बड़ा गेण्डा है। कन्धे पर इसकी कुल ऊँचाई लगभग छह फुट होती है। थूँथनी से लगा कर पूँछ के सिरे तक की लम्बाई साढ़े दस फीट होती है। चारों टाँगें जहाँ शरीर के साथ मिलती हैं वहाँ खाल की तहें ऐसी दीखती हैं मानों ढालों की तहें पड़ी हों। खाल बहुत मोटी, कवच जैसी और काले-सलेटी रंग की होती है जिस पर बाल इतने विरल होते हैं मानों हो ही नहीं। हाँ कान और पूँछ पर बाल उगे रहते हैं।

गेण्डे के पैर छोटे और गठीले होते हैं। प्रत्येक पैर में तीन अंगुलियाँ होती हैं जो खुरनुमा नाखून में समाप्त होती हैं। तीसरी या बीच की अँगुली सबसे अधिक उन्नत होती है। गेण्डे के नाखून हाथी के नाखून जैसे लगते हैं।

इस पशु में हँसलियाँ (Collar bones) नहीं होतीं। सिर बड़ा और आँखें छोटी होती हैं। मुँह भद्दा-सा दीखता है। उसके ऊपर संगीन सरीखा निकला हुआ सींग भयानक जान पड़ता है। दूर से देखने पर नर और मादा गेण्डे में कोई अन्तर नहीं मालूम पड़ता क्योंकि दोनों की थुँथनी पर एक ही जैसा सींग उगा होता है।

गेण्डे के सींग की रचना अन्य पशुओं के सींगों से बिलकुल भिन्न होती है। वास्तव में यह सींग न हो कर आपस में मिल कर चिपके हुए बालों का एक समूह है जो बहुत कठोर बन गया होता है। ये बाल शृंग तन्तुओं के एक साथ मिल जाने से बने होते हैं। यह सींग कपाल की हड्डी से जुड़ा हुआ नहीं होता, जैसे कि ढोर-डंगर तथा मृगों के सींग हड्डियों के साथ ही बढ़ी हुई रचनाएँ होती हैं। गेण्डे का सींग अधिक चर्मीय होता है और माँस के अन्दर तक गया होता है। धकेला जाने पर यह बायें-दायें मामूली सा हिल सकता है। जोर की चोट लगने पर यह टूट जाता है। चोरी-छिपे शिकार करने वाले सींग की जड़ में लाठी से कस कर प्रहार करके इसे तोड़ लेते हैं। फलस्वरूप बने जख़्म में से बहुत खून बहता है। एक बरस के भीतर ही वहाँ नया सींग उगना शुरू हो जाता है। सींग की लम्बाई एक-डेढ़ फुट होती है। औसत सींग आठ इंच से बड़ा नहीं होता। भारतीय गेण्डे का सबसे बड़ा सींग चौबीस इंच लम्बा देखा गया है जो ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है। दिल्ली के चिड़िया घर में 'मोहन' नामक गेण्डे का सींग छह इंच से बड़ा नहीं होगा। अफ्रीका में पाये गये रहाइनोसिरोज सुमात्रेन्सिस के सींग से भारतीय गेण्डे को ईर्ष्या हो सकती है। यह बत्तीस इंच लम्बा था।

आत्मरक्षा या दुश्मन पर हमला करने के हथियार के रूप में भारतीय गेण्डे अपने सींग का प्रयोग नहीं करते। हाँ, अफ्रीकी गेण्डा इस्तेमाल करते हैं। भारतीय गेण्डे के ऊपरले और निचले जबड़े में जो कुतरने वाले दाँत रहते हैं, उनसे वह अपने दुश्मन को काटने की कोशिश करता है। इस प्रक्रिया में वह सिर को ऊपर धकेलता है। इससे यह कल्पना कर ली जाती है कि वह सींग मार रहा है। इसके विपरीत अफ्रीकी गेण्डे के जबड़े छोटे रहते हैं और उसमें भारतीय गेण्डे जैसी शक्तिशाली दाढ़ों का अभाव होता है।

अफ्रीकी गेण्डे के लिये सींग एक हथियार है। वह उसे घिस कर सदा पैना रखता है परन्तु भारतीय गेण्डा ऐसा नहीं करता है और न ही उसे इसकी आवश्यकता होती है। हाँ भारतीय गेण्डे को हमने चिड़िया घरों में कई बार दीवार के साथ या सीखचों के साथ सींग को रगड़ते हुए देखा है। उसका कारण सींग की जड़ में लगे वे पराश्रयी होते हैं जो खुजली पैदा कर रहे होते हैं। गेण्डा केवल खुजलाहट को मिटाने के लिए सींग को रगड़ता है। शिकागो के लिंकन पार्क चिड़ियाघर में भारतीय गेण्डे का जोड़ा सींगों को रगड़ा करता था। चिड़िया घर के सहायक संचालक राल्फ ग्राहम ने कीचड़ में पराश्रयियों को मारने की कुछ दवाएं मिला कर सींग पर लगा दीं। इससे उनकी सींगों को घिसने की आदत छूट गई थी तथा उनके सींग भी ठीक तरह से बढ़ने लगे।

मेन विश्वविद्यालय के एक अमेरिकी जीवशास्त्री डाक्टर डब्ल्यू० एफ० डोव ने १९३३ ई० में एक अमेरिका बैल के मस्तक पर मामूली सा आपरेशन करके यह सिद्ध कर दिया था कि पशुओं के मस्तक पर गेण्डे (युनिकार्न-एक श्रृंगी) के सींग जैसा सींग उगाया जा सकता है।

शाकाहारी प्राणी: गेण्डा शाकाहारी प्राणी है। प्रकृति में यह वृक्षों की टहनियाँ, कोपलें, जड़ें, बेलें, घास आदि खाकर गुजर करता है। चारा खाने में ऊपर का ओठ अधिक काम आता है इसलिए वह बहुत मजबूत होता है। आहार के भेद के अनुसार गेण्डे के विभिन्न जातियों के ओठों की रचना में अन्तर होता है। अफ्रीकी काला गेण्डा क्योंकि कोपलों को बहुत कुतर कर खाता है इसलिये उसका ओंठ मुड़ा हुआ रहता है। भारतीय गेण्डे के समान अफ्रीकी सफेद गेण्डा घास को चरने वाला प्राणी है इसलिए उसके ओंठ चौकोर होते हैं।

देहली की पशु वाटिका में मोहन नामक गेण्डे के भोजन में घास, चोकर, चना, जई, सब्जियाँ, फल, वृक्षों की पत्तियाँ और कोमल शाखाएं रहती हैं। सुबह नौ बजे उसे सूखा आहार दिया जाता है जिसमें हरा चारा और पत्ते रहते हैं। हरे चारे में ज्वार, जई आदि की चरी ढाई सौ किलो ग्राम और किसी पेड़ के ताजे काटे हुए पत्ते सौ किलो ग्राम रहते हैं। पीपल, बरगद, जामुन, इमली आदि तीस-पैंतीस प्रकार के पेड़ हैं जो इसके भोजन के काम आते हैं। राजधानी में इनमें से जो मिल जाता है वह मंगा लिया जाता है। नीम पत्तियों को यह इतना शौक से नहीं खाता।

हरे चारे के अलावा सुबह के भोजन में यह मिश्रण भी इसे दिया जाता है:

भीगा चना	डेढ़ किलोग्राम
गेहूँ का चोकर	डेढ़ किलोग्राम
जई और जौ	डेढ़ किलोग्राम
गुड़ (केवल सर्दियों में)	आधा किलोग्राम
हल्दी पिसी हुई	पचास ग्राम
फीड सप्लिमेंट	पैंतीस ग्राम
हड्डियों का चूरा (बोन मील)	पैंतीस ग्राम
ग्रौरो फेक	पैंतीस ग्राम

दोपहर ढाई बजे इसे खिचड़ी दी जाती है जिसमें ये चीजें डाली जाती हैं :—

चावल	२ किलोग्राम
मूँग की दाल	आधा किलोग्राम
अलसी के बीज	एक पाव
हल्दी	पचास ग्राम
गुड़	आधा किलोग्राम

गेण्डे का पालक सुबह के सूखे भोजन मिश्रण में से

आधा बचा लेता है। उसे खिचड़ी में मिला कर गोले बना लेता है। बाड़े के बाहर पालक जब गोले बना रहा होता है तो तसले की आवाज सुनकर मोहन स्वयं वहाँ पहुंच जाता है और पालक के हाथ से गोले खाता है।

मोहन की आहार तालिका में छह केले प्रति दिन सम्मिलित किये जाते हैं। पशु वाटिका में जब कोई बिमारी (वायरस इन्फेक्शन) फैलने वाली होती है तो उसकी रोकथाम के उपायों में सभी पशु पक्षियों को एण्टिबायोटिक दवा दी जाती है। गेण्डे को यह दवा केले के अन्दर रख कर खिला देते हैं। सावधानी के रूप में साल में दो-तीन वार इसका चार-चार दिन का कोर्स मोहन को दे दिया जाता है।

आदतें: गेण्डा रात में विचरने वाला जीव है। यह गरमी और लू जल्दी खा जाता है इसलिये दिन भर अपनी ठण्डी माँदों के अन्दर कीचड़ में लेटा रहता है। गेण्डों का नित्यकर्म सूरज छिपने से पहले ही शुरू हो जाता है। वे अपनी मांदों से निकल कर घास के मैदानों में चरने या जल धाराओं में पानी पीने निकल पड़ते हैं। इनमें झुण्ड में रहने की बुद्धि नहीं होती। ये जोड़ों में रहते हैं। बड़े हो जाने पर बच्चे मां-बाप से अलग हो जाते हैं। अपवाद रूप से चार पांच गेण्डे भी एक साथ चरते हुए मिल जाते हैं। एक बार सात गेण्डे एक जगह चरते हुए देखे गये थे। ये एक परिवार या एक गिरोह के सदस्य नहीं थे क्योंकि विभिन्न दिशाओं से चरते हुए ये वहाँ अचानक आ मिले थे। छेड़ा जाने पर ये सातों अलग-अलग दिशाओं में चले गये।

स्वभाव से यह डरपोक जानवर है। मनुष्य को कम ही मारता है परन्तु घायल और क्रुद्ध हो जाने पर सूअर की तरह गुरगुराता हुआ बड़ा भयंकर हमला करता है। यह सचमुच प्राचीन युग के प्राणियों की याद दिलाता है जिनमें देह तो खूब विशाल बन गई होती है परन्तु उसकी तुलना में मस्तिष्क का विकास नहीं हुआ होता।

गेण्डे की दृष्टि इतनी तीव्र नहीं होती परन्तु ऐसी कमजोर भी नहीं होती। पकड़ने की प्रक्रियाओं में देखा गया है कि ट्रक के पार्श्व में यदि बिस्कुट के बराबर एक निशान हो तो उसे वह पचीस गज दूर से देख कर अपने सींग से निशाना साध सकता है।

दूसरे चौपाये के समान गेण्डा भी उछलता हुआ बड़े वेग से भाग सकता है कूद सकता है, ट्विस्ट कर सकता है और झटपट मुड़ सकता है। हाथी इनमें से कुछ नहीं कर सकता। बड़ा आकार और शरीर होने के बावजूद भी भारतीय गेण्डा काफी तेज भाग सकता है।

गेण्डों की आपस में भयंकर लड़ाई नहीं होती कि उनकी जान चली जाय या इसमें वे भयंकर रूप से घायल हो जायँ।

पानी से प्यार: गेण्डा पानी वाली जमीन में रहना पसन्द करता है। पशु-वाटिकाओं में उसे इसी प्रकार का स्थान दिया जाता है। लखनऊ की पशु-वाटिका में इसका बाड़ा एक आदर्श प्राकृतिक आवास बन गया है। पशु-वाटिकाओं में देखा गया है कि सरदियों में तो यह अपने बाड़े में इधर-उधर घूमता है या धरती पर लेटा रहता है, परन्तु मार्च में गरमी शुरू होते ही यह बाड़े के जोहड़ में घुस जाता है और भैंसों की तरह अपने शरीर को सारा का सारा पानी में डुबो लेता है। केवल थूथनी और आँखें बाहर रखता है जिससे ताजी हवा में साँस ले सके। थूँथनी पर बैठने वाली मक्खियों को कानों से उड़ाता रहता है। बरसात में भी यह जब कीट-पतंगे परेशान करते हैं तो यह अपना अधिक समय जोहड़ के अन्दर गुजारता है। पानी से बाहर विचरते समय यह मक्खियों व मच्छरों के दंश से बचने के लिए अपने शरीर पर कीचड़ लपेटे फिरता है।

गेंडे कम क्यों हो गये: इस उपमहाद्वीप के अधिक भागों से गेण्डे के लुप्त होने के मुख्य कारण निम्नलिखित प्रतीत होते हैं :—

१. सुनने और देखने की कम शक्ति।

२. मन्द बुद्धि और मूर्खता। जब तक खतरा सिर पर न आ जाय यह बुद्धुओं की तरह चरता चला जाता

[शेष पृष्ठ १३ पर]

बागवानी

● डा० शिवगोपाल मिश्र

दिनों दिन शहरों में खुली जगहें विलुप्त होती जा रही हैं। जहाँ देखिये वहीं ऊंची-ऊंची इमारतें जन्म ले चुकी हैं। किन्तु क्या आपने कभी सोचा है कि बिना खुली जगह के मुक्त ढंग से श्वास ले पाना सम्भव हो सकेगा ? नगरों की आयोजना करते समय आयोजकों के समक्ष यह विकट समस्या है। वे अधिकाधिक मुहल्लों में कम से कम एक केन्द्रीय पार्क की संस्तुति करते हैं जहाँ प्रातः एवं सायंकाल नागरिक खुली हवा में जाकर साँस ले सकें। सुखी एवं स्वस्थ जीवन के लिए खुली हवा अत्यावश्यक है। दिन के समय इसकी प्राप्ति उद्यानों या बगीचों में हो सकती है। किन्तु क्या इतने से सारी आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है ! नहीं, प्रत्येक घर से लगा हुआ बगीचा होना ही इस पूर्ति का सर्वोत्तम उपाय होगा। किन्तु क्या दुमंजिले, तिमंजिले या इससे ऊपर के खण्डों को भी नीचे लगे हुये बगीचे से उतना ही लाभ मिल सकेगा ! उत्तर होगा 'नहीं'। तो फिर ऊपरी मंजिलों पर रहने वालों के लिये बगीचे के साधन कैसे जुटाये जायँ ! आइये, हम ऐसी ही पहेलियों एवं गुत्थियों को सुलझाने में रसायन के योगदान की चर्चा करें।

उद्यान अथवा बगीचा लगाने तथा उसकी देख-भाल करने का कार्य अत्यन्त रोचक होता है। उद्यान से घर की शोभा बढ़ती है, स्वास्थ्य को लाभ पहुँचता है और बैठे-ठाले खाने की चीजें उत्पन्न की जा सकती हैं। प्रातःकाल पुष्पों तथा वृक्षों के बीच घूमने से ताजी हवा मिलती हैं, आँखों में तरावट आती है और जो कवि-हृदय हैं उनके लिये पुष्पों का खिलना, भौरों तथा तितलियों का उड़ना आदि कल्पना के लिये सामग्री प्रदान करते हैं। दिन भर की थकावट को दूर करने का उत्तम साधन है घर के उद्यान में घूमना और बेकार समय में कार्य करके कुछ उत्पादन करना।

अवश्य ही यह उद्यान-विज्ञान का अनुभूत्यात्मक पक्ष है। इसका वैज्ञानिक पक्ष और भी ज्ञानवर्धक है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह न जानना चाहेगा कि उद्यान विज्ञान के अन्तर्गत कौन सा रसायन शास्त्र निहित है, पौधे कैसे उगते हैं, उर्वरक क्या हैं, विभिन्न कीटों तथा रोगों का पदार्थों पर क्या कुप्रभाव हो सकता हैं और सर्वोपरि यह कि क्या मिट्टी के बिना भी बागवानी सम्भव है ! दूसरे शब्दों में हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या ऊंची मंजिलों पर रहने वाले लोग भी बागवानी कर सकते हैं ?

जिसमें रसायन शास्त्र की पहुँच है, उद्यान विज्ञान का वह पक्ष है पौदों की वृद्धि। पौदों की वृद्धि स्वयं एक रासायनिक प्रक्रम है। इसमें मिट्टी के अवयव एवं वायु के अवयव भाग लेते हैं। सूर्य का प्रकाश भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। जिन अवयवों की मिट्टी में न्यूनता होती है उनकी सम्पूर्ति उर्वरकों द्वारा की जा सकती है। यही कारण है कि चाहे खेती हो या बागवानी; दोनों ही में उर्वरकों का अत्यधिक महत्व एवं उपयोग है। इस प्रकार थोड़ी मिट्टी से दीर्घ काल तक पौधों को पोषण मिलता रह सकता है।

पौदे उगते रहते हैं तभी उन पर नाना प्रकार के

कीट एवं अन्य व्याधियों का आक्रमण हो सकता है। किन्तु आधुनिक युग में इन आक्रमणों से बचाव के लिए अनेक उपयोगी रासायनिक औषधियाँ खोज निकाली गई हैं जिसके फलस्वरूप अब न तो पौदों का रस परपोषी चूस सकते हैं और न पौदा व्याधियों से ग्रस्त होकर नष्ट हो सकता है।

और तो और कृत्रिम पोषण के द्वारा पौधों के विकास के लिए मिट्टी अनावश्यक सिद्ध हो चुकी है जिसके फलस्वरूप धरती पर बागवानी करना आवश्यक नहीं रह गया। अब तो कितनी भी ऊँचाई पर फूल उगाइये, तरकारियाँ उत्पन्न कीजिये। यही नहीं, रेगिस्तान में भी खेती कीजिये। यह है रसायन शास्त्र का चमत्कार जिसकी ओर रूस, पोलैण्ड, जेकोस्लोवेकिया, अमरीका, जापान इंगलैंड आदि का ध्यान गया है। जिन देशों में खेती योग्य भूमि सीमित है उनके लिये मृदाहीन बागवानी वरदान सिद्ध हो सकती है।

मिट्टी परीक्षण–अत्यावश्यक

बाग अथवा उद्यान की स्थापना किसी भूखंड में ही किये जाने की सम्भावना है किन्तु जिससे कि लगाये गये पेड़ पौधे तथा फूल पत्तियाँ ढंग से उगें और बढ़ें यह आवश्यक है कि उस भूखंड की मिट्टी का परीक्षण करा दिया जावे। यह मिट्टी परीक्षण वह साधन है जिसके आधार पर कृषि रसायनज्ञ यह बता पाने में समर्थ होते हैं कि अमुक भूमि पर पेड़-पौदे उग सकेंगे या नहीं। आजकल कृषि के अन्तर्गत खेतों की मिट्टी-परीक्षा पर काफी बल दिया जाता है। इससे यह पता चल जाता है कि मिट्टी में कौन कौन से अवयव सीमित मात्रा में हैं और कौन से अधिक मात्रा में। यदि आवश्यक तत्वों में से कोई भी तत्व या कई तत्व न्यून मात्रा में हों तो उनकी पूर्ति रासायनिक उर्वरकों के द्वारा की जाती है। भारतवर्ष में नाइट्रोजन उर्वरकों को तैयार करने के कई कारखाने चालू हो गये हैं जिससे किसानों को अपने खेतों में कई गुनी उपज प्राप्त करने में सहायता मिलती है। यही नहीं, फास्फोरस उर्वरक भी हमारे देश में तैयार होने लगे हैं। कुछ मिट्टियों में पोटैशियम की न्यूनता हो सकती है। इसी प्रकार कुछ मिट्टियाँ अम्लीय हो सकती हैं, तो कुछ क्षारकीय या लवणीय। ऐसी मिट्टियों में खेती करने के पूर्व इन्हें सुधारने की आवश्यकता होती है। यह कार्य यदि मिट्टी अम्लीय हुई तो चूने के प्रयोग द्वारा पूरा किया जाता है। यदि मिट्टी में तनिक भी अवांछित अम्लता या क्षारीयता विद्यमान रहे तो पौदे नहीं उग सकते। कभी कभी मिट्टी में कुछ ऐसे तत्वों की न्यूनता हो सकती है जो पौदों के लिये आवश्यक तो होते हैं किन्तु अत्यल्प मात्रा में। ऐसे तत्व 'सूक्ष्म मात्रिक तत्व' कहलाते हैं और मिट्टी में ठीक से प्राप्य न होने पर पौदों तथा फसलों में नाना प्रकार के न्यूनता रोग उत्पन्न कर सकते हैं। फलतः एक ओर जहाँ नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटैशियम जैसे त्रितत्वों की आवश्यकता है वहीं कैलशियम, मैग्नीशियम जैसे तत्व भी उपयोगी हैं। सूक्ष्म मात्रिक तत्वों में बोरन, जिंक, ताम्र, लोह, मैंगनीज तथा मालिब्डनम ये छह तत्व प्रमुख हैं। इन तत्वों के अतिरिक्त भी पौदों की वृद्धि के लिये पृथक से कुछ कारकों की आवश्यकता होती है। इनमें से आर्द्रता (जल), कार्बन डाइ आक्साइड, सूर्य प्रकाश (ताप) प्रमुख है। साथ ही कुछ हार्मोन भी हैं जो पौदों की वृद्धि को नियन्त्रित करते हैं। इन्हें फायटोहार्मोन या वृद्धि नियामक कहते हैं।

रसायनिक बागवानी

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह धारणा बननी स्वाभाविक है कि मिट्टी तो निमित्त मात्र है। यदि समुचित तत्वों का एक मिश्रण तैयार करके पर्याप्त जल में विलयित कर लिया जाय तो वह पौदों की वृद्धि में सहायक हो सकता है। जब इस प्रकार से कृषि की जाती है तो उसे मृदा विहीन पादप कृषि अथवा रासायनिक बागवानी कहते हैं। यह विज्ञान के साथ ही कला है। इस कला के जनक हैं कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डा० विलियम एफ० गेरिक। उन्होंने १९२९ ई० में ऐसी कला के लिये

जो नाम प्रस्तावित किया था वह था जलकृष्टि (hydroponics)। वास्तव में हाइड्रोपानिक्स का शाब्दिक अर्थ जल के द्वारा कार्य है। यद्यपि जल संवर्द्धों का प्रयोग सर्वप्रथम १८६० ई० में एक जर्मन कृषि रसायनज्ञ नाप (Knop) तथा एक वनस्पति शास्त्री सँच (Sachs) द्वारा किया गया किन्तु व्यापारिक स्तर पर जल संवर्द्धों को फसल उगाने के लिये प्रयुक्त करने का श्रेय गेरिक को ही है।

हाइड्रोपानिक्स वह कला है जिसके द्वारा मिट्टी के बिना ही पौदों को उगाया जा सकता है। इस विधि से पौदे उगाने के कई लाभ हैं :

(अ) पौदों को घर में उगाया जा सकता है

(आ) ऐसे पौदों की बृद्धि अधिक, फल बड़े और फूल अधिक सुन्दर होते हैं।

(इ) पौदों को उगाने के लिये आवश्यक रासायनिक उर्वरकों का मूल्य खेतों में उगाने की अपेक्षा कम होता है

(ई) पौधे पर कीटों के आक्रमण तथा मिट्टी से उत्पन्न होने वाले रोगों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

(उ) उगाये गये फल तथा अन्नों का स्वाद अच्छा तथा कोटि उत्तम होती है।

(ऊ) साल में कई फसलें ली जा सकती हैं और ऋतु-कुऋतु में पौदे उगाये जा सकते हैं।

एक प्रकार से आत्मनिर्भरता सम्बन्धी यह श्रेष्ठतम प्रयोग है जिसमें वैज्ञानिकों को आशातीत सफलता मिली है, जिन देशों में सीमित कृष्य भूमि है वहाँ पर हाइड्रोपानिक्स द्वारा उपज बढाई जा सकती है।

उपस्करों की आवश्यकता

हाइड्रोपानिक्स के प्रचार हो जाने पर यह जानना आवश्यक हो गया कि इस प्रकार से उगाई गई फसलें खेतों में उगाई गई फसलों से टक्कर ले सकती हैं या नहीं ! अमरीका में जो प्रयोग किये गये हैं वे अत्यन्त उत्साहवर्द्धक हैं। किन्तु समस्या है कि बिना मिट्टी के फसलों के उगने के कार्य को कैसे अग्रसर किया जाय। निस्संदेह पोषण सम्बन्धी पूर्ण जानकारी होते हुये भी सबसे आवश्यक समस्या तो रह ही जाती है। वह है उपयुक्त पात्र जिनमें फसलें उगाई जायें या पेड़-पौदे लगाये जायँ। इन पात्रों के क्या आकार हों, इनमें पोषण कैसे भरा जाय और फिर बीजों को किस प्रकार उगने दिया जाय–ये प्रमुख समस्यायें थीं। इन सबों के सम्बन्ध में प्रयोगों द्वारा समुचित जानकारी एकत्र की गई। किसी भी शौकिया या पेशेवर बागवान को चाहिए कि जितना भी साहित्य इस सम्बन्ध में उपलब्ध हो उसको पढ़े और कार्य रूप में परिणत करे।

पात्रों की समस्या : आधान अथवा पात्रों का आकार-प्रकार बोई जाने वाली फसल या पौदे की संख्या पर निर्भर करेगा - ये पात्र सिद्धान्त रूप में किसी भी आकार के हो सकते हैं। ये लकड़ी, धातु, इनैमेल, कांच या चीनी मिट्टी में के किसी भी सामग्री के बने हो सकते हैं। ये सीमेंट तथा अलकतरा के भी बने हो सकते हैं। इनकी लम्बाई चौड़ाई सुविधानुसार (स्थान के अनुसार) कुछ भी हो सकती है किन्तु गहराई के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध हैं। सबसे उपयुक्त गहराई ६''मानी गई है। केवल गहरी जड़ों वाले बहुवर्षियों के लिए ही इससे अधिक गहरे पात्रों की आवश्यकता होगी।

बीज शय्या: यह वह जाली है जो पात्रों के मुख पर फैलाई रहती है। यह जाली लोहे की तारों की होती है। इसे इतनी दृढ़ होना चाहिए कि यह पौदों और बिछावन (शय्या) के भार को सहन कर सके। शय्या के रूप में खर पतवार, तिन, बुरादा आदि का प्रयोग होना चाहिए। इसमें बीजों को बो कर उन्हें सूर्य के प्रत्यक्ष प्रकाश से सुरक्षित रखा जाता है। इस बीज शय्या के कई उपयोग हैं :

१. यह पौदों को आश्रय प्रदान करती है

२. यह बीजों को उगने के लिये तथा जड़ों के द्वारा ग्रहण होने वाली आर्द्रता को अवशोषित किये रहती है।

३. यह पौदों के निचले हिस्सों एवं पोषण विलयन तक वायु के आवागमन को प्रोत्साहित करती है।

४. यह जड़ों को सूर्य-प्रकाश से बचाती है।

५. यह खनिज खाद्यों एवं कार्बनिक पदार्थों की भी पूर्ति करती है।

इस प्रकार यह मिट्टी को स्थानापन्न करती है।

बीज शय्या का उपयुक्त आकार ६-१२ फुट लम्बा तथा २ से ४ फुट तक चौड़ा माना गया है। ध्यान रहे कि बीज शय्या में नमी अधिक न रहे नहीं तो पौदे ठीक से नहीं उगेंगे। यह बीज शय्या नये पौध के लिये नर्सरी का काम करती है। कभी कभी इस पर बालू की परत बिछाई जा सकती है, अधिकांशतः रासायनिक बागवानी करते समय पौदों को मिट्टी या बालू में अलग उगने दिया जाता है और बाद में बेड़ें लाकर लगा दी जाती हैं। ज्यों-ज्यों पौदे बढ़ते हैं उनकी जड़ें पात्र में भरे पोषण विलयन की ओर बढ़ती हैं। प्रारम्भ में पात्र के भीतर विलयन का स्तर ऊपर रखा जाता है और धीरे धीरे उसे नीचे लाया जाता है जिससे जड़ें बढ़ सकें और वायु में श्वास ले सके।

पोषण विलयन

पात्र में भरा जाने वाला विलयन संस्तुत तत्वों से युक्त होना चाहिए। जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है, पौदों को वृद्धि के लिए कई तत्वों की आवश्यकता पड़ती है। इन तत्वों को लवण के रूप में, जो जल विलेय हों, चुना जाता है। फिर इनकी मात्रायें स्थिर की जाती हैं। विलयन में इन तत्वों की निरन्तर सम्पूर्ति बनाये रखने के लिये विशिष्ठ आयोजन करने होते हैं। एक प्रतिनिधि पोषण विलयन की संरचना निम्न प्रकार होगी:

कैल्सियम नाइट्रेट	११८ ग्राम प्रति लीटर
मैग्नीशियम सल्फेट	४९ ग्राम „ „
पोटैशियमफाडाइहाइड्रोजन फास्फेट	२९ ग्राम „ „

इनके अतिरिक्त लोह, ताँबा, जिंक आदि तत्वों की सूक्ष्म मात्रायें उपयुक्त लवण रूप में मिश्रित कर दी जाती हैं। पूरे षोषण विलयन की लवणीयता को १५००-२५०० अंश प्रति दशलक्षांश के बीच स्थिर रखना पड़ता है। विलयन को उपयुक्त पी-एच० पर भी लाना होता है। अधिक ठंडे प्रदेशों में विलयन को गरमाने की भी आवश्यकता पड़ती है। यह कार्य पात्र के भीतर विद्युत केबिल बिछाकर सरलता से सम्पन्न किया गया है। सर्वप्रथम १९३४ ई० में इस प्रकार के प्रयोग हुये। इसके अलावा पात्रों को उष्ण पौध गृहों (Green house) में भी रखा जा सकता है। यह भी सम्भव है कि विलयन को पहले बायलर में गरम करके तब पात्रों में पहुँचाया जाय।

पात्रों के भीतर स्थिर सान्द्रता वाले पोषण-विलयन को पहुँचाने का कार्य मशीनों द्वारा किया जाता है। प्रायः पात्रों के निचले भाग एक पाइप द्वारा जुड़े रहते हैं जिससे होकर विलयन पहुँचाया जाता है।

वातनः यह आवश्यक है कि विलयन के भीतर वायु के आवागमन की यथेष्ट योजना रहे क्योंकि बिना आक्सीजन के पौदे की जड़ें वृद्धि नहीं कर सकतीं। इस उद्देश्य से पात्रों में भरे विलयन में वातन एक आवश्यक एवं गम्भीर समस्या है। इसके लिये सम्पीडकों द्वारा वायु को बुदबुदाया जाता है।

सम्भवतः इतना होने पर भी सूर्य के प्रकाश के बिना पौदे ठीक से वृद्धि नहीं करते अतः आवश्यक है कि जहां भी रासायनिक बागवानी अपनाई जाय सूर्य प्रकाश आता हो अथवा कृत्रिम प्रकाश की पूर्ण व्यवस्था हो। इस प्रकार से १९२७ ई० में प्रथम प्रयास गुलाब के फूल की खेती से किया गया।

किन्तु हमने जो भी वृत्तान्त दिये हैं उन्हें पढ़ कर आप यह समझ रहे होंगे कि यह कोरी बकबास होगी। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि रूस में उगाई गई ककड़ियां प्रत्येक ५·६ किलोग्राम भार की हुई और १ वर्ग मीटर मृदाविहीन बाग से ३० किलोग्राम ककड़ी की उपज मिली। इस विधि द्वारा उगाई जाने वाली तरकारियों के उत्पादन मूल्य में ३०-३५% की कमी देखी गई है। इसमें प्रत्येक वर्ष खेतों को जोतने और इन्हें तैयार करने की झंझट समाप्त हो जाती है।

बालू-संवर्द्ध

उपर्युक्त पोषण संवर्द्ध विधि में बीज शैया के लिये विशेष उपकरण की आवश्यकता पड़ती है। इसे समाप्त

करने की दृष्टि से आजकल बालू की बजरी, कोयले के चूरे आदि को आधार मानकर उनमें पोषण विलयन डालकर फ़सलें उत्पन्न की जाने लगी हैं। वास्तव में यही मृदा विहीन शस्य उत्पादन है। प्रयुक्त बालू या कोयला एक प्रकार से ऐसी मिट्टी के तुल्य है जिनमें शोषण की क्षमता नगण्य एवं जिनकी विलेयता नाममात्र की होती है फलतः पोषण विलयन द्वारा समस्त तत्वों की सम्पूर्ति की जाती है।

ऐसे बालू का प्रयोग १८४२ ई० से प्रयोगशालाओं में होता रहा है किन्तु १९२९ ई० के बाद इनका उपयोग व्यावहारिक कृषि के लिये होने लगा। पात्रों के भीतर १० फीट × २ फीट × ३ इंच बालू भर कर पोषण विलयन डाल दिया जाता है। १९३५ ई० में अत्यन्त हल्की बजरी ग्रैवेलाइट का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

हमारे देश में रासायनिक बागवानी सम्बन्धी कतिपय प्रयोग स्वर्गीय सम्पूर्णानन्द जी के प्रोत्साहन पर बनारस केन्द्र में सम्पन्न हुये। इसके लिये जिस बालू संवर्द्ध विधि का प्रयोग हुआ उसे बंगाल विधि (Bengal Method) के नाम से पुकारा जाता है। जो पात्र प्रयुक्त हुये थे वे ग्लेज युक्त गमले थे जिनकी पेंदी में एक एक छेद थे जिनसे होकर अधिक विलयन रिस सके। वातन के लिये रबर की नली में स्थान स्थान पर छिद्र बनाये गये थे।

रासायनिक बागवानी का परिवर्तित रूप हमें प्रत्येक घर की गृह वाटिका या सामने के फूल उद्यान में मिलेगा। मिट्टी के गमलों में कम्पोस्ट भर कर गुलदाऊदी, समैरिया, एस्टर आदि का उगाना या गमलों में टमाटर और बैंगन उगाना आजकल मालियों की सर्वप्रिय विधियाँ हैं। कम्पोस्ट में निहित सारे पोषण तत्व कुछ काल तक तत्वों की पूर्ति कर पाते हैं किन्तु प्रायः उनमें एक न एक तत्व की न्यूनता देखी जा सकती है। वैज्ञानिक रीति से बागवानी करते समय किसी भी अवस्था में एक भी तत्व का न्यून नहीं होने देना होता साथ ही फूलों फलों एव पौदों की रक्षा का भार सम्हालना होता है।

वही माली या शौकिया बागवान सफल हैं जो विभिन्न उर्वरकों एंव कीटनाशी औषधियों के प्रयोग द्वारा पौदों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचने देता। डी० डी० टी०, गेमेक्सेन, २-४ डी, वोर्डो मिश्रण आदि के प्रयोग उनके उपकरणों की जानकारी तथा उर्वरकों के प्रयोग सम्बन्धी गुरों को कार्य रूप में परिणत करने की क्षमता रासायनिक बागवानी का मूलाधार है।

(क्रमशः)

[पृष्ठ ८ का शेषांश]

है, उस पर भी भागने की बजाय यह उलट कर हमला कर बैठता है।

३—निश्चित ठिकानों पर मल विसर्जन करना। लीद के बड़े ढेरों को देख कर शिकारी उनके पास छिप कर बैठ जाते हैं और गेण्डों के आने-जाने की प्रतीक्षा करते हैं। इस पशु की यह आदत है कि लीद करने के स्थान पर यह पीठ की ओर से पहुँचता है। बस, जब यह उल्टी चाल देख कर जा रहा होता है तो शिकारी इसे मार गिराते हैं।

४—खेती के लिए जंगलों को काटना और मनुष्य द्वारा इसका संहार। असम में ब्रह्मपुत्र की घाटी उन्नीसवीं शताब्दी तक मुख्यता घनी घास और जंगलों से आवृत्त थीं। दूर दर्शी औद्योगिकी को इधर चाय के बागानों के लिए उपयुक्त भूमि नजर आई। इस क्षेत्र में चाय उद्योग के बढ़ने के साथ-साथ वनों का बहुत अधिक सफाया कर दिया गया। जंगली जानवर धीरे धीरे कम होते गये जिसमें गेण्डे को शिकारियो ने चोरी छिपे खूब मारा। ब्रह्मपुत्र की घाटी में तो थोड़े बहुत गेण्डे बच भी गये परन्तु गंगा की घाटी में यह पशु उन्नीसवीं शताब्दी में ही लुप्त हो गया था। १९०० तक यह केवल दक्षिणी नेपाल, उत्तरी बिहार, उत्तरी बंगाल और असम में सीमित रह गया था। जीवन-संघर्ष में जैसे दूसरे भारी भरकम शरीर वाले दैत्याकार जीव अपना अस्तित्व बनाये रखने में सफल नहीं रहे उसी तरह यह भी प्राकृतिक दुश्मनों से और तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों में अपनी रक्षा न कर सका।

(क्रमशः)

जीवाणु भोजी तथा उनके उपयोग

● डा० देवेन्द्र प्रसाद शर्मा

जीवाणु भोजी या बैक्टिरियल वाइरस, वाइरस की वह जाति है, जो किसी विशेष जीवाणु या अन्य जाति पर परजीवी की भाँति जीवन व्यतीत करती है। इसकी खोज स्वतंत्र रूप से एक अंग्रेज वैज्ञानिक टोर्ट (१९१५) तथा एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक डी० हेरीली (१९१६) ने की थी यद्यपि इससे भी पूर्व (१८९९) एक रूसी वैज्ञानिक डी० गेमेल को इसकी उपस्थिति का पता लग चुका था। डी० हेरीली ने पेचिस उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं के सम्बन्ध में अपना कार्य १९१७ ई० में प्रकाशित किया। यह स्वयं एक रोचक घटना थी। उन्होंने पेचिस के जीवाणुओं को सर्वप्रथम मल परखनलियों में वर्द्धित किया। दूसरे ही दिन उसने चाइना केन्डिल छन्ने से छान करके उसकी कुछ बूंदें पेचिस जीवाणु के नये ब्राथ माध्यम (Broth Culture) में प्रविष्ट किया। बीमारी की अवस्था में प्रवेश किया गया पेचिस का जीवाणु कुछ दिन तेजी से बढ़ा किन्तु पुनः बीमारी कम हो जाने पर माध्यम पारदर्शक हो गया। इस प्रकार मल से प्राप्त छनित ने पेचिस के जीवाणु की वृद्धि रोक दी। इस प्रकार के कारक का पहले पहल पता डी० हेरीली ने लगाया जो पेचिस के जीवाणु को नष्ट कर देता है और जो पेचिसग्रस्त प्राणी के मल में पाया जाता है। ऐसे जीवाणु को जीवाणुभोजी (Bacteriophage) नाम दिया गया।

स्वरूप: जीवाणु भोजी अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं जो जन्तुओं के ग्रस्त कोशों में पहुँच कर गुणन प्रारम्भ कर देते हैं। इसके फलस्वरूप ग्रसित कोशिकाएं लयित हो जाती हैं परन्तु अन्य अनुसन्धानकर्ताओं के अनुसार जीवाणु भोजी रासायनिक कारक हैं जो संभवतः एन्जाइम के गुणों से मिलते-जुलते हैं। वाइरसों का कोई यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया है। यदि इन्हें इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जाय तो इनसे कई प्रकार की अंडाकार रचनायें दिखलाई पड़ती हैं। अधिकांश रूप में इनका आकार गोला या अंडाकार होता है जिससे एक भाग जुड़ा हुआ पुच्छ की भाँति प्रतीत होता है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि जीवाणु भोजी में निम्नलिखित क्रियाएं स्पष्ट रूप से होती हैं :—

(१) जीवाणविक कोशिका पर फेज का अवशोषण।
(२) तत्पश्चात् कोशिकाओं में उनका प्रवेश।
(३) कोशिकाओं में प्रवेश करके नये फेज उत्पन्न होने की दशाएं।
(४) जीवाणविक कोशिका का लयन तथा जीवाणु भोजी का पुनः निष्कासन।

यह पता लगा है कि जीवाणु भोजी में ताप सहने की भी शक्ति विद्यमान होती है। उदाहरणार्थ लैक्टिक अम्ल के फेज ७०-७५° से० ताप तक क्रियाशील अवस्था में रह सकते हैं। परन्तु इसी उच्चतम ताप पर आध घण्टे गरम करने पर उनकी क्रियाशीलता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त फेज न्यून ताप तथा शुष्कीकरण से भी शीघ्र नष्ट नहीं होते। उनकी क्रियाशीलता पर हाइड्रोजन आयन सान्द्रता (पी०एच०) का भी प्रभाव पड़ता है तथा पी०एच० ६-५ तक वे अतिक्रियाशील होते हैं।

रासायनिक संघटन: यह देखा गया है कि फेज तथा सम्बन्धित जीवाणुओं में कार्बनिक यौगिक की रचना जटिल तथा भिन्न होती है। उदाहरणार्थ फेज में शीर्ष की रचना DNA से हुई रहती है जो कुंडली के आकार का

[शेष पृष्ठ १७ पर]

अब लीजिये नया रासायनिक भोजन

● श्याम मनोहर व्यास

भूख की समस्या इस युग की सबसे बड़ी समस्या है। जनसंख्या की वृद्धि ने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया है ! स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत की जनसंख्या सन् १९५१ एवं १९६१ में क्रमशः ३६, ४४ करोड़ थी। आज वह बढ़कर ५३ करोड़ के लगभग हो गई है। भारत ही नहीं विश्व के अनेक देशों के सामने जनसंख्या गम्भीर समस्या है। विशेषकर एशियाई देशों के लिये यह चिन्ता-जनक है। फिर भी वैज्ञानिक इस प्रयोग में जुटे हुए हैं कि क्या कोई ऐसा रासायनिक खाद्य तैयार किया जा सकता है जिसे ग्रहण करके मानव काफ़ी समय तक जीवित रह सके तथा अकाल की विभीषिका से अपने को बचा सके !

अमेरिका में चिकित्सा और मानसोपचार सम्बन्धी अनुसंधान करने वाली एक संस्था है वैकेविल मेडिकल इंस्टीच्यूट। यह संस्था अक्सर कारागार के बंदियों पर अपने प्रयोग किया करती है। केलिफोर्निया के एक जेल में पन्द्रह कैदियों पर एक प्रयोग किया गया जिसका प्रयोजन था क्या मनुष्य किसी विशुद्ध रासायनिक भोजन पर जीवित रह सकता है ? इन व्यक्तियों को दिन में चार बार एक रासायनिक घोल पीने को दिया गया। यह रासायनिक घोल ऐमीनो अम्लों का मिश्रण था। साथ ही इस घोल में वे सभी पौष्टिक तत्व विद्यमान थे जो मानव जीवन के लिये आवश्यक हैं, जैसे विटामिन, कार्बोहाइड्रेट खनिज लवण आदि। यह घोल ठण्डा, स्वाद में मीठा और गाढ़ा था। इसमें सभी रासायनिक तत्व व यौगिक उचित मात्रा में तौल कर या नाप कर मिलाये गये थे।

डाक्टरों ने इस घोल का परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति न केवल इससे जीवित रह सकता है वरन् उसका स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। इस घोल का सेवन करते हुये कैदियों ने चार मास निकाल दिये। डाक्टर मिल्टन विनिट्ज ने दस वर्ष तक निरन्तर परिश्रम करके यह खाद्य तैयार किया था।

आज मानव ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रहों-उपग्रहों पर पहुँच रहा है। पृथ्वी की जनसंख्या भी तीव्र गति से बढ़ रही है। भोजनाभाव की स्थिति में यह रासायनिक खुराक किसी संजीवनी से कम नहीं है। यही नहीं, यह कृत्रिम रासायनिक आहार अनेक रोगों से भी मानव को मुक्ति दिला सकेगा। भोजन पकाने के झंझट से भी वह मुक्त हो जायगा। इस रासायनिक भोजन को ग्रहण कर मनुष्य अपने शेष समय का पूरा सदुपयोग कर सकेगा। स्वर्गीय डा० जेस ग्रीन्स्टा-इन ने भी परिपूर्ण रासायनिक भोजन बनाने में काफी महत्वपूर्ण कार्य किया।

चूहों पर प्रयोग

सन् १९५७ में अमेरिका की नेशनल हैल्थ लेबोरेटरी ने इस भोजन की गोलियों का चूहों पर प्रयोग किया। चूहे इस खुराक पर जीवित रहे और सामान्य चूहों की तरह उन्होंने प्रजनन में भी योगदान दिया। उनके जीवन के अन्य कार्य कलाप भी सामान्य चूहों जैसे ही रहे। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य भी इसी तरह जीवित रह सकता है।

अन्तरिक्ष यात्रियों के लिए भी उपयोगी

रूसी वैज्ञानिकों के अनुसार यह भोजन अन्तरिक्ष यात्रियों के लिये भी उपयोगी है। इस रासायनिक भोजन

को चूर्ण के रूप में चाहे जितने समय तक सुरक्षित रख सकते हैं। यह भार एवं आयतन की दृष्टि से भी लघु है। इसे ग्रहण करने पर ६-७ दिन में एक बार शौच जाना पड़ता है। अमेरिका की नासा (नेशनल एरोनाट्रिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन) ने अमरीकी अन्तरिक्ष यानों के चालकों के लिये यह खुराक तैयार करने का निश्चय किया था, इस कार्य के लिये दस लाख पौंड राशि स्वीकृत की गई थी। इस भोजन का नाम रखा गया था मानव का अन्तरिक्ष भोजन। जब यह खुराक बंदियों को दी गई तो कुछ दिन तक लोग उनींदे से रहे और सिर दर्द से भी पीड़ित रहे। एक व्यक्ति को लगा कि उसके सिर के बाल उड़ जायेंगे और दूसरे को चिन्ता सताने लगी कि उसका पुरुषत्व क्षीण हो रहा है। तीसरे को प्रतीत हुआ कि उसके दाँत खराब हो रहे हैं। इस स्वादहीन पाउडर में नारंगी और सन्तरे आदि का थोड़ा सा रस भी मिलाया गया। कई बंदियों ने घबरा कर इस आहार को त्याग दिया। धीरे धीरे नियमित रूप से आहार लेने वाले कैदियों के शरीर में पुनः स्फूर्ति आने लगी और उनका शरीर सभी रोगों से एकदम मुक्त हो गया। रक्त में कोलेस्टरोल की मात्रा भी घटने लगी। कोलेस्टरोल की अधिकता हृदय रोग का एक बहुत बड़ा कारण माना जाता है।

प्रति सप्ताह रासायनिक चूर्ण में तीस गैलन भभके का पानी मिलाया जाता था। सप्ताह भर तक पन्द्रह व्यक्तियों के लिये यह विलयन पर्याप्त था।

घोल का रासायनिक विश्लेषण

जीव कोश की रचना अनेक प्रकार के अत्यन्त जटिल प्रोटीनों से होती है। किन्तु शरीर के ये विविध प्रोटीन २२ प्रकार के एमीनों अम्लों से बनते हैं। इनमें से ८-१० तो मानव जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। मानवोपयोगी भोजन में १८ प्रोटीन रहते हैं। इस रासायनिक भोजन में प्रोटीन तथा अन्य तत्व एक ग्राम के १००वें भाग तक सूक्ष्मता से नाप कर मिलाये जाते हैं। विटामिन ग्लूकोज, नमक व अन्य खनिज तथा ईथिल लिनोलीट आदि भी उचित मात्रा में मिलाये जाते हैं।

वैसे एमीनो अम्ल का निर्माण कार्य बड़ा कठिन है पर जिस कच्चे माल के एमीनो अम्ल तैयार किये जाते हैं वे हैं तारकोल और वायु। वैज्ञानिक इस प्रयत्न में संलग्न हैं कि किस प्रकार सस्ते तरीके से एमीनो अम्ल तैयार हो सकें।

यह रासायनिक भोजन हृदय रोग और अन्य पाचन क्रिया सम्बन्धी रोगों में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। भार घटाने के लिये भी यह आहार एक प्रकार की अचूक औषधि है। सच पूछा जाय तो घास फूस के रेशों में स्थित सेल्युलोस, कार्बोहाइड्रेट का सबसे बड़ा स्रोत है जिसका मानव अभी तक पूरा लाभ नहीं उठा पाया है। गाय और दूसरे जुगाली करने वाले पशु इस सेल्युलोस को प्रोटीन में परिवर्तित करते हैं। जुगाली की क्रिया एक प्रकार के जीवाणुओं के कारण होती है। अब वह दिन दूर नहीं है जब मनुष्य बर्तन में ये जीवाणु पाल कर अनुपयोगी घास फूस से सीधे खाने योग्य प्रोटीन प्राप्त कर सकेगा।

आहार विशेषज्ञों का कथन है कि शीघ्र दुनिया प्राकृतिक भोजन त्याग कर कृत्रिम रासायनिक भोजन की भक्त बन जायगी। भूकम्प और बाढ़ पीड़ितों के लिये यह भोजन वरदान सिद्ध होगा।

ब्रिटेन की एक आहार अनुसन्धानशाला के संचालक डा० फ्रैंकलीन ने हरी वनस्पतियों की सहायता से दूध तैयार किया है। उनके अनुसन्धान दल ने गाजर के टुकड़ों, पात गोभी के पत्तों और मटर की फलियों से दूध का निर्माण किया है। इंग्लैंड के वाटफ़ोर्ड अनुसन्धान केन्द्र के अध्यक्ष डा० फेक वाक्स के कथनानुसार यह आविष्कार संसार की खाद्य समस्या को हल करने में हाथ बटायेगा। अविकसित एवं अकाल ग्रस्त देशों में यह दूध सचमुच बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

इस कार्य के लिये हरे पत्ते को सावधानी से पानी में मसला जाता है। फिर पानी को तब तक गर्म किया जाता है जब तक कि पत्तों से सारा प्रोटीन नहीं निकल आता। प्रोटीन युक्त इस घोल में विविध विटामिन, खनिज लवण एवं

शर्करायुक्त कार्बोहाइड्रेट मिलाये जाते हैं। पशुओं की चर्बी की जगह वनस्पति चर्बी मिलाई जाती है। कुछ रासायनिक यौगिक मिलाकर इसका हरापन भी दूर कर दिया जाता है। सोयाबीन से तैयार किया गया दूध भी काफी पौष्टिक और सस्ता सिद्ध हुआ है। भारत में मैसूर स्थित खाद्य अनुसन्धान शाला ने मूंगफली से एक प्रकार का दूध तैयार किया है। निकट भविष्य में अब वनस्पति घी के समान वनस्पति दूध भी बाजारों में बिकने लगेगा। आज के बाजार भाव से यह काफी सस्ता भी पड़ेगा।

यह सत्य है कि अब नये रासायनिक खाद्य पदार्थ तथा पेय ही हमें अकाल की विभीषिका से बचा सकेंगे।

● ●

[पृष्ठ १४ का शेषांश]

दृष्टिगत होता है। यह अत्यन्त बहुलीकृत होता है। फेज DNA तथा जीवाणुओं के DNA रासायनिकतः भिन्न होते हैं। प्रसरण प्रभाव द्वारा DNA को फेज से पृथक किया जा सकता है। इनका अणुभार भी बहुत अधिक होता है। कोली बैसिलस (Coli bacillus) जीवाणु के फेज DNA का अणुभार २५,०००,००० है जिसमें प्रोटीन तथा लिपिड भी पाये जाते हैं।

भौतिक तथा रासायनिक कारकों का प्रभाव

फेज में सम्बन्धित जीवों की अपेक्षा भौतिक तथा रासायनिक कारकों के रोकने की शक्ति अधिक होती है। उन पर अधिक दाब (६००० वायुमंडल) तथा विकिरण ऊर्जा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनको उबालने, अम्ल की क्रिया, पराबैंगनी किरणें तथा रासायनिक रोगाणुनाशी से शीघ्र नष्ट नहीं किया जा सकता।

प्रकृति में महत्व: फेज प्रकृति में साधारणतया सभी स्थानों में पाये जाते हैं किन्तु मल तथा गंदे पानी में ये विशेष रूप से पाये जाते हैं। ऐसा पता लगाया गया है कि जीवाणुभोजी अपने को विचित्र रूप से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अनुरूप बना लेने में समर्थ होते हैं। प्राणी शरीर में (जहाँ कहीं भी जीवाणु पाया जायेगा) शरीर की ग्रन्थियों में, निकासी जल में इनके बैठने के लिए उपयुक्त परिस्थितियां स्वयं उत्पन्न हो जाती हैं।

ये नदी के जल में तथा निकासी जल में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इनके साथ ही साथ वे भी सूक्ष्मजीव रहते हैं जो मानव के लिए घातक होते हैं जैसे हैजा तथा पेचिस फैलाने वाले जीवाणु। रोगी मनुष्यों के रक्त, थूक, मूत्र इत्यादि में भी ये प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

दैनिक जीवन में महत्व तथा उपयोग : इनका उपयोग औषधि के रूप में कुछ बीमारियों जैसे पेचिस, हैजा, प्लेग को ठीक करने में किया जाता है। डिसेंट्रिक पाली वैलेण्ट तथा कालरिक फेज का उपयोग प्रकाइलैक्सिस बीमारी को ठीक करने में किया जाता है। इनका उपयोग अब कुछ संक्रामक बीमारियों में भी किया जाने लगा है।

जीवाणुभोजी हमारे लिए हानिकारक भी सिद्ध हुए हैं। ये प्रतिजैविकी पदार्थों के निर्माण में विघ्न उत्पन्न करते हैं, ये खट्टे दूध में भी हानिकारक हैं क्योंकि ये लाभदायक सूक्ष्मजीवों को बढ़ने नहीं देते।

वर्तमान युग में अन्तरिक्ष अणुविज्ञान के विकास के फलस्वरूप संवर्धन का उपयोग (विशेष कर डाइसोजेनिक संवर्धन) किरणन के पता लगाने में भी किया जा रहा है जो एक नयी खोज है।

● ●

सार संकलन

सन् २००१ की पत्तल पर प्रोटीन

इस सदी के अन्त में, विश्व की पूरी आबादी को पेट भरने के लिए सालाना ६ करोड़ टन खाद्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ने लगेगी। इसकी परिपूर्ति के लिए हमें आज की तुलना में दुगुना खाद्य उत्पन्न करना होगा। कैसे होगी इस लक्ष्य की परिपूर्ति? और क्या क्या परोसेंगे सन् २००१ की पत्तल पर हम?

सन् २००१ की पत्तल पर होंगे नवीन रूपों में उपलब्ध प्रोटीन के नये-नये व्यंजन और कुल्हड़ में होगा प्रोटीन-बहुल वानस्पतिक दुग्ध। मगर यह प्रोटीन कहाँ से आयेगा?

इस प्रोटीन के नये स्रोत होंगे एककोशीय यीस्ट, जीवाणु (बैक्टीरिया), कवक (फफूँद) एवं शैवाल, घास-पात, मूंगफली, सोया-बीन, बिनौला, नारियल आदि वनस्पतियाँ।

हमें ऐसा प्रोटीन चाहिए, जो गुणों में जाँतव (पशुओं से प्राप्य) प्रोटीन का मुकाबला कर सके और कम खर्च से औद्योगिक स्तर पर आसानी से तैयार किया जा सके ऊपर बताये वानस्पतिक स्रोतों से ऐसे प्रोटीन का निर्माण संभव है।

पहले एक कोशीय प्रोटीन यानी सूक्ष्मजीवों से प्राप्त हो सकने वाले प्रोटीन पर विचार करें। अब तक के परीक्षणों से यह आशा बंधती है कि खमीर पनपाकर (यीस्ट द्वारा) ५० से ५५ प्रतिशत, फफूदों से १५ से ४५ प्रतिशत तथा शैवालों (एल्गी) से २० से २६ प्रतिशत तक प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थ बनाये जा सकते हैं।

ये आँकड़े शुष्क होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि अभी हम विभिन्न अनाजों को जिन रूपों में खाते हैं, उससे हमें गेहूं से १०-१२ प्रतिशत, चावल से ८-९ प्रतिशत तथा मांस मछली से लगभग २०-२२ प्रतिशत तक ही प्रोटीन प्राप्त होता है। कौन से सूक्ष्म जीव प्रोटीन निर्माण में विशेष सहायक हो सकते हैं, उसका कुछ अंदाज तालिका 1 से हो जायेगा।

ये सब कोरी संभावनाएं ही नहीं हैं। यीस्ट से प्रोटीन बन रहा है और उसका उत्पादन उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। पेट्रोलियम कारखानों से उप-उत्पाद के रूप में मिलने वाले सूक्ष्मजीवों का प्रोटीन के निर्माण में महत्वपूर्ण उपयोग रहा है। फ्रांस के खोजकर्ता चैम्पैनट ने यह दर्शा दिया है कि सूक्ष्मजीवों से प्राप्त प्रोटीन में उच्च जैविक गुण होते हैं और यदि व्यापारिक स्तर पर इसे बनाया जाये तो यह अकेला ही खाद्योपयोगी प्रोटीन की सारी कमी को पूरी कर सकता है।

इसी तरह मांस से मिलने वाले प्रोटीन की पूर्ति के लिए पशुधन बढ़ाना अनिवार्य नहीं है। यह एककोशीय प्रोटीन उतना ही गुणवान और २॥ हजार गुना कम समय में तैयार किया जा सकता है।

सन् २००१ तक जो बहुकोशीय वनस्पति आपकी भोजन तालिका की शोभा बढ़ायेंगे वे हैं—समुद्री शैवाल, घास-पात, बिनौले, मूंगफली, सोयाबीन, नारियल आदि के व्यंजन।

क्लोरेला आदि प्लवकों तथा अन्य समुद्री वनस्पतियों

का जापान आदि देशों में तो प्रोटीन बहुल भोज्य पदार्थों के रूप में उपयोग हो भी रहा है।

इधर इंग्लैंड में लगभग ७,००० रुपयों की लागत से ऐसी मशीन तैयार की जा चुकी है, जो घास-पात से प्रोटीन खींच कर बोतलों में भरती है। ब्रिटिश विज्ञानियों ने यह भी हिसाब लगा लिया है कि तिपतिया घास से प्रति हैक्टर लगभग ३,००० किलोग्राम ऐसा प्रोटीन प्राप्त किया जा सकता है जिसे दूध के रूप में पिया जा सकता है।

मूँगफली एवं सोयाबीन से भी दुग्ध बनाया जा रहा है। सोयादुग्ध तो प्रोटीन के लिहाज से किसी पशुजन्य दुग्ध की बराबरी कर सकता है। उसमें वनस्पति तेल, फास्फेटाइड, शरीर का क्षारीय संतुलन रखने के लिए आवश्यक खनिजों तथा विटामिनों का भी बाहुल्य होता है। तालिका-ख में सोयादुग्ध और गौदुग्ध की तुलना की गयी है।

आर्थिक दृष्टि से भी सोयादुग्ध बहुत लाभप्रद है क्योंकि एक किलो सोयाबीन से १० लिटर दूध बनता है।

तालिका—क

सूक्ष्म जीव का वर्ग	वैज्ञानिक नाम	प्रोटीन प्रतिशत	प्रमुख ऐमीनो अम्ल (प्रति १०० ग्राम प्रोटीन)	
			लाइसीन	मेथियोनीन
यीस्ट	१-कंडिडा ट्रापिकैलिस	४५	७.७ ग्रा०	०.८ ग्रा०
	२-सेकेरोमाईसीज सेरेविसी	५०	७.३ ,,	१.२ ,,
जीवाणु	१-बैसीलस मेगाटेरिम	४०	७.० ,,	१.८ ,,
	२-बेसीलस स्टिप्ट्रोथर्मोफिलस	७५	७.४ ,,	२.७ ,,
कवक	पेनीसीलियम नोटेटम	३८	४.० ,,	१.० ,,
शैवाल	स्टाइट्रुलीना मैक्सिमा	६५	४.६ ,,	१.८ ,,

तालिका—ख

	प्रोटीन प्रतिशत	वसा प्रतिशत	कार्बोहाइड्रेट प्रतिशत	राख प्रतिशत	पानी प्रतिशत
सोयादुग्ध	३.५	२.८	३.१	०.५	९०.०
गौदुग्ध	३.७	३.७	४.८	०.७	८७.४

बिनौला कल तक केवल पशुओं का भोजन समझा जाता था, अब उससे खाद्य तेल बड़े पैमाने पर प्राप्त किया जा रहा है। अगली सदी में शायद बिनौला हमारे भोजन का प्रमुख अंग होगा। कुछ और वस्तुओं के साथ मिला कर इसका प्रोटीन-बहुल आटा मध्य अमरीका में इन्कापेरीना तथा पेरुविटा और इथियोपिया में फाफा नामक खाद्य पदार्थों के नाम से खाया भी जाने लगा है। इसके लिए पहले इसमें स्थित प्राकृतिक विष गेसीपोल को दूर करना जरूरी है। मूँगफली का आटा भी प्रोटीन-आहार बनाने में प्रयुक्त हो रहा है। इसे चने के आटे के साथ मिला कर ४२ प्रतिशत प्रोटीन वाली रोटियाँ व विस्कुट बन रहे हैं। १५ प्रतिशत मूँगफली के आटे में ६०

प्रतिशत टैपियोका तथा २५ प्रतिशत गेहूं का आटा मिला कर नकली चावल भी बनाया जा रहा है।

नारियल की खली (२५ प्रतिशत) तथा सोयाबीन के आटे (७५ प्रतिशत) से भी प्रोटीन पूर्ति की आशा की जा रही है।

अब तो हालैंड की एक कम्पनी ने एक महत्वपूर्ण ऐमीनो अम्ल लाइसीन का कृत्रिम निर्माण करके संश्लिष्ट प्रोटीन के निर्माण की आशा उत्पन्न कर दी है।

(नवनीत से साभार)

ये अजीब औषधियाँ

औषध सम्बन्धी साहित्य में काफी घपला है, जिसका एक प्रमुख कारण औषधों पर इतने व्यापक स्तर पर लिखा जाना है। वैज्ञानिक दृष्टि और अनुशासन में लिखे गये कम से कम १० हजार लेख हमें सिर्फ औषधियों पर मिल जायेंगे। इनमें विभ्रम उत्पन्न करने वाली औषधों पर ही १ हजार लेख हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के गवेषणा कार्य औषधों के क्षेत्र में फैली इस को धांधली हटाने में काफी सहायक सिद्ध हुए हैं और यहाँ इस टिप्पणी के वस्तुपरक रूप के लिए आधार उन्हीं को बनाया गया है।

औषध-परिवार : औषधें संख्या में इतनी अधिक हैं कि उनके परिवार का कोई निश्चित विभाजन संभव नहीं हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए हम उन्हें दो बड़े भागों में बाँट सकते हैं—पहला भाग उन औषधों का है जो स्वाभाविक हैं, दूसरे भाग में कृत्रिम अथवा संश्लिष्ट औषधें आती हैं। एक अन्य प्रकार का विभाजन चेचना-शून्य कर देने वाली अपेक्षा कृत शान्त औषधों और आन्दोलन की खलबली में फेंक देने वाली उत्तेजित औषधों के बीच हो सकता है। अंतिम प्रकार बिल्कुल अलग, विभ्रम उत्पन्न करने वाली उन औषधों का है जिन्हें अक्सर चेतना विस्तार और अनुभव के कलात्मक निखार के साथ जोड़ा जाता है।

अफीम, मारिजुआना और कोकेन—इन स्वाभाविक औषधों के नाम कम से कम हमारे लिए नये नहीं हैं। अफीम पोस्त के पौधे से बनती है, जिसके बीजों का रस निकाला जाता है। अफीम चिंतित मन को आराम पहुँचाती है और एक हद तक पीड़ा का नाश भी करती है। ऐसा अनुमान है कि केंद्रीय स्नायुमण्डल के कुछ हिस्सों पर अफीम का असर पड़ता है, जिससे कि भूख, प्यास, डर और काम-अभिप्रेरण में कमी आ जाती है। अफीम का शारीरिक निर्भरता से जुड़ा होना सबसे खतरनाक है—निश्चित खुराक के अभाव में अफीमची पसीने से तरबतर हो जाता है, उबकाई और उल्टियाँ आने लगती हैं। यह भी जरूरी नहीं है कि पिनक में अफीमची पीड़ा से पूरी तरह मुक्त हो जाए, बल्कि पीड़ा के साथ जुड़े भय में धुँधलापन आ जाता है।

अफीमचियों का भारत में लंबा इतिहास है, लेकिन हागकांग और चीन के कुलियों के अफीम आकर्षण के इतिहास से यह अलग है। भारत के कुछ हिस्सों में औरतें चीखते- चिल्लाते दुधमुँहे छोटे बच्चों को आराम पहुँचाने के लिए अपने स्तनों पर अफीम का लेप करती हैं। अध्ययनों से यह पता चला है कि भारत में अपराध और अफीम का कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है—यहाँ अफीम आकर्षण पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए है। ईरान की तरह भारत में, ऐसा समझा जाता है। लोग अफीम की तरफ इसलिए आकर्षित होते हैं कि उन्हें आराम या डाक्टर की जरूरत है और दोनों के अभाव में अफीम उनमें शारीरिक निर्भरता ला देती है।

एक अद्भुत पौधे कैनबिस इंडिका से बनने वाली औषध मारिजुआना की पहचान कई नामों से होती है। भांग, चरस और पौह—ये सिर्फ कुछ उदाहरण हैं। मारिजुआना के नशे में व्यक्ति अपने-आप को हल्के विभ्रम में महसूस करता है, उसके अन्दर की रुकावटें टूटती हैं। हें हे की मुद्रा में मूर्खतापूर्ण व्यवहार के लक्षण भी उसमें देखे जा सकते हैं। ऐसा विचार है कि मारिजुआना व्यक्ति को अपराध की सीमा तक आक्रामक बना सकती है, जब कि कुछ लोग इसे सिर्फ हल्का मादक द्रव्य मानते हैं। बहरहाल अतिरिक्त सामाजिकता तो व्यक्ति में आ ही

जाती है—वह उत्साही और बातूनी हो जाता है। खुराक की बढ़ी हुई मात्रा व्यक्ति के निर्णय और स्मृति को गड्डमड्ड कर देती है। मारिजुआना के असर में उन्हें पेंटिंग में नये विस्तार दीखे, या संगीत का अधिक गहरा आनन्द मिला, पर इस आनन्द की सच्चाई और सुझाव को अलग करना बड़ा मुश्किल है।

वेदों में मारिजुआना के पौधे को पवित्र माना गया है। जीवन के सच्चे आनन्द को अनुभव करने का यह रास्ता है। काम अभिप्रेरण से छुटकारा पाकर ईश्वर की प्राप्ति के लिए धार्मिक समुदाय भांग का सेवन करता रहा है। आध्यात्मिक-चमक के साथ मारिजुआना का यह संबंध यूरोप और अमेरिका के बीटनिकों को बनारस के घाट-गलियों में आज तक खींच रहा है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य एशिया में मारिजुआना समलैंगिकता से जुड़ी है।

कोकेन आदमी को हिंसक बना देती है, यहाँ तक कि चिकित्सा में भी कोको की पत्तियों से बनने वाली इस औषध का उपयोग बहुत कम है। कोकेन थके हुए आदमी को पहले आराम पहुँचाती है—पेट की कुलबुलाहट कम करती है, फिर उसके लिए आफत बन जाती है—आफत भी ऐसी जो आसानी से पीछा न छोड़े। व्यक्ति अपने को ताकतवर समझने लगता है। चारों तरफ की दुनियाँ और लोग उसे अपने ही खिलाफ दीखते हैं—लोग जो उसकी किसी भी समय हत्या कर सकते हैं। अपने बचाव के लिए व्यक्ति का व्यवहार आक्रामक हो जता है।

कोकेन व्यक्ति को विभ्रम के संसार में पहुंचाती जरूर हैं, पर आधुनिक युग में इस तरह के विशिन्ट अनुभवों के लिए भ्राँतिजनक औषधों को अत्यधिक प्रचार मिला है। इन औषधों का आकर्षण स्वप्नदर्शी संसार की यात्रा (ट्रिप) के लिए है, यानी पुराते जमाने में लोग इस (ट्रिप) के लिए क्या नहीं करते थे—जंगल में जाकर तपस्या के लिए घर तक छोड़ देते थे और आज यह सब कितना आसान है।

अमेरिका और मेक्सिको में आध्यात्मिक पकड़ के लिए एक रेगिस्तानी कैक्टस प्योतल की जड़ें काम में लायी जाती रहीं हैं। मेस्कालिन इसी का आधुनिक (संश्लिष्ट) रूप है। प्रसिद्ध अंगरेजी लेखक अल्डुअस हक्सले, जिन्होंने औषध का आकर्षण क्रमबद्ध अध्ययन किया, मेस्कालिन को स्वर्ग के द्वार खोलने की कुँजी मानते हैं। लेकिन मेंस्कालिन आदमी को आसानी से नरक में भी धकेल सकती है। ज्यां पाल सार्त्र ने मेंस्कालिन की ट्रिप भयभीत कर देने वाली बताई—उबकाई जैसी तनावपूर्ण कालिन विल्सन की किताब 'अजनबीपन से आगे' में मेस्कालिन के अनुभव पर एक लंबा लेख है, जिसका स्वर्ग जितना रुझाता है नर्क उतना ही डराता भी है।

मेस्कालिन जैसी ही एक अन्य औषध सिलोसींबीन है, लेकिन एल० एस० डी० (लिसरजिक ऐसिड डाइमेथिलामाइड) के बरार प्रचावर शायद ही किसी आधुनिक ओषध को मिला हो। अमेरिकी कालेज स्तर के लड़कों कीं कुल संख्या का १० प्रतिशत एक न एक वार एल० एस० डी० की ट्रिप जरूर ले चुका होता है। अमेरिकी प्रोफेसर टिमोथी लिचरी तो एल० एस० डी० के प्रमुख प्रचारकों में से हैं और उनका कहना है कि दिमाग की सही पकड़ के लिए यह जरूरी है कि हम दिमाग से परे चले जायें।

एल० एस० डी० की ट्रिप २०-३० मिनिट में शुरू होती है। तेजी से इधर उधर तैरते हुए रंग बोलते हुए महसूस होते हैं। कोई गजब नहीं कि संगीत सुनने के साथ साथ दीखने भी लगे। व्यक्ति कों लगता है कि वह अपने ही शरीर से फिसलता चला जा रहा है। ट्रिप में रुचि रखने वाले इस अद्भुत यात्रा को ब्रह्मांडीय (कास्मिक) अनुभव बताते हैं। चिंतन और तर्क के संसार से व्यक्ति क कोई सम्पर्क नहीं रहता। ट्रिप के चक्कर में कुछ लोग अपनी असली दुनियाँ से इतना अलग हो जाते हैं कि कभी वापस- नहीं लौटते। मृत्यु उनके लिए जरा डर नहीं रहता—परिवार और व्यवसाय की तो खैर चिंता ही क्या? यही कारण है कि कुछ आलोचकों ने एल० एस० डी० को रासायनिक ढंग से बींटनीक बनना बताया है।

गैर कानूनी बाजार में इधर एल० एल० डी० की टक्कर के दो नये नाम सुनने को मिले हैं। तीन-चार घंटे की छोटी ट्रिप के लिए डी० एम० टी० ने ऊब का भी व्यवसाय करने वाले अमेरिकी समाज को आकर्षित किया है।

संश्लिष्ट औषधें—अफीम, मारिजुआना और प्योतल इन सभी स्वाभाविक औषधों ने एक न एक संश्लिष्ट औषध को जन्म दिया है। अफीम के संश्लिष्ट रूप यानी परखनलियों की संतान इन कृत्रिम औषधों की जड़ें स्वाभाविक औषधों में ही हैं। अफीम के संश्लिष्ट रूप पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अफीम की सभी अच्छाइयों को अगर अलग किया जा सकता तो उसके संश्लिष्ट रूप मानवता के लिए वरदान सिद्ध होते। पर सच्चाई यह है कि औषधों की मानसिक तथा शारीरिक निर्भरता हर क्षण व्यक्ति को कमजोर बनाती रहती है। एक बात यह भी है कि मार्फिया और हेरोइन (अफीम के विकसित रूप) की निर्भरता व्यक्ति को किसी दूसरी संश्लिष्ट औषध की तरफ नहीं जाने देती। उदाहरण के लिए कोडेन अफीम से बनायी जाती है, पर उसका आकर्षण बहुत कम है।

कोकेन यदि आधुनिक व्यक्ति के लिए दुःस्वप्न बन गई है तो उसकी जगह ऐम्फीटामिन ने ले ली है। लेकिन ऐम्फीटामिन की बढ़ी हुई खुराक व्यक्ति को समाज विरोधी कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकती है। परीक्षा-ज्वर में छात्र ऐम्फिटामिन के लिए अतिरिक्त आकर्षण पैदा कर लेते हैं, जो उन्हे स्वर्ग की झलक दिखा कर नरक में धकेलती है।

अन्त में यहाँ ऐलकोहाल की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है। ऐलकोहाल पर इतना ज्यादा लिखा गया है कि हम सब उसके परिणामों से परिचित हैं। विभिन्न आध्यात्मिक अनुभवों की विस्तृत व्याख्या करने वाले अद्भुत अमेरिकी दार्शनिक विलियम जेम्स ने ऐलकोहाल के पक्ष में तर्क दिये हैं और कोई आश्चर्य नहीं अगर औषधों के आधुनिक प्रवक्ता जेम्स में अपनी जड़ें खोजते हैं। लेकिन किसी भी अन्य औषध की तुलना में ऐलकोहाल के परिणाम भयावह और जटिल हैं, इस बात को सभी मानते हैं।

औषध, अभिचार और सेक्स—औषधों का संक्षिप्त परिचय आधुनिक जीवन के इस बड़े सवाल को हमारे सामने रखता है कि भयाक्रांत कर देने वाले भविष्य को जानते हुए भी व्यक्ति औषधों में रुचि क्यों लेता है! क्यों उसके अन्दर एक विशिष्ट औषध के लिए ही रुझान होता है! मनोवैज्ञानिकों के विचार में औषध-आकर्षण अपने-आप को पीड़ित करने की मानसिक मजबूरी है। सुखसिद्धान्त जैसी पुरानी विचारधारा के साथ भी उसे जोड़ा जाता है, हालांकि आत्मपीड़न की मजबूरी भी अंततः सुख को प्राप्त करने के लिए ही है। यौनजीवन से औषध का सम्बन्ध सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। औषध अभिचार (विचक्राफ्ट) और सेक्स में आता है। एक आत्मस्वीकृति में चिकित्सक को एक युवक ने बताया कि औषध उसे लड़की के सामने ताकतवर बना देती है। लेकिन औषध पर जीवित रहने वाले व्यक्तियों को साधारणतया सेक्स के संबंध में निष्क्रिय माना जाता है। औषधों का असर कुछ लोगो में तो काम अभिप्रेरण को ही धीरे-धीरे गायब कर देता है।

न्यूयार्क मेडिकल कालेज के प्रोफेसर राबर्ट एल० शैरोफ ने दस वर्ष की खोज से मालूम किया है कि लती लोगों का चरित्र और उनकी व्यक्तिगत समस्याएं उन्हें अलग-अलग तरह का नशा चुनने पर मजबूर करती हैं। एल० एस० डी०, मेस्कौलिन, मारीजुआना इस्तेमाल करने वाले आमतौर पर वे होते हैं जो समझते हैं कि वह कोई बड़ी तोप हैं, जब कि वे ऐसा कुछ होते नहीं। औषध उन्हें असलियत से कतरा कर अपने बडप्पन को निभाने के लिए आराम से अकेला छोड़ देती है। ये लोग आमतौर पर बौद्धिक कामों पर लानत भेजते हैं, यह कह कर कि दिमाग सिर्फ पाखण्ड, ध्वंस और धोखा पैदा करता है। वे मानते हैं कि सिर्फ मन का जगत ही सत्य है। उनकी चुनी हुई औषध उन्हें अपने आप को यह समझने का अवसर देती है कि वे दूसरों के मुकाबले अधिक तथा अधिक गहराई से अनुभव कर सकते हैं और औषध से दूर रहने वालों के

[शेष पृष्ठ २४ पर]

विज्ञान वार्ता

कुछ चमत्कारी जड़ी बूटियाँ

अखिल भारतीय औषधि विज्ञान संस्थान (AIIMS) ने कम से कम छह ऐसी दवायें जड़ी बूटियों से तैयार की हैं जिनके प्रयोग से कम दाम पर अधिक लाभकारी प्रभाव प्राप्त होने की संभावना है। अजमैलिन, पेरुवोसाइड, गुग्गल की गोंद तथा जटामांसी का परीक्षण भारतीय औषधि शोध परिषद् द्वारा हो रहा है। आयुर्वेदिक तथा यूनानी दवाओं में से अधिकांश जड़ी बूटियों से प्राप्त की जाती रही हैं किन्तु इनकी विशुद्धता, प्रभावकता आदि के सम्बन्ध में कोई मानकीकरण नहीं हो पाया जिसके कारण उनके प्रति संदिग्धता बनी हुई है। जापान तथा पश्चिमी देशों ने इन देशी औषधियों के महत्व को स्वीकार किया है और जर्मनी तथा जापान ने अजमैलिन तथा पेरुवोसाइड नामक दवाओं को हृदय रोगों के लिये खरीदना प्रारम्भ कर दिया है। रूस में भी जड़ी बूटियों से विकसित औषधियों को प्रधानता दी जाती है। अजमैलीन एक ऐल्कैलायड है जो सर्पगन्धा (Rauwolfia Serpentina) नामक जंगली पौदे से प्राप्त किया जाता है। यह पौदा बिहार, देहरादून, शिमला तथा रोहिलखंड के अनेक भागों में प्रचुरता से उगता है। पेरुवोसाइड पीले कनेर से प्राप्त औषधि है। जर्मनी में ये दोनों औषधियां Gilurytmal तथा Encordin नाम से तैयार करके बेची जाती हैं।

यद्यपि सर्पगन्धा से भारतीय जनता शताब्दियों से परिचित रही है किन्तु १९३० में आकर ही इसके औषधि गुणों का पता चला। अब तक इससे ३५-४० ऐल्केलायड प्राप्त किये जा चुके हैं किन्तु इनमें से रिसर्पीन ही प्रसिद्ध है जिसे १९३४ में पृथक किया जा सका। यह रक्त चाप की उत्तम दवा है और बाजार में १९५३ से मिल रही है।

हल्दी तथा कस्तूरी से भी कुछ दवायें तैयार की गई है जो शोथ एवं गठिया में लाभकारी सिद्ध हो सकेंगी। कस्तूरी सर्पदंश में प्रतिविष का काम करती है।

गुग्गल की गोंद हृदय रोग की रोकथाम करती है। जटामांसी से बच्चों के चिड़चिड़ेपन तथा आक्रामकपन की रोकथाम की जा सकती है। इससे मृगी तथा तंत्रिका की गड़बड़ी दूर की जा सकती है। जटामांसी कुमायूं जिले, सिक्किम तथा भूटान में उगती है।

विश्वविद्यालयों मे रसायन सम्बन्धी शोधें सर्वोपरि

विज्ञान एवं टेक्नाजी समिति ने अपनी १० वर्षीय रिपोर्ट में यह बताया है कि विश्वविद्यालयों में होने वाली शोधों में रसायन का प्रमुख स्थान है। इसके बाद भौतिकी, गणित, जीवविज्ञान तथा भूगर्भ का नम्बर आता है। रसायन विभागों में जो शोधें चल रहीं हैं वे मूलभूत महत्ता एवं औद्योगिक सम्प्रयोग दोनों से सम्बन्धित हैं। विशेषतया औषधीय पादपों, कीट नाशियों, रंजको, प्रतिजैविकों एवं सौरभिक तेलों पर होने वाली शोधें उल्लेखनीय हैं। कार्बनिक रसायन शाखा में प्राकृतिक उत्पाद, बसा, एवं तेल, संश्लिष्ट कार्बनिक रसायन, संश्लिष्ट रंग एवं औषधियों पर विशिष्ठ कार्य हो रहा है। भौतिक रसायन में कोलायड, रसायन गतिकी तथा रासायनिक उष्मा, बलगतिकी, क्वांटम रसायन

ठोस अवस्था रसायन पर कार्य हो रहा है। रासायनिक गतिकी के अन्तर्गत विलयनी अभिक्रियाएं तथा बहुलकीकरण प्रमुख हैं। अकार्बनिक रसायन की अधिकांश शोध जटिल निर्माण, धातु उत्प्रेरक तथा विन्यास सम्बन्धों पर हैं। वैश्लेषिक रसायन में विरल मृदा तत्व एवं आक्सीकरण पर वल दिया जा रहा है। जैव रसायन के अन्तर्गत कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन उपापचय, किण्वन, ऊतक, संवर्द्ध तथा सूक्ष्मजीवों के अन्तर्वर्ती उपापचय के साथ साथ भारतीय विश्वविद्यालयों में एंजाइम, विटामिन तथा पादप प्रतिजैविकों पर कार्य हो रहा है।

भौतिकी में स्ट्रेक्टास्कोपी, ठोस अवस्था भौतिकी, अल्ट्रासानिक, न्यूक्लीय भौतिकी तथा एक्स किरणों पर उल्लेखनीय कार्य हो रहे हैं। जैव भौतिकी (biophysics) में प्रोटीन की संरचना पर कार्य हो रहा है। न्यूक्लियीय भौतिकी में कणों की संरचना एवं अन्तर अभिक्रियाओं तथा विखण्डन पर कार्य हो रहा है। ठोस अवस्था भौतिकी के अन्तर्गत क्रिस्टलों की संरचना एवं उनके भौतिक एवं यांत्रिक गुणधर्मों का अध्ययन हो रहा है। परमाणु भौतिकी में परमाणु की क्वांटम यान्त्रिकी, प्लाज्मा भौतिकी आदि पर कार्य हो रहा है।

गणित में जिन क्षेत्रों में कार्य हो रहा है उनमें संख्याओं का सिद्धान्त, ऐबस्ट्रेक्ट बीजगणित, टोपोलाजी, फलन विश्लेषण, द्रव यांत्रिकी, प्लास्टिकता, गणितीय स्टैटिस्टिक्स प्रमुख हैं।

जैव विज्ञानों में आकारिकी, भ्रूणविज्ञान, पादप रोग विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान, कवकविज्ञान, मृदा सूक्ष्मजीव पादप पोषण का जीव रसायन आदि पर कार्य हुए हैं।

● ●

[शेषांश पृष्ठ २२ का]

मुकाबले अपने भीतर ज्यादा दूर तक देख सकते हैं। शराब, बार्बीटुरेट और शामक औषधियां लेने वाले लोग प्रो० शैरोफ के अनुसार अधिकांश वे हैं जिन्हें अपने आक्रामक या यौन उत्तेजना को सँभालने में कठिनाई होती है। ये या तो दंभी और जालिम होते हैं या शराब पीने से हो जाते हैं। अफीम, मारफीन, शामक पदार्थ लेने वाले लोग अक्सर निष्क्रियता और निराले में रहना पसंद करते हैं। मुसीबत पड़ते ही उनकी वधिया बैठ जाती है और उन्हें अँधेरा दिखाई देने देने लगता है। उनकी पसंदगी की औषधं उन्हें आत्मप्रतिष्ठा की हानि के भय से बचाती है। ऐसा लती बहुधा अपने सब दर्द समाज पर थोप देता है और आश्वस्त हो जाता है कि समाज ने ही उसे औषध की शरण में धकेल दिया है। इस तरह वह अपने विकास और प्रौढत्व की ओर बढ़ने का संघर्ष छोड़ देने का एक अच्छा वहाना पा जाता है।

(दिनमान से साभार)

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग १०७ | चैत्र २०२७ विक्र०, १८९२ शक मार्च अप्रैल १९७० | संख्या ३-४

चन्द्रमा का भूवैज्ञानिक विश्लेषण

● विजय कान्त श्रीवास्तव

चन्द्रमा पर मनुष्य के पदार्पण ने मानव कल्पनाओं को एक मूर्त रूप प्रदान किया है। विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान के लिये यह दशक चिरस्मरणीय रहेगा। अमरीकी अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा लाये गये चन्द्र धरातल की शिलाओं, मिट्टियों तथा अन्य वस्तुओं के अध्ययन से नवीन तथ्यों का उद्घाटन हो रहा है। चन्द्र सम्बन्धी कुछ प्रश्नों का उत्तर इस यात्रा से मिला है परन्तु जैसे-जैसे अध्ययन किया जा रहा है, नये तथ्य मिलते जा रहे हैं और उनका संतोषप्रद उत्तर मिलना अपेक्षतया कठिन होता जा रहा है।

चन्द्रमा पर से लाई गई शिलाओं को अध्ययन के लिये विश्व भर में भेजा रहा है तथा हाउस्टन, टेक्सास, अमरीका स्थित प्रयोगशाला में वैज्ञानिक इनका अध्ययन कर रहे हैं। इन अध्ययनों के आधार पर ही यहाँ चन्द्रमा का एक भूवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

जल : अंतरिक्ष-यात्रियों द्वारा लाये गये शिलाखंडों एवं मिट्टियों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि चन्द्रमा पर जल का सर्वथा अभाव है। इसका कारण चन्द्रमा का अल्प गुरुत्वाकर्षण हो सकता है क्योंकि इसके करण वहाँ वाति की संभावना समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त सूर्य के प्रखर ताप द्वारा जल के सूखने की भी संभावना हो सकती है। परन्तु हमारे वाष्प सिद्धान्त के अनुसार चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी द्वारा ही हुई है, तो क्या पृथ्वी का जल का अंश चन्द्रमा पर नहीं होगा ? सम्भव है यह पृष्ठ के नीचे घनीकृत हो, वर्फ की भाँति जम गया हो परन्तु यदि ऐसा होता तो भी कुछ वाष्प के कण अवश्य विद्यमान होते तथा कुछ आर्द्रता अवश्य पायी जाती एवं इनकी विद्यमानता वेधशालाओं द्वारा लिये गये स्पेक्ट्रम चित्रों में अवश्यमेव आती। किन्तु कहीं भी ऐसे प्रमाण नहीं मिल पाये हैं अतएव चन्द्रमा पर जल का अभाव माना जाता है।

धूल: शिलाओं के छोटे छोटे टुकड़े ही धूल बन जाते हैं। शिलाओं द्वारा धूल वनने की प्रक्रियाओं का बड़ा महत्व है। इसमें भी समस्त क्रियाओं में जल द्वारा विदरण की क्रिया

सर्वाधिक उत्तम होती है। परन्तु चन्द्रमा पर जल का अभाव माना जाता है। इस अवस्था में इतने छोटे छोटे कणों का होना एक प्रश्न ही है। यदि चन्द्रमा प्रशान्त क्षेत्र से निकला हो तो पहले यह भी धूल में रहा होगा। हो सकता है कि बाद में यह बदल गया हो परन्तु वायुमण्डल के अभाव में ऐसा सम्भव नहीं है।

मिट्टीः अन्तरिक्ष यात्रियों के पैरोंमें चन्द्रमा की मिट्टी चिपकती थी अतः मिट्टी का गीला होना सम्भव है। परन्तु जल के अभाव में ऐसा कैसे हो सकता है ? अन्तरिक्षयात्री प्लास्टिक के जूते पहने थे। मिट्टी के कण भी सूखे थे। अतः हो सकता है कि घर्षण विद्युत के कारण मिट्टी जूतों में चिपक गयी हो। अभ्रक के छोटे कण तथा अन्य कण शीघ्र ही आकर्षित होते है।

गैसें: मिट्टी की भाँति चन्द्रमा पर भी गैसों में भी समानता पायी गई है। अब तक की खोज द्वारा चन्द्रमा की मिट्टी में आर्गन, हीलियम, जेनान गैसों की विद्यमानता का प्रमाण प्राप्त हो चुका है। इनको सूर्य के उन आणविक कणों द्वारा पहचाना गया है जो वायुमंडल में पाये जाते हैं। इनकी उपस्थिति से यह ज्ञात हो जाता है कि ये सूर्य द्वारा ही निर्मित होंगी। इस सम्बन्ध में विशेष अध्ययन टेक्सास में डाक्टर यूरी के द्वारा किया जा रहा है। इससे अनेक सूचनायें प्राप्त होने की सम्भावना है।

चन्द्रमा पर की मिट्टी में एक बनस्पतिशास्त्री डाक्टर चार्ल्स वाल्किन शा ने पालक के बीज बोये। ये पालक के बीज कुछ ही दिनों में लगभग डेढ़ इंच उग आये। इन पौधों के परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि इस मिट्टी में उर्वरा-शक्ति विद्यमान है। ये पौधे पृथ्वी की मिट्टी में उत्पन्न पालक के पौधों से अधिक मजबूत एवं बड़े पाये गये। इससे यह प्रतीत होता है कि की मिट्टी में वे समस्त तत्व विद्यमान हैं जो पृथ्वी पर की मिट्टी में पाये जाते हैं। वैज्ञानिकों ने बतलाया है कि इनमें ऐसे कोई तत्व नहीं हैं जो पौधों को हानि पहुँचा सकें। इनमें धातु तथा अधातु दोनों प्रकार के तत्वों की विद्यमानता है। यथा फासफोरस, कैलशियम, गन्धक, लोहा, मैगनीशियम, मैगनीज, जस्ता, ताँबा एवं टाइटेनियम इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि यह मिट्टी पृथ्वी की मिट्टी के समान ही है तथा उर्वरा शक्ति से युक्त है। सूक्ष्ममात्रिक तत्व बड़े महत्व के होते हैं। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि बोरान, मालिब्डिनम आदि तत्व भी इनमें हैं। ये तत्व प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से फसलों पर गहरा प्रभाव डालते है।

स्पष्टतः दोनों मिट्टियों में केवल जल का अन्तर है। जल के अभाव में चन्द्रमा की उर्वरा शक्ति का क्या उपयोग हो सकता है यह एक बड़ी समस्या है। यदि चन्द्रमा पर जल प्राप्त हो जाय, जिसकी आशा कम ही है तो चन्द्रमा पर पर्याप्त मात्रा में कृषि की जा सकती है। परन्तु यह स्वयं में एक समस्या है। यदि किसी प्रकार पृथ्वी से चन्द्रमा पर जल ले जाया जा सके या वहीं पर जल उत्पन्न किया जा सके तो सम्भव है कि समस्या हल हो जाय। यदि एक बार भी ऐसा हो जाय तो सदैव के लिये रास्ता खुल जायगा क्योंकि पहली बार की बनस्पतियाँ ही वायुमण्डल की विषाक्त गैसों को लेकर प्राण वायु का संचार करेंगी। इससे यह भी अनुमान लगाया जाता है कि चन्द्रमा को अन्तरिक्ष के अन्य पिंडों के अध्ययन के लिये आदर्श प्रयोगशाला बनाया जा सकता है।

शिलायें: अन्तरिक्ष-यात्रियों ने चन्द्र-शिलाओं का वर्णन किया है। उनके अनुसार ये शिलायें चमकने वाली तथा फिसलने वाली हैं। नील आर्मस्ट्रांग ने अभ्रक तथा बसाल्ट पहचाना है। चमकने वाली तथा फिसलने वाली शिला अभ्रक के कारण हो सकती है। श्वेत अभ्रक अत्यंत द्युतिमय होता है परन्तु वह इन शिलाओं में नहीं पाया गया। यहाँ चन्द्रमा की चमक का कारण भी समझ में आता है। सम्भव है चन्द्र-द्युति इन शिलाओं पर के परावर्तित किरणों द्वारा हो। परावर्तन की क्रिया का आभास तो पृथ्वी पर भी किसी बड़े टीले या कठोर चट्टान के पास धूप में दोपहर में जाने पर होता है। वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा में शीशे का अंश प्राप्त किया है तथा अनुमान है यह लगभग ५० प्रतिशत तक हो सकता है। शीशे का खनिज द्युतिमय होता है। हो सकता है चन्द्र-द्युति का कारण यही हो।

उपर्युक्त दोनों शिलाओं की उत्पत्ति आग्नेय है। अभ्रक इनमें कम पाया जाता है। अभ्रक यदि बड़ा हो तो पेगमाटाइट शिला की कल्पना होती है परन्तु यह शिला भी वायुमण्डल के अभाव में असम्भव है। ताप तो है परन्तु इसके निर्माण में जल की आवश्यकता होती है तथा इस शिला में अन्य खनिजों के बड़े बड़े टुकड़े पाये जाते हैं। यदि ऐसा होता तो कुछ अन्य खनिज अवश्य पहचाने जाते। अभ्रक शिष्ट तथा नाइस शिलाओं में मिलता है परन्तु केवल ताप से इसका भी बनना असम्भव है। जलवायु के अभाव में कायान्तरण नहीं हो सकता जिससे यह शिला बनती है। दूसरी शिला पायी जा सकती है क्योंकि इसकी उत्पत्ति आग्नेय है परन्तु इस शिला के साथ अन्य शिलाओं का होना आवश्यक है।

जब शिलाओं का विस्तृत ज्ञान हो जायगा तो इसकी उत्पत्ति का भी ज्ञान आसानी से हो जायगा। इन शिलाओं के साथ धूल के कण भी पाये गये हैं। धूल शिलाओं के टूटे भाग हैं। इनके बनने की प्रक्रिया पर ध्यान देना है। इनका विदरण हो नहीं सकता क्योंकि वायुमंडल नहीं है एवं जल भी नहीं है। ताप-परिवर्तन से तथा खिंचाव से शिलायें टूट गई हों या न्यून गुरुत्वाकर्षण के कारण तीव्र फिसलन से शिलायें टूट गयीं हों।

गड्ढे एवं दरार: चन्द्र-धरातल पर अनेक छोटे बड़े गड्ढे तथा दरार पाये गये हैं। ये सब असमान हैं, कुछ बड़े कुछ छोटे, कुछ चिपटे, उभड़े एवं कुछ गोल हैं। इनकी निर्माण सम्बन्धी प्रक्रिया के लिये कई अनुमान हैं।

हो सकता है कि ये सब ज्वालामुखी द्वारा निर्मित हों परन्तु इस समय में कोई भी कार्यरत गह्वर नहीं दिखलाई पड़ रहा है। हो सकता है कि ये सब ज्वालामुखी समाप्तप्राय हों। ज्वालामुखी की क्रिया समाप्त होने पर प्रायः गह्वर बन जाया करते हैं अतः ये सब गड्ढे उन दिनों की याद दिलाते हैं जब वहाँ ज्वालामुखी कार्यरत था। चन्द्रमा बहुत पहले ठंडा हो चुका है। यदि व्यापक अध्ययन से यह पता चल जाय कि इनमें से एक भी आज भी तप्त है तो यह प्रक्रिया स्पष्ट हो जायगी। परन्तु सबका अध्ययन एक दुरूह कार्य है तथा दूरबीनों द्वारा लिये गये चित्रों में उद्गार की अवस्था नहीं दिखलाई पड़ती।

यदि चन्द्रमा के टूटने के समय की अवस्था नम रही हो तो उस समय गड्ढे बन सकते हैं। ये गड्ढे धूल में छिप सकते हैं। दूरबीन द्वारा चन्द्रमा के बहुत अन्दर के चित्र नहीं मिल पाते। अतः इन चित्रों के अभाव में इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है।

ताप-परिवर्तन के कारण भी गड्ढे बन सकते हैं तथा बिगड़ भी सकते हैं परन्तु ऐसे चित्रों के अभाव में कुछ कहना कठिन है।

आकाश में उल्का अनेक दिशाओं में फैली हैं। ऐसी अनेक उल्कायें पृथ्वी से टकराया करती हैं परन्तु पृथ्वी की कक्षा में वायुमंडल के कारण उनमें से अनेक जल जाती हैं। हम प्रायः रात्रि में टूटते तारों के रूप में इन उल्काओं को देखते हैं। तीव्र वेग से टकराने के कारण ये उल्कायें विशाल गह्वर का निर्माण करती हैं। हो सकता है चन्द्रमा पर के गड्ढों का कारण यही हो परन्तु ऐसी अवस्था में आज भी यह क्रिया होनी चाहिए।

पृष्ठ: चन्द्रमा का अत्यन्त पृष्ट कठोर है। ध्वज गाड़ते समय अन्तरिक्ष यात्रियों ने इसे अतिशय कठोर पाया। यह कठोरता शिलाओं के कारण है। पिछले विवेचन से स्पष्ट है कि आग्नेय शिलायें विद्यमान हैं जो कठोर हुआ करती हैं।

उपयोगी खनिज: चन्द्रमा पर अनेक खनिजों के पाये जाने की सम्भावना है परन्तु वहाँ स्वर्ण, चाँदी तथा प्लैटिनम का अभाव है। उनके अतिरिक्त अन्य अनेक बहुमूल्य तत्व पाये गये हैं। टाइटैनियम की विपुल राशि के प्राप्त होने की सम्भावना है। शीशा भी काफी मात्रा में मिल सकता है। विस्तृत अध्ययन से चन्द्र-शिलाओं धूल एवं मिट्टी के उपयोग की सम्भावनाओं पर प्रकाश पड़ेगा।

इस प्रकार चन्द्रमा वैज्ञानिकों के लिये एक समस्या है। इस बार की यात्रा से एवं कुछ शैल-खंडों के अध्ययन से कुछ तथ्य ज्ञात हुए हैं। निकट भविष्य में चन्द्रमा पार की जाने वाली यात्राओं से अन्य तथ्यों के उपलब्ध होने की आशा है। ● ●

लुप्तप्राय जन्तु–गेण्डा

● रामेश वेदी

पाँच हजार साल पहले मोहनजोदड़ो में गैंडा पूजा का पशु माना जाता था। सिन्धु घाटी की सभ्यता के जो लोग मोहनजोदड़ो में बसते थे उनमें विश्वास था कि यह उन्हें विपत्तियों से बचाने की सामर्थ्य प्रदान करता है। मिट्टी की चौकोर पट्टियों पर वे गैंड़े को अंकित करते थे। गण्डे-तावीज के रूप में वे इसे धारण करते थे।

भारत और नेपाल में यह मंगलकारी पशु समझा जाता रहा है। संस्कृत साहित्य में तथा आदिवासियों में इसके साथ अनेक प्रकार के विचित्र विश्वास जुड़े हुए देखे जाते हैं। ल्होटा नागा गेण्डे की हड्डी का एक टुकड़ा अपने खेतों के पास इस विश्वास से गाड़ देते हैं कि उनकी फसलें अच्छी उगेंगी।

लोक-कथाओं के अनुसार समर-विद्या के विशारद श्री कृष्ण ने भले ही इसे युद्ध के लिए उपयुक्त जानवर नहीं माना या परन्तु इतिहास और पुरातत्व साक्षी हैं कि युद्ध-लोलुप मनुष्य को अपने उदय के आदि-काल में रक्षा करने के उपायों में जिस मजबूत ढाल की आवश्यकता थी वह उसे गेण्डे की खाल से प्राप्त करता था। टाँगों के ऊपर चारों जोड़ों पर मोटी खाल की जो तहें होती हैं वे ढाल बनाने के लिए उपयुक्त होती हैं। एक गेण्डे की खाल से चार ढालें बन जाती हैं। तलवार की मूठों और बन्दूक भरने की छड़ों को वह इसी से बनाता था। जावा निवासियों के १४१६ ई० के एक चीनी वर्णन में बताया गया है कि इन लोगों के चाकू के हत्थे सोने के या गेण्डे के सींग के बनाये जाते थे। हिमालयवासी गेण्डे को अलौकिक शक्ति का पुंज मानते हैं।

जातियाँ: संसार में गेण्डे की पाँच जातियाँ पाई जाती हैं—दो अफ्रीका में, और तीन एशिया में। आकार और डील-डौल में सबसे बड़ा अफ्रीकी सफेद गेण्डा है। तब भारतीय गेण्डे का नम्बर आता है और उसके बाद अफ्रीकी काले गेण्डे का; तत्पश्चात् जावा वाला और अन्त में सुमात्रा वाला।

जहाँ तक मनुष्य द्वारा संहार किये जाने का सवाल है उसने सभी जातियों का सफाया करने के लिए प्रयत्न किये हैं। प्राणिशास्त्रियों के सर्वेक्षण के अनुसार एशियाई जातियों को अपेक्षाकृत अधिक मारा गया है। इस समय पाई जाने वाली जातियों के गेण्डों की अनुमानित संख्या से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

विश्वास किया जाता है कि इस समय अफ्रीकी काले गेण्डे ग्यारह हजार और साढ़े तेरह हजार के बीच में हैं। इस गेण्डे के सामान्यतया दो सींग होते हैं, परन्तु अभिलेखों के अनुसार किसी-किसी के तीन सींग भी निकल आते हैं। सामान्य नियम यह है कि अगला सींग अधिक लम्बा होता है। आदिवासी इस प्रकार के गेण्डे को **बोरेली** कहते हैं। जिस गेण्डे के दोनों सींग बराबर हों या पिछला सींग बड़ा हो उस तरह के गेण्डे को **कीटोला** कहते हैं।

गेण्डे की विभिन्न जातियों में सबसे बड़ा अफ्रीका का सफेद गेण्डा है। कन्धे पर इसकी ऊँचाई कभी-कभी साढ़े छः फीट तक पहुँच जाती है, और लम्बाई बारह फीट तक। इसका उपरला ओठ नोकदार न होकर चपटा होता है जिससे मुख चौरस दीखता है। काले गेण्डे के मुकाबले में इसका अगला सींग कहीं अधिक लम्बा होता है।

यह साढ़े पांच फीट ढाई इंच तक का नापा गया है। पिछला सांग कभी-कभी दो फीट तक बढ़ जाता है परन्तु सामान्यतया एक ठूंठ से कुछ ही बड़ा होता है। सफेद गेण्डे की आदतें काले से भिन्न होती हैं। यह थूंथनी को आकाश में ऊँचा उठा कर चलता है जब कि काला नीचे धरती के पास रखता है।

सफ़ेद गेण्डा कभी भी विस्तृत क्षेत्र में नहीं पाया जाता रहा। चिड़ियाघरों में भी यह शायद ही कभी देखा गया हो। अजायबघरों में भी बहुत ही कम दीर्घाओं (गैलरियों) में इसके भुस भरे नमूने मिलेंगे। अनुमान है कि अफ्रीका में जीवित सफ़ेद गेण्डे लगभग ढाई हजार और साढ़े तीन हज़ार के बीच में होंगें

एशिया में पाई जाने वाली तीनों जातियों की संख्या कहीं कम है। भारतीय एक सींग वाले गेण्डे के बारे में अनुमान है कि इनकी कुल संख्या ६२५ से अधिक नहीं होगा जिनमें से नेपाल में राप्ती घाटी के दोनों ओर पाँच सौ वर्गमील के क्षेत्र में लगभग १८५, बंगाल में ६५, और असम में ३७५ होंगे।

जावा का एक सींग वाली क्षुद्रतर जाति भारतीय गेण्डे के समान भारी गठन की नहीं होती यद्यपि कन्धे पर नापा जाय तो दोनों की ऊँचाई लगभग एक समान होगी। इसका सिर तुलना में छोटा होता है। इस जाति की मादा में सांग नहीं होता। नर का सींग भी बहुत बड़ा नहीं होता। लन्दन के "नेचुरल हिस्ट्री म्युजियम" में एक सींग साढ़े आठ इंच लम्बा रखा हुआ है। आधार में इसकी परिधि लगभग बीस इंच है। जावा का यह गेण्डा पश्चिमी जावा के उद्जोंग कूलोन आरक्षित वन में ही सीमित है। अनुमान है कि इनकी संख्या पच्चीस से पचास के बीच में होगी।

विश्वास किया जाता है कि एशियायिक या सुमात्रा के दो सींग वाले गेण्डों की कुल संख्या एक सौ सत्तर होगी। ये मुख्यतया बर्मा, मलय और सुमात्रा में पाये जाते हैं। गेण्डे की पांचों जातियों में यह सबसे छोटी जाति लघुतम गेंडक (Rhinoceros sumatrensis) है जिसकी कन्धे पर ऊँचाई चार से साढ़े चार फीट तक होती है। थूंथनी से पूंछ के सिरे तक यह आठ फीट लम्बा होता है। यह गेण्डा यद्यपि दो सींग वाला है परन्तु इसका अगला सींग छोटा होता है और पिछला नाममात्र को ही होता है। कुछ लेखकों ने अगले सींग की अधिकतम लम्बाई दो फीट साढ़े आठ इंच और पिछले की एक फुट पाँच इंच तक अभिलिखित की हैं। इसके शरीर पर गहरे भूरे लम्बे बाल उगे रहते हैं। कानों पर भी बालों की झालर होती है। बालों वाले कानों की एक और जाति भी पाई जाती है। किसी समय इसे सुमात्रा के गेण्डे का एक भेद माना जाता था परन्तु अब यह एक अलग जाति स्वीकार कर ली गई है। जनवरी १८६८ ई० में पकड़े गए एक गेण्डे को देख कर लन्दन की जुऑलोजिकल सोसायटी के मन्त्री डा० स्क्लैटर ने मूलतः इसका वर्णन किया था। यह प्राणी अन्ततः लन्दन भेजा गया था और इसे जुऑलोजिकल सोसायटी ने १२५० पौण्ड में खरीद लिया था। इसके कानों के ऊपर एक बालदार झालर थी। इसका शरीर लम्बे, बारीक, लाली लिए हुए भूरे रंग के बालों से ढका था। सुमात्रा के गेण्डे की तुलना में इसकी त्वचा अधिक चिकनी थी और अपेक्षाकृत सूक्ष्म कणों वाली थी तिस पर इसकी पूंछ अधिक छोटी थी।

एशिया की तीनों जातियाँ कभी भारत में मिल जाती थीं। जावा का छोटा एक सींग वाला गेण्डा एक समय बंगाल में, विशेषतः सुन्दरवन में काफी मिलता था। परन्तु १९०० ई० के लगभग वह लुप्त हो गया। सुमात्रा का दो सींग वाला गेण्डा लगभग १९३५ ई० तक आसाम की मिजो पहाड़ियों में मिल जाता था।

निवास स्थान: इस समय भारतीय गेण्डे का निवास यद्यपि बहुत सीमित हो गया है परन्तु पुरातत्वीय तथा ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि एक जमाने में यह दूर-दूर तक फैल हुआ था और भारत के बहुत से स्थानों में पाया जाता था। यहाँ तक कि दक्षिण भारत में भी मिल जाता था। इस उपमहाद्वीप में वनों के कटने और जलवायु के बदलने के साथ-साथ गेण्डे के निवास-स्थान भी बदलते चले गए।

पंजाब की राजधानी चण्डीगढ़ के उत्तर में पाँच मील पर पिंजौर नामक एक स्थान है। यहाँ की खुदाई में चट्टानों के अन्दर पुराने प्राणियों के अश्मीभूत अवशेष मिले हैं। उनसे मालूम होता है कि दस लाख साल पहले यहाँ गेण्डे विचरते थे।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त सामग्री में गेण्डा जिस बहुलता और यथार्थता के साथ अंकित किया गया है उससे पता चलता है कि यह वहाँ भलीभाँति जाना-पहिचाना प्राणी था। सिन्धु घाटी की सभ्यता (लगभग ५००० साल पहले) के जमाने में सिन्ध और शायद पश्चिम में और आगे भी यह बहुत सामान्य रूप से पाया जाने वाला पशु था।

अपने संस्मरणों में बाबर ने लिखा है कि सिन्धु के पास झाड़ियों से भरी धरती पर उसने १५१६ ई० में गेण्डे का शिकार किया था। सोलहवीं शताब्दी में भी गेण्डा पेशावर में मिल जाता था। अबुल फ़ज़ल ने गेण्डे के शरीर की बनावट का तथा इसकी आदतों का सही रिकार्ड किया है। बादशाह अकबर ने घोड़े पर बैठ कर इस अजीब जानवर का पीछा किया होगा। अकबर के जीवन वृत्तान्त में अबुल फ़ज़ल लिखते हैं कि घोड़े की पीठ पर सवार आदमी के ऊपर भी यह हमला कर देता है। इसकी खाल को तीर नहीं बींध सकता। यह इतनी मजबूत होती हैं कि इससे छाती की रक्षा के लिए कवच, ढाल तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थ बनाये जाते हैं[1]।

कहा जाता है कि अकबर के समय गेण्डा देहली के आसपास मिल जाता था। आक्रमण के दौरान तैमूर ने कश्मीर के पास १३९८ ई० में कई गेण्डों का शिकार किया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक यह उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र और रुहेलखण्ड में तथा बंगाल में गंगा की घाटी में पाया जाता था। सौ बरस नहीं बीते जब कलकत्ते की बस्ती अलीपुर में गेण्डे घूमा करते थे। १३८७ ई० में शिवालक और दून घाटी में आखेट के लिए जब फ़िरोज-शाह आया तो उत्तराखण्ड के इस भाग, हरिद्वार और देहरादून के प्रदेश में यह जन्तु मिल जाता था।

हिम युग का प्राणी

अन्तिम हिम युग (लगभग १४००० ईस्वी पूर्व से ११००० ईस्वी पूर्व) की जो गुफाएँ फ्रान्स और स्पेन में मिली हैं उनमें गेण्डा चित्रित है। दूसरे पशुओं के चित्रों की तुलना में यहाँ गेण्डे के चित्र कम ही हैं। श्री ऐब्बे एच० बुइल ने अपनी पुस्तक 'गुफा कला की चार सौ शताब्दियाँ' में दो चित्र प्रस्तुत किए हैं। इनमें से एक में तो वह युद्ध की मुद्रा में दिखाया गया है। शरीर को कुछ समेट कर और गरदन को सिकुड़ा कर जैसे वह दुश्मन पर हमला करने को तैयार हो। दोनों चित्रों में इस पशु के दो सींग हैं जिनमें अगला तो खासा लम्बा और पिछला बहुत छोटा दिखलाया गया है[2]।

प्राणिशास्त्र के पण्डितों के अनुसार इसे रहाइनोसिरोस टाइकोरिनस (Rhinoceros Ticorinus) कहते हैं।

विविध भाषाओं में नाम

चरक और सुश्रुत ने गेण्डे के लिए खड्ग और खड्गी शब्दों का प्रयोग किया है। खड्ग का शाब्दिक अर्थ तलवार है। चूंकि मुख के ऊपर नाक पर उगे हुए सींग की आकृति तलवार के आकार सदृश होती है इसलिए इसके ये नाम पड़े हैं। 'हलायुध कोश' में संस्कृत में गेण्डे के ग्यारह नाम संगृहीत हैं :-खड्ग, खड्ग मृग (तलवार वाला पशु,) तुंगमुख (जिसके मुख के ऊपर ऊंचा उभार है), कोडीमुख, वार्द्धीणस (जिसकी नाक उठी हुई है), बली (बलवान्), बज्रवर्मा (कठोर चमड़ी वाला), एकचर (अकेला घूमने वाला), गण्ड, गण्डक, गणोत्साह। लोक में प्रचलित गेण्डा शब्द संस्कृत के गण्ड और गण्डक शब्दों से निकले हैं।

[शेष पृष्ट ८ पर]

१. आईन-इ-अकबरी, १९४८, जिल्द ३, पृष्ठ १३४।

२. फोर हण्ड्रेड सेंचुरीज़ आफ़ केव आर्ट, ऐब्बे एच० बुइल, पृष्ठ ८२, चित्र संख्या ४४ और पृष्ठ १०५, चित्र संख्या ७०

जीव संदीप्ति

● डा० शिव प्रकाश

समुद्र , मछली, अथवा लकड़ी में प्रायः जो प्रकाश दिखाई पड़ता है उसका कारण जीवित जीवाणुओं की उपस्थिति होती है। इन जीवाणुओं द्वारा उत्सर्जित प्रकाश को **जीव संदीप्ति** (Bioluminiscence) कहते हैं।

जानवरों तथा वनस्पतियों दोनों में ही संदीप्त जातियाँ पाई जाती हैं। वनस्पतियों में जीवाणु तथा फफूंदी सम्मिलित हैं। ये जीवाणु समुद्री जल में ही पाये जाते हैं, ताजे पानी में नहीं। संदीप्त जीवाणुओं को कृत्रिम रूप से भी उत्पन्न किया जा सकता है। सोडियम क्लोराइड के रूप में उपस्थित लवण का ३-५% जलीय विलयन इसके लिये उत्तम अवस्था है। प्रकाश उत्पन्न करने वाले अन्य जीवों तथा जीवाणुओं और फफूंदी में इस प्रकार भेद किया जा सकता है कि इनके द्वारा उत्पन्न प्रकाश समान तीव्रता, दिन व रात दोनों में चमकने वाला तथा किसी प्रकार की उत्तेजना पर निर्भर नहीं करता जबकि अन्य जीव तभी प्रकाश उत्पन्न करते हैं जब उत्तेजना की अवस्था हो या उन्हें छेड़ा जाय।

बरसात के दिनों में नम स्थानों अथवा नदी के किनारे आपने जुगुनुओं को चमकते देखा होगा। जुगुनू की यह चमक जीव संदीप्ति के कारण ही होती है। इस प्रकार उत्सर्जित प्रकाश जलते हुये दीपक, विद्युत बल्ब अथवा मोमबत्ती से निकले हुये प्रकाश से इस अर्थ में भिन्न होता है कि इसमें उष्णता नहीं होती। इसी कारण से जीव संदीप्ति को 'शीतल प्रकाश' कहा जाता है। इसमें जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसका ताप ०.००१० सें० के लगभग होता है। यदि अधिक उष्मता होती तो जीव तथा वनस्पति जलकर राख हो जाते। फिर भी उत्पन्न प्रकाश साधारण प्रकार की ही भाँति फोटोग्राफ़ी की प्लेट को प्रभावित कर सकता है तथा अभिक्रिया को प्रेरित कर सकता है। इस संदीप्ति में परावैंगनी अथवा अवरक्त क्षेत्र सम्मिलित नहीं होता। यह संदीप्ति रासायनिक अभिक्रिया के फलस्वरूप तो उत्पन्न होती है परन्तु रसायनों का आपस में इस प्रकार संयोजन होता है कि जो अभिक्रिया-ऊष्मा होती है वह अत्यन्त न्यून मात्रा में होती है।

जीव संदीप्ति हज़ारों वर्ष पूर्व से ज्ञात है पर इसके रासायनिक आधार का ज्ञान १८८७ ई० तक नहीं हो सका। राफेल डूब्वा फ्रांसीसी रसायनज्ञ ने इस प्रकार चमकने वाले पदार्थ को लूसीफ़ेरीन नाम दिया जिसका अर्थ होता है 'प्रकाश धारक'। डूब्वा ने एक क्लान से चमकने वाला तरल पदार्थ परख नली में रखा। थोड़ी देर में उसकी चमक समाप्त हो गई। जब इसमें एक अन्य क्लान से वही तरल निकाल कर मिलाया गया तो शीघ्र ही चमक वापस आगई। प्रयोगों के आधार उन्होंने यह देखा कि लूसीफेरीन तब तक नहीं चमकता जब तक कि उसमें अन्य 'अज्ञात' पदार्थ उपस्थित नहीं होता। इस अज्ञात पदार्थ का नाम उन्होंने **लूसीफ़ेरेस** रखा। एक छोटे से सामुद्रिक जीव साइप्रिडिनिया में लूसीफ़ेरीन तथा लूसीफेरेस दोनों पदार्थ उसके शरीर के अलग-अलग भागों में विद्यमान रहते हैं। इस जीव के शरीर से इन तरलों को पृथक करके उनका रासायनिक विश्लेषण करके हार्वे ने यह प्रदर्शित किया कि इनके संगठन में कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सिजन तत्व उपस्थित हैं जैसा कि सभी जीवित कोशिकाओं में पाया जाता है। हार्वे तथा अन्य वैज्ञानिकों ने जो जीव-संदीप्ति पर कार्य कर रहे थे, अपने सतत, प्रयोगों द्वारा यह पता चलाया कि लूसीफेरीन जल अथवा वायु से ऑक्सिजन लेकर आक्सीकृत होता है तभी प्रकाश उत्पन्न होता है। यह रासायनिक अभिक्रिया तब तक नहीं होती जब तक लूसीफेरेस भी उपस्थित न हो।

समुद्र की सामान्य स्फुरदीप्ति **प्रोरोजून नोरिलुका** के कारण होती है। गहरे पानी की कई मछलियों में संदीप्त अंग पाये जाते हैं। लूसीफेरीन वर्णक पर लूसीफेरेस एंजाइम की अभिक्रिया द्वारा एक माध्य यौगिक बनता है जो ऑक्सिजन की उपास्थिति में रासायनिक संदीप्त पदार्थ बनाता है। जीवाणुक लूसीफेरीन रिवोफ्लेवीन फास्फेट($FMNH_2$) होता है। आंशिक रूप से शुद्ध किया गया लूसीफेरेस (**एक्रोमोबैक्टर फिशराई** से प्राप्त) $FMNH_2$, ऑक्सिजन तथा लम्बी श्रृंखला के वसीय ऐल्डीहाइड डोडेकिल एल्डीहाइड, पामिटाल्डीहाइड) की उपस्थिति में प्रकाश उत्सर्जन करने वाली अभिक्रिया को उत्प्रेरित करता है। प्रत्यक्ष रूप से यह संदीप्ति एंजाइम उत्प्रेरित इलेक्ट्रान स्थानान्तरण की क्रिया होती है। ऐल्डीहाइड का कार्य स्पष्ट नहीं है परन्तु यह यौगिक प्रकाश उत्पन्न होने वाली क्रिया में प्रयुक्त हो जाता है और ऐसा संभवतः वातजीवी आक्सीकरण द्वारा उत्पन्न हाइड्रोजन-पराँक्साइड के निर्माण के कारण होता है। जुगनू में पाये जाने वाले लूसीफेरीन की संरचना ज्ञात नहीं है पर इसे फ्लैवीन से सम्बन्धित किया जा सकता है। जुगनू से प्राप्त लूसीफेरेस क्रिस्टलीय होता है। अधिकतम संदीप्त के लिये मैग्नीशियम तथा एडिनोसीन ट्राइफाँस्फेट (ATP) का होना आवश्यक है। ऐसी संभावना हो सकती है कि अवक्षत लूसीफेरीन ATP से अभिकृत हो कर एडिनोसीन मानो फाँस्फेट (AMP) बनाता हो जो ऑक्सिजन द्वारा ऑक्सीकृत हो कर रासयानिकतः संदीप्त हो जाता है।

एयर्थ, रहोड तथा मैक्लारी ने १९५८ ई० में जुगनू द्वारा प्राप्त लूसीफेरीन के क्रिस्टलीय पदार्थ का अध्ययन करके निम्नलिखित क्रियाविधि समझाई।

१. लूसीफेरीन (LH_2) एडिनोसीन ट्राइफाँस्फेट से अभिक्रिया करके AMP लूसीफेरीन तथा (LH_2-AMP) तथा पाइरोफाँस्फेट (PP) बनाता है।

२. LH_2-AMP ऑक्सिजन की उपस्थिति में प्रकाश देता है और एडिनिउआक्सी लूसीफेरीन (L-AMP) उत्पन्न करता है। L-AMP विघटित होकर L तथा AMP बनाता है।

३. L प्रकाश अभिक्रिया का शक्तिशाली अवरोधक है और एक बार जब यह ATP तथा लूसीफेरेस से अभिकृत हो चुकता है तो लूसीफेरेस में LH_2 के आक्सीकरण की क्षमता नहीं रह जाती।

४. सह एंजाइम-A (CoA) एंजाइम तल से L को दूर करके प्रकाश उत्सर्जन में अभिवृद्धि करता है। L-CoA सीरटाइन, ग्लूटाथायोन अथवा हाइड्रॉक्सिल एमीन से अभिकृत हो कर संगत ऑक्सीलूसीफेरिल बनाता है।

५. L-CoA लूसीफेरेस की उपस्थिति में AMP द्वारा विभक्त हो सकता है और जब PP आधिक्य में हो तो ATP तथा मुक्त L का निर्माण होता है। ●

[पृष्ठ ६ का शेषांश]

जीव-जन्तुओं का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक गेण्डे को रिह्नोसिरोज-युनिकौर्निस (Rhinoceros unicornis Linn) कहते हैं। रिह्नोसिरस लैटिन भाषा का शब्द है जो ग्रीक में र्‌ह्नोकेरोस रि्हस (Rhis) या रि्हनोस (Rhino-Keros) का अर्थ नाक है और केरोस का अर्थ सींग। रि्हनोसिरोस युनिकौर्निस का अर्थ हुआ ऐसा प्राणी जिसके नाम के ऊपर एक सींग होता है। आधुनिक प्राणिशास्त्र की पुरानी पुस्तकों में भारतीय गेण्डे के लिए ये दो नाम भी मिलते हैं—र्‌हानोसिरोस इण्डिकुस (Rhinoceros indicus cuv) और र्‌हानोसिरोस स्टेनोकेफेलस (Rhinoceros stenocephalus)।

(क्रमशः)

द्रव्यमान

• श्यामलाल काकानी

"किसी भी पदार्थ के द्रव्यमान का ज्ञान, हम उससे सम्बन्धित प्रभावों से कर सकते हैं। लेकिन द्रव्यमान क्या है? इसकी विशुद्ध व्याख्या या परिभाषा करना एक विकट समस्या है। वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि शायद द्रव्यमान की परिभाषा, भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में, सापेक्षता के सिद्धन्त के प्रतिपादन के पश्चात् एक और नई क्रान्ति लाएगी।"

द्रव्यमान क्या है? इसकी विशुद्ध परिभाषा अभी तक संभव नहीं है। किसी भी वस्तु के द्रव्यमान का ज्ञान, उस पर सम्बन्धित प्रभावों से ही प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी वस्तु के भारीपन और हल्केपन का अनुमान हम उसको हाथ में उठाकर अर्थात् उस स्थान पर वस्तु पर, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के माप से बता सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि वस्तु का द्रव्यमान उस स्थान पर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण-बल का परिणाम है। अगर वही वस्तु पृथ्वी की सतह पर रखी हुयी है, और हम उसे जड़त्व अवस्था से गतिमान अवस्था में लाना चाहते हैं, तो हम अनुभव करेंगे कि वस्तु इसका प्रतिरोध करती है (गति का पहला नियम)। उपर्युक्त वर्णित वस्तु की दो भिन्न अवस्थाओं से यह स्पष्ट है कि वस्तु का द्रव्यमान दोनों अवस्थाओं में भिन्न गुणों पर निर्भर करता है। प्रथम दशा में वस्तु का द्रव्यमान, गुरुत्वाकर्षण बल पर निर्भर करता है, और इसको गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान (Gravitational Mass कहते हैं, और M_g से प्रदर्शित करते हैं। दूसरी दशा में द्रव्यमान जड़त्व गुण पर निर्भर करता है। इसको अवस्थित्व द्रव्यमान (Inertial Mass कहते हैं और सधारणतया M_i से प्रदर्शित करते है। प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि वस्तु के गुरुत्वाकर्षण और अवस्थित्व द्रव्यमानों का आंकिक मान बराबर होता है [टिप्पणी १ देखो]। किन्तु यदि हम जड़त्व और गुरुत्वाकर्षण के स्थान पर अन्य प्रभावों-जैसे जड़त्व और ताप ग्राहिता इत्यादि-को आधार मान कर वस्तु का द्रव्यमान ज्ञात करें तो आंकिक परिणाम सदैव भिन्न प्राप्त होंगे।

विभिन्न वैज्ञानिकों ने द्रव्यमान की भिन्न-भिन्न परिभाषायें दी हैं। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:—

1. अवस्थित्व द्रव्यमान

पदार्थ का वह गुण, जिससे वह यथास्थिति में रहने का प्रयास करता है, जड़त्व कहलाता है। इस गुण पर आधारित द्रव्यमान को अवस्थित्व द्रव्यमान कहते हैं। चिरसम्मत यांत्रिकी (Classical Mechanics) के अनुसार अवस्थित्व द्रव्यमान के दो विशेष गुण होते हैं:

(अ) अवस्थित्व द्रव्यमान संयोज्य राशि है। अर्थात् दो वस्तुओं को मिलाने से उनका कुल द्रव्यमान, दोनों के पृथक पृथक द्रव्यमानों के योग के बराबर होगा : $M = m_1 + m_2$

(ब) जब कोई वस्तु एक अवस्थितत्व प्रणाली से दूसरी अवस्थितत्व प्रणाली में जायेगी तो उसके द्रव्यमान में कोई परिवर्तन नहीं होगा। दूसरे शब्दों में द्रव्यमान पर वस्तु के वेग या गति का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

2 सक्रिय गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान

कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि एक पदार्थ, दूसरे पदार्थों में गुरुत्वाकर्षण प्रेरित करता है। उनके अनुसार इसी कारण सूर्य के चारों ओर निश्चित कक्षों में ग्रह चक्कर

लगाते हैं, और वस्तुओं को पृथ्वी अपनी ओर आकर्षित करती है। इस गुण पर आधारित वस्तु के द्रव्यमान को सक्रिय गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान की संज्ञा दी है।

3 निष्क्रिय गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान

कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि पदार्थ गुरुत्वाकर्षण खिचाव का सुग्राही होता है। उनके अनुसार पृथ्वी और अन्य ग्रह, सूर्य के गुरुत्वाकर्षण बल के सुग्राही होने के कारण ही इसके चारों ओर निश्चित कक्षों में घूमते हैं। इस प्रकार के द्रव्यमान को निष्क्रिय गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान की संज्ञा दी है।

4 निरपेक्ष गतिक द्रव्यमान

कुछ वर्षों पूर्व प्रसिद्ध कैनाडियन भौतिक शास्त्री कम्फर (Kaempffer) ने गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान के सम्बन्ध में संभावना प्रकट की। उन्होंने इसे निरपेक्ष गतिक द्रव्यमान की संज्ञा दी है।

5 ऋणात्मक द्रव्यमान

बुध ग्रह के कक्ष में होने वाले असंभावित परिवर्तनों का संतोषजनक वर्णन करने के लिए कुछ वैज्ञानिकों ने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम को सामान्यीकृत बनाने का प्रयास किया है। इस प्रयास में उन्होंने ऋणात्मक द्रव्यमान या प्रति-द्रव्यमान की संभावनाएँ व्यक्त की हैं। वैसे प्रति इलेक्ट्रान, प्रति न्यूट्रान और प्रति प्रोटॉन की खोजों से यह प्रतीत होता है कि इस ब्रह्माण्ड में प्रति या ऋणात्मक द्रव्यमान की उपस्थिति संभव है।

6 वेनान्त और मेक की परिभाषाएँ

जर्मन वैज्ञानिक वेनान्त के अनुसार किसी भी वस्तु का द्रव्यमान उसके वेग पर निर्भर करता है। दो वस्तुओं के द्रव्यमान उस समय बराबर होंगे, जब उनमें सीधी टक्कर के पश्चात् वेग वृद्धि भी बराबर हो।

वैज्ञानिक मेक के अनुसार दो वस्तुओं के द्रव्यमानों का अनुपात उनमें परस्पर प्रेरित त्वरणों के विपरीत एवं ऋणात्मक अनुपातों के बराबर होगा। अर्थात्

$$\frac{M_1}{M_2} = -\frac{f_2}{f_1}$$

जबकि M_1 और M_2 क्रमशः दोनों वस्तुओं के द्रव्यमान और f_1 और f_2 क्रमशः उनमें उत्पन्न होने वाले त्वरणों को प्रदर्शित करते हैं।

7 स्वयं तथ्य मूलक परिभाषा

सन् १९५७ में वैज्ञानिक हर्मीज ने द्रव्यमान की नई परिभाषा की है, जो स्वयं तथ्य मूलकों (Set axioms) पर आधारित है।

8 विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त और द्रव्यमान

आइन्स्टीन के विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार वस्तु का द्रव्यमान उसके वेग पर निर्भर करता है, और वस्तु की विराम अवस्था में उसके द्रव्यमान को विराम द्रव्यमान कहते है। आइन्स्टीन के अनुसार वस्तु की गतिमान और विराम अवस्थाओं में निम्नांकित संबंध होता है:-

$$M = \frac{m}{\sqrt{\left(1-\frac{V^2}{C^2}\right)}}$$

जबकि M = गतिमान अवस्था में वस्तु का द्रव्यमान
m = वस्तु का विराम द्रव्यमान
V = वस्तु का वेग
C = प्रकाश का वेग

9 विद्युत चुम्बकीय द्रव्यमान

वैज्ञानिक प्वांकारे ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि वस्तु का द्रव्यमान उसके विद्युत चुम्बकीय गुणों के कारण होता है। लेकिन प्वांकारे इसको सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं बना सके अतः वैज्ञानिकों ने इसको विशेष महत्व नहीं दिया।

10 द्रव्यमान की ऊर्जा पर आधारित परिभाषा

आइन्स्टीन के प्रसिद्ध सूत्र $E = Mc^2$ [ऊर्जा = द्रव्यमान × (प्रकाश का वेग $)^2$] से यह स्पष्ट है कि वस्तु का द्रव्यमान, उसकी ऊर्जा पर निर्भर करता है। इस सूत्र की सत्यता भी प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुकी है।

11 सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त और द्रव्यमान

समान्य सापेक्षता सिद्धान्त में वस्तु का द्रव्यमान, समाकलन अचर के रूप में प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त के

अनुसार किसी भी ग्रह का, किसी भारी पिंड के चारों ओर घूमने (निश्चित कक्ष में) का अवकल समीकरण

$$\frac{d^2U}{d\theta^2}+U=\frac{a}{h^2U^2}+3a \text{ होता है ।}$$

जबकि $U=\frac{1}{\gamma}$

$\gamma \rightarrow$ अर्द्धव्यास दिष्ट राशि (Radius vector)

और $a=MU^2$ जहाँ M वस्तु का द्रव्यमान है ।

आइन्स्टीन के क्षेत्री-समीकरणों में घनत्व की विभाओं को लेकर यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि एक ग्राम द्रव्यमान, $2{\cdot}476 \times 10^{-39}$ सेकन्ड समय के बराबर होता है ।

विश्लेषण

कुछ ऐसे सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन हुआ, जिनमें वस्तु के द्रव्यमानों को सभी दिशाओं में बराबर और कुछ सिद्धान्तों में भिन्न भिन्न दिशाओं में अलग अलग माना गया है । अगर वैज्ञानिक मेंक का सिद्धान्त सही माना जाय तो पदार्थ का अवस्थित्व द्रव्यमान, उसमें अन्तर्निहित गुणों के कारण नहीं, बल्कि कुछ अन्य कारणों से होना चाहिए । आइन्स्टीन ने भी इस सिद्धान्त को अपने सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त में समाविष्ट करने का प्रयास किया था, लेकिन वैज्ञानिकों ने इसका समर्थन नहीं किया ।

क्षेत्रीय समीकरणों में द्रव्यमान के बारे में दो वैकल्पिक कल्पनाएँ की हैं । प्रथम कल्पना के अनुसार द्रव्यमान को स्थिति का फलन एंव सभी दिशाओं में समान माना गया है । इसको द्रव्यमान का आदर्श क्षेत्र सिद्धान्त (Scalar field concept of mass) कहते हैं ।

दूसरी कल्पना में इसको स्थिति का फलन लेकिन भिन्न भिन्न दिशाओं में अलग माना गया है । इसको द्रव्यमान का टेन्सर क्षेत्र या दिष्ट राशि क्षेत्र सिद्धांन्त कहते हैं । लेकिन इन कल्पनाओं और व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त में आपस में ही विरोधाभास है ।

द्रव्यमान की विभिन्न व्याख्याएँ, द्रव्यमान की विशुद्ध परिभाषा को जो इसके भौतिक महत्व को प्रकट करे, देने में असमर्थ है । द्रव्यमान की विशुद्ध भौतिक परिभाषा देना आज वैज्ञानिकों के समक्ष विकट समस्या है । शायद इस समस्या के समाधान से भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में एक बार फिर अभूतपूर्व क्रांति आ सकती है । इस पर अधिक प्रकाश तो आने वाला समय ही डाल सकेगा ।

टिप्पणी—अगर किसी वस्तु का पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में, द्रव्यमान m_g और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान M_g और वस्तु की पृथ्वी के केन्द्र से दूरी R हो तो, न्यूटन के प्रसिद्ध गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसार वस्तु और पृथ्वी के बीच गुरुत्वाकर्षण बल

$$F=G\frac{M_g m_g}{R^2} \text{ होगा}$$

अगर वस्तु का अवस्थित्व द्रव्यमान m_1 हो तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्ष क्षेत्र में, वस्तु का त्वरण यांत्रिकी के द्वितीय नियम के अनुसार

$$g=\frac{G M_g}{R^2}\cdot\frac{m_g}{m_1} \text{ होगा ।}$$

इस समीकरण में $\frac{G M_g}{R^2}$ राशि, पृथ्वी सतह पर सभी वस्तुओं के लिए समान होगी जबकि राशि $\frac{m_g}{m_1}$ वस्तुओं की बनावट और प्रकृति पर निर्भर करेगी । लेकिन प्रयोगों से यह देखा जा सकता है कि सभी वस्तुएँ पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में एक ही त्वरण ($g=9.81 m/sec^2$ app.) से गिरती हैं । अतः इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुरुत्वाकर्षण और अवस्थित्व द्रव्यमानों का अनुपात सभी वस्तुओं के लिए एक ही होगा, और यह उसके आकार और प्रकृति पर किसी भी प्रकार से निर्भर नहीं करेगा ।

अतः किसी भी वस्तु का गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान पूर्णरूप से उसके अवस्थित्व द्रव्यमान से ज्ञात किया जाता है । इसलिए दोनों बराबर होंगे अगर नापने की इकाइयाँ ठीक हों । सारांश में हम यह कह सकते हैं कि गुरुत्वाकर्षण बल, वस्तुओं की जड़त्व की अवस्थाओं पर ही निर्भर करता है ।

● ●

उदयपुर कृषि विश्वविद्यालय

● संकलित

इतिहासः इस विश्वविद्यालय की स्थापना १९६२ में हुई थी और इतने स्वल्प काल में ही राज्य को भारत का अन्नोत्पादक क्षेत्र बनाने के निमित्त मार्गदर्शक कार्य किया है। अमेरिका के लैण्ड ग्रान्ट (भूमि अनुदान कालेजों के नमूने पर उदयपुर विश्वविद्यालय की स्थापना उस समय के ठीक १०० वर्ष बाद हुई थी जब प्रैसिडेण्ट अब्राहम लिंकन ने 'मौरिल एक्ट' को जुलाई १८६२ में स्वीकृति देकर अमेरिका में लैण्ड ग्राण्ट कालेजों की अनुमति दी थी।

गतिविधियाँ: उदयपुर विश्वविद्यालय, अपने समकक्ष अमेरिकी विश्वविद्यालयों की तरह, अपनी गति-विधियाँ अध्यापन तक ही सीमित नहीं रखता। वहाँ अनुसन्धान और ज्ञान-विस्तार के कार्य भी किये जाते हैं। प्रो० नाग द्वारा तैयार किया जाने वाला मांस-विधायन का कारखाना अनुसन्धान और ज्ञानविस्तार के कार्यों का उदाहरण है।

उदयपुर विश्वविद्यालय का श्रीगणेश राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के रूप में हुआ था और तब उसके अन्तर्गत ३ कालेज थे: कृषि कालेज-जिसकी शाखाएं जोबनेर और उदयपुर में थीं; पशु-चिकित्सा कालेज बीकानेर; तथा कृषि-इंजिनियरिंग एवं तकनीकी विद्या कालेज, उदयपुर। एक वर्ष बाद विश्वविद्यालय का नाम बदल गया और उसका अधिकार-क्षेत्र भी विस्तृत हो गया। उदयपुर विश्वविद्यालय होकर वह विविध विषयों के अध्यापन की संस्था के रूप में परिणत हो गया तथा उसमें उदयपुर नगर की म्युनिसिपल सीमाओं के अन्तर्गत अन्य सभी कालेज समाविष्ट हो गये। उसके पाठ्यविषयों में विज्ञानों तथा साहित्य व समान्य शिक्षा के सभी विषयों की शिक्षा आ गई। अब विश्वविद्यालय के ६ घटक कालेज हैं और ११ सम्बद्ध कालेज हैं।

अमेरिकी सरकार अमेरिका की एक अन्यतम प्रख्यात लैण्ड ग्राण्ट संस्थाओहायो स्टेट विश्वविद्यालय के माध्यम से उदयपुर विश्वविद्यालय की सहायता देती रही है।

यद्यपि एक ऐसी शिक्षण संस्था के जीवन में ७ वर्ष बहुत कम समय है, जिसने पूर्णतः नये सिरे से कार्य प्रारम्भ किया हो उदयपुर विश्वविद्यालय ने अधिक उपज देने वाले अनाज पैदा करने, आलू और फलों का उत्पादन करने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किया है। गेहूँ को मण्डियों में भेजे जाने और किसानों द्वारा खेतीबाड़ी सम्बन्धी उपकरणों का प्रयोग किये जाने के सम्बन्ध में भी उसने प्रारम्भिक कार्य किया है।

अनुसन्धानकेन्द्र: उदयपुर के बाहर लगभग २३ मील दूर वल्लभ नगर के स्थान पर एक अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया गया है। यह केन्द्र एक हजार एकड़ भूमि में स्थित है और तेजी के साथ देश में एक महत्वपूर्ण अनुसन्धान केन्द्र बनता जा रहा है। एक विस्तृत अनुसंधान कार्य के अन्तर्गत मक्का की किस्मों में सुधार किया जा रहा है। मक्का की एक ऐसी नई किस्म का विकास किया जा रहा है जो राजस्थान के लिये उपयुक्त होगी। स्थानीय मक्का बोने से भी अच्छी उपज होती है। 'मलान' नामक किस्म को बोने से दोगली किस्मों के बराबर उपज होती है।

अंगूर की फसलों का भी राजस्थान में उज्ज्वल भविष्य है। हाल में अंगूर की फसल को हानि पहुँचाने वाले एक नये कीट का पता लगाये जाने के बावजूद राजस्थान विश्वविद्यालय में अंगूर के सम्बन्ध में अनुसन्धान जारी है। विश्वविद्यालय के परीक्षण केन्द्र ने खाने के काम में लाने तथा दाख बनाने के लिये लगभग ३०० देशी तथा विदेशी किस्में एकत्र की हैं।

राजस्थान के कृषि-वैज्ञानिक तथा राज्य के अधिकारियों का यह विश्वास है कि राजस्थान में अंगूर की अच्छी फसलें उत्पन्न होने की बड़ी सम्भावना है। इजरायल का दौरा करने के पश्चात् वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं। वहाँ उन्होंने यह देखा है कि वहाँ की जलवायु तथा भूमि आदि राजस्थान से मिलती-जुलती है।

मुर्गी पालन: राजस्थान में मुर्गी पालन व्यवसाय को ठोस आधार पर स्थापित करने में उदयपुर विश्वविद्यालय को उल्लेखनीय सफलता मिली है। एक पृथक विषय के रूप में मुर्गी-पालन सम्बन्धी शिक्षा प्रारम्भ की गयी थी और इस विषय में पशुओं की चिकित्सा और पशुपालन के सम्बन्ध में स्नातकीय उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। ज्ञान-विस्तार कार्य से मुर्गी पालन क्षेत्र बनाने में सहायता मिली है। इसके परिणामस्वरूप राजस्थान से दिल्ली, आगरा, अहमदाबाद, कांडला और अन्य शहरों को उन्हें भेजा जाता है।

परीक्षण केन्द्र के अनुसंधान निदेशक डा० वी० के० श्रीवास्तव ने कहा कि हम मुर्गियों की एक नई देशी नस्ल का विकास कर रहे हैं और इसके लिए हम जिन नस्लों का विकास कर चुके हैं उन्हीं को प्रसंकरित कर रहे हैं।

दुग्धसम्भरण योजना: विश्वविद्यालय द्वारा की गई एक सबसे प्रसिद्ध सेवा उसकी दुग्धसम्भरण योजना है। इस योजना ने नगर के लोगों को काफी प्रभावित किया है। ओहायो विश्वविद्यालय से दान में मिले ८१,००० डालर की कीमत के डेरी उपकरणों तथा राज्य सरकार से मिले ८,००,००० रुपयों की बदौलत यह दुग्धसंभरण योजना १९६४ से चल रही है। उदयपुर विश्वविद्यालय की प्रशिक्षण और शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ ही यह योजना इस क्षेत्र के डेरी उद्योग की अनेकानेक समस्याओं का समाधान भी कर रही है। इस योजना से उदयपुर, भीलवाडा, चित्तौरगढ़ और पाली जिले में डेरी उद्योग का विकास हुआ है। इन क्षेत्रों से लगभग ४,००० लिटर दूध प्रतिदिन एकत्र किया जाता है। यह योजना इतनी सफल हुई है कि उससे द्वारा की जा रही दुग्ध और दुग्ध-पदार्थों की सप्लाई के अन्तर्गत उदयपुर के आसपास के नगर भी शामिल कर लिये जायेंगे।

● ●

जीवन में रंगों का महत्व

चाहे अस्पताल हो, चाहे दूकान, चाहे हवाई जहाज के भीतर हो या होटल में, रंगों का प्रभाव पड़ता ही जाता है। भूरे तथा पीले रंगों से मिचली आती हैं जबकि हरे तथा नीले रंग सुख पहुँचाने वाले होते हैं। हरे रंग से सोचने की प्रवृत्ति उठती है जब कि लाल रंग से नवीन विचार उठते हैं। पीले रंग से बीमारी शीघ्र बढ़ जाती है। यह कुपच को बढ़ाता है। काले रंग से निराशा उत्पन्न होती है। नीले और हरे रंगों की अपेक्षा पीले रंग में लाल बैंजनी चित्तियाँ भूख को बढ़ाती हैं। पीला रंग सन्यासियों के लिये उत्तम है। अतः चाहे खाना खाते समय हो या खरीदारी करते समय या बीमारी के क्षण में अथवा यात्रा करते समय, रंगों का हमारे जीवन पर प्रभाव होता है।

सार संकलन

१. कृषि वैज्ञानिकों द्वारा गंदगी के विरुद्ध संघर्ष

गंदगी की समस्या उन समस्याओं में से एक है जिनका अधिकांश औद्योगिक राष्ट्रों को सामना करना पड़ रहा है। शहरों में चलने वाली वायु आँखों को पीड़ित करती है और उससे फेफड़ों में रुकावट उत्पन्न होती है। अनेक नालों तथा नदियों का जल गंदला हो जाता है। किन्तु, सौभाग्य से, गंदगी की समस्या का अधिकांश उत्तरदायित्व स्वयं मनुष्य पर है। और यदि मनुष्य एक समस्या उत्पन्न कर सकता है तो वह उसे हल भी कर लेता है।

उदाहरण के रूप में, अमेरिका के कृषि वैज्ञानिक, लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिये सक्रिय रूप से गंदगी का अन्त करने के लिये संघर्ष कर रहे हैं। वे उस आहार की रक्षा कर रहे हैं जो हम खाते हैं, उस जल की रक्षा कर रहे हैं, जो हम पीते हैं, उस वायु की रक्षा कर रहे हैं, जिसे श्वास के द्वारा हम अपने भीतर ले जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने ऐसी विधियों का विकास किया है जिनके द्वारा गंदगी को कम किया जा सकता है। वे खेतों में बेकार जाने वाली इन वस्तुओं के उपयोग में लाने की नई विधियाँ खोज रहे हैं।

कृषि वैज्ञानिक विनाशकारी कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये विनाशकारी कीटाणुओं का प्रयोग कर रहे हैं। ऐसा करने से कीटाणुनाशक औषधियों की अधिक आवश्यकता नहीं रहेगी। कीटाणुनाशक औषधियों से भी गंदगी फैलती है।

तलछट, धूल, खेतों में बेकार जाने वाली वस्तुओं आदि से गंदगी फैलती है। वैज्ञानिक लोग इनका अन्त करने से लिये निरन्तर कार्य कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में प्राप्त की जाने वाली जानकारी को केवल अमेरिकी खेतों में ही नहीं बल्कि अनेक अन्य देशों में भी प्रयोग में लाया जा रहा है।

इनमें से केवल तलछट की समस्या ही कुछ वैज्ञानिकों के कथनानुसार गंदगी का सबसे बड़ा और सबसे पुराना स्रोत है। पुरातत्वज्ञों का कथन है कि तलछट और बाढ़ों के कारण अनेक प्राचीन सभ्यताएं नष्ट हो गयी हैं।

अमेरिका की आबादी २० करोड़ तक पहुँचने के साथ ही मलवे को निपटाने की चुनौती भी उत्तरोत्तर गंभीर होती जाती है। राजपथों के किनारों पर स्थान स्थान पर पड़ा टनों मलवा समस्या को और भी गंभीर बना रहा है।

पशुओं से प्रति वर्ष २ अरब टन से अधिक गोबर की खाद प्राप्त हो रही है। परम्परानुसार, किसान अपने खेतों में उसे बिखेर देते हैं और उर्वरक के रूप में इसका इस्तेमाल करते हैं। फिर भी, आधुनिक कृषि में यह इस्तेमाल मितव्ययी नहीं है। शहरों के आस-पास इस तरह की खाद का इस्तेमाल इसकी बदबू के कारण बहुत ही अप्रिय माना जाता है।

कुछ बड़े उत्पादक इस खाद को निर्जलित करने के बाद घरेलू बागबानी तथा व्यापारिक खेती करने वालों के हाथ बेचते भी हैं। कुछ लोग गोबर के निपटाने के लिए छिछले ताल बनाते हैं। फिर भी बहुधा इन तालों से

नदियों, झीलों और धाराओं में उर्वरक तत्व फैलते हैं जिससे उनमें शेवाल, या ऐसे ही प्रकार के अन्य अवांछित घास-पतवार की उपज बढ़ जाती है। परिणाम यह होता है कि मनोरंजन के काम आने वाली जल-धाराएं अवांच्छित हो जाती हैं तथा मछली उद्योग को क्षति पहुँचती है।

कृषि के इंजिनियर खाद-लागून मिलने वाले उर्वरक तत्वों का इस्तेमाल करने की सोच रहे हैं। इससे जहाँ एक ओर जल धाराओं को खाद-लागून से शुद्ध किया जा सकेगा वहीं दूसरी ओर खाद-लागूनी के इस्तेमाल से पशुओं के लिए अतिरिक्त चारा भी पैदा किया जा सकेगा।

अन्य बेकार के पदार्थों, उदाहरणार्थ कृषिगत माल की तैयारी के कारखानों से निकलने वाला फालतू मलवा, के इस्तेमाल के तरीकों की खोज भी की जा रही है। इनमें से अनेक वस्तुएं जैसे सूखे साइट्रस (नीबू की जाति के फल), शीरा और दूसरे अनेक प्रकार के फलों, सब्जियों और अनाजों का अवशिष्ट चारे के काम आता है।

अमेरिकी कृषि मंत्रालय की कृषि अनुसंधान सेवा कृषिनाशक दवाइयों के आवश्यकता से अधिक इस्तेमाल के विरुद्ध सुरक्षात्मक दृष्टि से मिट्टी, जल, फसल, पशुओं और कीड़े-मकोड़ों के नमूनों का अध्ययन करती है। अकेले मिसिसिपी डेल्टा से ही प्रति वर्ष ३००० से ऊपर नमूने लिए जाते हैं और उनका विवेचन किया जाता है।

मिट्टी-विशेषज्ञ रेडियो सक्रिय धूल से फसल को बचाने तथा इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उससे मनुष्यों और पशुओं की रक्षा करने के तरीकों की खोज में भी हैं। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने ऐसे तरीकों का विकास कर लिया है जिनके द्वारा संकटकालीन स्थिति में गेहूँ से मिला ९० प्रतिशत रेडियो सक्रिय स्ट्रान्शियम धोकर निकाला जा सकता है। उन्होंने एक ऐसे उपकरण का डिजाइन भी बनाया है जो दूध में मिले स्ट्रान्शियम का ९० प्रतिशत भाग अलग निकाल सकेगा।

हमारे वातावरण के लिए खतरा गंभीर है या नहीं किन्तु हमारे सामने जो कार्य है वह निश्चय ही बहुत बड़ा है। यह कार्य तब और भी बड़ा हो जाता है जब हम दूषण के गैर-खेतिहर स्रोतों पर ध्यान देते हैं जैसे मोटर गाड़ियों से निकलने वाला धुंआ, टायर की छीजन से गिरने वाला रबड़, औद्योगिक धुआँ तथा अन्य उच्छिष्ट पदार्थ आदि। यह चुनौती ऐसी है जिसका सामना तो करना ही चाहिए। कृषि के क्षेत्र में विज्ञान प्रत्येक ऐसे बड़े खेतिहर प्रदूषण-स्रोत को खत्म करने के काम को प्राथमिकता दे रहा है जो सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

२. ज्योतिष

ज्योतिष के बारे में एक बात निश्चित है कि वह ही विज्ञान की ऐसी शाखा है जिसका हमें प्राचीन काल से ले कर अब तक क्रम-बद्ध अभिलेख मिलता है। यह आम धारणा है कि बेबीलोनियन ज्योतिष का विकास यूनानी ज्योतिष से स्वतन्त्र रूप में हुआ।

बेबीलोनियन और यूनानी ज्योतिष में मुख्य अन्तर यह है कि बेबीलोनियन ज्योतिष सिर्फ अंकगणित पर आधारित है और इसमें नक्षत्रों की गति से संबधित ज्यामितीय आकार (माडल) नहीं है, जबकि यूनानी ज्योतिष का आधार ज्यामिति है। इनके अन्तर से हम यह आसानी से जान सकते हैं कि उनमें से प्रत्येक का हिन्दू ज्योतिष पर क्या प्रभाव पड़ा।

ज्योतिष यूनान से भारत किस प्रकार पहुँचा इस समस्या के हल में चान्द्र सिद्धान्त में टालेमी द्वारा किये गये संशोधन विशेष महत्वपूर्ण हैं। सूर्य सिद्धान्त, जो हिन्दू ज्योतिष की महत्वपूर्ण पुस्तक है के मूलतः यूनानी उद्गम पर किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। इसकी पुष्टि उसमें वर्णित शब्दावली में प्रयुक्त इकाइयों और संगणना विधि से होती है। परन्तु उत्तर भारत में ज्योतिष टालेमी के चान्द्र सिद्धान्त में सुधार से लगभग अछूता सा ही रहा जो एक विशेष घटना है। हिन्दू ज्योतिष के अध्ययन से ई० पू० १५० से १५० ई० तक के ३०० वर्ष के समय की यूनानी ज्योतिष के विकास की काफी अच्छी सूचना प्राप्त की जा सकती है।

बराहमिहिर की पंच सिद्धांतिका के अनुसार प्रारम्भिक हिन्दू ज्योतिष में हम ज्योतिष अध्ययन की दो भिन्न विधियों में स्पष्ट भेद देख सकते हैं। पहली विधि त्रिकोणमितीय है जो सूर्य सिद्धान्त पर आधारित है और दूसरी बेबीलोनिया ज्योतिष की तरह गणितीय विधि है, जो कि दक्षिण में प्रचलित है।

सन् १८२५ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्नल जान वारेन ने कला संकलित नामक एक ५०० पृष्ट की पुस्तक लिखी है, जिसमें उसने दक्षिण भारत में समय विभाजन की विभिन्न प्रचलित विधियों का वर्णन किया है। इसमें हमारे लिए भविष्यवाणी की सत्यता उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितना यह तथ्य कि ज्योतिष की उस पद्धति का, जो ईसा की तीसरी शताब्दी में रोमन सम्राज्य में और छठी शताब्दी में वराहमिहिर के समय प्रचलित थी, १८२५ ई० में भी उपयोग किया जाता था। पश्चिमी देशों में हिन्दू ज्योतिष के प्रभाव का एक और दृष्टान्त मिलता हैं, जो मध्ययुग में हेलेनिक प्रभाव से मुक्त थे। हाल ही में एक लेटिन पुस्तक प्रकाशित हुयी है, जिसमें सूर्यसिद्धान्त में वर्णित विधियों का उल्लेख किया गया है।

हिन्दू ज्योतिष इतिहासकारों का यह प्रमुख ध्येय होना चाहिये कि नक्षत्र और चन्द्र ग्रहों की गणना आदि सम्बन्धी इतिहास की पुस्तकों को ढूँढने की कोशिश करें क्योंकि यह निश्चित है कि इतने विकसित ज्योतिष का कोई न कोई मूल स्रोत अवश्य होगा। इस सामग्री का प्रकाश में आना ज्योतिष के विकास के लिये आवश्यक है।

यह माना जा सकता है कि विधियों की भिन्नता होते हुए भी सभ्य देश में मानव का एकमात्र ध्येय अपने वातावरण का अध्ययन रहा है। प्रकृति के कुछ अद्भुत नियम सर्वत्र और सर्वदा एक से हैं। न्यूटन भी सेब को गिरते देखकर इसी सिद्धान्त से आकृष्ट हुआ था। उस समय गैलीलियो ने वस्तु की गति के नियम का प्रतिपादन कर लिया था। इसी आधार पर न्यूटन ने अपना प्रसिद्ध नियम प्रतिपादित किया :

"ब्रह्माण्ड में प्रत्येक कण दूसरे कण को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह गुरुत्वाकर्षण बल दोनों कणों की मात्राओं के गुणनफल का समानुपाती और उन दोनों के बीच की दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है।'

अठारहवीं शताब्दी में बिशप बर्कले तथा अन्य दार्शनिकों का विचार था कि सूर्य, चाँद और नक्षत्र हमारे मस्तिष्क के विचार मात्र हैं और उनकी संरचना के बारे में जानने की कोशिश करना व्यर्थ है। कुछ ऐसे ही विचार दार्शनिक अगस्त कांच के भी थे तो भी कुछ समय पश्चात् उपर्युक्त प्रश्न (खगोलीय पिण्डों का अध्ययन) ही ज्योतिषविदों के अध्ययन का प्रमुख विषय बन गया।

फानहोफर की रेखाओं की प्रकृति ज्ञात करने के संबंध में अनेक प्रयोग किये गये लेकिन सही प्रकृति जर्मन भौतिकविद किर्चोफ के विकिरण नियम के प्रतिपादन के उपरान्त ही १८५१ ई० में ज्ञात हुई। उनके विकरण नियम के दो भाग हैं। पहले भाग के अनुसार प्रत्येक वस्तु अपनी विशिष्ट विकिरणें ही उत्सर्जित करती है। दूसरे भाग के अनुसार उच्चताप के स्रोत से उत्सर्जित होने वाले विकिरणों को जब अपनी विशिष्ट विकिरणों से चमकने वाली निम्न ताप की गैस में से गुजारा जाता है तो पारेषित प्रकाश में चमकने वाली गैस की विकिरणें चमकदार पृष्ठभूमि पर काली रेखाओं के रूप में दिखायी देंगी। इस नियम से वैज्ञानिकों को सारे और नक्षत्रीय वातावरणों का रासायनिक विश्लेषण करने का आधार प्राप्त हो गया।

क्या ब्रह्माण्ड का आरम्भ स्वाभाविक रूप से हुआ है? अथवा उसका उद्भव कैसे हुआ। इसके बहुत से धार्मिक और दार्शनिक उत्तर दिये जाते रहे हैं। सब धर्मों और दर्शन ने इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया है। इसका सबसे आसान हल है कि हम यह मान लें कि ब्रह्माण्ड सदैव विद्यमान था या हम यह नहीं जान सकते कि वह कैसे और कब बनना आरम्भ हुआ? अब, ज्योतिषशास्त्र के आधुनिक अनुसंधानों के बल पर, प्रथम बार हम उन प्रश्नों का—कि क्या ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति स्वाभाविक थी? और यदि ब्रह्माण्ड का आरम्भ हुआ है तो क्या प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय रहे हैं—तर्कसंगत उत्तर खोज सकते हैं।

क्या प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील हैं ? यह स्पष्ट है कि सीमित अवधि के लिये हम प्राकृतिक नियमों को अपरिवर्तनशील मान सकते हैं, परन्तु विविध विवेचनाओं के उपरान्त हम देखेंगे कि ब्रह्माण्ड में परिवर्तन अवश्य आये हैं। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हबल ने सर्वप्रथम ब्रह्माण्ड के विस्तार के मापन की ओर ध्यान आकृष्ट किया। हबल का नियम यह है कि यदि एक गैलेक्सी दूसरे से दुगनी दूरी पर है तो उसकी गति नजदीक वाली से दुगनी रफ्तार से कम होती जायेगी। हबल के नियम के अध्ययन से ब्रह्माण्ड में परिवर्तन के समय का पता चलता है। अनुमान है कि परिवर्तन का यह समय लगभग सत्तर खरब वर्ष होगा। इस लम्बे समय के मध्यावधि में प्राकृतिक नियमों में कितना परिवर्तन आया होगा या नहीं, यह विचारणीय है। इसका उत्तर आइंस्टीन के आपेक्षिकता सिद्धान्त में मिलता है।

ज्योतिषशास्त्र में आइंस्टीन के सिद्धान्त को स्थूल रूप में लागू करने से ब्रह्माण्ड के विस्तार को उस दूरी से मापा जा सकता है, जो ब्रह्माण्ड के अर्धव्यास के समतुल्य हो। दूरी समय के साथ बदलती रही है। इसका वर्तमान मान दस अरब प्रकाश-वर्ष अनुमाना गया है। परन्तु उपर्युक्त सिद्धान्त को लागू करने से जो सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है वह है कि अब से सत्तर खरब (बिलियन) वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड का अर्धव्यास शून्य होना चाहिये था। डिके ने गणना की है कि उस समय जब ब्रह्माण्ड का अर्धव्यास वर्तमान व्यास से $१०^{१०}$ गुना कम था उसका ताप तब १० खरब डिग्री रहा होगा। जब ब्रह्माण्ड में विस्तार होने लगा तो ताप घटने लगा। स्पष्ट है कि उत्पत्ति के विषय में मनुष्य की चिर जिज्ञासा को शांत करने में ज्योतिषशास्त्र ने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

३. ग्रहों की यात्रा

अन्तरिक्ष-अनुसन्धान मानव मस्तिष्क और भावना का महत्तम साहसिक कार्य है। पिछले दशाब्द में, अन्तरिक्ष-यात्रा ने मनुष्य और वस्तुतः जगतीतल के समस्त जीवन के लिए एक सर्वथा नवीन प्रारब्ध का द्वार उन्मुक्त किया है। हम लोग, जो आज जीवित हैं, जीवन के विकास-क्रम के अन्तर्गत एक आधारभूत नये चरण में भागीदार हैं, जो शायद उतना ही महत्वपूर्ण है जितना प्राचीन काल में समुद्र से आदिकालीन जीवों का भूमि पर आविर्भाव था।

हम इस प्राचीन प्रश्न का अधिकतम स्फूर्तिदायक सम्भव उत्तर प्रस्तुत कर रहे हैं कि क्या चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों पर जीवन का अस्तित्व सम्भव है ?

उत्तर है : "हाँ"।

विज्ञान और प्रौद्योग के उत्तरोत्तर विकास के साथ-साथ, कल्पना और भावना के धनी मनुष्य आपस में मिल कर कार्य करते हुए, जीवन को उसके मूल आवास, इस नीले ग्रह-पृथ्वी की सीमा से आगे, ऊपर और बाहर की ओर असीम नयी सीमाओं में भेज सकते हैं।

विश्व भर के उन विचारशील लोगों को, जो अमेरिका के अपोलो-कार्यक्रम को मानवजाति का, और मानव जाति के लाभार्थ कार्यान्वित उद्यम मानते हैं, इस स्फूर्तिदायक सम्भावना का आभास मिल चुका है। अन्तरिक्ष यात्रा के मानवीय अभिमान के अन्तर्गत विश्वव्यापी भू-उपग्रही संचार संजाल का आविर्भाव हुआ है। गत वर्ष, मास्को के टेलिविजन पटलों पर रूसियों को घर बैठे ही पृथ्वी से २,४०,००० मील की दूरी से अपोलो-८ द्वारा अत्यन्त निकटता से खींच कर भेजे गये चन्द्रतल के विस्मयकारी दृश्यों के चित्र देखने और उस पर सवार अन्तरिक्ष-यात्रियों की ध्वनियाँ सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यूरोप के करोड़ों लोगों ने अपालो-१० द्वारा भेजे गये चन्द्रतल के सुन्दर रंगीन टेलिविजन-चित्र देखे।

इस वर्ष ग्रीष्म में मंगलग्रह पर भेजे गये मैरिनर शोध-वाहनों की सहायता से विश्व भर के टेलिविजन-दर्शकों ने कुछ ही घण्टों के भीतर उस रक्तिम ग्रह की सतह के बारे में इतनी जानकारी प्राप्त की, जितनी भूतल पर स्थित दूरवीक्षण यन्त्रों की सहायता से खगोल-वैज्ञानिकों की सारी पीढ़ियों ने अब तक प्राप्त नहीं की। रूस के दो अन्तरिक्षयानों ने हाल ही में शुक्र ग्रह के बादलों से ढके हुए वातावरण में प्रवेश किया था। उन्होंने सफेद

ग्रह के बारे में नई सूचनाएं रेडियो द्वारा पृथ्वी पर भेजीं। समानव तथा स्वचालित अन्तरिक्ष-यानों की अंतरिक्ष-यात्रा का युग सम्पूर्ण मानवता के सामने तेजी के साथ प्रगति कर रहा है।

फिर भी, जैसा कि सभी नए साहसिक कार्यों या आन्दोलनों के साथ होता है, विरोधी आवाजें भी उठाई जा रही हैं। कुछ सन्देही पूछते हैं कि अन्तरिक्ष से व्यावहारिक आर्थिक लाभों की संभावनाएं हैं भी या नहीं, क्या हम पृथ्वी पर ही कुछ अन्य अपेक्षाकृत लाभप्रद योजनाओं पर काम नहीं कर सकते या कि आगे जाने के पहले क्या संसार के अन्य सामाजिक दुर्गुण दूर नहीं किए जाने चाहिए ? यह प्रश्न तर्कसगत है और इसमें यथोचित उत्तरों के बारे में विचार भी किया जाना चाहिए।

अंतरिक्ष अनुसन्धान से ठोस व्यावहारिक आर्थिक लाभ हैं। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों अन्तरिक्ष अनुसंधान के पहले १० वर्षों में जो प्रत्यक्ष लाभ हुए हैं वे हैं, उपग्रह द्वारा विश्वव्यापी संचार-व्यवस्था तथा मौसम सम्बन्धी उपग्रहों द्वारा विश्व भर के मौसम की भविष्यवाणी।

मौसम सम्बन्धी उपग्रहों के द्वारा जो बचत की जा सकती है वह अरबों डालरों तक पहुँच सकती है। टाइरोस-३ द्वारा कार्ला नामक तूफान की जो पूर्वसूचना दी गई थी उसकी बदौलत टेक्सास के तट-क्षेत्र से ३,५०,००० व्यक्तियों को तूफान आने के पहले हटा दिया गया था और इस प्रकार अनगिनत व्यक्तियों की जीवन-रक्षा की जा सकी। इससे अलावा हम समुद्र यात्रा में पथ-निदेशक उपग्रहों, टेलिविजन कार्य-क्रम का प्रसारण करने वाले उपग्रहों, आँकड़े देने वाले उपग्रहों, भू-उपग्रहों और भूसाधनों से सम्बन्धित उपग्रहों की आशा भी कर रहे हैं और वे सभी, भविष्य में भारी आर्थिक लाभ के सूचक हैं।

अकेले भू-साधन सम्बन्धी उपग्रह ही हमें खनिजों के सर्वेक्षण, पेट्रोल की खोज, कृषि-विज्ञान, वन विज्ञान, समुद्र-विज्ञान, जल-विज्ञान तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में इतना लाभ पहुँचा सकते हैं कि उससे अंतरिक्ष कार्य-क्रम पर होने वाला सारा खर्च पूरा हो सकता है।

अन्तरिक्ष अनुसंधान के जो अप्रत्यक्ष लाभ हैं उनके मूल्य का अनुमान लगाना अधिक कठिन है। चन्द्रमा तक पहुँचने के लिए अमेरिका को अपनी टेक्नालाजी को बहुत ही व्यापक सीमा तक विकसित करना पड़ा है। इससे अनेक अन्य क्षेत्रों के लिए अनेक नई प्रविधियों का विकास भी हुआ है। अन्तरिक्ष ने विश्वविद्यालयों और उद्योगों को चुनौती दी है और उन्होंने बड़ी शान के साथ उस चुनौती को स्वीकार भी किया है।

अन्तरिक्ष युग की प्रगति से निसन्देह, १९७० और १९८० की दशाब्दियों में नई सम्पत्तियों का सृजन होगा। यह भी इस बात का एक महत्वपूर्ण कारण है कि हम अपने अन्तरिक्ष कार्य-क्रम को और भी शक्ति के साथ आगे बढ़ायें। इसका सारा काम, निस्संदेह पृथ्वी पर ही किया जा रहा है और इसका लाभ सभी मनुष्यों को प्राप्त होगा।

हमारे समाज की दशाओं में सुधार करने के लिये हमें नई टेक्नालाजी के आधार पर बहुत अधिक उपज बढ़ा कर अधिक सम्पदा उत्पन्न करनी चाहिये। हमें इस सम्बन्ध में अशान्त एवं असंतुष्ट होना चाहिये कि हम सामाजिक बुराइयों पर विजय पाने की दिशा में धीमी गति से अग्रसर हो रहे हैं। यदि हम चन्द्रमा पर जा सकते हैं, तो हम बड़े और सुन्दर शहर क्यों नहीं बना सकते। हम अज्ञानता, अपराधों और निर्धनता का अन्त क्यों नहीं कर सकते !

अन्तरिक्ष में मनुष्य का भविष्य असीमित है। हम विकास के एक ऐसे नये मंच पर आरूढ़ हो गये हैं जो मानव जाति की समस्त भावी पीढ़ियों को कार्य-व्यस्त कर देगा। असंख्य क्षेत्रों में हमें रहस्यों का पता लगाना है। हमें दृढ़ता के साथ अन्तरिक्ष में अग्रसर होना चाहिये।

अकेले व्यावहारिक लाभों ने ही इस साहसिक प्रयास के औचित्य को सिद्ध कर दिया है, किन्तु अन्य दूसरे मानवीय कारण भी हैं। अन्तरिक्ष में होने वाली प्रगति से हमें उन समस्याओं के नये समाधान ढूँढने के

कार्य में अग्रसर होने के लिये प्रोत्साहन मिलता रहना चाहिये जिनका आदि काल से मनुष्य का पृथ्वी पर सामना रहा है।

४. बिन पानी की बर्फ

साधारणतया पदार्थ की तीन अवस्थाएं होती हैं: ठोस, द्रव और गैस। यदि पानी गर्म किया जाय तो वह भाप बन कर गैस अवस्था में आ जाता है। और यदि ०° से० से भी नीचे ताप तक ठंडा किया जाये तो ठोस अवस्था में आकर बर्फ बन जाता है। इस प्रकार, पानी प्रकृति में ठोस, द्रव और गैस तीनों अवस्थाओं में पाया जाता है। लेकिन कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं जो साधारण दशाओं में द्रव अवस्था को प्राप्त ही नहीं होते। वे या तो ठोस अवस्था में रहते हैं या फिर गर्म होने पर बिना द्रव अवस्था में परिवर्तित हुए ही गैस अवस्था में आ जाते हैं। कपूर तथा नेफ्थलीन ऐसे ही पदार्थ हैं जो ठोस से सीधे ही गैस अवस्था में आ जाते हैं और यह दशा-परिवर्तन की क्रिया ऊर्ध्वपातन कहलाती है। कार्बन-डाई-आक्साइड भी एक ऐसी ही गैस है जो कि साधारण ताप द्रव अवस्था में नहीं पाई जाती, यद्यपि इसे विशिष्ट दशाओं में द्रव अवस्था में लाया जा सकता है। ठोस अवस्था में कार्बन-डाई-आक्साइड बहुत ठंडी होती है और अवस्था परिवर्तन की क्रिया में द्रव रूप में नहीं आती है। इसीलिये इसे 'सूखी बर्फ' (ठोस कार्बन-डाई आक्साइड) कहते हैं। वायुमण्डलीय दाब पर सूखी बर्फ की ऊर्ध्वपातन क्रिया-७८·७ सें० पर होने लगती है।

कार्बन-डाई-आक्साइड को ठोस अवस्था में लाने का काम सर्वप्रथम सन् १८३५ में थिलोलियर नामक एक वैज्ञानिक ने किया। लेकिन ठोस कार्बन-डाई-अक्साइड (सूखी बर्फ) का उत्पादन इसके काफी समय बाद तक नहीं हुआ और थिलोलियर का प्रयोग केवल प्रयोगशाला के महत्व का ही रहा; सूखी बर्फ का भारी मात्रा में उत्पादन तो १९२५ ई० में आरम्भ हुआ।

भारतवर्ष में इस समय तीन कारखाने इसका उत्पादन बड़े पैमाने पर करते हैं और प्रतिवर्ष लगभग ५०० टन सूखी बर्फ का उत्पादन होता है।

शुष्क बर्फ बनाने के लिए कार्बन-डाई आक्साइड गैस की कच्चे माल के रूप में आवश्यकता होती है जो या तो मिट्टी का तेल और पेट्रोलियम पदार्थ जलाने पर मिल सकती है अथवा इसको चूने की भट्टियों या ऐल्कोहल बनाने के कारखानों से प्राप्त किया जा सकता है।

इस गैस को सर्वप्रथम कुछ रसायनों में जैसे मोनोइथेनोल एमिन, सोडा कास्टिक, सक्रिय तारकोल आदि से गुजार कर शुद्ध किया जाता है। तत्पश्चात् गैस को संपीडित करके ९००-१००० पौंड प्रति वर्ग इंच का दाब उत्पन्न किया जाता है जिससे गैस १५·५० सें० पर ही द्रव अवस्था में आ जाती है। कार्बन-डाई-आक्साइड का चरम ताप ८७·३१ सें० है अतः इससे अधिक ताप पर इसे द्रवीभूत करना असम्भव है चाहे कितना ही दाब क्यों न बढ़ाया जाय।

द्रव कार्बन-डाई-आक्साइड को फिर संघनकों में संघनित किया जाता है। इससे द्रव वायुमण्डलीय दाब पर आ जाता है और इसका ताप त्रिक बिन्दु (५१·५० सें०) से नीचे रहता है। फलस्वरूप कार्बन-डाई-आक्साइड हिम का ऊर्ध्वपातन आरम्भ हो जाता है। यह हिम अति पोली होती है। इस हिम को निकाल कर यांत्रिक संपीडकों में दबाया जाता है जिससे वह ठोस बन जाती है। यही सूखी बर्फ है। इसके १० × १० × १० इंच के घन का भार ५० पौंड है।

सूखी बर्फ के टुकड़े को क्राफ्ट पेपर में लपेट कर तापरोधक बर्तनों से रखा जाता है। सूखी बर्फ-७८ सेन्टीग्रेड ताप पर सीधी गैस में बदलने लगती है। यह पानी की बर्फ के अनुपात में बहुत ठंडी होती है। इसका आपेक्षिक घनत्व भी साधारण बर्फ से अधिक होता है।

इसका उपयोग खाद्य वस्तुओं जैसे कि मांस, मछली, अंडे, आइसक्रीम, आदि को ठंडा रख कर दूर-दूर तक पहुँचाने में होता है। यह वस्तुओं को सड़ने से बचाती

है क्योंकि इससे एक तो वे ठंडी रहती हैं और दूसरे निष्कासित कार्बन-डाई-आक्साइड जीवाणुओं के मारने तथा उनकी मात्रा को बढ़ाने से रोकने में सहायता देती है।

एक गणना के अनुसार अगर एक मालगाड़ी के डिब्बे में खाद्य पदार्थ को १ टन सूखी बर्फ से ठंडा किया गया हो तो उतने ही पदार्थ को निश्चित स्थान तक पहुँचाने के लिये ४ टन पानी की बर्फ की आवश्यकता होगी तथा रास्ते में कई बार पानी की बर्फ और भरनी पड़ेगी। इस प्रकार सूखी बर्फ खाद्य उद्योग में एक बहुत उपयोगी वस्तु प्रमाणित हुई है।

प्रयोगशाला में विभिन्न घोलों से पानी को एकाएक बर्फ बनाया भी जा सकता है। यह कार्य सूखी बर्फ द्वारा सम्पन्न हो सकता है। वायुयान में एल्यूमिनियम के जोड़ लगाने के काम में भी सूखी बर्फ का उपयोग होता है। बादलों को तलछट विधि द्वारा ठंडा बना कर आप जहाँ चाहें वर्षा भी करा सकते हैं। पाइप लाइनों में पानी को बर्फ बना कर उसके बहाव को रोका जा सकता है और इस प्रकार पाइप लाइन की मरम्मत की जा सकती है। इस प्रकार सूखी बर्फ बहु-उपयोगी है। लेकिन भारत में इसका उपयोग अधिकतर आइसक्रीम व दवाइयों के बनाने में होता है। इतनी अधिक उपयोगी वस्तु होते हुए भी हम इसकी तुलना पानी की बर्फ से नहीं कर सकते। कारण कि यह काफी महँगी पड़ती है। साधारण बर्फ में कच्चा माल पानी है जब कि सूखे बर्फ के लिये कार्बन-डाई-आक्साइड गैस की आवश्यकता होती है। इसके बनाने में भी साधारण पानी की बर्फ की अपेक्षा अधिक खर्च आता है।

● ●

विज्ञान को आजीविका का साधन न मानकर मुक्ति का साधन मानना श्रेयस्कर होगा। ●

कृषि स्नातकों का अन्धकारमय भविष्य

भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान के निदेशक डा० स्वामीनाथन ने बताया है कि अगले चार वर्षों में हमारे देश में ८९५० कृषि स्नातक, ४१६६ कृषि उत्तर स्नातक तथा ७०५ कृषि इंजीनियरों के बेकार रहे आने की सम्भावना है। इसका एक कारण यह है कि अधिकांश छात्र प्रसार सेवाओं की अपेक्षा शोधकार्य के प्रति आकृष्ट होते हैं। इसी आशंका से त्रस्त कृषि छात्रों ने "रजिस्टर्ड फार्मिगं प्रैक्टीशनर" को मान्यता दिए जाने का समर्थन करते हुये अपील की है कि छोटी-छोटी मृदा परीक्षण प्रयोगशालाएँ खोलने तथा हानिकारी जीवों की पहचान के लिए सरकार उन्हें पूँजी प्रदान करे।

अपने समस्त कार्यों में देवनागरी लिपि का व्यवहार करके राष्ट्र भाषा को गौरवान्वित करें ●

विज्ञान वार्ता

१. टेक्टाइट्स की खोज

संसार के विभिन्न भागों में एक चमकीली चीज बिखरी पड़ी मिलती है। उसे 'टेक्टाइट्स' कहते हैं। लगभग एक शताब्दी पहले इसका पता लगा था। तबसे अब तक यह भू-वैज्ञानिकों के लिए एक रहस्य की वस्तु बनी हुई थी।

अब, १० वर्ष के निरंतर वैज्ञानिक अनुसंधान के बाद, एक अमेरिकी वैज्ञानिक को इस बात का पूरा विश्वास हो गया है कि टेक्टाइट्स चन्द्रमा से आया है। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेन्सी के एम्स अनुसन्धान केन्द्र के डा० डीन आर० चैपमैन का कहना है कि पृथ्वी पर 'टेक्टाइट्स' की वर्षा कम से कम तीन बार हो चुकी है और पृथ्वी पर १ करोड़ से लेकर १० करोड़ टन तक चन्द्रमा की शैल-सामग्री (चट्टानी टुकड़े) मौजूद हैं।

श्री चैपमैन के अनुसार पृथ्वी पर टेक्टाइट्स की सबसे हाल की वर्षा लगभग ७,००,००० वर्ष पहले उस समय हुई होगी जब छोटे पर्वत के आकार का एक तारा चन्द्रमा से टकराकर फटा था और उसके विस्फोट के फलस्वरूप चन्द्रमा पर 'टाको' नामक विवर बना था। उस समय चन्द्रमा का मलवा, जिसमें उसकी द्रवीभूत चट्टानों की बूंदें भी थीं, सभी दिशाओं में उड़ा था और उससे वे धारियाँ या 'किरणें' भी पड़ गईं जो अब भी विवर विशेष से चमकती हैं।

इनमें से प्रमुख 'किरणों' का संरेखण इस ढंग का है कि डा० चैपमैन को विश्वास है कि वह इस बात की पहिचान है कि उसी रास्ते से पदार्थ पृथ्वी की ओर आया और मैडागास्कर से तस्मानिया के दक्षिण तक, उत्तर-पश्चिम आस्ट्रेलिया, इन्डोनेशिया के उत्तर में और फिर दक्षिण-पूर्व एशिया और फिलीपाइन्स के ऊपर बिखर गया।

उस पदार्थ की उड़ान के रास्ते का संगणक द्वारा विश्लेषण करने पर यह ज्ञात हुआ कि उस पदार्थ की बूंदें अंग्रेजी के 'एस' अक्षर के रूप में पृथ्वी पर गिरीं। डा० चैपमैन ने बताया कि आस्ट्रेलियाई टेक्टाइट्स की समाकृति वैसी ही है। उन्होंने आगे कहा कि रसायनिक रूप से वे सब एक जैसी ही हैं और एक ही घटना की उपज हैं।

डा० चैपमैन के अनुसार टेक्टाइट्स की अन्य वर्षाएं १ करोड़ ५० लाख वर्ष तथा ३ करोड़ ५० लाख वर्ष पहले हुई थीं इन दोनों अवसरों पर टेक्टाइट्स की वर्षा के मुख्य केन्द्र क्रमशः चेकोस्लोवाकिया और अमेरिका थे।

डा० चैपमैन का यह कार्य चन्द्रमा के इतिहास पर प्रकाश डालता है और उससे चन्द्रमा के धरातल के कुछ स्थानों के निर्माण का समय निर्धारित करने में सहायता मिलती है।

२. ल्युकेमिया की नई औषधि

अमेरिका में असाध्य ल्यूकेमिया (रक्त श्वेताणु-मयता रोग) के इलाज के लिये एक बड़ी ही आशाप्रद नई दवाई का विकास किया गया है। यह दवाई इस रोग का पूर्ण इलाज नहीं है फिर भी यह अन्य दवाइयों की तुलना में अधिक प्रभावकारी है और इससे बीमारी का पूर्ण परिहार हो जाता है। यह रोग एक प्रकार का रक्त-कैंसर होता है।

इस औषधि को अभी हाल ही में लाइसेन्स दिया गया है। इसका नाम साइटोसाइन आराबिनोसाइड है। यह औषधि अमेरिका की संघ सरकार, वहां के उद्योग, विश्वविद्यालयों और स्वतन्त्र संस्थानों के २० वर्षीय सहकारी प्रयास का परिणाम है। इसका व्यापारिक पक्ष कलामाजू (मिशिगन) की 'द आपजॉन कम्पनी' के हाथ में है।

अमेरिका के राष्ट्रीय कैंसर संस्थान के अधिकारियों के अनुसार, जिन्होंने इस दवाई के मानवों पर होने वाले अधिकांश परीक्षण किए हैं, इस दवाई को ग्रानुलोसाइटिक और लिम्फोसाइटिक ल्यूकेमिया के १८४ मरीजों को दिया गया जिनमें से ३७ प्रतिशत मरीजों के रोग का काफी हद तक परिहार हो गया। अन्य दवाइयों से लगभग १५ प्रतिशत लोगों को ही लाभ होता है।

ह्यूस्टन (टेक्सास) स्थित एम० डी० एण्डरसन अस्पताल के डा० एमिल फ्रेयरीच का कहना है कि साइटोसाइन आराबिनोसाइड नामक इस दवा से उनके द्वारा इलाज किए गए ५० प्रतिशत मरीजों को लाभ हुआ है। वह इस औषधि को कैंसर के इलाज के क्षेत्र में एक नयी दिशा मानते हैं।

ल्यूकेमिया के रोग में रक्त में उससे श्वेताणु की मात्रा अनियन्त्रित रूप से बढ़ जाती है। इसका सही कारण अज्ञात है किन्तु कुछ अनुसंधानियों का मत है कि इसका कारण रक्त कोशिकाओं का कैंसरयुक्त उत्परिवर्तन भी हो सकता है।

यह औषधि उस रासायनिक द्रव्यों में से एक है जिसके सम्बन्ध में १९५१ में येल विश्वविद्याल के दो अनुसंधानकर्ताओं द्वारा जल-शोषक समुद्री पदार्थों के सत्वों का अध्ययन करने के बाद, सर्वप्रथम जानकारी दी गयी थी। उसके १० वर्ष पश्चात् अपजोहन द्वारा सहरोसाइन तैयार किया गया था और १९६४ से इसकी प्रयोशाला में और रोगियों पर जाँच होती रही है।

पशुओं के लिये नवीन खाद्य: आम की गुठली

अनुमान है कि प्रतिवर्ष भारतवर्ष में औसतन ४ करोड़ टन आम की उपज होती है जिससे लगभग ½ करोड़ टन आम की गिरी प्राप्त हो सकती है। इसे पशुओं को खिलाने से यकृत में विटामिन-ए का काफी संचय हो जाता है। आम की गुठली में ८·५% अपरिष्कृत प्रोटीन, ०·१९% कैल्सियम तथा ०·२% फास्फोरस होता है।

चीनी उत्पादन का नया प्रयोग

गन्ने के समान चीनी बनाने के लिये उत्तर भारत में अब चुकन्दर उगायी जाने लगी है। इसकी उपज ३०-७० मीटरी टन है जिसमें चीनी की मात्रा १५-१८% तक होती है। यह छह मास में तैयार होने वाली फसल है। इसके विपरीत गन्ना एकवर्षीय फसल है। अभी लखनऊ, पन्तनगर, जालन्धर, गंगानगर तथा श्रीनगर केन्द्र में चुकन्दर सम्बन्धी प्रयोग किये जा रहे हैं। इससे चीनी का संकट दूर हो सकेगा।

सम्पादकीय

हिन्दी ग्रंथ अकादमियाँ

सभी प्रदेशों में विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य पुस्तकों के निर्माण के लिये जो संस्थायें सस्थापित हुई हैं वे "हिन्दी ग्रंथ अकादमी" के नाम से पुकारी जावेंगी। हमारे प्रदेश, उत्तर प्रदेश, में भी "हिन्दी ग्रंथ अकादमी' का शुभारम्भ जनवरी मास से हो चुका है। इस अकादमी के 'निदेशक' हैं पूर्णकालिक अधिकारी श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव और उपसचालक हैं सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री बालकृष्ण जी राव।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि उत्तरप्रदेशीय हिन्दी ग्रंथ अकादमी को भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय से २५० पुस्तकों के अनुवाद कराने का कार्यभार सौंपा गया है। यही नहीं, उसे विज्ञान एवं मानविकी की विभिन्न शाखाओं में मौलिक पुस्तकें लिखाने का भी अधिकार दिया गया है।

इस अकादमी को एक ओर जहाँ इतना उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य सौंपा गया है, वहीं उस पर पाबन्दी भी लगाई गई है। अकादमी के समक्ष बी० एस-सी० तथा एम० एस-सी० स्तर तक की पाठ्य पुस्तकों के अनुवाद किये जाने की अवधि क्रमशः जुलाई १९७१ तथा जुलाई १९७२ रखी गयी है। साथ ही विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन्हें पाठ्यक्रमों में विहित कराने का भी भार अकादमी पर होगा। उसे अपने आर्थिक सम्बल के लिये विभिन्न केन्द्र अभिकरणों के भंग होने पर अपना कार्य क्षेत्र विस्तारित करने का आदेश केन्द्र से प्राप्त है।

हिन्दी के राष्ट्र भाषा घोषित होने के २२ वर्षों बाद यह ऐसी सुखद घोषणा है जिसकी ओर समस्त हिन्दी प्रेमी अध्यापकों एवं छात्रों का अध्ययन आकर्षित होगा। अंग्रेजी के गिरते हुये स्तर के कारण विद्यार्थियों को न केवल अंग्रेजी पाठ्य पुस्तकों के समझने में किन्तु कक्षाओं में अध्यापकों एवं छात्रों को व्याख्यान देने तथा समझने में कठिनाई का अनुभव होता रहा है। केन्द्री शिक्षा मन्त्रालय ने वैज्ञानिक पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद की जो योजना ५–६ वर्ष पूर्व चालू की थी उससे अनेकानेक पुस्तकें अनूदित होकर प्रकाश में आई हैं। किन्तु मात्र अनुवाद अध्यापन के क्षेत्र में पर्याप्त नहीं। मौलिक लेखन पर अधिकाधिक बल दिये जाने की आवश्यकता है। इससे न केवल ज्ञान के स्तर में वरन् भाषा-शैली में सुधार होगा।

'हिन्दी ग्रंथ अकादमी' की स्थापना से मौलिक लेखन के क्षेत्र में निश्चित रूप से युगान्तर की सम्भावना है। जिन वैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों ने अपने-अपने क्षेत्र में हिन्दी को प्रश्रय देकर उसकी जड़ें मजबूत की हैं, उनके लिये यह सुनहला अवसर होगा पूर्णाहुति के रूप में अपनी क्षमता के अनुरूप ग्रंथों का प्रणयन करना। आशा है शीघ्र ही उत्तर प्रदेश अपने गौरव के अनुकूल ही पाठ्य पुस्तकों के क्षेत्र में प्रशस्त परम्परा स्थापित करेगा।

● ●

'विज्ञान' के सम्बन्ध में
(फार्म ४)

१.	प्रकाशन का स्थान	इलाहाबाद
२.	प्रकाशन की अवधि	मासिक
३.	मुद्रक का नाम	प्रसाद मुद्रणालय द्वारा के० राय
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	५/७ बेली एवेन्यू, प्रयाग
४.	प्रकाशक का नाम	डा० वाचस्पति
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	प्रधाम मन्त्री, विज्ञान परिषद, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद-२
५.	सम्पादक का नाम	डा० शिवगोपाल मिश्र
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	२५, अशोक नगर, इलाहाबाद-१
६.	उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचार पत्र के स्वामी हैं।	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद इलाहाबाद

मैं डा० वाचस्पति घोषित करता हूँ कि जहाँ तक मेरी जानकारी और विश्वास है उपर्युक्त विवरण सही है।

हस्ताक्षर **वाचस्पति**
प्रकाशक

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥ तै॰ उ॰ ३।५।

भाग १०७	पौष माघ २०२६ विक्र०, १८९१ शक जनवरी-फरवरी १९७०	संख्या १-२

भारत में आग्नेय क्रियायें

● विजय कान्त श्रीवास्तव

आग्नेय क्रियायें पृथ्वी की गतिशील क्रियाओं के साथ-साथ समय तथा दूरी में फैली हुई हैं। वलयित पर्वत निर्माणकारी क्रियायें तथा आग्नेय क्रियायें लगभग समान रूप में पायी जाती हैं यद्यपि इनमें यदा-कदा परिवर्तन होता रहता है। विशालमाला में आग्नेय क्रियायें भूद्रोणियों से सम्बधित होती हैं। इसमें अत्य-सिलिक लावा डाइक तथा सिल के रूप में विद्यमान रहता है। शिलाओं में बसाल्ट के साथ-साथ सीलाइट, केराटोफायर, रायलाइट, अन्डेसाइट आदि प्रधान हैं। अतिसिलिक तथा सिलिक शिलायें आग्नेय क्रियाओं के अन्त में प्रायः आइलैंड आर्क में पायी जाती हैं। इस प्रकार सिलिक, अल्पल्प सिलिक तथा अतिसिलिक शिलाओं से मिलकर आफियोलिटिक रूप प्रदान करती हैं।

पर्वत निर्माणकारी कियाओं में ग्रेनोडायोराइट तथा ग्रेनाइट अतिशय मात्रा में पाये जाते हैं जो आंतरिक तथा मैग्मेटिक क्रियाओं बने हुए होते हैं तथा विशाल बैथोलिथ के रूप में पाया जाता है। इनमें अन्तर्भेदन वलन की अवस्था में होता है जिसे निवर्तनिक क्रिया कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्तर्भेदन बाद में भी पाया जाता है जिसे पोस्टपेक्टानिक कहा जाता है। इसमें पायी जाने वाली प्रधान शिलायें पोटाश ग्रेनाइट तथा पेग्माटाइट हैं। भारत में विभिन्न भौमिकीय अवस्थाओं में हुई आग्नेय क्रियाओं का संक्षिप्त विवेचन दिया जा रहा है :—

(१) धारवार क्रम—

भारत की सबसे पुरानी आग्नेय क्रिया धारवार क्रम की मानी जाती है। इनमें कायान्तरित बसाल्ट अधिक है जो हार्नब्लैंड शिस्ट बन गये हैं। यह क्रम लगभग २००० मि० वर्ष तक माना जाता है। इस बड़ी अवधि में कई बार बसाल्ट शिलाओं का क्रम पाया

गया है जिसमें ग्रेनाइट तथा अनेक अवसादीय शिलायें भी पायी गई हैं। वर्तमान अवस्था में ये शिलायें अत्यधिक कायांतरित हैं तथा इनके प्रारम्भिक रूप प्रायः नष्ट हो चुके हैं। ऐसी शिलायें अनेक स्थानों पर पायी जाती हैं। मैसूर, राजस्थान, नेल्लोर, आ०प्र०, सिंहभूम [बिहार], म० प्र०, शिलांग [आसाम] आदि प्रमुख स्थान हैं। सब स्थानों का एक संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत है :—

मैसूर—मैसूर में पाये जाने वाले धारवार क्रम की शिलाओं को तीन भागों में बाँटा गया है १— अधो २— मध्य ३— उपरि। अधो क्रम में अत्यसिलिक, सिलिक, अन्तर्भेदित तथा ज्वालामुखीय शिलायें पायी गयी हैं तथा इनके साथ टुफ तथा राख के स्तर भी पाये गये हैं। मध्य क्रम में संस्तरित शिलायें हैं तथा अन्त में अतिसिलिक शिलायें पायी जाती हैं। रागनदुर्ग, बेलकाल, शिकोगा, पितलाली, कुक्कापतन तथा चितलदुर्ग में ऐसी शिलायें प्रधान रूप से पायी जाती हैं। इसी में कुछ सिलिक भी हैं जैसे बाबाबुदीन, एपीडायोराइट। उपरि क्रम में भी ठीक यही रूप देखा जाता है। मैसूर में इन क्रियाओं का क्रम निम्न प्रकार माना जाता है (डा०दुबे)—

ट्रावनकोर ग्रेनाइट—५०० मि० वर्ष
क्लोजपेट ग्रेनाइट—१२००—९५० मि० वर्ष
चार्नोकाइट —१६०० मि० वर्ष
पठारीय नाइस —२३०० मि० वर्ष
चैम्पियन नाइस तथा अधोधारवार
— लगभग ३००० मि० वर्ष

नेल्लोर (आ०प्र०)—यहाँ की कान्द्रा ज्वालामुखीय शिलाओं में डोलेराइट, एपीडायोराइट, इफ, हार्नब्लैंड तथा क्लोराइट शिष्ट पाया जाता है जो डाइक तथा सिल की भाँति हैं। इनके ऊपर ही आग्नेय क्रम की ग्रेनाइट शिलायें पायी जाती हैं।

सिंहभूम (बिहार) :—चाइबासा में टुफ तथा हार्नब्लेंड शिष्ट के रूप में सबसे पुरानी शिलायें पायी गई हैं। इसके बाद लौह शिला क्रम पाया जाता है। ठीक इसी समय का उत्तर सिंहभूम की क्षारीय शिला है। यहीं डालमा ट्रैप पाया जाता है। गंगपुर में इसी क्रम की शिलायें प्रायः कायांतरित हो गयी हैं। इसके बाद ग्रेनाइट, पेग्माटाइट तथा क्वार्ट्ज की पतली धारा पायी जाती है। ग्रेनाइट शिलाक्रम के बाद सिलिक क्रम की शिलायें मयूरभंज तथा डलभूम में पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त डलभूमि, कोलहन, बोनाई तथा कियोंझर में अत्यसिलिक शिलायें पायी गयी हैं। यदि लौह शिलाओं की आयु १२०० मि० वर्ष माना जाय तो आग्नेय क्रिया १२०० मि० वर्ष के बाद की ही होगी। सम्भवतः यह धारवार क्रम की अंतिम क्रिया हो।

शिलांग (आसाम):—धारवार क्रम की ही शिलांग पहाड़ी के पूर्व भाग में खासिया ग्रीनस्टोन की शिलायें हैं जो डालमा ट्रैप के समकक्ष की मानी जाती हैं। पहाड़ी में पुराने ग्रेनाइट, नाइस तथा नवीन ग्रेनाइट हैं। इसे मिलियम ग्रेनाइट कहा जाता है [पैस्को—१९५० पृ० २४३]।

मध्य प्रदेश :—नागपुर में सासर क्रम में ग्रेनोडायोराइट मैग्मा पाया जाता है। इसके ठीक बाद सिलिक अप्लाइट की शिलायें हैं। छिंदवाडा में ये अप्लाइट बहुत बाद में डाइक के रूप में अन्तर्भेदित हैं। बलय क्रिया के पश्चात् यहाँ अनेक स्थानों पर पेग्माटाइट पाया जाता है [बेस्ट १९५८ पृ० ९७]।

राजस्थानः—राजस्थान में अरावली क्षेत्र में आग्नेय क्रियायें पायी जाती हैं। इनमें से सबसे पुराना बेराच ग्रेनाइट है जो कि बुन्देलखंड ग्रेनाइट के समान है। काले एम्फीबोल के कण तथा पतले डोलेराइट अन्तर्भेदन के प्रमाण हैं। अरावली क्रम में हरे हार्नब्लेंड शिष्ट तथा फायलाइट साथ के हैं तथा सहसंस्तरित हैं। दिलवाड़ा के पास कुछ अमिगडलायड तथा हार्नब्लेंड शिष्ट पाया जाता है जो कि बेसल क्रम का माना जाता है। इसके अन्त में वेसिकुलर लावा का प्रवाह पाया जाता है जिसे खैरामिलिया अमिगडलायड कहते हैं तथा जो स्लेट के ऊपर पाया जाता है। अन्य स्थान के डोलेराइट डाइक निमांरा क्षेत्र के अरावली क्रम के बाद के हैं तथा रायलो क्रम के पहले के हैं। ग्वालियर

क्रम में लावा रनथम्भोर अयनति में । क्षेत्रों में पाया जाता है [हेरान–१९२६ पृ० ६६] ।

इस प्रकार वलकृत पर्वत मालाओं में आग्नेय क्रियायें पायी जाती हैं । बिजावर क्रम का आग्नेय क्रियाओं की अवधि संदिग्ध है । जबलपुर तथा सोन घाटी की क्रियायें धारवार क्रम के साथ जोड़ी जाती हैं जबकि मध्यभारत की कुडप्पा क्रम साथ राजस्थान में हुई इन क्रियाओं की अवधि निम्न प्रकार निर्धारित की जाती है [डा० दुबे] :—

मलानीटायोलाइट तथा जैलार किवाना ग्रेनाइट
४५० मि० वर्ष

इरिन पुरा ग्रेनाइट ७३५ मि० वर्ष

देहली तथा अरावली पश्चात् ग्रेनाइट तथा बरोच ग्रेनाइट
१२००–९५० मि० वर्ष

(२) कुडप्पा क्रम :—

दूसरी आग्नेय क्रिया कुडप्पा में पायी गयी है । कुडप्पा घाटी में वेल परले लाइमस्टोन पायध्नो क्रम तथा तादपती शेल चेयर क्रम में क्वार्ट्ज डोलेराइट की मोटी सिल तथा बसाल्ट का अन्तर्भेदन हुआ है । सिंहभूम का नवीन डॉलेराइट डाइक इसी क्रम का है । कुडप्पा घाटी के लगभग २५ कि० मी० पश्चिम में वाजरा करुर स्थान की आग्नेय क्रिया इन क्रियाओं का केन्द्र माना जाता है [पिचामुथ १९३५ पृ० १४७] । इन्हीं आग्नेय क्रियाओं के आधार पर कुडप्पा क्रम का वर्गीकरण भी किया जाता है । रायोलाइट तथा अम्लीय टुफ कु बहाव सेमरी क्रम विंध्य के ज्वालामुखी क्रिया तथा मलानी क्रम की क्रिया इस अवधि की हैं । मध्य कुडप्पा में दक्षिण तथा मध्य भारत में अत्यसिलिक लावा पाया गया है । सरगुजा के पार रेर नदी में तातापाती के पास रायलेटिक टुफ तथा साचराक्लीसिटिक लावा पाया गया है । रायपुर, बालाघाट में ज्वालामुखीय क्रम पाया जाता है । सकोली क्रम के ऊपर भी रायोलेटिक शिला का बहाव है ।

सोन घाटी तथा अन्य स्थानों पर इस क्रम का अतिसिलिक लावा भी पाया गया है । मझगवां, यल्ला तथा छतरपुर बुन्देलखंड में हीरा युक्त अग्लोमेरेटिक टुफ भी पाया गया है । दिल्ली क्रम में जो कुडप्पा युग का ही माना जाता है अलवर तथा आजमगढ़ में डोलेराइट की मोटी तह पायी जाती है । दिल्ली के उपरान्त इरिनपुर ग्रेनाइट में भी अन्तर्भेदन है । इडार में कहीं कहीं ग्रेनाइट पाया गया है ।

(३) विन्ध्य आग्नेय क्रिया :—

सिरोही में डोलेराइट तथा बसाल्ट की मात्रा पायी गयी है । इसमें कहीं कहीं व्यतिक्रम भी पाया जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवधि को आग्नेय क्रिया विंध्ययुग के पहले तथा बाद की नहीं है परन्तु इसके समकालीन है । सोन घाटी में डोलेराइट का अन्तर्भेदन भी पाया जाता है जो इसी अवधि का है ।

हिमालय क्षेत्र :—पारानदी पर कैम्ब्रियन तथा पर्मियन संस्तरों में अन्तर्भेदन पाया जाता है । स्थिती क्षेत्र में पहाड़ी प्रायः ग्रेनाइट की है । रुपसू में ग्रेनाइट का कार्बोनीफेरस तथा पर्मियन क्रम में अन्तर्भेदन है ।

सिक्किम में आर्योनाइसेस की पतली ग्रेनाइट शिलायें पायी जाती हैं । ये ग्रेनाइट चुम्बी ग्रेनाइट तथा स्कोल ग्रेनाइट के समान हैं । इनका समय टरशियरी माना जाता है [हायडेन १९०७ पृ० ५९] । कश्मीर में बायोटायट ग्रेनाइट के अनेकों सिल तथा डाइक पाये गये हैं [आडेन १९३५ पृ० ७९] ।

मध्य हिमालय क्षेत्र के ग्रेनाइट डोरारा स्लेट के भी पहले के माने जाते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालय क्षेत्र में हरसीयन समय में ग्रेनाइट का अन्तर्भेदन हुआ था ।

(४) कैम्ब्रियन क्रियायें

साल्टरेंज क्षेत्र में काले भूरे रंग की ज्वालामुखीय शिलायें पायी गयी हैं । इनमें जिप्सम तथा संगमरमर पाया गया है । ये सब दक्षिण ट्रैप के माने जाते हैं ।

(५) उत्तर कार्बोनीफेरस युग की क्रियायें :—

कैम्ब्रियन के बाद भारत में महाद्वीपीय अवस्था कार्बोनीफेरस तक रही । उत्तर पश्चिम भारत में पंजाब, कश्मीर तथा हाजरा में भूमि का पिंड माना जाता है । टेथीस भूद्रोणी के समय उत्तर पश्चिम भाग कुछ समय तक गोंडवाना महाद्वीप का भाग बना फिर भूद्रोणी में समा गया । इस अवस्था में आग्नेय क्रियायें हुईं

तथा ग्लासोप्टोरिस तथा गंगोमाप्टोरिस वनस्पतियाँ इनके नीचे दब गयीं। धीरे धीरे इनके ऊपर एग्लोमेरटिक टुफ तथा राख आ गये। यूरेलियन से प्रारम्भ होकर यह क्रिया ट्रिपासिक तक चलती रही। ये क्रियायें अर्द्ध सागरीय अवस्था में पायी गयी हैं नंगा पर्वत के पास असोर में डोलेराइट की तह पायी गयी है। ये सब पंजाब क्रम की हैं। उत्तर कार्बोनीफेरस क्रम की क्रिया काफी विस्तृत है।

(६) जुरासिम क्रम की आग्नेय क्रियायें :—

गोंडवाना द्वीपसमूह में अधोजुरासिम समय में आग्नेय क्रियायें प्रारम्भ हुईं। ठीक इसी समय आस्ट्रेलिया, ब्राजील तथा अर्जेन्टाइना में भी आग्नेय क्रियायें प्रारम्भ हुईं। भारत में राजमहल में ये क्रियायें मुख्य तथा बसाल्टिक तथा दिचस्टेन प्रकृति की हैं। ये सब दरार से निकले लावा माने जाते हैं परन्तु सिमरा के पास गोदावरी पहाड़ी पर गड्ढा भी पाया जाता है। कोनला क्षेत्र में पाये जाने वाले डाइक भी इसी प्रक्रित के हैं। बसाल्ट के अतिरिक्त लैम्प्रोफायर मैग्मा भी इनमें पाये जाते हैं।

(७) क्रेटेसस इयेसीन अवधि की क्रियायें :—

इस समय में महाद्वीपों में विशाल मात्रा में आग्नेय क्रियायें हुई हैं। भारत के पश्चिम तथा मध्य भाग में ये आग्नेय क्रियायें दरार की भाँति हुई हैं। कच्छ तथा पटथम में अनेक स्थानों पर अनेक लैकोलिथ अन्तर्भेदन पाये जाते हैं। काठियावाड़ में अनेक डाइक पाये गये हैं। ये सब अनकरामाइट तथा मुजियाराइट प्रकृति के हैं। सौराष्ट्र, अहमदाबाद के आसपास ४८ बहाव इनके पाये गये हैं [वेस्ट १९५८ पृ० १५६]। बड़ौदा काठियावाड़ में अनेक स्थानों पर फूटानिक तथा हिपावेसल प्रकृति की शिलाओं के बहाव पाये गये हैं [फेडन १८८५ पृ० २७, कृष्णन १९२५ पृ० ३८०, चैटर्जी १९३२ पृ० १५५, माथुर दूबे तथा शर्मा १९२६ पृ० २८९]।

हिमालय क्षेत्र में उत्तर कश्मीर में ज्वालामुखीय शख टुफ का संस्तर पाया जाता है [वाडिया १९३८ पृ० १५७]।

टेथीस भूद्रोणी में अर्द्ध सागरीय लावा का बहाव पाया जाता है [हेम तथा गैन्सर १९३९, पृ० २१४–२१५]।

आसाम तथा बर्मा अन्डमान द्वीप में भी इस प्रकार की शिलायें पायी गयी हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि आग्नेय क्रियायें धारवार, कुडप्पा तथा अधो विध्यन तक तीव्र थीं। फिर ये क्रियायें उत्तर कार्बोनीफेरस से लेकर अधो-टरशियरी अवधि तक तीव्र हो गयीं थीं।

संदर्भ

१– आडेन, जे० वी०	१९३५	ट्रैवर्सस इन हिमालय रिकार्ड, जियो० सर्वे० इंडि० ६९, भाग २
२—...	१९४९	डाइक इन वेस्टर्न इंडिया, ट्रांस नैगु इन साइंस ३, भाग ३
३– चैटर्जी, एस०सी०	१९५५	दी पेरिडोटाइस आव् मानपुर सिंहभूम, बिहार एंड ओरिजिन आव् एसोसियेटेड एसबेरप्स, बुले० जियो० सोसा० अमे० ६६
४ —...	१९५७	जियोलाजी आव् पावागढ़ हिल, करेंट साइंस २६
५ चैटर्जी, एस०के०	१९३२	इग्नियस राक फ्राम वेस्ट गिरफारेस्ट, काठियावाड़ जर्न० जियो० ४०
६ —कुलरान, ए०ल०	१९३०	जियोलाजी आव् सिरोही स्टेट, राजपुताना मेम० जि० स० इंडि० ६३
७—दुबे, वी०एस०	१९५०	कुडप्पा इग्नियस एग्निविटी, करेंट साइंस १९
८—डन, जे०ए०	१९२९	जियोलाजी आव् नार्थ सिंहभूम, मेम० जि० स०द० ५४
९—फेडन, एफ०	१८८५	जियोलाजी आव् काठियावाड़, मेम० जि० स० इ० २१
१०—हायडेन, एच०	१९०४	जियोलाजी आव् सीती मेम० जि० स० इ० ३६ भाग १

(शेष पृष्ठ १२ पर देखें)

जल संदूषण एवं स्वच्छता

● डा० शिवगोपाल मिश्र

प्राचीनकाल में शायद ही जल की शुद्धता पर उतना ध्यान दिया जाता रहा हो जितना कि आजकल। यदि बड़े-बड़े नगरों में जल की सफाई (परिष्कार) न की जाय तो न मालूम एक ही दिन में कितने लोग नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जायँ। चाहे विषम ज्वर हो, या हैजा अथवा पेचिश—ये सभी रोग जल की अशुद्धता से फैलते हैं। नगरों में बिना स्वच्छ किया जल प्रयुक्त किये जाने की कल्पना ही भोंड़ी मानी जावेगी। किन्तु देहातों में अब भी नदियों एवं कुओं, यहाँ तक कि तालाबों के पानी को केवल उनकी ऊपरी स्वच्छता देखकर, प्रयुक्त करने में ग्रामीण लोग हिचकते नहीं। बरसात के दिनों में नदियों के जल में गन्दगी आकर मिलती है, नदियों में बड़े-बड़े शहरों का मलमूत्र आकर मिलता है, लाशें फेंकी जाती हैं जिससे उनका पानी अत्यन्त दूषित हो जाता है। यह जल न तो पीने योग्य रहता है और न अन्य कार्यों के उपयुक्त। अतः जल संदूषण एवं उसकी स्वच्छता, कूड़े करकट की सफाई, मलमूत्र की व्यवस्था—ये सभी बाते स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं जिनके प्रति नगर महापालिकायें एवं राज्य के स्वास्थ्य विभाग सतर्क रहते हैं। स्वच्छ जल सदैव उसके शुद्ध होने का प्रमाण नहीं है और न जल का गन्दलापन उसके हानिकारक होने का सूचक। यह गन्दलापन अकार्बनिक तलछट के कारण हो सकता है जो हानिप्रद नहीं होता। स्वच्छ होने पर भी जल में अदृश्य जीवाणु पाये जा सकते हैं जो नाना रोगों को फैलाते हैं। फलतः जल की सफाई या जल के संदूषण से सम्बन्धित हमें निम्नांकित बातों की ओर ध्यान देना होगा :—

(१) शहरों एवं गाँवों में जल के साधन

(२) जल में पाई जाने वाली सामान्य गन्दगियाँ

(३) जल को परिष्कृत करने की विधियाँ

इन पर हम क्रमशः विचार करेंगे।

शहरों तथा गाँवों में जल की आवश्यकता

बड़े-बड़े शहरों में विविध प्रकार के उद्योगों को चलाने, मल को हटाने, आग बुझाने, सड़कें साफ करने, उद्यानों को सींचने एवं घरों में नहाने-धोने तथा पीने के लिए पानी की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा अनुमान है कि प्रति व्यक्ति को लगभग २०० गैलन जल प्रति दिन आवश्यकता पड़ सकती है अतः समस्या उठ खड़ी होती है कि इन कार्यों के लिये इतनी प्रभूत जलराशि कहाँ से प्राप्त की जावे। यदि शहरों के पास नदियाँ, झीलें या बड़े-बड़े जलाशय हुये तो इसे सौभाग्य मानना चाहिए अन्यथा जलपूर्ति के लिए सैकड़ों मील दूर स्थित पहाड़ों से, नदियों या झीलों से पानी लाना पड़ सकता है। अमरीका के न्यूयार्क शहर में १०० मील दूर से पानी बड़ी-बड़ी सुरंगों से होकर लाया जाता है। अपने देश में बम्बई में मीलों दूर से जल लाया जाता है। छोटे-छोटे शहरों में कुओं से जल प्राप्त करके संग्रहीत किया जाता है। अमरीका में बड़े-बड़े शहरों में प्राइवेट कम्पनियाँ बंद बोतलों में जल बाँटती हैं। उन्हें इसके लिए लाइसेन्स लेना होता है।

देहातों में जल के साधन भी इसी प्रकार के हैं किन्तु अन्तर इतना ही होता है कि यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये कुयें, झरने, नदी, झील आदि से जल लाना होता है। अधिकांश देहातों में कुओं से ही जल प्राप्त किया जाता है। ये कुयें कुछ फुट गहराई से लेकर सैकड़ों फुट तक गहरे हो सकते हैं। जिन प्रदेशों में वर्षा कम होती है वहाँ कुयें अत्यन्त गहरे बनाने पड़ते हैं और उनमें पानी की मात्रा कम होने के साथ ही पानी का स्वाद नमकीन होता है। राजस्थान में पानी का अभाव है। वहाँ के लोग अपने घरों में छतों तक में बड़े-बड़े जलाशय बनाकर वर्षा के जल को संचित करने का प्रयास करते हैं और उसी का उपयोग करते हैं।

पीने के जल के साथ ही संसार के समस्त मीठे जल की समस्या उग्र होती जा रही है। यद्यपि सागरों में अपार जलराशि है किन्तु उसका उपयोग पीने या कपड़ों के धोने के लिये ऐसे ही नहीं किया जा सकता। आजकल अमरीका का ध्यान सागरों के खारी जल को पेय जल के रूप में परिणत करने की ओर लगा है।

जल की अशुद्धियाँ

वर्षा से प्राप्त जल शुद्धप्राय होता है। पहाड़ों एवं देहाती क्षेत्रों में शहरों के धुयें एवं धूल से आसमान रहित होता है अतः वर्षा-जल में किसी प्रकार की गन्दगी नहीं रहती। किन्तु ज्योंही वर्षा-जल पृथ्वी की सतह पर पहुँचता है उसमें नाना प्रकार की अशुद्धियाँ मिल जाती हैं। इसमें से कुछ पानी तो नालों एवं नदियों का रूप धारण करके अन्ततः सागर पहुँच जाता है और शेष भाग मिट्टी में अवशोषित होकर विभिन्न गहराइयों पर जल-तल बनाता है। यही जल कुओं के जल के रूप में निकाला जाता है। अतः स्पष्ट है कि ऐसे जल में भी अनेक अशुद्धियाँ मिली हुई रहती हैं।

प्राकृतिक जल कितना ही शुद्ध क्यों न हो उसमें कुछ गैसें भी अवश्य घुली रहती हैं। आक्सीजन तथा कार्बन डाइआक्साइड ऐसी ही गैसें हैं। आक्सीजन के घुलने से जल में स्वाद उत्पन्न होता है और कार्बनिक पदार्थों का विनाश होता है किन्तु जब सड़ती हुई बनस्पतियों में से होकर जल बहता है तो उसमें से तमाम कार्बन डाइआक्साइड पानी में घुल जाती है। कभी-कभी गन्धक की खानों से होकर बहने वाले झरने पर्याप्त हाइड्रोजन सल्फाइड गैस अवशोषित कर लेते हैं। ऐसे जलों का औषधीय महत्व बताया जाता है। प्रायः पहाड़ी स्थानों में ऐसे झरने मिलते हैं।

पानी में गन्दगी के लिये उत्तरदायी पदार्थों में सड़ती-गलती चीजें प्रमुख हैं। इनमें नाना प्रकार के रोगोत्पादक जीवाणु बृद्धि करते रहते हैं जो जल में मिल जाते हैं। शहरों में गन्दे नालों से बह कर विष्टा, मूत्र तथा अन्य गन्दगी नदियों में मिलती रहती है जिससे नदियों का पानी दूषित हो जाता है। उसमें बदबू आने लगती है और नाना प्रकार के अदृश्य जीवाणु अड्डा बना लेते हैं। इन सबको कार्बनिक अशुद्धियाँ कह सकते हैं।

दूसरे प्रकार की भी अशुद्धियाँ जल में पाई जाती हैं। इन्हें खनिज-अशुद्धियाँ कहते हैं। इनके अन्तर्गत खनिज लवण आते हैं। पानी में कैल्सियम, मैग्नीशियम के बाइकार्बोनेट एवं सल्फेट तथा सोडियम के क्लोराइड सल्फेट, एवं कार्बोनेट प्रचुर मात्रा में घुल सकते हैं। इनके साथ ही लोह के लवण भी रह सकते हैं। ये लवण मिट्टी के संसर्ग से पानी में विलयित होते रहते हैं--चाहे पानी सतह पर बहे अथवा पृथ्वी के भीतर प्रवेश करता हो।

कभी-कभी अत्यधिक कार्बनडाइआक्साइड विलयित रहने पर जब जल खड़िया मिट्टी की चट्टानों या परतों में से होकर प्रवाहित होता है तो धीरे-धीरे वह उसके बीच में से होकर अपना मार्ग बना लेता है। कभी कभी तो बड़ी-बड़ी गुफायें बन जाती हैं। इनके बनने का रहस्य यही होता है कि खड़िया मिट्टी गैस से युक्त जल में घुलनशील है--इससे कैल्सियम बाइकार्बोनेट बनता है।

कठोर जल

जल में खनिज तत्वों की उपस्थिति मात्र उसे कठोर नहीं बनाती। जल की कठोरता तो जल का वह

गुण है जिसके कारण वह साबुन के साथ झाग नहीं उत्पन्न कर पाता। यह कठोरता जल में कैल्सियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराइड, बाइकार्बोनेट तथा सल्फेट की उपस्थिति के कारण आती है। इन यौगिकों में से भी जब जल में केवल बाइकार्बोनेट रहते हैं तो अस्थायी कठोरता उत्पन्न होती है। यदि ऐसे जल को कुछ देर तक गरम कर दिया जाय तो यह कठोरता दूर हो जाती है क्योंकि गरम करने से कैल्सियम बाइकार्बोनेट अविलेय कैल्सियम कार्बोनेट में परिणत हो जाता है जिसे छानकर पृथक कर लिया है।

गरम करने पर

$$Ca(HCO_3)_2 \longrightarrow CaCO_3 + H_2O + CO_2$$
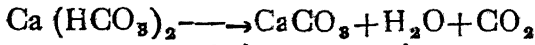
किन्तु जब जल में कैल्सियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराइड एवं सल्फेट पाये जाते हैं तो उन्हें सरलता से विलग नहीं किया जा सकता। ऐसे जल को स्थायी कठोर जल कहते हैं और उसकी कठोरता को स्थायी कठोरता कहते हैं। ऐसे जल में साबुन से कपड़े धोने पर झाग नहीं उठता। उल्टे बहुत सी साबुन अविलेय होती रहती है। इस प्रकार से धोबियों के लिए ऐसा स्थायी कठोर जल बेकार होता है।

कठोर जल + साबुन → अविलेय साबुन + लवण

$$CaCl_2 + 2C_{17}H_{35}COONa \rightarrow Ca(C_{17}H_{35}COO)_2 + NaCl$$
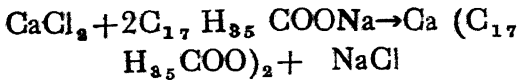
ऐसा कठोर जल औद्योगिक कार्यों के लिये भी अनुपयुक्त होता है क्योंकि बायलरो में $CaCO_3$ अथा $MgCO_3$ का शल्क जम जाता है जिसके कारण अधिक ईंधन की आवश्यकता पड़ती है।

किन्तु कठोर जल अपेय नहीं कहा जा सकता।

जल में आयोडीन तथा क्लोरीन

यह देखा गया है कि प्रायः प्राकृतिक जलों में आयोडीन की काफी मात्रा रहती है किन्तु कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिनके जलों में आयोडीन की न्यूनता पाई जाती है। ऐसा जल पीने से कण्ठमाला नामक रोग हो जाता है जिसमें थायराइड ग्रन्थि फूल जाती है। ऐसे क्षेत्र कण्ठमाला क्षेत्र Goitre regions) कहलाते हैं। हमारे प्रदेश में तराई क्षेत्र (जौनसार भाभर) इसके लिये कुख्यात है। [अतः इन क्षेत्रों में] कर खाने को दिया जाता है तथा जल के साथ आयोडाइड घोल दिया जाता है।

इसके विपरीत जल में फ्लोरीन की अधिक मात्रा हानिकारक सिद्ध होती है। यदि जल के प्रति दस लाख अंश में १ अंश से अधिक फ्लोरीन हो तो बच्चों के दाँत बिगड़ने लगते हैं फलतः जल में से अधिक फ्लोरीन हटाने के लिये उपाय किये जाते हैं। इनमें से सबसे सस्ती विधि है पानी के नल के मुँह में कैल्सियम फास्फेट की पोटली बाँध रखना जिससे पीने के लिये जल निकालते समय वह पोटली में से होकर निकले। इससे जितना भी अधिक फ्लोराइड होता है वह कैल्सियम फास्फेट के द्वारा बन्दी बना लिया जाता है और बाहर आने वाला जल सर्वथा निर्दोष होता है।

परिष्करण के पूर्व जल की कई प्रकार से परीक्षा की जाती है :—

जल को गँदला नहीं होना चाहिये, उसे रंगहीन स्वच्छ, गन्धहीन, तथा रुचिकर स्वाद वाला होना चाहिये। ऐसा जल पीने के लिये अच्छा माना जाता है।

रासायनिक दृष्टि से जल में खनिजों एवं सड़े हुये कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति पर ध्यान देना आवश्यक होता है। यदि सड़े हुये कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति देखी जावे तो यह समझना चाहिये कि पानी दूषित है।

जल का सूक्ष्मदर्शी परीक्षण भी आवश्यक है। जल में नाना प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु तथा अन्य प्राणी रह सकते हैं। प्राकृतिक जल में असंख्य बैक्टीरिया रहते हैं किन्तु इनमें से अधिकाश हानिकारक नहीं होते। पीने वाले जल में इनकी जाँच किसी रसायनज्ञ अथवा जीवाणुविद द्वारा की जाती है। जब एकाएक जल में इनकी संख्या अत्यधिक हो जाती है तो हानि की आशंका उठ खड़ी होती है। इसका यह अर्थ निकलता है कि साथ ही मल के द्वारा जल-संग्रह विदूषित हो रहा है। किन्तु बैक्टीरिया में बैसिलस कोली की जाँच पर अधिक ध्यान दिया जाता है। ये जीवाणु मनुष्यों की आँतों में पलते हैं और मल द्वारा बाहर आते हैं अतः इनकी उपस्थिति रोगवाही जीवाणुओं के खतरे की सूचना

अतः जल के परिष्करण के लिये जहाँ तक सम्भव हो जल स्रोत के उद्गम पर उसे गन्दगी, विष्टा आदि से संदूषित न होने दिया जाय। किन्तु फिर भी शहरों में जल को उपयोग में लाने से पूर्व उसे निलम्बित पदार्थों, जीवाणुओं तथा रोगाणुओं से मुक्त कर लेना चाहिये। इसके लिये कई प्रक्रम काम में लाये जाते है।

(१) तलछटीकरण (२) वातन (३) स्कन्दन (४) छानना तथा (५) जीवाणुहनन।

सर्वप्रथम जल को बड़े-बड़े जलाशयों में पम्प किया जाता है जहाँ पर एक दिन में अथवा इससे अधिक काल में जलमें निलम्बित गन्दगी का ६५ प्रतिशत जलाशयों की पेंदी में बैठ जाता है। जलमें ऐल्गी अथवा अन्य पौधे न उगें इसलिये नीले थोथे की कुछ मात्रा मिला दी जाती है (लगभग १० पौन्ड प्रति १० लाख गैलन)।

जल में दुर्गन्धपूर्ण गैसें, जल में से कार्बनिक पदार्थ रंगीन पदार्थ तथा कुस्वाद उत्पन्न करने वाले पदार्थों को आंशिक रूप से नष्ट करने के लिये वातन क्रिया सम्पन्न की जाती है। इसके अन्तर्गत जल में वायु मिश्रित की जाती है। यह वायु कई प्रकार से मिश्रित की जाती है। जल को छिद्रो से होकर फुहार रूप में बहने दिया जा सकता है अथवा सोपानों के ऊपर से जल को गिराया जाता है।

इस प्रकार के वातन से जल में आक्सीजन विलियत हो जाती है जिससे उसका स्वाद सुधर जाता है। यही नहीं, इससे जल में प्राप्त फेरस यौगिक अविलेय फेरिक यौगिक में परिणत हो जाते हैं जिन्हें छान कर पृथक किया जा सकता है। इससे कुछ कार्बनिक पदार्थ भी आक्सीकृत हो जाता है जिसके कारण बैक्टीरिया के भोज्य पदार्थों में न्यूनता आती है।

जब पानी अत्यधिक गँदला होता है तो उसमें से निलम्बित पदार्थों को विलग करने के लिये स्कन्दन किया जाता है। यह क्रिया कतिपय रासायनिक यौगिकों को पानी में मिला कर सम्पन्न की जाती है। ऐसे यौगिकों में फिटकिरी (पैटैशियम ऐल्यूमिनियम सल्फेट) अथवा फेरस सल्फेट प्रमुख हैं। इनके डालने से निलम्बित पदार्थ इनसे बने श्लिषीमय अवक्षेप के साथ जलाशय की पेंदी में बैठ जाते हैं। यही नहीं, बैक्टीरियां भी साथ में अवक्षिप्त हो सकते हैं। इस क्रिया में तीन-चार घन्टे का समय लगता है।

इसके बाद जल को तीव्र गति से छानने वाले छन्नकों में से होकर बहने दिया जाता है। प्रायः बालू की बजरी, या कोयले के छन्ने सन्तोषजनक होते हैं। इन छन्नों की सफाई होते रहना चाहिये क्योंकि इनके रन्ध्र बन्द हो सकते हैं। इसके लिये उल्टी दिशा में जल को दाब के अन्तर्गत पम्प किया जाता है।

इतने के बाद भी जल सर्वथा पेय नहीं होता। उसमें बैक्टीरिया रह सकते हैं फलतः इनको विनष्ट करने के लिये क्लोरीनीकरण क्रिया सम्पन्न की जाती है। इसके लिये क्लोरीन गैस को छोटी-छोटी नालियों द्वारा जल के भीतर प्रवाहित किया जाता है। इससे हाइपोक्लोरस अम्ल तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल बनते है।

$$Cl_2 + H_2O \rightarrow HClO + HCl$$
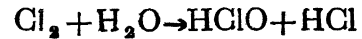
इनमें से प्रथम अस्थायी होता है अतः वह शीघ्र ही HCl तथा आक्सीजन में परिणत हो जाता है। यह आक्सीजन अत्यधिक क्रियाशील होती है फलतः यह जीवाणुओं एवं रोगाणुओं को विनष्ट कर देती है। किन्तु क्लोरीनीकृत जल में क्लोरीन की गन्ध आती रहती है और स्वाद अच्छा नहीं होता अतः आजकल जल में पहले अमोनिया गैस प्रवाहित करके उसके बाद क्लोरीन गैस प्रवाहित की जाती है। इससे क्लोरैमीन बनता है जिसमें क्लोरीन की तरह की दुर्गन्ध या बुरा स्वाद नहीं पाया जाता। यही नहीं, क्लोरैमीन अधिक समय तक जीवाणुओं को विनष्ट करने की क्षमता को स्थिर रख सकता है।

$$2\,NH_3 + Cl_2 \rightarrow NH_4Cl + NH_2Cl$$ क्लोरैमीन
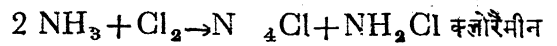
उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य रासायनिक विधियाँ है जिनके प्रयोग से जल को शुद्ध बनाया जा सकता है। इनमें से ओजोन (O_3) तथा पराबैंगनी किरणों के प्रयोग उल्लेखनीय हैं। पराबैंगनी किरणें पारद-वाष्प लैम्पों द्वारा उत्पन्न होती हैं और जब जल को ऐसे लैम्पों के ऊपर से होकर बहने दिया जाता है तो पानी शुद्ध हो जाता है। प्रायः तैरने के

लिये प्रयुक्त होने वाले जलाशयों का परिष्करण इसी विधि से किया जाता है।

अब जल में से कैल्सियम तथा मैग्नीशियम की अधिक मात्रा दूर करने के लिये धोने वाले सोडा (Na_2CO_3) का प्रयोग किया जा सकता है।

$$CaCl_2 + Na_2CO_3 \rightarrow CaCO_3 + 2NaCl$$
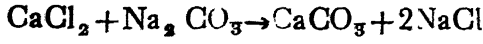
इस प्रकार जल में NaCl रह आता है जिसकी उपस्थिति आपत्तिजनक नहीं मानी जाती।

इन विधियों से भी उत्तम विधि है परमुटिटों के प्रयोग की। ये सोडियम ऐल्यूमिनियम सिलिकेट हैं जिन्हें $Na_2OAl_2O_3\ 2SiO_2$ सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इन्हें विशिष्ट पात्रों में भर कर कठोर जल को इनमें से होकर प्रवाहित किया जाता है जिसमें कैल्सियम तथा मैग्नीशियम आयन ग्रहीत हो जाते हैं और बदले में सोडियम आयन जल के साथ नीचे चल आते हैं। इस प्रकार जल की कठोरता जाती रहती है।

$$Na_2O.\ Al_2O_3\ 2\ SiO_2 + Ca \rightarrow Al_2O_3\ 2\ SiO_2 + 2\ Na + CaO$$
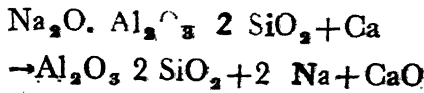
कालान्तर में परमुटिटों का नवीनीकरण आवश्यक हो जाता है। यह खारी पानी के प्रयोग द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

देहातों में कुओं से जल की प्राप्ति होती है। जो कुँआ जितना गहरा होगा, उसका जल उतना ही साफ होगा। जहाँ तक सम्भव हो बाल्टी द्वारा पानी न खींच कर पम्प से पानी चढ़ाना चाहिये। कुयें की जगत पक्की होनी चाहिये, उसके मुँह को ढक कर रखना चाहिये। इससे पानी के भीतर पत्तियाँ नहीं जा पातीं।

आजकल परमाणु ऊर्जा के सस्ता होने से खारे जल को मीठे जल में परिणत करने के प्रयोग किये जा रहे हैं। अमरीका में तो यह उद्योग का रूप धारण कर रहा है। अपने देश के ट्राम्बे के परमाणु ऊर्जा केन्द्र के प्रयोगों से कच्छ की खाड़ी से मीठा पानी बनाने के प्रयोग किये गये हैं और आशा है कि भविष्य में यह जल न केवल पीने के पानी की कठिनाइयों को हल कर सकेगा वरन् खेतों की सिंचाई के लिये भी उपलब्ध बन सकेगा।

(क्रमशः)

शोक प्रस्ताव

१२ फरवरी १९७० को प्रयाग के सम्मानित व्यक्ति श्री बेनीप्रसाद जी का निधन हो गया। विज्ञान परिषद् में श्री अग्रवाल के निधन पर १३ फरवरी को एक शोक प्रस्ताव पारित हुआ "श्री बेनीप्रसाद जी का सम्बन्ध परिषद् से पिछले पचास वर्ष से अधिक का था और उनका सहयोग परिषद् को सदा प्राप्त होता रहा। उन्होंने परिषद् के प्रकाशनों में सहयोग दिया और विज्ञान परिषद् भवन के निर्माण में उन्होंने और उनके परिवार ने उदारता पूर्वक सहायता की। परिषद् उनके शोक संतप्त परिवार के साथ सवेदना प्रकट करता है और उनके आत्मा की सत्गति के लिए प्रार्थी है।"

एक वैज्ञानिक कहानी –

मौत एक पेड़ की

● रामलखन सिंह

जाड़े के दिनों में सुबह की धूप का अपना ही आनन्द होता है और उस दिन मैं उसी आनन्द में मग्न था। रात बर्फ पड़ी थी किन्तु सुबह सुबह इतनी चमकीली धूप उगी कि लान में कुर्सी खींचकर आ बैठा था। पास में बैठी हुयी पत्नी चाय ढाल रही थी। अंजू, शेरू को छेड़ रही थी और वह बड़े ही अन्दाज से गुर्रा कर उसे डराने की कोशिश कर रहा था। सम्भवतः उसे भी धूप सेंकते समय छेड़ा जाना भला नहीं लग रहा था। वैसे घर में शेरू की सबसे अच्छी दोस्ती अंजू से ही है और ऐसे क्षण कम ही आते हैं जब उसे इसका छेड़ना भला न लगता हो। पर इस समय वह खुली धूप में आराम से बैठा था और इसीलिए दुम खींचे जाने पर भी मात्र गुर्रा कर शान्त हो जाता था। उसे खेलने को तैयार करने के यत्न में हार गयी तो उसे हम दोनों की तरफ आना पड़ा—"पापा!" और सामने के ही स्टूल पर बैठ गयी –"आज रात तो खूब बर्फ पड़ी है ना!"

"हाँ बेटी!" मैंने पत्नी से चाय का कप लेते हुए कहा—"बर्फ पड़ना त यहाँ साधारण बात है पर आज कुछ ज्यादा ही पड़ी।"

"अच्छा पापा, यदि इस रात कोई बाहर रह ज ता तब तो ब ठ" और शेष उसकी मुक्त हँसी में खो गया। पत्नी को उसकी बकवास पसन्द नहीं और वह उठ कर चलने लगी तो उसने ही पकड़ लिया—"अरे माँ तुम बैठती क्यों नहीं—"मुझे नहीं सुनना तेरी बड़बड़" वह चली ही गयी। इस पर उसे थोड़ा तुनकने का अवसर मिल गया—"तो पापा क्या मैं बड़बड़ करती हूँ!"

"ओह नो—" मैंने तुनकने के अन्दाज में थोड़ा टेढ़ी हो रही उसकी गर्दन सीधी कर दी—"तू तो मेरी रानी बिटिया है। हाँ तो तू बर्फ की बात कर रही थी न—"

"हाँ। मैं कह रही थी कि इस बर्फ में कोई रात भर बाहर रह जाये तो ठंडा हो जाये।"

"कोई क्यों, हजारों लोग बाहर रहते हैं। सामने खड़े हुए यह पेड़-पौधे सब यूँ ही तो रहते हैं रात भर। "आप तो ऐसे कह रहे हैं जैसे इन पेड़ों को भी आदमी की तरह सर्दी-गर्मी लगती हो।"

"अरे बुद्धू! इसमें भी तुझे सन्देह है क्या!" मैंने उसे स्टूल से खींचकर पास की कुर्सी पर बिठा लिया—"ये पेड़ भी तेरी मेरी तरह जीवित हैं। इन्हें भी ठंडी रात में सिहरन होती है और गर्म लू में जलन। कभी कभी तो सीमा से अधिक ठंड पड़ने पर इनकी मृत्यु भी हो सकती है।"

"क्या!" आश्चर्य से उसकी आँखें चौड़ी हो उठीं—ठंड लगने से पेड़ भी मर सकते हैं!"

"हाँ हाँ! ठंड से पेड़ों की मौत भी हो सकती है। "पर कैसे!" उसे विश्वास नहीं हो रहा था मेरी बात पर। किन्तु छोटे बच्चों को समझा पाना भी उतना आसान नहीं है, इसलिए एक क्षण को मेरे मन में आया कि बहका कर टाल दूँ—"अरे बेटे जैसे ठन्ड से मनुष्यों की मृत्यु हो सकती है वैसे ही पेड़ भी मर सकते हैं।"

किन्तु वह सतर्क थी—"ओह नो पापा ! आप मुझे टाल रहे हैं।"

अब बताने के अतिरिक्त उपाय ही नहीं रहा तो सोचा थोड़ा टहल कर देखूँ यदि आसपास ठंड खाया हुआ कोई पेड़ दिख जाये तो इसे समझा दूँ और इसी ध्येय से उठ पड़ा। "बेटी माँ से बोल कर आ कि हम दोनों अभी थोड़ी देर में आ जायेंगे।"

किन्तु उसे कहना नहीं पड़ा क्योंकि वह स्वयं ही खाली प्यालियाँ उठाने बाहर आ रही थी -"अरे बाबा स्वयं तो जंगलों में रह कर पेड़-पौधों से बातें करते ही हो, अब बच्चों को भी सिखाना आवश्यक है क्या—"

"ओह सुधा—" तब तक वह पास आ चुकी थी "तुम समझती क्यों नहीं कि प्रकृति के पास सिखाने को इतना है कि बस कई जन्म लग जायँ। फिर इन्हीं पेड़ों को प्यार करते करते ही तो मैंने तुम्हे प्यार करना सीखा।"

"हटो भी!" उसने अपनी नाक पर रख उठी मेरी उँगली को झटकते हुए थोड़ा दबा दिया—"उमर ढलने को आयी किन्तु बचपना नहीं गया।"

बेटी की उपस्थिति में छेड़े जाने पर वह ऐसे ही क्रोध दिखाती है। किन्तु माँ को चिढ़ता देखकर अंजू को शैतानी सूझ आती—"छोड़ो भी पापा ! जब माँ आप को प्यार नहीं करने देतीं तो आप ही क्यों बोलते हैं—।"

"अ हो--।" सुधा ने उसे एक धौल जमायी—मेरी दादी को तो देखो।"

हम दोनों फारेस्ट रेस्ट हाउस से बाहर की सड़क पर आ गये। चारों ओर देवदार के बूढे और जवान पेड़ खड़े थे। थोड़ा ही आगे बढ़े थे कि एक खुले स्थान में सूख रहा एक पेड़ दिख गया। उसके आसपास के पेड़ काटे जा चुके थे इसलिए वह अपेक्षाकृत खुले स्थान में था। हम दोनों ही उधर बढ़ गये—"देखो बेटे! यह बेचारा ठंड खा गया है—" और वहीं पास में कटे हुए एक तने पर बैठ गये। हमने चारों तरफ से मर रहे उस पेड़ को छू कर देखा। और अधिक जान सकने की उत्सुकता उसकी आँखों में उभर आयी।

"अंजू! तुमने वह रेस्ट हाउस देखा है ना जिसमें हम लोग ठहरे हुए हैं—" मैंने उसे अपनी ओर आकृष्ट करने के ध्येय से पूछा तो उसने स्वीकृति में सर हिला दिया।

"अच्छा बता कि इतना बड़ा मकान कैसे बना है"

"क्यों! वह छोटी छोटी ईंटों से मिलकर बना है।"

"शाबाश" मुझे उसके उत्तर से प्रोत्साहन मिला—जैसे वह छोटी-छोटी ईंटों से बना है वैसे संसार की प्रत्येक वस्तु छोटी छोटी इकाइयों के संगठन से बनी है। यह पेड़ भी ऐसा ही इकाइयों के संगठन से बना है। इन इकाइयों को कोशिका (सेल) कहते हैं। प्रत्येक कोशिका में ऊपर एक अर्घ व्यापित झिल्ली होती है और उसके अन्दर जीवद्रव्य भरा रहता है। यही जीवद्रव्य पेड़ की वृद्धि का संचालन करता है।—" यहाँ पर उसने मुझे रोक दिया—"लेकिन पापा यह जीवद्रव्य झिल्ली से बाहर क्यों नहीं आ जाता—"

"बेटी। इसकी संरचना ऐसी होती है कि अपने घनेपन के कारण यह बाहर नहीं आता। यदि अर्घ व्यापित झिल्ली (सेमीपरिमियेबुल मेम्ब्रेन) के बाहर इससे भी अधिक सान्द्रता का द्रव्य हो तो अवश्य ही यह बाहर आ सकता है।" मुझे उसके प्रश्न से आभास लगा कि वह समझ रही है और इसीलिए आगे बढ़ गया—"हाँ तो यही छोटी-छोटी कोशिकायें मिलकर पेड़ को आकार देती हैं किन्तु इनके संगठन में बीच-बीच में खाली स्थान बच रहता है। इसे अन्तरकोषकीय क्षेत्र (इन्टर सेलुलर स्पेस) कहते हैं। इसमें जड़ों से खींच कर ऊपर चढ़ रहा पानी भरा रहता है। जब बहुत ठंड पड़ती है तो पानी का तापमान घटता है। एक सीमा से अधिक ठंड पड़ने पर इसका तापमान इतना घट सकता है कि अन्तरकोशकीय क्षेत्र में भरा तरल जमने लगे। और जब पानी जमता है तो उसके आयतन में प्रसार होता है।"

"क्यों?" उसने रोक दिया।

"यह पानी का भौतिक गुण है कि ठोस अवस्था में आने पर उसका घनत्व कम हो जाता है। तभी तो पानी में बर्फ़ तैरती है।"

"ओह। प्रकृति में कितनी विचित्रता है—" उसने चारों ओर फैली वनस्पति को दृष्टि भर देखा। आँखों में सब कुछ समझ पाने की एक आकांक्षा तिर उठी।

"हाँ तो जब कोशिकाओं के बाहरी स्थान में भरा पानी जमता है तो वर्फ बनने पर अधिक आयतन घेरता है। किन्तु स्थान तो पहले से ही भरा रहता है इसलिए आयतन की यह वृद्धि कोशिकाओं पर दबाव डालती है। दबाव पड़ने से कोशिकाओं के अन्दर भरे जीवद्रव्य का संकुचन होता है और परिणामस्वरूप उसमें उपस्थित तरल द्रव रिसकर बाहर आ जाता है किन्तु, बाहर आते ही वह भी जमता है जिससे पुनः दबाव बढ़ता है। इस प्रकार क्रम चलता है और एक स्थिति ऐसी आती है कि जीवद्रव्य का विघटन हो जाता है और कोशिकाओं का आकार अव्यवस्थित हो जाता है। यही स्थिति मृत्यु की स्थिति है।"

सुनकर भी कुछ क्षण तक वह शांत रही। फिर धीरे से उठी और पास ही उग रहे एक छोटे पौधे को सहलाने लगी– "प्रकृति की गोद में पल रहे यह सीधे-सादे पेड़ क्या कुछ नहीं सहते—" 'सहने वाले ही तो बड़े भी होते हैं—" उठकर मैं पास ही खड़े एक स्वस्थ कद्दावर देवदार की तरफ ताकने लगा।

(पृष्ठ ४ का शेषांश)

११—हरने, ए० एम० १९१५ जियोलाजी आव् सेंट्रल राजपुताना मेम० जि० स० इ० ७६

१२—कृष्णन, एम०एस० १९२५ पेट्रोलाजी आव् रामून फ्राम गिरनार एंड ओशामहिल रि० जि० स० इ० ५८

१३ —... ... ... १९५७ वालरैनिक एपिसोड इंडियन जियोलाजी जी० मद्रास विश्व०

१४—माथुर के०के०, दूबे वी० एस० तथा शर्मा एम०एन० १९२२ मैग्नेटिक डिफरेरीयन इन माउंट गिरनार जर्न०जि० ३४

१५—... ... ... १८८७ फिजिकल जियोलाजी आव् वेस्ट ब्रिटिश गढ़वाल रे० जि० स० इ० २०

१६ पैस्को, इ० एच० १९१२ ए ट्रैवर्स एक्रास नंगा हिल रे० जि० स० इ० ४२ भाग २

१७—पिचामुथु १९४६ साइकल्स आव् धारवार सेडिमेन्टेशन, करेन्ट साइ० १५

१८—रामाराव, बी० १९४० अरविंयन काम्प्लेक्स आव् मैसूर बुल० मैसूर जिगडिप नं० १७

१९ रिटेल, बी०डब्लू० १९५५ डिस्ट्रिब्यूशन आव् इग्नियस राक इन स्पेस एंड टाइम बुले० जि० स्वे० सम० ६६

२० –वाडिया, डी०एन० १९३३ नोट आन जियोलाजी आव् नंगा पर्वत, रे० जि० स० इ० ६६

२१—वेस्ट, डब्लू० डी० १९५८ पेट्रोग्राफी एंड पेट्रोलाजी आव् फार्टी एट फ्लोस् आव् डेकन ट्रैप .... ट्रास० वेचु० इ० इडि० नं० ४

२२ –वेन, ए०एच० १८८० आन दी ट्रांस इन्डस एक्सटेंशन आव पंजाब साल्ट रेंज, मे० जि०स० इ० १७ भाग २,

तारापुर सम्बन्धी तथ्य-प

● संकलित

तारापुर बम्बई से ६५ मील उत्तर अरब सागर के तट पर बसा एक गाँव है, जहाँ भारत के प्रथम आणविक बिजली घर की स्थापना हुई है। प्रधान-मन्त्री इन्दिरा गान्धी ने १६ जनवरी, १६७० को इस कारखाने उद्‌घाटन किया। तारापुर का यह बिजलीघर, जो एशिया में अपनी किस्म का सबसे बड़ा कारखाना है, अणु की अपरिमित शक्ति को व्यापारिक स्तर पर उन्मुक्त करने के लिए भारत द्वारा किये गये प्रथम साहसिक प्रयास का प्रतीक है। आइये हम बिजली तथा बिजली घर से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों का समाधान खोजें।

बिजली का उत्पादन कैसे होता है ?

हम एक स्विच खोल कर या बटन दबा कर बिजली बुलाने के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि इसे एक निश्चितप्राय घटना मान बैठे हैं। किन्तु यदि हमें यह समझना है कि अणु से कैसे और क्यों बिजली प्राप्त की जाती है, तो सबसे पहले हमें इस बात की कुछ जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये कि यह शक्ति या ऊर्जा के अन्य स्रोतों से किस प्रकार प्राप्त होती है।

हम जितनी बिजली का प्रयोग करते हैं, वह प्रायः सारी की सारी टर्बोजेनरेटर नामक यन्त्रों द्वारा उत्पादित होती है। ये यन्त्र यांत्रिक ऊर्जा को विद्युत् ऊर्जा या बिजली में परिवर्तित करने के साधन होते हैं। टर्बो-जेनरेटर में एक टर्बाइन होती है, जो एक चालक धुरी (ड्राइव शैफ्ट) द्वारा एक विद्युतीय उत्पादक यन्त्र (इलैक्ट्रिकल जेनरेटर) से सम्बद्ध होती है। तीव्र गति से प्रवाहित एक द्रव पदार्थ (पानी या भाप) टर्बाइन के फलकों पर आघात करता है, जिसके फलस्वरूप चालक धुरी तीव्र गति से घूमने लगती है। चालक धुरी के घूमने के फलस्वरूप जेनरेटर का आर्मेचर लट्टू की तरह तीव्रगति से चक्रवत घूमने लगता है। आर्मेचर एक चुम्बक के छोरों के बीच स्थित होता है, और जब उसके ताम्र-लपेट (कापर वाइण्डिग) चुम्बकीय क्षेत्र के आरपार जाते हैं, तो एक विद्युत् धारा उत्पन्न हो जाती है। यह विद्युत्धारा सम्प्रेषण-लाइनों में से प्रवाहित होकर जटिल वितरण संजालों में पहुँच जाती है, जो हमारे घरों, दफ्तरों, दुकानों और उद्योगों को बिजली सुलभ करते हैं।

टर्बाइन को संचालित करने वाले द्रव पदार्थ को वेग से ठेलने वाली ऊर्जा कहाँ से आती है ? इसके मूल स्रोत तीन हैं। जलशक्ति (जो या तो प्राकृतिक प्रपात द्वारा या बाँध द्वारा निर्मित जलाशय से निकले पानी द्वारा उत्पन्न होती है); रासायनिक ऊर्जा (जो कोयले और तेल जैसे वाष्प ईंधनों को भाप बनने के लिए जलने से उत्पन्न होती है); और आणविक ऊर्जा (यह भी भाप उत्पन्न करती है)।

अणु कितना शक्तिमान है ?

ऊर्जा के स्रोत के रूप में अणु और जीवाश्म ईंधन में कोई समानता नहीं। भारत में कोयले के ईंधन द्वारा बिजली उत्पन्न करने वाले किसी आधुनिक बिजली घर में प्रति किलोवाट-घण्टा बिजली के उत्पादन पर १.१६ पौण्ड कोयला जलाना पड़ता है। तारापुर आणविक बिजली घर में १.१६ पौण्ड ईंधन

से ८३,००० किलोवाट–घण्टा से भी अधिक बिजली उत्पन्न होती है।

आणविक ऊर्जा द्वारा ताप कैसे उत्पन्न होता है ?

अणुशक्ति की प्रक्रिया की व्याख्या करने का सर्वश्रेष्ठ ढंग यह है कि विखण्डन प्रक्रिया का वर्णन किया जाय।

आणविक विखण्डन के अन्तर्गत, एक भारी ईंधन अणु दो अपेक्षाकृत हल्के अणुओं में विभाजित हो जाता है, जिन्हें विखण्डन–उत्पाद कहते हैं। ये दोनों प्रायः अत्यन्त अस्थिर (रेडियोसक्रिय) होते हैं। अणु का विखण्डन होने पर, उसकी विखण्डित हो रही न्यष्टि के भीतर से दो या तीन उप-आणविक कण उन्मुक्त हो जाते हैं, जिन्हें न्यूट्रान कहते हैं। विखण्डन क्रिया के साथ-साथ ही, तत्काल गामा-रश्मियों के रूप में, जो एक्स–रे जैसी होती है, ऊर्जा का भी निस्सरण होता है।

यदि विखण्डित अंशों (विखण्डन उत्पादों और न्यूट्रानों) के संयुक्त पिण्ड को जोड़ा जाय, तो कुल योग मौलिक ईंधन-अणु के एकदम बराबर नहीं होगा। विखण्डन के फलस्वरूप अणु-पिण्ड का जो अंश 'लुप्त' हो जाता है, वह पिण्ड और ऊर्जा के समीकरण सम्बन्धी आइन्स्टीन के ऐतिहासिक सूत्र (ई० = एम० सी०,[2] जिसमें ई० = ऊर्जा एम० = पिण्ड और सी० = प्रकाश वेग) के अनुसार ऊर्जा में परिणत हो चुका होता है। इस ऊर्जा का अधिकांश भाग, ठीक उसी समय जब अति-ऊर्जस्वित अंश विखण्डित अंश अत्यन्त तीव्र गति से उड़ कर बिखरते और ईंधन में निहित अन्य अणुओं से टकराते हैं, ताप के रूप में प्रकट हो जाता है। एक आणविक रिऐक्टर (न्यष्टि प्रतिक्रिया वाहक) में उत्पन्न यह ताप ही विद्युत् उत्पादन के प्रारम्भिक बिन्दु के रूप में प्रयुक्त होता है।

आणविक विखण्डन उस समय होता है, जब कुछ भारी अणुओं के साधन आंतरिक भाग, अर्थात् न्यष्टि, पर उप-आणविक कण आघात करते हैं। वास्तव में, अणुओं की संरचना में एक सन्निहित अस्थिरता होती है जो बन्दी ऊर्जा की प्रतीक होती है। विभिन्न उप-आणविक कणों में से, न्यूट्रान ही उस ऊर्जा को उन्मुक्त करने वाला अधिकतम प्रभावकारी साधन होता है।

क्योंकि न्यूट्रान न केवल विखण्डन उत्पन्न करते हैं, बल्कि इस प्रक्रिया के दौरान उन्मुक्त होते हैं, इसलिए एक श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया सम्भव हो जाती हैं। यह श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया एक ऐसी प्रतिक्रिया होती है, जिसके अन्तर्गत, किसी एक गुण द्वारा उन्मुक्त न्यूट्रान एक अन्य अणु को विखण्डन प्रक्रिया से गुजरने के लिए उत्प्रेरित करता है, जिसके परिणामस्वरूप उससे भी आगे एक अन्य अणु का विखण्डन होता है, और यह क्रम आगे भी जारी रहता है। श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न करने और उसे स्वयंधारी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि आणविक ईंधन की न्यूतम मात्रा (महत्वपूर्ण पिंड) की स्थापना की जाय।

आणविक प्रतिक्रिया वाहक क्या है ?

आणविक या न्यष्टि प्रतिक्रिया वाहक (एटोमिक रिएक्टर) एक स्वयं-धारी प्रतिक्रिया श्रृंखला प्राप्त करने अर्थात् आणविक ईंधन 'जलाने' का एक उपकरण मात्र है। इसके मुख्य भाग निम्नलिखित हैं ;

१—आणविक ईंधन का कोड़ : अमेरिकी सरकार ने संवृद्ध यूरेनियम की पूर्ति करना स्वीकार कर लिया है, जो तारापुर में ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है। संवृद्ध यूरेनियम में अति-विखण्डनीय यूरेनियम–२३५ आइसोटोप की मात्रा उसकी उस मात्रा से अधिक होती है, जो प्रकृति में मिलती है।

२ —एक मंदक (माडरेटर) : विखंडन प्रक्रिया के अंतर्गत उन्मुक्त न्यूट्रोन प्रारम्भ में अत्यंत त्वरित गति से चलायमान होते हैं। किन्तु जब वे प्रतिक्रियावाहक

क्रोड में आस पास के पदार्थ से टकराते हैं, तो उनकी गति धीमी होने लगती है। गति का इस प्रकार मन्द होना वांछनीय होता है क्योंकि सामान्य रूप से मन्द गति गामी न्यूट्रान विखण्डन उत्प्रेरित करने में तीव्र गति गामी न्यूट्रानों की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होते हैं। वह पदार्थ जो न्यूट्रानों की गति शीघ्रता से मन्द करने में समर्थ हो और साथ ही न्यूट्रानों को आत्मसात करने के लिए प्रवृत्त न हो, मन्दक या 'मडरेटर' कहलाता है।

मन्दक के रूप में सामान्यतः पानी, 'भारी' पानी और ग्रेफाइट का प्रयोग सबसे अधिक होता है। तारापुर में पानी का प्रयोग किया जाता है।

३—शीतक प्रणाली : यह विखण्डन की दर, फलतः ताप जनन की दर, को नियामित करने का एक साधन है। शीतक प्रणाली की आवश्यकता ईंधन तत्वों को अतितप्त होने से रोकने, और ताप को प्रतिक्रियावाहक से एक वाष्पजनक प्रणाली तक पहुँचाने के लिए होता है। इस समय आणविक बिजली उत्पन्न करने वाले संयत्रों में सामान्यतः सबसे अधिक प्रयुक्त शीतक साधारण पानी है। तारापुर में 'जल क्वथनी' (ब्वायलिंग वाटर) किस्म के दो प्रतिक्रियावाहक हैं। इन्हें यह नाम देने का कारण यह है कि इनमें पानी को इसलिए उबलने दिया जाता है, ताकि प्रतिक्रियावाहक में वाष्प तैयार हो सके। कुछ अन्य किस्म के प्रतिक्रियावाहकों (जैसे चापानुकूलित जल प्रतिक्रियावाहकों) में पानी को इतने दाब या चाप के अन्तर्गत रखा जाता है, जो उसे प्रतिक्रियावाहक में उबलने से रोक सकने के लिए पर्याप्त हो। आणविक बिजलीघरों में प्रयुक्त अन्य शीतकों में से धातुएं (मुख्यतः सोडियम), गैस (मुख्यतः हीलियम) और कुछ जैव रसायन शामिल हैं।

४—नियंत्रण प्रणालीः अधिकांश प्रतिक्रियावाहकों को क्रोड़ (कोर) में सन्निविष्ट उन्मुक्त न्यूट्रानों की संख्या नियामित करके नियन्त्रित किया जाता है। सामान्यतः यह कार्य न्यूट्रानों को आत्मसात् करने वाले विशेष पदार्थों जिन्हें 'न्यूट्रान शोषक' कहा जा सकता है, के प्रयोग से सम्पन्न किया जाता है। आमतौर पर इन पदार्थों को समंजनीय छड़ों द्वारा, जिन्हें नियंत्रण छड़ें कहते हैं, प्रतिक्रियावाहक के भीतर प्रविष्ट कर दिया जाता है। इन छड़ों का प्रयोग सामान्य नियंत्रण के अतिरिक्त आपत्कालीन स्थितियों में प्रतिक्रियावाहक को शीघ्रता से बन्द करने के लिए भी होता है।

जब ईंधन भरा जाता है, उस समय अनेक नियंत्रण छड़ 'उपस्थित' ('इन') की स्थिति में होते हैं। जब प्रतिक्रियावाहक पूरी तरह भर चुका होता है, उस समय कुछ छड़ों को पूर्णतः और कुछ को अंशतः हटा कर उसे चालू कर दिया जाता है। छड़ों को अंशतः हटाने की कार्यवाही क्रमशः धीरे धीरे, और उन यन्त्रों के संकेत पर जो विखण्डन की दर की जाँच पड़ताल करते हैं, की जाती है। ज्योंही श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया स्वयंधारी बन जाती है, अंशतः हटाये गये छड़ों को स्थायी दशा वाली संचालन स्थितियाँ कायम रखने के लिए आवश्यकतानुसार खिसकाया-हटाया जाता है। अगर चालक बिजली के स्तर को बढ़ाना चाहता है, तो नियन्त्रण छड़ों को और अधिक हटा लिया जाता है। अगर वह प्रतिक्रियावाहक को बन्द कर देना चाहता है, तो सभी नियन्त्रण छड़ों को पुनः पूरी तरह प्रविष्ट कर दिया जाता है। बटन दबा कर अत्यन्त शीघ्रता से यह कार्य सम्पन्न करने के लिए विशेष उपकरणों की व्यवस्था होता है। इनके अलावा, नियंत्रित और बन्द करने वाले अनेक स्वतः चालित उपकरण भी लगे होते हैं।

तारापुर की मुख्य विशेषताएं क्या हैं ?

अरब सागर के तट पर विस्तृत बलुहे मैदान के बीच स्थित तारापुर बिजलीघर के अन्तर्गत कई विशाल, भूरे, घनाकार भवन शामिल हैं, जिनमें केन्द्रीय खण्ड १४५ फुट ऊंचा है। वहां दो आणविक प्रतिक्रियावाहक हैं, जिनमें से प्रत्येक २,००,००० किलोवाट क्षमता वाले टर्बो-जेनरेटर से युक्त है।

ये प्रतिक्रियावाहक फ्लास्क जैसे आकार वाले स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखे गये हैं, जिसका व्यास

६५ फुट और ऊँचाई १०० फुट है। इस्पात की दीवार ५ इंच मोटी है। यह पात्र चारों ओर से कंक्रीट की मोटी दीवारों से घिरा है। प्रतिक्रियावाहकों में से प्रवाहित होकर उच्च चाप वाली वाष्प दोनों टर्बाइनों के धुरों (शैफ्ट) को प्रति मिनट १,५०० चक्र की गति से घुमाती है। टर्बाइन से सम्बद्ध जेनरेटर बिजली उत्पन्न करते हैं, जो एक ग्रिड में संचारित होकर महाराष्ट्र और गुजरात, दोनों राज्यों को लाभान्वित कर रही है।

परियोजना और उसका क्रियान्वयन

स्वर्गीय प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने तारापुर में व्यक्तिगत रुचि ली और ७ दिसम्बर १९६३ को आयोजित एक समारोह की अध्यक्षता की। इस समारोह में अमेरिका और भारत के बीच एक समझौता हुआ जिसमें इस परियोजना के लिए ७.५ करोड़ डालर (५६.२५ करोड़ रुपये) के अमेरिकी ऋण की व्यवस्था हुई। समझौता पत्र पर अमेरिकी राजदूत चेस्टर बोल्स, भारत में अणुशक्ति कार्यक्रम के जनक, स्वर्गीय डा० एच० जे० भाभा और वित्तमन्त्रालय के तत्कालीन सचिव श्री एल० के० झा ने हस्ताक्षर किये।

तारापुर परियोजना डा० भाभा के उस सद्प्रयास का चरम बिन्दु थी, जिसका उद्देश्य अणुशक्ति के बहुमुखी लाभों की सहायता से भारत के आर्थिक विकास को तीव्रतर बनाना था। डा० भाभा की मृत्यु के बाद, तारापुर परियोजना का कार्य अणुशक्ति विभाग के अध्यक्ष डा० विक्रम साराभाई के नेतृत्व में अबाध गति से जारी रहा।

श्री एम० एन० चक्रवर्ती समग्र तारापुर परियोजना के प्रशासक और डा० महेश दयाल उसके प्रधान इंजिनियर रहे हैं।

अमेरिका की जेनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी और इण्टर्नेशनल जेनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी (भारत) को, जिन्हें संयुक्त रूप से 'आई० जी० ई० कहते हैं, परियोजना का मुख्य ठेकेदार नियुक्त किया गया। तारापुर के लिए आणविक प्रणाली की डिजाइन आई० जी० ई० ने सैनजोन्स, कैलिफोर्निया, स्थित अपने आणविक बिजली उपकरण विभाग में तैयार की। प्रतिक्रियावाहक के लिए पात्रों या पीपों का निर्माण अमेरिका की एक फर्म, 'कम्बशन इंजिनियरिंग' ने किया। परियोजना के परम्परागत पुर्जों के विस्तृत अभियंत्रण बिजलीघर के निर्माण कार्य की व्यवस्था के लिए आई० बी० ई० ने बेचटेल कार्पोरेशन को नियुक्त किया।

परियोजना के निर्माण का कार्य अक्तूबर, १९६४ में प्रारम्भ हुआ और १९६९ में पूरा हुआ। निर्माण कार्य की अधिकतम व्यस्त अवधियों में ६,५०० नर-नारियों ने दिन-रात, २४ घण्टे अबाध रूप से कार्य किया।

तारापुर के निर्माण में ११० हजार घन गज कंक्रीट १२ हजार टन इस्पात, ४४,००० टन सीमेण्ट, १,०५,००० घन गज बजरी या कंकड़, और ५२ ००० घन गज बालू प्रयुक्त हुआ। इसमें प्रयुक्त पाइपों और केबलों की कुल लम्बाई क्रमशः ४० मील और २५० मील थी।

क्या तारापुर संयंत्र अणुबम जैसा विस्फोट कर सकता है?

भौतिक दृष्टि से यह सर्वथा असम्भव है कि कोई विद्युत् संयंत्र अणुबम जैसा व्यवहार करे। अणुबम में, मूलतः विशुद्ध विखण्डनीय सामग्री के टुकड़े त्वरित गति से दब कर एक सघन पिण्ड के रूप में परिणत हो जाते हैं, जो निमिष मात्र के लिए उसी रूप में बँधे रहने के लिए बाध्य होता है, ताकि शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया उसमें से होकर प्रसारित हो जाय किन्तु आणविक बिजली घरों में प्रयुक्त प्रतिक्रियावाहकों में ये स्थितियां न तो होती हैं और न ही हो सकती हैं। वे अपेक्षाकृत घुलनशील ईंधन प्रयुक्त करते हैं; इनकी डिजाइन भिन्न होती है और उनकी संचालन-विधि भिन्न होती है।

आणविक बिजलीघर की सुरक्षा आणविक ऊर्जा को नियंत्रित करने पर नहीं, बल्कि उसके द्वारा उत्पन्न रेडियोसक्रिय सामग्री को अनुसीमित रखने पर निर्भर है।

आणविक बिजलीघर में उत्पन्न रेडियोसक्रिय सामग्रियां विखण्डन की 'राखें'—तथाकथित विखण्डन उत्पाद—हैं। ये विविध पदार्थों की मिश्रण हैं। उनमें से गैसें और कुछ ठोस पदार्थ होते है। निर्मित विखण्डन उत्पादों की मात्रा पिण्ड के रूप में कम—तारापुर में प्रतिदिन कुछ पिण्ड मात्र—और रेडियोसक्रियता के रूप में बहुत अधिक होती है।

तारापुर में इन रेडियोसक्रिय उच्छिष्ट अंशों को ठिकाने लगाने के उद्देश्य से 'रेडवेस्ट' नामक एक पृथक भवन में शोधित किया जाता है। कर्मचारियों और अड़ोस पड़ोस के क्षेत्रों को रेडियोसक्रिय विषाक्तता से सुरक्षित रखने के लिए असाधारण एहतियाती उपाय लागू किये गये हैं। संयंत्र से निकलने वाली भाप और हवा को भी ३६६ फुट ऊंची खुली चिमनी से बाहर निकाल कर वायुमण्डल में उन्मुक्त करने से पूर्व, अच्छी तरह शुद्ध कर लिया जाता है।

पृथ्वी पर रहने वाले समस्त प्राणी, जिनमें मनुष्य भी शामिल है, मुख्यतः सूर्य से निस्सरण के फलस्वरूप उत्पन्न रेडियोसक्रियता के अनुमिश्रित सागर में सदा से रहते आ रहे हैं। विकिरण की जितनी मात्रा को मनुष्य सहन कर सकता है, वह सामान्यतः ऊंचाई के अनुपात से बढ़ती जाती है। अमेरिका में बड़े-बड़े आणविक बिजलीघरों के सम्बन्ध में प्राप्त अनुभवों से यह संकेत मिलता है कि इस प्रकार के कारखानों में काम करने वाले व्यक्ति को उस व्यक्ति की अपेक्षा कम विकिरण का सामना करना पडता है, जो ४०० फुट ऊँची पहाड़ी पर रहता है।

तारापुर से भारत को क्या लाभ होगा ?

तारापुर बिजलीघर भारत के अधिकतम उद्योग-प्रधान क्षेत्रों में से एक को लाभान्वित कर रहा है। गुजरात और महाराष्ट्र, दोनों ही राज्यों में, पहले दो दशाब्दों के दौरान कई बड़ी-बड़ी योजनाएं लागू होने के बावजूद, बिजली की मांग उसकी पूर्ति से बहुत अधिक है। जब कभी वर्षा अच्छी नहीं होती, और उस क्षेत्र की जल विद्युत परियोजनाओं के जलाशय सूख जाते है बिजली के उपयोग में जबर्दस्ती कटौती करनी पड़ती है। इन कटौतियों के कारण राष्ट्रीय आय को भारी क्षति हुई है, और समय समय पर बेरोजगारी का दौर प्रारम्भ होता रहता है। १९६९ के ग्रीष्म में तारापुर बिजलीघर चालू हो जाने से उस क्षेत्र में उस समय लागू सभी कटौतियां समाप्त कर दी गयी। जल-विद्युत के विपरीत, आणविक बिजली वर्षा पर निर्भरता से मुक्त है। इसलिए तारापुर बिजलीघर पश्चिमी भारत में रहने वाले करोड़ों लोगों को नियमित और विश्वसनीय रूप से बिजली सुलभ करने वाले साधन का प्रतीक है।

तारापुर बिजलीघर द्वारा उत्पन्न ४,००,००० किलोवाट बिजली महाराष्ट्र और गुजरात में उद्योगों के और अधिक विकास में भारी योग प्रदान कर रही है। अधिक मात्रा में बिजली उपलब्ध होने से खेती को भी बहुत लाभ पहुँच रहा है। ग्रामीण विद्युतीकरण तीव्र गति से प्रगति कर रहा है, जिससे किसान लोग पम्प-सेटों द्वारा अपने खेत सींचने में समर्थ हो रहे है। इस समय कितने ही किसान पहले की एक फसल के स्थान पर साल में तीन-तीन फसलें उत्पन्न करने लगे है गांवों में हजारों नये उद्योग स्थापित हो रहे हैं।

सार संकलन

● संकलित

१. प्रलयंकर जीवाणु

हमारी शताब्दी के पहले दशक में ब्रितानी विश्व-विख्यात कथाकार एच० जी० वेल्स ने एक उपन्यास लिखा—वार आफ द वर्ल्डस। मंगल के विचित्र निवासियों से मानवता को बचाने के तमाम उपाय विफल हो गये तो पृथ्वी के वैज्ञानिकों ने उस पर कुछ ऐसे जीवाणुओं से हमला किया जो अत्यन्त घातक थे। मंगलवासी उस हमले के सामने असहाय हो गए, सारे के सारे अपने प्राणों से हाथ धो बैठे।

वेल्स की तेज आंखें भविष्य में देख सकती थीं। जीवाणुओं-रोगाणुओं को संहारक अस्त्र बनाने की सम्भावना उन्हें तभी दीख गई थी। बाद के वर्ष गवाह हैं कि उनकी बात अक्षरशः सच निकली। १९४६ में अमरीकी विज्ञान पत्र "साइंस इलस्ट्रेटेड" के संपादकीय निदेशक ने एक रेडियो प्रसारण में कहा : "बाट्यूलिनस नामक रसायन का एक घन इंच टुकड़ा अमेरिका और कैनाडा की तमाम आबादी को खत्म करने के लिये पर्याप्त है"। उनका दावा गलत नहीं था। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान रसायन को विशुद्ध रूप में बनाने के उपाय खोज निकाले गए थे। वीयत-नाम के संघर्ष में वीएतकांक की छापामार लड़ाई से तंग आकर अमेरिका ने पेड़ों की पत्तियाँ नष्ट करने और पीने के पानी को दूषित करने वाले रसायनों का इस्तेमाल किया। सारे संसार ने अमेरिका के इस कदम का विरोध किया। १९६६ में सात नोबेल पुरस्कार सम्मानित वैज्ञानिकों ने अनेक अन्य विख्यात अमेरिकी वैज्ञानिकों के साथ मिल कर तत्कालीन राष्ट्रपति लिंडन जानसन से अनुरोध किया कि वह अपनी जैविक रासायनिक युद्ध-नीति पर पुनर्विचार करें।

जैविक-रासायमिक युद्ध कितना भयानक, कितना विनाशकारी हो सकता है, इसका पता प्रसिद्ध ब्रितानी विज्ञानपत्र "साइंस जर्नल" के संपादक राबिन क्लार्क की पुस्तक 'वी आल फाल डाउन" को पढ़कर लगता है। पिछले महीनों के भीतर प्रकाशित विज्ञान साहित्य की यह एक महत्वपूर्ण कृति है। अपनी पुस्तक में क्लार्क ने जैविक-रासायनिक अस्त्रों का विषद वैज्ञानिक विवेचन करने के साथ साथ मानवीय और नैतिक मूल्यों के प्रश्न उठाये हैं, राजनेताओं के पाखंड पर गहरे आघात किये हैं, उनसे मानवता की रक्षा की अपील की है।

संसार में जैविक-रासायनिक अस्त्र सम्बन्धी अनु-सन्धान बड़े रहस्यमय, गोपनीय ढंग से किया जाता है। अमेरिका में उसे "प्रतिरक्षा-जैविकी" नाम दिया गया है। विख्यात विज्ञान-लेखक कलिंग पुरस्कार-विजेता लार्ड रिशी केल्डर ने एक बार एक अमेरिकी प्रतिरक्षा जैविक.विद् से पूछा कि वह अपनी अनुसन्धान शाला में क्या खोज निकालना चाहते हैं, तो जवाब मिला, 'शरीर की रासायनिक क्रियाओं का इलाज'। अनेक अन्य युद्धास्त्रों की तरह इसके अनुसन्धान में एक तर्क और दिया जाता है : शत्रु के जैविक-रासायनिक आक्रमण से बचाव के लिये यह अनुसन्धान आवश्यक है। ब्रिटेन पार्टन डाउन स्थित 'सूक्ष्म जैविक अनु-सन्धान संस्थान' के निदेशक डा० गार्डन स्मिथ का कहना है : 'अनुसन्धान के दो लक्ष्य हैं—जैविकी युद्ध से ब्रिटेन की जनता और सेनाओं की होने वाली हानि का अंदाजा लगाना और ऐसे आक्रमण में बचाव के उपायों का खोज करना।'

जैविक युद्ध की सबसे बड़ी खूबी है 'आसानी'।

जैविक अस्त्र आखिर हैं क्या ? विभिन्न रोग पैदा करने वाले जीवाणु, जिनके उत्पादन की विधियाँ सभी को मालूम हैं। तब उन्हें शत्रु भूमि पर डालने का सवाल उठता है। यह काम भी उतना ही आसान है। मामूली स्प्रे उपकरण से बखूबी काम चल जाता है। स्प्रे से फैलाये गये रोग-जीवाणु हवा में मिल जायेंगे और सांस लेने पर शरीर के भीतर पहुँच जायेंगे और संक्रामक रोग बड़ी आबादी का सफाया कर डालेगा। इस सब में बहुत खर्च भी नहीं होता। छोटे राष्ट्र भी उन्हें अपना सकते हैं। इनकी तुलना में परमाणु अस्त्रों या प्रक्षेपास्त्रों की बात करें तो जैविक-अस्त्रों की रोमांचक भयानकता स्पष्ट हो जाती है। कुछ घण्टों के भीतर शत्रु-भूमि की सारी हवा दूषित हो जायेगी और मृत्यु का तांडव शुरू हो जायेगा।

इतिहास :—जैविक-रासायनिक युद्ध का विचार अपने में नया नहीं। हजारों साल पहले मनुष्य ने 'जहर' का आविष्कार किया था, जो एक रसायन है। विष देकर मार डालने की घटनायें विश्व के इतिहास में भरी पड़ी है। भोजन या पीने के पानी में जहर मिला कर किसी नगर की जनता के विनाश की घटनायें भी मौजूद हैं। प्राचीन भारत में 'विषकन्याएं' जैविक अस्त्र ही थीं। शत्रु के नगर के गिर्द घेरा डाल कर नगर में प्लेग फैला कर आबादी का खात्मा कर देने के प्रसंग भी ज्ञात हैं। प्लेग की भयानकता का अन्दाजा सभी को है। लेकिन हमारी शताब्दी से पहले इतने विशाल पैमाने पर जैविक रासायनिक अस्त्रों के इस्तेमाल की बात नहीं सोची गई। मास्को इन्स्टीट्यूट के कर्नल आदम सिकोविन के शब्दों में "आज की मान्यता है कि जैविक युद्ध सबसे अधिक प्रभावशाली है। इसका कारण केवल जैविक अस्त्रों का घातक गुण नहीं है, बल्कि सूक्ष्म जैविकी, संक्रामक रोग-विज्ञान और मौसमविज्ञान की प्राप्ति है।'

जैविक युद्ध के एजेन्ट :—लगभग १६० संक्रामक रोगों का प्रभाव आदमी पर होता है। जैविक युद्ध में इन्हीं का सहारा लिया जा सकता है। कई तरह के रोगाणु उन्हे पैदा करते हैं। यह संभव नहीं दीखता कि किसी नयी किस्म के अधिक संक्रामक रोगाणुओं का पता लग सकेगा। लेकिन इन्हीं रोगाणुओं की नई-नई किस्में पैदा की जा सकती हैं। उनके गुणों में परिवर्तन लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए 'पास्चुरेला पेस्तिस' नामक एक रोगाणु की, जो प्लेग फैलाता है, १४० विभिन्न किस्में १६५६ तक मालूम हो चुकी थीं।

मनुष्यों पर जैविक युद्ध एजेन्ट का प्रभाव तीन प्रकार से आंका जा सकता है : रोग की छूत लगाने के लिये अनिवार्य एजेन्टों की संख्या, आदमी के शरीर पर उसका प्रभाव और संक्रामक रोग फैलाने की उसकी क्षमता। इन तीनों बातों को ध्यान में रखते हुये वैज्ञानिक अपने काम में लगे हैं। रोगाणु आदमी पर कितना घातक प्रभाव डाल सकते हैं इसका कुछ अन्दाजा जानवरों पर किये गये परीक्षणों से लग सकता है। पाँचवें दशक में आस्ट्रेलिया में खरगोशों की संख्या बेतहाशा बढ़ते-बढ़ते ५० करोड़ हो गई, फिर भी उनकी संख्या रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। हर साल खरगोंशों से १० करोड़ पाउण्ड की हानि होती। इसका क्या इलाज हो सकता था? १६५० में 'मिक्सोमैटोसिस' नामक एक रोगाणु खरगोशों के बीच पहुँचा दिया गया। कुछ महीनों के भीतर ६० प्रतिशत खरगोश मौत के शिकार हो गये। दो साल बाद वह समस्या यूरोप में उठी, तो यही रोगाणु इस्तेमाल किया गया। साल भर के भीतर-भीतर यह रोग फ्रांस, जर्मनी, हालैण्ड, बेल्जियम, और स्विट्जरलैण्ड में फैल गया और ६० से ६० प्रतिशत खरगोश उसके शिकार बने।

वैज्ञानिक अब नये किस्म का प्लेग फैलाने वाले रोगाणुओं के तलाश में हैं। बाच्यूलिनस का उल्लेख पहले किया जा चुका है, लेकिन वह भी एक सीमा से ज्यादा खतरनाक नहीं। वैज्ञानिकों ने उससे कहीं अधिक घातक रोगाणु खोजे हैं। राबिन क्लार्क के अनुसार अगर एक ग्राम मुर्गी के भ्रूण ऊतक में क्यू बुखार के जीवाणु का टीका लगा दिया जाये तो वह दस लाख से अधिक मनुष्यों को मौत के घाट उतारने को

काफी होगा। इसी प्रकार एक रोग है एंथ्रैक्स, जिसके कारण मनुष्यों और पशुओं में कैंसर जैसा रोग हो जाता है। ब्रिटेन ने एक टापू पर इसका परीक्षण किया। टापू की सारी भेड़ें मर गयीं और अब सौ साल बाद ही दोबारा आदमी या पशु इस टापू पर बस सकेंगे।

रासायनिक युद्ध के एजेन्टः—जैविक अस्त्रों के अलावा सभी राष्ट्र रासायनिक अस्त्रों पर भी परीक्षण कर रहे हैं। अमेरिका और सोवियत संघ दोनों के पास काफी परिमाण में रासायनिक अस्त्र हैं। जर्मनी इस दिशा में बढ़ रहा है। उबकाई और आँसू लाने वाली गैसें, गला फँसा देने वाली गैसें, धमनियाँ फाड़ने वाली गैसें, घाव पैदा करने वाले एजेन्ट, दिमाग पर असर और शरीर को सुन्न कर देने वाली गैसें सभी रासायनिक अस्त्र हैं। ये अस्त्र आदमी को सुला देते हैं, अंधा या बहरा कर देते हैं और कभी-कभी लकवा पैदा कर देते हैं। उबकाई, पेचिश, साँस लेने में कठिनाई, लगातार रोना या बिना रुके हँसना, भयानक भय और आतंक, घोर निराशा व उदासी, पागलपन भी इनसे पैदा होते हैं और मृत्यु तो है ही।

विभिन्न गैसों के इस्तेमाल से पहले विश्वयुद्ध में लगभग आठ लाख आदमी मरे थे, दूसरे विश्वयुद्ध में ये भयानक गैसें इस्तेमाल नहीं की गयीं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उनका उत्पादन भी नहीं हुआ। उभय पक्षों ने उनका खूब उत्पादन किया। जर्मनी ने चौथे दशक में मस्तिष्क को निष्क्रिय बना देने वाली गैसें बनायी थी लेकिन उनका प्रयोग युद्ध में नहीं किया इंगलैड ने एक 'वी एजेंट' बनाया। यह इतना भयानक है कि अगर यह त्वचा को छू भर ले तो मृत्यु निश्चित है। अमेरिकी 'वी-एक्स' इससे भी ज्यादा भयानक है। मार्च १९६७ में इसका परीक्षण किया गया तो परीक्षण स्थल से ४८ किलोमीटर दूर चरती ६,००० भेड़ें मौत की गिरफ्त में आ गयी थीं। सभी देशों में प्रतिरक्षा के नाम पर इससे भी अधिक घातक गैसों की खोज जारी है।

हानियां

जैविक रासायनिक युद्ध के अनेक खतरे है। उसके परिणाम भी पूरी तरह मालूम नहीं होते। कोई नहीं जानता कि शत्रु-भूमि पर जैविक रासायनिक युद्ध छेड़ने का असर क्या होगा? शायद वे रोगाणु वांछित दिशा में काम ही न करें। शायद उनसे इतने भीषण संक्रामक रोग सारे संसार में फैल जायें कि सारी मानवता की सत्ता का संकट सामने आ जाये।

जैविक-रासायनिक आक्रमण से शत्रु देश की अर्थ-व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट करना बिलकुल संभव है। एक सोवियत वैज्ञानिक ने एक बहुत खतरनाक किस्म का गेहूँ रोगाणु खोज निकाला है, जो अमेरिकी गेहूँ पर खासतौर पर असर करता है। अगर वह रोगाणु अमेरिकी फसलों पर छोड़ दिया जाये तो क्या होगा?

उपाय

इस आक्रमण से बचने का उपाय क्या है? टीके, गैस मास्क, रोगाणुओं से रक्षा करने वाले (अंतरिक्ष यात्रियों जैसे) वस्त्र, रोगाणु से बचाने वाले आश्रय-स्थल और रोगाणुओं के आक्रमण के बाद उपचार। लेकिन बड़े पैमाने पर आक्रमण हो तो इनमें से कोई भी काम नहीं आयेगा। इसलिए इसे सबसे घटिया किस्म की सामरिक निर्दयता कहा गया है। लेकिन कुछ लोग इसे 'अधिक मानवीय' कहने लगे है। पैटागन के परामर्शदाता डा० क्लिफर्ड एफ० रासवीलर का कथन हैः बड़ी संख्या में आदमियों को मारने का इससे अच्छा तरीका नहीं हो सकता। रोगाणु मानव शरीर को बदशक्ल नहीं करते। इसीलिए यह युद्ध अधिक मानवीय है, अधिक सदय"।

परिषद् का पृष्ठ

१ विज्ञान परिषद् अनुसन्धान गोष्ठी

५७ वें इण्डियन साइंस कांग्रेस के अवसर पर ३ जनवरी को खडगपुर में विज्ञान परिषद् अनुसन्धान गोष्ठी का विशिष्ट अधिवेशन सम्पन्न हुआ जिसका सभापतित्व डा० देवधर ने किया। इस गोष्ठी में ट्रा॰बे स्थित एटामिक इनर्जी सेंटर के लब्धप्रतिष्ठ रसायनज्ञ डा० जगदीशशंकर ने अध्यक्षपदीय भाषण दिया। उन्होंने अपने मुद्रित भाषण में भारत में परमाणु ऊर्जा की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों से समागत वैज्ञानिकों ने उपस्थित होकर इस अधिवेशन की शोभा बढ़ाई। ध्यान रहे कि इस अधिवेशन की समस्त कार्यवाही राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से ही सम्पन्न होती है। उपस्थित वैज्ञानिकों की सूची निम्नांकित है।

डा० देवेन्द्र शर्मा (गोरखपुर विश्वविद्यालय) पुरूषोत्तम दास स्वामी (उदयपुर) गुरुबचन सिंह (बनारस विश्वविद्यालय) डा० सतीश श्रीवास्तव (भुवनेश्वर) डा० सतीशचन्द्र त्रिपाठी (गोरखपुर विश्वविद्यालय) डा० सत्यप्रकाश (इलाहाबाद) रा० सिंह हिमांशु (जमशेदपुर) एल० शर्मा (जमशेदपुर) कैलाश प्रसाद शर्मा (बिहार विश्वविद्यालय), सुधांशुकुमार जैन (कलकत्ता) जी०एम० पण्ढेरकर (विक्रम विश्वविद्यालय) तेजनारायण (लखनऊ वि० वि०) डा० रामदुलारे श्रीवास्तव (लखनऊ विश्वविद्यालय) राजेन्द्रप्रसाद (छपरा) राजेन्द्र प्रसाद शाही (छपरा) एस० एन० श्रीवास्तव (आगरा), शारदा प्रसाद सक्सेना (पूना), सतीशकुमार अग्रवाल (इलाहाबाद वि० वि०) शशिभूषण (गोरखपुर विश्वविद्यालय) बी०पी० यादव (लखनऊ विश्वविद्यालय) कृष्णकुमार लढ़ा (कलकत्ता विश्वविद्यालय) प्रभातकुमार सिंह (जमशेदपुर), सुभाष चन्द्र कुण्ड दास (मेदिनीपुर), डा० गौरीशंकर मिश्र (जबलपुर वि०वि०, बद्री विशाल अग्रवाल (इलाहाबाद वि० वि०), रमाशंकर सिंह (हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), भानुदत्त पाठक (जयपुर), यतीन्द्र स्वरूप रावत (खडगपुर)।

विज्ञान क्लब द्वारा व्याख्यान माला का आयोजन

लोकोपयोगी विषयों पर वैज्ञानिक व्याख्यानों की व्यवस्था के हेतु विज्ञान परिषद् के अन्तर्गत विज्ञान क्लब की स्थापना की गई है। इसकी सदस्यता सभी विज्ञान प्रेमियों के लिये निर्बाध रूप से खुली हुई है। यह निश्चय हुआ है कि प्रत्येक मास कम से कम एक व्याख्यान परिषद् भवन में आयोजित हो। इसके लिये सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों एवं मनीषियों से सम्पर्क स्थापित किया जाय।

इस व्याख्यान माला के अन्तर्गत प्रथम व्याख्यान परिषद् के भूतपूर्व सभापति डा० सत्यप्रकाश ने दिया। यह व्याख्यान १६ जनवरी को ४½ बजे सायंकाल परिषद् भवन में हुआ। इस अवसर पर ५० से अधिक परिषद् के सदस्य छात्र एवं प्राध्यापक उपस्थित थे। डा० सत्यप्रकाश जी के व्याख्यान का विषय था "भारत को वर्तमान परिस्थिति में तरुण वैज्ञानिक का सहयोग।"

डा० सत्य प्रकाश ने अपने ७० मिनट के भाषण में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि वैज्ञानिक के दो दल माने जा सकते हैं तरुण तथा प्रौढ। किन्तु तरुण कौन है इसमें परिवर्तन होते रहे हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में १६२१ ई० के आस पास जो भी अध्यक्ष नियुक्त हुये उनकी आयु २५–३० वर्ष की थी

अब तो ३०–३१ वर्ष की आयु में अध्यापक बनते हैं तब सारा विश्वविद्यालय ही तरुण था। जो वैज्ञनिक भारत में कार्य कर रहे थे उनकी शिक्षा-दीक्षा विलायत में हुई थी फलतः उनके द्वारा जो भी शोध कार्य किया गया वहपश्चिमी परम्परा से प्रभावित था। धीरे धीरे देश में कई संस्थान बने जिनमें उपयोगी कार्य हुये। रमन, कृष्णन आदि के कार्यों से सभी परिचित हैं। उस समय अध्यापकों को शोध का न तो अवसर प्राप्त था और न वे इसके लिये सोच ही पाते थे।

अब इतना अधिक शोध हो रहा है और इतनी प्रतिस्पर्धा है कि वैज्ञानिक यह शिकायत करने लगे हैं कि उन्हें अवसर ही नहीं प्रदान किया जाता कि वे कार्य करें। भला कार्य करने वाले को कौन रोक सकता है। क्या यह सच नहीं है कि पहले की अपेक्षा अधिक सुविधायें प्राप्त हैं। शायद ही कोई ऐसा शोध कर्त्ता हो जिसे छात्रवृत्ति न मिलती हो और शायद ही ऐसी प्रयोगशाला हो जिसे अनुसन्धान-सहायता प्राप्त न हो। किन्तु दुख है कि भारत में उच्चकोटि का कार्य नहीं हुआ। आज के तरुण विदेश जाकर कार्य करना चाहते हैं और धन कमाना चाहते हैं किन्तु जब वे अपने देशों में आते हैं तो हाथ पर हाथ धरे नजर आते हैं। उन्हें कौन रोकता है।

डा० सत्यप्रकाश ने अन्त में यह कहा कि तरुण अत्यन्त लोचशील होते हैं। वे रुढ़ियों के प्रति विद्रोह करें और कठिन कार्य करके देश के लिये गर्व का विषय बनें। ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जहाँ पति-पत्नी, बाप-बेटा तथा साथी-साथी ने मिलकर गौरव-पूर्ण कार्य किये हैं। आज के तरूण वैज्ञानिक की यह शिकायत निस्सार है कि उन्हें उन्नति के अवसर नहीं दिये जा रहे। वे अपने से बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त करते हुये अपनी कर्तव्यपरायणता का परिचय दें।

पुस्तक समीक्षा

विज्ञान प्रगति : नवम्बर १६६६ बाल विशेषाँक। मूल्य ५० पैसे। प्रकाशक—कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली।

'बाल दिवस' के अवसर पर प्रकाशित "विज्ञान प्रगति" का यह विशेषांक अत्यन्त आकर्षक, चित्रों से पूर्ण एवं बच्चों के लिए पठनीय वैज्ञानिक सामग्री से पूर्ण है। इसमें १४ लेखों के अतिरिक्त 'करो और देखो', आविष्कारों की कहानी, गणित पहेलियाँ, दिमागी कसरत, क्या-क्यों-कैसे, सही उत्तर बताइए जैसे स्तम्भों की योजना है। कुल मिलाकर ४८ पृष्ठों में यह सामग्री संकलित है। लेखों में आग लगाने वाला शीशा, कार्क की कहानी, कम्प्यूटर, अद्भुत पेड़-पौधे, अनोखे जन्तु, चन्द्र विजय के बाद, पौधों का रसोईघर, टेलीविजन, तुम भी चांद पर जाओगे, स्टेनलेस स्टील कैसे बना, चमत्कारी लेसर किरणें, जब सूर्य पवन से हारा, हम क्यों पानी पीते हैं शीर्षक हैं। लेखों का विस्तार अधिक नहीं है जिससे वे रोचक बन गये हैं। मोटे टाइप की छपाई बच्चों के लिये पढ़ने में सरलता उत्पन्न करने वाली है।

सभी दृष्टि से यह अंक उपयोगी बन पड़ा है। आशा है छोटी कक्षाओं के बालक इससे पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं।

आविष्कारों का आवाहन : लेखक-माया प्रसाद त्रिपाठी, प्रकाशक-तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी। पृष्ठ संख्या १५०। मू० ३ रुपये। प्रथम संस्करण १६६६।

यह २२ वैज्ञानिक लेखों का संकलन है जिसमें "समस्त देश, काल वा उनसे भी अनवच्छिन्न सूक्ष्मातिसूक्ष्म, प्रतिब्रह्माण्ड, अतीन्द्रिय, अलौकिक को मानव मस्तिष्क में अँटा लेने की एक आयामहीन, परिणामहीन किन्तु सत्य और तर्क प्रतिष्ठ चेष्टा" की गई है। इसके पूर्व है विज्ञान के नये सत्य नये वादे नामक कृति के द्वारा श्री त्रिपाठी जी विज्ञान के लेखन-क्षेत्र में पदार्पण कर चुके हैं। उनका मौलिक चिन्तन, एवं उनका गहन अध्ययन पुस्तक में स्थाम-स्थान पर झलकता मिलेगा। उनकी भाषा अत्यन्त शास्त्रीय एवं भावों के अनुरूप है। श्री त्रिपाठी की शैली अनेकानेक विज्ञान के लेखकों के लिये पथ-प्रदर्शन का काम कर सकती है।

इन समस्त निबन्धों में आधुनिक मनुष्य के समक्ष प्रस्तुत अनेक समस्याओं का बारम्बार संकेत एवं उनका विवेचन दिया गया है। लेखक की दृष्टि जीवन कृषि, पौराणिक आख्यान-सभी ओर कार्यशील है। अगले पचास वर्षों में ही नहीं वरन् १०० वर्षों या बाद में आने वाले संसार की वे स्थान-स्थान पर स्मृति दिखाते चलते हैं। अथाह की थाह-काल यान्त्रिकीय शीर्षक लेख में श्री त्रिपाठी जी ने अपनी मौलिक शोधों को वैज्ञानिकों की तुला पर खरा उतरने के लिये प्रस्तुत किया है।

आशा है भारतीय वैज्ञानिक इस पुस्तक के अध्ययन के उपरान्त श्री त्रिपाठी जी की विलक्षण प्रतिभा की दाद देंगे।

सम्पादकीय

युवा वैज्ञानिकों में मठाधीशों के प्रति विरोध भावना

खडगपुर के ५७ वें भारतीय वैज्ञानिक सम्मेलन के एक वैज्ञानिक संवाददाता ने लिखा है कि नई पीढ़ी के वैज्ञानिक समुदाय में वर्तमान वैज्ञानिक मठाधीशी के विरुद्ध गहरा विरोध है। युवा वैज्ञानिक केवल वेतन के मामले में ही चिन्तित नहीं हैं वरन वे भारतीय विज्ञान में विद्यमान एक पुरानी गुटबन्दी से भी परेशान हैं। भारतीय वैज्ञानिक क्षेत्र में जो लोग गुटबन्दी से बाहर हैं उन्हें वहिष्कृत माना जाता है। वे युवा वैज्ञानिकों द्वारा किये गये महत्वपूर्ण अनुसन्धानों को मान्यता नहीं देते और उनके अनुसंधान परिणाम महत्वपूर्ण भारतीय वैज्ञानिक पत्रिकाओं में नहीं छप पाते। जब कभी कोई कनिष्ठ वैज्ञानिक महत्वपूर्ण अनुसन्धान करता भी है तो उसका लाभ स्वयं उसे प्राप्त न होकर उस वरिष्ठ वैज्ञानिक अथवा विश्वविद्यालय को मिलता है जिसकी प्रयोगशाला से वह कनिष्ठ वैज्ञानिक सम्बन्धित होता है।

युवा वैज्ञानिकों का यह भी आरोप है कि बड़े वैज्ञानिकों की गुटबन्दी का यहाँ तक प्रभाव पड़ता है कि अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सम्मेलनों के प्रतिनिधित्व का अवसर भी उन्हें नहीं दिया जाता। यही नहीं आर्थिक सहायता भी उन्हें नहीं दी जाती। बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक संस्थाओं का संरक्षण पुराने लोगों के ही हाथ में है। वे विशिष्ट योजनाओं को प्रोत्साहित नहीं करते और न सरकार से उनके लिये अनुदान की सिफारिश ही करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि विदेश से लौटने वाले युवा वैज्ञानिक पुनः विदेश को लौट जाने के लिये बाध्य होते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसमें सच्चाई का अंश काफी है। यद्यपि पुराने वैज्ञानिक सफाई देते हैं कि वे सभी सम्भव प्रकारों से युवावैज्ञानिकों को प्रश्रय दे रहे हैं किन्तु वह दावा थोथा है। उनके अन्तःकरणों में छल-कपट व्याप्त है। वे अपने कार्यकाल में अपने से कम वय वाले शोधकर्ताओं को ख्याति का द्वार नहीं झँकाना चाहते। वे स्वयं अपने पदों को बचाते हुये यत्रतत्र उपदेश देते प्रतीत होते हैं। अन्यथा वैज्ञानिक जगत में वास्तविकता का अर्थ है करके दिखा देना। यदि युवा वैज्ञानिक वास्तव में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं तो उनके लिये स्थान देना चाहिए। उन्हें अधिक काल तक इस संसार में रहना है अतः उनके अहं की तुष्टि होनी चाहिए किन्तु आँख मूँद कर नहीं विवेक और अनुभव से युवा पीढ़ी को तुष्ट करके भारत की गरिमा मंडित करना कोई कठिन काम नहीं।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० |3|5|

भाग 108 | पौष 2028 विक्र०, 1892 शक | नवम्बर-दिसम्बर 1971 | संख्या 11-12

ब्रह्माण्ड क्या है? एक विवेचन

□ रवीन्द्र कुमार दुबे

ब्रह्माण्ड की कहानी उन सब कहानियों में सबसे लम्बी व प्राचीन है जो अब तक मनुष्य ने लिखी या कही हैं, परन्तु फिर भी अब तक हमारे सामने उस कहानी का न आदि है, न अंत। आप कहेंगे कि फिर यह आदि-अंत हीन कहानी कैसी? हाँ, वास्तव में यह एक ऐसी ही कहानी है जिसके मध्य का भाग हमें ज्ञात है, पर आदि व अंत के विषय में अभी हम कल्पना का ही सहारा ले सकते हैं, सम्भव है कि इनमें से कोई कल्पना ही वस्तु स्थिति हो, परन्तु अभी तक हम उसका पूर्णतः सत्यापन करने में समर्थ नहीं हो सके हैं।

प्रारम्भ से ही मनुष्य को अपनी इस पृथ्वी, चाँद की शीतल चाँदनी, सूर्य की ऊष्मा, दूर बिखरे हुए नन्हें नन्हें सितारों के सौन्दर्य, आदि के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता थी, और वस्तुस्थिति के ज्ञान के अभाव में विभिन्न कल्पनाओं का सहारा लिया जाता था, जैसे कि ईसाई धर्म में पहले यह बात बहुत प्रचलित थी कि हमारी पृथ्वी ईसा से 4004 वर्ष पूर्व अक्टूबर माह के एक दिन अचानक किसी ईश्वरीय कृपा से अस्तित्व में आई, प्रातः या सायं, यह तो कहीं लिखा नहीं मिलता और न ही उन लोगों का इस बारे में कोई मत था कि कहाँ से और क्यों पृथ्वी अस्तित्व में आई। इसी भाँति इतिहास में हम इस विषय में अनेक विचित्र प्रकार की कल्पनाएं भरी पाएंगे। फिर धीरे-धीरे मनुष्य के मस्तिष्क के विकास के साथ साथ मनुष्य के ज्ञान में प्रगति होती गई और ब्रह्माण्ड के विषय में मनुष्य के कुछ निश्चित मत बनते गए। अबसे कुछ शताब्दियों पूर्व सर्व-साधारण को इस लम्बी कहानी का जो पहलू इस समय हमारे सामने है उसके बारे में काफी ज्ञान हो गया था। शेक्सपियर के साहित्य में अनेक स्थानों पर ब्रह्माण्ड के विषय में आश्चर्य-जनक तथ्यों का उल्लेख मिलता है।

तो इस बात को और आगे न बढ़ाकर अब मैं आपको इस कहानी का जो पहलू हमारे सामने है, उस पर ही ले

आता हूँ। इस समय हम अपने पूर्ण ब्रह्माण्ड को चार भागों में बाँट सकते हैं, (1) नक्षत्र (स्टार)—आकाश में नन्हें नन्हें से दिखने वाले अनेकानेक पिण्ड जिनमें तीव्र क्रियाओं के कारण अत्यधिक ऊष्मा उत्पन्न होती है, हमारा सूर्य भी उनमें से एक छोटा नक्षत्र है, परन्तु क्योंकि यह हमारे अति समीप है अतः यह हमें आकार में अन्य नक्षत्रों से बड़ा दिखाई देता है तथा साथ ही इससे अत्यधिक ऊष्मा हमारे पास आती है। (2) ग्रह (प्लैनेट) नक्षत्रों के आसपास गोल चक्कर लगाने वाले यह पिण्ड हमारी पृथ्वी की भाँति वायुमण्डल सहित व वायुमण्डल रहित दोनों ही प्रकार के होते हैं, इनमें से अनेक पर हमारी पृथ्वी की हीभाँति जीवधारी होने की सम्भावना है। प्रत्येक नक्षत्र के आसपास घूमने वाले ग्रहों की संख्या अनेक है। हमारे सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की ही भाँति नौ ग्रह घूम रहे हैं। (3) उपग्रह (सैटेलाइट)—यह वायुमण्डलहीन पिण्ड ग्रहों के आसपास घूमते हैं जैसे कि पृथ्वी के आस-पास चन्द्रमा। किसी ग्रह के लिए उपग्रहों की संख्या निश्चित नहीं है, अनेक ग्रह ऐसे हैं जिनका कोई उपग्रह नहीं है जबकि अन्य अनेकों के दस से भी अधिक उपग्रह है। पृथ्वी का प्राकृतिक उपग्रह केवल एक चन्द्रमा ही है यद्यपि अनेक कृत्रिम उपग्रह मनुष्यों द्वारा छोड़े हुए भी हैं। (4) माध्यम गैस यह एक बहुत ही कम घनत्व वाली गैस है जो अंतरिक्ष में हर जगह विद्यमान है। दूर अंतरिक्ष में कहीं भी शून्य नहीं है, परन्तु यह गैस जो वास्तव में ब्रह्माण्ड की जन्मदात्री है, हर जगह उपस्थित है।

इस इतने बड़े क्षेत्र को समझने के लिए अब मैं अपनी बात इस पृथ्वी से ही प्रारम्भ करता हूँ। यद्यपि ब्रह्माण्ड की कहानी में पृथ्वी को थोड़ा भी स्थान मिलने की कोई सम्भावना नहीं है क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में तो पृथ्वी का उतना भी अस्तित्व नहीं है जितना कि इस आठ हजार मील के व्यास वाली पृथ्वी में एक धूल के कण का होता है, परन्तु फिर भी मनुष्य जहाँ रहता है वह स्थान कितना भी बुरा क्यों न हो स्वभावतः उसके प्रति कुछ स्नेह उत्पन्न हो जाता है। इसीलिए मैं समझता हूँ कि मुझे पहले अपनी पृथ्वी के ही बारे में कुछ कहना चाहिए। पृथ्वी आठ हजार मील के व्यास में पूर्णतः वृत्ताकार नहीं है, ध्रुवों पर यह कुछ चपटी है। अर्थात् इसका आकार नारंगी के समान है। उत्तरी से दक्षिणी ध्रुव की ओर यदि हम पृथ्वी का व्यास नापें तो वह चौबीस मील कम अर्थात् केवल 7976 मील होगा। पृथ्वी की आंतरिक रचना के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें भूचाल व ज्वालामुखियों का ही सहारा लेना पड़ता है क्योंकि अभी तक केवल साढ़े चार मील की गहराई तक ही पृथ्वी को खोदने में मानव समर्थ हो सका है। भूचालों से यह ज्ञात हुआ है कि तीन हजार मील के व्यास का पृथ्वी का आंतरिक भाग द्रव पदार्थों का बना है, जहां लोहा आदि भारी धातुओं का मिश्रण 1500° से० पर द्रव अवस्था में विद्यमान है तथा साथ ही साथ यह मिश्रण तीव्र गति भी कर रहा है। यह धातुएं विद्युत की सुचालक हैं अतः इनकी इस गति के कारण एक तीव्र धारा उत्पन्न होती है, जिसका चुम्बकीय क्षेत्र दूर दूर तक अनुभव किया जा सकता है। कोई सैनिक रेगिस्तान में दिशा ढूंढ़ रहा हो अथवा कोई नाविक अथाह सागर के बीच फँसा हो, वह एक छोटी सी चुम्बकीय सुई का ही प्रयोग करेंगे जिसकी क्रिया पृथ्वी के अन्दर की द्रव धातुओं पर निर्भर करती है। पृथ्वी अपनी धुरी पर लगातार गोल घूमती रहती है, अर्थात् अपने स्थान पर स्थिर रहते हुए भी हम लगभग 700 मील प्रति घंटा की दर से लगातार घूम रहे हैं। अपनी धुरी पर पृथ्वी एक चक्कर लगभग 23 घंटा 56 मिनट में पूरा करती है। इसके साथ ही साथ लगभग 70,000 मील प्रति घंटा की दर से पृथ्वी सूर्य के आसपास भी घूम रही है इन दोनों गतियों की तुलना हम बच्चों के घुमाने वाले लट्टू से कर सकते हैं जो अपने स्थान पर गोल घूमने के साथ ही साथ आगे भी बढ़ता जाता है। सूर्य से लगभग नौ करोड़ मील की दूरी रखते हुए पृथ्वी इसके आसपास एक वर्ष में एक चक्कर पूरा करती है। पृथ्वी अपने

ध्रुवीय अक्ष पर नहीं घूमती है बल्कि इसके ध्रुवीय अक्ष व ऊर्ध्व अक्ष के बीच लगभग 23·5° का कोण है। इसी के कारण वर्ष में विभिन्न ऋतुओं का जन्म होता है तथा साथ ही साथ दिन व रात का समय भी बदलता रहता है परन्तु फिर भी प्रत्येक वर्ष के लिए यह लगभग स्थिर ही रहता है।

पृथ्वी का एकमात्र प्राकृतिक उपग्रह चन्द्रमा इससे लगभग दो लाख मील की दूरी पर है और पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति के कारण यह लगातार इसके आसपास गोल घूमता हुआ एक चक्कर लगभग २७ दिनों में पूरा करता है। चन्द्रमा पर कोई भी वायुमण्डल नहीं है और पृथ्वी की भाँति यह अपने अक्ष पर भी गोल नहीं घूमता है। भार के अनुसार चन्द्रमा पृथ्वी का अस्सीवाँ भाग है। परन्तु ऐसा पाया गया है कि अंतरिक्ष से विभिन्न स्वतंत्र पिण्ड इस पर टकराते रहते हैं जिसके कारण इसके भार में वृद्धि हो रही है अतः यह पृथ्वी से दूर होता जा रहा है। साथ ही साथ पृथ्वी की परिक्रमा करने में लगे हुए समय में भी वृद्धि होती जा रही है। सम्भवतः अपने जन्म के समय चन्द्रमा अपने अक्ष पर भी गोल घूमता था परन्तु लगातार भार वृद्धि के कारण अब इसका घूमना बन्द हो गया है अतः जो भाग पृथ्वी के सामने है केवल उसी के द्वारा परावर्तित प्रकाश ही हम देखते हैं, चन्द्रमा का पीछे का छिपा हुआ भाग पृथ्वी से देखना असम्भव है। चन्द्रमा की सतह पर ज्वालामुखी की भाँति की आकृतियाँ बहुत पाई जाती है जो कि वास्तव में अंतरिक्ष से पिण्डों के टकराने के कारण बन गई हैं। इसका अनुभव मिट्टी के ढेर में एक कंकड़ वेग के साथ ऊपर से गिराने पर कर सकते हैं। छोटे पैमाने पर मिट्टी के ढेर में भी वैसी ही आकृति बन जाती है जैसी चन्द्रमा की सतह पर यत्र तत्र दिखाई देती हैं।

अंतरिक्ष से इस प्रकार के पिंड पृथ्वी से भी आकर टकराते हैं। 1908 में एक बहुत बड़ा चट्टानों का टुकड़ा साइबेरिया में आकर गिरा था, गिरते समय इसका वेग इतना अधिक था कि कई मील के क्षेत्र में भूचाल हो जाने से इस क्षेत्र के सभी पेड़ गिर गए थे। पृथ्वी के वायुमण्डल के अवरोध के कारण यह वेग काफी कम हो जाता है, यदि वायुममंडल न हो तो इस प्रकार के पिंडों के टकराने से पृथ्वी की सतह भी स्थायी रूप से विकृत हो जाती। कई किलोमीटर तक हमारा वायुमंडल लगभग वैसा ही रहता है जैसा कि सतह पर है जिसमें मुख्यतः आक्सीजन व नाइट्रोजन एक व चार के अनुपात में हैं। परन्तु लगभग 100 कि० मी० की ऊँचाई के बाद इन गैसों का विघटन प्रारम्भ हो जाता है और 300 कि० मी० पर आक्सीजन पूर्णतः परमाण्विक अवस्था में होती है। 200 कि० मी० की ऊँचाई के बाद वायु का घनत्व अति अस्थिर है और दिन व रात के विभिन्न समयों के अनुसार वह बदलता रहता है। पृथ्वी के वायुमंडल का एक बड़ा भाग आयनीकृत अवस्था में है और यही भाग हमारी रेडियो तरंगों को परावर्तित करके वापस पृथ्वी पर भेजता है, जो कि हमारे मनोरंजन व संचार व्यवस्था की प्रमुख स्रोत हैं।

अब हम अपनी पृथ्वी के थोड़ा आस पास देखें तो हम पाएंगे अपनी पृथ्वी जैसे ही अन्य आठ ग्रह, जो इसी की भांति अलग अलग कक्षाओं में सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। सूर्य की ओर पृथ्वी से निकटस्थ ग्रह है शुक्र (वीनस) तथा दूसरी ओर मंगल (मार्स), वीनस से यदि और आगे सूर्य को ओर बढ़े तो एक अन्य ग्रह मिलेगा बुध (मर्करी)। इस प्रकार सूर्य की ओर से पृथ्वी तीसरे स्थान पर है। मंगल से यदि और दूर बढ़े तो आगे चार बड़े ग्रह मिलेंगे, बृहस्पति (जुपिटर), शनि (सैटर्न), अरुण (यूरेनस) व वरुण (नेप्च्यून) औरअंतिम ग्रह सर्वाधिक दूरी पर है,कुबेर (प्लूटो)। मात्रा के अनुसार शुक्र पृथ्वी से थोड़ा छोटा है जबकि बुध व मंगल पृथ्वी से काफी छोटे हैं। बृहस्पति पृथ्वी से 300 गुना, शनि 95 गुना, अरुण 15 गुना और वरुण 17 गुना भारी हैं। कुबेर के विषय में अभी वैज्ञानिकों की कोई निश्चित धारण नहीं बनी है, परन्तु यह बुध व शुक्र की भाँति छोटा ग्रह ही प्रतीत होता है।

तो इस लम्बी कहानी का एक पृष्ठ आपके सामने

खुला है जिसमें एक सूर्य है और हैं उसके आसपास घूमते हुए नौ ग्रह। तो पहले हम देख लें कि यह सब कितना स्थान घेर रहे हैं। यदि हम सूर्य को 15 से० मीटर के व्यास वाली एक बहुत बड़ी गेंद के रूप में मान लें तो इससे केवल 6 मीटर की दूरी पर बुध ग्रह होगा, शुक्र 11 मी० की दूरी पर, पृथ्वी 16 मी०, मंगल 23 मीटर, बृहस्पति 77 मी०, शनि 145 मी०, अरुण 300 मी०, वरुण 462 मीटर व अंत में कुबेर 607 मीटर की दूरी पर होगा। यह सब ग्रह एक ही धरातल पर हैं अर्थात हम एक 15 से० मी० की गेंद से विभिन्न दूरियों पर नौ छोटी छोटी गेंदें यदि एक बहुत बड़ी थाली में रख दें तो हमारे सौरमंडल की आकृति बन जाएगी।

और आगे बढ़ने से पहले कहानी के इस भाग को हम थोड़ी गम्भीरता से देख लें, अपनी पृथ्वी को बारे में तो पहले ही कई बातें देख ली गई हैं अब पृथ्वी से सूर्य की ओर मिलेगा शुक्र (वीनस), इसका वीनस नाम इसके रूप को वास्तव में चरितार्थ करता है। वीनस सुन्दरता की देवी, और यह ग्रह भी एक विशिष्ट प्रकार के सफेद बादलों से अपने को ढंके रहने के कारण अति सुन्दर लगता है। इस ग्रह पर मुख्य रूप से कार्बन-डाइ-आक्साइड की उपस्थिति पाई गई है जबकि इस गैस में बादल का रूप धारण करने का गुण नहीं है, अतः इसके वायुमंडल में जल वाष्प का उपस्थिति की सम्भावना है परन्तु वैज्ञानिक रूप से ऐसा नहीं पाया गया है। सम्भव है कि जलवाष्प की ही भाँति किसी अन्य पदार्थ में भी बादल बनाने का गुण हो।

सूर्य से निकटस्थ ग्रह बुध की विशिष्ट बात यह है कि इस पर कोई वायुमंडल नहीं है साथ ही साथ जिस मार्ग पर यह सूर्य की परिक्रमा करता है वह अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक फैला हुआ है। सम्भव है कि किसी समय यह शुक्र का उपग्रह रहा हो जिसने अब स्वतंत्र होकर ग्रह का रूप ले लिया हो। पृथ्वी से दूसरी ओर मंगल ग्रह के ध्रुवों पर प्रारम्भ में सुन्दर सफेद टोपी जैसी आकृति पाई जाती है, जोकि वास्तव में बर्फ के कारण है। पृथ्वी की अपेक्षा इस ग्रह पर कार्बन-डाइ-आक्साइड की मात्रा अधिक है तथा साथ ही कुछ नाइट्रोजन भी पाई गई है। दूरदर्शी द्वारा देखने पर मंगल की सतह पर यत्र तत्र कुछ धब्बे से दृष्टिगोचर होते हैं जो समय के साथ साथ बनते बिगड़ते रहते हैं तथा अपना स्थान भी बदलते रहते हैं। सम्भव है कि यह चट्टानों पर लगने वाली एक विशिष्ट प्रकार की काई के कारण हो जो पृथ्वी पर भी लगती है। इसके बाद हैं चार महान ग्रह, बृहस्पति, शनि, अरुण व वरुण। इनका वायुमण्डल पृथ्वी से सर्वथा भिन्न प्रकार का है। मुख्यतः इन पर जहरीली गैसें मीथेन व अमोनिया उपस्थित हैं तथा अल्प मात्रा में हीलियम व हाइड्रोजन भी है। इनका ताप—150° से० होने के कारण थोड़े वायुमण्डल के नीचे इन ग्रहों की सतह पर हाइड्रोजन व हीलियम की मोटी तहें हैं। इतने कम ताप-क्रम पर हाइड्रोजन द्रव रूप में होती है जिसके गुण पारे की भाँति ठोस पदार्थों के समान हैं। तीव्र गति के कारण ठोस पदार्थों के गुणों वाली हाइड्रोजन भी उसी प्रकार एक विद्युत क्षेत्र उत्पन्न करती है जिस भाँति पृथ्वी में पिघलती हुई धातुएं करती हैं। इसके कारण इन ग्रहों पर भी विकराल तूफान आया करते हैं जो कि पृथ्वी पर आने वाले तूफानों से भी अति तीव्र होते हैं। इन चारों ग्रहों के चारों ओर अनेक उपग्रह परिक्रमा करते रहते हैं जिनकी संख्या है बृहस्पति 12, शनि 9, अरुण 5 तथा वरुण 2। अंतिम ग्रह प्ल्यूटो के विषय में विशिष्ट बात यही है कि इसकी सतह पर की भांति किसी प्रकार का वायुमण्डल नहीं है।

संक्षिप्त रूप से पृथ्वी की तुलना में अन्य ग्रहों की सूर्य से दूरी, व्यास, सूर्य की एक परिक्रमा में लगा हुआ समय व उपग्रहों की संख्या ग्रह तालिका में दी जा रही है। सुविधा के लिए सूर्य से पृथ्वी की दूरी (लगभग 9 करोड़ मील), पृथ्वी का व्यास (लगभग 8000 मील) व पृथ्वी द्वारा एक परिक्रमा में लगा हुआ समय (लगभग 365 दिन) को इकाई के रूप में लिया गया है।

ग्रह	सूर्य से दूरी	व्यास	परिक्रमा समय	उपग्रहों की संख्या
बुध (मर्करी)	0·4	0·4	0·25	0
शुक्र (वीनस)	0·7	1·0	0·60	0
पृथ्वी (अर्थ)	1·0 (93,000,000 मील)	1·0 (8,000 मील)	1 00 (365 दिन)	1
मंगल (मार्स)	1·5	0·5	1·90	2
बृहस्पति (जुपिटर)	5·0	11·0	12·00	12
शनि (सैटर्न)	9·5	9·0	29·00	9
अरुण (यूरेनस)	19·0	4·0	84·00	5
वरुण (नेप्च्यून)	30·0	4·0	165·00	2
कुबेर (प्ल्यूटो)	39·0	0·5	248·00	0

उपग्रहों के विषय में हमारा ज्ञान अधूरा ही रहेगा, यदि हमें केप्लर के प्रसिद्ध 'हार्मोनिक नियम' का ज्ञान न हो। लगभग तीन शताब्दी पूर्व सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक केप्लर ने ग्रहों के विषय में एक अति मनोरंजक व ज्ञानवर्धक आविष्कार किया। सूर्य से ग्रहों की दूरी व उनके परिक्रमा समयों के बारे में गणना करते समय केप्लर ने पाया कि प्रत्येक ग्रह के लिए यदि परिक्रमा समय राशि का आपस में गुणा। किया जाए (वर्ग किया जाए) तथा सूर्य से उसकी दूरी का तीन बार आपस में गुणा। किया जाए (तृतीय घात), तो यह राशियाँ बराबर होंगी। अर्थात् प्रत्येक ग्रह के लिए निम्नलिखित समीकरण वैध होगी।

$$(\text{परिक्रमा समय})^2 = (\text{सूर्य से दूरी})^3$$

यदि इन राशियों का मान दशमलव के कई स्थानों तक सत्यता से ज्ञात हो तो उपरोक्त समीकरण के दाएं व बाएं भाग पूर्णतः बराबर आते हैं। कितना मनोरंजक है, यह नियम। यही नहीं यदि हम इन राशियों के लगभग मान का भी प्रयोग करें तो भी हम पाएंगे कि यह समीकरण वैध है। उदाहरण के रूप में यदि शुक्र व अरुण के लिए तालिका में दी हुई पृथ्वी के सापेक्ष राशियों का प्रयोग करें तो हम यह पाएंगे।

शुक्र: $(\text{परिक्रमा समय})^2 = (0{\cdot}60)^2 = 0{\cdot}36$

$(\text{सूर्य से दूरी})^3 = (0{\cdot}70)^3 = 0{\cdot}343$

0·36 व 0·343 लगभग बराबर ही हैं।

अरुण। $(\text{परिक्रमा समय})^2 = (84)^2 = 7056$

$(\text{सूर्य से दूरी})^3 = (19)^3 = 6859$

यदि लगभग मान के स्थान पर हम इन राशियों के सत्यमान का प्रयोग करें तो दोनों ओर के मान पूर्णतः बराबर आएंगे।

शायद आपको आश्चर्य हो रहा होगा कि दूरी को वर्षों में कैसे नापा गया, परन्तु वास्तव में आप अपने दैनिक जीवन में भी ऐसा करते हैं। यदि आप दूरी को मीलों में नापते जाएं तो एक स्थान पर जाकर इतने अधिक अंक आ जाएंगे कि फिर उस दूरी को आप अपने मस्तिष्क में किसी तरह नहीं समझ पाएंगे। इलाहाबाद से कानपुर की दूरी सुविधा के लिए बहुधा आप मीलों के स्थान पर तीव्र गति वाहन में 4 घंटे कह दी जाती है। इसी भाँति दिल्ली से मास्को तक की कई हजार मील की दूरी सीधे वायुयान द्वारा 8 घण्टे कही जा सकती है। परन्तु हमारे वाहनों की गति कोई नियतांक नहीं है अतः इसके लिए प्रकाश की गति (३ $\times 10^{10}$ से० मी० प्रति सेकंड) को माप माना गया है। चन्द्रमा से पृथ्वी की दूरी लगभग 2 लाख मील है और वहाँ से पृथ्वी तक प्रकाश आने में लगभग 1 सेकंड लगता है अतः इस दूरी को दो लाख मील के स्थान पर 1 प्रकाश सेकंड भी कह सकते हैं। इसी भाँति सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश आने में 8 मिनट लगते हैं अतः इस 9 करोड़ मील (लगभग) की दूरी को हम 8 प्रकाश सेकंड कहेंगे। इसी भाँति जिस स्थान से पृथ्वी तक प्रकाश आने में एक वर्ष का समय लगे उसे एक प्रकाश वर्ष की दूरी पर कहेंगे। तो हम कुछ प्रकाश वर्ष (2 या 3) की दूरी पर चल रहे थे वहाँ हमें मिलेगा, अपनी आकाश गंगा का पहला नक्षत्र-सूर्य की ही भाँति गर्म दहकता हुआ। उससे दो-तीन प्रकाश वर्ष की दूरी और चलिए तो अगला नक्षत्र मिलेगा, और इसी भाँति हमारी आकाश गंगा में लगभग एक अरब नक्षत्र बिखरे पड़े हैं। आकार में उनमें से अनेक इतने तक बड़े हैं कि पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमते हुए जो गोल आकृति बनाती है, वह उस पूरी आकृति को ही ढक लें। और इन अनेकानेक नक्षत्रों सहित हमारी आकाशगंगा (गैलेक्सी) एक बड़ी तश्तरी जैसे रूप में है, अर्थात यह सभी नक्षत्र और उनसे सम्बद्ध ग्रह व उपग्रह एक ही धरातल में हैं। और हमारा सूर्य इस तश्तरी के बाहरी सिरे के समीप है। यह पूरी आकृति अपने केन्द्र पर गोल घूम रही है इसकी गति इतनी तीव्र है कि इसके बाहरी सिरे लगभग 5 लाख मील प्रति घण्टा की गति इतनी तीव्र है कि इसके बाहरी सिरे लगभग 5 लाख मील प्रति घण्टा की गति कर रहे हैं। तो यदि आप चुपचाप अपने स्थान पर बैठे इस लेख को पढ़ रहे हैं तो भी आप अनेक प्रकार की गतियाँ कर रहे होंगे। सर्वप्रथम हम अपनी पृथ्वी के साथ 700 मील। घंटा की गति से० गोल घूम रहे हैं, साथ ही साथ 70,000 मील। घंटा की गति से हम सूर्य के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं और 5 लाख मील। घंटा की गति से हम अपनी पूरी आकाश गंगा सहित गोल घूम रहे हैं। इसके अतिरिक्त एक अति तीव्र चौथी गति भी हम कर रहे होते हैं जिसके विषय में हम इस निबंध के अंत में देखेंगे।

तश्तरी के रूप में हमारी पूरी आकाश गंगा का व्यास लगभग 60,000 प्रकाश वर्ष है। इतने बड़े आकार के कारण पिछले 15 अरब वर्ष पूर्व से, जब यह अस्तित्व में आई थी, इसने अपने केन्द्र पर केवल 75 चक्कर पूरे किए हैं, यद्यपि इसकी गति अति तीव्र है।

अब मैं आपको अपनी आकाश गंगा से बाहर थोड़ी दूरी तक ले चलना चाहूँगा। बादलों से साफ आकाश को कभी रात में देखिए, जब चाँद न हो, और यदि आप वास्तव में एक चित्ताकर्षक दृश्य देखना चाहें तो किसी पहाड़ की चोटी से या समुद्र में चल रहे पोत से यह दृश्य देखिए। —कितना रोमांचक होता है यह दृश्य, आकाश में यत्र-तत्र-सर्वत्र अनेकानेक नन्हें-नन्हें सितारे फैले हुए एक अजीब सा माहौल पैदा करते हैं। अपने एक निबन्ध में अंतरिक्ष की इस शांति के बारे में महान वैज्ञानिक पैस्कल ने लिखा था, "इस महान अंतरिक्ष के बीच छिपी शांति को अनुभव करके कभी-कभी मैं बहुत डर जाता हूँ।" परन्तु वास्तव में इस शांत अंतरिक्ष में हमें किसी नक्षत्र से एक-दो करोड़ मील की दूरी पर

भी पहुँचने का दुर्भाग्य प्राप्त हो जाए तो हम अपने इस रूप में उपस्थित नहीं होंगे वरन् वाष्प में परिणित हो चुके होंगे, यहीं नहीं यदि हमारी समस्त पृथ्वी भी इस दूरी पर पहुँच जाए तो इसका भी वाष्पीकरण हो जाएगा।

हाँ, तो यदि कभी सितारों भरी रात में आप दूर क्षितिज की ओर देखें तो आप उस समय महान तश्तरी रूपी अपनी आकाशगंगा से बाहर की ओर देख रहे होंगे। उस समय आप क्या देख रहे होंगे? दूर दूर छितरे हुए अनेकानेक नक्षत्र, पर नहीं वास्तव में अंतरिक्ष में हर दिशा में अनेक आकाशगंगाएं बिखरी पड़ी हैं, आकृति में उनमें से अनेक हमारी आकाशगंगा की भाँति तश्तरीनुमा हैं जबकि अन्य अनेक गोलाकार या किसी अन्य रूप में है। परन्तु प्राथमिक रूप से वह सब एक जैसी ही हैं—गैस के बादलों का समूह और उनके बीच अनेक नक्षत्र अपने ग्रह और उपग्रह सहित। किसी आकाशगंगा में नक्षत्रों की संख्या दस करोड़ से 100 अरब के बीच होती है। आकाशगंगाओं के बीच की औसत दूरी लगभग 30 लाख प्रकाशवर्ष होती है, अर्थात् किसी निकटस्थ आकाशगंगा से हमारे पास तक प्रकाश आने में लगभग 30 लाख वर्ष का समय लगता है। लगभग ढाई लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर एक आकाशगंगा बिल्कुल वैसी दिखाई देती है जैसी हमारी अपनी आकाशगंगा है। यद्यपि आँख से देखने पर यह एक प्रकाश के मंदे धब्बे के रूप में ही दिखाई देती है परन्तु एक अच्छे दूरदर्शी से इसके अंदर अनेक नक्षत्र देखे जा सकते हैं जो बिल्कुल उसी प्रकार उपस्थित हैं जिस प्रकार हमारी अपनी आकाशगंगा के नक्षत्र। एक बार में अपनी आँख से हम अपनी आकाशगंगा में लगभग दो हजार नक्षत्र देख सकते हैं, एक साधारण दूरदर्शी के द्वारा दस लाख के लगभग नक्षत्र देखे जा सकते हैं, परन्तु यदि हम एक अच्छे दूरदर्शी का प्रयोग करें तो लगभग दस करोड़ नक्षत्र एक साथ देख सकते हैं।

लगभग 5 अरब प्रकाशवर्ष की दूरी तक इसी प्रकार की आकाशगंगाएं देखने में मनुष्य सफल हुआ है। क्या उसके आगे भी इसी प्रकार की आकाशगंगाएं मिलेंगी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, परन्तु वैज्ञानिकों को आशा है उससे भी 5 अरब प्रकाशवर्ष आगे तक इसी प्रकार की आकाशगंगाएं ही उपस्थित होंगी। परन्तु अब प्रश्न उठता है कि उसके आगे क्या होगा? इसका कोई भी उत्तर अभी निश्चित रूप से नहीं दिया जा सकता है। फिर भी जिस दूरी तक हम अपने दूरदर्शी यंत्रों द्वारा सफलतापूर्वक पहुँच सके हैं उसमें ही लगभग 1 अरब आकाशगंगाएं हैं और प्रत्येक में लगभग 10 करोड़ से 100 अरब के बीच नक्षत्र हैं, अपने ग्रह व उपग्रहों सहित इस प्रकार आप अपने अनादि, अनंत ब्रह्माण्ड के विषय में अपने मस्तिष्क में एक चित्र बना सकते हैं।

यहाँ पर आपके मस्तिष्क में एक प्रश्न उठेगा, कि क्या हमारी पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र भी हमारे जैसे जीवधारी उपस्थित होंगे? हम जानते हैं पृथ्वी पर समस्त जीवधारी, चाहें हम एक घास के टुकड़े को लें या एक हाथी को, एक विशेष प्रकार के अणुओं से मिल कर बना होता है जिसे डी० एन० ए० कहते हैं, यह मूल रूप से कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन व नाइट्रोजन का एक योगिक होता है, तथा यह अणु एक विशेष प्रकार के वातावरण में ही जीवित रह सकता है, जो पृथ्वी पर उपस्थित है। अतः अन्यत्र भी जहाँ कहीं पृथ्वी के समान वायुमण्डल होगा वहाँ हमारे जैसे जीवधारियों की उपस्थिति की पूर्ण सम्भावना है। और जिस प्रकार हमारी पृथ्वी सूर्य से एक औसत दूरी पर है उसी भाँति प्रत्येक नक्षत्र से एक विशेष दूरी पर उपस्थित ग्रह पर पृथ्वी के समान ही वायुमण्डल होगा। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के जीवधारी हो सकते हैं जिनका जीवन-मूल डी० एन० ए० न होकर कुछ और हो, तो वह एक अन्य प्रकार के वायुमण्डल में जीवित रहते होंगे, अतः अन्य ग्रहों में जहाँ उस प्रकार का वायुमण्डल हो वहाँ भी कुछ विशेष प्रकार के जीवधारियों की उपस्थिति की सम्भावना है। तो जिस भाँति आप इस पृथ्वी पर ब्रह्माण्ड के विषय में यह लेख पढ़ रहे हैं, पूर्ण सम्भावना है कि

[शेष पृष्ठ 13 पर]

होलोग्राफी

□ श्याम लाल काकानी

"होलोग्राफी केवल साधारण त्रिविमीय दृश्यों को दर्शाने की विधि ही नहीं है, वरन् आजकल इसका उपयोग कई क्षेत्रों में अध्ययन एवं अनुसन्धान के लिए भी हो रहा है।"

जब हम किसी दृश्य को देखते हैं, तो हमारी आँखो को उसकी प्रत्येक बारीकी का आभास होता है। अगर हम उसी दृश्य का कैमरे द्वारा फोटोग्राफ ले और नेगेटिव से पोजेटिव तैयार करके देखें तो हमें यह आभास होता है कि दृश्य के फोटोग्राफ में उसकी कई बारीकियाँ अंकित नहीं हो सकी हैं क्योंकि कैमरा द्वारा वस्तु का प्रतिबिम्ब केवल एक ही स्थिति में अंकित होता है। यही कारण है कि प्रकाश तरंगो की समय-नियमन संबंधी सूचना अंकित करना कैमरा द्वारा संभव नहीं है, जिससे दृश्य और उसके प्रतिबिम्ब में कुछ अन्तर रह ही जाता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी दृश्य के त्रिविमीय चित्र को दर्शाने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्रकाश तरंगो की समय-नियमन संबंधी सूचना को अंकित कर सके। अगर ऐसा करना संभव हो सके तो प्रतिबिम्ब को देखने पर हमें वास्तविक दृश्य का ही आभास होगा। इस दिशा में कई वैज्ञानिकों ने प्रयास किये, लेकिन इसकी सफलता का श्रेय प्रो० डेनिस गेबोर को ही प्राप्त हो सका।

सन् 1947 में प्रो० डेनिस गेबोर जब इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप के साथ प्रयोग कर रहे थे तो उन्होंने अनुभव किया कि अगर प्रकाश तरंगे, संदर्भ प्रकाश पुंज के साथ व्यक्तिकरण करे तो तरंगों के समय को भी अंकित करना संभव है। चूंकि संदर्भ प्रकाश पुंज का समय निश्चित होता है और फोटोग्राफिक फिल्म वास्तव में चित्रित किये जाने वाले दृश्य से आने वाले प्रकाश प्रकाश पुंज और इस प्रकाश पुंज (संदर्भ प्रकाश बीम) के समय के अन्तर को ही अंकित करती है। प्रो० गेबोर ने संदर्भ प्रकाश बीम और वस्तु से आने वाले प्रकाश बीम के अन्तर को अंकित करने में सफलता प्राप्त की। यह इसलिये संभव हो सका कि दोनों बीमों में व्यक्तिकरण से समय परिवर्तन, विस्तार में बदल जाता है। प्रो० गेबोर की इसी प्रायोगिक सफलता ने फोटोग्राफी की नई विधि को जन्म दिया जिसे हम होलोग्राफी कहते हैं यद्यपि होलोग्राफी को व्यवहारिक रूप लेसर किरणों की खोज के पश्चात् ही प्राप्त हो सका है।

होलोग्राफी विधि में हम किसी भी दृश्य के त्रिविमीय चित्र को बिना कैमरा लैन्स की सहायता के अंकित कर सकते हैं। यही कारण है कि हम साधारणतया किसी दृश्य के त्रिविमीय लैंस रहित फोटोग्राफी करने की कला को होलोग्राफी कहते हैं। होलोग्राफी एक प्रकार से तरंग्राग (वेव फ्रन्ट) पुर्ननिर्माण द्वारा फोटोग्राफी की कला है। इस क्रिया में वस्तु का प्रतिबिम्ब अंकित नहीं होकर, वास्तव में, परावर्तित प्रकाश तरंगे स्वयं ही फिल्म पर अंकित फिज होती है। जब इस फिल्म को पुनः आलोकित किया जाता है तो ये तरंगे दर्शक की आंखों की ओर प्रवाहित होकर उसको दृश्य का आभास कराती है। होलोग्राफी की कैमरा फोटोग्राफी की तुलना में निम्न विशेषतायें हैं :—

होलोग्राम का प्रत्येक भाग चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, पूर्ण दृश्य को प्रदर्शित करने में समर्थ होता

है। अतः एक होलोग्राम को कई छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर प्रत्येक भाग से पूर्ण दृश्य का अवलोकन किया जा सकता है।

होलोग्राम में नेगेटिव निर्मित नहीं होते हैं। होलोग्राम स्वयं ही नेगेटिव का कार्य करते हैं लेकिन इनसे प्राप्त बिम्ब सदैव पोजेटिव होता है। अगर सम्पर्क छपाई विधि से होलोग्राम की प्रतियां तैयार की जाय तो इससे दृश्य में कोई अन्तर नहीं आयगा। केवल होलोग्राम की प्रतियों में अपारदर्शी क्षेत्र पारदर्शी और पारदर्शी क्षेत्र अपारदर्शी में परिवर्तित हो जायेंगे।

एक ही होलोग्राम पर कई दृश्यों को अंकित किया जा सकता है, तथा प्रत्येक दृश्य के बिम्ब को अलग २ बिना किसी बाधा के देखा जा सकता है।

सिद्धान्त रूप में होलोग्राफी अत्यन्त सरल एवं कैमरा फोटोग्राफी की तुलना में अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है, लेकिन व्यवहारिक रूप में उतनी ही कठिन है। तरंगों के समयान्तर को अंकित करना अति कठिन है, क्योंकि प्रकाश संवेदी इमल्शन केवल तरंगों के आयाम के प्रति ही संवेदनशील होता है। इसी कारण से तरंगों के समय को सीधा अंकित किया जाता है। यह सब कार्य लेसर किरणों की सहायता से किया जाता है। इस विधि में उपलब्ध संदर्भ प्रकाश बीम को फोटोग्राफिक प्लेट तक पहुंचाया जाता है। जिस स्थान पर यह प्लेट से टकराता है, उसी स्थान पर वस्तु से परावर्तित होने वाली लेसर किरणें भी टकराती हैं। लेकिन संदर्भ प्रकाश पुंज और लेसर किरणें प्लेट पर एक साथ नहीं पहुंचती है, क्योंकि लेसर किरणों को अधिक दूरी तय करनी पड़ती है। यह संदर्भ बीम से व्यतिकरण कर होलोग्राम का निर्माण करती है। इस होलोग्राम को दिखने योग्य बनाने के लिए उस पर लेसर किरणें उसी कोण से डाली जाती है, जिस कोण से प्रतिबिम्ब अंकित करते समय संदर्भ प्रकाश पुंज को वस्तु पर डाला गया था। इससे बिम्ब केवल एक ही रंग का दिखाई देता है। चित्र 1 और चित्र २ में होलोग्राम का निर्माण और इससे पुनः बिम्ब प्राप्त करना दर्शाया गया है।
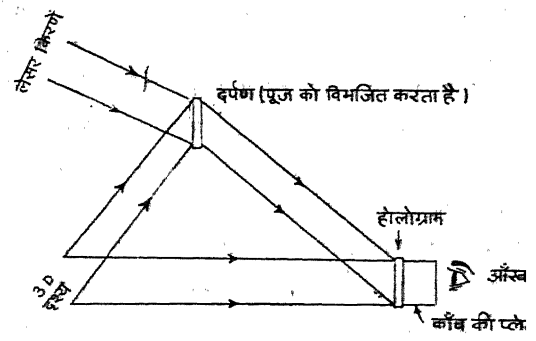
चित्र 1 होलोग्राम बनाने की विधि
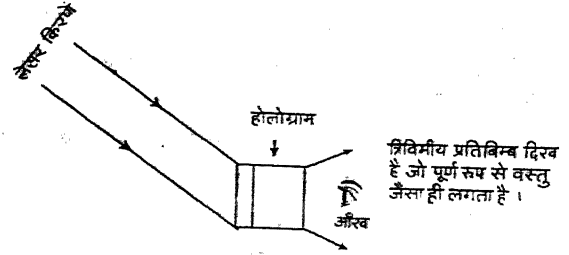
चित्र 2 होलोग्राम द्वारा दृश्य के प्रतिबिम्ब को देखने की विधि

होलोग्राम के निर्माण के समय दृश्य का पूर्णतया स्थिर रहना अति आवश्यक है। दृश्य के थोड़े से हिलने मात्र से ही उसका बिम्ब धुंधला हो जाता है और कभी कभी पूर्ण होलोग्राम ही नष्ट हो जाता है। संक्षेप में होलोग्राम द्वारा बिम्ब का अंकन पलक झपकने से भी कम समय में पूर्ण हो जाना चाहिए, क्योंकि इतने कम समय के लिये दृश्य पूर्णतया स्थिर माना जा सकता है।

होलोग्राफी के क्षेत्र में अनुसन्धान की प्रगति लेसर अनुसन्धान की प्रगति के साथ ही जुड़ी हुई है। अब तीन भिन्न लेसर किरणों के द्वारा किसी दृश्य को प्रकाशित करने से तीन भिन्न रंगों की निर्देश प्रकाश किरणें प्राप्त की जा सकती हैं। इस प्रकार के होलोग्राम को तीन भिन्न रंगों की लेसर किरणों से पुनः बिम्बित करने पर दृश्य का रंगीन चित्र देखा जा सकता है।

वर्णों के वर्गीकरण को अधिक स्पष्ट करने के लिये,

आजकल होलोग्राम पर निर्देश प्रकाश किरणें सामने से नहीं डालकर पीछे से डालते हैं। इस प्रकार से बनने वाला होलोग्राम सफेद प्रकाश में से उन्हीं रंगों की लेसर किरणें चुनता है जो होलोग्राम बनाते समय प्रयुक्त की जाती है। सफेद प्रकाश में निहित अन्य सभी रंग छोड़ दिये जाते हैं। इससे दृश्य का प्रतिबिम्ब उसी रंग का बनता है, जिस रंग के लेसर किरणें प्रयुक्त की जाती है। लेकिन इस प्रकार प्रयुक्त की जाने लेसर किरणें इतनी अच्छी कला संबद्ध नहीं होती जितनी की निरन्तर निकलने वाली लेसर किरणें। कला संबद्ध, लेसर किरणों का अत्यधिक महत्वपूर्ण गुण है जो होलोग्राफी के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा होलोग्राफी के बहुत ही उत्साहवर्द्धक उपयोग सुझाए गए हैं, लेकिन पूर्ण कला संबद्ध प्रकाश की कमी के कारण ये उपयोग प्रयोगशालाओं तक ही सीमित रह गये हैं। कुछ अति महत्वपूर्ण उपयोगिताओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है :—

(1) टेलिविजन और चलचित्रों के क्षेत्र में

सिद्धान्त रूप से होलोग्राम टेलिविजन प्रणाली का निर्माण संभव है। इसमें व्यवहारिक कठिनाई यह है कि होलोग्राम द्वारा निर्मित चित्रों को एक समय में केवल कुछ ही दर्शकों को दिखाये जा सकते हैं। प्रो० गेबोर ने इस दिशा में अपना एक सुझाव रखा है, उनके अनुसार चलचित्रों को अलग-अलग अनुभागों में विभाजित कर भिन्न २ लेसर किरणों द्वारा उन्हें दिखाया जा सकता है। इससे पर्दा कई लेसर किरणों से आलोकित हो जायगा, जिससे प्रत्येक लेसर किरण एक निश्चित अनुभाग में बिम्ब उत्पन्न करेगी, इस प्रकार वहाँ बैठा जनसमुदाय चलचित्र देख सकेगा। इसके लिए विशेष होलोग्राम की आवश्यकता होगी। प्रो० गेबोर ने विशेष रूप से होलोग्राम द्वारा निर्मित लिपमैन मसूराकार पट्टी के उपयोग का सुझाव दिया है। इस क्षेत्र में प्रयोग जारी है। वह दिन दूर नहीं है, जब हम पर्दे पर 3 D चलचित्र देख कर मनोरंजन कर सकेंगे। होलोग्राम टेलिविजन प्रणाली के क्षेत्र में भी अनुसन्धान कार्य तेजी से हो रहा है। अगर यह सम्भव हो सका तो गृहिणी कमरे में लगे टेलिविजन सेट का स्वीच आन करके प्रकृति के त्रिविमीय दृश्य देखकर सब थकान को भूल जायेगी।

(2) माइक्रोस्कोपी के क्षेत्र में

वैसे तो होलोग्राफी का आविष्कार ही प्रो० गेबोर द्वारा इस क्षेत्र में किये गये प्रयोगों के कारण हुआ है। हालोग्राफी के क्षेत्र में प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया है कि इलेक्ट्रान तरंगों के प्रभाव क्षेत्र में बिम्ब अंकित किया जा सकता है, जो अपने आप में एक महान उपलब्धि है। वैज्ञानिक एल-सम और बेज ने एक्स किरण माइक्रोस्कोप की सहायता से होलोग्राम बनाए और उनको पुनः दृश्य प्रकाश में निर्मित किये। इन प्रयोगों से माइक्रोस्कोपी के क्षेत्र में अत्यधिक विस्तृत अध्ययन की सुविधा प्राप्त हो सकी है।

(3) होलोग्राफिक व्यक्तिकरणी

अगर किसी एक वस्तु के दो क्रमिक होलोग्रामों को उसी होलोग्राम इमल्शन में अध्यारोपण किया जाय तो वस्तु का निर्मित बिम्ब व्यतिकरण धारियों से आच्छादित होगा। ये धारियां दो एक्सपोजर के बीच वस्तु की टोपोग्राफी में होने वाले परिवर्तन को सीधे रूप में प्रदर्शित करती है। इस विधि का उपयोग वस्तु में होने वाले अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तनों को नापने में किया जा सकता है। जैसे जाइरोस्कोप इत्यादि में।

होलोग्राफी के अन्य कई उपयोग संभव है, जिनका वर्णन करना यहां संभव नहीं है। लेसर किरणों के क्षेत्र में प्रगति के साथ-साथ ही इस क्षेत्र में तीव्रता से प्रगति हो रही है। अब वह दिन दूर नहीं है जब टेलिविजन सेट द्वारा दीवार पर जगमगाने वाला दृश्य केवल वास्तविक ही नहीं अपितु वर्तमान प्रचलित त्रिविमीय छाया चित्रों से पूर्णतया भिन्न होगा।

● ●

सूर्य : धरती के लिये वरदान

□ निरंकार सिंह

पूरब से उदय होकर पश्चिम में अस्त हो जाने वाले सूर्य की शोभा को किसने नहीं देखा है ? नित्य एक प्रकार का यह मनमोहक दृश्य मनुष्य अपने जन्म से आज तक देखता आया है और इससे उसका जी कभी नहीं उबा। प्रागैतिहासिक काल में तो इससे प्रभावित होकर मनुष्य ने इसमें देवत्व की कल्पना की थी और इन्ही की स्तुति में अपनी कवित्व शक्ति का उपयोग किया था। किन्तु जबसे मनुष्य में विचार और विवेचना का प्रादुर्भाव हुआ तबसे वह यह समझने का प्रयत्न करता रहा कि यह कैसा है, क्यों चमकता है, इसका विस्तार क्या है, इत्यादि।

वैज्ञानिकों ने अपने दुर्लभ प्रयासों से सूर्य के बारे में बहुत सी बातें जान ली हैं। अब तो सूर्य अत्यन्त तेजोमय एवं जाज्वल्यमान गोलाकार पिंड मात्र माना जाता है। इसके आकर्षण के कारण पृथ्वी तथा अन्य ग्रह अपनी कक्षा में स्थिर रहकर निरन्तर इसका परिभ्रमण करते हैं। अन्तरिक्ष में अवस्थित अनगिनत छोटे बड़े ताराओं के बीच अपना सूर्य भी एक साधारण पीला, टिमटिमाता बौना तारा है। अन्य तारों की तुलना में यह इतना अधिक तेजोमय इसलिये जान पड़ता है चूंकि इसकी दूरी पृथ्वी से अन्य तारों की अपेक्षा बहुत ही कम है। लेकिन फिर भी इस दूरी का मान लगभग 9 करोड़ 29 लाख मील है, वैसे यह दूरी कम नहीं है पर अन्तरिक्ष की अन्य दूरियों की तुलना में यह उपेक्षणीय है।

सूर्य पृथ्वी से 3 लाख 32 हजार गुना भारी है जबकि पृथ्वी का भार लगभग 1,68,00,00,00,00,00,00,00,00,00,000. मन हैं। सूर्य मुख्यतः हाइड्रोजन नामक तत्व से बना हुआ है। अनेक प्राकृतिक कारणों से सूर्य का हाइड्रोजन उसके भीतर ही हीलियम में परिवर्तित होता जा रहा है। इस परिवर्तन के कारण ही सूर्य से उष्मा, प्रकाश आदि के रूप में प्रचण्ड ऊर्जा बाहर निकलती रहती है। सूर्य के तल का ताप लगभग 5,500 डिग्री सेन्टीग्रेड है जबकि पानी 100 डिग्री सेन्टीग्रेड पर उबलता है। सूर्य का आन्तरिक ताप लगभग 2 करोड़ डिग्री सेन्डीग्रेड है। अत्यधिक आन्तरिक ताप के कारण सूर्य का तल उबलते हुये द्रव्य के तल की भाँति अस्थिर रहता है। अर्थात् आन्तरिक पदार्थ बाहरी तल पर और तल का पदार्थ भीतर आता जाता रहता है। इस क्रिया के कारण सूर्य के तल से प्रायः बड़ी बड़ी लपटें निकलती रहती हैं। इन लपटों का रंग सामान्यतया गुलाबी होता है और आकार बड़ा विचित्र। सूर्य का अत्यधिक ताप होने के कारण यह अपने चारो ओर गरमी और प्रकाश उगलता रहता है।

महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस जाज्वल्यमान पिण्ड के तेज से ही पृथ्वी पर के सभी प्रकार के जीवों का अस्तित्व है। सूर्य से हम तक आने वाला प्रकाश ही वह स्रोत है जिससे जीवन की समस्त प्रक्रियाओं को बल मिलता है। सूर्य से हमें जो प्रकाश और गरमी मिलती है उसे वैज्ञानिक सौर ऊर्जा कहते हैं। सूर्य ऊर्जा का एक विशाल स्रोत है। ऊर्जा कई प्रकार की होती है तथा इसकी आवश्यकता प्रत्येक कार्य के लिये होती है। पनबिजलीघरों को गिरते हुये जल से ऊर्जा मिलती हैं और इन बिजली घरो से उत्पन्न बिजली भी ऊर्जा का एक रूप है जिनसे कल कारखानो के पहिये चलते हैं तथा हमारी आपकी दैनिक जरूरतों में यह सहायक है। वायु- में उड़ने वाले वायुयान सड़कों पर चलने वाली मोटर तथा गाड़ियां पेट्रोल के दहन से ऊर्जा प्राप्त

करती हैं। इसी प्रकार समस्त जीव भोजन द्वारा ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

सभी वानस्पतिक पदार्थों का जीवन सौर ऊर्जा पर ही आश्रित है। सर्य के प्रकाश के बिना पृथ्वी की वनस्पति अनाज निर्माण की क्रियायें नहीं हो सकती हैं। और उसके बिना जीवन का अनन्त क्रम भी नहीं चल सकता है। सभी वनस्पति पदार्थ के जीवन का आधार सूर्य है। पत्थर का कोयला जो वनस्पतिक पदार्थों के जमीन में दब जाने से तैयार हुआ है आज भी कल कारखानों की जान है।

हम जो पेट्रोल कार या बस के चलने के लिये प्रयोग करते हैं। वह सूर्य के प्रकाश के कारण बन सका है। वस्तुतः वह सूर्य की जीवाश्मी ऊर्जा ही है। पनबिजली घरों में बिजली, नदियों पर बाँध बनाकर ऊचाई से पानी के गिराने से उत्पन्न होती है। पर नदियों में पानी का एकत्र होना व प्रवाहित होना सौर ऊर्जा के कारण ही सम्भव है। सूर्य प्रतिदिन लगभग दस हजार टन पानी समुद्र की सतह से उड़ा कर वायुमण्डल में भेजता है जहाँ से इस जलराशि की काफी मात्रा वर्षा के रूप में नीचे गिरती है। जिनसे नदियों में जल प्रवाहित होता है। पृथ्वी के मुख पर प्रदर्शित हो रही समस्त ऊर्जा का एक अंश भी ऐसा नहीं जिसका जन्म सूर्य से न हुआ हो।

कोयला और पेट्रोलियम ऊर्जा प्राप्ति के दो प्रमुख स्रोत हैं। दोनों की मात्रा लगातार घटती जा रही है, उनकी प्राप्ति के लिये जमीन के भीतर और गहरे उतरना जरूरी होता जा रहा है और इसलिये उन्हें प्राप्त करने की कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही हैं। बात इतनी होती तो गनीमत होती असली समस्या तो यह है कि अगले लगभग 300 वर्षों में इन दोनों स्रोतों का भण्डार खत्म हो जायेगा। भारत में तो यह संकट और जल्दी आने वाला है। सुविख्यात भारतीय वैज्ञानिक डा० भाभा ने अपने एक वक्तव्य में कहा था :-

"भारत में कोयले का कुल भंडार एक सौ टन प्रति जन से अधिक नहीं है। यह चीन के अनुमानित कोयले के भंडार का बीसवां, ब्रिटेन का पैंतिसवां और अमेरिका का एक सौ पचासवां भाग है, अब यदि भौगोलिक विकास के बाद भारत में कोयले की खपत प्रतिवर्ष इतनी हो जाय, जितनी आज अमेरिका में है तो हमारा सब कोयला लगभग बीस वर्ष में समाप्त हो जायेगा। यदि देश में उपलब्ध पानी की पूरी सम्भावित शक्ति को भी उपयोग में लाया जाय, तो भी 1।10किलोवाट प्रति जन से अधिक बिजली नहीं मिलेगी। इसकी तुलना अमेरिका से कीजिये जहाँ इस समय भी इससे 6 गुना है और नार्वे में तो 11 गुना है। भारत की जनसंख्या तीव्रता से बढ़ती जा रही है, तेल का अनुमानित भंडार तो कोयले से भी कम है। इस प्रकार हम निष्कर्ष निकालने के लिये बाध्य हो जाते हैं कि भारत अपने पानी और तेल आदि के प्रचलित साधनों से वह जीवन स्तर प्राप्त नहीं कर सकता जो आज अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे देशों के लिये सामान्य बात बन चुका है। अतएव भारत के लिये केवल यही उपाय रह जाता है कि वह अधिकाधिक परमाणु ऊर्जा का उपयोग करे।"

डा० भाभा के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि कोयला पेट्रोलियम और जल विद्युत के आधार पर हजारों वर्षों से चली आ रही मानव सभ्यता भविष्य में इस आधार पर नहीं चल पायेगी। तब क्या होगा?

तब हमारे लिये दो ही बड़े ऊर्जा स्रोत रह जायेंगे। (१) परमाणु ऊर्जा और (2) सौर ऊर्जा। दोनों के उपयोग पर मानव सभ्यता का भविष्य निर्भर करता है।

सौर ऊर्जा का असीम भण्डार हम पर बरस रहा है लेकिन समस्या है उसके उपयोग के उत्तम सुलभ साधनों के आविष्कार की। इस समस्या का शीघ्रातिशीघ्र हल करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि परमाणु ऊर्जा को निर्माण कार्य में लगाना।

सूर्य अपने चारों ओर जो ऊर्जा उगलता रहता है उसकी अधिकांश ऊर्जा अन्तरिक्ष की अतल गहराइयों में खो जाती है। पर उस ऊर्जा का एक अत्यल्प भाग पृथ्वी पर भी आता है। यदि हम मान लें कि पृथ्वी को सूर्य से गर्मी वर्तमान की तरह नियत मात्रा में निरन्तर नहीं मिल रही वरन उसका कोटा उसे किस्तों में मिलता तो एक सेकेण्ड

में उससे जितनी ऊर्जा मिलेगी उससे पृथ्वी का 70 वर्ष तक काम चल सकता है। लेकिन सूर्य अपनी ऊर्जा किस्तों में नहीं देता हैं, यदि ऐसा होता तो उसकी एक सेकंड की समस्त ऊर्जा से पृथ्वी भाप बन जाती।

सौर ऊर्जा रूस, इगंलैण्ड, अल्जीरिया, लेबनान, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, इटली तथा कुछ अन्य देशों में छोटे पैमाने पर प्रयोग में लाई जा रही है।

रूस सौर ऊर्जा के उपयोग में सबसे आगे है। इस बात का ज्वलन्त प्रमाण यह है कि पिछले वर्ष रूस ने लूना 17 को चन्द्रमा पर भेजकर एक चन्द्रबग्घी (लूनाखोद) चन्द्रमा पर उतारी थी। आठ पहियों के आधार पर टिकी टंकी के आकार की यह ढाई मीटर लम्बी और डेढ़ मीटर ऊँची है। इसका प्रत्येक पहिया सूर्य की किरणों से प्राप्त शक्ति से चलता है।

रूस में ताशकंद के पासचरवाक पनबिजली घर के निर्माण स्थल पर 82 वर्गमीटर क्षेत्रफल में पानी गर्माने की एक संरचना बनायी गयी है। गर्मी के दिनों में यह कैंटीन और स्नानगृहों के लिये गर्मपानी प्रदान करती है और जाड़ों में मकानों को गर्म करती है। यहाँ के वैज्ञानिक सौर ऊर्जा से चलने वाले वातानुकूल बनाने का भी प्रयत्न कर रहे हैं।

रूस में ही एक ऐसे सौर बिजलीघर की योजना बन चुकी है, जिसके द्वारा 25 लाख किलोवाट घंटा विद्युत और बीस हजार टन भाप प्रतिवर्ष तैयार हो सकेगी। इस ढंग से प्राप्त होने वाली बिजली पनबिजली से सस्ती होगी।

वैज्ञानिकों ने सूर्य के प्रकाश को विद्युत में बदलने के लिये सिलिकान धातु को उपयोग में लाकर 'सोलर सेल' का निर्माण किया है। ऐसे सेल विद्युत घड़ियों व छोटे ट्रान्जिस्टरों के लिये उपयोगी है। अमेरिका के एक नगर में इन्हीं सेलों से निर्मित बैटरियां टेलिफोन लाइन में प्रयुक्त की जा रही हैं।

'सोलर सेल' की उपयोगिता अन्तरिक्षयान व राकेटों में दूर संचार व्यवस्था के लिये बड़े महत्व की सिद्ध हुई है। अन्तरिक्ष यान की प्रणालियों को विद्युत प्रदान करने का प्राथमिक स्रोत 'सोलर सेल' ही है अन्तरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में सौर ऊर्जा की महत्व इसलिये अधिक है कि जहां अन्य साधनों का पृथ्वी के साथ ले जाना जरूरी है, वहां यह सर्वव्यापी है। अमेरिका ने ऐसे सोलर सेल के निर्माण की दिशा में अच्छा कार्य किया है।

ब्रिटिश एयर क्राफ्ट कारपोरेशन के 'इलेक्ट्रानिक एण्ड स्पेस सिस्टिम्स ग्रूप' ने ऐसे किडो ब्लाइडं नामक यन्त्र का सफलतापूर्वक विकास किया है, जो सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर सकता है।

भारत की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला ने एक ऐसे चूल्हे का निर्माण किया था जो सूरज से प्राप्त ऊर्जा के सहारे चल सकता था। प्रस्तुत लेख के लेखक ने भी सौर ऊर्जा से कार्य करने वाले एक यन्त्र का आविष्कार किया है। इस यन्त्र से सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदला गया है ताकि विद्युत ऊर्जा से हमारी बिजली की छोटी मोटी जरूरतें पूरी हो सकें।

● ●

[पृष्ठ 7 का शेषांश]

अनेक अन्य ग्रहों पर भी इसी भाँति कोई अन्य भीकुछ पढ़ रहा हो, भविष्य में यदिकभी हमकिसी अन्य सौरमण्डल के किसी निवासी से सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हो सके तो वास्तव में मनुष्य के इतिहास का एक नया युग होगा। तो यदि पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखते हुए मैं अपने एक मित्र का पता लिखूं तो वह कुछ इस प्रकार होगा।

श्री लक्ष्मी कांत सिंह
शोध छात्र-भौतिकी विभाग
प्रयाग विश्व विद्यालय
इलाहाबाद (उ० प्र०), भारत
पृथ्वी,
सौर मंडल, क्र० सं० 56, 721

"रडार" तथा वर्तमान युग में उसकी उपयोगिता

□ रमेश प्रताप सिंह

यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण यंत्र है। द्वितीय महायुद्ध में परमाणु बम की भाँति ही रडार का भी प्रमुख स्थान रहा है। इसका उपयोग युद्ध के प्रत्येक क्षेत्र में होता है। इसके द्वारा जलयान एवं वायुयान की यात्रा सरल और सुरक्षित हो गई है। इसके अतिरिक्त शत्रु के युद्धक विमानों द्वारा अपनी रक्षा और शत्रु पर आक्रमण करने में भी सुविधा मिलती है। नौ सेना में भी रेडारी अन्वेषक यंत्र विमानों तथा समुद्री जहाजों का पता लगाने के काम में लाये जाते हैं, और अदृश्य होने पर गोलाबारी का निशाना रडार-नियन्त्रित तोपों द्वारा बिल्कुल ठीक लगाया जा सकता है। अब रडार की सहायता से जहाजों के चट्टानों से टकराने का डर नहीं रह गया है। रडार की सहायता से घोर अंधकार या घने कुहरे में भी दूसरे जहाजों का पता लगाया जा सकता है, रडार से यह भी पता लग जाता है कि कब तूफान या आँधी आने वाली है, जिससे सुरक्षा पूर्वक जहाजों को उड़ाया जा सके।

रडार (Radio detection and Ranging) का संक्षिप्त रूप है। (Radio detection) का तात्पर्य यह है कि रडार वस्तुओं का पता लगाने में और स्थान निर्धारण में रेडियों तरंगों का उपयोग करता है। (Ranging) दूरी मापन को कहते हैं।

राडार सेट में एक विशेष रेडियो-प्रेषी, एरियल संग्राही तथा निदर्शक होता है। वस्तुओं का पता एक विशिष्ट संकेत के प्रसारण द्वारा किया जाता है।

रडार चमगादड़ नामक पक्षी के उड़न क्रिया के सिद्धान्त पर बना हुआ है। रात में चमगादड़ पक्षी को दिखाई नहीं देता है। जब चमगादड़ चीखता है तो उसके प्रत्यक्ष अवरोधक से उसकी चीख टकराती है। और वापस आकर वही ध्वनि उसके कानों में सुनायी पड़ती है। इस प्रकार चमगादड़ समझ जाता है कि इस रास्ते पर कोई अवरोधक है। इसी सिद्धान्त पर "रडार" को भी बनाया गया है।

यह रेडियो की तरंगों की सहायता से काम करता है। इसके द्वारा रेडियो तथा टेलिविजन दोनों का काम होता है। इसमें रेडियो प्रेषी तथा संग्राही भी होता है जिसके द्वार। अदृश्य विद्युत तरंगों का विकिरण होता है। ये तरंगे किसी वस्तु से टकराती है और वापस लौटती है तो इन्हें संग्राही ग्रहण कर लेता है। जिससे विद्युत तरंगों की राह में आने वाली वस्तु रडार के पर्दे पर दिखायी देती है। ये तरंगे एक-एक करके फेंकी जाती है। ताकि वापस आने वाली किरणें संग्राही तक पहुँच जाय।

दूसरी विद्युत का विकिरण "छोटी लहरों" में किया जाता है जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु का पता लग जाय। बहुत तेज गति के वायुयानों का पता लगाने के लिए "मीटर लहरें" कार्य में लाई जाती है।

इसका श्रेष्ठ कार्य गतिशील वस्तु का पता लगाना है। यह कार्य लहरों को सर्च लाइट के समान फेंककर किया जाता है। संचरण से रुक-रुक कर होने वाली प्रतिक्रिया के द्वारा लक्ष्य के फ़ासले का पता लगता है। प्रेषित की गई तरंगों के लक्ष्य तक पहुँचने और वापस आने में लगे समय से फ़ासले का पता चलता है। अत्यंत तेज गति से चलने वाला वायुयान भी एक मीटर चलने में जितना समय लेता है उससे भी थोड़े समय में विद्युत लहरें वायुयान तक पहुँच कर वापस लौट आती है। यह

सब कार्य विद्युत यंत्रों द्वारा होता है। इन विद्युत तरंगों को पकड़ने के लिए जगह-जगह पर एरियल होते हैं। वायुयानों की आवाज को रेडारी एरियल पकड़ लेते हैं। और मालूम हो जाता है कि कोई यान आ रहा है या नहीं। साथ ही यह भी ज्ञान हो जाता है कि यान किस दिशा से आ रहा है तथा उसकी क्या गति है।

रडार की सहायता से तोपों द्वारा शत्रु के जहाजों को नष्ट कर दिया जाता है। इस विज्ञान के युग में इसकी आवश्यकता को देखते हुए इस ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसमें नये-नये परिवर्तन वाले रडार "प्लान पोजिशन रडार" कहते हैं। इसके आवरण पर गतिशील वस्तु की दूरी और दिशा के अतिरिक्त उसकी गति तथा समीप की वस्तुएँ भी दिखाई दे जाती है। इसके आवरण पर भवन, पुल, नदियां, रेल की पटरियाँ भी देखी जा सकती है। इस प्रकार के राडार को अकसर यान के भीतर लगाया जाता है जिससे कि चालक अपने लक्ष्य को भली भाँति देख लेता है। इससे यान अंधकार और कुहरे में भी ठीक-ठीक नीचे उतर सकता है।

इस यंत्र की भी कुछ सीमाएँ हैं। रडार से चलने वाली लहरों में से कुछ को वायुमंडल सोख लेता है। अतः उसकी क्रियाओं पर ऋतु के ऊपर को दूर करने के विषय में भी काफी अनुसंधान किये जा रहे हैं।

रडार के द्वारा ही यानों के संचालन में मदद की जाती है। इसके द्वारा यान चालक दूरी एवं मौसम की स्थिति के साथ-साथ पृथ्वी पर स्थित अधिकारी का आदेश भी पा लेता है। इसी के द्वारा वह तूफान और वर्षा की पूर्ण सूचना पा लेता है। यह आजकल ज्योतिष विज्ञान में भी विशेष सहायता प्रदान कर रहा है।

लेखकों से निवेदन

- **'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।**
- **लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।**
- **अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।**

पानी—हमारे जीवन का आधार

अजय कुमार बोस, एम० एस-सी०

सुबह सोकर उठने के बाद सभी अपना मुंह पानी से धोते हैं फिर पानी से बनायी गई चाय या काफी पीते हैं। स्कूल या आफिस जाने से पहले पानी से नहाते हैं फिर भोजन करते हैं जिसे पानी द्वारा ही पकाया जाता है। दोपहर में या जब कभी भी प्यास लगती है तब पानी पीते हैं। खेलते वक्त चोट लग जाने पर बच्चे कभी-कभी रोने लगते हैं और उनकी आँखों से पानी गिरने लगता है।

अतः यह स्पष्ट है कि पानी हमारे आपके व हर एक के नित्य प्रति जीवन का एक अंग बन गया है। क्या आपने कभी इस बात पर विचार किया है कि पानी क्या है कहाँ जाता है और उसका हमारे जीवन में क्या महत्व है? शायद नहीं। तो आइए। आज हम आपको इसी पानी के बारे में कुछ बताएँ।

पानी क्या है ? :—

शुद्ध पानी एक रंगहीन गंधहीन तथा स्वादहीन द्रव है। गहरे पानी में नीला रंग होने का कारण यह है कि पानी प्रकाश की पीली तथा लाल किरणों को शोषित कर लेता है किन्तु नीली किरणों को शोषित नहीं करता। शुद्ध पानी वायुमण्डलीय दबाव पर $0°C$ पर जम कर बर्फ बन जाता है और $100°C$ पर उबलने लगता है। यह दो तत्वों हाइड्रोजन व आक्सीजन से बनी है जिनके भारों में अनुपात 1·008:8·000 है। इन दो तत्वों को सिर्फ मिला देने से ही पानी नहीं बनता बल्कि इसके लिए विद्युत प्रवाहित करना पड़ता है। चूंकि यह प्रकृति में बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है अतः इसे रासायनिक क्रियाओं की सहायता से बनाने की आवश्यकता नहीं होती। पानी को इसके तत्वों आक्सीजन व हाइड्रोजन में विद्युत धारा के प्रयोग से विभक्त भी किया जा सकता है।

यह एक अच्छा घोलक है तथा गैस, ठोस व द्रव को थोड़ी-बहुत मात्रा में अवश्य घुला लेता है। इसकी घोलने की क्षमता अन्य घोलकों से कहीं कहीं पर बहुत ज्यादा है। शुद्ध पानी ताप तथा विद्युत का कुचालक है।

पानी तीन रूप में मिलता है। द्रव रूप में साधारण पानी, ठोस रूप में बर्फ तथा गैस रूप में वाष्प या भाप।
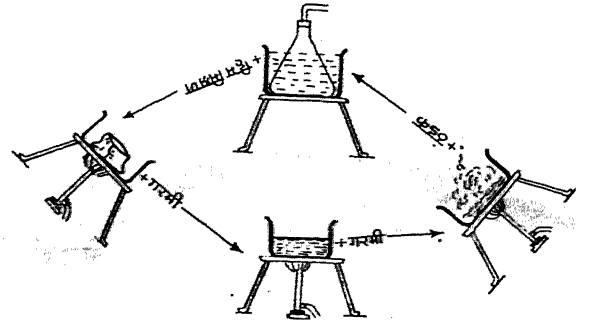
पानी के इन रूपों को समझने के लिए एक छोटा सा प्रयोग किया जा सकता है कांच के एक बीकर में थोड़ा सा बर्फ ले लीजिए। इसे हल्की आँच पर गर्म करें। आप देखेंगे कि बर्फ पिघलकर पानी बन जाता है। अर्थात् पानी का ठोस रूप गरमी पाने पर द्रव रूप में बदल जाता है। अब इस पानी को गर्म करें। आप देखेंगे कि पानी वाष्प बनकर उड़ रहा है। अर्थात् पानी का द्रव रूप गरमी पाने से गैस रूप में बदल जाता है। अब एक फ्लास्क में वाष्प इकट्ठा कीजिए। इस फ्लास्क को ठंडे पानी में डुबो दीजिए। आप देखेंगे कि फ्लास्क की भीतरी दीवारों पर पानी की छोटी-छोटी बूंदे जमा हो जाती हैं। अर्थात् पानी का वाष्प रूप ठंडा होने पर द्रव

रूप में बदल जाता है। अब इस फ़्लास्क को चारों ओर हिममिश्रण (बर्फ और नमक का मिश्रण, तापक्रम–22°C) से ढक दीजिए। थोड़ी देर बाद आप देखेंगे कि फ्लास्क का पानी बर्फ बन गया है। अर्थात् पानी का द्रव रूप ठंडा करने पर ठोस रूप में बदल जाता है।

इस प्रयोग से यह सिद्ध हो जाता है कि बर्फ, द्रव-पानी तथा वाष्प, तीनों ही पानी के अलग-अलग रूप हैं तथा एक रूप से दूसरे रूप में बदलने के लिए ताप में परिवर्तन करना आवश्यक है। यह याद रखने योग्य बात है कि पानी हर ताप पर वाष्प रूप में परिणत होता रहता है परंतु केवल एक निश्चित ताप O°C पर ही ठोस रूप बर्फ में बदलता है।

पानी कहाँ जाता है ?

जब वर्षा होती है तब गिरती हुयी पानी की बूंदे वायुमण्डल के कुछ गैसों, धुँए तथा धूल आदि को भी अपने साथ लेकर आती है। कुछ समय तक वर्षा होने के बाद हवा की सब अशुद्धियाँ पानी में घुलकर या बहकर निकल जाती हैं और फिर वर्षा का पानी काफी शुद्ध गिरता है। वर्षा के पानी का लगभग 25 से 40 प्रतिशत भाग जमीन के भीतर चला जाता है। जमीन के अन्दर यह पानी विभिन्न पदार्थों के सम्पर्क में आता है तथा ये पदार्थ
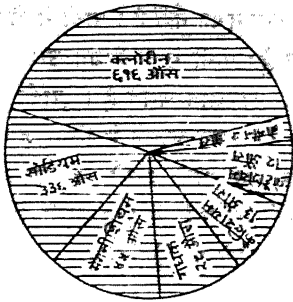
अपनी घुलनशीलता के अनुसार पानी में घुलते जाते हैं। जमीन के अंदर बहने वाले इस पानी के मार्ग में जब कोई चट्टान रुकावट डालती है तो पानी वहीं रुक जाता है और फिर अपने दबाव से या तो सोतों के रूप में ऊपर आ जाता है या वहीं इकट्ठा रहता है जो फिर खोदने पर कुँओं के रूप में मिलता है। अधिक गहराई से निकलने वाले सोतों का पानी गहराई में अधिक गर्म होने के कारण गर्म होता है। वर्षा के जल का दूसरा भाग नालों सोतों, तालाब व नदियों के रूप में बहता है। नदी का यह पानी भी मिट्टी से खनिज पदार्थ आदि घोलता जाता है और सभी नदियों का पानी अंत में समुद्र में पहुँचता है। इसी कारण समुद्र के पानी में सबसे अधिक घुले हुए पदार्थ होते हैं और पीने में खारा होता है। एक टन समुद्र के पानी में क्लोरीन 616, सोडियम 336, मैग्नीशियम 45, गंधक 28, कैल्शियम 13, पोटैशियम 12 तथा ब्रोमीन 2 औंस होता है इन्हीं घुलनशील पदार्थों के कारण नदी व कुँआँ के पानी से साबुन द्वारा फेन जल्दी नहीं उठता जबकि शुद्ध पानी से जल्दी फेन उठता है। इन्हें क्रमशः कठोर व मृदु पानी या भारी व हल्का पानी कहते हैं।

समुद्र, नदी, तालाब, नालों व वृक्षों की पत्तियों आदि से पानी बराबर वाष्प रूप में परिवर्तित होकर उड़ता रहता है। अर्थात हवा में वाष्प के कण सदैव रहते हैं। इसके लिए एक बीकर में बर्फ का टुकड़ा रख दीखिए। आप देखेंगे कि थोड़ी ही देर में बीकर के चारों ओर पानी की छोटी छोटी बूंदे जमा हो जाती हैं। यह पानी की बूंदे वायुमण्डल में स्थित वाष्प-कण हैं जो ठण्डा होने पर द्रव-पानी में बदल जाते हैं। यदि वातावरण का तापक्रम काफी कम हो तो ये वाष्पकण द्रवीभूत होकर धूल के कणों पर पानी की छोटी-छोटी बूंदों के रूप में जमा हो जाती हैं। इन्हें कुहाँसा कहते हैं। मोटे और घने कुहासे को कुहरा कहते हैं। सुबह ओस इसी कारण दिखायी पड़ती है। पत्तियों पर अधिक ओस जमने का कारण यह है कि हवा से प्राप्त पानी की बूंदों के अलावा पत्तियों के असंख्य छिद्रों से पानी वाष्प रूप में निकलता रहता है और रात में बाहर की ठंडी हवा में पानी की बूंदों में बदल जाती हैं।

सूर्य की गर्मी से हमारी धरती गर्म हो जाती है। इसलिए धरती के आसपास की हवा गर्म हो जाती है। यह गर्म हवा हल्की होने के कारण ऊपर 0 से 8 मीटर प्रति सेकेण्ड की गति से उठती है एवं साथ में पानी के इन वाष्पकणों को ऊपर ले जाती है। ऊपर हवा की ठंडी परतों के कारण ये वाष्पकण पानी की छोटी-छोटी बूंदों के रूप में बदल जाते हैं और हल्की होने के कारण हवा में लटकी रहती है। यदि ऊपर ताप 0°C से नीचे होता है तो ये बूंदे बर्फ के रवे बन जाते हैं। इनको उपल कहते हैं। जब ये रवे बहुत ठंडी परतों से नीचे गिरते हैं तो इन रवों के सम्पर्क में आने वाली पानी की बूंदें भी बर्फ बन जाती है। इस प्रकार रवों का आकार बढ़ने लगता है एवं वे हिम के रूप में नीचे गिरते हैं।

परंतु यदि ऊपर का तापक्रम 0°C से अधिक होता है तो ये पानी की बूंदे परस्पर मिलकर आकार में बढ़ती जाती हैं और जब इनका अर्धव्यास 0·001 मि० मीटर हो जाता है तो वे बादल के रूप में दिखाई देना आरंभ हो जाते हैं। इस ऊँचाई को बादलों का तल कहते हैं। इन बूंदों के गिरने का वेग 1 से० मीटर प्रति सेकेण्ड होता है परंतु चूंकि ऊपर उठने का वेग इससे अधिक होता है अतः यह बूंदे और ऊपर की ओर उठती हैं और बहुत जल्द ही इनका आकार इस प्रकार का हो जाता है कि वे स्थिर हो जाती हैं। इन बूंदों का आकार ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है त्यों-त्यों बादलों का रंग सफेद से भूरा होता जाता है। जब इन बूंदों का अर्धव्यास 0·0007 से० मीटर से अधिक हो जाता है तो ये बूदें हवा में लटकी नहीं रह सकती और ये भारी होने के कारण नीचे गिरने लगती हैं। इसे हम वर्षा कहते हैं।

यदि बादल एवं उसके वातावरण का तापक्रम 0°C से नीचे पहुँच जाता है तो पानी की बूंदे बर्फ के रूप में जम जाती है तथा उसी समय हिमवर्षा होती है। गिरते हुए कण मिलकर बहुत बड़े पिण्ड बन जाते हैं जिनको हिमफलक कहते हैं।

चूंकि पानी सदा वाष्प में परिणत होता रहता है और बादल बनते रहते हैं अतः पानी का यह चक्र अविराम गति से सदैव चलता रहता है। इस चक्र को पानी का चक्र कहते हैं।

पानी का महत्व :—

पानी पृथ्वी का सबसे अधिक व्यापक रूप से फैला पदार्थ है। पृथ्वी के धरातल का लगभग $\frac{5}{7}$ भाग पानी से ढका है। पानी हर एक मनुष्य, पौधा, पक्षी व जानवर के लिए आवश्यक है। एक मनुष्य बिना भोजन के कई महीने जिन्दा रह सकता है परंतु बिना पानी के उसकी मृत्यु और भी कम समय में हो सकती है। मनुष्य के शरीर में लगभग 70 प्रतिशत पानी होता है। अर्थात् यदि किसी मनुष्य का वजन 70 किलोग्राम है तो इसमें से 49 किलोग्राम सिर्फ पानी का वजन होता है। यह पानी पसीना, थूक, मूत्र व आँखों से बाहर निकलता है। शरीर में पानी का अंश कम हो जाने पर त्वचा सूखने लगती है और उस पर झुर्रियाँ पड़ने लगती है। इसी कारण बुढ़ापे में शरीर भद्दा हो जाता है जबकि बच्चों के शरीर में पानी अधिक होने के कारण उनका शरीर कोमल चिकना व सुन्दर होता है।

दूध में 88 प्रतिशत, सेब में 80 प्रतिशत शलजम में 90 प्रतिशत तथा खीरा व ककड़ी में 97 प्रतिशत पानी होता है।

पानी द्वारा नहाने से शरीर स्वच्छ रहता है। पानी द्वारा आग से रक्षा की जाती है। पानी के बिना भोजन पकाना व खेती करना संभव नहीं है। पानी से ही गंदे कपड़े व बर्तन धोए जाते हैं। पानी से ही विद्युत उत्पन्न की जाती है जिससे बड़े-बडे कारखाने चलते हैं। पानी की वाष्प-शक्ति का उपयोग रेल-इंजन चलाने में किया जाता है।

पानी वाष्प रूप में सारी धरती को घेरे हुए रहती है। यह वाष्प धरती को सूर्य से प्राप्त गरमी को विकिरण द्वारा बाहर निकल जाने से रोकती है। इस वाष्प के बिना जीवन संभव नहीं है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि पानी से ही जीवन है या पानी ही हमारे जीवन का आधार है।

● ●

फ़ोम काँच

कार्क की तरह हल्का तथा गर्मी को रोकने वाले एक प्रकार का फोम कांच बनाया गया है। इस फोमकांच पर अग्नि का असर नहीं होता है और न ही यह नमी को ग्रहण करता है। यह केन्द्रीय कांच एवं सिरामिक अनुसंधान, संस्थान कलकत्ता में विकसित किया गया है।

इस कांच का पेट्रोरसायन, खाद्य उद्योग, शीत भंडार, वातानुकूलित भवनों आदि में अच्छी तरह उपयोग किया जा सकता है।

नेत्र हीनों के लिए चश्में

अब एक ऐसी पराश्रव्य चश्में वाली युक्ति विकसित की गई है जिससे नेत्रहीन व्यक्ति भी देख सकेंगे। इसमें अन्तर केवल इतना है कि अन्धे व्यक्ति देखने में आंखों के बदले कानों का उपयोग करेंगे।

यह चश्मा कैन्टरबरी विश्वविद्यालय, न्यूजीलैंड, में विकसित किया गया है। इसको बनाने वाले प्रो० लेजली का कहना है कि इस चश्में की सहायता से पहनने वाले को 20 फुट की दूरी से वस्तु का आभास हो सकेगा। यह चश्मा वस्तुओं के ध्वनिचित्र ग्रहण करता है। इस चश्में में विशेष प्रकार का फ्रेम होता है तथा तीन ट्रांसड्यूसर होते हैं। एक ट्रांसड्यूसर पराश्रव्य किरणपुंज को भेजने तथा अन्य दो कानों में संकेत ग्रहण करने का कार्य करते हैं।

यह उपकरण झाड़ी, दीवार, खम्भे आदि के अन्तर को आसानी से बता सकता है।

दो पहियों वाले बहुउपयोगी ट्रैक्टर

इंगलैंड की एक फर्म ने एक दो पहियों वाले ट्रैक्टर का विकास किया है। यह ट्रैक्टर अन्य उपकरणों के साथ जोड़ने से जुताई, बुवाई, खुदाई तथा कटाई आदि कार्य कर सकता है।

इसके अतिरिक्त बिजली से जोड़ दिये जाने पर इस ट्रैक्टर द्वारा आरा मशीन, छेद करने के लिये ड्रिल तथा छोटी छोटी झाड़ियां काटने की मशीन भी चलाई जा सकती है।

आयु बढ़ाने की औषधि

परिपक्व अवस्था के आने से पूर्व ही लोगों को वृद्ध होने से रोकने के लिये वैज्ञानिकों ने औषधियां तैयार कर ली है।

रूसी वैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य की आयु 'सामान्यत:' 90 और 120 वर्ष के बीच होनी चाहिये।

लेकिन लोग अपनी पूरी उम्र पर पहुँचे बिना पहिले ही मर जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे विटामिनों, ऐमिनो अम्लों, और अन्य तत्वों के चिरकारी अभाव से पीड़ित रहते हैं।

दंत क्षय रोकने की नई औषधि

दंत क्षय रोकने की एक नई औषधि का पता लगाया गया है। यह सफेद चूर्ण की तरह की औषधि मिठाई, दूध, रोटी आदि किसी भी खाद्य पदार्थ में मिलाकर खायी जा सकती है।

कैल्सियम ग्लिसरोफास्फेट के इस चूर्णको अधिकमात्रा में खाने से कोई हानिकर प्रभाव भी देखनेमें नहीं आये हैं। रायल कालेज आफ सर्जन्स इंग्लैंड के दंत विभाग में बन्दरों पर इसका प्रयोग किया गया है। इसकी एक प्रतिशत मात्रा देने से दंत क्षय रुक गया।

डा० डब्लू० एच० बोवेन का कहना है कि इस चूर्ण के प्रयोग से दांतों की सतह मजबूत हो जाती है और बैक्टीरिया द्वारा बनाये गये एसिड का कोई प्रभाव नहीं होने पाता और इस तरह दंत क्षय रुक जाता है।

क्षुधा का नियन्त्रण

अधिकांश व्यक्ति यह समझते हैं कि जब पेट भर जाता है तो क्षुधा शान्त हो जाती है। परन्तु तथ्य ऐसा नहीं है। पर्याप्त ऊर्जायुक्त भोजन ग्रहण करने पर ही हमारी भूख मिटती है।

क्षुधा पर नियंत्रण करनेवाली मस्तिष्क के निचले भाग में स्थित कुछ कोशिकायें होती हैं जिन्हें एपेस्टार कहते हैं। एपेस्टार बहुत कुछस्वचलित नियंत्रक की भाँतिकार्य करती हैं। जब हमारे रक्त में शर्करा की मात्रा एक स्तर से कम हो जाती है तो यह कोशिकायें सक्रिय हो जाती हैं और हमें 'भूख' महसूस होने लगती है। रक्त में शर्कराओं की मात्रा एक स्तर विशेष तक पहुँच जाने पर यह स्वयं निष्क्रिय हो जाती हैं और हमारी भूख शांत हो जाती है।

नया उपग्रह

उपग्रहों से अब मानव उपयोगी सेवायें प्राप्त करने का कार्य भी किया जा सकता है। आजकल एक ऐसे उपग्रह के निर्माण पर कार्य हो रहा है जिससे उत्तरी अटलांटिक में आने वाली विशाल बर्फ शिलाओं की पूर्व सूचना मिल सकेगी। यही नहीं इसके अतिरिक्त इस उपग्रह से अन्य अनेक सूचनायें भी प्राप्त की जा सकती हैं। जिनके आधार पर भारत में फसलों को नुकसान पहुँचने से बचाया जा सकता है। इसी तरह बर्फ पिघलने के कारण बाढ़ आने से कैलिफोर्निया वासियों को जो भय बना रहता है उसकी भी पूरी सूचना इस उपग्रह द्वारा दी जा सकती है।

यह उपग्रह 910 कि० मी० की ऊंचाई से चित्र खींचने के यंत्रों से लैस होगा और एक सप्ताह में 300,000 चित्र पृथ्वी को भेज सकेगा।

इस उपग्रह का उपयोग करके वैज्ञानिक पृथ्वी से ही ग्वाटेमाला में भूमि का उपयोग, सऊदी अरेबिया में टिड्डियों का प्रजनन और जापान में गिरी हुई बर्फ का अध्ययन कर सकेंगे।

अमेरिकी अन्तरिक्ष वैज्ञानिक इस उपग्रह को 1972 में छोड़ने जा रहे हैं।

विज्ञान-वार्ता

भारत के भूउपग्रह टेलिविजन कार्यक्रम को बढ़ावा देने की योजना।

भारत के अहमदाबाद स्थित प्रयोगात्मक भूतलीय केन्द्र में संशोधन और सुधार के लिये एक इंजीनियरिंग ठेका दिया गया है। अमेरिका के उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन के कृत्रिम भू उपग्रह की सहायता से इस केन्द्र का एक शैक्षणिक टेलिविजन परीक्षण में प्रयोग किया जायेगा।

भारत कृषि कार्यों में सुधार करने, परिवार नियोजन की शिक्षा देने तथा सामाजिक विकास में सहायता करने विषयक अपने राष्ट्रीय कार्यक्रमों में इस प्रस्तावित भू-उपग्रह टेलिविजन परीक्षण का प्रयोग करेगा।

भारत द्वारा लगभग 5,000 भारतीय गांवों के लिये शिक्षण सम्बन्धी टेलिविजन कार्यक्रम प्रसारित किये जायेंगे। यह एक ऐसा प्रथम परीक्षण होगा, जिसके द्वारा बड़े भूतलीय रिले स्टेशनों का प्रयोग किये बिना, भूउपग्रह की सहायता से गांव के छोटे-छोटे रिसीवरों के लिये टेलिविजन कार्यक्रम प्रसारित किये जायेंगे।

ह्फ्स एयर क्राफ्ट सिस्टम्स इण्टरनेशनल ने घोषणा की है कि उसे इण्टरनेशनल टेलि-कम्युनिकेशन यूनियन (आई० टी० यू०) द्वारा 2 लाख डालर दिया गया है, जो संयुक्तराष्ट्र-संघ के विकास कार्य-क्रम के लिये कार्य कर रहा है।

संयुक्तराष्ट्र-संघ की एजेन्सियों और 'आई० टी० यू०' के सहयोग में भारत द्वारा किये गये विस्तृत अध्ययनों के परिणामस्वरूप टेलिविजन कार्यक्रमों को सीधे प्रसारित करने के लिये भूउपग्रह का प्रयोग करने सम्बन्धी यह भारतीय योजना तैयार हुई है। 1969 में इस परीक्षण को करने के लिये भारत के लिये भारत तथा अमेरिका के अन्तरिक्ष सम्बन्धी अधिकारियों द्वारा एक समझौते पर हस्ताक्षर किये गये थे।

भारत सरकार 'नैसा' के एक भूउपग्रह की सहायता से अपने भूतलीय स्टेशन का प्रयोग करेगी, जो 1971 में विषुवत रेखा के ऊपर 22,300 मील की ऊंचाई पर एक कक्षा में स्थापित होगा। वर्तमान योजनाओं के अनुसार 1974 के प्रारम्भ में नैसा द्वारा कुछ परीक्षण किये जाने के पश्चात्, यह भूउपग्रह एक वर्ष तक भारत द्वारा परीक्षण के लिये परिवर्तित कक्षा में भेज दिया जायेगा। भारत का यह कार्यक्रम 1974 के मध्य में प्रारम्भ होगा।

'विज्ञान' के सदस्यों की सूची का एक परिशिष्ठ

423—डा० एस० एस० जोशी, प्राध्यापक,
राजकीय इन्जीनियरिंग कालेज, रायपुर, म० प्र०

424—डा० ए० एन० झा, प्राध्यापक,
गवर्नमेंट कालेज आफ इंजीनियरिंग एण्ड
टेक्नालाजी—रायपुर म० प्र०

425—श्री एस० के०, सेलर, रीडर,
गवर्नमेंट कालेज, रायपुर म० प्र०

426—श्री कृष्णदास सोलंकी,
रसायन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन म० प्र०

427—श्री एस० सी० जैन,
द्वारा श्री दशरथ जैन, एडवोकेट,
पो० छतरपुर म० प्र०

428—डा० डी० डी० शर्मा,
प्रो० रसायन—विभाग,
इंजीनियरिंग कालेज, रीवां म० प्र०

429—प्रधानाध्यापक,
श्री सरस्वती माध्यमिकशाला,
ग्रा०—पो० वाहियल तहसील जेगारा,
जिला भरोंच (गुजरात)

430—प्रधानाध्यापक,
राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
कंठल (अजमेर-राजस्थान)

431—डा० बनवारी लाल शर्मा,
गणित विभाग, प्रयाग वि० वि०, प्रयाग

432—श्री गुलाबशंकर पाण्डेय,
लाला रामलाल अग्रवाल इन्टर कालेज,
सिरसा (इलाहाबाद)

433—आचार्य,
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
पो० वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

434—श्री जगदीशचन्द्र जोशी, शोध छात्र
जे० के० इन्स्टीट्यूट ऑफ अप्लाइड फिजिक्स,
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

435—श्री विष्णुचन्द्र अग्रवाल, शोध छात्र,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय
इलाहाबाद—2

436—श्री रघुवरदयाल श्रीवास्तव, शोध छात्र,
भौतिकी छात्र, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद—2

437—श्री लक्ष्मीकान्त सिंह, शोध छात्र,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद–2

438—डा० सत्यपाल, शोध छात्र,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद–2

439—श्री देवीप्रसाद अग्रवाल, शोध छात्र,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद–2

440—डा० सुशीलकुमार कार, रीडर, भौतिकी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद–2

441—श्री महेन्द्रकुमार, शोध छात्र,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय
इलाहाबाद–2

442—श्री दिनेशकुमार शुक्ल, शोध छात्र,
भौतिकी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद–2

443—श्री अभयकुमार डे, शोध छात्र,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद–2

444—श्री वीरेन्द्र बहादुर सिंह शोध छात्र,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद–2

445—डा० शंकरनाथ पुरी शोध छात्र,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

446—डा० जनार्दन सिंह, शोध छात्र,
भौतिकी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

447—डा० राजेन्द्र प्रसाद गुप्त,
रिसर्च आफिसर भौतिकी विभाग,
प्रयाग वि० वि० इलाहाबाद—2

448—श्री पारसनाथ राम,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद–2

449—श्री जनार्दन दुबे,
37 हिन्दू होस्टल, इलाहाबाद–2

450—श्री विजयबहादुर सिंह, शोधछात्र,
अप्लाइड फिजिक्स, प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद–2

451—श्री हरिश्चन्द्र गर्ग,
72/79 महाजनी टोला, इलाहाबाद–3

452—श्री रवीन्द्र दुबे, प्रवक्ता भौतिकशास्त्र विभाग
जनता विद्यालय, अजीतमल–इटावा उ० प्र०

453—डा० वी० पी० खरे,
आफिस असिस्टेन्ट प्रो०,
27/432 वेस्ट. बुधवारी, छिंदवाड़ा (म० प्र०)

454—डा० अमरेन्द्रनाथ विश्नोई,
प्रवक्ता भौतिकी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद–2

455—डा० प्रेमकिशोर शर्मा,
रीडर, भौतिकी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद–2

456—डा० रमेशचन्द्र माहेश्वरी,
रीडर, भौतिकी विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

457—श्री प्रेमचन्द्र पाण्डेय,
162 टैगोर टाऊन, इलाहाबाद–2

458—डा० इन्द्रदेव सिंह,
रिसर्च स्कालर, भौतिकी विभाग,
गोरखपुर वि० वि०, गोरखपुर

459—डा० ललिता प्रसाद वर्मा,
प्रवक्ता भौतिकी विभाग
काशी नरेश राजकीय डिग्री कालेज,
ज्ञानपुर (वाराणसी)

460—श्री आनन्द पुत्र डा० वी० डी० शाहू,
स्टेट डिस्पेन्सरी पोस्ट बोरिओ संथाल परगना
(बिहार)

461—श्री रतनचन्द्र लखनपाल,
प्राध्यापक भौतिकी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, धर्मशाला (हि० प्र०)

462—डा० प्रधानाध्यापक,
तिलकधारी डिग्री कालेज,
जौनपुर (उ० प्र०)

463—श्री आश्विन कुमार एल० जोशी,
संचालक लायब्रेरी–कदार (ई० श्री० के० के०)
हाईस्कूल, सावर कुण्डला (भावनगर-गुजरात)

464—श्री राजकुमार शर्मा, द्वारा डा० एस० पी०मुशरान,
रसायन विभाग, इ० वि० वि० इलाहाबाद-2

465—श्री कैलाशचन्द्र गुप्त,
द्वारा डा० एस० पी० मुशरान, रसायन विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय—इलाहाबाद

466—श्री अजय कुमार बोस,
11 सी० पी० बेनर्जी रोड,
एलनगंज इलाहाबाद—2

467—श्री रमेशचन्द्र घिल्डियाल
202 कर्नलगंज, इलाहाबाद–2

468—श्री बद्रीविशाल अग्रवाल
33 जार्ज टाउन, प्रयाग—2

469—श्री सत्य प्रकाश,
497 कर्नलगंज, इलाहाबाद–2

470—श्री सतीश कुमार श्रीवास्तव,
10/1 बैंक रोड, इलाहाबाद—2

471—श्री एस० बिहारी सिंह सुपुत्र श्री वि० सिंह,
255 ए० नया ममफोर्डगंज, प्रयाग।

472—श्री शैलेन्द्र सक्सेना
71 डा० अमरनाथ झा रोड, इलाहाबाद

473—कु० किरन टण्डन,
15 बैंक रोड, प्रयाग।

474—एच० सी० सहारिया,
57 अमरनाथ झा हास्टल,
इलाहाबाद—2

475—वू माइशीन,
135 पान दरीबा, इलाहाबाद—3

476—पुस्तकाध्यक्ष, जिला पुस्तकालय बूंदी,
बूंदी (राजस्थान)

477—चित्रकार शर्मा, चित्रकार कुटीर:
राजगांग पुर, उड़ीसा।

478—प्रधानाध्यापक,
राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, हलखोली

479—प्रधानाध्यापक,
जवाहर विद्यापीठ, उ० प्रा० विद्यालय, कानोड़
(उदयपुर)

480—डा० बैकुण्ठनाथ मिश्र,
प्रवक्ता, भौतिकी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—2

481—डा० सुरेशचन्द्र देवरानी, रिसर्च स्कालर, भौतिकी
विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—2

482—प्रिंसिपल, वन्दना विद्यालय, भद्रा आफिस के
पास पानीगेट, बड़ौदा (गुजरात)

483—डा० एल० डी० तिवारी,
बरेली कालेज, बरेली
बरेली

484—प्रधानाध्यापक,
गवर्नमेन्ट हा० से० स्कूल
गुधागोरजी (झुन्झुनू-राज०)

485—श्री स्पान्सर, साइन्टिफि क्लब,
एस० एम० पी० एच० एस० स्कूल, धौलपुर

486—श्री भास्कर सिंह
ग्राम गुरूवाइन डबरी, पो० कोदवा
तहसील-मुंगेली, बिलासपुर (म० प्र०)

487—श्री प्र० वि० सोवनी
बंगला क्र०—1, फर्ग्युसन महाविद्यालय,
पूना—4

ी अरिन्दम
प्रवक्ता भौतिक शास्त्र, जनता पी० जी० कालेज,
अजीतमल (इटावा)

489—श्री विजयसिंह,
प्रवक्ता वनस्पति-विज्ञान विभाग,
जनता महाविद्यालय, अजीतमल (इटावा)

490—श्री सुरेशनारायण चौधरी,
प्रवक्ता. जनता इण्टर कालेज,
अजीतमल इटावा

491—श्री संतोषनारायण सिंह,
प्राध्यापक, जनता इण्टर कालेज,
अजीतमल (इटावा)

492—श्री जगदम्बाप्रसाद पाण्डेय,
प्रवक्ता रसायन विभाग,
जनता इण्टर कालेज, अजीतमल (इटावा)

493—श्री कैलाशनाथ द्विवेदी,
संस्कृत विभागाध्यक्ष,
जनता महाविद्यालय, अजीतमल (इटावा)

494—श्री हरिशंकर शुक्ल,
प्रवक्ता, जनता महाविद्यालय,
अजीतमल (इटावा)

495—श्री राजेन्द्रनाथ पाण्डेय,
गणित विभाग, जनता महाविद्यालय,
अजीतमल (इटावा)

496—डा० अरविन्दकुमार दुबे,
द्वारा श्री नवीनचन्द्र दुबे,
मो० हरदेवगंज, ड० हरदेवगंज (फर्रुखाबाद)

497—श्री प्रेमनारायण मिश्र,
अध्यक्ष-कृषि वनस्पति विभाग,
जनता महाविद्यालय, अजीतमल (इटावा)

498—श्री सूबेदार राजपूत,
गणित विभाग
जनता महाविद्यालय, अजतमल (इटावा)

499—डा० धीरेन्द्रकुमार दुबे,
वनस्पति विभाग,
राजा बलवन्तसिंह कालेज बिचपुरी (आगरा)

500—श्री ओमप्रकाश दीक्षित
डिमान्स्ट्रेटर, रसायन विभाग,
जनता इण्टरकालेज, अजीतमल (इटावा)

501—श्री विजय प्रसाद शर्मा,
अध्यक्ष, कृषि-अर्थशास्त्र
जनता महाविद्यालय, अजीतमल (इटावा)

502—श्री लोटनसिंह गुप्त
प्राध्यापक, जनता महाविद्यालय,
अजीतमल (इटावा)

503—श्री नवीनचन्द्र तिवारी
प्रवक्ता, रसायन विभाग,
जनता महाविद्यालय, अजीतमल (इटावा)

504—श्री राजेश कुमार,
240 नया ममफोर्डगंज, इलाहाबाद–2

505—श्री पदमाकर ठाकुर,
161 अलोपीबाग, इलाहाबाद–6

506—श्री जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव,
231 बक्सी खुर्द, इलाहाबाद–6

507—श्री विमलेशकुमार श्रीवास्तव,
द्वारा श्रीचन्द्रमोहन श्रीवास्त्वव,
सी० डी० ए० पेन्शन, इलाहाबाद

508—श्री शैलेन्द्र भट्ट
द्वारा डा० आर० डी० तिवारी
अध्यक्ष रसायन विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—2

509—श्री विष्णुप्रसाद श्रीवास्तव
द्वारा डा० पूर्णचन्द्र गुप्ता
रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय
इलाहाबाद–2

510—श्री अरुणकुमार
70 गंगानाथ झा हास्टल,
इलाहाबाद—2

511—कु० रजनी जैन
5 सरोजनी नायडू हास्टल,
इलाहाबाद–2

512—कु० अलका चतुर्वेदी
1 कचेहरी रोड,
इलाहाबाद—2

513—कु० रमा शुक्ला
2 टैगोर टाऊन, इलाहाबाद–2

514—प्राचार्य
जे० एस० हिन्दू कालेज,
अमरोहा (मुरादाबाद)

515—प्राचार्य,
शासकीय बालक महात्मा गांधी उच्चतर
महाविद्यालय, जावरा (रतलाम म० प्र०)

516—श्री राधेश्याम शर्मा
सुभाष चौक, सिलिरावजी की मंडी
जयपुर (राजस्थान)

517—श्री शिवानन्द मिश्र, विज्ञान अध्यापक,
नगरपालिका बालक उ० मा० विद्यालय,
राजाबाजार, जौनपुर

518—श्री विश्वम्भर प्रसाद
विश्व-सदन, न्यू डाक बंगला रोड,
पटना—1

519—श्री इन्द्रासन प्रसाद यादव
मो० पतरक, पो० पतरव, वाया बरौनी (सारन)

520—डा० रामनिवास राय,
भौतिकी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

521—डा० हरिमोहन
भौतिकी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

522—श्री रानगोपाल, शोध छात्र,
भौतिकी विभाग, प्र० वि० वि०, इलाहाबाद

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० |3|5|

भाग 108 | कार्तिक 2027 विक्र०, 1892 शक | अक्टूबर 1971 | संख्या 10

मानव की सेवा में अणु

विष्णु दत्त शर्मा

रेडियो-सक्रिय आइसोटोप क्या हैं तथा उनका अन्तर-नाभिक ऊर्जा से क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये हमें अणु की दुनिया की ओर लौटना होगा। जो रासायनिक तत्व अपनी आणविक संख्या में समान परन्तु भार में पृथक हों, उनको आइसोटोप कहते हैं। इसका नामकरण यूनानी शब्दों से हुआ है (समान) और (स्थान)। आज मानव जाति को 105 तत्वों का और उनके 1,100 से भी अधिक आइसोटोपों का पता है। प्रत्यक्षतः सब रासायनिक तत्व एक रासायनिक कीं सरणी की भांति होते हैं।

प्रकृति में दो प्रकार के आइसोटोप हैं। एक स्थायी, जो विघटित नहीं होते और न दूसरे तत्वों में बदलते हैं, दूसरे रेडियो-सक्रिय या अस्थायी, जिनमें सहज विघटन की प्रवृत्ति होती है। मनुष्य को 270 स्थायी आइसोटोपों और लगभग 40 रेडियो-सक्रिय स्वाभाविक आइसोटोपों का पता था। परन्तु जब मनुष्य ने आणविक ऊर्जा प्राप्त करने के साधन खोज निकाले तब 800 नये रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों के भंडार का और पता चला। एक ही तत्व के आइसोटोप कई भौतिक गुणों में और विशेषतः उनके आणविक भारों और रेडियो-सक्रियता में भिन्न होते हैं। इनका विकिरण गाइगर-मूलर काउंटर जैसे यन्त्र द्वारा नापा जाता है। प्रत्येक रेडियो सक्रिय आइसोटोप का अपना विशिष्ट प्रकार का विकिरण होता है और अपनी विघटन की एक गति होती है।

रेडियो-सक्रिय आइसोटोप प्रायः कृत्रिम रीति से पैदा किये जाते हैं। इनका उत्पादन बड़े पैमाने पर अणु-भट्टियों की खोज के बाद ही सम्भव हो सका। वे 'गर्म' प्रयोगशालायें जहां रेडियो-सक्रिय आइसोटोप पैदा किये जाते हैं, साधारणतः शक्तिशाली अणु भट्टियों के निकट स्थित होती है। ये अणु भट्टियां क्लीवाणु और गामा-किरणों की विस्तृत धाराओं के स्रोत है।

ये उत्पन्न किये गये रेडियो-सक्रिय आइसोटोप मनुष्य के

लिए बहुत ही लाभप्रद है और देश की अर्थ व्यवस्था को सुधारने में भी उपयोगी सिद्ध हुये हैं।

आदमी कांच, पानी और हवा की परतों में से देख सकता है, परन्तु वह एक पतले से अपारदर्शी कागज में से कुछ भी नहीं देख सकता। धातु, लकड़ी या मिट्टी के भीतर उसकी दृष्टि नहीं बैठ सकती। वहाँ कितने ही शक्तिशाली चश्मे क्यों न हों, आंखों की सहायता नहीं कर सकते। दृष्टि की इस आन्तरिक कमजोरी को दूर करने के लिये, आदमी को आज अधिकतर सहायता रेडियो-सक्रिय विकिरण की लेनी होती है। धातुओं की वस्तुओं की सतह से बहुत भीतर गहरे में, यदि कहीं ढालते समय छेद रह जाएँ, बुलबुले या दरारें रह जायें, तो उनका ये विशेष यन्त्र पता लगा देते हैं। उदाहरणार्थ-इस्पात के पाइपों में किसी दोष का पता लगाने के लिये चांदी के रेडियो, सक्रिय आइसोटोपों का प्रयोग किया जाता है।

रेडियो सक्रिय आइसोटोपों की सहायता से खुली भट्टी के धातुमल में फास्फोरस का अंश कितना है, यह भी पता चलता है और गोल लिपटी हुई इस्पात की चादरों की मोटाई जानने में भी उनकी मदद होती है। ऊंचे तापमान पर पिघलने वाली धातुओं जैसे कम वाष्पमान वाले पदार्थों में भी वाष्प के दबाव को उसके सहारे नापा जा सकता है।

कैलियर रोलिंग–मिलों में काम में लाये जाते हैं, जिनके सहारे हिलती हुई धातु की पट्टी की मुटाई का नाप लिया जाता है और उसे न्यूनाधिक किया जाता है। इनके कारण इस्पात लपेटने की गति बढ़ायी जाती है। इस्पात की पट्टियों पर ह्विन की कलई की मुटाई विशेष यन्त्रों से नापी जाती है, और दूसरी युक्ति से धातु की पट्टियां छांटी जाती हैं।

पृथ्वी की गोद में तेल के भंडार का पता लगाने के लिये न्यूट्रॉन-गामा नाभिक नमूने काम में लाये जाते हैं। एक विशेष यंत्र जिसे कि गहरा चार्ज करते हैं, कुएं में उतारा जाता है। उसमें न्यूट्रोन का स्रोत और गामा विकिरण रेकार्ड करने का यंत्र भी शामिल है। इस स्रोत से निकलने वाले न्यूट्रॉन आस-पास की चट्टान पर बम-वर्षा करते हैं, और उसमें कृत्रिम गामा प्रक्रिया का लेखा जोखा एक यंत्र द्वारा रखा जाता है और एक टेप अंश पर रेकार्ड कर लिया जाता है। इससे निकलने वाली वर्तुल रेखा से पता चलता है कि किस विशेष क्षेत्र में कितना तेल और कितना पानी छिपा हुआ है।

रेडियो-सक्रिय पद्धतियों के लाभ लघु उद्योगों तक फैले हैं। उदाहरणार्थ, वस्त्र उद्योग में रेडियों सक्रिय थैलियम युक्तियों का प्रयोग कपास के धागे की मजबूती का पता लगाने में और कपड़ों को लगाये जाने वाले रंगों के वजन का अनुमान लगाने में होता है। उद्योगों में गामा-निरीक्षण, गामा-विकिरणक के लिये कन्टेनर, समतल बनाने वाले उपकरण, द्रव धातुओं की गहराई के मापक, तनाव के मापक, द्रव क्लोरीन की गहराई के मापक, बिना सम्पर्क वाली तुला, कलई के मोटेपन के मापक, गैस गुजरने के समय को निश्चित करने वाले उपकरण और रेडियो सक्रिय संख्या गणक इत्यादि उपकरणों का उपयोग इन्हीं आइसोटोपों के कारण हो रहा है।

प्राणिशास्त्री और कृषि वैज्ञानिक अब ज़मीन की सतह के नीचे होने वाली बदलती प्रक्रियाओं को देखने लगे हैं, वे यह भी निरीक्षण करते हैं कि पौधे कैसे खाद्य और सिंचन को अपनाते हैं। वे उनके कोषों में जो देहगत-रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं, उन्हें देखते हैं। और यह सब कुछ होता है फासफोरस, कार्बन, कैलसियम, कोबाल्ट, जस्ता, तांबा, स्ट्रॉन्शियम और कुछ अन्य तत्वों के रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों के सहारे। फसलों और पशुओं की वृद्धि में भी रेडियो-आइसोटोपों का बहुत हाथ है। वनस्पतियों की शरीर-रचना-प्रक्रियाओं के अध्ययन में फासफोरस और कार्बन के रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों का उपयोग करने वाले यंत्र काम में लाये जाते हैं।

जड़ों का विकास और उनका ज़मीन में फैलना, एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका पुराने जमाने में, उनको खोद कर पता लगाने के परिश्रम साध्य पद्धति से अध्ययन किया

जाता था। अब रेडियो सक्रिय आइसोटोपों के लेबल किये उर्वरक जड़ों के पास की जमीन के विविध स्तरों में रख दिये जाते हैं और पत्तों में रेडियो-सक्रियता का विकास, अन्वेषक को मिट्टी के भिन्न-भिन्न स्तरों में जड़ों की प्रगति की सूचना दे देता है। वही अन्वेषण की पद्धति, जड़ों के विकास के विभिन्न प्रकार की सिंचाई, तापमान, कृषि तथा अन्य साधनों के बारे में भी काम में लाई जाती है।

सोवियत कृषि-वैज्ञानिकों ने रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों के सहारे पौधों के पोषण की पद्धति का अध्ययन किया और अनुभव किया कि फसल सुधारने के मामले में जड़ों को छोड़ अन्य हिस्सों को पोषण देने की पद्धतियां जैसे छिड़कना, पराग योग और धुवां देना आदि का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जमीन के भीतर कीटाणुओं द्वारा पौधों के पोषण में जो भाग लिया जाता रहा, वह भी इससे व्यक्त हो गया।

अनुसंधानों से पता चला कि धान्यों की फसलों और सब्जियों, उद्योग वाले पौधों और दूसरे खेती के पौधों को फास्फोरस की खाद देने की सबसे प्रभावशाली विधि क्या है? साथ ही साथ यह भी अनुभव हुआ कि रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट के उपयोग से बेहतर फसल पैदा हुई। रेडियो सक्रिय आइसोटोपों के कारण पौधों को बीमारियों से और इस फसल नाशक जन्तुओं से बचाने के रासायनिक उपाय खोजने का बहुत अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। आयनीकरण-किरणों का प्रयोग भोजन सामग्री की सुरक्षा व डब्बों में बंद करने में और तरकारियों व आलुओं को जमा करने की अवधि बढ़ाने में, करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आयनीकरण-किरण बीजांकुर क्रिया को तथा खेती की फसलों की प्रारंभिक उत्पत्ति को बढ़ावा देती है। इस प्रकार वह उपज की मात्रा को बढ़ा देती है।

यदि फासफोरस को किसी तालाब आदि में डाला जाये तो खाद रूप में मछली न केवल मुंह या गलफड़े से ही ग्रहण करती है बल्कि शरीर द्वारा भी फासफोरस ग्रहण किया जाता है, जिससे कि विकास और भी शीघ्र होता है।

चिकित्सा शास्त्र में रेडियो-सक्रिय आइसोटोप अपना विशेष महत्व रखते हैं। अस्पतालों, पालिक्लिनिकों, सैनेटोरियमों और चिकित्सा शिक्षालयों में कोबाल्ट, कार्बन, सोना, ब्रोमीन, आयोडीन, गंधक, फासफोरस और अन्य रासायनिक तत्वों के रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों का बड़ी व्यापक मात्रा में उपयोग होता है। रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों से लेबल किये हुये यौगिक, जैसे रेडियो सक्रिय सल्फनीलिमाइड, सल्फडीन, वेरोनाल तथा कैफीन जीव-रासायनिक और औषधि विषयक शोध में काम में लाये जाते हैं।

ट्यूमर चिकित्सा रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट की सुइयों से की जाती है। रोगी कोश के भीतर से सुइयां चुभोयी जाती हैं और उनका बहुत लाभदायक परिणाम होता है। रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट चिकित्सा ने त्वचा, मुंह के भीतर के अंग, टान्सिल, मैक्सिला, नाक का छिद्र, कंठ-नलिका, अन्न-नलिका और शरीर के अन्य भागों में घातक ट्यूमरों को अच्छा कर दिया गया है। रेडियो-सक्रिय फास्फोरस रक्त के रोगों की चिकित्सा में बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों के सहारे निम्न बातों की खोज की गई है: रक्त प्रवाह की गति, नसों और नाड़ियों में रक्त चाप, देहगत-रासायनिक क्रिया, प्रवहमान रक्त का परिमाण, पेट और आंतों में द्रव्यों का अवशोषण और इन्द्रियों में द्रव्यों का जमा होना आदि।

विज्ञान की नयी शाखायें जग पड़ी हैं—रेडियो-रसायन और रेडियो-प्राणीशास्त्र। अब भूगर्भ-शास्त्र, जीव रसायन, पुरातत्व और पैलिओन्थोजी में उनका उपयोग हो रहा है।

यन्त्रों के हिस्सों और काटने वाले औजारों के घिसाव का पता लगाने के लिये इस्पात के कामगार और यन्त्र निर्माता रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों का उपयोग करते हैं। उन्हें रुक कर अपनी सारी यान्त्रिक व्यवस्था के पुर्जो को अलग नहीं करना पड़ता। कई हिस्सों का एक साथ नियंत्रण इस कार्य-प्रक्रिया में घटित हो जाता है। पिस्टन-

[शेष पृष्ठ 7 पर]

"सौर ऊर्जा"

□ श्याम लाल काकानी

सूर्य ऊर्जा का असीम और महत्वपूर्ण स्रोत है। पिछले दो दशक से सौर ऊर्जा से विद्युत उत्पादन में, खारे जल को मीठे जल में परिवर्तित करने के लिए, अन्तरिक्ष अनुसन्धानों में और विविध कार्यों में प्रयुक्त करने के लिए विविध साधनों के विकास के लिए सतत प्रयास हो रहें हैं।

शक्ति के प्रमुख स्रोत (अ) पृथ्वी के गर्भ में वर्षों से संचित साधन कोयला, पेट्रोलियम और पीट (ब) नाभिकीय ऊर्जा (स) सौर ऊर्जा है। औद्योगिक विकास की तीव्र गति और मानव की बढ़ती हुई शक्ति के साधनों की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए यह अनुमान लगाना गलत नहीं होगा कि सौ वर्ष पश्चात् कोयला, पेट्रोलियम और नाभिकीय ईंधन की मात्रा अति सीमित हो जायगी। ऐसी अवस्था में शक्ति के नये स्रोतों की खोज करना अभी से ही आवश्यक हो गया है।

सूर्य ऊर्जा का एक असीम स्रोत है लेकिन इससे प्राप्त ऊर्जा का अभी तक कोई उपयोग नहीं किया जाता है। पिछले दो दशकों मे अन्तरिक्ष अनुसन्धानों के कारण विकसित देशों में वैज्ञानिकों ने सौर ऊर्जा को विविध कार्यों में प्रयुक्त करने के लिए सौर कुकर, और ताल सिलिकान सैल, सौर जल हीटर इत्यादि साधनों का विकास किया है। वैज्ञानिक अब बड़े पैमाने पर सौर ऊर्जा से शक्ति उत्पादन करने के लिए प्रयास कर रहे हैं। वैज्ञानिकों की इस प्रयास में सफलता निसंदेह हमें सदैव के लिए शक्ति के साधनों की चिन्ता से मुक्ति दिला सकेगी। सूर्य वैसे भी पृथ्वी पर जीवन के लिए आधारभूत आवश्यकता है। अगर सूर्य से पृथ्वी पर पहुंचने वाले विकिरणों की दर में थोड़ी सी भी कमी आ जाय तो पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा और वर्फ ही वर्फ जम जायगी।

सूर्य एक गोले के समान है जिसकी त्रिज्या लगभग 4,30,000 मील है। सूर्य की बाहरी सतह का ताप लगभग 6000 डिग्री सेन्टीग्रेड और केन्द्र का ताप करीब दो करोड़ डिग्री सेन्टीग्रेड है। सूर्य के केन्द्र में इतना अधिक ताप किस प्रकार बना रहता है और ऊर्जा का क्या स्रोत है? सूर्य से ऊर्जा किस रूप में और कितनी मात्रा में पृथ्वी पर पहुंचती है? यह सभी विचारणीय प्रश्न है। इन्हीं के समाधान पर सूर्य ऊर्जा को पृथ्वी पर विविध कार्यों के लिए उपयोग में लाना निर्भर करता है। आइये, हम इन प्रश्नों पर विचार करें।

वैज्ञानिक अनुसन्धानों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि सूर्य पिण्ड मुख्यत हाइड्रोजन से बना हुआ है। वैज्ञानिक वीथे के अनुसार हाइड्रोजन के परमाणु विभिन्न नाभिकीय संगलन क्रियाओं द्वारा हीलियम के परमाणु में परिवर्तित हो रहे हैं। इन क्रियाओं से सूर्य के भार में निरन्तर कमी होती जा रही है। आंइसटीन के प्रसिद्ध सूत्र $E=MC^2$ [ऊर्जा=मात्रा X प्रकाश का वर्ग] के अनुसार भार में यह कमी ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। सूर्य केन्द्र में संगलन नाभिकीय क्रिया के लिए आवश्यक ताप जो करीब 10^7 से 10^8 डिग्री केलविन होता है, मौजुद है। नाभिकीय संगलन क्रिया के निरन्तर होते रहने से भी केन्द्र का ताप बराबर लगभग $2X10^7$ डिग्री सेन्टीग्रेड बना रहता है।

सूर्य के केन्द्र में हो रही संगलन नाभिकीय क्रियाओं को निम्न रूप में प्रदर्शित कर सकते हैं :—

$_1H^1 + _6C^{12} \rightarrow _7N^{13} +$ गामा किरणें

$_7N^{13} \rightarrow _6C^{13} + _1e^0$ (पोजिट्रान)

$_1H^1 + _6C^{13} \rightarrow _7N^{14} +$ गामा किरणें

$_1H^1 + _7N^{14} \rightarrow _8O^{15} +$ गामा किरणें

$_8O^{15} \rightarrow _7N^{15} + _1e^0$ (पोजिट्रान)

$_1H^1 + _7N^{15} \rightarrow _6C^{12} + _2He^4$

$4\ _1H^1 \rightarrow _2He^4 + 2\ _1e^0 +$ गामा किरणें
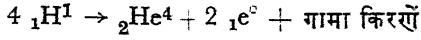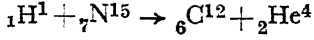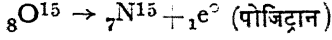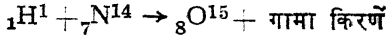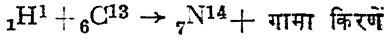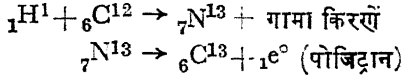
इस नाभिकीय संगलन क्रिया में होने वाली भार में कमी

= 4 × हाइड्रोजन परमाणु का भार—[हीलियम परमाणु का भार + दो पोजिट्रान का भार]

$= 4 \times 1.00727663 - 4.00037334 - 2 \times .0005448597$

$= 0{\cdot}0276$ a m u

$= 0{\cdot}0276 \times 931{\cdot}478$ Mev

$= 25{\cdot}6$ Mev

अतः सूर्य के केन्द्र में 4 हाइड्रोजन परमाणुओं के संगलन क्रिया कर हीलियम नाभिक में परिवर्तन होने से 25·6 Mev ऊर्जा उत्पन्न होती है। सूर्य के केन्द्र में उत्पन्न होने वाली इस ऊर्जा को सतह पर पहुंचने में लगभग दस हजार वर्ष लगते हैं। यही ऊर्जा हमें पृथ्वी पर प्रकाश और उष्मा के रूप में प्राप्त हो रही है।

सूर्य से प्रति सैकन्ड लगभग $3{\cdot}8 \times 10^{33}$ अर्ग ऊर्जा विकिरण द्वारा बाहर निकल रही है। यह ऊर्जा लगभग $4{\cdot}1 \times 10^{12}$ ग्राम या 4,400,000 टन भार के बराबर है। दूसरे शब्दों में प्रति सैकन्ड सूर्य का भार 4,400,000 टन कम होता जा रहा है। प्रति दिन सूर्य का भार 3,80,000 लाख टन कम हो रहा है। लेकिन यह कोई चिन्ता का विषय नहीं है, क्योंकि यह प्रतिदिन होने वाली भार में कमी सूर्य पिण्ड के भार के, जो कि करीब 2×10^{33} ग्राम है, तुलना में नगन्य है। गणना द्वारा यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि सूर्य से वर्तमान दर पर लगभग ३० अरब वर्षों तक ऊर्जा, प्राप्त होती रहेगी।

सूर्य के केन्द्र में होने वाली संगलन नाभिकीय क्रियाओं से यह स्पष्ट है कि सूर्य के केन्द्र में ऊर्जा गामा किरणों और पोजीट्रान के रूप में उत्पन्न होती है जो सूर्य पिण्ड से निकलकर दृश्यमान प्रकाश, पराबैंगनी और अवरक्त विकिरणों और ब्रह्मांड रश्मियों के रूप में प्रकट होती है। ऊष्मा और प्रकाश के रूप में पृथ्वी पर पहुंचने वाली ऊर्जा लगभग $0{\cdot}15 \times 10^4$ से० मी० से 120×10^4 से० मी० तरंग लम्बाई के विकिरणों के रूप में प्राप्त हो रही है। विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम के इस क्षेत्र में सम्पूर्ण दृश्यमान प्रकाश तथा पराबैंगनी और अवरक्त विकिरणों के कुछ भाग भी सम्मिलित है।

सौर ऊर्जा का कुछ भाग वायुमण्डल में अवशोषण एवं प्रकीर्णन हो जाता है। वायुमण्डल के अवयवों में लगातार परिवर्तन होते रहने से यह पता लगाना अति कठिन है कि सूर्य से विमुक्त ऊर्जा का कितना भाग पृथ्वी पर पहुंचता है। वैज्ञानिक कैबेन्स परीक्षणों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मध्यान्ह के समय वायुमण्डल लगभग २० प्रतिशत और ऊर्जा का अवशोषण करता है। नीले और पराबैंगनी विकिरणों के अधिक प्रकीर्णन के कारण इनसे मिलने वाली ऊर्जा अपेक्षाकृत अधिक नष्ट हो जाती है।

जिस रूप में हमें सूर्य से ऊर्जा प्राप्त हो रही है उसी रूप में इसका उपयोग करना सम्भव नहीं है। अगर हम समुचित रूप से सूर्य ऊर्जा का उपयोग कर सके तो पृथ्वी पर सभी वर्तमान कल-कारखानों को एक वर्ष तक चलाने के लिए कुल ऊर्जा का मान सूर्य से पृथ्वी पर तीन मिनिट में पहुंचने वाली कुल ऊर्जा के मान के बराबर होगा। वैसे सूर्य विकिरणों से प्राप्त ऊर्जा को उपयोग में लाने का विचार कोई नया नहीं है क्योंकि पूर्व काल में इनको उत्तल लैंस द्वारा केन्द्रित कर आग जलाने का कार्य किया जाता रहा है। सन् 1901 में पेसाडिना, केलिफोर्निया में 4·5 अश्व शक्ति का सौर भाप इंजिन का निर्माण किया गया था। इसी प्रकार सन् 1902 व 1908 में केलिफोर्निया

में 20 अश्व शक्ति और सन् 1913 में काहिरा के समीप 50 अश्व शक्ति के सौर भाप इंजिनों के निर्माण हुए। लेकिन सौर ऊर्जा को विविध क्षेत्रों में प्रयुक्त करने और बड़े पैमाने पर शक्ति उत्पादन के प्रयास पिछले दो दशकों से ही व्यापक रूप से शुरू हुए हैं और विशेष रूप से अन्तरिक्ष अनुसन्धानों के साथ ही।

सौर ऊर्जा को प्रयुक्त करने के लिए हो रहे प्रयासों को हम तीन श्रेणियों में रख सकते हैं :—

(1) **अनुसन्धान कार्यों के लिए** :—उच्च ताप अनुसन्धान के लिए फ्रांस में एक सौर भट्टी का निर्माण किया गया है जिससे 1000 किलो वाट पावर उत्पन्न की जा सकती है। इस प्रकार के प्रयास कई अन्य देशों में भी हो रहे हैं।

(2) **विविध कार्यों के लिए** :—सौर ऊर्जा को विविध कार्यों में प्रयुक्त करने के लिए अब तक सौर कुकर, सिलिकान सैल, सौर डिस्टीलेसन प्लांट, सौर ताल इत्यादि कई साधनों के आविष्कार हुए हैं।

सौर कुकर :—यह खुले हुए उल्टे छाते की तरह साधारण युक्ति है जिसमें एक अवतल दर्पण का प्रयोग किया जाता है। दर्पण का फोकस छाते के हैंडिल पर रखा जाता है जिससे सूर्य के विकिरण दर्पण से परावर्तित होकर हैंडिल पर केन्द्रित हो सके और हैंडिल से उलटे लटके हुए पात्र पर गिर सके। इसको बन्द भी किया जा सकता है। आजकल प्लास्टिक के परावर्तक भी प्रयोग में आने लगे हैं। इस विधि से सूर्य विकिरणों को केन्द्रित कर उष्मा उत्पन्न करते हैं और इसे गृह कार्यों में उपयोग में ली जाती है।

सिलिकन सैल :—इनका आकार करीब-करीब रेजर ब्लेड जैसा होता है। ये सिलिकन क्रिस्टल की पपड़ी से बनाए जाते हैं। जब इन पर सूर्य से आने वाले विकिरण गिरते हैं तो ये उत्तेजित होकर उष्मा उत्पन्न करते हैं। ये सूर्य से प्राप्त ऊर्जा को सीधा विद्युत में बदल देते हैं जिससे विद्युत को बैटरियों में जमा कर लेते हैं। जब रात्रि या अन्य किसी भी समय सूर्य विकिरण उपलब्ध नहीं हो तो इन बैटरियों को उपयोग में लाया जा सकता है। अन्तरिक्ष कार्यों में इनसे महत्वपूर्ण सहायता मिली है।

सौर ताल :—यह दिखाया जा सकता है कि झील या समुद्र के पानी की विभिन्न तहों के बीच तापान्तर उनके घनत्व में अन्तर के कारण होता है। अधिक घनत्व वाली पानी की सतह का ताप अधिक होगा। हंगरी की एक झील में यही अनुभव किया गया। इजरायली वैज्ञानिकों ने इसको आधार मानकर पैंदे में अधिक खारा और ऊपर कम खारा पानी लेकर एक छिछले सौर ताल का निर्माण किया। इस सौर ताल के पेंदे को काला कर दिया गया जिससे सूर्य से उष्मा का अवशोषण होकर पेंदे का जल गर्म होता है। और ताल के छिछला होने से नीचे और उपर के जल नहीं मिल सकते और संवाहन क्रिया से उष्मा का संचार भी नहीं हो सकता। इसका उपयोग खारे जल को मीठे जल में परिवर्तित करने के लिए किया जा सकता है।

(3) **शक्ति के उत्पादन के लिए** :—सौर ऊर्जा से बड़े पैमाने पर शक्ति उत्पादन के प्रयास जारी है। इस क्षेत्र में दो विचारधाराओं पर कार्य हो रहा है। एक विचार धारा के अन्तर्गत समुद्र की गर्म सतह को ताप स्रोत और ठंडी सतह को सिन्क के रूप में प्रयुक्त कर 100 मेगावाट या इससे अधिक का पावर प्लाण्ट तैयार करना।

दूसरी विचारधारा यह है कि अंतरिक्ष में कृत्रिम उपग्रह स्थापित कर सूर्य ऊर्जा को सीधी परिवर्तन विधि से विद्युत में रूपान्तरित की जाय।

वैज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्नशील है और आशा है कि जल्दी ही सफलता प्राप्त हो सकेगी।

सौर ऊर्जा का अन्तरिक्ष अनुसन्धानों में महत्व :—अन्तरिक्ष में अनुसन्धान कार्यों के लिए सौर ऊर्जा ने महत्वपूर्ण योग दिया है। कृत्रिम उपग्रहों को अपने कक्ष में स्थापित करने के लिए आवश्यक ऊर्जा विभिन्न

साधनों द्वारा सूर्य विकिरणों से प्राप्त की गई है। अन्तरिक्ष मान रेन्जर, मेरिनर, सर्वेयर इत्यादि की सफलता का मुख्य श्रेय ही सूर्य ऊर्जा को उपयोग में लाने वाले साधनों को है। अन्तरतारकीय उड़ानों और लम्बी दूरी तय करने के लिए आजकल 'आयन जेट प्रणोदन' सिद्धान्त पर आधारित राकेट तैयार करने के प्रयास हो रहे हैं, जिसमें सूर्य ऊर्जा द्वारा विद्युत उत्पादन कर आयनीकरण किया जा सके।

भारतवर्ष में भी राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला में सौर ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग करने के लिए साधनों का विकास करने के महत्वपूर्ण प्रयास हो रहे हैं। अब वह दिन दूर नहीं है जब सौर ऊर्जा से बड़े पैमाने पर विद्युत उत्पन्न की जा सकेगी और मानव समाज को शक्ति के साधनों की चिन्ता से मुक्ति मिल सकेगी।

[पृष्ठ 3 का शेषांश]

रिंग, बेयरिंग, पिस्टन, दांतेदार पहिये और दूसरे हवाई जहाज, मोटर और ट्रैक्टर मोटर सम्बन्धी हिस्सों में बार-बार जो क्षय या घिसावट पैदा होती है, उसका पता लगाने में इन यंत्रों से बड़ी सहायता मिली। उत्स्फोट भट्टी में भार सामग्री और गैसों के चलने में जो विविध तत्वों के प्रभाव हैं, उनके अध्ययन में रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट ने बड़ी मदद की है। रेडियो सक्रिय कार्बन का उपयोग रेडियो-कार्बन घड़ी बनाने में होता है।

बहुलक–रसायन (पौलिमर-केमिस्ट्री) का विकास

□ नंदलाल जैन

मानव चिरकाल से कपास, ऊन, सिल्क, गोंद, लकड़ी-जैसे पदार्थों का उपयोग करता रहा है लेकिन इनके विषय में पर्याप्त वैज्ञानिक व तकनीकी परिज्ञान केवल 1850 के बाद से प्राप्त हो सका है। इन सभी प्राकृतिक पदार्थों को अब बहुलक या उच्च बहुलक कहा जाता है क्योंकि ये सरल अणुओं के संघनन या संयोजन से निर्मित होते हैं और इनका अणुभार अत्युच्च होता है। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में बहुलक पदार्थ संश्लेषित भी हुये हैं जिनमें संश्लेषित वस्त्र, रबर, ऊन, चिपकावक व तत्वलेपी पदार्थों की विभिन्न जातियां प्रमुख हैं। बहुलक न केवल हमारे व्यक्तिगत दैनिक जीवन के लिये ही उपयोगी हैं अपितु ये हमारी वर्तमान सभ्यता की भारी भरकम गाड़ी के निर्माण एवं परिचालन के मूल आधार भी बन गये हैं। हमारा भोजन (स्टार्च और प्रोटीन), शरीर-सज्जा (वस्त्र, सिल्क और ऊन) और गृह सज्जा (प्लास्टिक, प्लाइवुड) तो इन पर ही निर्भर है। इन पदार्थों की उपयोगिता का अनुमान इस तथ्य से हीं लगाया जा सकता है कि अमरीका का पचास प्रतिशत रसायन उद्योग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बहुलक या उससे संबंधित पदार्थों के निर्माण में लगा हुआ है। हमारा देश अभी इस उद्योग में काफी पीछे है। 1965 में अमरीका में 65 लाख टन बहुलक उत्पादित किये गये थे जबकि भारत में केवल दो लाख टन ही निर्मित हुए थे। हमारे देश में उच्च बहुलकों के उद्योग के विकसित न होने का मूल कारण पेट्रोल-रसायन उद्योग का समुचित विकास न होना ही है। भारतीय तैल व प्राकृतिक गैस उद्योग इस दिशा में प्रयत्नशील है और निकट भविष्य में हमारे देश में उच्च बहुलकों का उत्पादन संतोषजनक हो सकेगा, ऐसी आशा करनी चाहिये।

प्राचीन काल में रोम, यूनान, और भारतवासी वस्त्र, सिल्क और ऊन के अतिरिक्त बहुत से रेजीन, एस्फाल्ट, अंबर, चपड़ा आदि पदार्थों का उपयोग करते थे। रबर का पता भी 1520 में चल गया था लेकिन उसके व्यावसायिक उपयोग (जल-सह वस्त्र) अठारहवीं सदी समाप्त होते ही ज्ञात हो सके। ये सभी बहुलक कार्बनिक यौगिक हैं और अठारहवीं सदी तक इनके विषय में 'जैवशक्तिवाद' प्रचलित था। अतः ये यौगिक प्रयोगशालाओं के क्षेत्र में नहीं आ सके।

व्हूलर ने 1828 में प्रयोगशाला में यूरिया को संश्लेषित कर कार्बनिक पदार्थ के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव रखीं। तबसे विभिन्न कार्बनिक पदार्थ संश्लेषित किये जाने लगे और नये पदार्थों की खोज भी जारी रही। लीबिग ने 1830-35 में कार्बनिक पदार्थों के विश्लेषण की प्रस्तुत की, 1860 तक संयोजकता के सिद्धान्त भी विकसित हो गये, 1880-88 के बीच विलयनों के भौतिक गुणों पर आधारित अणुभार निर्धारण की विधियां भी खोज ली गई। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी में विश्लेषण की विधियों के ज्ञान से कई प्राकृतिक पदार्थों का संश्लेषण किया गया।

ऐतिहासिक दृष्टि से बहुलकों के रासायनिक एवं औद्योगिक विकास को तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रारंभिक युग 1850 के पूर्व

विकास का परिवर्धन युग 1850-1930

संश्लेषण एवं विशिष्ट-विन्यासी युग 1930

प्रारंभिक युग में सभी प्राकृतिक बहुलक मुख्यतः अक्रिस्टलीय माने जाते थे और उनके लिये समुचित विलायकों तक का ज्ञान नहीं था। कभी-कभी विभिन्न अभिक्रियाओं में कोलतार या गोंद-जैसे चिपचिपे पदार्थ प्राप्त होते थे। उन्हें 'अव्याख्येय' कहकर उपेक्षित कर दिया जाता था। वे अविलेय, अगल्य और अन-आसवनीय जो होते थे। इसके बावजूद भी इस काल में ही कुछ ऐसे बहुलकों का प्रयोगशालाओं में निर्माण हुआ जो बीसवीं सदी में औद्योगिक रूप में हमारे सामने आये। 1839 में रबर का वल्कनीकरण एक ऐसा ही उदाहरण है। स्टायरीन और ग्लायकोलों के बहुलक भी इसी समय प्राप्त किये गये। इस काल की विश्लेषण-विधियों की चर्चा की जा चुकी है।

परिवर्धन-युग में विभिन्न प्राकृतिक बहुलकों-विशेषतः रेशेदार पदार्थों के रूप-परिवर्तन की प्रक्रिया चली और 1890-1904 के बीच कपास से विभिन्न प्रकार के रेयनों को प्राप्त किया गया। कांच के रेशे भी इसी युग में प्राप्त किये गये। एमिनो अम्लों का संश्लेषण भी इसी काल की देन है। कुछ बेकलाइट-जैसे संघतनी और विनिल जैसे योगशील प्लास्टिक भी इस काल में संश्लेषित किये गये। इस काल में सैद्धान्तिक क्षेत्र में नोबुल पुरस्कार विजेता स्टौडिंजर ने पूर्व विकसित विश्लेषण विधियों के आधार पर बहुलकों के विषय में प्रचलित सहचरणवाद, चक्रवाद, एवं कोलाइडवाद की मान्यताओं को प्रयोग विरुद्ध बताकर दीर्घाणुवाद की स्थापना की और उनके अभिलक्षणीकरण का दिशा-संकेत किया। उदाहरणार्थ, उन्होंने विस्कासिता-अणुभार का संबंध स्थिर किया। 1928 में सिदबर्ग ने प्राकृतिक दीर्घाणुओं को समकण-परिक्षेपी और संश्लेषित दीर्घाणुओं को बहुकण-परिक्षेपी बताया। मेलविन ने बताया कि संश्लेषित दीर्घाणुओं में समावयवियों का मिश्रण पाया जाता है। बहुलकों की यह विविधता ही उनके विशिष्ट गुणों का मूल मानी गई है। उनके कुछ व्यवहार अणुक और मिसेली कोलाइडों के समान होते हैं। इस काल में यह स्पष्ट हो गया कि बहुलकों और दीर्घाणुओं में बड़ा अन्तर है। कोलायड जहां अणु-समुच्चय होता हैं वहां दीर्घाणु का स्वयं का विस्तार कोलायडी होता है। सेलूलोस के व्युत्पन्नों के अणुभारों एवं एक्सकिरण परीक्षणों से यह तथ्य भली भांति सिद्ध हो गया।

संश्लेषण काल का प्रारंभ कैरोथर्स के समय से माना जा सकता है। जब उसने नाइलॉन का संश्लेषण और उसकी क्रियाविधि प्रस्तुत की। वस्तुतः 1930-40 के दशक में विभिन्न प्रकार के रबर, रेशो और प्लास्टिकों का संश्लेषण किया गया और उन्हें व्यापारिक रूप दिया गया। जैसा सारणी से प्रकट होता है। संश्लेषण प्रक्रिया की गतिशीलता अब भी बनी हुई है। अब नये प्रकार के बहुलको के संश्लेषण के अतिरिक्त पुराने बहुलकों के विशिष्ट विन्यासी एवं उपयोगी रूपों का संश्लेषण किया जा रहा है। इन संश्लेषणों के लिये नोबुल पुरस्कार विजेता जीग्लर और नट्टा द्वारा निर्मित विशिष्ट प्रकार के उत्प्रेरक महत्वपूर्ण हैं। विशिष्ट विन्यासी बहुलकों में यथेष्ठ गुणधर्मों का समावेश किया जा सकता है।

अंतरिक्ष युग में उच्चतापी बहुलकों का भी विकास किया गया है जो अंतरिक्ष-यात्रियों की वेशभूषा एवं यंत्र-सज्जा के काम आते हैं।

इस काल में जैव-बहुलकों का भी भली-भांति अध्ययन किया जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों में कई जीव-बहुलकों के संश्लेषण-विश्लेषण करने वाले वैज्ञानिकों ने नोबुल पुरस्कार पाया है। प्रमुख जैव बहुलकों में प्रोटीन, एन्जाइम, न्यूक्लीक अम्ल, आर० एन० ए० और डी० एन० ए०, कॉलिजन, सिल्क आदि होते हैं। संरचना-निर्धारण की विभिन्न भौतिक विधियों के विकास से न केवल इन जैव-बहुलकों की सही संरचना निर्धारित की जा चुकी है अपितु उनमें से कई संश्लेषित किये जा चुके हैं। उदाहरणार्थ, यह पता चला है कि डी० एन० ए० एक ऐसा उच्च अणुभारी बहुलक है जिसमें विविध शर्करा-अवशेषो में फास्फेट और नाइट्रोजन के क्षारक

एकान्तर से प्रतिस्थापित रहते हैं। नाइट्रोजन के क्षारक मुख्यतः विविध गुम्रानीन, ग्रायमीन, साइटोसीन, एडेनीन ग्रादि यौगिक होते हैं। इन्हीं यौगिकों के विन्यास पर ग्रानुवंशिकता निर्भर करती है। इसके संचरण ग्रौर परिवर्तन की पूरी प्रक्रिया ग्रब ज्ञात हो गई है।

ग्रकार्बनिक बहुलकों का भी इस काल में विकास किया गया है। इनमें सिलिकोन बहुलक तो प्रमुख हैं जो ग्रपनी ग्रक्रियता एवं तापसहता के लिये प्रसिद्ध है। इनके ग्रतिरिक्त उपसह-संयोजी बहुलकों का विकास भी किया जा रहा है जिनमें चालवीय ग्रायन को बांधने वाले कार्बनिक लिगेंड ग्रपनी बहुक्रियकता के कारण बहुलक का निर्माण करते हैं। ये प्रायः ग्रविलेय होते हैं ग्रौर इनका ग्रभिलक्षरगन कठिन होता है। ये उच्चवासी भी हो सकते हैं। इनमें विशिष्ट-विन्यासी संरचना होती है।

उत्तम गुण के बहुलक प्राप्त करने के लिये एक-से-ग्रधिक बहुलकनीय एकलकों को मिलाकर सह बहुलकित करने की विधि भी इसी काल में प्रस्तुत की गई। इससे विभिन्न प्रकार के व्यूना, व्यूटिल, एकिलेट ग्रादि रबर, विनिल एवं एक्रिकिल वस्त्र ग्रौर कई प्रकार के प्लास्टिक सहबहुलक प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार नवीन युग में पहले के बहुलकों को रूप एवं संरचना-संबंधी परिवर्तनों द्वारा उत्तम कोटि में परिवर्तित कर उपयोग में लेते हैं।

नये युग का एक सामान्य योगदान यह है कि इसमें संरचना ग्रौर गुणों को सह-संबंधित किया जा सका है। उदाहरणार्थ क्रिस्टलीयता की मात्रा ग्रौर सामर्थ्य एक क्रांतिक सीमा तक समानुपाती पाये गये हैं। कुछ विशिष्ट प्रकार की संरचनायें ही विशिष्ट प्रकार के उत्तम गुण प्रदान करती हैं। इससे यह संभव हो सका है कि यथेष्ठ गुण के बहुलक बनाये जा सकें। यही कारण है कि ग्राज एक ही जाति का बहुलक रबर, रेशे, प्लास्टिक, तललेपी ग्रौर चिपकावक ग्रादि के रूप में समान रूप से प्रयुक्त हो सकता है। एक ही पदार्थ के ऐसे विभिन्न रूपों के कारण बहुलकों को बहुरूपिया कहा जाता है। इस बहुरूपियेपन का समुचित विकास बीसवीं सदी की प्रधान विशेषता है।

सारणी

बहुलकों का विकास

रबर		रेशे		प्लास्टिक	
प्राकृतिक रबर	1520–1971	प्राकृतिक कपास, सिल्क, ऊन		सैलूलोज नाइट्रेट	1868
वल्कनीकरण	1839	सेलूलोज नाइट्रेट	1845	चपडा	1870
डाइमेथिल रबर	1901	कुप्रमोनियम रेयन	1890	एलकिड रेजीन	1901
बहुलकन-विधियाँ	1912–30	विस्कोज रेयन	1892	बेकेलाइट	1909
थार्मोकोल	1930	एसीटेट रेयन	1894	विनिल एसीटेट	1912
क्लोरोपीन	1932	कांच के रेशे	1893	केसीन प्लास्टिक	1919
व्यूना–S	1933	पीवीसी-सहबहुलक रेशे	1931	विनिल सहबहुलक	1928
व्यूना–N	1935	प्रोटीन-रेशे	1935	कास्ट प्लास्ट	1929
				मेलमेक	1929
		नायलान	1935	यूरिया प्लास्ट	1930
व्यूटिल	1940	एलगिनेटरेस	1939	एक्रिलेट्स	1931
				पोलीयूरेथेन	1935

सिलिकोन	1944	पी० वी० यू० रेशे	1942	पोलीस्टायरीन	1937
				विनिल और विनिलिडीन	1939
पोलीयूरेथेन	1946	पोली स्टायरीन	1944	टेफ्लान	1941
पोली आइसोयीन	1954	पोली एस्टर टेरिमीन	1946	पोलीथीन सिलिकोन	1945
ई पी० रबर	1963	ओरलान	1950	इपोक्सीरेजीन	1948
		टेफ्लान	1951	पोली प्रोपिलीन	1957
		एक्रिलेट सहबहुलक	1952	फ्लोरिनित पोलीईथर	1959
		उच्चतापी रेशे HT–1	1962	पोलीकार्बोनेट	1960
		कार्बन और धात्वीय रेशे	1950	फेनोक्सी फ्लास्टिक	1962

● ●

- अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।

- हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।

पेन्सिलीन

□ डा० अरुण कुमार सक्सेना

पेन्सिलीन की विभिन्न जातियों से बाजार भरा पड़ा है। इस जीवन दायक औषधि ने अपने प्रकार के प्रभावों से जन सेवक का रूप धारण कर लिया है। क्या कभी आपने सोचा है कि इन भिन्न-भिन्न प्रकार की पेन्सिलीन की औषधियों की और भी नई किस्में बनाई जा सकती हैं?

साधारणतः प्रकृति में पाई जाने वाली पेन्सिलीन का सूत्र यह है :—

```
                      S
                     / \  /CH3
R ⋮ C—N—CH—CH    \
    ‖   |    |     |    \CH3
    O   H    C——N——COOH
            /
           O
```
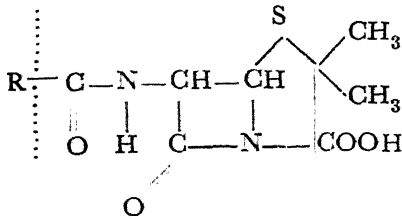
यदि R के स्थान पर निम्नलिखित और समूह लगा दिए जायें तो अनेक प्रकार की नई पेन्सिलीन का विकास हो जाता है :

$CH_3\,CH_2\,CH{=}CH\,CH_2$ पेन्सिलीन (एफ)

$CH_3\,CH_2\,CH_2\,CH_2\,CH_2$ पेन्सिलीन हाइड्रो (एफ)

$CH_3\,CH_2\,CH_2\,CH_2\,CH_2\,CH_2$ पेन्सिलीन (के)

$C_6H_5-CH_2$ पेन्सिलीन (जी)

$HO-C_6H_4-CH_2$ —पेन्सिलीन (एक्स)
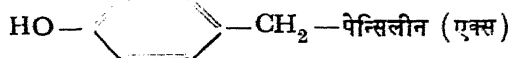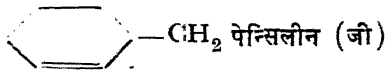
ये सब प्रकृति में पाई जाने वाली पेन्सिलीन की जातियां हैं। वास्तव में इनके गुणो के बारे में तो कहना ही क्या है? ये लगभग सभी बड़ी बीमारियों में जीवाणुओं के मारने की अद्‌भुत क्षमता रखती हैं तथा साथ ही किसी प्रकार का हानिकर प्रभाव रोगी पर नहीं डालती। इसी कारण इनको विलक्षण औषधियों के नाम से पुकारा जाता है। ऊपर दिये सूत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये कोई एक पदार्थ नहीं वरन् अनेक पदार्थों से बने एक यौगिक हैं।

पेन्सिलीन (जी) प्रकृति में पाई जाने वाली पेन्सिलीन में सबसे उत्तम है क्योंकि इसमें ऊपर दिये हुए गुणों की प्रचुरता रहती है। वास्तव में (जी) पेन्सिलीन में फिनाइल एसीटिक अम्ल का अणु सूत्र में R के स्थान पर जुड़ जाता है। इस तथ्य के खोज करने का श्रेय मोयर तथा कांगहिल नामक वैज्ञानिकों को है जो कि ब्रिटेन की उत्तर क्षेत्रीय प्रयोगशाला में कार्य कर रहे थे। उन्होंने शोध कार्यों के दौरान यह देखा कि (पी) काईसोजीनम के एक विशेष माध्यम में उगाते समय यदि फिनिल एसीटिक अम्ल प्रति बारह घण्टे में एक बार मिला दिया जाय तो पेन्सिलीन (जी) की उपज लगभग दुगनी हो जाती है। इसी प्रयोग के ध्यान पूर्वक अध्ययन के पश्चात् यह तथ्य सामने आया कि फिनाइल एसीटिक अम्ल ही क्यों यदि और भी पदार्थ मिलाये जांय तो नई प्रकार की पेन्सिलीन प्राप्त होगी और आगे चलकर हुआ भी यही। लिली रिसर्च प्रयोग O शाला ने लगभग सौ नई पेन्सिलीन खोज निकालीं।

1953 ई० में आस्ट्रेलिया के ब्राण्डेल और मार्गीटर नामक वैज्ञानिकों ने पेन्सिलीन (व्ही) खोज निकाला। मात्र यही केवल उस समय खाने वाली दवा थी। यह औषधि पेट के अम्लों के द्वारा नष्ट नहीं होती है और पेन्सिलीन (जी) से भी अधिक प्रभावशाली होती है। ये

पेन्सिलीन शरीर के लिए तनिक भी हानिकारक नहीं हैं। साथ ही साथ ग्राम-धन जीवाणुओं से होने वाली बीमारियों के इलाज के लिए अचूक हैं किन्तु ग्राम-ऋण जीवाणुओं से होने वाली बीमारियों पर इनका कोई भी प्रभाव नहीं होता है। अब प्रश्न उठता है कि ग्राम–धन तथा ग्राम-ऋण क्या है ?

यह ग्राम महाशय की विधि है जिसमें क्रिस्टल वायलेट रंजक के द्वारा जीवाणुओं को रंगा जाता है और अनेक बार अलकोहल से धोनेके पश्चात् रंग का प्रभाव देखा जाता है। जीवाणु जो बेंगनी रंग ले लेते हैं उन्हें ग्राम-धन जीवाणु कहते हैं और वे जीवाणु जो रंग नहीं लेते हैं ग्राम-ऋण कहलाते हैं। पेन्सिलीन (व्ही) का सूत्र नीचे दिया गया है :—

```
                                              S
                                             / \  ,CH3
 /‾‾‾‾\                                     /   \/
<      >—O—CH2 —C—N—CH—CH                        |\
 \____/          ||  |   |    |              |  \CH3
                 O   H   C——N———————COOH
                        //
                       O
```
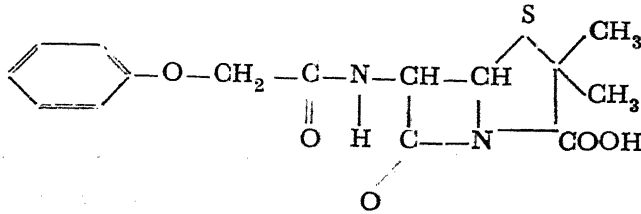
1959 ई० में ब्रिटेन की बीचम रिसर्च प्रयोगशाला के बेलचर तथा उनके सहयोगियों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। इन लोगों ने 6–APA नामक एक सूत्र ज्ञात किया। इस यौगिक में किसी प्रकार के जीवाणुओं को मारने के गुण न थे। एकाएक आपके समक्ष यह प्रश्न होगा कि इस यौगिक में क्या विशेष बात है ? ये यौगिक वास्तव में नई पेन्सिलीन को प्रयोगशालाओं में बनाने की ओर एक दम नया कदम था। 6–APA का सूत्र नीचे दिया गया है—यह पेन्सिलीन नाभिक बनाया गया।
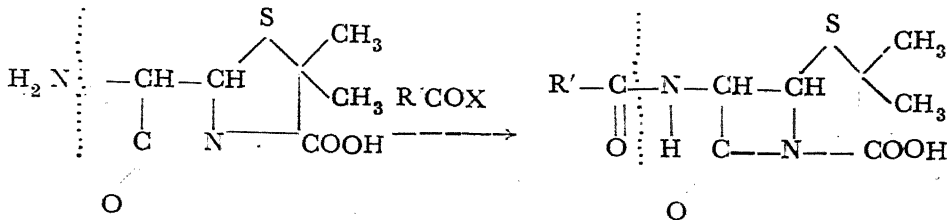
```
     :          S                                :          S
     :         / \ ,CH3                          :         / \ ,CH3
H2N  : —CH—CH      |\                      R'—C—:—N—CH—CH      |\
     :   |    |    | \CH3  R'COX              || :  |   |    |    | \CH3
     :   C    N ———COOH  ——————————→          O  :  H   C——N—— COOH
        //                                          //
       O                                           O

        6—A PA
```

6–APA, पेन्सिलीन नाभिक में R किसी प्रकार लगा देने पर नई प्रकार की कई पेन्सिलीन की जातियां बड़ी ही सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाती हैं। 6–APA की देन फिनिथिसिलीन, मिथीसिलीन आक्जासिलीन तथा एम्पीसिलीन हैं।

फिनिथिसिलीन

```
                                               S
                                              / \  ,CH3
 /‾‾‾‾\                                      /   \/
<      >—O—CH—C—W—CH—CH                           |\
 \____/      |   ||  |   |    |               |  \CH3
            CH3  O   H   C——N————|COOH
                        //
                       O
```
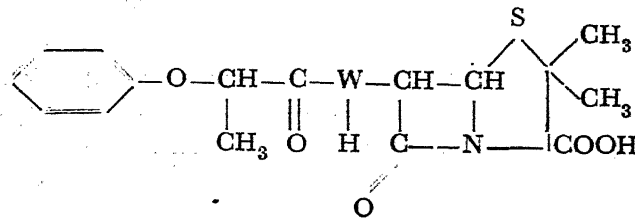
यह पेन्सिलीन (व्ही) से लगभग मिलती जुलती है केवल एल्फा कार्बन अणु में एच के स्थान पर एक CH_3 आ गया है। यह ग्राम-धन जीवाणुओं के गुणों में लगभग पिन्सिलीन (जी) तथा (व्ही) के समकक्ष है। उपचार के समय इसे खाया जा सकता है।

मिथिसिलीन

OCH_3 S CH_3
—C—N—CH—CH CH_3
O H C—N—COOH
CH_3 O
O
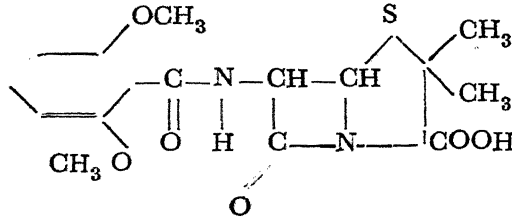
यह भी एक नई प्रकार की दवा है जो कि केवल सुइयों द्वारा शरीर में पहुंचाई जाती है। यह ग्राम-ऋण जीवाणुओं के साथ बिलकुल उदासीन है किन्तु ग्राम-धन जीवाणुओं को नष्ट करने में अचूक है।

आक्जासिलीन

O S CH_3
C—N—CH—CH CH_3
N CH_3 H C—N—COOH
O O
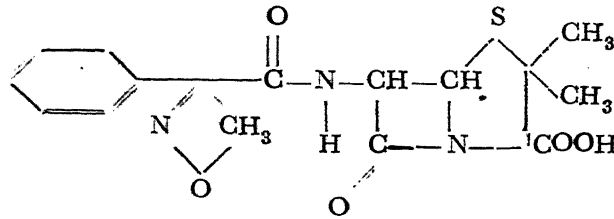
यह केवल ग्राम-धन जीवाणुओं को नष्ट करने में अत्यधिक सक्रिय होती है। इसका औषधि रूप में प्रयोग खाकर किया जाता है।

एम्पीसिलीन

O H S CH_3
—CH—C—N—CH—CH CH_3
NH_2 C—N—COOH
O
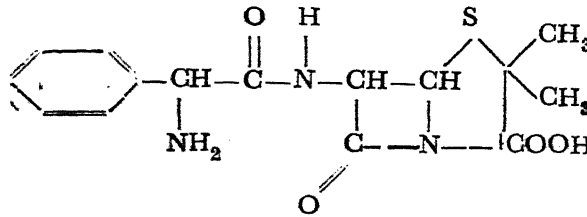
यह खाई जाती है तथा मूत्र रोगों में विशेषतः लाभदायक होती है। यह ग्राम-ऋण जीवाणुओं को नष्ट करने में बड़ी ही सहायक मानी जाती है।

मिचगन प्रयोगशाला के वैज्ञानिक गोटशाल तथा उनके सहयोगियों ने एक और पेन्सिलीन की किस्म ज्ञात की जिसे पेन्सिलीन (एन) के नाम से पुकारा जाता हैं। यह पेन्सिलीन अन्य पेन्सिलीन यौगिकों से अधिक सक्रिय साबित हुई। यह केवल प्रकृति में पाई जाने वाली पेन्सिलीन है जो कि ग्राम-ऋण जीवाणुओं को नष्ट करने में सहायक हुई।

```
                                                              S
                                                             / \  CH3
HOOC—CH—CH2—CH2—CH2—C—N—CH—CH    C
     |              |  |  |   |    |  \CH3
    NH2             O  H  C——W————COOH
                          //
                          O
```

इस दिशा में एक और नया पदार्थ खोज निकाला गया है जिसे सेफेलोस्पारिन के नाम से पुकारा जाता है। ये भी पेन्सिलीन की ही भांति प्रयोग में लाया जाता है।

ऊपर के तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि कोई भी पेन्सिलीन जैसा कि वैज्ञानिक चाहते नहीं प्राप्त हुई जिसमें कि सब प्रकार गुण विद्यमान हों। इस दिशा में प्रयोगशालाओं में निरंतर आवश्यक प्रयोग जारी हैं। आशा है कि निकट भविष्य में ही इस जीवनोपयोगी औषधि के नवीन रूप प्रकट होंगे जिससे कि मानव समाज का अत्यधिक कल्याण होगा तथा जीवन और सुखी बन सकेगा।

● ●

लेखकों से निवेदन

- 'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।
- लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।
- अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।

रंजक

□ हरेश्वर स्वरुप सहारिया

अपने को अन्य से अलग, अनोखा व अनूठा प्रदर्शित करने की लालसा मानव में जन्मजात होती है और इसी भावना ने सभ्यता की उन्नति को विशेष गति दी है। आज मानव के आत्मिक, शारीरिक तथा मानसिक उन्नति का आधार मुख्यतया यही भावना है। इसी भावना के कारण स्त्रियों में शृंगार करने की प्रवत्ति बढ़ी, केश विन्यास वेशभूषा, एवं आभूषणों में समय समय पर परिवर्तन आये। पेड़ों की छालों, फूल, पत्तियों आदि द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से सजाने की कला विकसित हुयी। प्रकृति में उपलब्ध विभिन्न लुभावने रंगों को देख कर हर एक का मनमयूर स्वंयमेव नाच उठता है। इस कारण अपने वस्त्रों तथा स्वयं को उसी प्रकार के रंगों में रंग लेने की इच्छा भी विकसित हुयी। एक तरफतरह तरह के संश्लेषित वस्त्रों का विकास हुआ और दूसरी ओर उनको विभिन्न रंगों से सजाने में आशातीत सफलता मिली।

सर्वप्रथम मानव ने प्राकृतिक वस्तुओं का ही शोषण आरम्भ किया। फूल, पत्तियों तथा जानवरों आदि को पीस कर तथा उबाल कर रंग निकाले गये। लेकिन इस प्रकार के पदार्थों की संख्या बहुत कम थी दूसरे यह रंग हल्के, व कम टिकाऊ थे। मिश्र में अति प्राचीन काल से ही नील की पत्तियों से प्राप्त नील का कपड़ों के रंगने में प्रयोग होता था। इसी प्रकार, मैडर वृक्ष की जडों से एर्लाजरीन प्राप्त किया जाता था। यद्यपि एलीजरीन अकेला रंगने के लिये अनुपयुक्त है तथापि धातु लवणों के विलयन के साथ मिलकर लाल व नीले सुन्दर रंग देता है। कपड़े को चूने के पानी में डुबोकर मैडर जड़ों के साथ उबालने पर अति तेज रक्तिम लाल रंग कपड़े पर चढ़ जाता है जो काफी टिकाऊ होता है। एक और बैंजनी रंग एक प्रकार के छोटे घोंघों से प्राप्त किया जाता था। इसके अधिक मूल्य के कारण कुछ धनवान लोग ही इसका उपयोग कर सकते थे और इसी कारण इसे शाही बैंजनी भी कहते हैं। इसी प्रकार के कुछ और पदार्थों का प्रचलन था।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही विज्ञान का क्रियात्मक उपयोग औद्योगिक प्रतिष्ठानों में किया जाने लगा जिसके कारण सामान्य जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन सामने आये। विभिन्न प्रयोगशालाओं में किये गये विस्तृत प्रयोगों के फलस्वरूप अनेक अच्छे, सुन्दर व टिकाऊ रंगों का जन्म हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण इस क्षेत्र को विशेष गति मिली। वास्तव में अब इतने प्रकार के रंग बनने लगे हैं कि पसंद करना कठिन हो जाता है। मनुष्य को अब प्रकृति की ओर नहीं ताकना पड़ता, वड़े वड़े प्रतिष्ठानों में वड़े मापदण्ड पर इनका उत्पादन किया जाता है।

यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक रंगीन यौगिक रंजक बन सके। सफल रंजक बनने के लिये यौगिक में कुछ विशेष गुण होने चाहिये। रंजक को केवल तंतुओं की सतह ही रंगना आवश्यक नहीं बल्कि उनके अन्दर तक प्रवेश करना चाहिये। तभी समान व अच्छा रंग दृष्टिगोचर होगा। साधारण रूप से साबुन आदि से धोने पर रंजक की तीव्रता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। साबुन आदि का कार्य ही कपड़े से बाहरी पदार्थों जैसे मैल, धूल आदि को दूर करना होता है। कपड़े के लिये रंजक

भी इसी श्रेणी में आता है इस कारण रंजक इस प्रकार लगाना चाहिये कि वह कपड़े द्वारा पूर्ण रूप से सोख लिया जाय और साधारण धोने की क्रिया से न निकले। इसके अतिरिक्त हल्के अम्ल, क्षार धूप, ताप आदि का भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये।

केवल रंजक ही नहीं कपड़े के ऊपर भी रंग निर्भर करता है। कपड़े मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं।

(1) वानस्पतिक सेल्यूलोज रेशे—जैसे सूती, सन तथा जूट।

(2) जीव प्रोटीन रेशें जैसे ऊन, सिल्क, चमड़ा।

(3) रासायनिक—डेकरान, रेयन, नायलॉन आदि।

इनमें एक तरफ ऊन है जो अत्यधिक ध्रुवीय है तथा दूसरी ओर पोली प्रोपिइलिन अध्रुवीय कपड़े है! ऊन पोली पेपटाइड होता है जिसमें सिस्टीन द्वारा संकर संधि होती है तथा स्वतन्त्र अमीनों और एसिड समूह होते हैं।

सेल्यूलोज रेशों में रंजक का अणु हाइड्रोजन बन्ध द्वारा, जो क्षीण होता है, जुड़े रहते हैं। मजबूत बन्धन के लिये बड़े रंजक अणु होना आवश्यक है। जैसे-जैसे रंजक अणु बड़ा होता जाता है वह कम विलयशील होता जाता है इस कारण धोने पर देर से निकलता है अर्थात् वह स्थायी होता है। यदि हमें पूर्ण रूप से स्थायी रंजक बनाना है तो उसके लिये उसी अनुपात में रंजक अणु बड़ा बनाना होगा। ऐसा करने पर एक सीमा के पश्चात् अणु अविलेय हो जायेगा। ऐसी स्थिति में रंजक अणु को अवकृत करके विलेय बनाया जाता है तथा इसी अवस्था से उसे कपड़े पर लगाया जाता है। इसके पश्चात् उसे पुनः आक्सीकृत करके अविलेय के रूप में कपड़े पर चढ़ाया जाता है।

रासायनिक वस्त्रों के लिये अनेक विभिन्न प्रकार के रंजक, उनकी संरचना के आधार पर निर्मित किये गये हैं। नायलोन के लिये, जो क्षारीय होता है, एसिड रंजक बनाये गये हैं। वास्तव में रेशे पानी में डालने पर आन्तरिक आसमाटिक परासारी दाब के कारण फूल जाते हैं। एक्स किरणों के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि इस प्रकार फूलने से रेशों में अनेक छिद्र खुल जाते है जिनसे होकर रंजक अणु अन्दर प्रवेश कर सकते हैं। दूसरे मतानुसार रंजक अणु विसरण के कारण अन्दर प्रवेश करते हैं।

रंजकों का विभाजन अनेक प्रकार से किया जा सकता है उनके रासायनिक सूत्रों के आधार पर, या ऐतिहासिक दृष्टि से या उनके कपड़ों पर प्रयोग करने की विधि के अनुसार। इसी अन्तिम दृष्टि से ही विभाजन का हम अध्ययन करेंगे।

(1) ध्रुवीय समूह युक्त रंजक

ऊन व सिल्क रेशों में अनेक ध्रुवीय समूह होते है। अतः ऐसे रंगीन यौगिक जो इन समूहों के साथ क्रिया करके स्थायी बन्ध बना सके अच्छे रंजक होंगे। वे साधारण धोने की क्रिया में कपड़े से अलग नहीं होंगे। वे यौगिक जिनमें स्वतन्त्र अमीनों (NH_2) या सल्फोनिक $-SO_3H$) समूह होते है इस कार्य के लिये विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। मारीशस यलो काफी अम्लीय है इस कारण ऊन व सिल्क को सीधे रंग सकता है। सूती कपड़ों के लिये सीधे रंगने वाले रंजक बनाना कठिन है। काँगों रेड इस प्रकार का पहला रंजक था। इसमें NH_2 व $-SO_3H$ समूह होते हैं जो सेल्यूलोज के ईथर वहाइड्राक्सिल समूह तथा अन्य रंजक अणु सूत्रों के साथ हाइड्रोजक बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

(2) विक्षेपित रंजक

बीज के व कम ध्रुवीय रेशों के लिये पानी में अविलेय लेकिन रेशों में विलयशील विक्षेपित रंजक प्रयोग में आते हैं। इस प्रकार के रंजक केवल ध्रुवीय स्थानों से क्रिया करके ही कपड़े पर स्थिर नहीं रहते हैं। इनका वास्तविक रंग कपड़े पर ही आता हैं। इस प्रकार के रजकों का महीन चूर्ण साबुन के घोल में विक्षेपित करके कपड़े पर लगाया जाता है। साबुन के घोल में कुछ फिनोल फीनॉल क्रिसोल या बेन्जोइक एसिड मिलाया जाता है जो विलायक की भाँति कार्य करते हैं। कपड़े पर रंजक का अधिशोषण धीरे-धीरे होता है। ऊंचे ताप तथा दाबपर में कार्य करने पर अच्छे फल मिलते है।

कुछ रंजक सीधे कपड़ों पर ही संश्लेषित किये जाते हैं जैसे पैरा रेड। यद्यपि अब यह केवल एतिहासिक रुचिका है। कपड़ों को पहले नेप्थॉल के क्षारीय घोल में भिगो कर सुखा लिया जाता है फिर नाइट्रोबेंजीन डाइअजोनियम क्लोराइड में डुबोया जाता है इस प्रकार लाल ऐज़ो रंजक सीधे कपड़े पर बन जाता है।

इस विधि में अनेक परिवर्तन किये गये हैं तथा इसका विशेष प्रयोग छींट के कपड़ों में किया जाता है। इस प्रकार बनाये गये रंजक श्रेष्ठ स्थायी व सुन्दर होते हैं।

4. स्थापक रंजक

इस प्रकार के रंजक प्राचीन काल में भी प्रयुक्त किये जाते थे। सर्वप्रथम कपड़े को धातु लवण के विलयन में क्षीण क्षार तथा आर्द्रक की उपस्थिति में भिगोया जाता है। इस प्रकार रेशें, धातु आयन के साथ क्रिया करके जटिल बनाते हैं। इस क्रिया के पश्चात् दी कपड़ा रंजित करने लायक हो पाता है। अब रंजक को लगाया जाता है जिससे एक जटिल लवण-जिसे 'लेव' कहते हैं बन जाती है। जैसे अल्यूमीनियम हाइड्राक्साइड की उपस्थिति में एलीजरीन कपड़ों कोटर्कीलाल में रंग देती हैं। इसमें धातु लवण को बन्धक कहते है।

5. वेट रंजक

अस्फुटित रंजक की तरह ही इसे कपड़े पर लगाया जाता है। रंजक को विलयन के रूप में जो स्वयं रंगहीन भी हो सकता है कपड़े पर लगाया जाता है और फिर अविलेय के रूप में रंजक कपड़े पर उत्पन्न किया जाता है। प्रायः अवकृत रूप में रंजक को लगा कर पुनः आक्सीकृत करके उत्पन्न किया जाता है। अवकरण-चरण में वेट का प्रयोग किया जाता है इस कारण इसे वेट रंजक कहते हैं। प्राचीन काल में नील इसी प्रकार लगाया जाता था।

वास्तव में यौगिक सत्र में स्थान-स्थान पर अलग-अलग समूह लगाने से अलग-अलग रंग व स्थिरता के रंजक प्राप्त होते हैं। कौन सा समूह क्रिय स्थान पर सर्वाधिक उपयोगी होगा, शोध कार्य से पता चलता है। आज अनेक प्रयोगशालाओं में इस दिशा में सक्रिय कार्य हो रहा है। कुछ रंजक आकस्मिक रूप से भी निकल आते हैं। जैसे 1270 में कुछ वैज्ञानिक स्कॉटिश डाइ लि० में कार्य कर रहे थे उन्होंने देखा कि कुछ थैलोमाइड जो थैलिक एनहाइड्राइड व अमोनिया की क्रिया से लोहे के बर्तनों में बनाये जा रहे थे—नीले रंग से दूषित थे। इस अशुद्धि के कारणों की खोज ने एक नये समूह के रंजनों को, जिन्हें थैलोसाइनिन कहते हैं, जन्म दिया। इसमें मोनास्ट्रल फास्ट ब्लू सर्वप्रथम रंजक था।

अब प्रश्न यह उठता है कि रंजक क्यों रंगीन होता है तथा कपड़े पर उसे लगा देने पर कपड़ा भी क्यों रंगीन प्रतीत होता है। इस प्रश्न को समझने के लिये हमें काफ़ी विस्तार से अध्ययन करने की आवश्यकता है लेकिन थोड़े में हम इस प्रकार समझ सकते हैं।

दृश्य प्रकाश विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम वर्णक्रम का केवल एक छोटा सा (4000–8000 A°, $1A^{\circ}=10^{-8}$ सेंमी भाग है। दृश्य प्रकाश अनेक तरंग दैर्घ्य से मिल कर बना है तथा प्रत्येक तरंग धैर्य का अपना अलग-अलग रंग है। जब यौगिक पर श्वेत प्रकाश पड़ता है तो वह कुछ रंग का शोषण करता है तथा कुछ परावर्तित कर देता है। परावर्तित प्रकाश आँख की रेटिना पर पड़ता है जिससे मानसिक व शारीरिक क्रियाओं का एक जटिल क्रम आरम्भ हो जाता है और इस प्रकार यौगिक के रंग की अनुभूति होती है। यदि यौगिक केवल नीले रंग को सोखे तब परावर्तित प्रकाश मुख्यतयः पीला होगा, इस रंग को पूरक रंग कहते हैं तथा यौगिक इसी पीले रंग का लगेगा। इस प्रकार दृश्य प्रकाश के क्षेत्र में अलग अलग तरंग दैर्ध्य के परावर्तित होने से अनेक रंगों को अनुभूति होती है।

अनेक रसायन शास्त्रियों ने अणु संरचना व यौगिक के रंग में तारतम्य स्थापित करने के प्रयत्न किये। यद्यपि अभी तक कोई सर्वमान्य नियम प्रतिपादित नहीं हो सका है तथापि विभिन्न मतों के अनुसार काफी सीमा तक यह जटिल प्रश्न समझा जा सका है।

सर्वप्रथम विट ने 1270 में यह निष्कर्ष निकाला कि पदार्थ का रंग उसमें स्थित असंतृप्त समूहों के कारण होता है, जैसे संयुग्म द्विबन्ध —N=O, — $N\begin{smallmatrix} O \\ O \end{smallmatrix}$, —N=N—। रंग व उसकी तीव्रता इस प्रकार के समूहों की संख्या व स्थिति पर निर्भर करती है। बेन्जीन स्वयं रंगहीन होती है लेकिन नाइट्रो समूह लगा देने पर हल्के पीले रंग की हो जाती है। क्योंकि तब वह हल्के पीले रंग की तरंग दैर्घ्य को परावर्तित करने लगती है। इसी प्रकार निम्न लिखित यौगिक का रंग उसमें उपस्थित सम्बन्ध द्वि बन्धों की संख्या पर निर्भर है।

$C_6H_5—(CH=CH)n—C_6H_5$ n=3 — पीला
=5—नारंगी
=7—ताम्र ब्रोंज़
=11 बैंजनी काला
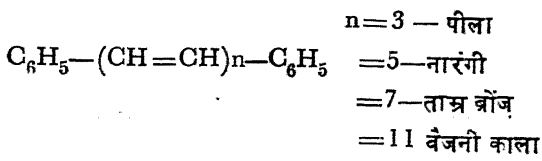
सौरभिक यौगिक इस कार्य के लिये विशेष उपयोगी हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ समूह ऐसे होवे हैं जिनकी उपस्थिति रंग की तीव्रता को कम कर देती है। कुछ ऐसे भी समूह हैं जिनसे तीव्रता बढ़ जाती है। ऐसे समूह अकेले कोई रंग नहीं देते हैं केवल दूसरे समूहों के साथ होने पर उनकी तीव्रता पर प्रभाव डालते हैं। ऐसे समूहों को क्रमशः वर्णापकर्षी तथा वर्णाविकर्षी कहते हैं।

जैसे-जैसे यौगिकों की संख्या बढ़ती गयी प्रश्न जटिल होता गया। 1825 में आर्मस्ट्रांग ने कहा कि यौगिक को रंगीन होने के लिये उसे क्वीनोनाइड रूप में लिखवाना सम्भव होना चाहिये। लेकिन कुछ समय बाद ही इस मत के विपरीत अनेक बातें सामने आयीं। अनेक यौगिक जो रंगीन थे इस रूप में नहीं लिखे जा सकते थे। तथा रंगहीन पदार्थ लिखे जा सकते थे।

आधुनिक समय में अनुनाद मत का प्रयोग इस दिशा में किया गया। इसके अनुसार यौगिक के जितने अधिक अनुनाद सूत्र लिखे जा सकते हैं उतना ही तीव्र उसका रंग होगा। इस मत के अनुसार पिछले मतों को भी समझा जा सकता है। असंतृप्त समुन्हों के द्वारा अनुवाद अधिक हो सकता है।

आजकल आणविक कक्षीय सिद्धान्त से भी इस प्रश्न को समझने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

इस प्रश्न के सुलझाने के लिये वैज्ञानिक प्रयत्नशील है। जब यह पूर्ण रूप से सुलझ जायेगा तब अधिक लुभावने स्थिर व टिकाऊ रंजक बनाना सरल हो जायेगा।

● ●

कृषि विज्ञान की महत्वपूर्ण देन

(अ) जई और बरसीम मिला जुला चारा अधिक पौष्टिक

यदि जई के साथ कोई बरसीम जैसी दलहनी फसल मिलाकर उगाई जायें तो चारे में पौष्टिक तत्वों की मात्रा और पैदावार काफी बढ़ जाती है।

जई-बरसीम एक साथ उगाने से प्रति हेक्टर चारे की पैदावार 96,480 किलो मिली जबकि अकेली जई को उगाने से पैदावार, 10,400 किलो मिली। जई-बरसीम मिलाकर उगाये खेत से चारे की चार-पांच कटाइयां आसानी से की जा सकती है लेकिन अकेली जई के खेत से ज्यादा से ज्यादा एक-दो कटाइयां ही ठीक तरह की जा सकती हैं।

पशुओं को जई-बरसीम मिला चारा खिलाने से अफारे की बीमारी नहीं होती। उन्हें केवल जई का चारा खिलाने से यह रोग हो सकता है। जई-बरसीम मिले चारे को पशु अकेले जई के चारे को बनिस्बत बड़े स्वाद से खाते हैं।

(ब) पटसन की पत्तियों पर यूरिया का छिड़काव करने से भारी पैदावार

कृषि मंत्रालय, भारत सरकार के पटसन विकास निदेशालय के अनुसार पटसन की 40 से 60 दिन की फसल पर 25 किलो फी हेक्टर के हिसाब से यूरिया का छिड़काव करने से पैदावार काफी बढ़ जाती है। पटसन पैदा करने वाले किसानों को यूरिया मुफ्त दिया जाता है।

हस्त चालित छिड़काव यंत्र में यूरिया के तीन प्रतिशत घोल और शक्ति चालित छिड़काव यंत्र में दस प्रतिशत घोल का इस्तेमाल करना चाहिए। यूरिया का छिड़काव दो या तीन बार में 10 से 15 दिन के अन्तर से किया जा सकता है।

पटसन विकास कार्यक्रम के कार्यभारी ग्राम सेवक से इस संबंध में आवश्यक सहायता प्राप्त की जा सकती है।

(स) लोबिया की संकर किस्म से भारी पैदावार

भारतीय कृषि अनुसंधानशाला, नई दिल्ली ने लोबिया की पांच संकर किस्में सी–2, सी–13, सी–19, सी–20 और सी—22 निकाली हैं जो पक कर जल्दी तैयार हो जाती हैं और पैदावार भी अधिक देती हैं। इनमें से पहली तीन किस्मों से औसतन लगभग 900 से 1,000 किलो और बाद की दो किस्मों से लगभग 1,200 से 1,300 किलो प्रति हेक्टर पैदावार लगभग 75 से 80 दिनों में मिली।

इन किस्मों को चित्तीदार विषाणु और जीवाणु रोग

नहीं लगते। ये किस्में सूखे इलाकों के लिए उपयुक्त हैं।

उत्तर भारत में इन अल्पकालीन फसलों के बाद गेहूं, जौ, चना, अलसी और केरल तथा आंध्र प्रदेश के ऊंचे इलाकों में धान की फसल सफलतापूर्वक ली जा सकती है।

आंध्र प्रदेश, केरल और तमिलनाडु में इन किस्मों को अरहर के साथ उगा सकते हैं या सूखे इलाकों में इन्हें रबी या तम्बाकू के बाद बोया जा सकता है।

(द) गर्मियों में भी ताजा अंडे

हरियाणा में हिसार स्थित पशु विज्ञान महाविद्यालय के वैज्ञानिकों के अनुसार गर्मी के महीनों में अंडों को तीन चार हफ्ते तक ताजा रखा जा सकता है। अंडों को पैराफिन और अलसी के तेल के घोल में डुबा कर रखने से वे खराब नहीं होते।

घोल बनाने के लिए 75 भाग पैराफिन और 25 भाग अलसी का तेल मिला कर किसी बर्तन में रख लेना चाहिये। इसके बाद अंडों को एक साथ घोल में डाल कर एक-एक करके उन्हें निकाल कर रख लेना चाहिये।

(य) 'पूसा बैसाखी मूंग' उर्वरक डालने से भारी पैदावार

'पूसा बैसाखी मूंग' की फसल में प्रति हैक्टर 125 किलो अमोनियम सल्फेट और 400 किलो सुपरफास्फेट का मिश्रण डालने से 8 क्विंटल की अतिरिक्त पैदावार होती है। इस तरह 200 रुपये प्रति हेक्टर के हिसाब से उर्वरक का खर्च निकालने के बाद 600 रुपये का मुनाफा होता है।

इस हिसाब से पूसा बैसाखी मूंग की फसल से कुछ ही महीनों में एक रुपया उर्वरकों के ऊपर खर्च करके तीन रुपये का मुनाफा कमाया जा सकता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों के अनुसार पोरे से बीज के साथ मिट्टी में उर्वरक डालने का ढंग सबसे अच्छा रहता है।

(२) गन्ने का भली प्रकार अंकुरण कुछ गुर

महाराष्ट्र में गंगोती स्थित एम. एम. विद्यापीठ में किये गये परीक्षणों से पता लगा है कि महाराष्ट्र में गन्ने की रोपाई दिसम्बर में करनी चाहिए। रोपाई के लिए गन्ने का बीज सिरे से 0.5 मीटर छोड़ कर लेना चाहिए।

रोपाई के समय खेत में नाइट्रोजन वाले उर्वरक डालने से पेड़ों में जल्दी अंकुर फूटने में मदद मिलती है। फास्फोरस डालने से उनमें जड़ें जलदी निकल आती हैं।

रोपाई से पहले बीज को आधा किलो तेज चूना डालकर बनाये गये घोल में 12 से 24 घंटे तक डुबाकर रखने से जल्दी अंकुर फूट आते हैं। इस उपचार से पेड़ों की आंखें फूल जाती हैं और कीड़ों के अन्डे भी नष्ट हो जाते हैं।

90° फा० से 100° फा० तापक्रम में पेड़ों का अंकुरण अच्छा होता है।

(ल) खरीफ में मेंड़ों पर दालें उगाने से अधिक आमदनी

भारतीय कृषि अनुसंधानशाला, नई दिल्ली में किये गये परीक्षणों से पता लगा है कि मेड़ों पर अरहर (टी-21) उगाने से 500 रुपये से 600 रुपये तक का प्रतिहेक्टर मुनाफा लिया जा सकता है।

परीक्षणों से यह भी पता लगा है कि खरीफ के मौसम में समतलक्यारियों में दालें उगाने की अपेक्षा मेड़ों पर उगाने से जल भराव वाले इलाकों में भी सामान्य पैदावार से अधिक पैदावार मिलती है। इस तरीके से मेंड़ बनाने पर किये गये अतिरिक्त खर्चे को निकाल देने पर भी पर्याप्त मुनाफा मिलता है।

मूंग (टी-2) और उड़द (टी-६५) की भी मेंड़ों पर खेती करने से अधिक पैदावार मिलती है हालांकि इनकी पैदावार में अरहर की पैदावार से ज्यादा अन्तर नहीं होता।

(ब) जल्दी पकने और भारी पैदावार देने वाली मसूर नई किस्में

भारतीय कृषि अनुसंधानशाला, नई दिल्ली द्वारा निकाली गई मसूर की तीन नई किस्मों पूसा-1-1, पूसा-1-2 और पूसा-1-से 6 से प्रति हेक्टर 17 से 19 क्विन्टल तक पैदावार मिल सकती है।

इन किस्मों से अधिक पैदावार मिलती है और इनकी फसलें जल्दी पक कर तैयार हो जाती हैं। दूसरी स्थानीय किस्में आमतौर पर 110 से 200 दिन में तैयार होती हैं जबकि ये तीन नई किस्में 70 से 80 दिन में ही तैयार हो जाती हैं।

इनमें से पूसा-1-6 किस्म से 72 में प्रति हेक्टर 1897 किलो भारी पैदावार मिली ;

ये किस्में पाला सहन कर लेती हैं और जाड़ों में सूखे के समय भी अच्छी उपज देती। उत्तर और मध्य भारत में इन किस्मों को धान के साथ फसल चक्र में शामिल किया जा सकता है।

विज्ञान-वार्ता

भारत में महासागरीय विज्ञान

"भारत का महासागरीय विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान कार्यक्रम अत्यन्त उत्कृष्ट, और विश्व के इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ है।"—

इस ज्ञान से भारत को नवीन तटवर्ती सागर क्षेत्रों की सम्पदा, और विशेष रूप से मछली के अछूते शिकार-गाहों, की खोज करने में बड़ी सहायता मिलेगी।

मछली न केवल विश्व का एक अधिकतम लोकप्रिय खाद्य-पदार्थ, बल्कि, जैसा कि विशेषज्ञों का कहना है, एक अधिकतम पोषण तत्व युक्त आहार भी है। फिर भी आज विश्व में पकड़ी जाने वाली मछली की मात्रा लगभग 605 करोड़ टन ही है।

भारत में मछली का शिकार मुख्यतः सागर तटवर्ती क्षेत्रों तक ही सीमित है। भारत इस अर्थ में बहुत ही सौभाग्यशाली देश है कि यह तीन ओर से समुद्र से घिरा है। इसके तटवर्ती इलाकों के निकटवर्ती सागर क्षेत्रों में मछली बहुतायत से पायी जाती है। हिन्द महासागर में प्रतिवर्ष लगभग 25 लाख टन मछली का शिकार होता है। अनेक प्रमुख वैज्ञानिकों और महासागरीय अनुसंधान-कर्ताओं के अनुसार इस मात्रा में 8 गुनी वृद्धि की जा सकती है।

यद्यपि मनुष्य महासागरों से कई प्रकार की सम्पदाएं प्राप्त कर सकता है, फिर भी पर्याप्त साधनों और सुविधाओं के अभाव के कारण महासागरों के विकास सम्बन्धी कार्यक्रम में बाधा उत्पन्न होती है। किन्तु इन बाधाओं के बावजूद महासागरीय विज्ञान ने बहुत सफलताएं प्राप्त की है और मानव जाति के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। महासागरीय विज्ञान द्वारा मछलियों की गति-विधियों का अध्ययन करने से लेकर इस बात की भविष्य-वाणी करने में बड़ी सहायता मिली है कि तूफानी मौसम में जहाजों को किस दिशा में अग्रसर होना चाहिये।

अमेरिकी कमाण्डर वाल्श का मत है कि यद्यपि अमेरिका का अन्तरिक्ष-अनुसन्धान कार्यक्रम बहुत व्यय-साध्य है, किन्तु उसे महासागरीय अनुसन्धान कार्यक्रम को क्षति पहुंचा कर बढ़ावा नहीं दिया गया है। के फलस्वरूप मौसम उपग्रहों और ऊर्मि संगणक जैसी वस्तुओं का आविष्कार सम्भव हुआ है, जो महासागरीय अनुसंधान के लिए अतीव सहायक सिद्ध हो रही हैं।

सूर्य के प्रभामण्डल का अध्ययन करने के लिए अमेरिका द्वारा भू-उपग्रह का प्रक्षेपण

सूर्य के अत्यधिक उष्ण एवं सक्रिय प्रभामण्डल का अध्ययन करने के लिये अमेरिका द्वारा एक ऐसा कृत्रिम भू-उपग्रह अन्तरिक्ष में भेजा गया है जो स्वयं अपना स्थायी सूर्य-ग्रहण उत्पन्न कर सकता है।

गत सप्ताह केप कैनेडी, फ्लोरिडा से दागे गये एक डेल्टा राकेट द्वारा 1,400 पौण्ड वजनी परिक्रमा करने वाली एक सौर वेधशाला कक्षा में भेजी गयी थी, जी० ओ० एस० ओ०-7 के नाम से से पुकारी जाती है।

राकेट की नियन्त्रण व्यवस्था में कुछ गड़बड़ी हो जाने के कारण वह वेधशाला डगमगाती हुई एक ऐसे मार्ग में चली गयीं जो इच्छित मार्ग की तुलना में कुछ निचाई

पर है। किन्तु अधिकारियों का कहना है कि उन्हें आशा है कि वह कृत्रिम भू-उपग्रह अपने कार्य को सम्पन्न कर देगा।

'ओ० एस० ओ० को नियन्त्रण में लाने के लिये ग्रीन बेल्ट, मेरीलैण्ड, में स्थित गोडार्ड अन्तरिक्ष उड़ान केन्द्र के भू-उपग्रह नियन्त्रण केन्द्र में इन्जीनियरों ने समूचे दिन कार्य किया और लघु-जेटों को दागने तथा उसके सोलर पैनेल को सूर्य की ओर उन्मुख करने के लिये भू-उपग्रह को रेडियो आदेश भेजते रहे।

'ओ० एस० ओ०—7' सूर्य के सम्बन्ध में अध्ययन करने के लिये अमेरिकी अन्तरिक्ष एजेन्सी द्वारा भेजे गये भू-उपग्रहों में सबसे बड़ा तथा अत्यन्त उन्नत भू-उपग्रह है। सूर्य के प्रभामण्डल और सौर ज्वालाओं का अध्ययन करने के लिये उसमें 6 परीक्षण-उपकरण भेजे गये हैं।

पूर्ण सूर्यग्रहण की संक्षिप्त अवधियों के दौरान ही पृथ्वी से मंद प्रभामण्डल के रूप में प्रभामण्डल को देखा जा सकता है और उसका अध्ययन किया जा सकता है।

लम्बे समय तक प्रभामण्डल का अवलोकन करने के लिये इस भू-उपग्रह का निर्माण इस प्रकार हुआ है ताकि यह स्वयं अपना ग्रहण उत्पन्न कर सके। वेध शाला के सम्मुख बढे हुए एक दण्ड पर एक ऐसी वृत्ताकार तश्तरी (डिस्क) स्थित है जिसका उसी प्रकार सूर्य को ढांपने के लिये प्रयोग किया जायेगा जिस प्रकार एक प्राकृतिक ग्रहण के समय चन्द्रमा करता है।

ऐसी स्थिति में अन्तरिक्षयान में स्थित कैमरा दृष्टि-गोचर प्रकाश, एक्सरे और अल्ट्रावायलेट प्रकाश में चित्र ले सकेगा।

अमेरिकी राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन (नेसा) ने बताया कि प्रभामण्डल बड़ा महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह सूर्य का अत्यन्त क्रियाशील प्रदेश है और इसके सम्बन्ध में ऐसी आशंका है कि यह इतनी ऊर्जा उत्पन्न करता है जो अरबों उद्जन बमों की शक्ति के बराबर है। सूर्य से निकलने वाली विकिरण सौर चुम्ब-कीय क्षेत्रों द्वारा रोक ली जाती है।

'ओ० एस० ओ—७' पर स्थित अन्य उपकरण ऐक्सरे और सूर्य पर होने वाले बड़े-बड़े विस्फोटों से निकलने वाली उन अल्ट्रा वायलेट विकिरणों का माप करने के लिये बनाये गये हैं जो सौर-ज्वालाओं के नाम से विख्यात हैं।

'ओ० एस० ओ—7' के साथ एक लघु अष्ठकोणीय भू—उपग्रह भी अन्तरिक्ष में भेजा गया है जो 'टैटर' (टेस्ट एण्ट ट्रेनिग सेटलाइट) के नाम से पुकारा जाता है।

इस प्रकार से सूर्य-प्रभामंडल का विस्तृत अध्ययन दैनिक उपभोग हेतु ऊर्जा प्रदत्त करने तथा तत्संबंधित नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों और खोजों हेतु अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० |3|5|

भाग 108 | अश्वनी 2028 विक्र०, 1892 शक
सितम्बर 1971 | संख्या 9

हृदय-गति के रोगियों के लिए नई किरण

□ डा० अरुणकुमार सक्सेना

हृदय गति रुक जाने का रोग अब लगभग साधारण-सा हो गया है। मात्र इंगलैण्ड एवं वेल्स में ही इससे मरने वालों का प्रतिशत लगभग 22 है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि संसार में इसके कारण कालकवलित होने वालों की संख्या कितनी अधिक होगी। कौन जानता है कि कब एक पूर्ण स्वस्थ प्राणी कुछ ही क्षणों में इस संसार से कूच कर जायेगा।

हृदय मनुष्य के शरीर का एक विशेष अंग है। इसका कार्य अत्यधिक साधारण है। शिराओं द्वारा लाया गया अशुद्ध रक्त को स्वच्छ करने के लिए फेफड़ों में पहुँचा देना और फेफड़ों से आए शुद्ध रक्त का संचार पूरे शरीर में करना इसका कार्य है। वास्तव में इसे हम सब पम्पिग स्टेशन कह सकते हैं। यह प्रत्येक मिनट में 72 बार सिकुड़ता तथा फैलता है। इसे एक बार सिकुड़ने तथा फैलने में यह 70 सी० सी० रक्त धमनियों पहुँचा देता है।

एक और आश्चर्य की बात है कि यह स्वयं भी रक्त लेता है। 70 मि० ली० रक्त फेंकते समय लगभग 12 मि० ली० रक्त इसकी दायें तथा बायें भागों में स्थित छोटी-छोटी कोनोनरी आर्टरीज़ नामक धमनियों में स्वतः पहुँच जाता है। किसी कारणवश यदि इन धमनियों में पहुँचने में बाधा हो जाय तो हृदय गति का रोग हो जाता है। यह रक्त की रुकावट तुरन्त हो गयी तो हृदय गति रुक जाती है। यदि यह रुकावट धीरे-धीरे हुई जिससे कि ये धमनियाँ कमजोर हो जाती हैं तो दिल के दौरे पड़ने लगते हैं। हृदय की बायें कोरोनरी धमनी में रुकावट हुई तो हृदय का वह भाग बेकार-सा ही हो जाता है। यदि रुकावट दायीं कोरोनरी धमनी में हुई तो वह भाग भी बेकार हो जाता है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि यह रुकावट दोनों में एक साथ हो।

हृदय गति रूक जाने की मुख्यतः तीन प्रकार की बीमारियां देखी गई हैं। जिनके नाम एजाइना, पैक्टोरिस कोरोनरी थ्रोम्बोसिस, और कोरोनरी एम्बोलिज्म हैं।

प्रथम रोग उस समय होता है जब कि रोगी कुछ कार्य कर रहा होता है। इसमें रोगी के वक्ष के बायें ओर के कन्धे, गर्दन तथा बायें पेट के ऊपरी भाग में असहनीय

दर्द होता है, इस दर्द के कारण रोगी प्रायः बेहोश भी हो जाता है। रोगी को कुछ ऐसे रोग पहले से होते हैं जैसे कि ब्लड प्रेशर तथा डाईबिटिज आदि जिनके कारण मुख्य धमनी (ए-ओटो) की दीवारें गन्दगी से मोटी हों जाती हैं तथा रक्त प्रवाह में बाधा पैदा हो जाती है। रक्त इन्हीं से होकर कोरोनरी धमनी में जाता है। ये दौरे कभी-कभी अत्यधिक प्रसन्नता तथा दुःखित समाचार प्राप्त होने पर भीपड़ जाते हैं।

द्वितीय प्रकार के रोग में रोगी को दिल के दौरे प्रायः रात्रि में सोते समय पड़ते हैं इसमें रोगी की निद्रा भंग हो जाती है और रोगी पसीने से तर हो जाता है। साथ ही साथ मुख का रंग लाल हो जाता है। सीने में दर्द बहुत तीव्र नहीं होता किन्तु काफी समय तक रहता है। कारण केवल साधारण-सा है कि रोगी की कोरोनरी धमनी की झिल्लियों में गन्दगी के कारण रक्त धमनी की दीवारों में चिपकने लगता है। प्रायः इसके शिकार एथीरोक्केलेरोसिस तथा ब्लड प्रेशर वाले ही रोगी होते हैं।

कोरोनरी एम्बोलिज्म का कारण साधारण-सा ही है। इसमें केवल रक्त के साथ कोई घूमती हुई वस्तु हृदय की धमनी में फँस जाती है। यह वास्तव में जमा हुआ रक्त चर्बी का टुकड़ा अथवा हवा का बुलबुला होता हैं। यह बुलबुले आपरेशन के समय शिराओं में चल जाते है।

आज भी अभाग्यवश धमनी में खराबी आ जाने तथा रक्त जम जाने के कारण समझ में नहीं आ पाये हैं। इसी कारणवश आज तक हृदय गति के रोग की रोकथाम भी नहीं हो सकी है किन्तु रोगी की विशेष प्रकार की सेवा करने से इससे मरने वाले रोगियों की संख्या में कमी अवश्य लायी जा सकती हैं।

इस रोग में विशेष बात ध्यान देने योग्य यह होती है कि रोगी के हृदय की धड़कन की गति में अन्तर आ जाता है। कभी-कभी तो यह गति काफी मन्द हो जाती है। जिससे विविध प्रकार की जटिल समस्याए और बढ़ जाती है और रक्त के प्रवाह की गति भी मन्द होती जाती है। इस कारण हृदय की गति एकदम रुक सकती है अथवा कई दिनों के पश्चात् रुक जा सकती है। सर्व प्रथम प्रश्न उठता है कि किस प्रकार हृदय की गति को बढ़ाया जाये। इसके लिए विशेष प्रकार की औषधियों का उपयोग किया जाता है, एक विशेष प्रकार के उपकरण के द्वारा हृदय की मालिश की जाती है। 1967 में केवल आठ प्रतिशत रोगियों को इस विशेष प्रकार की मालिश से तथा उपचार से लन्दन के वेस्टमिनिस्टर के अस्पताल में बचाया गया।

दिल के दौरों के समय धमनी के रक्त में आक्सीजन की मात्रा में कमी आ जाती है इस कारण आक्सीजन को अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। इसी अस्पताल में एक विशेष प्रकार का उपकरण बनाया गया है जिसमें आक्सीजन देने वाले पुराने उपकरण को हटा दिया गया है। इसमें रोगी को एक छोटे से स्थान पर लिटा दिया जाता है जिसकी हवा निकाल कर उसमें लगभग 15 पाउण्ड-दबाव प्रति इंच के हिसाब से आक्सीजन भर दी जाती है जो कि वायुमण्डलीय दबाव की दुगनी होती है। इसी कारण इस नवीन उपकरण का नाम अति समनिपीड आक्सीजन पलंग((हेपरबेरिक आक्सीजन बेड) रक्खा गया है। इसी में रोगी को उसके संकट के समय में रक्खा जाता है। प्रत्येक दो घंटे के पश्चात् दबाव कम करके ढक्कन उठा लिया जाता है और आवश्यक उपचार किया जाता है। इसमें रोगी आक्सीजन के वायुमण्डल में रहता है इस कारण पुराना मुंह ढकने वाला उपकरण नहीं रहता है। इस विधि से रोगी नित्य की भांति सांस लेता है और धमनी के रक्त में सामान्य से लगभग 12 गुना अधिक आक्सीजन बढ़ जाती है। इस प्रकार की अधिक दबाव वाली आक्सीजन अधिक पीड़ा को दूर कर देती है। हृदय के दौरे के कारण फेफड़ों में कुछ द्रव एकत्रित हो जाते हैं जो कि हवा से आक्सीजन लेने की गति में अवरोध पैदा करते हैं। अधिक आक्सीजन के कारण यह कमी-भी सरलतापूर्वक दूर हो जाती है।

इसमें एक और जटिल समस्या रक्तचाप कम होते जाने की होती है। रक्तचाप कम होने से शरीर के तन्तुओं

को आक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है जो कि उन्हें रक्त से मिल नहीं पाती है इस कारण अम्ल तथा उसके (बाय प्रोडक्ट) उपोत्पादक बढ़ जाते हैं जिनके कारण सांस लेने की गति कम हो जाती है तथा रक्तचाप को भी घटा देता है। इसको अति समनिपीड आक्सीजन पलंग सरलतापूर्वक दूर कर देता है।

किसी अमुक अस्पताल में बारह रोगियों को यह सुविधा प्रदान की गई। वे सब तुरन्त संकट के समय को सरलतापूर्वक पार कर गये। दो दिन बाद में दूसरे कारणों से मर गये। इस पलंग में आक्सीजन का प्रवाह निरन्तर रक्खा जाता है और अशुद्ध आक्सीजन भी एक और अन्य उपकरण के द्वारा साथ ही साथ शुद्ध होती रहती है। यहां पर ताप तथा आद्रता भी ठीक से नियंत्रित की जाती है।

अति समनिपीड पलंग के और अन्य उपयोग

यह पलंग केवल साधारण चारपाई के बराबर स्थान घेरता है तथा इसके लिए कोई विशेष योग्यता वाले मनुष्य की आवश्यकता नहीं होती है। इसको वाईकर मेडिकल ग्रुप ने बनाया है। इसने इसमें एक प्लास्टिक का ढ़कना भी बनाया है जिसमें एक्स-रे किरणें भी भीतर जाती हैं और रोगी का उपचार भी बिना ढकना उठाये होता रहता है। इस किरण का उपयोग फोड़े आदि के चीरने में होता है क्योंकि यह किरणें आक्सीजन के वायुमण्डल में अतितीव्र होती हैं। इसी कारण तीव्र किरणों का उपयोग नहीं किया जाता है जो कि हानिकारक होता है। यह पलंग कार्बन डाई आक्साइड के दूषित प्रभाव को दूर करने के कार्य में भी आता है। यह उस प्रकार के घावों के उपचार में कार्य आता है जहां जीवाणु आक्सीजन से घृणा करते हैं जैसे कि गेंग्रीन।

आग का भय

आक्सीजन की अधिकता के कारण इस पलंग में आग लगने का भय सदा बना रहता है किन्तु इसे सरलतापूर्वक दूर किया जा सकता है। रोगी किसी प्रकार की आग लगाने वाली वस्तुयें न रक्खे तथा विद्युत के तार बाहर न रक्खे जायें।

अति समनिपीड आक्सीजन पलंग हृदय गति वाले रोगियों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। आशा है, कि शीघ्र ही भारतीव डाक्टर भी इस ओर ध्यान देंगे तथा भारतीय अस्पतालों में भी इसका उपयोग बहुलता से होने लगेगा।

- **अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।**

- **हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।**

प्रोटीन की कमी और जनसंख्या-वृद्धि

□ श्याम मनोहर व्यास

इसमे कोई सन्देह नहीं कि आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी युग है। मानव चन्द्रमा पर पहुँच गया है और उसका अब अगला पड़ाव मंगल ग्रह की ओर है।

पर पृथ्वी पर भी कई ऐसी समस्यायें हैं जिनकी ओर वैज्ञानिकों का ध्यान जाना आवश्यक है। आज की सबसे बड़ी समस्या है जनसंख्या-वृद्धि।

आज विश्व की जनसंख्या जिस गति से बढ़ रही है उसे देख कर यह अनुमान लगाया जा सकता कि इस शताब्दी के अन्त तक प्रत्येक मनुष्य के लिये आहार की बात तो दूर रही, रहने के लिये भूमि का प्रबन्ध करना भी कठिन हो जायगा।

आज विश्व की जनसंख्या चार अरब के लगभग है। प्रति वर्ष आठ करोड़ नये प्राणी जन्म ले रहे हैं।

अकाल की विभीषिका

यदि उत्पादन नहीं बढ़ाया गया और जनसंख्या इसी गति से बढ़ती रही तो वह दिन दूर नही जब मनुष्य कीड़े मकोड़े की तरह मरने लगेगा। आज भी विश्व के कई देश अकालग्रस्त हैं। अब तक की खोज के अनुसार भुखमरी से मृत्यु दर स्पष्ट रूप से बढ़ती है। इसी कारण सदा से यह समझा जाता रहा है कि युद्ध और महामारी की तरह भुखमरी भी आबादी की वृद्धि को रोकती है। अतः यह कथन आपको विचित्र एवं विरोधाभासी प्रतीत होगा कि भूख जन-संख्या का ह्रास नहीं, वरन् उसकी अति-वृद्धि करती है।

लेकिन यह कथन पूर्णतया सत्य है और प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित है।

जो देश भोजन की पौष्टिकता की दृष्टि से सबसे निचले स्तर पर है और जहाँ लाखों मनुष्यों का भूखों मरना सामान्य-सी बात है, वहीं जनसंख्या भयंकर तेजी से बढ़ती जा रही है—जैसे चीन, भारत, पाकिस्तान, एवं दक्षिण अमरीका के विभिन्न देश। इसके विपरीत, पौष्टिकता की दृष्टि से सर्वोच्च स्तर पर पहुँचे हुये देशों में जन्म-दर मुश्किल से मृत्यु-दर की बराबरी कर पाती है और वहाँ जनसंख्या-वृद्धि की समस्या नहीं होती। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका में आज यही स्थिति है।

प्रायः देखा गया है कि समाज के भूखे-नंगे मनुष्य सबसे अधिक सन्तान उत्पन्न करते हैं।

जीव-विज्ञान विशेषज्ञों ने अनुसन्धान द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि अन्नाभाव से जनसंख्या की रफ़्तार बढ़ती है इंगलैंड के डा० टामस डबलडे ने अपने एक निबन्ध में लिखा है—

"वनस्पतियों और प्राणियों के वृद्धि-क्षय का यह महान् नियम प्रतीत होता है कि जब किसी नस्ल या जाति का अस्तित्व खतरे में हो, तब प्रकृति हमेशा उसकी प्रजनन-शीलता बढ़ाकर उसकी रक्षा का प्रयत्न करती है खास कर ऐसा तब होता है. जब खतरा पौष्टिक भोजन की कमी के कारण उपस्थित हो। परिणाम स्वरूप अपरिपुष्टता प्रजनन-शीलता के अनुकूल होती है और अत्यधिक परिपुष्टता उसके प्रतिकूल।"

चूहों पर प्रयोग

प्रयोग एवं निरीक्षण से यह सिद्ध हुआ है कि निरन्तर भरपेट भोजन नहीं मिलने से मनुष्य की भूख मन्द पड़ जाती है। तब मनुष्य का ध्यान भोजन से हट जाता है। उसके लिये एक ही वस्तु जीव-विज्ञान की दृष्टि से महत्व-पूर्ण और आवश्यक रह जाती है—वह है काम-शक्ति। एक प्रवृति के ह्रास कीं पूर्ति दूसरे की वृद्धि द्वारा हो जाती है। प्रोटीन की कमी प्राणियों की प्रजननशीलता को बढ़ा देती है।

अमेरीका के डा० जे० आर० स्लोनेकर ने चूहों की 6 पीढ़ियों को ऐसी खुराकों पर रखा, जिनमें प्रोटीन की मात्रा भिन्न-भिन्न थी कुछ दिनों उपरान्त देखा गया कि जब भोजन में प्रोटीन की मात्रा केवल दस प्रतिशत थी, तो पाँच प्रतिशत चूहे नपुंसक थे। प्रोटीन का परिमाण बढ़ा कर 18 और 22 प्रतिशत कर देने परनपुंसक चूहों की संख्या बढ़कर क्रमशः 22 और 35 हो गई। इसी हिसाब से बाँझ चुहियों की संख्या बढ़कर क्रमशः 23 और 38 हो गई।

इससे स्पष्ट है कि भोजन में प्रोटीन की मात्रा जितनी बढ़ती है उसी अनुपात में प्रजनन-शक्ति घटती है। जीव विज्ञान की दृष्टि से प्रजनन-शीलता जिन अंगों पर निभर है, उनकी सक्रियता काफी सीमा तक हारमोनों पर नर्भिर होती है।

ये हारमोन कतिपय नाली रहित ग्रंथियों के स्राव होते हैं। स्त्री की गर्भ धारण शक्ति का इससे गहरा सम्बन्ध है कि उसके डिम्बाशय कितने सक्रिय हैं, वे कितना हार-मोन विशेषतः एस्ट्रोजेन उत्पन्न करते हैं और स्त्री के रक्त और आन्तरिक अवयवो में ये हारमोन कितनी मात्रा में उपस्थित हैं

जिगर और डिम्बाशयों का गहरा सम्बन्ध है। डिम्ब-शय जो आवश्यकता से अधिक एस्ट्रोजेन रक्त में मिलाते हैं, उसे जिगर निष्क्रिय कर देता है। प्रोटीन की कमी के कारण जिगर की कार्य-क्षमता कम पड़ जाती है और वह अतिरिक्त ऐस्ट्रोजेन को नष्ट नहीं कर पाता। इसके परि-णाम स्वरूप स्त्री की गर्भ-धारण शक्ति बढ़ जाती है।

मनुष्यो में सन्तानोत्पादन डिम्बाशयों द्वारा डिम्ब की उत्पत्ति, डिम्ब के निषेचन और गर्भ-कोष में भ्रूण के विकास पर निर्भर है। इन सब प्रक्रियाओं का आधार है-एल्ट्रोजेन-वर्गीय हारमोनों कि सक्रियता।

वस्तुतः काम भावना भी शरीर में हारमोनों की उप-स्थिति पर ही निर्भर है।

कतिपय देशों में दैनिक भोजन में प्रोटीन की मात्रा और जन्म-दर का परस्पर सम्बन्ध इस प्रकार है:—

देश	जन्म	प्रोटीन (ग्राम में)
मलाया	39.3	7.5
भारत	32.0	8.7
जापान	27.0	9.7
यूनान	23.5	15.2
जर्मनी	20.0	27.2
अमरीका	17.2	34.7

अतः विश्व के सब देशों की जनता को पौष्टिक भोजन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराये बिना जन-संख्या की अति वृद्धि की समस्या हल नहीं की जा सकती।

प्रोटीन का उत्पादन

खाद्य एवं कृषि संगठन के महानिदेशक डा0 विनय-रंजन सेन ने प्रोटीन खाद्य के नये नये स्रोत खोजने का प्रयास आरम्भ कर दिया है।

प्रोटीन हाइड्रोजन, कार्बन एवं आक्सीजन का यौगिक है।

प्रोटींन में बाइस प्रकार के एमिनो एसिड होते हैं।

अब वैज्ञानिकों का ध्यान पैट्रोलियम व घास-फूस से प्राप्त होने वाले प्रोटीन की ओर गया है। हमारे देश में गुजरात में तेल-शोधक कारखाने में पैट्रोलियम से प्रोटीन प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया जा रहा है।

फ्रांस में ब्रिटिश पैट्रोलियम के तेल शोधक कारखाने में वैज्ञानिकों ने पैट्रोलियम से प्रोटीन खाद्य प्राप्त करने की योजना बनाई है।

[शेष पृष्ठ 9 पर]

अपोलो-15 के आंकड़ों से चन्द्रमा के विषय में वैज्ञानिक चिन्तन-मनन की प्रेरणा

□ चार्ल्स स्क्रौथ

अन्तरिक्ष केन्द्र, ह्यूस्टन, 6 अगस्तः वैज्ञानिकों को चन्द्रतल के हैडली दर्रे पर अपोलो-15 के अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा स्थापित वैज्ञानिक केन्द्र से, तथा अपोलो-15 अन्तरिक्षयान पर लगाये गये सेंसरों और कैमरों से, सम्प्रेषित दो-चार दिनों की सूचनाएँ और आंकड़े ही अभी प्राप्त हुए हैं। किन्तु इन नये आंकड़ों के फलस्वरूप, चन्द्रमा सम्बन्धी कितनी ही पुरानी धारणाओं का संशोधन अनिवार्य हो गया है।

अपोलो कार्यक्रम के मुख्य अनुसन्धानकर्ताओं—अपोलो 15 के वैज्ञानिक प्रयोगों की रुप रेखा तैयार करने वाले वैज्ञानिकों— की एक समिति ने 4 अगस्त को आयोजित एक प्रेस सम्मेलन में अपोलो-15 अभियान से प्रादुर्भूत प्रथम नयी खोजों पर प्रकाश डाला।

सबसे अधिक आश्चर्यजनक तथ्य का उद्घाटन न्यूयार्क की लैमोण्ट डोहर्टी जिओलौजिकल आब्जर्वेटरी के भूकम्पन वैज्ञानिक, डा0 गैरी लैथम, ने किया।

उन्होने कहा कि इस बात की सम्भावना है कि चन्द्रमा का पिण्ड भी उसी तरह परतों से बना है जिस तरह पृथ्वी बनी है।

उन्होंने कहा : हमें इस बात का प्रथम संकेत मिला है कि हमें चन्द्रपिण्ड के परत विहीन नमूने को परिवर्तित करना पड़ता है। उसकी सतह से नीचे 25 किलोमीटर की गहराई में चन्द्रपिण्ड की संरचना में अकस्मात परिवर्तन हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि यदि इस संकेत की जांच पड़ताल करने पर इसे सत्य पाया गया तो चन्द्रमा की संरचना में भी हमें कुछ वैसी ही विशेषता मिलेगी जैसी पृथ्वी की संरचना में पायी जाती है।

यद्यपि यह व्याख्या केवल अत्यन्त तात्कालिक है, फिर भी इसमें सम्भावना के अंकुर निहित हैं।

नयी व्याख्या के अन्तर्गत, चन्द्रमा की मोटी पपड़ी में 25 किलोमीटर की गहराई तक ऊबड़खाबड़ चट्टानों की एक परत है, जिसका तारतम्य एक अज्ञात पदार्थ द्वारा अकस्मात विच्छिन्न हो गया है, और फिर कम से कम 100 किलोमीटर की गहराई तक अधिक ठोस और क्रमबद्ध चट्टानों की दूसरी परत जाती हैं।

अपोलो-11 के अन्तरिक्षयात्रियों ने 1969 के मध्य में चन्द्रतल पर पहला चन्द्र-कम्पनमापक यन्त्र स्थापित किया था। उसके बाद से डा० लैथम के नेतृत्व में वैज्ञानिकों ने चन्द्र-कम्पनों तथा चन्द्रतल पर निष्क्रिय अपोलो खण्ड के धक्कों से प्रादुर्भूत संकेतों की व्याख्या करके यह निष्कर्ष निकाला था कि चन्द्रमा का अन्तराल विभिन्न परतों से नहीं बना है।

डा० लेथम ने कहा कि अपोलो-15 द्वारा चन्द्रतल पर स्थापित केन्द्र की सम्वेदनशीलता अपोलो-12 और अपोलो-14 द्वारा स्थापित केन्द्रों की अपेक्षा अधिक है। किन्तु इन तीनों केन्द्रों द्वारा जो वहां एक त्रिकोणीय संजाल स्थापित हो चुका है, उसके फलस्वरूप चन्द्रमा के कम्पन सम्बन्धी आंकड़े मिलते रहते हैं जिनके आधार पर नयी व्याख्या सम्भव हुई है।

समानव अन्तरिक्षयान केन्द्र में चन्द्रमा एवं ग्रहों सम्बन्धी विभाग के अध्यक्ष, डा० पाल गैस्ट, ने कहा कि चन्द्रतल से अन्तरिक्षयात्रियों ने जो विवरण प्रस्तुत किये

हैं, तथा टेलीविजन कैमरे द्वारा वहाँ के जो चित्र प्राप्त हुए हैं, उनके फलस्वरूप वैज्ञानिकों को एक चान्द्र पर्वत के इतिहास की प्रथम झांकी प्राप्त हुई हैं।

हैडली पर्वत-शृंखला तीन ऐतिहासिक घटनाओं की प्रतीक है। उसका शिखर चन्द्रतल के फ्रामौरो क्षेत्र पर किसी उल्का की टक्कर के कारण उखड़ कर बाहर आ गया पदार्थ है। यह घटना चन्द्रमा के इतिहास के प्रारम्भिक चरण में किसी समय घटी और उससे विस्तृत इम्ब्रियन बेसिन का निर्माण हुआ था।

उन्होने कहा कि उसका बीच वाला भाग उससे भी प्राचीनतर शांतिसागर क्षेत्र के पदार्थ का प्रतिनिधत्व करता है। वह वहाँ पर चन्द्रमा के सागरो के निर्माण के समय से ही विद्यमान है, और इम्ब्रियम वाली घटना से पहले का है।

उसका निचला भाग आदिकालीन चान्द्र पदार्थ से निर्मित है, और चन्द्रमा के आविभार्व के समय से ही वहाँ मौजूद है।

हैडली पर्वत एपेनाइन मोर्चे पर स्थित पर्वत–शृंखलाओं का ही ऐक हिस्सा है। इस पर्वत शृंखला का अन्तरिक्षयात्री स्काट और इर्विन ने पूरी तरह समन्वेषण किया है।

अमेरिका अन्तरिक्ष एजेन्सी के कैलिफोर्निया स्थित एक्स रिसर्च सेण्टर के डा० पाल दियाल ने कहा कि अपोलो-15 के चन्द्र-स्टेशन में लगा मैग्नोमीटर पूरे चन्द्रमा के सामान्य चुम्बकीय क्षेत्रों से काफी नीचे के स्थनीय चुम्ब कीय क्षेत्रों का पता लगा रहा है।

डा० डियाल ने कहा कि मैग्नोमीटर चन्द्रमा की भीतरी गहराइयों में होने वाले विद्युतीय संकेतों को भी मापता है और इससे वैज्ञानिकों को चद्रमा के भीतरी केन्द्र के तापमानों का अनुमान लगाने में सहायता मिलेगी।

राइस विश्वविद्यालय के डा० केन हिल्स ने कहा कि चन्द्रमा के अयनमण्डलकी जांच करने वाले यन्त्र ने चन्द्रमा पर चन्द्रयान के उतरने से होने वाले प्रभावों को भी पहचाना है। उन्होने कहा कि चन्द्रयान के चन्द्रमा का स्पर्श करने के कुछ ही मिनट बाद हमने पानी से लेकर कार्बन डाइ आक्साइड तक के अनेक रासायनिक पदार्थो के संकेत देखे।

यह टोह निश्चय ही वैज्ञानिक दृष्टि से एक अतिरिक्त लाभ थी क्योकि यन्त्र का मूल कार्य केवल चन्द्रमा के अयनमण्डल की जांच करना ही था।

लेमाण्ट-डोहर्टी वेधशाला के डा० मार्क्स लैंगसेथ ने कहा कि तापप्रवाह सम्बन्धी प्रयोग-यन्त्र, जो चन्द्रमा पर पहली बार स्थापित किया गया, ठीक से काम कर रहा है। यन्त्र इस बात का पता लगाने और अंकित करने के लिये यह बनाया और स्थापित किया गया है कि चन्द्रमा के अन्तराल की ऊर्जा किस दर से अन्तरिक्ष में बिलीन हो रही है।

डा० गैस्ट ने समस्त जानकारियों को संक्षेप में और सुव्यवस्थित ढंग से रखते हुए कहा कि पहेलियां सुलझ रही हैं और हमारी परिकल्पनाओं की पुष्टि हो रहीं है और सम्भव हैं कि जब अपोलो-15 के सभी आंकड़े उपलब्ध हो जायं तो उसकी पूरी तरह पुष्टि हो सके। उन्होंने कहा :

बहुमत यह है कि चन्द्रमा का विकास बहुत शीघ्र हुआ और उसका आकार भी बहुत शीघ्र बढ़ा है चन्द्रमा भीतर ठण्डा, बाहर गर्म (पृथ्वी सहित सभी ग्रहों के मामले में ठीक इसके विपरीत हुआ है) और रासायनिक दृष्टि से पृथ्वी तथा सौरमण्डल के सामान्य ग्रहों से भिन्न है।

● ●

मानव की चन्द्र विजय

□ ओम प्रकाश दुबे

जिज्ञासा मानव-विकास की कुन्जी है। नग्न मानव से लेकर आज के विज्ञान के अनेकानेक आविष्कारों से सुसज्जित मानव तक की सभी चीजें मनुष्य के जिज्ञासु होने का ही सुपरिणाम है। प्रथम तो मानव ने पृथ्वी पर अपने सुख-विलास की चीजों का आविष्कार किया और अपने जीवन को सुखमय बनाया। तत्पश्चात सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों के विषय में जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा जगी, परिणाम स्वरूप आज के मानव ने चन्द्रमा पर पग रखा और चन्द्र विजय का झंडा फहराया।

चन्द्रमा का अध्ययन सहस्त्रों वर्ष पूर्व से किया जाता रहा है और चन्द्रमा से संबंधित अनेक तथ्य प्राचीन काल से ही भारतीय, चीनी एवं बेबीलोनिक वैज्ञानिकों को ज्ञात थे। सन् 1898 में कांस्टेन्टीन जिओल्कोवस्की ने एक पुस्तक लिखी, जिसमें उसने राकेट द्वारा ब्रह्मांड के अन्तरिक्ष से संबंधित बहुत सी खोजों का वर्णन किया। इसके कुछ दिनों बाद डा० राबर्ट ने विशेष रूप से अन्तरिक्ष–यात्रा संबंधी कार्य किया और अनेक सुझाव दिये। इसी समय स्पुतनिक का भी आविष्कार हुआ। सन् 1959 ई० में पाप्ले ने राडार द्वारा चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच की दूरी 3,84,4021 कि० मी० ज्ञात की। चन्द्रमा का कोणीय व्यास प्राचीन काल में ही प्राप्त कर लिया गया था। मध्यमान दूरी से चन्द्रमा का व्यास 17.38 कि० मी० होता हैं। चन्द्रमा की संहति का शुद्धतम मान 7.35×10 पर घात 25 ग्राम यानी 73 ट्रिलियन टन होता है। पृथ्वी तथा चन्द्रमा की संहतिओं का अनुपात 81.3 है। चन्द्रमा का मध्यमान घनत्व 3.34 ग्राम प्रति घन से० मी० और पलायन वेग 2.38 कि० मी० सेकेण्ड है। चन्द्रमा पर गुरूत्वाकर्षणीय खिंचाव कम है इसलिये किसी वस्तु का चन्द्रमा पर भार पृथ्वी पर उस वस्तु के भार के $\frac{1}{6}$ से कुछ कम होता है। चन्द्रमा की गति मुख्य रूप से चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच लगने वाले गुरुत्वाकर्षणीय बल पर निर्भर करती है, किन्तु सूर्य के आकर्षण एवं अन्य ग्रहों का भी प्रभाव पड़ता है। सन् 1687 में न्युटन ने चन्द्रगति के विषय में कुछ तथ्यों का निरुपण किया था और 1780 ई० में लैगरेंज ने न्युटन द्वारा दिये गये तथ्यों की विशेष रुप से व्याख्या की। इन्हीं के आधार पर सन् 1910 में गैलीलिओ ने दूरदर्शी द्वारा चन्द्रमा का अध्ययन किया तथा चन्द्रज्ञान को विस्तृत किया सन् 1959 में ल्यूना–3 द्वारा और 1964 में अमेरिका के रेन्जर–7 द्वारा चन्द्रमा से संबंधित अनेक चित्र प्राप्त किये गये। चन्द्र–ज्ञान की जिज्ञासा की पूर्ति हेतु रेन्जर-8 और रेन्जर –9 भी प्रक्षेपित किये गये। सन् 1966 में सर्वेयर -9 के द्वारा चन्द्र तल की फ़्लेमिस्टेड घोस्ट रिंग का ताप $+180^\circ$ फा० ज्ञात किया गया। चन्द्र–विजय हेतु सतत प्रयत्न होता रहा है किन्तु अभी भी अनेक तथ्य संदेहास्पद ही बने रहे। 24 दिसम्बर 1966 को प्रक्षेपित सोवियत रूस के ल्यूना-12 द्वारा विशेष रुपेण चन्द्र ज्ञान प्राप्त हुआ और ज्ञात किया गया कि चन्द्र तल भी लगभग पृथ्वी तल की भाँति मजबूत है। अप्रैल 1967 में सर्वेयर –3 द्वारा यह निश्चय हुआ कि चन्द्रमा की मिट्टी भीगी पुलिन बालू की तरह है। सितम्बर और नवम्बर 1967 में क्रमशः प्रक्षेपित सर्वेयर-5 और सर्वेयर-6 के द्वारा ज्ञात हुआ कि चन्द्र चट्टान भी वेसाल्टिक चट्टानों की तरह हैं और मानव के अनुकूल हैं।

इस लम्बी अवधि तक सतत परिश्रम करने के परिणाम स्वरूप चन्द्र तल पर मानव अपना पग रखने में समर्थ हुआ। 29 दिसम्बर 1968 को तीन अमेरिका वोरमैन, लावेल और एन्डर्स अपोलो-8 में बैठकर चन्द्रतल को न्यूनतम 69°5 मील की दूरी से देखने में सफल हुये। 3 फरवरी और 8 मई 1969 को प्रक्षेपित अपोलो-9 और अपोलो–10 द्वारा अंतरिक्ष–यान संचालन संबंधी जानकारी प्राप्त की, जिसके परिणाम स्वरूप 16 जुलाई 1969 को अपोलो–11 पर तीन चन्द्र यात्री श्री नील आर्मस्ट्रांग, श्री एडविन ई एल्ड्रिन और श्री माइकेल कोलिन्स एक साथ बैठकर अमेरिका के फ्लोरिडा प्रदेश के केप कनेडी नामक स्थान से प्रस्थान किया। ये तीनों अमर चन्द्र यात्री सर्व प्रथम चन्द्र तल पर अपने कदम रखकर मानव की चिर–कालीन जिज्ञासा को शांत करने में समर्थ हुए। चन्द्र यान को सम्पूर्णतः सुरक्षित बनाने के लिये एक विशेष प्रकार की धातु एवं अन्य शक्तिशाली यंत्रो का आविष्कार किया गया, जिसपर न तो चन्द्रतल के ठंडे वातावरण का प्रभाव पड़े और न गतिज गर्मी हो। अपोलो-11 चन्द्र यात्री चन्द्रमा से चट्टान भी लाये जो विश्व के लगभग सभी देशों में प्रदर्शित की गई। चन्द्र चट्टान पर अनेक अनुसंधान किये जा रहे हैं और पता लगाया जा रहा है कि चन्द्रतल का वातावरण मानव के रहने के लायक बनाया जा सकता है या नहीं। आज का मानव चन्द्र लोक पर रहने के लिये आशान्वित हैं।

आशा है कि यदि अनुसंधान की यही प्रगति जारी रही तो पृथ्वी के निकट वाले ग्रहों मंगल शुक्र इत्यादि की यात्रा भी संभव हो जाएगी। इस प्रकार विज्ञान की चरमोन्नति का सदुपयोग कर मानव का सर्वांगीण विकास हो सकेगा।

● ●

[पृष्ठ 5 का शेषांश]

अमरीका में वैज्ञानिक समुद्र की काई (शैवाल) से भी प्रोटीन प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस समय भारत में पाँच वर्ष की आयु के आधे बालक प्रोटीन की कमी के कारण अनेक रोगों से पीड़ित हैं।

कृत्रिम या अकृत्रिम प्रोटीन का विशाल भण्डार ही मानव जाति को अकाल की विभीषिका से बचा सकेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

● ●

सर्प की संवेदी कोशिकाएँ : गर्त वाइपर का गर्तांग

□ डा० डी० एन० विश्नोई

प्राणियों में जैसे जैसे अधिक विकसित जातियाँ उत्पन्न हुई, उनकी संवेदनशीलता में भी शनैः शनैः प्रगति होती गई उनकी कार्यक्षमता बढ़ती गई। वास्तव में जीवन-संघर्ष में विकसित जंतुओं को सर्वाधिक लाभ उनकी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही प्राप्त हुआ शारीरिक बल अथवा बुद्धि से कम होते हुए भी अनेक प्राणी अपने आप को अपने शत्रुओं से बचा सकने में समर्थ हुए और होते हैं, यह मात्र अधिक कार्यक्षम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही सम्भव हुआ होता है। संवेदग्राही कई प्रकार के होते हैं। उनकी रचना, आकार साइज़ एवम् अभिग्रहण क्रिया भी भिन्न होती है, जैसे घ्राणेन्द्रिय, नेत्र, स्पर्शेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय व स्वादेन्द्रिय अलग अलग रचना रखते हैं; और अलग अलग ही उनका बाह्य अथवा आंतरिक उद्यपिक का अवगम होता है। इस प्रकार ग्रहण की हुई ऊर्जा का अभिकारक अंग, जैसे मांस पेशी, ग्रन्थि आदि, को अभिमान कर देते हैं। उच्चकोटि मेटाजोआ में यह तंत्रिका-आवेग एक मध्यस्थ ऊतक तंत्र, जिसे तंत्रिका-तंत्र कहते हैं, द्वारा संचारित होता है।

विभिन्न प्राणियों में एक ही प्रकार के उद्दीपन का अवगम करने वाले संवेदग्राही की यथार्थता अथवा सूक्ष्म-ग्राहिता में अंतर होता है, जैसे मनुष्य की घ्राणेन्द्रिय इतनी कुशाग्र नहीं होती जितना कि श्वान में होती है। ऐसे ही हिंसक पशु की गंध का रूमिनेन्ट व अश्वों को शीघ्र व दूर से ज्ञान हो जाता है, जबकि मनुष्य को इसका ज्ञान नहीं हो पाता। इसी प्रकार स्पर्श, दर्द अथवा ताप की अवगम्यता सब प्राणियों के त्वक्-इन्द्रियों में समान रूप से नहीं होती। अवरक्त किरणों अथवा पराश्रव्य कंपन का अवगम करने वाली इन्द्रियाँ तो प्रकृति ने कुछ प्राणियों को ऐसी प्रदान की हैं, जिनको देखकर मनुष्य आश्चर्य चकित हो जाता है। उनके द्वारा अवगम को स्वयं तो वह नहीं ग्रहण कर सकता है, यद्यपि सम्बद्ध प्रतिवर्तन एवम् शरीर-क्रियात्मक विधि द्वारा उनकी क्रिया को समझ अवश्य लेता है।

सामान्यतः ज्ञानेन्द्रिय अनेक संवेदी कोशिकाओं के एक स्थान पर स्थानीकृत अथवा एकत्रित होने से बनता है। संवेदी कोशिका एक अत्यधिक अवकलित कोशिका है, जिसको उद्दीपन के अवगम हेतु विशिष्ट कोशिकीय संरचना एवम् क्रियात्मक गुणधर्म प्राप्त हैं। प्राणी जगत में अनेक संवेदी अंग ऐसे भी हैं, जिनकी संरचना इस प्रकार की नहीं वरन्, स्वयं विभेदित कोशिका न रखते हुए, अन्य अवकलित कोशिकाओं का संवेदन कार्य हेतु उपयोग करते हैं, जैसे उपकला कोशिका योजीऊतक कोशिका, पेशी कोशिका आदि। यह सब भिन्नता होते हुए भी विभिन्न संवेदी कोशिकाओं में एक बात सदैव समान होती है कि उनसे सम्बन्ध एक अभिवाही तंत्रिका अवश्य विद्यमान रहती है, जो संवेदी आवेग को संवेदी स्थान से तंत्रिका-केन्द्र तक ले जाती हैं।

वास्तव में यथार्थ प्राथमिक संवेदी कोशिका न्यूरॉन होता है, जो कपाल अथवा मेरू-गुच्छिका में स्थित रहता है। यह एक, द्वय या बहु ध्रुवीय होता हैं और इसका डेन्ड्राइट अभिवाही तंत्रिका तन्तु के रूप में परिधीय भाग में पहुँचा हुआ होता है। वहाँ पर डेन्ड्राइट का या तो मुक्तांत होता है या उसके अन्तिम सिरे का संपर्क अतंत्रिकीय कोशिकाओं से होता है। ऐसी अतंत्रिकीय वास्तविक संवेदी कोशिका नहीं होती वरन् कोशिका उद्दीपन

के संचरण के लिए उनका होना अनिवार्य होता है। इनको सामान्यतः आभासी संवेदी कोशिका कहते हैं, क्योंकि इनकी संरचना संवेदी कोशिका की न होकर भी ये अनुकूली संवेदनशीलता रखते हैं। ये उद्दीपित ऊर्जा को सीधे तंत्रिका आवेग में बदल देने की क्षमता रखते हैं, जो संबद्ध अभिवाही गुच्छिका के द्वारा प्रेषित हो जाता है। ऐसा ही आभासी संवेदी कोशिका धारित संवेदी अंग वाइपर सर्प के सिर पर नासा द्वार तथा नेत्र के मध्य स्थित गर्तांग होता है जैसा कि चित्र 1 में दिखलाया गया है। यह विशेष रूप से गठित ऊष्माग्राही है। इसी के कारण इस श्रेणी के वाइपर सर्प को गर्त (पिट) वाइपर कहते हैं। विभिन्न स्पीशीज़ में गर्त का स्थान न्यूनाधिक ऊपर अथवा नीचे होता है परन्तु यह सदैव विद्यमान रहता है और नासाद्वार से भी अधिक प्रमुख दिखलाई देता है। गर्तांग 15,000 से 40,000 A के मध्य की अवरक्त किरणों के लिए अत्यधिक संवेदनशील होता है।
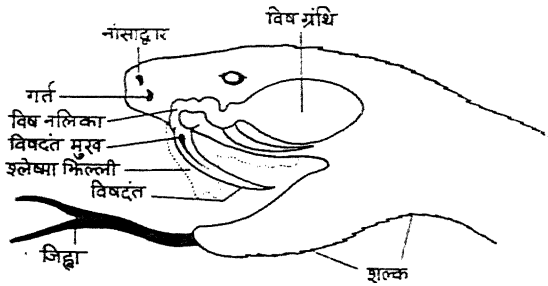
चित्र 1: रैटलसर्प का गर्त, विषदंत तथा विषग्रंथि ।

चित्र 2 में सर्प के गर्तांग का पूर्ण दृष्य दिखलाया गया है। गर्त में दो कोष्ठ होते हैं। उनके बीच में एक पारभासी झिल्ली, संवेदी कला, होती है प्रमुख कोष्ठ ऊर्ध्व कोष्ठ है तथा दूसरा कोष्ठ उसके पश्च भाग में स्थित है। इसका द्वार नेत्र के सामने होता है। दोनों कोष्ठों के बीच की झिल्ली में तंत्रिकांग का प्रचुर संभरण होता है। कर्ण पिटह से साम्यता होने के कारण एक समय ऐसा समझा जाता था कि वाइपर में सुनने के लिए गर्त एक विशेष अंग विकसित हुआ है। वास्तव में किसी भी प्रकार के सर्प में श्रवणेंद्रिय होती ही नहीं। जब गर्तांग का विशेष श्रवणेंद्रिय होने का कोई प्रयोगात्मक प्रमाण न मिल सका तब यह भी सुझाव दिया गया कि वाइपर में छटी इंद्रिय विद्यमान है और मानव उसके प्रयोग को नहीं समझ सकता है।

चित्र 2: आग्किस्ट्रोडॉन मोकास्सेन सर्प के गर्तांग का पूर्ण दृश्य
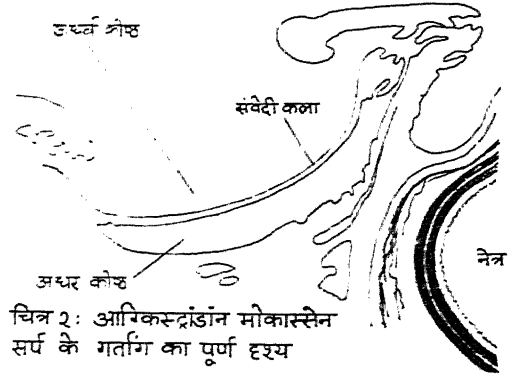
1935 ई० में रॉस ने खोज की कि अनेक अजगर सर्पों के होठों पर उष्माग्राही स्थित हैं, जिनके द्वारा सर्प को नियततापी प्राणी की उपस्थिति का अभिज्ञान होता है। यही कार्य गर्त वाइपर में गर्त के भीतर स्थित तंत्रिका सिरा करती हैं। आंखें बंद कर देने पर भी रैटल सर्प स्तनधारी प्राणी तथा पक्षियों की उपस्थिति को जान लेता है। और उन तापी जंतुओं पर एक दम व अचूक चोट करता है। यदि बाह्य वायु के सम तापमान वाली वस्तु उसके सम्मुख की जाए, तो सर्प उसकी उपस्थिति से बिल्कुल अनभिज्ञ रहता है। वास्तव में सर्पों में तापमान में बहुत ही कम अंतर का अवगम करने की क्षमता होती है।

इस प्रकार गर्तांग आहार प्राप्त करने के लिए एक विशेष क्रियाविधि है। शिकार पर आक्रमण करने में भी यह सहायक होते हैं। गहराई का भान अथवा तापी वस्तुओं की सर्प से दूरी का माप करने की कार्य कुशलता भी यही अंग प्रदान करते हैं। यदि वाइपर के नेत्र बंद कर दिए जाएं, फिर भी यह तापी प्राणी की प्रत्येक गति का पीछा करता है, यद्यपि जंतु 5 या 6 फुट की दूरी पर ही क्यों न हो। जब तक शिकार पर्याप्त निकट नहीं होता,

जिसपर कि शरीर को तानकर चोट की जा सके, सर्प कभी चोट नहीं करता।
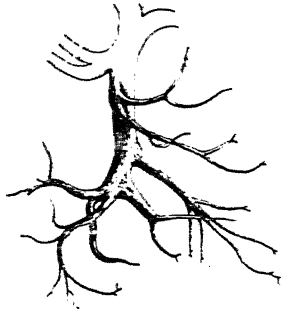
चित्र ३ : संवेदी कला से संबंधित हस्ताकार तंत्रिका सिरा

गर्त के तल पर लगी झिल्ली के दोनों ओर शृंगित अधिचर्म कोशिकाओं की पतली परत होती है। उनके बीच में कुछ योजी ऊतक, रुधिर वाहिकाएँ तथा प्रचुर तंत्रिका तंतु होता है। शेष परत बड़े घनाकार, अतंत्रिकीय कोशिकाओं से बनी होती है, जिनके केन्द्रक बड़े व अनियमित तथा साइटोप्लाज्म सघन व कणिकामय होता है। इनको पैरेंकाइमा कोशिकाएँ कहते हैं। ये परिवर्तित चर्मी कोशिकाएँ, हैं जो गर्त-कला की अप्रतिहत अधिचर्म परत बनाते हैं। स्वयं संवेदी कोशिका न होते हुए भी यह ताप परिवर्तन को न्यूरॉन सक्रिय कर देते हैं। भीतर की परत और पैरेंकाइमा कोशिकाओं के बीच में तंत्रिकाएं होती हैं। इन पर माइलिन आवरण नहीं रहता और इनका रूप चपटा हस्ताकार हो जाता है। इनसे अनेक प्रवर्ध निकल कर चारों ओर फैले रहते हैं, जो सूक्ष्म मुक्त सिरों में समाप्त होते जाते हैं (चित्र 3)। हस्ताकार सिरे केन्द्रकहीन बहुध्रुवीय न्यूरॉन से मिलते जुलते हैं। एक्सॉन सिरों की संख्या 500 से 1500 तंत्रिकाक्ष प्रति वर्ग मिली मीटर होती है। तंत्रिका सिरों और पैरेंकाइमा कोशिकाओं में गहरा संपर्क होता है। तंत्रिका-तंतु गर्त-कला का संभरण करने वाली पांचवी कपाल-तंत्रिका (ट्राइजेमिनैलिस) के तीन प्रभाग हैं। ऑफ्थैल्मिकस ऊपर से, सुपरामैक्सिलैरिस की एक शाखा नीचे तल से तथा दूसरी पीछे अधर पक्ष से गर्त में प्रवेश करती है। गर्त का छिद्र छोटा होता है और उसकी तुलना में झिल्ली बड़ी होती है। इस लिए यदि विकिरणकारी वस्तु बड़े आकार की और समीप न हो तो सम्पूर्ण संवेदी झिल्ली पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। कारण कि गर्त के कोर की छाया भी उस पर पड़ेगी। इससे छोटी एवम् बड़ी दोनों वस्तुओं की दिशीय गति का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार यदि सर्प अपने चारों ओर परीक्षा करता है अथवा जन्तु स्वयं गति करता है, सर्प का केन्द्रिय तंत्रिका-तंत्र दिशात्मक अवगम हेतु पर्याप्त सूचना ग्रहण कर लेता है।

शरीर क्रियात्मक प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि विकिरण ऊर्जा द्वारा संवेदग्राही के प्रयाप्त उद्दीपिकरण हेतु क्रिया स्पेक्ट्रम 1.5 और 15$\surd$ अथवा अधिक तुरंग-दैर्घ्य के बीच होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि मध्यम एवम् दीर्घ अवरक्त किरणों का अवगम करने की उसमें क्षमता होती है। दृश्य प्रकाश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्रिया स्पेक्ट्रम झिल्ली के अवशोषण स्पेक्ट्रम पर आधारित होता है। दोनों स्पेक्ट्रम संपाती हो यह आवश्यक नहीं है। आशय यह है कि केवल अवशोषित ऊर्जा ही प्रभाव डालती है। संवेदग्राही के उद्दीपिकरण में कुल अवशोषित ऊर्जा पूर्णतया भाग ले यह कोई जरूरी नहीं हैं। अनेक संवेदग्राही ताप मिलने पर छोटे से उद्दीपक का संचयी विभव पर्याप्त प्रभावशाली बना देते हैं।

इलेक्ट्रॉन-सूक्ष्मदर्शी द्वारा गर्त कला की पैरेंकाइमा कोशिका की संरचना कुछ और ही प्रकट हुई हैं। ये वास्तव में कोशिका हैं ही नहीं, वरन माइटोकॉन्ड्रिया ही माइलिन रहित तंत्रिका सिरों पर संहत हो कर ऐसा दृश्य उपस्थित करते है। अर्थात् उद्दीपक और संवेदग्राही सिरों के बीच में कोई अन्य अंग नही होता। सतह के नीचे बहुसंख्यक माइटोकॉन्ड्रिया ही एकत्रित रहते हैं, जो तापमान में अंतर को तंत्रिकीय उत्तेजन में परिवर्तित करने में सहायक होते हैं। सम्भवतः यह क्रियाविधि माइटोकॉन्ड्रिया पर स्थित एन्जाइम की सक्रियता में परिवर्तन तथा झिल्ली की आयनी दशा से संबन्धित होती है। इस की पूर्ण जानकारी अभी प्राप्त नहीं है। ● ●

विज्ञान का अभिशाप—परमाणु विस्फोट

□ प्रेमेन्दु प्रकाश माथुर

आज कल सम्पूर्ण विश्व में यही भय समाया हुआ है कि यदि अब कोई विश्वयुद्ध हुआ तो निश्चित ही सम्पूर्ण विश्व तहस-नहस हो जायेगा। कारण कि लग-भग सभी शक्तिशाली देशों के पास परमाणु बम तथा अन्य कई प्रकार के इससे भी अधिक भयंकर एवं शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ हैं, जो कि कुछ ही देर में विश्व को समाप्त कर देने के लिये काफी हैं।

परमाणु बम की छोटे पैमाने पर ज्ञान द्वितीय विश्व-युद्ध में हीरोशिमा तथा नागासाकी पर परमाणु बम गिरने से हुआ। इसका प्रभाव अत्यन्त भयंकर रहा।

हम लोगों में से बहुत कम लोगों को यह ज्ञात है कि परमाणु से इतनी अधिक उर्जा का उद्भवन कैसे हो सकता है। सर्वप्रथम 1932 ई० में काकरॉट तथा वॉल्टन ने अपनी प्रयोगशाला में इस प्रकार के प्रयोग किये। उनके निरीक्षणों के अनुसार जब लीथियम धातु पर प्रोटॉन का मन्द वेग से आघात होता है, तो उसमें से तीव्रता के साथ अल्फाकण निकलते हैं। प्रोटॉन हाइड्रोजन परमाणु $_1H^1$ होता है तथा लीथियम $_1Li^7$ के केन्द्रक में 3 प्रोटॉन तथा 4 न्यूट्रॉन होते हैं। परिवर्तन अत्यन्त सरल ढंग से होता है जो कि निम्न है—

$$_3Li^7 + {_1H^1} = {_2He^4} + {_2He^4}$$
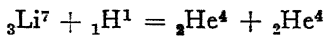
इस समीकरण में मूर्धांकों का योग 7+1=4+4 होता है और पदांको का योग 3+1 = 2+2 होता ह।

ऐसा ज्ञात होता है कि पहिले लीथियम केन्द्रक एक प्रोटॉन लेता है तथा पल भर के लिये उनमें 4 प्रोटॉन तथा 4 न्यूट्रॉन हो जाते हैं। केन्द्रक का भार 8 हो जाता है तथा आवेश का मान 4 हो जाता है यह अत्यन्त अस्थायी केन्द्रक होता है, जिसके कारण वह टूटकर दो हीलियम केन्द्रकों में विभाजित हो जाता है। दोनों खंड बड़े वेग से अलग होते हैं। इससे ज्ञात होता है कि विभाजन के समय काफी मात्रा में उर्जा का उद्भवन होता है। अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रोटॉन के आघात से जब लीथियम का केन्द्रक विखंडित होकर दो हीलियम केन्द्रक बनाता है, इससे बड़ी मात्रा में उर्जा का निष्कासन होता है, यही उर्जा परमाण्विक उर्जा कहलाती है।

अब हमको यह देखना है कि अणुबम का क्या सिद्धांत है। इसको समझने के लिये हम बहुचर्चित U–235 के सिद्धांत को ही ले सकते हैं। यहाँ पर U यूरेनियम के लिये प्रयुक्त हुआ है। 235 अंक प्रोटान तथा न्यूट्रॉन के योग को प्रदर्शित करता है, जो कि इस विशेष प्रकार के यूरे-नियम (143 न्यूट्रॉन तथा 92 प्रोट्रॉन) के केन्द्रक को बनाता है। जब न्यूट्रॉन द्वारा U-235 के केन्द्रक पर विस्फोट किया जाता है, तो उसके केन्द्रक में से कुछ न्यूट्रॉन मुक्त हो जाते हैं, ये न्यूट्रॉन पुनः विस्फोट करते हैं, फल-स्वरूप और अधिक न्यूट्रॉन मुक्त हो जाते हैं, यह एक प्रकार की क्रम क्रिया सी हो जाती है, जो कि सम्पूर्ण विस्फोटक सामग्री में से शीघ्र ही उर्जा का विमुक्तीकरण करती है। फलस्वरूप न्यूट्रान सहित लगभग सभी कण तीव्र वेग के साथ सभी दिशाओं में गमन करते हैं। इस प्रकार के केन्द्रक के विखण्डन को केन्द्र विखण्डन कहते हैं। परमाणुबम का आधुनिकतम ज्ञान गोपनीय रखा गया है। इन सब प्राप्तियों के बावजूद भी हमारा ज्ञान अभी पूरा नहीं कहा जा सकता है। अभी हमें इस दिशा में काफी अनुसंधान कार्य करने हैं। विश्व के शक्तिशाली देशों को चाहिये कि वे इस अपार परमाण्विक उर्जा का उपयोग विध्वंसात्मक कार्यों के लिये न करें बल्कि इस अपार उर्जा का उपयोग ऐसे कार्यों में करे जिससे कि सम्पूर्ण मानव-जाति का कल्याण हो सके।

● ●

जब गंगाजल सर्वप्रथम अमेरिका ले जाया गया :

'सरिता-सिन्धु विवाह'—राष्ट्र-निर्माण में जन-सहयोग की अमरगाथा

□ वीरेन्द्र पाण्डेय

26 अक्तूबर, 1825 को प्रभात की लाल एवं सुनहरी किरणों के साथ एरी झील के तटवर्ती बफैलो नगर में बैण्ड की धुनों के साथ एक अनूठे समारोह का श्रीगणेश किया गया जो कई दिनों तक देश के कोने-कोने में मनाया गया। इस समारोह का नाम सरिता-सिन्धु विवाह रखा गया। इस समारोह का प्रारम्भ एक शानदार जलूस से किया गया जो गाजे-बाजे के साथ शहर भर में घूमता हुआ नवनिर्मित एरी नहर के किनारे पर आया। जलूस का नेतृत्व गवर्नर क्लिन्टन कर रहे थे और उसमें राज्य भर के गणमान्य जनों ने भाग लिया। नहर पर पांच सजी-धजी नौकाओं के एक बेड़े—'सेनेका चीफ'—को नहर में उतारा गया और गवर्नर क्लिन्टन और उनके साथियों ने बेड़े में खड़े होकर हर्षध्वनि की।

गंगा जल अमेरिका लाया गया

'सेनेका चीफ' पर गवर्नर क्लिन्टन के पास ही दो बड़े पीपे रखे थे जिन्हें तरह-तरह की रंगीन और देशभक्ति-पूर्ण चित्रकारी से सजाया गया था। उपस्थित सभी दर्शकों का ध्यान उन पीपों पर केन्द्रित था क्यों कि उस उत्सव में प्रमुखतः उन्हीं का प्रयोग होना था। इन पीपों में से एक में ऐरी झील का पानी था और दूसरे में गंगा, सिंधु, मिसिसिपी, कोलम्बिया, टेम्स सीने, राइन, अमेजन, ओरिनोको, नील आदि संसार की सभी बड़ी और प्रसिद्ध नदियों का पानी था। गंगा और सिंधु का पानी विशेष रूप से भारत से मंगाया था।

'सेनेका चीफ' बेड़े ने बैण्ड की धुनों और तोपों की गड़गड़ाहट के साथ नहर के जरिये न्यूयार्क नहर की ओर प्रयाण किया। राह में पड़ने वाले प्रत्येक गांव और नगर में इस बेड़े का धूमधाम के साथ स्वागत किया गया। अलबनी नगर पहुंच कर इस बेड़े ने हडसन नदी में प्रवेश किया जहां से हजारों सजी-सजाई, रंगबिरंगी नावें और स्टीम बोटें भी सौल्लास बेड़े के साथ हो लीं।

4 नवम्बर की ऊषा-वेला में इस काफिले ने न्यूयार्क नगर में प्रवेश किया। तोपें गूंज उठीं। नव निर्मित एरी नहर की पहली पूरी यात्रा करने वाली नावें बन्दरगाह पर खड़े कीर्तिमान जलपोतों से जा मिलीं। समारोह में जान एडम्स, टामस जैफर्सन जेम्स मैडिसन, जेम्स मोनेरा, जान क्विन्सी एडम्स, एण्ड्रयू जैक्सन आदि देश भर के लगभग सभी सुप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय नेताओं ने भाग लिया।

गवर्नर क्लिंटन ने 'सरिता-सिन्धु विवाह' की रस्म अदा की। उन्होंने 'सेनेका चीफ' के ऊपरी छोर पर खड़े होकर पहले एरी झील के जल से भरे पीपे को और बाद में विश्व की सभी नदियों के जल वाले पीपे को एटलांटिक महासागर में उंडेला। वाद्य-मंड लियों के बाजे, देशभक्त नेताओं के आशीर्वाद और जनता की हर्षध्वनि के बीच समारोह सम्पन्न हुआ।

राष्ट्र-निर्माण में रचनात्मक जन-सहयोग

इस अनूठे समारोह का श्रेय वस्तुतः उस अप्रतिम प्रयास को था जो 154 वर्ष पूर्व न्यूयार्क की एक छोटी सी वस्ती 'रोम' में राष्ट्र-निर्माण के धुनी लोगों ने प्रारम्भ किया था। कुछ तत्कालीन अमेरिकी नेताओं ने इसे 'निपट

मूर्खता' और 'एक पागलपन' कह कर पुकारा। किन्तु, कालांतर में कदाचित इसी घटना ने विश्व के नेताओं को राष्ट्र-निर्माण के लिए 'जनसहयोग के महत्व' और 'श्रमदान' के विचार की प्रेरणा दी।

4 जुलाई 1817 को भोर होते ही एक तोप दागी गई। तीन अतिथि नेताओं के भाषण हुए और स्थानीय अधिकारी जज हैथवे ने स्वयं अपने हाथों 40 फुट चौड़ी ऐरी नहर की खुदाई के कार्य का उद्घाटन किया; ऐरी नहर की योजना के अन्तर्गत मध्य-पश्चिम में स्थित 'ग्रेट लेक्स' नामक झील-समूह में से एक ऐरी झीले पर स्थित बफैलो शहर से लेकर पूर्व में स्थित संसार की सबसे बड़ी नदी हडसन पर स्थित अलबनी नामक नगर तक एक लम्बे और सुविधाजनक जल-मार्ग का निर्माण करने का प्रस्ताव था। अलबनी से न्यूयार्क तक जलमार्ग के रूप में हडसन नदी मौजूद ही थी। इस तरह ऐरी नहर के बन जाने पर 'बफैलो' से न्यूयार्क नगर तक एक सीधा और सुविधाजनक मार्ग खुल जाने की आशा थी।

नहर की खुदाई का काम उस दिन रोम से प्रारम्भ किया गया जो पूरे जलमार्ग के लगभग बीच में पड़ता है हैथवे के बाद जज रिचर्डसन ने हल संभाला और बैलों को हांकते हुए दस गज तक खुदाई की।

और, उसके बाद बस्ती के सभी निवासियों तथा दूर-दूर से आये सभी दर्शकों ने भी नहर की खुदाई में हिस्सा लेकर राष्ट्र-निर्माण में रचनात्मक योगदान देने का गौरव प्राप्त किया।

बस्ती के एक अन्य देशभक्त ने अपनी ओर से श्रमदान करने वालों तथा हर किसी के लिए मदिरा तथा नाश्ते की व्यवस्था की। हर तरफ जोश था, उत्साह था और प्रत्येक स्त्री- पुरुष राष्ट्र-निर्माण में एक ठोस रचनात्मक हिस्सा लेने की गरिमा से अपने को अलंकृत करने के लिये उतावला था। 30 वर्ष पूर्व स्थापित अमेरिकी राष्ट्र के इतिहास में वह पहला बड़े पैमाने का राष्ट्रीय प्रयोग था।

नहर का निर्माण क्यों?

जब अमेरिका अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्ति पाकर स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में धरती पर उदय हुआ था तब उसके निवासियों की संख्या 40 लाख से भी कम थी और वे सभी लोग अपने देश के विकास और विस्तार की कामना से आप्लावित थे। 1802 की तथाकथित 'लुइजियाना की खरीद' के बाद अमेरिका का क्षेत्रफल लगभग दूना होगया था। किन्तु, बहुत कम लोग ऐसे थे जिन्होंने अपने अदम्य साहस के बल पर पश्चिम की ओर भीतरी इलाकों में जाने और बसने का प्रयास किया। अधिकांश जनता अटलांटिक महासागर के तटवर्ती प्रदेश में ही रहती थी।

जो मुट्ठी भर लोग ओहायो नदी के किनारे-किनारे बस गये थे, उन्हें बड़ा कठिन जीवन बिताना पड़ता था। वहां की भूमि उर्वर होने के कारण वे अच्छी फसलें जरूर काटते थे किन्तु, पूर्वी तट के लिए कोई सड़क न होने के कारण वह न तो अपनी पैदावर को आबादी के इलाकों तक पहुंचा पाते थे और न उन इलाकों से अपनी आवश्यकता का साज-सामान, कपड़ा, पशु आदि ला पाते थे। केवल पगडंडियां मात्र थीं जिन पर पैदल यात्रा ही संभव थी। इसके अलावा मध्य-पश्चिमी इलाके और एटलान्टिक तट-प्रदेश के बीच दुर्जेय अवरोध थे, ऊंचे पहाड़, जानलेवा दलदल, घने जंगल और ऐसे जलमार्ग जिनमें नौकानयन प्राणों की बाजी लगाना था। कठिनाइयाँ यहीं तक सीमित न थीं, पश्चिमी न्यूयार्क में डाकुओं का प्रकोप था, उनकी सक्रियता ने यात्रा को और भी खतरनाक बना रखा था।

ऐसी स्थिति में, सभी के सामने एक ही समस्या थी कि न्यूयार्क शहर से मध्य-पश्चिमी इलाके तक जाने के लिए कोई सुगम और सुरक्षित मार्ग हो। उनका कहना था जब तक ऐसा नहीं होता यह पूरा प्रदेश राष्ट्र के बाकी क्षेत्रों की तुलना में पिछड़ा ही रहेगा।

1810 से 1817 के बीच अलबनी और न्यूयार्क सिटी के कुछ विवेकशील एवं निष्ठावान सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ने अपने क्षेत्र के साधनों और समस्याओं का अध्ययन किया। राष्ट्रोत्थान के इन चिंतकों में सिटी के मेयर डी विट क्लिंटन प्रमुख थे और वही आगे चल कर ऐरी नहर के 'जन्मदाता' कहलाये।

363 मील लम्बी 'ऐरी नहर' के निर्माण का निर्णय अमेरिका जैसे नवजात राष्ट्र के लिए बहुत ही साहसिक निर्णय था। न केवल न्यूयार्क राज्य में, वरन् देश भर में ऐसे लोगों की कमी भी न थी जो ऐरी नहर योजना को सन्देह की दृष्टि से ही नहीं देखते थे वरन् उसे असंभव और अव्यवहार्य भी मानते थे। राजधानी वाशिंगटन में भी देश के अनेक नेताओं ने इस योजना को 'एक पागलपन' कह कर पुकारा।

जन-आन्दोलन और उसकी सफलता

किन्तु, नहर योजना के समर्थक निरुत्साहित नहीं हुए। उन्होंने एक जोरदार आन्दोलन शुरु किया। स्थान-स्थान पर सभाएं हुई और मशाल-जलूस निकाले गए। गवर्नर डी० विट क्लिंटन का विश्वास था कि इस प्रकार के प्रदर्शनों से नहर-योजना के पक्ष में जन-समर्थन और भी मजबूत होगा।

फरवरी, 1817 में प्रस्तावित नहर के आयुक्तों ने राज्य विधान सभा के समक्ष नहर निर्माण पर होने वाले खर्च के अनुमान के साथ सम्बद्ध मानचित्र व विवरण आदि पेश किए। उन्होंने बताया कि प्रस्तावित नहर ऊपरी तल पर 40 मील चौड़ी निचले तल पर 80 फुट चौड़ी और 4 फुट गहरी होगी तथा उसमें पानी रोकने के 77 फाटक होंगे। उनका अनुमान था कि नहर निर्माण का प्रति मील खर्च 13,800 डालर आयेगा और कुल लागत 60 लाख डालर बैठेगी।

जनता की मांग राज्य सरकार को स्वीकार करनी पड़ी। किन्तु, प्रारम्भ में उसने प्रयोगात्मक रूप से केवल 77 मील तक के कार्य के लिए 8,53,186 डालर की स्वीकृति ही दी।

जुलाई 1817 से नहर निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। अनेक जटिल तकनीकी समस्याएं सामने आयीं। प्रशिक्षित तकनीकी कर्मचारी या इन्जिनियर तो थे नहीं, लगनशील नौसिखियों ने ही काम संभाला। छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सभी तबके के लोगों ने नहर की खुदाई में हाथ बंटाया। किन्तु, चार-छः दिन की खुदाई के बाद ही यह महसूस किया गया कि इस तरह से तो काफी समय लग जायेगा। अतः नए तरीके सोचे गए। हाथ से खुदाई करने के बजाय उसके लिए घोड़े जुते हल और स्क्रेपरों का इस्तेमाल किया गया तथा साज-सामान, परिवहन और काम करने वालों के आने-जाने के लिए नहर के साथ-साथ पगडंडियां बनाई गई।

वैयक्तिक स्तर पर नई दक्षताओं का विकास

आवश्यकता ने नई दक्षताओं को जन्म दिया। इन दक्षताओं का विकास अधिकांशतः वैयक्तिक ढंग से ही हुआ। उदाहरणार्थ, कैनवेस व्हाइट नामक एक किसान ने जो सर्वेक्षण के कार्य में सहायक के रूप में काम करता था, किसी तरह की एक ऐसी सीमेण्ट की जरूरत महसूस की जो नहर के तल को पक्का और मजबूत कर सके। ह्वाइट ज्यादा पढ़ा-लिखा तो था नहीं पर लगन का पक्का जरूर था। वह अपने निज के खर्चे पर इंग्लैण्ड गया, इस बात का पता लगाने के लिए कि वहां पर ऐसे कार्य में कौन सी चीज इस्तेमाल की जाती है। लौटने पर उसने नहर-क्षेत्र के पास ही एक ऐसा चूना पाया जो पानी के नीचे सीमेंट की तरह इस्तेमाल किया जा सकता था। इस समस्या को हल करने के बाद व्हाइट ने और भी कई चीजों की खोज की और आगे चल कर वह अमेरिका का एक प्रमुख नहर एवं पुल निर्माता ही नहीं बना वरन् देश के सीमेंट उद्योग के विकास में भी उसने एक महत्वपूर्ण योगदान किया।

प्रेरणा के सूत्र श्री क्लिंटन

ऐरी नहर का निर्माण अलग-अलग और छोटी-छोटी किश्तों में हुआ। निर्माण की गति कभी तेज होती तो कभी धीमी। परियोजना को गवर्नर विक्लंटन का संरक्षण प्राप्त था। वह जब तक न्यूयार्क गवर्नर रहे तब तक सरकारी सहायता एवं संरक्षण न तो कभी बन्द हुआ, न उसमें कमी या देरी ही हुई। विरोधी जब कभी 'नहर' को विक्लंटन की

[शेष पृष्ठ 18 पर]

चमत्कारिक दवा—पेनिसिलिन

□ प्रेमेन्दु प्रकाश माथुर

सन् 1929 में चिकित्सा जगत का भाग्योदय हुआ। अपने प्रयोगों के करते समय डा० एलेक्जेन्डर फ्लेमिंग ने बैक्टीरिया के समूह की सतह के एक स्थान पर हरा सा धब्बा पाया जबकि सारी सतह सफेद थी। उस धब्बे के स्थान पर एक स्वच्छ द्रव भरा हुआ था।

डा० फ्लेमिंग ने इस धब्बे को एक प्रकार का कवक माना' उन्होंने अपने प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि यह कवक वायु से आकर बैक्टीरिया से भोजन केलिये संघर्ष कर रहा है। फ्लेमिंग का विश्वास था कि वह कवक कुछ बैक्टीरिया को नष्ट कर सकता है।

दस वर्षों तक फ्लेमिंग के इस अनुसंधान का लाभ नहीं उठाया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध में संक्रामक रोगों की महामारी ने वैज्ञानिकों को इस महामारी को रोकने का उपाय सोचने को मजबूर कर दिया। डा० हावर्ड फ्लोरे तथा उनके सहयोगियों ने डा० फ्लेमिंग के कार्यो का स्मरण किया तथा उसी कवक का पुनः अध्ययन किया तथा निष्कर्ष निकाला कि यह घावों के संक्रामक रोगों के कीटाणुओं को नष्ट कर सकता है। छः मास के परिश्रम फलस्वरूप फ्लोरे ने उस कवक से एक प्रकार का चूर्ण तैयार किया जो पीले रंग का था। यही पेनिसिलिन का प्रथम रूप था। इसका नाम पेनिसिलिन इस लिये रखा क्योंकियह एक प्रकार के कवक **पेनिसिलियम** से तैयार की जाती है। इस प्रकार से बनी हुई पेनिसिलिन का प्रयोग सर्वप्रथम चूहों पर किया गया।

सन् 1914 में चिकित्सकों ने पेनिसिलिन मनुष्य को देना प्रारम्भ कर दिया। घावों के रोग इससे भलीभाँति ठीक होने लगे, जिनकी इससे पूर्व कोई दवा न थी। इसके उपरांत पेनिसिलिन का बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा तथा यह युद्ध में वितरित की जाने लगी। पेनिसिलिन से हजारों जानें बचने लगी। अतः इस दवा को 'जादुई दवा' के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा।

सल्फा दवाइयाँ

प्रथम विश्वयुद्ध में सारे विश्व में इन्फ्लुएजा फैला, जिससे अनगिनत व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हुए। द्वितीय विश्व-युद्ध में किसी ऐसी ही बीमारी के प्रकोप का भय था, जिस को सल्फा दवाइयों के बल पर रोका गया।

सल्फा दवाइयें हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, सल्फर तथा कार्बन तत्वों के यौगिक से काफ़ी कुछ मिलती जुलती होती हैं। तत्वों के परमाणु का संश्लेषण रसायनज्ञों ने एक विशेष नियत क्रम में किया, जिससे सल्फा दवाओं की प्राप्ति हुई।

पेनिसिलिन दवाएँ

पेनिसिलिन दवायें कोकाई तथा गेंद के आकार के बैक्टीरिया द्वारा जनित बीमारियों की सर्वोत्तम दवा है। ये दवायें घाव, तथा कई प्रकार के निमोनिया आदि के उपचार के लिये काम में आती हैं, जहाँ पर कि सल्फा दवायें अप्रभावशाली होतीं हैं।

इसके अतिरिक्त स्ट्रेप्टोमाइसिन, मियादी बुखार, मियादी जुकाम, पेचिश, टायफाइड आदि का उपचार करने के लिये वरदान सिद्ध हुई है, जिन पर सल्फा दवायें तथा पेनिसिलिन अप्रभावशाली होती हैं।

पेनिसिलिन कीटाणुनाशक नही ?

अन्त में सबसे रोचक बात यह है कि न तो पेनिसिलिन और न ही स्ट्रेप्टोमाइसिन कीटाणुनाशक है। ये कीटाणुओं को मारने के बजाय उनकी वृद्धि को रोकती हैं, फलस्वरूप कीटाणु अपने आप मर जाते हैं।

सबसे बड़ी समस्या

कई प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि पेनिसिलिन का अधिक उपयोग करने वाले मनुष्यों में कीटाणु पेनिसिलिन तथा सल्फा दवाओं के अभ्यस्त हो जाते है, और उनके ऊपर पेनिसिलिन का कोई असर नहीं पड़ता है। अतः उन मनुष्यों का उपचार करना अत्यंत कठिन हो जाता हैं। आजकल चिकित्सा जगत की विशाल समस्या है कि ऐसी दवायें बनाई जायँ जिनको ऐसे कीटाणु सहन न कर सकें।

उपरोक्त विषय पर विश्व में काफी जोर शोर से कार्य हो रहा है, जिससे निकट भविष्य में, असाध्य रोगों के उपचार की आशा है।

● ●

[पृष्ठ 16 का शेषांश]

भयानक भूले की संज्ञा देते थे तब श्री विक्लंटन उनके कहने पर कोई ध्यान न देते हुए यही कहते थे जनता को नहर की जरूरत हैं और वह उन्हें मिलनी ही चाहिए।

1925 की गर्मियों के प्रारम्भ में देश भर में यह खबर बिजली की तरह फैल गई कि नहर का काम लगभग पूरा हो गया। और तब एक नहीं अनेक स्थानों पर सैकड़ों आलोचकों को यह खबर सुन कर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ी।

और, इस प्रकार राष्ट्र निर्माण के इतिहास में मानव के श्रम, साहस और सहयोग की एक अमरगाथा अंकित हो गई।

● ●

तारापुर का आणविक बिजलीघर तथा उसके सम्बन्ध में कतिपय तथ्य

□ संकलित

तारापुर बम्बई से 65 मील उत्तर अरब सागर के तट पर बसा एक गाँव है, जहाँ भारत के प्रथम आणविक बिजली घर की स्थापना हुई है। प्रधान-मन्त्री इन्दिरा गान्धी ने 19 जनवरी, 1970 को इस कारखाने उद्घाटन किया। तारापुर का यह बिजली घर, जो एशिया में अपनी किस्म का सबसे बड़ा कारखाना है, अणु की अपरिमित शक्ति को व्यापारिक स्तर पर उन्मुक्त करने के लिए भारत द्वारा किये गये प्रथम साहसिक प्रयास का प्रतीक है।

बिजली का उत्पादन कैसे होता है?

हम एक स्विच खोल कर या बटन दबा कर बिजली बुलाने के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि इसे एक निश्चित—प्रायः घटना मान बैठे हैं। किन्तु यदि हमें यह समझना है कि अणु से कैसे और क्यों बिजली प्राप्त की जाती है, तो सबसे पहले हमें इस बात की कुछ जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये कि यह शक्ति या ऊर्जा के अन्य स्रोतों से किस प्रकार प्राप्त होती है।

हम जितनी बिजली का प्रयोग करते हैं, वह प्रायः सारी की सारी टर्बोजेनरेटर नामक यन्त्रों द्वारा उत्पादित होती है। ये यन्त्र यांत्रिक ऊर्जा को विद्युत् ऊर्जा या बिजली में परिवर्तित करने के साधन होते हैं। टर्बोजेनरेटर में एक टर्बाइन होती है, जो एक चालक धुरी (ड्राईव शैफ्ट) द्वारा एक विद्युतीय उत्पादक यन्त्र (इलैक्ट्रिकल जेनरेटर) से सम्बद्ध होती है। तीव्र गति से प्रवाहित एक द्रव पदार्थ (पानी या भाप) टर्बाइन के फलकों पर आघात करता है, जिसके फलस्वरूप चालक धुरी तीव्र गति से घूमने लगती है। चालक धुरी के घूमने के फलस्वरूप जेनरेटर का आर्मेचर लट्टू की तरह तीव्रगति से चक्रवत घूमने लगता है। आर्मेचर एक चुम्बक के छोरों के बीच स्थित होता है, और जब उसके ताम्र-लपेट (कापर वाइण्डिग) चुम्बकीय क्षेत्र के आरपार जाते हैं, तो एक विद्युत् धारा उत्पन्न हो जाती है। यह विद्युत्धारा सम्प्रेषण-लाइनों में से प्रवाहित होकर जटिल वितरण संजालों में पहुँच जाती है, जो हमारे घरों, दफ्तरों, दुकानों और उद्योगों को बिजली सुलभ करते हैं।

टर्बाइन को संचालित करने वाले द्रव पदार्थ को वेग से ठेलने वाली ऊर्जा कहाँ से आती है? इसके मूल स्रोत तीन हैं। जलशक्ति (जो या तो प्राकृतिक प्रपात द्वारा या बाँध द्वारा निर्मित जलाशय से निकले पानी द्वारा उत्पन्न होती है) रासायनिक ऊर्जा (जो कोयले और तेल जैसे वाष्प ईंधनों को भाप बनने के लिए जलने से उत्पन्न होती है) और आणविक ऊर्जा (यह भी भाप उत्पन्न करती है)।

अणु कितना शक्तिमान है?

ऊर्जा के स्रोत के रूप में अणु और जीवाश्म ईंधन में कोई समानता नहीं। भारत में कोयले के ईंधन द्वारा बिजली उत्पन्न करने वाले किसी आधुनिक बिजली घर में प्रति किलोवाट-घण्टा बिजली के उत्पादन पर 1·16 पौण्ड कोयला जलाना पड़ता है। तारापुर आणविक बिजली घर में 1.16 पौण्ड ईंधन से 83,000 किलोवाट-घण्टा से भी अधिक बिजली उत्पादन होती है।

आणविक ऊर्जा द्वारा ताप कैसे उत्पन्न होता है ?

अणुशक्ति की प्रक्रिया व्याख्या करने का सर्वश्रेष्ठ ढंग यह है कि विखण्डन प्रक्रिया का वर्णन किया जाय।

आणविक विखण्डन के अन्तर्गत, एक भारी ईंधन अणु दो अपेक्षाकृत हल्के अणुओं में विभाजित हो जाता है, जिन्हें विखण्डन-उत्पाद कहते हैं। ये दोनों प्रायः अत्यन्त अस्थिर (रेडियोसक्रिय) होते हैं। अणु का विखण्डन होने पर, उसकी विखण्डित हो रही न्यष्टि के भीतर से दो या तीन उप-आणविक कण उन्मुक्त हो जाते हैं, जिन्हें न्यूट्रान कहते हैं। विखण्डन क्रिया के साथ-साथ ही तत्काल गामा-रश्मियों के रूप में, जो एक्स-रे जैसी होती हैं, ऊर्जा का भी निस्सरण होता है।

यदि विखण्डित अंशों (विखण्डन उत्पादों और न्यूट्रानों) के संयुक्त पिण्ड को जोड़ा जाय, तो कुल योग मौलिक ईंधन अणु के एकदम बराबर नहीं होगा। विखण्डन के फलस्वरूप अणु पिण्ड का जो अंश 'लुप्त' हो जाता है, वह पिण्ड और उर्जा के समीकरण सम्बन्धी आइन्स्टीन के ऐतिहासिक सूत्र (ई० = एम0 सी0,^{2} जिसमें ई0 = ऊर्जा एम० = पिण्ट और सी0 = प्रकाश वेग) के अनुसार ऊर्जा में परिणत हो चुका होता है। इस ऊर्जा का अधिकांश भाग, ठीक उसी समय जब अति-ऊर्जस्वित अंश विखण्डित अंश अत्यन्त तीव्र गति से उड़ कर बिखरते और ईंधन में निहित अन्य अणुओं से टकराते हैं, ताप के रूप में प्रकट हो जाता है। एक आणविक रिऐक्टर (न्यष्टि प्रतिक्रिया वाहक) में उत्पन्न यह ताप ही विद्युत् इत्पादन के प्रारम्भिक बिन्दु के रूप में प्रयुक्त होता है।

आणविक विखण्डन उस समय होता है, जब कुछ भारी अणुओं के साधन आंतरिक भाग, अर्थात् न्यष्टि, पर उपआणविक कण आघात करते हैं। वास्तव में, अणुओं की संरचना में एक सन्निहित अस्थिरता होती है जो बन्दी ऊर्जा की प्रतीक होती है। विभिन्न उप-आणविक कणों में से, न्यूट्रन ही उस ऊर्जा को उन्मुक्त करने वाला अधिकतम प्रभावकारी साधन होता हैं।

क्योंकि न्यूट्रान न केवल विखण्डन उत्पन्न करते हैं, बल्कि इस प्रक्रिया के दौरान उन्मुक्त होते हैं, इसलिए एक शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया सम्भव हो जाती हैं। यह शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया एक ऐसी प्रतिक्रिया होती है, जिसके अन्तर्गत, किसी एक गुण द्वारा उन्मुक्त न्यूट्रान एक अन्य अणु को विखण्डन प्रक्रिया से गुजरने के लिए उत्प्रेरित करता है, जिसके परिणाम स्वरूप उससे भी आगे एक अन्य अणु का विखण्डन होता है, और यह क्रम आगे भी जारी रहता है। शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न करने और उसे स्वयं धारी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि आणविक ईंधन की न्युतम मात्रा (महत्वपूर्ण पिंड) की स्थापना की जाय।

आणविक प्रतिक्रिया वाहक क्या है ?

आणविक या न्यष्टि प्रतिक्रिया वाहक (एटोमिक रिएक्टर) एक स्वयं-धारी प्रतिक्रिया शृंखला प्राप्त करने अर्थात् आणविक ईंधन 'जलाने' का एक उपकरण मात्र है। इसके मुख्य भाग निम्नलिखित हैं

1—आणविक ईंधन का क्रोड़: अमेरिकी सरकार ने संवृद्ध यूरेनियम की पूर्ति करना स्वीकार कर लिया है, जो तारापुर में ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है। संवृद्ध यूरेनियम में अति-विखण्डनीय यूरेनियम-235 आइसोटोप की मात्रा उसकी उस मात्रा से अधिक होती है, जो प्रकृति में मिलती है।

2—एक मंदक (माडरेटर) : विखंडन प्रक्रिया के अंतर्गत उन्मुक्त न्यूट्रोन प्रारम्भ में अत्यन्त त्वरित गति से चलायमान होते हैं। किन्तु जब वे प्रतिक्रियावाहक क्रोड में आस पास के पदार्थ से टकराते हैं, तो उनकी गति धीमी होने लगती है। गति का इस प्रकार मन्द होना वांछनीय होता है क्योंकि सामान्य रूप मन्द गति गामी न्यूट्रान विखण्डन उत्प्रेरित करने में तीव्र गति गामी न्यूट्रानों की अपेक्षात अधिक प्रभावकारी होते हैं। वह पदार्थ जो न्यूट्रानों की गति शीघ्रता से मन्द करने में समर्थ हो और साथ ही न्यूट्रनों को आत्मसात करने के लिए प्रवृत्त न हो, मन्दक या मौडरेटर कहलाता है।

मन्दक के रूप में सामान्यतः पानी, 'भारी, पानी और ग्रेफाइट का प्रयोग सबसे अधिक होता है। तारापुर में पानी का प्रयोग किया जाता है।

3—शीतक प्रणाली: यह विखण्डन की दर, फलतः ताप जनन की दर, को नियमित करने का एक साधन है। शीतक प्रणाली की आवश्यकता ईंधन तत्वों को अतितप्त होने से रोकने और ताप को प्रतिक्रियावाहक से एक वाष्पजनक प्रणाली तक पहुँचने के लिए होता हैं। इस समय आणविक बिजली उत्पन्न करने वाले संयत्रों में सामान्यतः सबसे अधिक प्रयुक्त शीतक साधारण पानी है। तारापुर में 'जल क्वथनी' (ब्वायलिंग वाटर) किस्म के दो प्रतिक्रियावाहक हैं। इन्हे यह नाम देने का कारण यह है कि इनमें पानी को इसलिए उबलने दिया जाता हैं, ताकि प्रतिक्रियावाहक में वाष्प तैयार हो सके। कुछ अन्य किस्म के प्रतिक्रियावाहकों (जैसे चापानुकूलित जल प्रतिक्रिया-वाहकों) में पानी को इतने दाब या चाप के अन्तर्गत रखा जाता है, जो उसे प्रतिक्रियावाहक में उबलने से रोक सकने के लिए पर्याप्त हो आणविक बिजलीघरों में प्रयुक्त अन्य शीतकों में से धातुएँ (मुख्यतः सोडियम), गैस (मुख्यतः हीलियम) और कुछ जैव रसायन शामिल हैं।

4—नियंत्रण प्रणाली; अधिकांश प्रतिक्रियावाहकों को क्रोड़ (कोर) में सन्निविष्ट उन्मुक्त न्यूट्रानों की संख्या नियमित करके नियन्त्रित किया जाता है। सामान्यतः यह कार्य न्यूट्रानो को आत्मात् करने वाले विशेष पदार्थों जिन्हें 'न्यूट्रान शोषक कहा जा सकता है, के प्रयोग से समपन्न किया जाता है। आमतौर पर इन पदार्थो को समंजनीय छड़ों द्वारा, जिन्हें नियंत्रण छड़ें कहते हैं प्रतक्रियावाहक के भीतर प्रविष्ट कर दिया जाता है। इन छड़ों का प्रयोग सामान्य नियंत्रण के अतिरिक्त आपत्कालींन स्थितियों में प्रतिक्रियावाहक को शीघ्रता से बन्द करने के लिए भी होता है।

जब ईंधन भरा जाता है, उस समय अनेक नियंत्रण छड़ 'उपस्थित' ('इन') की स्थित में होते हैं जब प्रति-क्रियावाहक पूरी तरह भर चुका होता है, उस समय कुछ छड़ों को पूर्णतः और कुछ को अंशतः हटा कर उसे चालू कर दिया जाता है। छड़ों को अंशतः हटाने की कार्यवाही क्रमशः धीरे धीरे, और उन यन्त्रों के संकेत पर जो विखण्डन की दर की जाँच पड़ताल करते हैं, की जाती है। ज्योंही शृखलावद्ध प्रतिक्रिया स्वयंधारी बन जाती है, अंशतः हटाये गये छड़ों को स्थायी दशा वाली संचालन स्थितियाँ कायम रखने के लिए आवश्यकतानुसार खिसकाया हटाया जाता है। अगर चालक बिजली के स्तर बढ़ाना चाहता है, तो नियंत्रण छड़ों को और अधिक हटा लिया जाता है। अगर वह प्रतिक्रियावाहक को बन्द कर देना चाहता है, तो सभी नियंत्रण छड़ों को पुनः पूरी तरह प्रविष्ट कर दिया जाता है। बटन दबा कर अत्यन्त शीघ्रता से यह कार्य सम्पन्न करने के लिए विशेष उपकरणों की व्यवस्था होती है। इनके अलावा, नियंत्रण और बन्द करने वाले अनेक स्वतः चालित उपकरण भी लगे होते हैं।

तारापुर की मुख्य विशेषताएं क्या हैं ?

अरब सागर के तट पर विस्तृत बलुहे मैदान के बीच स्थित तारापुर बिजलीघर के अन्तर्गत कई विशाल, भूरे, घनाकार भवन शामिल हैं, जिनमें केन्द्रीय खण्ड 145 फुट ऊंचा है। वहां दो आणविक प्रतिक्रियावाहक हैं, जिनमें से प्रत्येक 2,00,000 किलोवाट क्षमता वाले टर्बो-जेनरेटर से युक्त है।

ये प्रतिक्रियावाहक फ्लास्क जैसे आकार वाले स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखे गये हैं, जिसका व्यास 65 फुट और ऊँचाई 100 फुट है। इस्पात की दीवार 5 इंच मोटी है। यह पात्र चारों ओर से कन्क्रीट की मोटी दीवारों से घिरा है प्रतिक्रियावाहकों में से प्रवाहित होकर उच्च चाप वाली वाष्प दोनों टर्बाइनों के धुरों (शैफ्ट) को प्रति मिनट 1,500 चक्र की गति से घुमाती हैं। टबाइन से सम्बद्ध जेनरेटर बिजली उत्पन्न करते हैं, जो एक ग्रिड में संचा-रित होकर महाराष्ट्र और गुजरात दोनों राज्यों को लाभ-न्वित कर रही है।

परियोजना और उसका क्रियान्वयन

स्वर्गीय प्रधान मन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने तारापुर में व्यक्तिगत रुचि ली और 7 दिसम्बर 1963 को आयोजित एक समारोह की अध्यक्षता की। इस समारोह में अमेरिका और भारत के बीच एक समझौता हुआ जिसमें इस परियोजना के लिए 7·5 करोड़ डालर (56.25 रूपये) के अमेरिकी ऋण की व्यवस्था हुई। समझौता पत्र पर अमेरिका राजदूत चेस्टर बोल्स, भारत में अणुशक्ति कार्यक्रम के जनक, स्वर्गीय डा० एच० जे० भाभा वित्त-मन्त्रालय के तत्कालीन सचिव श्री एल० के० झा ने हस्ताक्षर किये।

तारापुर परियोजना डा० भाभा के उस सद्प्रयास का चरम बिन्दु थी, जिसका उद्देश्य आणुशक्ति के बहुमुखी लाभों की सहायता से भारत के आर्थिक विकास को तीव्रतरब नाना था। डा० भाभा की मृत्यु के बाद, तारापुर परियोजना का कार्य अणुशक्ति विभाग के अध्यक्ष डा० विक्रम साराभाई के नेतृत्व में अवध गति से जारी रहा।

श्री एम० एन० चक्रवर्ती समग्र तारापुर परियोजना के प्रसाशक और डा० महेश दयाल उसके प्रधान इंजिनियर रहे हैं।

अमेरिका की जेनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी और इण्टर्नेशनल जेनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी (भारत) को जन्हें संयुक्त रूप से 'आई० जी० ई० कहते हैं, परियोजना का मुख्य ठेकेदार नियुक्त किया गया। तारापुर के लिए आणविक प्रणाली की डिजाइन आई० जी० ई० ने सैनजोन्स, कैलिफोर्निया, स्थित अपने आणविक बिजली उपकरण विभाग में तैयार की प्रतिक्रियावाहक के लिए पात्रों या पीपों का निर्माण अमेरिका की एक फर्म, 'कम्बशन इंजिनियरिंग' ने किया। परियोजना के परम्परागत पुर्जो के विस्तृत अभियंत्रण बिजलीघर के निर्माण कार्य व्यवस्था के आई० जी० ई० ने बेचटल कार्पोरेशन को नियुक्त किया।

परियोजना के निर्माण का कार्य अक्तूबर, 1964 में प्रारम्भ हुआ और 1969 में पूरा हुआ। निर्माण कार्य की अधिकतम व्यस्त अवधियों में 6500 नर-नारियों ने दिन रात, 24 घण्टे अवाध रूप से कार्य किया।

तारापुर के निर्माण में 110 हजार घन गज कंक्रीट 12 हजार टन इस्पात, 44,000 टन सीमेण्ट, 1,05,000 घन गज बजरी या कंकड़ और 52,000 घन गज बालू प्रयुक्त हुआ। इसमें प्रयुक्त पाइपों और केबलों की कुल लम्बाई क्रमशः 40 मील और 250 मील थी।

क्या तारापुर संयंत्र अणुबम जैसा विस्फोट कर सकता है?

भौतिक दृष्टि से यह सर्वथा असम्भव है कि कोई विद्युत संयंत्र अणुबम जैसा व्यवहार करे। अणुबम में, मूलतः विशुद्ध विखण्डनीय सामग्री के टुकड़े त्वरित गति से दब कर एक सघन पिण्ड के रूप में परिणत हो जाते हैं, जो निमिष मात्र के लिए उसी रूप में बँधे रहने के लिये बाध्य होता है, ताकि शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया उसमें से होकर प्रसारित हो जाय किन्तु आणविक बिजली घरो में प्रयुक्त प्रितिक्रियावाहको में ये स्थितियाँ न ती होती है और न हीं हो सकती हैं। वे आपेशाकृत घुलनशील ईंधन प्रयुक्त करते है उनकी डिजाइन भिन्न होती है और उनकी संचालन-विधि भिन्न होती है।

आणविक बिजलीघर की सुरक्षा आणविक ऊर्जा को नियंत्रित करने पर नहीं बल्कि जसके द्वारा उत्पन्न रेडियोसक्रिय सामग्री को अनुसीमित रखने पर निर्भर है।

आणविक बिजलीघर में उत्पन्न रेडियोसक्रिय सामग्रियाँ विखण्डन की 'राखे'—तथाकथित विखण्डन उत्पाद —हैं। ये विविध पदार्थो की मिश्रण हैं। उनमें से गैसें और कुछ ठोस पदार्थ होते है। निर्मित विखण्डन उत्पादों की मात्रा पिण्ड के रूप में कम—तारापुर में प्रतिदिन कुछ पिण्ड मात्र— और रेडियोसक्रियता के रूप में बहुत अधिक होती है।

तारापुर में इन रेंडियोसक्रिय उच्छिष्ट अशों को ठिकाने लगाने के उद्देश्य से 'रेडवेस्ट' नामक एक पृथक भवन में शोषित किया जाता है। कर्मचारियो और अड़ोस पड़ोस के क्षेत्रो को रेडियोसक्रिय विषाक्तता से सुरक्षित

रखने के लिए असाधारण एहतियाती उपाय लागू किये गये हैं। संयंत्र से निलने वाली भाप और हवा को भी 366 फुट उंची खुली चिमनी से बाहर निकाल कर वायुमण्डल में उन्मुक्त से पूर्व अच्छी तरह शुद्ध कर लिया जाता है।

पृथ्वी पर रहने वाले समस्त प्राणी, जिनमें मनुष्य भी शामिल है, मुख्यतः सूर्य से निस्सरण के फलस्वरूप उत्पन्न रेडियोसक्रियता के अनुमिश्रित सागर में सदा से रहते आ रहे हैं। विकिरण की जितनी मात्रां को मनुष्य सहन कर सकता है, वह सामान्यतः उंचाई के अनुपात से बढ़ती जाती हैं। अमेरिका में बड़े बड़े आणविक बिजलीघरों के सम्बन्ध में प्राप्त अनुभवों से यह संकेत मिलता है कि इस प्रकार के कारखानों में काम करने वाले व्यक्ति को उस व्यक्ति की अपेक्षा कम विकिरण का सामना करना पड़ता है, जो 400 फुट ऊँची पहाड़ी पर रहता है।

तारापुर से भारत को क्या लाभ होगा ?

तारापुर बिजली घर भारत के अधिकतम उद्योग-प्रधान क्षेत्रों में से एक को लाभान्वित कर रहा है। गुजरात और महाराष्ट्र, दोनों ही राज्यों में, पहले दो दशाब्दों के दौरान कई बडी-बड़ी योजनाएं लागू होने के बावजूद बिजली की मांग उसकी पूर्ति से बहुत अधिक है। जब कभी वर्षा अच्छी नहीं होती, और उस क्षेत्र की जल विद्युत परियोजनाओं के जलाशय सूख जाते हैं बिजली के उपयोग में जबर्दस्ती कटौती करनी पड़ती है। इन कटौतियों के कारण राष्ट्रीय आय को भारी क्षति हुई हैं, और समय समय पर बेरोजगारी का दौर प्रारम्भ होता रहता है। 1969 के ग्रीष्म में तारापुर बिजलीघर चालू हो जाने से उस क्षेत्र में उस समय लागू सभी कटौतियां समाप्त कर दी गयी। जल विद्युत के विपरीत, आणविक बिजली वर्षा पर निर्भरता से मुक्त है। इसलिए तारापुर बिजलीघर पश्चिमी भारत में रहने वाले करोड़ों लोगों को नियमित और विश्वासनीय रूप से बिजली सुलभ करने वाले साधन का प्रतीक हैं।

तारापुर बिजलीघर द्वारा उत्पन्न 4,00,000 किलोवाट बिजली महाराष्ट्र और गुजरात में उद्योगों के और अधिक विकास में भारी योग प्रदान कर रही है। अधिक मात्रा में बिजली उपलब्ध होने से खेती को भी बहुत लाभ पहुँच रहा है। ग्रामीण विद्युतीकरण तीव्र गति से प्रगति कर रहा है, जिससे किसान लोग पम्पसेटों द्वारा अपने खेत सीचने में समर्थ हो रहे हैं। इस समय कितने ही किसान पहले की एक फ़सल के स्थान पर साल में तीन-तीन फसलें उत्पन्न करने लगे है गांवों में हजारों नये उद्योग स्थापित हो रहे हैं।

● ●

विज्ञान-वार्ता

पारे से भारी तत्व ?

वैज्ञानिकों ने यह दावा किया है कि उन्होंने पारे से भारी तत्व की खोज कर ली है, जो कि अभी तक ज्ञात सभी तत्वों से अधिक भारी है। यह तत्व पारे का नया रूप है। वैज्ञानिकों ने 'पीरियाँडिक टेबुल' में इसका 112वाँ स्थापना बतलाया है। इस तत्व का नाम उन लोगों ने 'एकामरकरी' रखा है। इस तत्व के विषय में वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह काफी स्थिर है, जिसका अर्धजीवन काल लगभग 500 वर्ष का होगा, जबकि तत्व संख्या 105, जिसका नाम "है नियम" है, का अर्ध-जीवन काल 1·6 सेकेन्ड है।

प्रोट्राँन से भी अधिक सूक्ष्म कण

कैलिफोर्निया के वैज्ञानिकों ने यह कहा है कि उन्होंने प्रोट्रॉन से भी अधिक सूक्ष्म कणों का अन्वेषण कर लिया है। उन्होंने इस कण को 'पारटन्स' की संज्ञा दी है। अभी तक यह विश्वास था कि प्रोट्रॉन तथा न्यूट्रॉन अविभाज्य हैं, तथा ये ही सूक्ष्मतमकण हैं। परन्तु इन कणों के द्वारा इलेक्ट्रॉन की एक धारा पर आक्रमण करने पर "पारटन्स" का निर्माण होता है। आजकल हो रहे अणुसंधानकार्यों से "पारटन्स" की उपस्थिति सत्यापित होती है। आशा है कि ये भौतिक विज्ञान के कई आणिवक रहस्यों का उद्-घाटन करने में सफल होगें।

रबर बनाने की नई विधि

मलेशिया के रबर के एक कारखाने ने उष्मा-प्रतिरोधक, अधिक समय तक चलने वाले रबर बनाने की विधि का अविष्कार किया है। नेशनल रबर प्रोड्यूसर्स रिसर्च ऐसोसियेशन का कहना है कि इस प्रकार के रबर का प्रयोग मोटर आदि में होगा।

आकाश गंगा में जीवन सम्भव

अमेरिका के खगोलशास्त्रियों ने ब्राह्मांड में जीवन होने का रासायनिक प्रमाण दिया है। कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी के डा० लियानिड वेलियेच्चू का विश्वास है कि जीवन के उद्‌विकास के लिये बराबर कुछ रासायनिक परिवर्तन सम्पूर्ण ब्रह्मांड में हो रहे हैं। कुछ दिनों पूर्व एक खगोल-भौतिकी की एक पत्रिका मे डा0 वेलियेच्यू ने यह प्रस्तुत किया है कि उन्होंने अन्तरिक्ष में 10 प्रकाशवर्ष दूर हाइड्रोऑक्सिल रैडिकल—एक परमाणु हाइड्रोजन तथा एक परमाणु ऑक्सीजन का अन्वेषण किया है। इस हाइड्रोऑक्सिल आॅयन में एक परमाणु हाइड्रोजन का और मिल जाता है, फल स्वरूप पानी का निर्माण होता है। अतः वहाँ पर जीवन सम्भव है।

काँच विहीन दर्पण

साधारणतः दर्पण में काँच अवश्य होता है, परन्तु अमेरिका में एक प्रकार का दर्पण बनाया गया है, जिसमें काँच नहीं है, परन्तु इसके स्थान पर एक मोटी पॉलिस्टर की फिल्म, जिसपर कि एल्यूमीनियम की तह होती है। यह फिल्म शीशे के समान ही परावर्तन करती है।

चन्द्रमा की उत्पत्ति का नया सिद्धान्त—

चन्द्रमा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक अमरीकी नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक डा0 सी0 यूरीने एक नये सिद्धन्त को प्रतिपादित करते हुये बताया है कि चन्द्रमा की उत्पत्ति पूर्ण धारणानुसार पृथ्वी से नहीं, अपितु पृथ्वी की उतपत्ति के बहुत पहिले से ही सौर मंडल में चन्द्रमा का अस्तित्व था। उनका कहना है कि चन्द्रमा और इस प्रकार के अन्य चन्द्रमाओं से मिलकर सौरमंडल बना, और चन्द्रमा तो नष्ट हो गये लेकिन पृथ्वी के निकट का चन्द्रमा किसी प्रकार से बचा रहा।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं यन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० |3|5|

भाग 108 | भाद्रपद 2028 विक्र०, 1892 शक अगस्त 1971 | संख्या 8

रोगोत्पादक कीटाणुओं से मानव तथा फसलों इत्यादि का बचाव

□ हरिफूल

जब से ईश्वर ने इस पृथ्वी की सृष्टि रची है तब से ही मानव का जन्म हुआ है। तब मानव जंगलों में पशुओं की तरह ही रहता था तथा पशुओं की तरह ही उसके कार्यकलाप थे। जिस प्रकार आज मानव को हर तरह की आवश्यकता व चाह होती है उसी तरह उस समय मानव को आवश्यकता पड़ने लगी। उस समय मानव अपने जीवन का निर्वाह फल इत्यादि खाकर ही किया करता, लेकिन उसके मन में भयानक जंगली जानवरों का शिकार करने की बात आई और उसके लिए उसने पत्थर के हथियार बनाएं जिससे उसे अपने कार्य में सफलता मिली। उस मानव के मस्तिष्क में भयानक जंगली जानवरों का शिकार करने की बात का आना तथा पत्थर के हथियार बनाना तथा उससे सफलता का पाना ही एक अविष्कार कहलाता है। इसी प्रकार मनुप अपने जीवन की आवश्याकता को पूरी करने के लिए जिस चीज की उसे चाह या आवश्यकता पड़ती उसे खोजता और खोजते-खोजते इसी खोज के कारण आज विश्व में रेडियो, टेलीफोन, वायुयान इत्यादि करोड़ों वैज्ञानिकों द्वारा वैज्ञानिक आविष्कार हुए जिसने आज मानव का जीवन सुखमय बना दिया है। आज मानव चाँद पर पहुँच रहा है तथा भविष्य में मानव सभी ग्रहों पर पहुँच कर वहाँ निवास करने लगेगा ऐसी सम्भावना है। आज इन वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव को कितना आश्चर्य चकित कर दिया है जिसका कोई ठिकाना नहीं है।

विज्ञान की इतनी प्रगति होते हुए भी मनुष्य रोगी क्यों हो जाता है ? आज भी मनुष्य का रोगोत्पादक कीटाणुओं से संघर्ष क्यों जारी है ? आज भी भारतवर्ष में रोगोत्पादक कीटाणुओं द्वारा भारतवर्ष में उपजने वाली फसलें-गेहूं, चना, ज्वार, बाजरा, मक्का, जौ, गन्ना, अंगूर संतरा इत्यादि फलों व सभी प्रकार की सब्जियों के पौधों को कितनी क्षति पहुचती है ?

फसलों व पौधों को क्षति पहुंचाने वाले रोगोत्पादक कीटाणु :—फसलों व पौधों को क्षति-हमारा भारत एक कृषि प्रधान देश है यहाँ के 90% लोग गाँवों में निवास

करते हैं तथा खेती का व्यवसाय करते हैं तथा जिस दिन से फसलों या पौधों को उपजाने के लिए बीज डालता है और जब तक वह उस फसल को काट नहीं लेता उसे रोगोत्पादक कीटाणुओं द्वारा उपज को क्षति हो जाने का खतरा बना रहता है। फसलों व पौधों को फैलाने वाली 90 प्रतिशत बीमारियाँ एक फफूंदी नामक रोग से होती है जिसका रूपढंग बासी डबल रोटी, फटे दूध, पनीर, किसी बासी सब्जी पर आने वाली फफूंदी की तरह व मकड़ी के जाले की रेशों की तरह होती हैं। इस प्रकार की फसलों व पौधों को रोगोत्पादक कीटाणुओं की फफूंदी के एक-एक कण में हजारों की मात्रा में रोगोत्पादक कीटाणु होते हैं जो पौधों व फसलों को क्षति पहुँचाते हैं और आज भी भारतवर्ष में इतनी प्रगति तथा कीटाणुनाशक औषधियों के आविष्कार होने पर भी इसका इस्तेमाल करने से भी समस्त भारत की फसलों, पौधों तथा गोदामों में रखे गये धान को लगभग 15% क्षति पहुँचती है तथा इसके साथ आज भी भारत में इतने चिकित्सा स्वास्थ्य, रसायन के आविष्कार होते हुए भी रोगोत्पादक कीटाणुओं द्वारा मानव रोग ग्रस्त होकर मरने वालों की संख्या 10% है यह क्यों है ?

रोगोत्पादक कीटाणुओं द्वारा मनुष्य का रोग ग्रस्त होना:— यदि हम मिट्टी के कुछ कण जो निर्जीव धूलि हो, उन कुछ कणों में यदि कीटाणु देखने के यंत्र से देखें तो उस निर्जीव धूलि में सैकड़ों कीटाणुओं व खनिज पदार्थों का एक जीता जागता संसार है। जब धूल इत्यादि उड़ती है तो मानव के शरीर पर इसमें जो कीटाणु होते हैं चुम्बक की तरह चिपक जाते हैं जिससे उन कीटाणुओं द्वारा फैलने वाले रोग का आसार उस पर हो जाता है। यह बात वास्तव में विचित्र अवश्य लगती है लेकिन सत्य है।

कुछ रोग हमारी लापरवाही से भी फैलता है जिसको मनुष्य स्वप्न में भी नही सोच सकता। हम जो वस्तुए दैनिक प्रयोग में लाते हैं उसका प्रयोग करने के पश्चात उसके बारीक कणों की निकासी पूर्णरूप से हम नहीं कर पाते जिससे उन खाद्य कणों में रोगोत्पादक कीटाणु पैदा हो जाते हैं तथा वहाँ रहने वालों को अपना थोड़ा बहुत असर अवश्य दिखाते हैं।

फसलों व पौधों की रक्षा :—फसलों व पौधों को रोगोत्पादक कीटाणुओं से फैलने वाली बीमारियों से बचाने के लिए 1905 से लेकर अब तक '**भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान**' द्वारा गठित वैज्ञानिक दल ने फसलों व पौधों को होने वाली क्षति से बचाने के लिए सारे भारतवर्ष में बहुत ही सफल कार्य किया है तथा अब भी कर रही है जिससे फसलों व पौधों की उपज को बहुत ही बढ़ोत्तरी हुई है। आज भी भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान पूसा नई दिल्ली में फसलो व पौधों की बीमारियों की रोकथाम के लिए व इनकी उपज बढ़ाने के लिए बहुत हीं सफल कार्य हो रहा है।

1805 में पेनसिलिन का आविष्कार तथा उसके बाद लाखों रोगोत्पादक कीटाणुओ से फैलने वाले रोगों से बचाने के लिए बहुत से टीके बनाये गये है जिनसे अत्यधिक सफलता मिली है तथा आज इन रोगोत्पादक कीटाणुओं से फैलने वाले रोगों से मनुष्य को बचाया जा सकता है। परन्तु सवालयह उठता है कि मानव इस रोग का शिकार क्यों हो इसके लिए सफाई की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि निम्नलिखित औषधि (रसायन को तैयार करके इस्तेमाल किया जाये तो मानव रोगोत्पादक कीटाणुओं की बीमारियों से लगभग 99% शिकार नही हो सकता है।

कीटाणुनाशक औषधि बनाने का तरीका व सामान।

(1) बरोजा (राजन) 500 ग्राम (सूखा पीले रंग का)
(2) पाइन आयल 500 ,,
(3) क्रियोज्यूट आयल 200 ,,
(4) ओलिक एसिड 200 ,,
(5) क्राइस्लिक एसिड 450 ,,
(6) कारबोलिक एसिड 200 ,,
(7) ट० सोडियम फास्फेट 150 ,,
(8) कास्टिक सोडा 250 ,, (सूखी पपड़ी वाला)
(9) पानी 4 किलो ग्राम

24 घण्टे पहले किसी लोहे के मोटे बर्तन में 250 ग्राम पानी में कास्टिक सोडा डालकर लेई बना लें। अब किसी एक बड़ी कढ़ाई को लेकर उसमें बरोजा डालकर धीमी आग की आँच देकर उसे पिघलाइये, पिघल जाने पर उसमें क्रम संख्यानुसार एक-एक करके उपरलिखित 6 रसायनों को कढ़ाई में डाल दीजिये और हिलाते जायें अब द्रव जो तैयार हो जायेगा इसमें ट$_0$ सोडियम फास्फेट का 500 ग्राम पानी में घोलकर कढ़ाई में उड़ेल दीजिये तथा जोर-जोर से किसी लकड़ी द्वारा रसायन को हिलाते जाये अब इसमें कास्टिक सोडे की लेई डालकर हिलाते जायें और बाकी का सारा पानी थोड़ा-थोड़ा करके डालते जाएं तब इन सभी रसायनों का एक घोल होकर औषधि तैयार हो जायगी।

उपरोक्त औषधि को यदि मानव अपने जीवन में प्रयोग करता है तो मेरी दृष्टि में वह मानव इन सभी रोगोत्पादक कीटाणुओं द्वारा फैलने वाले रोग का शिकार नही हो सकता। मेरे कथनानुसार इन औषधि का इस्तेमाल करने पर निम्नरूप से लाभपूर्ण सिद्ध हो सकती है।

घर, फैक्टरियाँ, गोदामों व पाखाना इत्यादि में इसका प्रयोग एक भाग औषधि में पाँच भाग पानी मिला कर स्प्रेपम्प द्वारा छिड़काव से किया जाता है जिससे वहाँ फैलने वाले रोगोत्पादक कीटाणु मर जाते हैं तथा इन कीटाणुओं से फैलने वाले रोगों की रोकथाम होती है। इसे घर इत्यादि में सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिये। इसके छिड़काव से मानव पर किसी भी प्रकार का बुरा प्रभाव नही पड़ता है।

फसलों व पौधों के लिए:—फसलों व पौधों (सभी प्रकार के) को सभी प्रकार के रोगोत्पादक कीटाणुओं से होने वाली क्षति से बचाने के लिए इसका प्रयोग एक हिस्से औषधि में तीन हिस्से पानी मिलाकर किया जाता है जिससे फसलों व पौधों को फैलने वाली बीमारियों से पूर्ण-रूप से रक्षा होती है।

प्राथमिक चिकित्सा:—प्रथम तो जिस घर में इस प्रकार की औषधि का प्रयोग होता है वहाँ किसी भी प्रकार के रोगोत्पादक कीटाणु वहाँ रह ही नहीं सकते हैं वह इसकी भीनी-भीनी सुगंध से मर जाते हैं यदि इसका प्रयोग उस स्थान पर किया गया हो। यदि किसी मनुष्य को किसी प्रकार के कीटाणु काट खायें तो तुरंत ही इस औषधि को उस स्थान पर लगा देने से उसके कीटाणु मर जायेगें और वह हमारे शरीर में फैलने से रुक कर रोगग्रस्त होने से बचायेंगे। किसी भी प्रकार से यदि शरीर के किसी भी अंग पर चोट इत्यादि लग जाये तो तुरंत एक गीले कपड़े को उस औषधि में भिगोकर निचोड़ लीजिये और उस जगह पर लपेट दीजिये जहाँ पर चोट लगी है तथा बाद में उसे किसी चिकित्सक के पास ले जाना चाहिये इस औषधि के प्रयोग करने से उस कटे हुए जख्म में रोगोत्पादक कीटाणु नहीं प्रवेश कर सकेंगे तथा कीटाणुओं से पूरी तरह रक्षा हो सकेगी। कुत्ते, बिच्छू इत्यादि के काटते ही इसे लगा देने से रोगी उन सभी कीटाणुओं से बच सकता है जिससे उसकी मृत्यु का डर हो। पालतू पशुओं को इस औषधि को यदि पानी में डाल कर स्नान करवाया जाये तो जुएँ पिस्सू इत्यादि कीटाणुओं का अन्त हो जायेगा। इस प्रकार यह औषधि एक सक्षम कीटाणुनाशक है।

● ●

वेदों के रसायन-शास्त्र संबंधी संदर्भों का समीक्षात्मक अध्ययन

□ आनन्दीलाल शर्मा एवं डा० विजयेन्द्र शास्त्री

भारतीय साहित्य में वेदों का प्रमुख स्थान रहा है। वे ज्ञान के अजस्र भंडार हैं। वे न केवल नीति तथा तत्कालीन रीति-रिवाज का दिग्दर्शन कराते हैं, प्रत्युत् वे इस तथ्य के भी परिचायक हैं कि उस काल में भी भारतीय विज्ञान सापेक्ष्य दृष्टिकोण से अनयंत उत्कृष्ट था, जबकि अन्य देश उन्नति की दिशा में अग्रसर मात्र हो रहे थे। यद्यपि वेद वनस्पति-शास्त्र, रसायन शास्त्र, भेषज विज्ञान शिल्प-कला आदि विभिन्न क्षेत्रों के संबंध में परवर्ती विज्ञान का मार्ग प्रशस्त करते हैं, तथापि प्रस्तुत लेख रसायन शास्त्र संबंधी वैदिक ज्ञान के परिचयात्मक सिंहावलोकन तक ही सीमित होगा। यद्यपि रसायन शास्त्र स्वयं पर्याप्त व्यापक विज्ञान है, फिर भी, प्रस्तुत लेख में हम इस विज्ञान की धातु तथा धातु कर्म, रासायनिक पदार्थ तथा रासायनिक क्रियाओं संबंधीं शाखाओं संबंधी प्रमुख उल्लेखों की समीक्षा का प्रयास करेंगें।

धातुओं संबंधी उल्लेख:—वैदिक साहित्य में धातुओं का उल्लेख विविध कारणों से किया गया है जिनमें प्रमुख है—आयुधों का निर्माण, आभूषणों, पात्रों का निर्माण तथा सिक्कों (निष्क) का निर्माण। यजुर्वेद 18.13) में 6 धातुओं के नाम आये हैं, जो निम्नानुसार हैं तथा प्रत्येक पर व्याख्या आवश्यक है।

"अश्मा चमे मृतिका च में गिरय में पर्वताश्च में सिक्ताश्च में वनस्पतयश्च में हिरण्यश्चमेंऽयश्च मे श्यामश्चमें लोहश्चमें सीसश्चमें त्रपु च में यज्ञेन कल्पन्ताम्।

हिरण्य (सोना) बहुमूल्य धातु है। अतएव इसके अन्यत्र भी उल्लेख हैं। ऋग् 1.43.5 अर्थव० 1.9.2, 5.28.6) हिरण्य के साथ-साथ सुवर्ण का उल्लेख भी सोने के लिये कई स्थानों पर है। यहाँ यह स्पष्ट करना असंगत न होगा कि कुछ धातुओं का उल्लेख विशेषण तथा विशेष्य दोनों रूपों में हुआ। विशेषण में सुवर्ण का तात्पर्य है—अच्छे रंग वाला (तैत्तिरीय ब्रा० 1474)। स्वर्ण पहले नदियों की वाटियों से निकाला जाता था, इसलिये सिंधु को स्वर्णमय कहा गया है (ऋग्० 10753) साथ हीं स्वर्ण को (ऋग०11175) भूमि से निकालने का भी उल्लेख है। यथा- विश्वम्भरा वासुधानि प्रतिष्ठा हिरण्य वक्षा जगतो निवेशनी

अथर्व 1216

यजुर्वेद के उपर्युक्त सूक्त श्याम का उल्लेख उसके काले रंग के कारण लोहे से है। अन्यत्र उल्लेख (अर्थव० 9 5 4) है,जहाँ यह अकेले में वर्णित है, परन्तु प्रायः यह अयस के साथ श्लिष्ट है, जैसे श्यामायस् तथा कृष्णायस आदि। उक्त स्थलों पर भी यह लोहे के लिये प्रयुक्त हुआ है। जैसे—

श्याम मयोऽस्य मांसानि लोहितमयस्य लोहितम्।

अथर्व० 11 3 17

इली प्रकार लोह जो लाल के लिये विशेषण है, तांब्रा के लिये ही प्रयुक्त हुआ हैं (यदुर्वेद 18 13)। उपर्युक्त सूत्र में श्याम के साथ विभेद होने के कारण लोहे के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता। अयस् के साथ संयुक्त होकर भी इसका उल्लेख लोहयस अथवा लोहितायस के रूप में हुआ है। (शतपथ ब्रा० 54 1 2) जिसका अर्थ भी प्रायः वही है, जहाँ यह अकेले प्रयुक्त हुआ है।

चौथी धातु जो यजुर्वेद के 18 13सूक्त में वर्णित हैं, वह अयस् है जो अत्यन्त विवादास्पद है और जिस पर

विद्वानों का मतैक्य नहीं है कि वह किस धातु अथवा मिश्र धातु का द्योतक है। एक अन्य उल्लेख ऋग्० 6 75 15 है, जिसमें बाणों के प्रकारो संबंधी संकेत है। वे दो प्रकार के हैं :—

"आलाक्ता या कूरूष्णर्यथोऽस्य ऊयो मुखम्" आदि-

यहाँ एक प्रकार के बाण विष से बुझे होते थे (आल–अक्ता) तथा सींग के सर वाले (रुरु शीर्षणी) होते थे तथा दूसरे धातु के सिर वाले (अयोमुखम्) होते थे। सुरक्षित रूप से केवल यही कहा जा सकता है कि अयस् का यहाँ सामान्य तात्पर्य है तथा यह शब्द धातु मात्र के लिये प्रयुक्त हुआ है। संभवतः इसका अर्थ लोहा भी हो सकता है। अयस् अन्य धातुओं के साथ श्लिष्ट भी हुआ है जैसे-लोहायस्, श्यामायस आदि। यहाँ लोहायस (=लोह +अयस्) लाल धातु के लिये प्रयुक्त हुआ है जो ताँबा है। अतएव यहाँ अयस् शब्द धातु के लिये सामान्य रूप से प्रयुक्त हुआ है। शतपथ ब्रा० (5 4 1 2) में लोहायस और अयस् इस प्रकार दो भेद किये गये हैं, जिसमें अयस् का तात्पर्य लोहा ही होना चाहिये, परन्तु श्रोडर उसे ताँबा और काँसा का द्योतक मानते हैं। अथर्व० 5 28 1 में उससे लोहे का आशय ही प्रकट होता है। यथा–

हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि (हरित=स्वर्ण, रजत =चाँदी, अयस्=लोहा)

साथ ही शतपथ ब्राह्मण (6 1 3 4) में वर्णित है (बहु धमाम्) यदि अच्छी तरह तपाया जाय तो वह स्वर्ण के समान चमकने लगता है। यहाँ प्रत्यक्ष आशय काँसा से है। इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि पूर्ववर्ती ग्रंथों में अयस् का तात्पर्य सामान्य धातु अथवा लोहे के लिये हुआ है तथा परवर्तीग्रंथों में इसका आशय काँसे से है। त्सिमर का भी यही मत है। अयस संबंधी अन्य, उल्लेख इस प्रकार हैं (ऋग्० 1 5 7 3, 4 2 1 7, 4 6 3 5) इसी संदर्भ में ऐतिहासिक विषयों के सुप्रसिद्ध लेखक डा० रांगेय राघव के ग्रंथ अंधेरे रास्ते (किताब महल इलाहाबाद) के निम्नलिखित उद्धरण भी ध्यान देने योग्य है–

प्रश्न है रूपार की हरप्पा सभ्यता अपने आप कैसे लुप्त हो गई? फिर कुरुओं के पास लोहा नहीं था, किन्तु वेद में लोहा वर्णित है। (पृष्ठ 190) देवों के पास लोहा था वे उसका प्रयोग भी करते थे (पृ० 194)। यदि वेद रचयिताओं की जाति कुरु पांचालों के पास ही लोहा नहीं था, तो वह किस जाति से आया?— — अतः अभी इस विषय पर अधिक गंभीर अध्ययन की आवश्यकता है। पृ० 192)।

प्रस्तुत लेख के वरिष्ठ लेखक की जुलाई-अगस्त 1967 के विज्ञान में पृष्ठ 3 पर, वैदिक वाङ्मय में रसायन शास्त्र शीर्षक लेख के अन्तर्गत प्रकाशित निम्न पंक्तियाँ भी उद्धरणीय हैं। आचार्य राय ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वैदिक काल में लोहा प्रयुक्त नहीं होता था एवं वैदिक आर्य लोहे के उत्पादन एवं उपयोग की विधियाँ नहीं जानते थे। अयस् शब्द लोहे नहीं वरन् धातु मात्र के लिये, विशेष कर सुवर्ण के लिये काम में लाया जाता था। (देखिये ए हिस्ट्री आफ हिन्दू केमिस्ट्री, पृष्ठ 35, द्वारा आचार्य राय) - - - डा० सत्यप्रकाश के साहित्य का अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ऋग्वेद काल में लोहा ज्ञात था। यह निर्णय ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व काहो सकता है विद्वज्जन इस प्रश्न पर विशेष विचार कर सकते हैं।

आइये, अब हम सीसा एवं अन्य धातुओं के संबंध में पर्यवेक्षण करें।

सीसे का उल्लेख सीसश्चमे (यजु० 18.13) के रूप में हुआ है। अथर्व 12 2 1 सूक्त में–

इदं सीसं भागधेयं त एहि-

के अनुसार सीसे का, गोली बनाकर शत्रुनाश के उपाय के रूप में वर्णन है। इसी प्रकार—

सीसायाहयाह वरुणः सीसायाग्नि रूपावति

अथर्व० 1.16.2

तथा-

तंत्वा सीसेन विध्यामो यथा नो सो अवीरहा

अथर्व० 1.16.4

में भी सीसे से शत्रुनाश का उपाय वर्णित है।

सीमा के सूत्र से कपड़े बुनने का वर्णन भी ज्ञातव्य है-
सीसेन तंत्रं मनसा मनीषिणऽऊर्णा सूत्रेण कवयो वयन्ति।
युजु० 1980

6 धातुओं की तालिका (यजु० 18.13) की अन्तिम धातु त्रपु है, जिसे संप्रति में टीन कहते हैं। अन्य उल्लेख जो उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं–अथर्व० 11.3.1.8, कठक संहिता 18.10, छांदोग्य उपनिषद् 4.17.7। अथर्ववेद के एक स्थल पर ऐसा संकेत मिलता है कि यह सरलता से गलाया जा सकता है, इसीलिये इसका नाम त्रपु (त्रप धातु से व्युत्पन्न जिसका तात्पर्य लज्जित होना है रखा गया है।

उपर्युक्त धातुओं के अतिरिक्त एक अन्य धातु का उल्लेख भी कई स्थलों पर प्राप्य है जिसे रजत कहा गया है। सुवर्ण के समान इसका उल्लेख भी विशेषण और विशेष्य दोनों रूपों में हुआ है। हिरण्य के साथ रजत का उल्लेख विशेषण के रूप में हुआ है। (लेतिरीय संहिता 1 5 1, शतपथ ब्रा० 12 4 4 7आदि)। विशेष्य के रूप चाँदी के आभूषणों (=रुकर्म) का शतपथ ब्रा० (12 8 311) में, चाँदी के पात्रों का तैत्तिरीय ब्रा० 2 2 9 7) में और चाँदी के सिक्कों (=निष्क) का उल्लेख पंचदिश ब्रा० (17 1 4) में मिलता है चाँदी के अर्थ के संदर्भ में रजत अथर्व० (5 28 1) में उल्लिखित है-

हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि आदि--

धातुकर्म संबंधी प्रकीर्ण विवरण:—धातुकर्म के विषय में वैदिक ग्रंथों की उपलब्धि के संबंध में विवेचन प्रस्तुत करना भी उपयोगी होगा। प्राचीन काल में शिल्पी (= कर्मारका बहुधा उल्लेख हुआ है। जो धातु को गलाने (= धमाँ) का कार्य करते थे उन्हें ध्मातृ कहा गया है। यथा-

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् सयन्ति धमिनः।
यदीमह त्रितो दिव्ययध्मातेवधमति ध्मातरी यथा॥
ऋग्० 5 9 5

यहाँ ध्मात्री विभक्ति में धमन भट्टी में के लिए प्रयुक्त हुआ है; — मेकडोनेल। यद्यपि इसमें भी मतभेद है। अन्य विद्वान इसे द्वितीया विभक्ति में धमने के अर्थ में लेते हैं। पक्षियों के परों की धौंकनी का उल्लेख ऋग्वेद (9.112.2) में मिलता है। ये लोग आग पर चढ़ाये जा सकने योग्य धातुपात्र (=अयस्मय) ऋग्वेद 5.30.15) बनाते थे। यहाँ तक कि सोमपान के हेतु प्याले के निर्माण के लिये भी अयोहतः (ऋग् 9.1.2) अर्थात् पिटी हुई धातु का उल्लेख है।

साथ ही सीसे का उल्लेख धातु-शोधन के संदर्भ में भी हुआ है जिसमें स्वयं सीसे का तथा सीसे के द्वारा शुद्ध करने संबंधी कथन है। यथा-

सीसे मलं सादयित्वा आदि अथर्व० 12.2.20

तथा

सीसेन मलिम्लुचामहे - - मानव धर्म सूत्र

विभिन्न आयुधों का निर्माण तथा उपयोग इस बात का द्योतक है कि धातु कर्म का ज्ञान उस समय बहुत उत्कृष्ट था।

अन्य रासायनिक पदार्थों में लवण का उल्लेख वैदिक ग्रंथों में प्रमुख रूप से हुआ है। यद्यपि ऋग्वेद में इसका उल्लेख नहीं मिलता, तथापि अथर्ववेद (7.76.1) ब्राह्मण ग्रंथों में, छांदोग्य (4 17 7) बृहदारण्यक आदि उपनिषदों 2 4 12) तथा शतपथ ब्राह्मण (5 2 1 16) में इस संबंधी पर्याप्तविवरण है, जहाँ इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। इसके संबंध में उल्लेख ऋगवेद आदि पूर्व ग्रंथों मे नहीं होना आश्चर्यजनक है क्योंकि ऐसे क्षेत्र में जहाँ लवण जैसी एक अनिवार्य वस्तु सुलभ हो, वहाँ इसका उल्लेख उपेक्षित रह जाय। छांदोग्य उपनिषद (4 17 7 में इसे स्वर्ण से भी उच्च स्थान दिया गया है।

आर्ष ग्रंथों में कुछ प्रक्रियाओं का उल्लेख है, जैसे, छानना स्वच्छ करना, (क्षार युक्त जल से मैल दूर करना) आदि। इसी संदर्भ में ऋगवेद में अनेक स्थलों पर पवमान शब्द प्रयुक्त त्रयुक्त हुआ है जिसका तात्पर्य सोम का छनने से होकर अपने को स्वच्छ करने के लिये है। यह वायु परिचारक के लिये भी प्रयुक्त हुआ है

आयो मा तस्मादेनसः पवमान चश्मछतु ।

यजु० 6 17

ऋगवेद काल में सोम को परिष्कृत करने के लिये भेड़ की ऊन का प्रयोग किया जाता था, परन्तु वह बिनी हुई होंती थी या जमाई हुई, यह अस्पष्ठ है, और इसमें मतभेद है, किन्तु रिसमर का मत है कि ह्वरांसि शब्द से जमाये हुए होने का आशय व्यक्त हुआ है ।

इसी प्रकार क्षारयुक्त जल से शुद्ध करने की प्रक्रिया का उल्लेख भी मिलता है । यथा-

यदस्या पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति

अथर्व० 12 4 9

उपर्युक्त ऋचा में इनका तात्पर्य मूत्र से है । तैत्रिरीय संहिता (2 5 5 6) में क्रिया रूप में पल्पूलय (= क्षारयुक्त जल से धोना) का उल्लेख है । पल्पूलन का तात्पर्य क्षारयुक्त जल या ऐसे जल से है, जिसमें कोई मैल काटने वाला पदार्थ मिला हो । कौशिक सूत्र (67) में इसका उल्लेख चमड़ा धोने तथा शांखायन श्रौत सूक्त (3 8 12) में क्षारयुक्त जल से वस्त्र धोने से हैं । यजुवेद (30 12) में–

मे ध्यय वासः पल्पली प्रकामाय रजयित्रीम् ।

में पल्पूली का तात्पर्य कपड़ा धोने वाले धोबी से है ।

वेद ज्ञान के भंडार हैं । जितना भी मंथन किया जाय उतने ही ज्ञान रूपी रत्न प्रकट होंगे । उपरलिखित विवरण इस परिकल्पना को प्रकट करने का लघु प्रयास मात्र है कि वैदिक साहित्य में रसायनशास्त्र संबंधी जो ज्ञान समाहित है वह तत्कालीन साहित्य में अन्यत्र मिलना दुर्लभ हैं और यह वैदिक विज्ञान परवर्ती विकास में एक प्रमुख आधार स्तम्भ के रूप में उपयोगी सिद्ध हुआ है ।

● ●

लेखकों से निवेदन

- 'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें । इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा ।
- लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी ।
- अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।

"सूर्य सिद्धान्त और-उसका स्वरुप"

□ प्रेम शंकर दूबे

भारतीय गणित संसार की सर्वोपरि एवं प्रथम वह भाषा थी जिसके द्वारा मनीषियों ने अपने विषय अनुभवों ठोस् एवं यान्त्रिक रूप प्रदान किया था। अंकगणित एवं बीजगणित का आविष्कार भारत में ही हुआ और बाद में इसका प्रसार ईरान, अरब इत्यादि में होता हुआ यूरोप को पहुँचा।

मनुष्य ने अपने भावों को सूक्ष्मातिसूक्ष्म जगत से लेकर वृहत्तर ब्रह्माण्ड तक को ठोस रूप से समझने एवं व्यक्त करने के लिए गणित की भाषा का वरण किया है। आज तो इसका उपयोग जीवन के हरक्षेत्र में किया जा जा रहा है। मृत्तिक विज्ञान से लेकर जीव विज्ञान एवं भौतिक विज्ञान तक इसकी पहुँच हो गयी है। जैसे-जैसे विकास की शृंखला बढ़ रही है हमें एक केन्द्रीय विचार की आवश्यकता प्रतीत होती जा रही है और यहाँतक कि जुए में पासा चित पड़ेगा कि पट इसकी सम्भावना की गणना के लिए फर्मेट एवं पैस्कल ने सांख्यकी का निर्माण कर डाला।

इसी विकासशील एवं चिरनवीन साहित्य द्वारा मनुष्य अपने इर्द-गिर्द स्थित नक्षत्रों, ग्रहों एवं पिण्डों के विभिन्न प्रकार के अध्ययन में भी किया। आज इसे ज्योतिष शास्त्र के नाम से जाना जाता है। किन्तु दुर्भाग्यवश पेटू एवं भुख्खड़ों ने हाथ देखकर ज्योतिष के द्वारा मानव जीवन के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट कर राजाश्रयत एवं सड़क की वस्तु इस प्रकार बना डाली कि जनसाधारण के मस्तिष्क में ज्योतिष एवं ज्योतिषी का अर्थ हाथ देखकर पेट पालने वाला होता है।

दो वाक्य भारत के दुर्भाग्य के विषय में कहना आवश्यक है। प्रथम यह कि यहाँ के पंडितों (मेरे पंडित शब्द का अर्थ चन्दन पोत कर घूमने वाला नहीबल्कि शास्त्रज्ञ से है) में ईर्ष्या इस हद तक थी की वे एक दूसरे को आँख से देखना भी न चाहते थे। दूसरी बात यहाँ कि विलासिता एवं अकर्मण्यता भी थी, जिसके कारण विद्रोहियों के आक्रमण हुए और हमारी अमूल्य विधियाँ विलुप्त हो गयी। गणित के बहुत से ग्रन्थ इसी प्रकार यहाँ से लुप्त हुए और पश्चिम में पहुचे।

सूर्यसिद्धान्त सम्भवतः वह प्रथम ग्रंथ है जो स्वयं में, जिस समय रचित हुआ, पूर्ण एवं एक अद्वितीय कृति के रूप में स्वीकृत हुआ। इसके विभिन्न अध्यायों में ग्रहों नक्षत्रों उनकी दूरियों; वेग, परिभ्रमण काल, उनके चन्द्रमाओं, विभिन्न कैलाओं के सम्बन्ध में सूचनायें हैं।

महामहोपाध्याय पं सुधाकर द्विवेदी ने इस पर जो टीका लिखी उसे सुधावर्षिणी के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः यही एक ऐसी प्रामाणिक टीका है जिसमें यदि किसी स्थल पर विभिन्नतायें ग्रथियाँ है तो उसे अपने ढंग से अपनी विद्वात्ता दिखाने के लिए असंगत बातें न रखी गयी हैं। इन ग्रंथों के अवलोकन एवं कुछ कलनों के उपरान्त कुछ विभिन्नताएँ उत्पन्न हुई हैं। आज कीं विकसित गणित के द्वारा निकाले गये मान इन ग्रंथों के आधार पर प्राप्त मानों से भिन्न हैं। इस दिशा में कुछ विचार करके थोड़े सापेक्ष्यवाद एवं कोणीय आवेग के एवं गतिविज्ञान के अतिविकसित सूत्रों का समावेश सम्भवतः नहीं है और यदि हैं तो वह स्पष्ट नहीं है। अतः अब आवश्यकता इस

बात की है इस दिशा में कुछ ठोस कार्य किये जायँ और इस बात की पुष्टि की जाय कि वस्तुतः सापेक्ष्यवाद और गतिविज्ञान के आधारों का पूर्ण समावेश सूर्यसिद्धान्त में है अथवा नहीं, यदि है, तो किस रूप मे है, और नहीं तो क्यों नहीं है, और क्या इसका समावेश कर सूर्य सिद्धान्त को आज की गणित के स्तर पर स्थपित किया जा सकता है ?

उदाहरणार्थं चन्द्रमा की उत्पत्ति भारतीय परम्परानुसा पृथ्वी से हुई है जबकि आधुनिक अपोलो एवं अन्य राकेट उड़ानों से प्राप्त आकड़ों के अनुसार ऐसा विश्वास किया जा रहा है कि इसकी उत्पत्ति सौर्यमण्डल से बाहर हुई। यद्यपि इस सिद्धान्त की पुष्टि तब तक नहीं हो सकती जब तक कि मनुष्य कम से कम मंगल ग्रह पर जाये और उसके चन्द्रमाओं पर और इसी प्रकार अन्य ग्रहों और उनके चन्द्रमाओं पर परीक्षण किए जायें और यदि यह स्थापित किया जाय कि अन्य ग्रहों और उनके चन्द्रमाओं में कोई विशेष भिन्नता नहीं है, केवल पृथ्वी और चन्द्रमा के ही बारे में ऐसी विचित्रता देखी जा रही है तो बात कुछ वजन की लगेगी। इसके बाद भी जिन तथ्यों के आधार पर पश्चिम वैज्ञानिक चन्द्रमा का उद्गम पृथ्वी से बाहर खोजने की चेष्टा कर रहें हैं उसके सम्बन्ध में भी कुछ विचार किया जा सकता है।

'नासा' के वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी के उपरी पपड़ी एवं मैन्टिल वाले हिस्से का घनत्व 2·5 है और दूरी पृथ्वी का 5.5 है और पृथ्वी के उपरी सतह पर हल्के तत्व उपलब्ध होते हैं और तीसरी बात यह है कि पृथ्वी पर कोई गड्ढा इतना बड़ा नहीं है जो चन्द्रमा के क्षेत्रफल के बराबर हो और चौथी बात यह है कि आधुनिक भौतिकी के रेडियो डेटिंग विधि के अनुसार चन्द्रमा की आयु पृथ्वी की आयु से अधिक है। जबकि चन्द्रमा का घनत्व 3.3 है, वहाँ भारी तत्व उपलब्ध है तो किस प्रकार चन्द्रमा का उदगम स्थल पृथ्वी का होना उचित है ? इस समस्या पर विचार गम्भीरता एवं सभी प्रकार के पक्षपातों को दूर रख कर करना है। इस सम्बन्ध में एक बात विचारणीय यहहै कि जो ब्रह्माण्ड किरणें सूर्य में विभिन्न नक्षत्रों एवं नीहारिकाओं में उत्पन्न हो रही हैं वे जब पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में प्रवेश करती हैं तो कभी तो उनको शक्ति एवं वेग वृद्धि और कभी ह्रास होता है, जिसका एक मात्रा कारण पृथ्वी की तीव्र चुम्बकीय शक्ति है। यद्यपि इस क्षेत्र के प्रभाव एवं तीव्रता के डाइवरजेन्स समीकरण उपलब्ध है और कुछ हद तक इसके प्रभाव को ब्रह्माण्ड किरणें की तीव्रता दिशा इत्यादि के ज्ञान के लिए उपयुक्त भी किया जा सकता है किन्तु यह बहुत विश्वसनीय नहीं है और हम उनकी प्रारम्भिक शक्ति के सम्बन्ध में पूरी प्रकार नही जान पाते। जो कुछ भी ये कितनी शक्ति शाली किरणें हैं इसका अन्दाज इसी बात से लगता है कि हजारों मीटर गहरे खदानों में भी परीक्षण करने पर भी ये पायी जाती है और इसी प्रकार समुद्र गर्भ में भी पायी जाती हैं। इनकी तीव्र भेदन शक्ति का मुकाबला पृथ्वी के बड़े से बड़े त्वरितक भी नहीं उत्पन्नकर पा रहे हैं। अतः चन्द्रमा जिस पर कई वायुमण्डल एवं बहुत क्षीण चुम्बकीय क्षेत्र है इनकी पूरी शक्ति से प्रहारित हो रहा है। सूर्य की भीषण ज्वालाएँ एवं गैस के बादल भी चन्द्रमा के तल पर खुला प्रहार करते है और अपने अवशेष छोड़ जाते हैं। इस प्रकार चन्द्रमा पर के हल्के तत्व भीषण शक्तियों का शोशण करके एवं सूर्य की ज्वालाओं इत्यादि से ले आये गयें अवशेषों के कारण भारी तत्वों में परिणत हो रहे हैं और इनकी आयु भी चन्द्रमा ही नही वरन उन पिण्डों की है जहाँ से वे आये हैं। इन्हीं कारणों से चन्द्रमा का घनत्व ही भी बढ़ गया है।

हाल के ही कान्टिनेन्टल ड्रिफ़्ट के सिद्धान्तों को पुष्ट करने वाला जो परीक्षण इन चन्द्र यात्राओं में हुआ वह तीसरी समस्या का हल देती है। वस्तुतः प्रारम्भ में समस्त वायुमण्डल एक था जिसे गोन्डवाना लैण्ड कहते थे किन्तु बाद में भयंकर भुगर्भिक शक्तियों एवं क्रियाओं के कारण वायुमण्डल में दरारें पड़ गयीं और इसके विभिन्न अंश सरकने लगे और आज भी ये दूर हटते जा रहे हैं। अतः प्रारम्भ में जिस स्थान से चन्द्रमा निकला वह महा-द्वीपों के सरकने के कारण छोटा हो गया और इस समय

कोई इतना बड़ा गडढ़ा नहीं मिलता जिसके क्षेत्रफल की तुलना चन्द्रमा के क्षेत्रफल से की जाय।

इन तथ्यों के प्रकाश में यह प्रत्यक्ष हो जाता हैं कि चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से होना असम्भव नहीं हैं और इसको पूरी प्रकार सिद्ध करने के लिए किंचित एकाग्र निरीक्षण की आवश्यकता है।

इसी प्रकार की अन्य समस्यायें हैं जिनके सम्बन्ध में कुछ इंगित सूर्य सिद्धान्त से प्राप्त होते है। उदाहरणार्थ चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है जो न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के अनुसार यह प्रतिपादित करता है कि चन्द्रमा का वजन बढ़ रहा है। इसके लिए शक्तिशाली लेसर पुञ्जों से कुछ प्रयोग भी किए जा रहे हैं। इसी प्रकार पृथ्वी और अन्य ग्रहों से सम्बन्धित परिवर्तनशील घटकों में हुए परिवर्तनों के समावेश की आवश्यकता है किन्तु प्रश्न यह है कि पंडितों को इसके लिए सर्वप्रथम स्वयं को गतिविज्ञान के सूक्ष्म सिद्धान्तों एवं सापेक्ष्यवाद की आधार भूमि में उनका स्वरुप निर्धारित कैसे होता है उसका सम्यक परिचय एवं प्रयोग प्राप्त करना होगा और तब इनका समावेश सूर्यसिद्धान्त मे करने पर इस ग्रन्थ की स्थिति अपने जगह पुनः स्थापित हो सकेगी।

● ●

● "विज्ञान" आपकी पत्रिका है। इसके लिये तन, मन, धन से अपना योग दें।

प्राचीन भारत में गणित का विकास

□ ओम प्रकाश दुबे

भारत में धर्म, अध्यात्म और कर्त्तव्य की प्रधानता रही है। यहाँ लौकिक आकांक्षा और सुख-विलास का कोई मुख्य स्थान नहीं रहा है। भारत में त्याग और उत्सर्ग को ही सुख माना जाता रहा है। फिर भी भारत में अनेकानेक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार हुये हैं। गणित शास्त्र में तो भारत ने प्रशंसनीय योगदान दिया है। गणित के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में भी पारंगत ऋषियों ने अनेक प्रकार के यन्त्रों का भी आविष्कार किया था। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि भारत प्राचीन काल से ही अमूल्य सम्पत्ति का मालिक है। छान्दोग्योपनिषद के एक कथानक के आधार पर हमारी धारणा का पुष्टिकरण हो जाता है। एक बार नारद जी, सनत्कुमार ऋषि के यहाँ गये और उनसे विद्या पढ़ाने की प्रार्थना की। सनत्कुमार जी नारद जी को क्या पढ़ायें, इसका निर्णय करने के लिये, उन्होंने नारद जी से पहले से ही पढे हुये विषयों के बारे में पूछा। नारद जी ने अनेक विषयों के साथ नक्षत्र-विद्या (ज्योतिष) और राशि-विद्या (अंकगणित) का नाम पढ़े हुये विषयों को सूची में गिनाया।

गणित शब्द से तात्पर्त है 'वह शास्त्र जिसमें गणना का प्रयोग हो'। भारत के लिये यह शब्द बहुत ही प्राचीन है और वैदिक साहित्य में प्रचुरता से मिलता है। वेदांग, ज्योतिष, एवं शास्त्रों में गणित को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वत वेदांगशास्याणां गणितं मूर्धानिस्थितम्॥

(जिस प्रकार मयूरों की शिखाएँ एवं नागों की मणियाँ ऊंचे स्थान पर होती हैं, ठीक उसी प्रकार वेदांग-शास्त्रों में गणित का स्थान सबसे ऊंचा है)

प्राचीन बौद्ध साहित्य में तीन प्रकार के गणित का उल्लेख मिलता है। (1) मुद्रा (उंगलियों का गणित) (2) गणना (मौखिक गणित) (3) संख्यान (उच्च-गणित)।

गणित में आने वाली क्रियाओं को करने के लिये लेखन सामग्री का प्रयोग अनिवार्य थे। ये क्रियाएँ या तो पट्टी पर की जाती थीं या धूलि पर। इस प्रकार गणित के अर्थ में पाटी गणित अथवा धूलि कर्म शब्दों का प्रयोग आयाहै और वह भाग जो अज्ञात राशि से सम्बन्ध रखता था, उसे बीज गणित कहा जाता था। श्रीवराचार्य जी ने पाटी गणित और बीज गणित को दो पृथक् विषय माना है।

महाभारत में ज्योतिष

महाभारत ग्रन्थ में कई स्थानों पर ज्योतिष संबंधी तथ्यों का उल्लेख है, जिससे पता चलता है कि तत्कालीन लोगों को ज्योतिष का कितना ज्ञान था। किसी वर्ष में 13 महीने (अधिमास के साथ) होते हैं। यह उस समय भी प्रचलित था। जुआ में हारने पर पाण्डवों को बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास हुआ था। इस अवधि के लगभग अन्त में अर्जुन को अपने आश्रय दाता की सहायता के लिये दुर्योधन से लड़ना पड़ा। जब दुर्योधन ने अर्जुन को पहचान लिया तो उनमें इस बात का मतभेद हो गया कि अभी 13 वर्ष बीते या नहीं। तब वे भीष्म के पास गये और अपने मतभेद कहे। इस पर भीष्म ने दुर्योधन से कहा :

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषाम् च व्यतिक्रमात् ।
पंचमें पंचमे वर्षे द्वौ मासामुपजायतः ॥

(समय के बीतने तथा नक्षत्रों के हटने से प्रति पांचवें वर्ष दो अधिमास होते हैं) अतः मेरी समझ में तो इनको तेरह वर्ष से 5 माह और 12 दिन अधिक हो गये। महाभारत में पक्ष (15 दिन का) का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। वे यह जानते थे कि ग्रहण अमावस्या या पूर्णमासी को ही लगते हैं। महाभारत युद्ध के प्रारम्भ में 13 दिन के अंतर पर दो ग्रहण पड़े थे।

लेखन क्रिया :

सामान्य रूप से लोगों का विचार है कि अंक संकेतों का आविष्कार लेखन क्रिया के आरम्भ होने के कुछ समय बाद हुआ। मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के फलस्वरूप ऐसे लेख और मोहरें प्रकाश में आयीं हैं, जो लगभग 3000 ई० पू० की हैं। उनमें संख्याओं को खड़ी या तिरछी पाइयों से प्रगट किया गया है। जैसे—

I II III

वास्तव में, प्राचीन भारत में संख्याओं को निम्न-लिखित रूप में व्यक्त किया जाता था, जिसका संशोधित रूप आज हम लोग प्रयोग करते हैं।
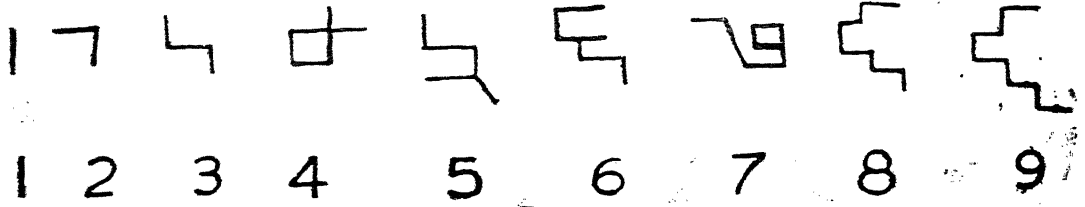
बाल्मीकि रामयण में 11,000 वर्ष के लिये "दश-वर्षसहस्त्राणि दस वर्ष शतानि" आया है।

शब्दांक पद्धति

प्राचीन ग्रन्थों में—0 के लिये ख, 1 के लिये आदि, 2 के लिये नेत्र, 3 के लिये राम, 4 के लिये वेद, 5 के लिये वाण, 6 के लिये रस, 7 के लिये मुनि, 8 के लिये अष्ट, 9 के लिये ग्रह शब्द प्रयोग किये गये हैं।

अक्षर संकेत

अक्षर संकेत की पद्धति का आविष्कार आर्यभट (176 ई०) ने कहा था। आर्यभट ने वर्ग अक्षरों को निम्नलिखित ढंग से संख्याओं को सूचित करने के लिये किया था।

क वर्ग	च वर्ग	ट वर्ग	त वर्ग	प वर्ग		
क=1	च=6	ट=11	त=16	प=21	य=30	ष=80
ख=2	छ=7	ठ=12	थ=17	फ=22	र=40	स=90
ग=3	ज=8	ड=13	द=18	ब=23	ल=50	ह=100
घ=4	झ=9	ढ=14	ध=19	भ=24	व=60	
ङ=5	ञ=10	ण=15	न=20	म=25	श=70	

तथा

अ=1, इ=100, उ=100^2, ऋ=100^3, लृ=100^4, ए=100^5, ऐ=100^6, ओ=100^7, औ=100^8

इस रीति के अनुसार 'यि' का अर्थ 3,000 एवं 'मि' का अर्थ 2500 होता है। इसी प्रकार

रव्युघृ=(ख+य) उ+घ×ऋ

$=(2+30)\ 100^2+4\times100^3$

$=32\times100^2+4\times100^3$

$=4320000$

तथा, चयगियिङ्शुछ्लृ=च+य+गि+यि+ङु+शु+छ्लृ

$=6+30+300+3000+50000+700000+57000000$

$=57753336$

ङिशिवृरणलृख्यु=ङि+शि+वु+रणलृ+ख्यु

$=500+7000+230000+1500000000+82000000$

$=1582237500$

चिन्ह

संस्कृत में जोड़ने घटाने आदि के लिये कोई चिह्न नहीं मिलते। बीज गणित में ऋण संख्या दिखाने के लिये भास्कर ऋषि ने संख्या के ऊपर बिन्दु लगाने की प्रथा को अपनाया है, यथा : $\dot{2}= -2$ और मूल के लिये करणी का क शब्द प्रयोग किया है, यथा : क$3=\sqrt{3}$। + चिन्ह के विषय में बहुत से लोगों का मत है कि दो आदमियों के बीच में एक आदमी खड़ा होकर एक एक हाथ से दोनों को अपने पास मिलाने के लियेजिस तरह से बुलाता है उसी की शक्ल के आधार पर+बना। सम्भवतः बिन्दु के बड़े रूप से'—'बना और'—'को काटकर'+'बनाया गया।

भिन्न

ऋगवेद में अर्द्ध और त्रिपाद $(\frac{3}{4})$ का प्रयोग आया है। मैत्रायणी संहिता में $\frac{1}{16}$ को कला, $\frac{1}{12}$ को कुष्ट, $\frac{1}{8}$ को सफ तथा $\frac{1}{4}$ को पाद कहा गया है। $\frac{3}{8}$ को त्रिअष्टम एवं $\frac{2}{7}$ को द्विसप्तम कहा गया है। माक्षाली हस्तप्रति में $\frac{3}{8}$ को त्रयष्ट और $3\frac{3}{8}$ को भयास्त्रयष्ट लिखा गया है। प्राचीन काल में भिन्नों को निम्न प्रकार से लिखते थे।

क $\div\frac{\text{ख}}{\text{ग}}$ को $\begin{array}{|c|}\text{क}\\ \hline \text{ख}\\ \text{ग}\end{array}$; $\frac{\text{क}}{\text{ख}}\div\frac{\text{ग}}{\text{घ}}$ को $\begin{array}{|c|}\text{क}\\ \text{ख}\\ \hline \text{ग}\\ \text{घ}\end{array}$

गुणन क्रिया

प्राचीन काल में निम्नलिखित भाँति से गुणा करते थे। 895 को 37 से गुणा करना है।

उत्तर 33115।

वेदों में अनन्त संख्या

वेद में सुख की परिभाषा करते हुये लिखा गया है कि

$$\text{सुख}=\frac{\text{स्वामित्व}}{\text{इच्छायें}}$$

इसका भौतिक रूप में अर्थ है, यदि स्वामित्व बढ़ेगा तो सुख भी बढ़ेगा किन्तु आध्यात्मिक रूप से इसका अर्थ है यदि इच्छायें कम होगीं तो सुख अधिक होगा और यदि इच्छायें न्यूनतम होगीं, तो सुख अपार होगा। किन्तु इस धार्मिक व्याख्या में गणित का एक महान तथ्य निहित है। यदि इच्छायें $\to 0$ तो सुख $\to\infty$ अर्थात् सुख अपार होगा। जब किसी भिन्न का अर्थ शून्य होता है तो वह अनन्त हो जाता है। अतः इसके आधार पर यह निश्चित

हो जाता है कि हमारे ऋषियों को अनन्त (Infinity) का ज्ञान था।

अन्य संख्याएँ

जिस समय रोम में 10^3 से उपर की, यूनान में 10^4 से उपर की संख्याओं का नामकरण नहीं किया जा सका था, उस समय में वेदांती, जैन और बौद्ध दार्शनिकों में 10^{140} तक की संख्याओं का नामकरण कर लिया था और साथ ही गणना संबंधी अनन्त की ठीक परिभाषा निकालने में सफल हुये थे। यूरोपीय वैज्ञानिक आर्कमिदीज ने समुद्र तट की रेती के कणों की संख्या का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया था, किन्तु उसके पास बड़ी संख्याओं को व्यक्त करने के उपयुक्त संकेत नहीं थे। जब कि भारतीय दार्शनिकों ने बहुत बड़ी संख्याओं का प्रयोग किया है, विशेष कर जैनियों ने संसार भर के प्राणियों, काल, क्षणों एवं प्रदेशों आदि की संख्याओं का निरुपण करने का प्रयत्न किया है। भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में निम्न संख्याओं का प्रयोग आया है।

एक	1
दस	10
सत	100
सहस	1000
दस सहस	10000
सत सहस	100000
दस सत सहस	1000000
कोटि	10000000
पकोटि	$(10000000)^2$
कोटि पकोटि	$(10000000)^3$
नहुन	$(10000000)^4$
नित्रहुत	$(10000000)^5$
अक्षोहिणी	$(10000000)^6$
विन्दु	$(10000000)^7$
अर्ब्बुद	$(10000000)^8$
निर्व्बुद	$(10000000)^9$
अहह	$(10000000)^{10}$
अवव	$(10000000)^{11}$
अटट	$(10000000)^{12}$
सौगंधिक	$(10000000)^{13}$
उप्पल	$(10000000)^{14}$
कुमुद	$(10000000)^{15}$
पुंडरीक	$(10000000)^{16}$
पद्म	$(10000000)^{17}$
कथान	$(10000000)^{18}$
महाकथान	$(10000000)^{19}$
असंख्येम	$(10000000)^{20}$

अन्तिम संख्या का नाम असंख्येय रखा, जिससे प्रगट होता है कि इसके बाद की संख्याओं को गणनातीत समझा था। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक संख्यातालिका जैनियों की है।

● ●

● अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।

● हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।

शुक्र : एक परिचय*

□ प्रदीप कुमार मेहता

शुक्र की ओर संयुक्त राष्ट्र अमरीका से सोवियत संघ अधिक सक्रिय है। शुक्र पर उसे स्वचलित मानवरहित अन्तरिक्ष यान उतारने में भी सफलता मिल गयी है जबकि मंगल की ओर अधिक सक्रिय अमरीका का मंगल की परिक्रमा करने वाला अतिआधुनिक मेरिनर-8 दुर्घटना ग्रस्त होकर अटलांटिक महासागर में ही गिर पड़ा है। स्पष्ट है, टैकनोलोजी की दृष्टि से रूस अधिक विकसित है। सोवियत संघ के वेनेस 3 को ही शुक्र धरातल छूने का सौभाग्य मिल गया। वीनस-3 1 मार्च 1966 को शुक्र धरातल पर उतरा था फिर भी हमारी शुक्र सबंधित जानकारी काफी सीमित ही है।

शुक्र एक ऐसा ग्रह है जिसके अध्ययन हेतु किये गये अधिकतर प्रयास असफल रहे। अब तक ज्ञात जानकारी के अनुसार शुक्र ग्रह का व्यास 12,000 किलोमीटर है। यह 35 किलोमीटर प्रति सैकन्ड की गति से बुध के बीच की कक्षा में सुर्य की परिक्रमा करता रहता है। इसकी पृथ्वी से अधिकतम दूरी 1,48,800,000 किलोमीटर व न्यूनतम दूरी 4,16,00,000 किलोमीटर है। यह सूर्य को छोड़ हमारे नवग्रहीय सौर मंडल का सबसे अधिक चमकीला ग्रह है। यह ग्रह सूर्य के काफी निकट है या दूसरे शब्दों में इसे पृथ्वी की तुलना में दुगना सुर्य का प्रकाश व उष्मा मिलती है यही कारण है। कि यह केवल संध्या को ही देखा जा सकता है। प्रातः सुर्योदय के समय भी यह दृष्टि गोचर होता है इसकी भी चन्द्रमा की तरह कलाएं होती हैं।

यह घड़ी की दिशा में परिक्रमा करता है इसके अपनी धुरी के चारों ओर चक्कर काटने के प्रश्न पर वैज्ञानिकों में तीव्र मतभेद हैं। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार इसे एक 'धुरी परिक्रमा में पृथ्वी के 250 दिनों के समकक्ष समय लगता है परन्तु कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार यह समय 224·7 पृथ्वी दिनों के समकक्ष है। ऐसा भी अनुमान लगाया गया है कि शुक्र ग्रह का एक दिन पृथ्वी के 118 दिनों के बराबर है। इसका ताप विभिन्न स्थानों पर अलग अलग होता है जहाँ सुर्य का प्रकाश सीधा पड़ता है वहाँ का ताप अत्यधिक व जहाँ अंधेरा सा होता है वहाँ का ताप न्यूनतम होता है। शुक्र तल के धरातल का तापमान 20° c से 475° c (900° F) तक परिवर्तनशील है वहाँ का वायु मंडल वीनस-7 के अनुसार, काफी सघन हैं। शुक्र का वायुमंडलीय दबाव पृथ्वी के दबाव का 90 गुना है अर्थात शुक्र धरातल का वायुमंडलीय दबाव 6840 मिलीमीटर पारे के कालम के समकक्ष है। स्मरणीय है पृथ्वी पर वायुमंडलीय दबाव समुद तल पर 76 मी० मी० पारे के कालम के समकक्ष है। अब तक प्राप्त सूचनाओं के अनुसार शुक्र की सतह एकदम लाल सुर्ख, दहकते हुए अगांरों की तरह है इसीलिये वीनस-4 के सफल शुक्र अवतरण पर टिप्पणी करते हुए सर बरनार्ड लावेल ने कहा था 'मेरा विचार है कि कभी भी इलेक्ट्रोनिक संयत्र इतना ऊंचा ताप स्वीकार नहीं कर सकता कि शुक्र धरातल पर अवतरण के पश्चात भी सुचारू रूप से कार्य करता रहे। संभवतः उसके द्वारा प्रेषित सूचनाएं उस समय की है जब यान 15 मील गहरे शुक्र के वातावरण में उतर रहा होगा।

शुक्र ग्रह को बांधने वाले बादलों की मोटाय 24 किलोमीटर है। ये लगभग 72 किलोमीटर से 96 किलो-

*विस्तृत अप्रकाशित निबंध 'अन्तरिक्ष और मानव' से उद्धरित।

मीटर के वायुमंडल के आस पास पाये जाते हैं। इनसे होकर बहुत कम प्रकाश बाहर आ सकता है। स्मरणीय है पृथ्वी के कुछ मील उपर ही वायुमंडल बहुत हल्का (नहीं के बराबर) हो जाता है। यहाँ का वायुमंडल कार्बन डाई आक्साइड व नाइट्रोजन से निर्मित है। यहाँ आक्सीजन बिल्कुल नहीं हैं। उच्च ताप के कारण जल-वाष्प भी नहीं हैं।

अनेक प्रयोगों से यह भी संकेत मिलता है कि शुक्र ग्रह के चारों ओर 35,000 किलोमीटर तक कोई चुम्बकीय क्षेत्र नहीं हैं। शुक्र ग्रह का अपना कोई चन्द्रमा भी नहीं है शुक्र ग्रह की संहति पृथ्वी से लगभग दुगनी है। यहाँ का घनत्व भी कम है। यह जब सुर्य के सामने से निकलता है तो काले धब्बे सा दिखायी देता है। सूर्य के सामने से इसे गुजरने में लगभग 8 घंटे लगते हैं। इस प्रक्रिया को 'ट्रांजिट' कहते हैं। शुक्र के अगले ट्रांजिट 8 जून 2004 व 12 जून 2012 जून को होयेंगे।

इस ग्रह के 900° F के से उच्च तापमान का कारण यह है कि इस ग्रह के वादल सुर्य की किरणों की अवरक्त रश्मियों को, जो सतह से कार्बन डाई आक्साइड के सहारे ऊपर उठती है, रोक लेती है। इसका दूसरा कारण यह है कि यह सूर्य से काफी अधिक निकट है। पृथ्वी से सूर्य की दूरी, शुक्र की सूर्य की दूरी से लगभग दुगनी है यहाँ के वादल गहरे सुनहरे-पीले है क्योंकि ये 70% प्रकाश परावर्तित कर देते हैं।

क्या शुक्र पर जीवन के आसार हैं ? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। वस्तुतः जीवन की उपस्थिति का प्रश्न किसी भी नये तारे, ग्रह, उपग्रह अथवा तारमंडल की सक्रिय खोज करने से पहले मानव के मस्तिष्क में कुलबुलाने लगता है। शुक्र पर जीवन की संभावना क्षीण है, परन्तु नगन्य नहीं। इतने अधिक ताप, अत्यधिक कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा, 10 गुना सघन वायुमंडल, आक्सीजन व पानी का अभाव आदि इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि शुक्र पर 'पृथ्वी जैसा जीवन' असंभव है। किन्तु क्या नाइट्रोजन व कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा, अत्यधिक ताप व दाव सहने वाले तथा आक्सीजन व पानी न चाहने वाले जीवन की उत्तपत्ति संभव नहीं !

● ●

प्लाज्मा-भौतिकी तथा नियंत्रित तापनाभिकीय संश्लेषण

□ अकादमीशियन लेव आर्तिमोविच

प्लाज्मा भौतिकी तथा नियंत्रित तापनाभिकीय संश्लेषण पर एक सप्ताह का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 23 जून, 1971 को मादिसन, अमरीका में समाप्त हुआ। इस मंच का आयोजन संयुक्त राष्ट्र की अन्तर्राष्ट्रीय अणुऊर्जा ऐजेंसी ने किया था। यह लेख आकादमीशियन लेव आर्तिमोविच से भेंट वार्ता पर आधारित है।

संसार के विभिन्न देशों में अनेक वैज्ञानिक नियंत्रित तापनाभिकीय संश्लेषण तथा उच्च तापांश प्लाज्मा भौतिकी की समस्याओं के समाधान में रत हैं। इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्लाज्मा भौतिकी आधुनिक भौतिक विज्ञान का एक प्रमुख क्षेत्र है। शुद्ध वैज्ञानिक दिलचस्पी के अतिरिक्त इस क्षेत्र ने व्यावहारिक उपयोग की कुछ बहुत आशाजनक संभावनाएं प्रकट की है क्योंकि उच्च तापांश प्लाज्मा भौतिकी नियंत्रित नाभिकीय संश्लेषण के विकास का आधार हैं।

अणुऊर्जा के इस्तेमाल के बिना निरन्तर विकास करती हुई पृथ्वी की मानवसभ्यता का चित्र पूरा होना संभव नहीं है। क्योंकि खनिज ईंधन के स्रोतों की अपनी सीमाएं है। इसके अतिरिक्त ऐसे ईंधन के जलने से शहरों में वातावरण के दूषित होने की समस्या बढ़ रही है।

ड्यूटेरियम

कुछ समय से ऊर्जा के नाभिकीय स्रोतों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है और इसके लिए भारी तत्वों का विखंडन किया जा रहा है। पृथ्वी पर यूरेनियम ईंधन के भण्डार कम से कम एक सहस्त्राब्दि के लिए पर्याप्त होंगे। फिर भी करीब दो दशकों से कई देश अणुऊर्जा के किसी नये स्रोत की खोज के लिए अनुसंधान कर रहे हैं। इस उद्देश्य के लिए हल्के तत्वों के नाभिकीय संश्लेषण का प्रयोग किया जायेगा, जैसे हाइड्रोजन के भारी समस्थानिक। इस समस्या का समाधान हो जाने पर मनुष्य के पास ऊर्जा का अत्यधिक बल्कि व्यवहारतः अक्षय भण्डार होगा। बात यह है कि नया नाभिकीय ईंधन ड्यूटेरियम सीधे पानी से मिल सकता है।

समुद्र के पानी से ड्यूटेरियम प्राप्त करने की उत्पादन लागत कोयले की उत्पादन लागत से कम है। इन तापनाभिकीय रिएक्टरों के आधारभूत उत्पादन रेडियोधर्मी नहीं हैं और बिल्कुल हानि रहित है जिसका अर्थ यह हुआ कि इस उत्पादन में फालतू रेडियोधर्मी हिस्से को हटाने और दबाने की कोई समस्या नहीं है। इसके अलावा इन रिएक्टरों के क्षेत्र में ईंधन की अपेक्षाकृत कम मात्रा रहेगी ताकि नाभिकीय बिस्फोट का खतरा न रहे।

अतः, नियंत्रित तापनाभिकीय संश्लेषण का उद्देश्य ऊर्जा के एक नये महत्वपूर्ण स्रोत में निष्णात होना है जो सचमुच अक्षय हो, आधुनिक आणविक रिएक्टरों से ज्यादा स्वच्छ और सुरक्षित हो तथा आर्थिक दृष्टि से सस्ता हो।

सीमाचिन्ह

सोवियत संघ, अमरीका और ब्रिटेन में आरम्भिक तापनाभिकीय अनुसंधान अत्यन्त गोपनीय था। इस क्षेत्र में सोवियत अनुसंधान की बात खुलेआम कहने वाला पहला व्यक्ति इगोर कुर्चातोव था जिसने 1956 में सोवियत सरकार की प्रेरणा से ऐसा किया। तापनाभिकीय

अनुसंधान पर पहला व्यापक विचार-विमर्श जिनेवा में 1958 में अणुऊर्जा के शांतिमय प्रयोगों पर हुए सम्मेलन में हुआ।

असल में इस वैज्ञानिक जानकारी को 'विचारों का न' कहा जा सकता है। इसके कुछ अर्सा बाद से ही अन्तराष्ट्रीय अणु ऊर्जा एजेंसी ने यह निर्णय ले लिया कि तीन या चार वर्षों में एक बार नियंत्रित तापनाभिकीय संश्लेषण पर विशेष अधिवेशन बुलाये जायेंगे। पहला सम्मेलन 1961 में आस्ट्रिया के साल्जबर्ग नगर में बुलाया गया। इस सम्मेलन में सबसे महत्वपूर्ण रिपोर्ट सोवियत वैज्ञानिकों का एक प्रपत्र था। यह संयुक्त क्षे ों में खुले चुम्बकीय जाल में ऐसे उच्च तापीय स्थिर प्लाज्मा के बारे में था जिसका घनत्व बहुत अधिक न हो।

दूसरा सम्मेलन 1965 में ब्रिटेन के तापनाभिकीय केलहैम प्रयोगशाला में हुआ। इनके परिणामों के उपसंहार रूप में हमें स्वीकार कर लेना चाहिए कि 15 वर्षों के घोर अनुसंधान के बाद केवल उसका पहला चरण ही पूरा हो सका है और हम केवल 'प्रवेशिका' की परीक्षा ही सफलतापूर्वक पास कर सके हैं।

इसके बाद के सम्मेलन का आयोजन 1968 में सोवियत नगर नोवोसिबर्स्क में किया गया। यहाँ सोवियत वैज्ञानिकों ने पहली बार बंद तोकामैक जाल में प्लाज्मा की स्थिरता सम्बन्धी क्षमता पर विचार प्रकट किया। मादिसन का सम्मेलन इस तरह इस श्रृंखला का चौथा सम्मेलन है।

हर साल सम्मेलन के काम में भाग लेने वाले देशों की संख्या बढ़ती जाती है तथा इस में प्रपत्रों एवं भाग लेने वालों की संख्या भी बराबर बढ़ रही है। हर सम्मेलन अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ता एक सीमाचिन्ह है। अनौपचारिक वार्ता में बिचारों का आदान-प्रदान तथा विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों का सहयोग निश्चय ही इस युग की सबसे कठिन वैज्ञानिक व तकनीकी समस्या—नियंत्रित तापनाभिकीय संश्लेषण के समाधान, में प्रगति लायेगा।

सोवियत संघ का सहयोग

सोवियत संघ ने मादिसन सम्मेलन में 45 प्रपत्र पेश किये हैं। कई और प्रत्याशी भी थे पर सर्वश्रेष्ठ कृतियों के लिए समुचित चुनाव करना आवश्यक था। सोवियत प्रपत्रों को इन सम्मेलनों में सदा उनकी योग्यतानुरूप उचित मान्यता मिली है। इस बार सोवियत प्रपत्र विभिन्न चुम्बकीय जालों में प्लाज्मा के तापन व नियंत्रण तथा उच्च-तापांश प्लाज्मा प्राप्त करने की नयी विधियों के बारे में थे।

संभावनाएं

इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि नियंत्रित तापनाभिकीय संश्लेषण तथा उच्च तापांश प्लाज्मा भौतिकी की यह समस्या हल हो जायेगी। यह सच है कि लक्ष्य की ओर बढ़ने की गति बहुत अधिक नहीं है लेकिन यह कहा जा सकता है कि इसमें निरन्तर प्रगति हो रही है। अगर हम एक दशक पहले इस समस्या की स्थिति की अब से तुलना करें तो हमें देखेंगे कि इस अवधि में हम बंद प्रणाली में प्लाज्मा का तापांश पाँच से दस गुना बढ़ाने तथा उसकी स्थिरता बनाये रखकर खुले जाल में उसके घनत्व को सौ गुना बढ़ाने में सफल रहें हैं। हमें एक अतितीव्र तापनाभिकीय क्रिया प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए ताकि इस प्रकार प्राप्त ऊर्जा स्वयं रिएक्टर में काम आने वाली विद्युत शक्ति का एक बड़ा भाग पूरा कर दे।

जीवाणुओं की सहायता से स्वर्ण की प्राप्ति !

सोवियत विज्ञान अकादमी के सूक्ष्म जीव-विज्ञान संस्थान के विज्ञान संस्थान के विज्ञान कर्मियों ने दिखाया है कि कुछ प्रकार के सूक्ष्म जीव सोने को विलय कर सकते हैं। इस आधार पर उन्होंने स्वर्ण की प्राप्ति का एक नया तरीका सुझाया है। निम्न स्वर्णांश के निक्षेप को पानी की धारों या विस्फोटों से चूर-चूर करने के बाद उसमें स्वर्ण-भक्षी जीवाणुयुक्त पानी पम्प कर दिया जाता है। बाद में पम्प द्वारा ही निकाले जाने वाले प्रति लीटर पानी से दस मिलीग्राम सोना मिलता है।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि जीवाणुओं की ऐसी नई किस्में पैदा की जा सकती हैं, जो एंटिमनी, आर्सेनिक, टंग्सटन तथा अन्य मूल्यवान धातुओं का भक्षण कर सकेंगे।

भूकम्पों की आवाज

दोनबास (उक्रइना) की कोयला खानों में संसार की पहली ध्वनिक पूर्व सूचना सेवा भूगर्भ में चट्टानों की गति से उत्पन्न हलकी आवाजों को भूफोन द्वारा अभिलिखित करती है।

ये भूफ़ोन अंतर्भौम आवाजों को ग्रहण करने के अति सुग्राही साधन हैं, जिन्हें सोवियत विज्ञान अकादमी के पार्थिव भौतिकी संस्थान में विकसित किया गया है और वे खानों में विश्वनीय सुरक्षा प्रहरी बन गये हैं। उनकी सहायता से अब तक संपीडित मेथेन और कोयला धूलि के 1000 से अधिक संचयों का पता लगाकर उन्हें हानि-रहित बनाया जा चुका है, जहाँ विस्फोट हो सकते थे।

स्थानीय भूकम्पों की ध्वनिक पूर्व सूचना सम्बन्धी प्रमाणों से पता चलता है कि भूफ़ोन 25 किलोमीटर की गहराई तक भूपर्पटी में अत्यंत सूक्ष्म दरारों के बनने का भी पता चला सकते हैं। भूकम्प के पहले गतिक प्रतिबलों के साथ होने वाली आवाजें और तड़तड़ाहटें भूकम्पीय खतरे का संकेत दे देती हैं।

अदालती विज्ञान

कपड़ों, गिलास तथा कपड़ों पर पड़े हाथों की उंगलियों के निशानों को उचित रूप में पहचानना अति आवश्यक हो रहा है, क्योंकि ऐसे चिन्हों को आँखों से नहीं देखा जा सकता है। एसे चिन्हों की जाँचपरताल के हेतु

आकलान्द विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डा० स्पैडिंग ने एक रासायनिक विधि की अभी हाल में खोज की है। इस विधि की कार्य प्रणाली उंगलियों से निकले वसिक अम्ल (फैटी एसिड) की सल्फरडाइआक्साइड से प्रतिक्रिया इन चिन्हों को पहचानने में मदद करती है। यह वसिक अम्ल उँगलियों से निकलकर कागज, कपड़ा तथा गिलास पर रह जाता है। इस क्रिया में मुख्य रूप से सल्फर प्रारूप जो सल्फर डाइ आक्साइड में व्यावहारिक रूप से विद्यमान रहता है. काम में आता है। यह उँगलियों के वसिक अम्ल के साथ अवलम्बित हो जाता है और फिर इसके ह्रास के समय साधारण सल्फर विकिरिण उत्पन्न करती है। इन विकरणों को पहचानने के लिए हम फोटोग्राफिक विधि प्रयोग में लाते हैं। फोटोग्राफ़िक-फिल्म को कागज तथा कपड़ा के सम्पर्क में रखने पर ये विकरण फिल्म पर अंकित हो जाते हैं। पानी आदि से घुलजाने पर भी ये अंकित चिन्ह फोटो ग्राफ किये जा सकते हैं।

तम्बाकू-बीज भोजन की तरह

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के मिआमी विश्वविद्यालय के एक वनस्पति विज्ञान के शोधकर्ता ने सुझाव दिया है कि तम्बाकू के बीजों को भोजन और तरकारी हेतु उपयोग में लाया जा सकता है। वैज्ञानिक ने इन बीजों का रासायनिक विश्लेषण करने के बाद ज्ञात किया कि इनमें निकोटीन नामक हानिकारक तत्व नहीं होता जो जीवजन्तुओं के लिये हानिकारक हो सकता है। वैज्ञानिक का सुझाव है कि तम्बाकू बीजों को वार्निश आदि के उपयोग में भी लाया जा सकता है। इस प्रकार से इन बीजों का उपयोग औद्योगिक तथा साधारण दैनिक आवश्यकताओं हेतु किया जा रहा है।

तत्व-112

मानचेस्टर विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के भौतिक और रसायनिक विज्ञान के शोधकर्त्ताओं ने अभी हाल में अतिभारीय तत्व-112 की उपस्थिति की संभावना के बारे में घोषणा की है। डा० बंटे और उनके साथियों ने बताया है कि तत्व-110, 111, 112, 113, और 114 रासायनिक तौर पर क्रमशः प्लैटीनम, सोना, मरकरी, थैलियम तथा शीसा की तरह के होते हैं। कुछ नाभिकीय-भौतिक—वेत्ताओं ने भी, जो कि टाटा इन्सटीटयूट बम्बई में चन्द्रतल की मिट्टी की जाँचपरताल कर रहे हैं, तत्व-112 की उपस्थिति के आसार देखे हैं।

(विस्तार हेतु नेचर 229-464 12 फरवरी 1971 देखें।)

टैलीफून लाइन से होकर फोटोग्राफ

'बेल टैलीफून लेबोरेटरी" अमेरिका में कार्यरत वैज्ञानिकों ने एक ऐसी विधि का विकास किया है जिसके अनुसार टैलीफून लाइनों से होकर रेखाचित्र तथा फोटो ग्राफ लिये जा सकते हैं। अगर इस विधि का आद्योगीकरण हो सका तो इस तरह के कार्यों के लिये यह यंत्र-कला बहुत ही सस्ती पड़ेगी। इस प्रयोगशाला में एक ऐसी साधारण और सरल बिजली-योजना का आविष्कार व विकास किया गया है जो रेखा चित्र और फोटोग्राफों को आसानी से पढ़ सकती है।

यह विधि शीघ्र ही खोजी गये इस तथ्य पर निर्भर है, कि अक्सीकृत सिलकन में एक ऐसा गुण विद्यमान है, जिसके अनुसार वह अपने पर पड़ने वाले प्रकाश को उसकी शक्ति के अनुरूप वैद्युत आवेशों में परिवर्तित कर देता है। अधिकतर इस यंत्रकला में भी दूर दर्शन (टैलीविजिन) की सिद्धान्त प्रणाली उपयोगी होती है।

विज्ञान-वार्ता

अपोलो कार्यक्रम के बाद अमेरिकी अंतरिक्ष-योजनायें

अपोलो-15 की चन्द्रउड़ान के बाद, इस श्रृंखला के केवल दो उड़ानों अपोलो-16 और अपोलो-17 को छोड़े जाने का आयोजन क्रमशः मार्च 72 और दिसम्बर 1972 में होगा। तदुपरान्त, अपोलो कार्यक्रम इतिहास के गर्भ में विलीन हो जायेगा।

किन्तु उसके बाद अमेरिका द्वारा अन्तरिक्ष-अनुसंधान के क्षेत्र में कुछ नये साहसिक प्रयासों का आयोजन होगा, जिनमें स्काईलैब (अन्तरिक्षीय प्रयोगशाला), शटल और स्पेस स्टेशन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कार्यक्रम के अनुसार, स्काईलैब को मार्च 1973 में अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त किया जायेगा। यह एक कक्षागतभवन है। यह अन्तरिक्ष में रहने और कार्य करने के लिये तैयार होने वाली विशाल सुविधाओं का एक नमूना होगी। स्काई लैब का आकार 5 बड़े कमरों वाले घर के बराबर है। उसमें एक रसोई घर, शायनकक्ष, एक शावर युक्त स्नानागार तथा एक विशाल प्रयोगशाला शामिल है। 8 महीने के दौरान तीन अन्तरिक्षयात्रियों की तीन टोलियाँ बारी बारी से स्काई लैब की यात्रा करेंगी और उसमें रहेंगी। इनमें से प्रत्येक टोली एक साथ दो महीने उसमें रहेगी।

कुछ मानों में अमेरिकी स्काइलैब सोवियतसंघ द्वारा हाल ही में छोड़े गये 'सेल्यूट सोयूज अन्तरिक्ष अड्डे' जैसी होगी।

स्काई लैब के कर्मचारी पृथ्वी का पर्यवेक्षण करके उन उपकरणों की परीक्षा करेंगे, जिन्हें आगे चलकर स्वचल यन्त्रों से सज्जित भू-उपग्रहों द्वारा खेती बाड़ी, वनों, भूतात्विक विशेषताओं, समुद्री धाराओं, तापमान, मछलियों और भूतल और भूगर्भ में स्थित खनिज भंडारों का सर्वेक्षण करने के लिये प्रयुक्त किया जायेगा।

उस पर रहने वाले यात्री एक विशाल दूरवीक्षणयंत्र से पृथ्वी के वायुमंडल की उथल पुथल से मुक्त होकर सूर्य का अध्ययन करेंगे। इन अध्ययनों से सूर्य की उर्जा उत्पादन की प्रणाली को समझने में सहायता मिलने की आशा है।

इस बीच कुछ अन्य वैज्ञानिक 'शटल' की डिजाइनें तैयार करने में संलग्न हैं, जो भविष्य में अन्तरिक्ष यान का काम करेगी। अन्तरिक्ष यात्रा के लिये उसका महत्व वही होगा, जो हवाई उड़ान के लिये व्यापारिक विमानों का है।

सूर्य मुखी—एक नई तिलहन फसल

भारत अनेक वर्षों से सूर्यमुखी तेल का आयात कर रहा है, कुछ सूर्यमुखी की रूसी किस्मों को व्यावसायिक तौर पर तिलहन फसल के रूप में उगाने की संभावनाओं पर विचार किया जा रहा है। सूर्यमुखी की फसल-अवधि 90 से 95 दिन होती है और इस सम्बंध में इसकी तुलना मूँगफली से की जा सकती है। तामिलनाडु में जो किस्म विकसित की गई है वह टी० एम० वी०-7 है। इसकी अवधि 100 दिन है। इस सूर्यमुखी जाति का विकास 1969 में सोवियत संघ में किया गया, जिसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कोयेम्बटूर केन्द्र पर इसे उगाया गया है। इ० सी० 68415 किस्म की 90 से 95 दिन की अवधि में नवम्बर में बुआई करके, रबी फसल में 20

क्विंटल प्रति हैक्टर की उच्च उपज प्राप्त की गई। खरीफ फसल जुलाई के प्रथम सप्ताह में बोयी गई और श्रेष्ठतम उपज 32 क्विंटल प्राप्त हुई। एक प्रयोगशाला में परीक्षण करके देखा गया कि सूर्यमुखी में तेल तत्व 47 प्रतिशत है। फसल वर्षा वाले क्षेत्र में भी अच्छी रही। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, जबलपुर में सूर्यमुखी की चार रूसी और एक देशी किस्म का गत रबी मौसम में परीक्षण किया गया। ई० सी० 68414 किस्म से उपज 950 किलो प्रति हैक्टर प्राप्त हुई।

कक्षा में घूमती दूरबीनें

सोवियत अंतरिक्ष अनुसन्धानों के कार्यक्रमों में स्पुत्निकों, भूभौतिकीय राकेटों और बैलूनों पर लगे खगोलीय उपकरणों द्वारा खोज भी शामिल है। खगोलीय प्रविधि के इस उपयोगने ब्रह्मांड के बारे में बड़ी मूल्यवान नई जानकारी प्राप्त करने में हमारी सहायता की है।

दूरबीन को बस, धरती की सतह से तीस से पचास किलोमीटर ऊपर ले जाने से ही उसके कार्य में कई गुना सुधार लाया जा सकता है। इतनी ऊँचाई पर वायुमंडल कहीं ज्यादा पतला होता है, और आप जानते ही हैं कि पृथ्वी से खगोलीय प्रेक्षण को वायुमण्डल ही कठिन बनाता है।

बेशक यह बात आरम्भ से ही रोचक थी कि ऐसे उपकरणों को वायुमंडल के ऊपर ले जाया जाये, जिनकी मदद से सर्वथा नवीन सूचना प्राप्त की जाये। सोवियत भू-भौतिकीय राकेटों में सूर्य के परा बैंगनी विकिरण को दर्ज करने के लिये स्पंक्ट्रमलेखी और क्ष-किरणों को अभिलिखित करने के लिये उपकरणों का लगाया जाना संभव हो गया। इसके लिये अनेक प्राविधिक समस्याओं का हल करना पड़ा। इन समस्याओं की जटिलता का कुछ अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इसके लिये एक विशेष स्वचालित दूरबीन दिक् विन्यास प्रणाली का निर्माण करना पड़ा था, ताकि स्पुत्निक की तेज रफ्तार के बावजूद नियत खगोलीय पिंड पर लगातार लक्ष्य जामाया जा सके।

जर्मन जनवादी जनतंत्र, सोवियत संघ और चेकोस्लावाकिया के विशेषज्ञों ने विशेष सौर अनुसंधान उपकरण विकसित किये, जो "इन्टरकौस्मोस" श्रंखला के पहले और चौथे कृत्रिम भू-उपग्रहों पर लगाये गये थे, जिनके कारण हम और सक्रियता के बारे में काफी जानकारी एकत्र कर सके और एक नये प्रकार के कणों--क्ष किरण विस्फोटों को उत्पन्न करने वाले तीव्र गतिमान इलेक्ट्रोनों की खोज हुई। इन कणों के अस्तित्व की जानकारी ने सूर्य की सतह और संभवतः उसके भीतर होने वाली प्रक्रियाओं के बारे में हमारे विचारों को काफी सुधारा है। खगोलीय उपकरणों से लैस स्पुत्निकों का छोड़ा जाना अधिकाधिक आम होता जा रहा है।

हाल ही में हुये एक पत्रकार सम्मेलन में सोवियत विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष, अकादमीसियन म० व० कैल्दिश ने बताया था कि निकट भविष्य में विकसित की जाने वाली परियोजनाओं में स्थायी रूप से काम करने वाले कक्षागामी अंतरिक्ष कन्द्रों का निर्माण भी है। वह समय दूर नहीं है, जब इन केन्द्रों में खगोल वित्त और तारा भौतिकीविद् काम करते होंगे।

(3)	बैरोग्राफ	(ग)	रेडियो धर्मता की पहचान करता है।
(4)	इकोनो स्कोप	(घ)	दिल की धड़कनों को बताता है।
(5)	गैगर काउन्टर	(ङ)	धरती के भूकम्पन भूचाल को पढ़ता है।

प्रश्न 5. (अ) में लिखित आविष्कार व खोजों को (ब) में लिखित उनके तत्संबंधित आविष्कारकों को बताओ।

(अ)	(ब)
X-Ray 'क्ष' किरणें	(क) विलियम हार्वे
पैनीसिलीन	(ख) अक्सान्द्र ग्राहम
रेडियम	(ग) विलवंहम रोएटैन्जन
रक्त प्रवाह	(घ) सर एलक्सान्द्र फ्लैमिंग
टैलीफोन	(ङ) मैदमक्यूरी

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं यन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० |3|5|

भाग 108 } श्रावण 2028 विक्र०, 1892 शक जुलाई 1971 { संख्या 7

वेद और चिकित्सा-शास्त्र

□ डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

भारतीय चिकित्सा-शास्त्र की अत्यंत प्राचीनता एवं इसकी श्रेष्ठता के सम्बन्ध में संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि वेदों में, जो कि विश्व के प्राचीनतम ज्ञान-ग्रंथ माने जाते हैं, इस सम्बंधी प्रचुर सामग्री प्राप्य है। आज भी सर्पगन्धा एवं पुनर्नवा जैसी औषधियाँ विश्व प्रसिद्ध हो रही हैं, जोकि भारतीय आयुर्वेद शास्त्र की सत्यता, वैज्ञानिकता एवं प्रभावशालिता की परिचायक तो है ही, साथ ही हमारे चिकित्सा-शास्त्र के विशाल एवं विकसित मौलिक ज्ञान की प्रतीक भी हैं। न केवल उक्त आयुर्वेद के ही, वरन् अन्य चिकित्सा-पद्धतियों के भी, उदाहरणार्थ प्राकृतिक चिकित्सा, सूर्यरश्मि चिकित्सा आदि के मूल एवं उनके प्रारम्भिक क्रमिक विकास के सोपान भी वेदों में सरलता पूर्वक पाये जा सकते हैं। प्रस्तुत निबन्ध में वेदों में विविध चिकित्सा पद्धतियों सम्बन्धी प्राप्य सामग्री का संक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र कराने का प्रयत्न किया गया है। विस्तृत अध्ययन के लिए पाठकगण वेदों की मूल प्रतियाँ, यास्क के निरुक्त, सायण के भाष्य एवं तुलनात्मक अध्ययन के लिए मैक्समूलर, विंटरनिट्ज, कीथ, सातवलेकर, दयानन्द एवं तिकल आदि की उक्त विषय से सम्बंधित रचनाएँ देख सकते हैं।

स्वयं ऋग्वेद ही, जोकि वेदों में प्राचीनतम माना जाता है, कई ऐसी ऋचाओं से भरा पड़ा है, जोकि हमारी चिकित्सा-पद्धति की तत्कालीन उन्नततम दशा को सिद्ध करने में समर्थ है। उदाहरणार्थ, इस वेद के प्रथम मण्डल के 17वें अनुवाक् के 117 से 120 तक के अश्विनीकुमार की प्रार्थना सम्बन्धी सूक्तों को ही लीजिए। अश्विनी कुमारों के सम्बन्ध में, जोकि धन्वन्तरि के भी पूर्व के आयुर्वेदज्ञ देवता माने जाते हैं, यह कहा गया है कि इन्होंने—

1. च्यवन को वृद्ध से युवक बना दिया था।

जुजुरोष नासत्योत वव्रिं प्रामुंचतम् द्रापिमिव च्यवनात्।
1|17|116|10

2. अश्विनीकुमारों ने ऋजाश्व एवं कण्व को नेत्र प्रदान किये।

"आक्षी ऋजाश्वे अश्विनावधत्तम् ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे।" 1|17|118|17:

3. राजा खिल्व की पत्नी के टूटे पैर की जगह लोहे का पैर लगाया।

"सद्यो जंघामायसीम् विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्"। 1|17|116|22

4. राजा शर्यु की वन्ध्यागाय को वत्सवती एवं दुधारू बनाया।

"शर्यवे चिन्नासत्या शशिमिर्जसुरये स्तयं पिप्यथर्गाम्।" 1|17|116|22:

5. अथर्वा के पुत्र दध्यंक ऋषि से मधुविद्या सीखी एवं उसमें अनुसंधानादि द्वारा प्रगति की।

6. विष्णु के पुत्र को विष से मार डाला।

7. श्याव एवं ऋषियों के विगलित खण्डों की नये खण्डों से बदलकर उन्हें पुनर्जीवित किया।

8. गर्भस्थ कई शिशुओं की चिकित्सा कर उन्हें प्रतिभा प्रदान की।

ऐसे ही और कई उदाहरण हैं, जो स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं कि ऋग्वेद काल में ही भारतीय शल्य एवं अगद चिकित्सा इतनी बढ़ चुकी थी कि लोहे के पर बैठाये जा सकते थे, विगलित शरीर खण्डों का विस्थापन किया जा सकता था, अन्धों को नेत्र प्रदान किये जाते थे, एवं वन्ध्या स्त्री को भी सन्तानवती बनाया जा सकता था।

एक अन्य स्थल पर औषधियों एवं चिकित्सकों के गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि—

"यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षो हामी सनातनः॥
10|7|97|6

"अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।
आवित्सि सर्वा औषधीमस्मा अरिष्टतातये॥
10|7|97|7

अर्थात्—"सभाओं में जैसे राजागण एकत्र होते हैं, वैसे ही जहाँ औषधियाँ एकत्र रहती हैं एवं जो मेधावी उनके गुणों को जानता है, वही चिकित्सक कहलाता है, क्योंकि वह रोगों को शमन करने वाले विभिन्न प्रयत्नों को संयुक्त करता है। एवं मैं अश्वावती, सोमवती, ऊर्जयन्ती आदि औषधियों को जानने वाला हूँ। वे औषधियाँ इस रोगी को आरोग्य प्रदान करें।"

ऋग्वेद में क्षय आदि रोगों की मानसिक एवं मान्त्रिक चिकित्सा से सम्बन्धित कई सूक्त पाये जा सकते हैं। इस काल में ही औषधियों के मिश्रण एवं उनसे प्राप्त होने वाले परिवर्तनशील गुणों सम्बन्धी ज्ञान का समुचित विकास हो चुका था।

जहाँ तक यजुर्वेद एवं सामवेद का प्रश्न है, इन वेदों में चिकित्सा-शास्त्र सम्बन्धी संकेत नहीं के बराबर है। इनमें अधिकतर सोम (विशिष्ट पेय, मदिरा) से सम्बन्धित ऋचाएं हैं। लेकिन अथर्ववेद तो मानों चिकित्सा-शास्त्र से सम्बन्धित तथ्यों का भण्डार ही है। आइए हम कुछ विशेष स्थलों का सिंहावलोकन करें।

अथर्ववेद काल में, मूत्ररोग की सूर्य रश्मियों, मानसिक शक्ति एवं जल आदि द्वारा चिकित्सा की जा सकती थी। रश्मि चिकित्सा की संकेतिका निम्न ऋचा देखिए।

"विद्मा शरस्य पितरम् वृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे शंकरं, पृथिव्यां ते निषेचनम्।
बहिष्टे अस्तु वालिति॥ 1|1|3|2

हम शर (रश्मियों) के अत्यन्त शक्तिशाली अधिष्ठाता, मित्र, अर्थात् सूर्य को जानते हैं। हे रोगपीड़ित मनुष्य मैं तेरे रोग को दूर करता हूँ। पेट में रुका हुआ तेरा मूत्र निकल जाये।

कुष्ठरोग की विभिन्न औषधियों द्वारा सफल चिकित्सा भी की जाती थी।

नवतं जातास्योषधे, रामे कृष्णे असिवनच
इदम् रजनी रजय किलासं पलितम् यात्।
1|5|23|1

अर्थात्, "हे हरिद्रा, नामक औषधी! तू रात्रि में उत्पन्न हुई है, और रोगग्रस्त पुरुष को आनन्द देने वाली है। हे

राममांगरा औषधि तथा कृष्ण वर्ण करने वाली इन्द्र-वारुणी नामक औषधि तथा असित वर्ण कारक "नील औषधी"—तुम सब मिलकर कुष्ठ रोग से विकृत इस अंग को रंग में रंग दो । दूसरे शब्दों में, कुष्ट रोग का हरण कर इस मनुष्य को साधारण रंग वाला बना दो।

शरीर के आन्तरिक एवं वाह्य रक्तस्रावों को मानसिक एवं मान्त्रिक शक्ति से रोका जा सकता था । उक्त विषय से सम्बन्धित, अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के चतुर्थ अनुवाक् का 17वां सूक्त है । यह सूक्त हमारे महर्षियों के शरीर शास्त्र के ज्ञान का प्रतीक भी है, क्योंकि इसमें कई नाड़ियों के उद्गमों एवं उनके नामों को गिनाया गया है । ऐसे ही और भी कई सूक्त हैं । इस सूक्त की अन्तिम ऋचा यह है ।

परिवः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रमीत् ।
तिष्ठते लयता सुकम् ।। 1।4।17।4

"रज नाड़ी एवं धनुष के समान वक्र मूत्राशय की नाड़ी, धनु और बृहती नाड़ी ! हे नाड़ियों तुमको चारों ओर से रोक लिया गया है । तुम रक्तस्राव वन्द करो एवं इस रोगी को आराम प्रदान करो ।"

विभिन्न प्रकार के ज्वरों के नाम, कारण, एवं लक्षण हमारे महर्षियों को ज्ञात थे । गर्भ एवं प्रसूति शास्त्र के सम्बन्ध में उन्हें विशद ज्ञान था । औषधियों के अतिरिक्त मिट्टी एवं जल आदि के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा का भी उन्हें ज्ञान था । उदाहरणार्थ—

"उपजीका उद्वयन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजम् तदु रोगमनीनशत् ।।
2।1।3।4

'भूमिगत जलराशि से रोगनाशिनी औषध रूप मिट्टी ऊपर आती है । यह बमई की मिट्टी रूप औषधि सभी प्रकार के स्रावों एवं अतिसारादि रोगों को समूल नष्ट कर देती है ।"

महर्षियों को रोगों की आनुवंशिकता का भी ज्ञान था, एवं इनके शमन के लिए विशिष्ट मृग-शृगादि औषधियां प्रयुक्त होती थीं । एक ऋचा (2।2।8।3) का भावार्थ है कि—"हे रोगिन् अर्जुन के द्वारा काष्ठ से बनायी गयी, जौ के भूसे एवं तिल सहित मंजरी से निर्मित मणि तेरे रोगों का शमन करें, तथा क्षेत्रीय रोगों की नाशक औषधि भी तेरा रोग नष्ट करे ।"

"वेदों में विभिन्न औषधियों की देवताओं एवं प्रतीकों के रूपों में कल्पनाएँ की गयी हैं । उनकी प्रार्थनाएँ की गयी हैं । ऋचाएँ इसी कारण गूढ़ हैं । केवल भावार्थ या शब्दार्थ मात्र से तात्कालिक पद्धतियों का विस्तृत विवरण प्राप्त करना सम्भव नहीं है । वैदिक संस्कृत भी कुछ कठिन ही है । अतः ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के संकेत मात्र ही वेदों में पाये जा सकते हैं । उनका विस्तृत विवरण भी ऋचाओं में अवश्य है, किन्तु वह काफी शोध एवं प्रयत्न के बाद ही पाया जा सकता है । शोध एवं अर्थविवेचन की दिशा में श्री सातवलेकर का प्रयत्न सराहनीय है । इस हेतु उनकी टीकाएँ देखी जा सकती हैं । विषय बड़ा विस्तृत है एवं वैदिक विवरणों पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखा जा सकता है, किन्तु यहाँ कुछ प्रमुख औषधियों के एवं रोगों के नाम ही प्रस्तुत किये जा रहे हैं, ताकि पाठकगण अथर्ववेद में उनका विवरण सरलता पूर्वक पा सकें । औषधियाँ :—कैथ (4।14), अंजन (4।2।9), वरणावती (4।2।7), लाख (5।2।5), अपामार्ग (4।4।17-18), सहदेवी (4।219), 9।9।60), ऋतावरी (5।3।15), शंखपुष्पी (9।4।38), काचमाची (6।13।136), एवं अजशृंगी, पाठा, गूगल, औदगंधी प्रमंदिनी, सौवर्चल, आदि लगभग एक सौ से ऊपर औषधियाँ रोग, बन्ध्यात्व (3।5।23), विष रोग (4।2।9), गंडमाला (6।9।83), (7।7।76), गंजापन (6।13।137), कृमी (2।6।31-32), राज-यक्ष्मा (3।3।11) इत्यादि कई रोग ।

इसके अतिरिक्त विषनिवारक मधु-चिकित्सा (6;2। 12) एवं गोमूत्र चिकित्सा (6।6।58) आदि के भी दृष्टांत प्राप्य हैं ।

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि विश्व के अन्य देशों में जब सभ्यता का उषाकाल मात्र था, तभी हमारे देश में चिकित्सा-पद्धति अत्यन्त उन्नत हो चुकी थी। हमारे महर्षियोंका ज्ञान इतना विशद एवं गम्भीर था कि उन्हें प्रायः तत्कालीन सभी रोगों के लक्षण एवं चिकित्सा आदि ज्ञात थे। न केवल औषधियों की, वरन् बाह्य विद्युत, शारीरिक विद्युत, सूर्य रश्मि, जल, मिट्टी तथा मानसिक, मान्त्रिक एवं आध्यात्मिक साधनों वाली चिकित्सा में भी वे सिद्धहस्त थे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि हमारे ये आदि चिकित्सक आध्यात्मिक, मानसिक एवं मान्त्रिक उपायों पर सर्वाधिक बल देते थे। सभी क्षेत्रों में हमारे महर्षियों ने विचारा-धाराओं को आध्यात्मिक मोड़ देकर उन्हें आस्तिकता के रंग से भर दिया था। वे सामंजस्यवादी थे, वेदों में परस्पर विरोधी विचार-धाराओं का उत्कृष्ट समन्वय पाया जा सकता है। हमें अपना सामंजस्यवाद बनाये रखना है। अतः, यह आवश्यक है कि हम पाश्चात्य ज्ञान का पूर्ण सहयोग लें, उसे मान्यता दें एवं उसे अपने अनुरूप मोड़ दें, क्योंकि आज का विज्ञान-युग हमें अपने कदमों से कदम मिलाने का आमंत्रण दे रहा है। आइए अब हम सच्चाई से अपने ही आध्यात्मिक एवं वैदिक ज्ञान का उहापोह करें, एवं इसकी दृढ़ नींव पर अपनी ही मान्यताओं एवं कल्पनाओं के अनुरूप भव्य वैज्ञानिक भवन निर्मित करें। यह आवश्यक भी है एवं उपादेय भी है, क्योंकि संसार के श्रेष्ठतम वैज्ञानिक एवं दार्शनिक भी अब दर्शन-धर्म एवं विज्ञान की एकरूपता एवं समन्वय की बातें सोचने लगे हैं।

● ●

लेखकों से निवेदन

- **'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।**
- **लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।**
- **अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।**

1970 के भौतिकी में 'नोबुल पुरस्कार' विजेता"

□ रवीन्द्र दुबे

रॉयल स्वीडिश अकादमी ऑव् साइंसेज् ने 1970 का भौतिकी नोबुल पुरस्कार संयुक्त रूप से दो यूरोपीय वैज्ञानिकों, 'लुइ नेल' तथा 'हेन्स आल्फविन' को प्रदान किया। 'लुइ नेल' को यह पुरस्कार प्रति-लौह-चुम्बकत्व (एन्टी-फेरोमैग्नेटिज्म) व लौह-चुम्बकत्व (फेरोमैग्नेटिज्म) के विषय में शोध कार्य के लिए तथा आल्फविन को चुम्बकीय-द्रव-गतिविज्ञान (मैग्नेटोहाइड्रोडाइनामिक्स) के कुछ नए सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए, जिनसे पदार्थ की चतुर्थ अवस्था जीवद्रव्य (प्लाज्मा) के अध्ययन में अभूतपूर्व सहायता मिली है, यह पुरस्कार दिया गया है। 'विज्ञान' के पाठकों के लिए विशेष रूप से यहाँ इन महान वैज्ञानिकों के जीवन तथा उनकी उपलब्धियों के विषय में कुछ जानकारी दी जा रही है।
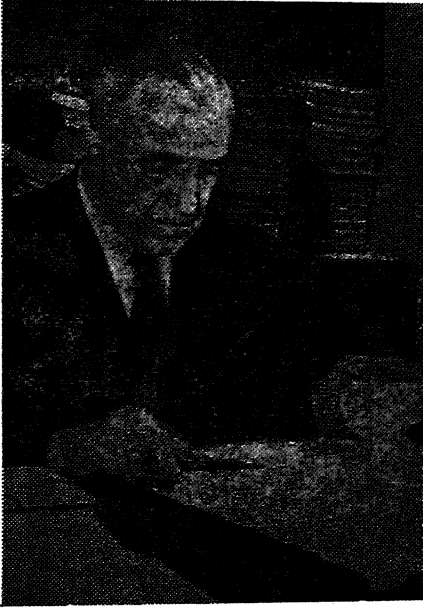
लुइ नेल :

लुइ नेल पिछले चालीस से भी अधिक वर्षों से चुम्बकीय ठोस पदार्थों के वैज्ञानिक अध्ययन में निरंतर लीन हैं। चुम्बकत्व के विषय में उनके द्वारा प्रतिपादित मौलिक विचारों को श्रृंखलाबद्ध करने के लिए भी भविष्य में कड़ा परिश्रम करना पड़ेगा। सर्वप्रथम 1932 में प्रोफेसर नेल ने यह प्रदर्शित किया कि 'वीज' के अणुक्षेत्र को और भी विस्तृत मानकर स्थानीय अणुक्षेत्रों को भी उसी में सम्मिलित मानना समीचीन होगा। इनमें से प्रत्येक चुम्बकीय ठोस के एक उपजालक (सब-लैटिस) पर प्रभाव डालते हैं। इसमें उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि आकर्षण के कारण होने वाले प्रभाव से ही तापक्रम पर निर्भर करने वाले अनु-चुम्बकत्व (पैरामैग्नेटिज्म) का जन्म होता है। 1936 में उन्होंने यह बताया कि इस प्रकार के ठोस पदार्थ भी होते हैं, जिनके चुम्बकीय अणुओं में चक्रण (स्पिन) की दिशा अलग अलग होती है। एक विशेष

संक्रमण तापक्रम (ट्रांजिशन-टेम्पेरेचर) T_C के नीचे यह ठोस दो उपजालकों (सब-लैटिसेज्) में विभक्त हो जाते हैं जिनमें चक्रण (स्पिन) की दिशा अलग अलग होती है। अतः T_C से कम तापक्रम पर परिणामी चक्रण शून्य हो जायेगा और चुम्बकीय प्रवृत्ति (मैग्नेटिक ससेप्टिबिलिटी) तापक्रम पर निर्भर नहीं करेगी। T_C से अधिक तापक्रम पर ठोस ''क्यूरी-वीज'' नियम के अनुसार व्यवहार करते हैं। संक्रमण तापक्रम (T_C) को अब नेल तापक्रम (T_N) कहते हैं।

1948 में नेल ने विशेष प्रकार की संरचना वाले लौहयोगिकों (फेराइट्स) के चुम्बकीय गुणों के अध्ययन में सफलता प्राप्त की, जो लगभग 50 वर्षों से वैज्ञानिकों के लिए एक रहस्य था। उन्होंने लौहचुम्बकत्व (फेरोमैग्ने-टिज्म) के विषय में अपने सिद्धांत का प्रकाशन किया जो चुम्बकीय दृष्टि से अलग अलग उप-जालकों की कल्पना पर निर्भर है। एक उपजालक पर चक्रण की दिशा समानांतर होती है परन्तु अलग अलग उपजालकों पर चक्रण की दिशा व परिमाण इस प्रकार होते हैं कि परिणामी आघूर्ण का कुछ निश्चित मान होता है। लौह-चुम्बकत्व के सिद्धांत ने पहले से ज्ञात कई बातों की सफलता पूर्वक व्याख्या दी। जैसे कि चुम्बकीय आघूर्ण का संतृप्त मान, क्यूरी तापक्रम के नीचे चुम्बकत्व का तापक्रम के साथ परिवर्तन, क्यूरी ताप के ऊपर चुम्बकीय प्रवृत्ति का तापक्रम पर विशेष प्रकार से निर्भर होना, मिश्रित फैराइट्स के चुम्बकीय आघूर्ण का सान्द्रता के साथ परिवर्तन होना आदि, आदि।

लौह-चुम्बकत्व के इस सिद्धांत पर निर्भर करते हुए नेल व बेर्टोट ने पाइह्रोटिन (Fe_7O_8) के गुणों का अध्ययन किया जो एक रहस्यमय पदार्थ है। इस शताब्दी के प्रारम्भ के 'वीज ने भी इस विषय पर कुछ कार्य किया था परन्तु वह सफल न हो सके।

1956 में लौहचुम्बकत्व के सिद्धांत द्वारा ही कुछ नए प्रकार के लौह चुम्बकीय (फेरोमैग्नेटिक) आक्साइड [illegible]र्थों की खोज की गई। यह पदार्थ थे, विशेष प्रकार की संरचना वाले रेयरअर्थ के लौह योगिक (फेराइट)। इनका सामान्य सूत्र $Fe_5M_3O_{12}$ है, जहाँ M एक रेयर अर्थ तत्व है।

इन्हीं विचारों पर चलते हुए 1961 में नेल ने 20 से 400 A° तक के व्यास वाले प्रतिचुम्बकीय (एंटीफेरो-मैग्नेटिक) कणों में अति-अनुचुम्बकत्व (सुपर-पैरामैग्नेटिज्म) होने की घोषणा की। इस प्रकार के कणों में दो उप जालकों पर पाया जाने वाला चुम्बकीय आघूर्ण समान नहीं होता। लुइ-नेल 1963 से 1966 तक इंटरनेशनल यूनियन ऑव प्योर एंड एप्लाइड फिजिक्स के अध्यक्ष रहे। सी० एन० आर० एस० (पेरिस) के एलेक्ट्रानिक्स विभाग के अध्यक्ष के रूप में भी आपने अत्ययंत महत्वपूर्ण कार्य किये।
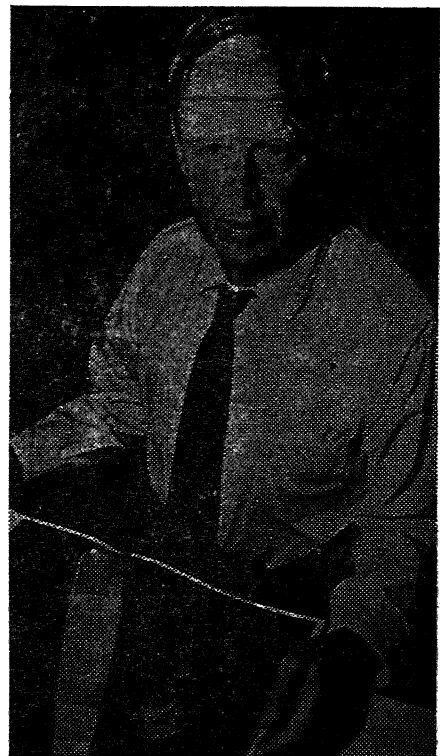
हेन्स आल्फविन :

हेन्स आल्फविन के मौलिक कार्यों ने जीवद्रव्य-भौतिकी (प्लाज्मा-फिजिक्स) व इसके प्रयोगों के विषय में महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। पदार्थ की विभिन्न अवस्थाओं का जन्म इसके बंधनबलों व आंतरिक गतियों के परिणाम से होता है। तापक्रम बढ़ने के साथ-साथ ही पदार्थ एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्त्तित होता है, जैसे कि ठोस से द्रव, द्रव से गैस, तथा और ताप बढ़ने पर गैस से जीवद्रव्य अवस्था में परिर्वतित हो जाता है। यह चार अवस्थाएं प्राचीन ग्रीक विचारों के चार तत्व पृथ्वी, जल, वायु व अग्नि के अनुसार ही प्रतीत होती हैं।

प्लाज्मा अवस्था 10^4 से 10^8 डिग्री सेंटिग्रेड तापक्रम के बीच पाई जाती है अर्थात् ब्रह्माण्ड की यह सर्वसामान्य अवस्था है। इस अवस्था के ज्ञान से विभिन्न क्षेत्रों के अध्ययन में लाभ पहुँचा है। उदाहरणार्थ-सौर-भौतिकी, भू-भौतिकी, वायु गतिविज्ञान, जीवद्रव्य रसायन आदि।

प्रारम्भ में आल्फविन का ध्यान 'उत्तरीय प्रकाश (औरोरा) में विद्युत डिस्चार्ज की घटना व उसका पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से सम्बन्ध' इस विषय पर गया। 1939 में उत्तरीय प्रकाश के बारे में एक सिद्धान्त में उन्होंने 'परटर्बेशन विधि' द्वारा असामान्य विद्युत व चुम्बकीय क्षेत्र में उपस्थित एक विद्युत कण के अक्ष की गणना की। उन्होंने यह बताया कि वास्तविक कणीय अक्ष को चुम्बकीय बलरेखाओं के लम्बवत् एक विशेष प्रकार की गोलाकार गति द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

1908 में एक अमेरिकी वैज्ञानिक 'हेल' ने सूर्य में चुम्बकीय क्षेत्रों की उपस्थिति प्रदर्शित की थी, परन्तु इस विषय में कोई महत्वपूर्ण खोज नहीं की जा सकी। अंत में 1942 में आल्फविन ने सौरक्रियाओं पर विद्युतचुम्बकीय क्षेत्रों के प्रभाव के विषय में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त दिया।

प्रारम्भ से ही वैज्ञानिक सौरमण्डल व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति व इतिहास के विषय में जानने को उत्सुक रहे हैं। कई वैज्ञानिकों ने इस विषय में महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किए परन्तु कोई भी सिद्धान्त सभी तथ्यों का सफलतापूर्वक व्याख्या करने में सफल नहीं हो सका। अब आल्फविन ने इस विषय पर एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जो सूर्य के आसपास होने वाली आयनीकरण व जीवद्रव्य क्रियाओं के विषय में उनके गहन अध्ययन का परिणाम है। आल्फविन के द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त सौरमण्डल के विषय में हमारे ज्ञान को एक नई दिशा प्रदान करता है और सम्भव है कि हम सौरमण्डल व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति व इतिहास के विषय में किसी निश्चित मत पर शीघ्र ही पहुँच जांय।

● ●

वैज्ञानिक शब्दावली के उपयोग में व्यवहारिक कठिनाइयां

□ नंदलाल जैन

भारत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत अपने संविधान में हिन्दी को राजभाषा के पदपर क्रमशः प्रतिष्ठित करने का संवैधानिक संकल्प किया था। इस संकल्प को कार्यान्वित करने के समय देश की विविधता के दर्शन हुये और हिन्दी के विरोध में, अंग्रेजी के समर्थन में, प्रान्तीय भाषाओं के समर्थन में काफी कुछ देखने-सुनने को मिला। प्रारम्भ में तो नीति निर्धारण ही एक समस्या थी। लेकिन जब नीति निर्धारित हो चुकी, तब उसे कार्यान्वित करने की समस्या और भी जटिलतर प्रतीत हुई। आज भी हिन्दी को अखिल भारतीयजनभाषा के रूप में विकसित करने की कोई सुदृढ़ योजना सामने नहीं है। विभिन्न योजनायें तो जन्म लेते ही विरोध और आन्दोलनों के कारण धराशायी हो जाती हैं। वस्तुतः, भारत का नीति-निर्धारक एवं कार्यपालक तंत्र इस दिशा में उतनी गति का प्रदर्शन नहीं कर रहा है। इसके कई कारण हैं। परिवर्तन के विरोध की प्रकृति सबसे बड़ा कारण है। हिन्दी की लिपि के मानक रूप का अभाव दूसरा कारण है। हिन्दी की क्षमता में शंका एक तीसरा कारण है। और भी कई कारण हो सकते हैं, पर शिक्षा के माध्यम परिवर्तन की दृष्टि से यह अन्तिम कारण ही आज भी तर्क-सिंह बना हुआ है।

वस्तुतः शिक्षण की दक्षता के लिये मातृभाषाओं का माध्यम सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। यदि मातृभाषा वर्तमान ज्ञान को प्रकाशित नहीं कर सकती, तो भाषा का समुचित विकास और निर्माण किया जाना चाहिये। यूरोप की विभिन्न भाषायें अपने आप में दूसरी-दूसरी भाषाओं के हजारों शब्द पचाये हुये हैं। अंग्रेजी में ही कोई साठ प्रतिशत शब्द अन्य भाषाओं के मूल के हैं। फलतः यदि भारतीय भाषाओं की समुचित क्षमता के विकास के लिये ऐसा करना पड़े, तो कोई अचरजकारी बात नहीं है। वास्तविकता यह है कि हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का पूर्ण विकास न होने का एक कारण यह रहा है कि हमारी यह धारणा रही है कि इन भाषाओं की जननी संस्कृत सर्वप्रभुता सम्पन्न भाषा है और उसकी सहायता से नये ज्ञानों के अनुरूप शब्द और भाषा का गठन किया जा सकता है। इस दिशा में किये गये भगीरथ प्रयत्नों की अव्यवहारिकता का आभास तब हुआ जब यह पता चला कि शिक्षा देने वाले शिक्षक और शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थी-दोनों ही संस्कृत से पूर्णतः अनभिज्ञ थे। अतः शुद्ध संस्कृतमूलक भाषा की क्षमता अपार होते हुये भी उसे अखिल भारतीय भाषा का रूप नहीं दिया जा सका। फलतः यह सोचा गया कि विदेशों के समान नये ज्ञान में अन्तर्राष्ट्रीयता का समावेश किया जाना चाहिये। इस अन्तर्राष्ट्रीयता का मोह इतना तेज दिखा कि कुछ समय तक ऐसा लगता रहा कि भारतीय भाषाओं का विकास ही कहीं अवरुद्ध न हो जावे। भाषा में अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को समावेशित करना तो अच्छा है, पर सभी वैज्ञानिक शब्दों को अन्तर्राष्ट्रीय मान लेना तो मात्र उपहास ही माना जायेगा। इक्कीस वर्ष के प्रयत्नों के बाद भी आपको ऐसे कुछ स्पेसीमेन आज भी मिल सकते हैं जो अब भी इस मान्यता को व्यवहारिक रूप देना चाहते हैं। वे अंग्रेजी शब्दों को देवनागरी लिपि में लिखना चाहते हैं। बीच में, इसके विपरीत में एक ऐसा सुझाव

भी आया था कि क्यों न इन्डोनेशिआई भाषा के समान भारतीय भाषाओं की लिपि रोमन कर दी जावे। वस्तुतः ये दोनों ही सुझाव सीमान्त दृष्टिकोण प्रदर्शित करते हैं जो व्यवहारिकता से परे हैं। आजकल प्रचलित दृष्टिकोण मध्यममार्गी है जिसमें लिपि भारतीय रहे और शब्दों का चयन एवं निर्माण समयानुकूल रहे, ऐसा प्रयत्न करने का सिद्धान्त है।

शब्दावली में भारतीय लिपि स्वीकार कर लेने से लिप्यंतरण का प्रश्न स्वतः आ जाता है क्योंकि अन्य भाषाओं से लिये गये शब्दों को देवनागरी लिपि में लिखना होगा। लिप्यंतरण की विशेषता यह होनी चाहिए कि लिप्यंतरित शब्द को पुनः उसी भाषा में ज्यों का त्यों लिखा जा सके। उदाहरणार्थ, एटम शब्द को अंग्रेजी में पुनः atom के रूप में लिखा जा सकता है क्योंकि लिप्यंतरित एटम शब्द का उच्चारण यथावत है। लेकिन अंग्रेजी में बहुत से ऐसे शब्द हैं जहाँ कई वर्ण अवाच्य होते हैं Hour (अवर), often (आ-फेन), शैडयुल (Schedule) आदि में h.t. ch, आदि अवाच्य वर्ण हैं। ऐसे अवाच्यवर्णी शब्दों का लिप्यंतरण देवनागरी में कैसे किया जावे ? क्या अवाच्य वर्ण छोड़ दिये जावें या उन्हें वाच्य बनाकर लिप्यंतरित किया जावे, जिससे उन्हें पुनः तत्तन भाषाओं में लिखने में सुगमता हो सके। लिकर और लेकर ऐसे ही शब्द हैं जिनके इस लिप्यंतरित रूप को पुनः मूलभाषा में लिखने पर licker, laiker आदि लिखना पड़ेगा। ऐसी लिप्यंतरण विसंगतियाँ पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं जिनका निराकरण शब्दावली के अगले संस्करण में अवश्य ही किया जाना चाहिये।

शब्दावली निर्माण के सिद्धान्तों में लिप्यंतरण मूल-भाषा विशेषतः अंग्रेजी के उच्चारण के अनुरूप रखने का मत स्थिर किया गया है। लेकिन भारतीय भाषाओं की दृष्टि से यह काफी भ्रम उत्पन्न करता है क्योंकि भारतीय भाषायें लेखन व उच्चारण में पर्याप्त वैज्ञानिक हैं। उनमें कोई अनुच्चरित शब्द नहीं होता है। इसी प्रकार इनमें एक वर्ण या स्वर का उच्चारण स्थिर होता है। लेकिन अंग्रेजी भाषा पर यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है। यहाँ नोर को Norr लिखा जाता है। यदि हम Knorr का लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अनुरूप नौर करते है तो यह अंग्रेजीकरण करने पर Norr हो जावेगा। फलतः भारतीय लिप्यंतरण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि अंग्रेजी में अनुच्चारित शब्दों को भी लिप्यंतरण में स्थान दिया जावे। इस रूप में नौर, क्नोर होगा और उसका मूलभाषान्तरण भी सही होगा। Hehner (हेनर), नुसडन (Knusden) आदि ऐसे ही शब्द हैं। यह तथ्य स्वीकार करना इसलिये भी आवश्यक है कि भावी पीढ़ी प्रायः अंग्रेजी ज्ञान में काफी कमजोर रहेगी। अतः उसकी सुविधा एवं अर्थ का अनर्थ रोकने के लिये भी यह दृष्टिकोण नितांत संगत प्रतीत होता है। जर्मन, फ्रांसीसी व अमेरिकी अंग्रेजी भाषाओं में भी अनुच्चरित वर्ण नहीं होते।

अंग्रेजी भाषा में उच्चारण और हिज्जे सम्बन्धी विसंगतियों की भरमार है। इसलिये भी उच्चारण-अनुरूपता लिप्यंतरण का वैज्ञानिक आधार नहीं ली जानी चाहिये। यहाँ मैं आपको शब्दावली से ही ऐसे शब्दों की सूची दे रहा हूँ जो एक ही वर्ण से प्रारम्भ होते हैं लेकिन उनका लिप्यंतरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है :

a.	आ	ए	ऐ	अ
	all	ampere	ऐल्यूमीनियम	अरेबान
	आरब्यूनिट		ऐम्पा	
	गानाइट			
ae	ई	ए	ऐ	
	actio	—ais	aerosol	

e	अ ई etvos नइोलीकरण अटवस	ए ecgonic	ऐ eder	इ इलेस्टोमीटर	आ Kerr (कार)
o	आ Odling	उ Orsted	oe Oestrogen (एस्ट्रोजन)		
i	इ एडियाल	आई आईसेटिन	उ उलमान	यू यूडेल	अ Unquantised (अनक्वांटीकृत)

मिश्रित स्वरों के विषय में भी ऐसी ही सूची बनाई जा सकती है। कोई भी इस बात की कल्पना कर सकता है कि उच्चारण की अनुरूपता पर आधारित लिप्यंतरण की वैज्ञानिकता उपरोक्त उदाहरणों की पृष्ठभूमि में कितनी उदात्त हो सकती है ? सबसे अच्छी बात तो यह होती कि हम भारतीय स्वरों का मानक रोमनीकृत रूप बना लेते और तब रोमन शब्दों को लिप्यंतरित करते। उदाहरणार्थ a को हम 'अ' मान लें e को इ मान लें, ai को ऐ मान लें, o को ओ मान लें, i को 'ई' मान लें......' इत्यादि और तब अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण करें तो हमें पुनः लिप्यंतरण करने में काफी सुविधा होगी। यही नहीं, विदेशी भी, जो देवनागरी पढ़ना चाहेगा, उसे सरलता हो जावेगी। हम यह मानकर नहीं चल सकते कि वैज्ञानिक ज्ञान का हिन्दीकरण ज्ञान की सीमा बाँध देगा और हिन्दी करण हमारे स्तर को कमजोर करेगा। हम यह मान्यता रखते हैं कि कुछ ही समय में हम अपनी योग्यताओं व कार्यों के अनुरूप अपने ज्ञान से विश्व के अन्य भागों को भी प्रभावित करेंगे और उन्हें अन्य भाषाओं के समान हमारी भाषा पढ़ने के लिये भी उत्सुक होना होगा।

अब मैं एक दूसरी कठिनाई पर आता हूँ जो प्रायः सभी लोगों ने भिन्न अवसरों पर अनुभव की होगी। प्रायः अच्छे कोष वे माने जाते हैं जिनमें संज्ञा, शब्दों का लिंग-संकेत दिया रहे। वर्तमान वैज्ञानिक शब्दावली में ऐसे संकेतों का अभाव है। हाँ, शब्दों के लिंग के सम्बन्ध में एक सिद्धान्त जरूर माना गया है-अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को पुलिंग रूप में ही, (अन्यथा कारण न होने पर) प्रयुक्त करना चाहिये। यह सिद्धान्त भी पर्याप्त व्यावहारिक कठिनाइयां उत्पन्न करता प्रतीत होता है, यद्यपि यह सिद्धान्त ही व्यावहारिक सिद्धान्त माना जाना चाहिये। रघुवीरी युग में संस्कृत मूलकता के कारण गैस को वाति करते थे। वातु शब्द भी स्त्रीलिंग है। पर गैस शब्द को स्त्रीलिंग किस आधार पर मानेंगे ? इस लिये हाइड्रोजन गैस तैयार किया जाता है या तैयार की जाती है, इसमें कौन वाक्य सही होगा ? हम सभी धातुओं के अन्तर्राष्ट्रीय नाम ले रहे हैं। पर उनका लिंग ? बहुत से प्रक्रमों का भी यही हाल है। वस्तुतः बहुत से मौलिक और अनुवादित ग्रथनें के समीक्षकों ने इस प्रश्न पर समुचित मानकीकरण किये बिना ही संशोधन किये हैं। शब्दावली सिद्धान्त के अनुसार सभी तत्व और प्रक्रम प्रायः पुलिंग ही माने जाने चाहिये और उनका इसी रूप में प्रयोग होना चाहिये। यह सही है कि ऐसी मान्यता से हमारी चली आती हुई जड़ प्रवृति को एकवार पुनः प्रघात सा लगेगा, पर नई शब्दावली का मूल सिद्धान्त ऐसे प्रघातों को उत्पन्न करना रहा है। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिये कि हम इन्हें सह सकें और नयी मानक भाषा में वैज्ञानिक तथ्यों को प्रस्तुत कर सकें।

एक तीसरी कठिनाई की ओर भी आपको संकेत करना चाहता हूँ। शब्दावली में तत्वों एवं यौगिकों के अन्तर्राष्ट्रीय नाम मानने का सिद्धान्त अपनाया गया है। पर इससे कहीं कहीं विश्रृंखलन भी हो गया है। उदाहरणार्थ-लोह पेंटा कार्बोनिल। बहुत से लोग अपने शोध पत्रों में भी ताम्र, रजत इत्यादि शब्दों का प्रयोग कर रहे

हैं, जो पूर्वाभ्यास का फल है, पर इसे बदलने की नितांत आवश्यकता है। शब्दावली में भी जहाँ ऐसे विसंगत नाम दिये गये हैं, उन्हें परिवर्तित करना श्रेयस्कर होगा।

अन्त में, हम सभी को यह जानना बहुत आवश्यक है कि वर्तमान शब्दावली क्या-कोई भी शब्दावली एक पथ-प्रदर्शक का काम करती है। वह पूर्णतः दोषरहित हो, सर्वथा परिपूर्ण हो, ऐसा नहीं माना जा सकता। ज्ञान-विज्ञान के क्षितिजों के बढ़ने के साथ ही उसमें भी वैज्ञानिक दृष्टि से परिवर्तन, संयोजन एवं संशोधन होते रहा करते हैं। इसे अपरिवर्ती मानना एवं यथावत ग्रहण कर लेना इसकी उपयोगिता की सही दिशा नहीं है।
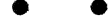
● ●

- **अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।**

- **हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।**

मानव जीवनोपयोगी टेरीलीन

□ लक्ष्मीकान्त सिंह

आजकल टेरीलीन, टेरीकाट, टेरीवूल आदि प्रकार के वस्त्रों का विकास बड़े जोर पर है। वस्त्रों के निर्माण में टेरीलीन का उपयोग दिन प्रतिदिन बड़ी तेजी से बढ़ता चला जा रहा है। वास्तव में 'टेरीलीन' एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथा अल्पव्ययी कपड़ा साबित हो रहा है। परन्तु क्या पहनने वालों ने कभी यह भी सोचने का प्रयत्न किया है कि आखिर यह टेरीलीन है क्या ! टेरीलीन कपड़ों के तन्तु कैसे बनते हैं ?

वास्तव में टेरीलीन एक प्रकार का रासायनिक तन्तु है। प्राकृतिक तन्तु और टेरीलीन तन्तुओं की अपनी अपनी अलग अलग विशेषताएँ हैं, अतः स्वाभाविक रूप से टेरीलीन तन्तुओं को प्राकृतिक तंतुओं से स्थानापन्न नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक वालेश एच० कैरोथर्स, ने सर्वप्रथम नाइलोन तंतु को कृत्रिम रूप में तैयार किया। यह वैज्ञानिक अमेरिका में अपना शोधकार्य कर रहे हैं। वैज्ञानिक कैरोथर्स ने अनुभव किया कि उपयुक्त अणुभार वाले पौलीएस्टरों को कृत्रिम तन्तुओं में आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है। इसके बाद ब्रिटिश के वीनफील्ड ने अनुभव किया कि एक खास पौलीमर (बहुलक) 'पाली-एथिलीन टेरीथैलेट' में तन्तु देने के उत्तम गुण विद्यमान हैं। इसी बहुलक के अन्तिम शब्द टेरीथेलेट के नाम पर टेरीलीन नाम प्रचलित हुआ।

कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं कि 'डिपडाईशर्ट', 'क्रीजबैसशर्ट' तथा अन्य तरीके की विशेष रोचक पोशाकों को पहनने वाले लोग यह नहीं जानते कि यह उपयोगी टेरीलिन कितने ही वैज्ञानिक अनुसंधानों का परिणाम है। यहाँ हम टेरीलिन के उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं।

जब बैन्जीनपेरा डाइकार्बोक्सलिक एसिड यानी टेरीथैलिक एसिड की एथिलीन के साथ संघनन क्रिया की जाती है तो बहुलक पाली एथिलीन टेरीथेलेट प्राप्त होता है। ये पदार्थ खनिज तेलों के भंजन से पैदा होते हैं। यह क्रिया निम्न रासायनिक समीकरण से स्पष्टतया समझी जा सकती है।

$$\underbrace{nHO-(CH_2)_2-OH}_{\text{एथिलीन ग्लाइकाल}}+\underbrace{nHOOC-C_6H_4-COOH}_{\text{टेरीथैलिक एसिड}}$$

$$\downarrow \text{संघनन}$$

$$H-[O-(CH_2)_2-O.\ CO(C_6H_4)-CO]_nOH$$

पोलीएथिलीन टेरीथेलेट
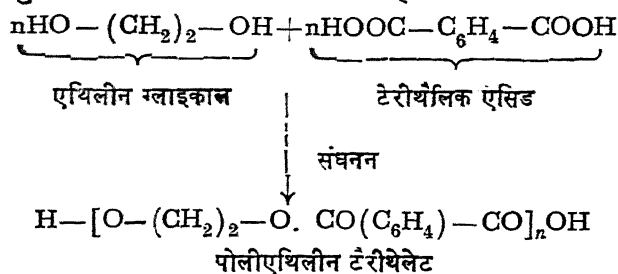
इस प्रकार से प्राप्त पदार्थ का बहुलीकरण (पौलीमराइजेशन) कम दबाव तथा उच्च तापक्रम पर किया जाता है।

एथिलीन ग्लाइकाल तैयार करने की विधियाँ

(1) इस कच्चे पदार्थ के प्राप्त करने के लिये पहले एथिलीन की हाइपोक्लोरस एसिड से क्रिया कराई जाती है जिससे एथिलीन क्लोर हाईड्रिन प्राप्त होता है। कैलसियम हाईड्राक्साइड एवं एथिलीन द्वारा क्लोर हाइड्रिन के जल अपघटन से एथिलीन ग्लाइकाल प्राप्त होता है।

$$\underbrace{CH_2{=}CH_2}_{\text{एथिलीन}} + \underset{\text{हाइपोक्लोरस एसिड}}{\overset{OH}{\underset{Cl}{|}}} \rightarrow \underset{\text{एथिलीन क्लोर हाइड्रिन}}{\overset{CH_2OH}{\underset{CH_2Cl}{|}}}$$

$$\overset{CH_2OH}{\underset{CH_2Cl}{|}} + Ca(OH)_2 \rightarrow \underset{\text{एथिलीन ग्लाइकाल}}{\overset{CH_2OH}{\underset{CH_2CH}{|}}} + CaCl_2$$
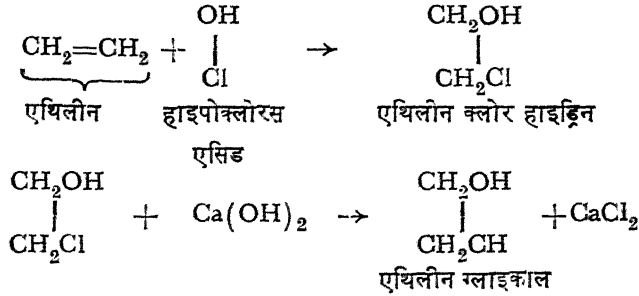
(2) उत्प्रेरक की उपस्थिति में हवा द्वारा एथिलीन के आक्सीकरण से एथिलीन आक्साइड मिलता है, जिसको जल अपघटित कर एथिलीन ग्लाइकाल प्राप्त किया जा सकता है।

$$\underset{\text{एथिलीन}}{H_2C{=}CH_2} \xrightarrow[\text{(उत्प्रेरक की उपस्थिति में)}]{\text{आक्सीकरण}} \begin{matrix} CH_2 \\ CH_2 \end{matrix}\!\!>\!O \xrightarrow{(-H_2O)} \underset{\text{एथिलीन ग्लाइकाल}}{\overset{CH_2OH}{\underset{CH_2OH}{|}}}$$
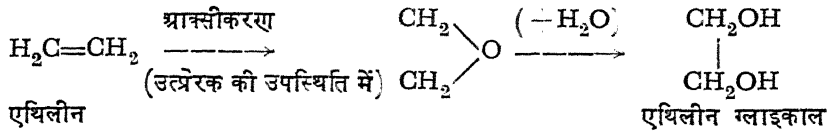
(3) तीसरी विधि में उच्च दाव पर उत्प्रेरक की उपस्थित में फारमलडिहाइड, कार्बनडाइआक्साइड और हाइड्रोजन की रासायनिक क्रिया कराने से भी एथिलीन ग्लाइकाल प्राप्त होता है।

$$HCHO + CO + 2H_2 = \underset{\text{एथिलीन ग्लाइकाल}}{\overset{CH_2OH}{\underset{CH_2OH}{|}}}$$
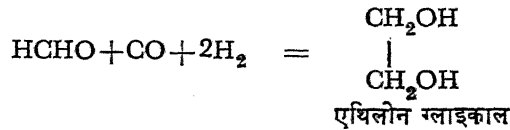
टेरीथैलिक एसिड प्राप्त करने की विधि

जब पैराजालीन का आक्सीकरण नाइट्रिक एसिड द्वारा किया जाता है तो शुद्ध टेरीथैलिक एसिड प्राप्त होता है। चूंकि टेरीथैलिक एसिड अपने आर्थो तथा मेटा समअवयवों से पूर्णतः मुक्त होना चाहिये अतः पैराजालीन में भी इसके इन अवयवों की अशुद्धियाँ नहीं होना चाहिये। इस विधि में टेरीथैलिक एसिड की बहुत ही कम मात्रा प्राप्त हो पाती है। अतः टेरीथैलिक एसिड प्राप्त करने के कई अन्य तरीके जिनमें कम दबाव पर उत्प्रेरक की उपस्थिति में वायु का आक्सीजन द्वारा आक्सीकरण किया जाता है, प्रयोग में लाये जाते हैं।
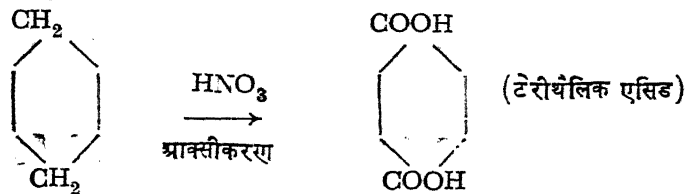
टेरीलिन के गुण व विशेषताएँ—

1. टेरीलीन तंतु काफी मजबूत होते हैं। यह गीली अथवा सूखी दोनों ही अवस्थाओं में काफी घर्षण रहित और प्रतिरोधक होता है।

2. इसका डाई-इलेक्ट्रिक स्थिरांक अत्यधिक होता है।

3. टेरीलीन तन्तु या सूत दो प्रकार के होते हैं; एक साधारण लगिष्णुता सूत दूसरे विशेष लगिष्णुता सूत। प्रथम प्रकार का सूत कपड़ों के लिये तथा दूसरे प्रकार का अन्य औद्योगिक इस्तेमाल में प्रयुक्त होता है।

4. यह सभी कृत्रिम तन्तुओं से अधिक ताप सहन कर सकता है अर्थात् इसमें अन्य तन्तुओं की अपेक्षा आग लगने की सम्भावना बहुत कम है। परन्तु टेरीलिन सूत जल्दी ही पिघलना शुरू कर देता है।

5. टेरीलीन पर अकार्बनिक खनिज अम्लों तथा कार्बनिक-अम्लों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

6. टेरीलीन में कुछ ऐसे रसायनिक गुण विद्यमान हैं कि इसमें कीड़े आदि नहीं लगते।

7. टेरीलीन पर बहुत से पदार्थों की विभिन्न क्रियाएँ होती हैं, जो तापक्रम, घोल की सान्द्रता तथा निमज्जन के समय पर आधारित होती हैं।

8. कार्बन विघाय जैसे एसीटोन, बेन्जीन, क्लोरोफार्म आदि का टेरीलीन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

● ●

शोक प्रकाश

"विज्ञान" परिवार रूसी अन्तरिक्ष यान सोयूज़-11 के तीन चालकों के दुर्घटनाग्रस्त होकर मृत हो जाने पर शोक प्रकट करता है और हुतात्माओं की शान्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता है।

अन्तरिक्ष के रहस्यों को भेदते हुये 23 दिनों तक लगातार अपने यान में सकुशल रहते हुये इन तीनों चालकों की अचानक मृत्यु उतरते समय हुई। कहा जाता है कि उनके यान में या तो ऐसी गैसें भर गईं जो चालकों के लिये घातक सिद्ध हुईं या फिर दीर्घ अवधि तक अन्तरिक्ष में रहने के बाद जब वे पृथ्वीमण्डल की ओर अग्रसर हो रहे थे तो उनके शरीर इस परिवर्तन को सहन न कर सके।

जो भी हो, इससे अन्तरिक्ष-अनुसन्धान की दिशा में होने वाली प्रगति को धक्का लगा है।

—सम्पादक

लूना-१ से लूना-१६ तक

□ दिगवीर सिंह

सोवियत अन्तरिक्ष स्टेशनों द्वारा चन्द्रमा का अनुसन्धान

2 **जनवरी,** 1959—"लुना-1" ("मेच्ता") ; सौर प्रणाली के अन्तर्गत प्रथम कृत्रिम उपग्रह ।

12 **सितम्बर,** 1959—"लुना-2" ; चन्द्रमा की सतह पर पहुँच गया ।

4 **अक्तूबर,** 1959—"लुना-3" ; इसने चाँद के इर्द गिर्द उड़ान भरी; पहली बार चन्द्रमा की दूसरी ओर का चित्र उतारा ।

2 **अप्रैल,** 1963—"लुना-4" चन्द्रमा अध्ययन सम्बन्धी कई समस्याओं को हल किया ।

9 **मई,** 1965—"लुना-5"; कोमल अवतरण के उपकरणों का परीक्षण ।

8 **जून,** 1965—"लुना-6"; स्टेशन के उपकरणों का परीक्षण ।

18 **जुलाई,** 1965—"जोंद-3"; स्टेशन के उपकरणों का परीक्षण ; चन्द्रमा के फोटो लिए और उन्हें पृथ्वी पर प्रेषित किया ।

4 **अक्तूबर,** 1965—"लुना-7"; कोमल अवतरण के उपकरणों का परीक्षण ।

3 **दिसम्बर,** 1965—"लुना-8"; कोमल अवतरण के उपकरणों का अतिरिक्त परीक्षण ।

31 **जनवरी,** 1966—"लुना-9"; कोमल अवतरण किया, चन्द्रमा के फ़ोटो पृथ्वी पर प्रेषित किये ।

31 **मार्च,** 1966—"लुना-10"; दुनिया का प्रथम कृत्रिम चाँद उपग्रह ।

24 **अगस्त,** 1966—"लुना-11"; द्वितीय सोवियत कृत्रिम चाँद उपग्रह ।

22 **अक्तूबर,** 1966—"लुना-12"; तीसरा सोवियत कृत्रिम चाँदउपग्रह ; चन्द्रमा की सतह के पूर्वनिर्धारित हिस्सों का निकट से फोटो उतारे ।

21 **दिसम्बर,** 1966—"लुना-13"; चन्द्रमा के प्राकृतिक दृश्य के फोटो पृथ्वी पर प्रेषित किए; चन्द्रग्रह की सतह के ऊपरी भाग के अनुसन्धान-कार्य ।

7 **अप्रैल,** 1968—"लुना-14"; चौथा सोवियत कृत्रिम चाँद उपग्रह ।

15 **सितम्बर,** 1968—"जोंद-5"; चन्द्रमा के निकट अन्तरिक्ष-अनुसन्धान ; पृथ्वी पर अवतरण ।

10 **नवम्बर,** 1968—"जोंद-6"; पृथ्वी–चन्द्रमा-पृथ्वी की दूरी पर उड़ान का अतिरिक्त परीक्षण ।

13 **जुलाई,** 1969—"लुना-15"; चन्द्रमा के इर्द-गिर्द उड़ान के दौरान नियंत्रण-उपकरणों का परीक्षण ।

8 **अगस्त,** 1969—"जोंद-7"; विभिन्न दूरियों से पृथ्वी और चन्द्रमा के रंगीन फोटो उतारे ।

12 **सितम्बर,** 1970—"लुना-16"; चन्द्रमा की सतह पर पूर्वनिर्धारित क्षेत्र में उतरा; मिट्टी का नमूना लिया, स्टेशन से राकेट के जरिये यह नमूना पृथ्वी पर सोवियत संघ के पूर्वनिश्चित इलाके में पहुँच गया ।

● ●

ब्रह्माण्ड दर्शन

□ निरंकार सिंह

यह सच है कि मनुष्य अब तक ब्रह्माण्ड की बहुत सी बातें जान चुका है। और यह भी सच है कि विज्ञान के विकास की गति इतनी तीव्र है कि कुछ कहा नहीं जा सकता है कि आने वाला कल कैसा होगा ? लेकिन यह और अधिक सच है कि शताब्दियों के परिश्रम और अध्ययन के बाद हमने जो कुछ जाना है हमारी अनन्त बेजानी हुई बातों के सामने शून्य के भी बराबर नहीं है। फिर भी जो कुछ भी हम जान सके हैं उससे यह प्रकट है कि यह ब्रह्माण्ड बड़ा विचित्र, अद्भुत एवं सीमाहीन है। इसमें अनन्त दूरी है। अनन्त तारे हैं। हम जो छोटे छोटे तारे रात में देखते हैं वे वास्तव में बड़े बड़े सूर्य हैं। कुछ तो ऐसे तारे हैं जिनके समक्ष अपना सूर्य केवल एक कण के सदृश्य है।

सूर्य पृथ्वी के सबसे निकटतम तारा है जिसके मुख्यतः नौ ग्रह हैं। इन ग्रहों में से पृथ्वी भी एक है। चन्द्रमा, पृथ्वी का उपग्रह है जिसपर मानव के कदम पहुँच चुके हैं। ब्रह्माण्ड में स्थित ग्रहों, नक्षत्रों के बीच की दूरियों की अपेक्षा पृथ्वी और चन्द्रमा की दूरी इतनी कम है कि उसकी उपेक्षा की जा सकती है।

इस ब्रह्माण्ड में जो सबसे विस्मयकारी दृश्य है—वह है आकाश-गंगा (ग्लैक्सी) का दृश्य। रात्रि के खुले (जबकि चन्द्रमा न दिखाई दे) आकाश में प्रत्येक मनुष्य इसे नंगी आँखों से देख सकता है। देखने में यह हलके सफेद धुयें जैसी दिखाई देती है, जिसमें असंख्य तारों का बाहुल्य है। यह आकाशगंगा टेढ़ी-मेढ़ी होकर बही है। इसका प्रवाह उत्तर से दक्षिण की ओर है। पर प्रातःकाल होने से थोड़ा पहले इसका प्रवाह पूर्वोत्तर से पश्चिम और दक्षिण की ओर होता है। देखने में आकाश-गंगा के तारे परस्पर सटे से लगते हैं पर यह दृष्टि भ्रम है। परस्पर सटे हुये तारों
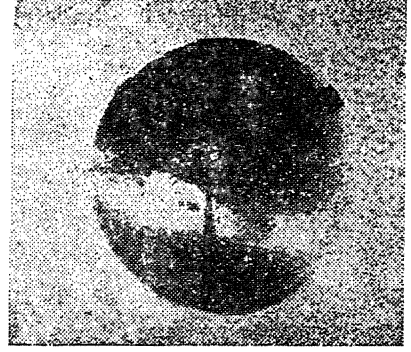
चित्र 1—हमारी आकाश गंगा

के बीच की दूरी अरबों मील हो सकती है। जब सटे हुये तारों का यह हाल है तो दूर दूर स्थित तारों के बीच की दूरी ऐसी संख्यातीत होगी जिसे कह पाना मुश्किल है। अतएव तारों के बीच व अन्य लम्बी दूरियाँ प्रकाश वर्ष (लाइट ईयर) में मापी जाती है। एक प्रकाश वर्ष वह दूरी है जो प्रकाश एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेण्ड की रफ्तार से एक वर्ष में तय करता है। उदाहरण के लिए सूर्य व पृथ्वी के बीच की दूरी सवा नौ करोड़ मील है, प्रकाश यह दूरी सवा आठ मिनट में तय करता है। अतः पृथ्वी से सूर्य की दूरी सवा आठ प्रकाश मिनट हुई। जिन तारों से प्रकाश आठ हजार वर्षों में आता है उसकी दूरी हमने पौने सैंतालीस पद्म मील आँकी है। लेकिन तारे तो इतनी-इतनी दूरी पर हैं कि उनसे प्रकाश के आने में लाखों,

करोड़ों, अरबों वर्ष लग जाता है। इस स्थिति में हमें इन दूरियों को मीलों में व्यक्त करना सम्भव नहीं होगा, और कुछ समझ में ही आयेगा। अतएव 'प्रकाशवर्ष' की इकाई वैज्ञानिकों ने प्रयोग में लाना उचित समझा

मान लीजिये, ब्रह्माण्ड के किसी ओर नक्षत्रों आदि के बाद बहुत दूर-दूर तक कुछ नहीं है—लेकिन यह बात अन्तिम नहीं हो सकती है और मान लीजिये उसके बाद कुछ है तो तुरन्त यह प्रश्न सामने आ जाता है कि वह कुछ कहाँ तक है और उसके बाद क्या है ? इसीलिये हमने इस ब्रह्माण्ड को अनादि और अनन्त माना है। इसके अतिरिक्त अन्य शब्दों में ब्रह्माण्ड की विशालता, व्यापकता व्यक्त करना सम्भव नहीं है।

अन्तरिक्ष में कुछ स्थानों पर टेलिस्कोप से गोल कुछ गुच्छे दिखाई देते हैं। इन्हें 'स्टार क्लस्टर या ग्लोद्ययूलर स्टार' अर्थात् तारा गुच्छ कहते हैं। इसमें बहुत से तारे होते हैं जो बीच में घने रहते है किनारे बिरल होते हैं। टेलिस्कोप से आकाश में देखने पर कहीं-कहीं कुछ धब्बे दिखाई देते हैं। ये बादल के समान दिखाई देते हैं। इन धब्बों को ही निहारिका कहते हैं। इस ब्रह्माण्ड में असंख्य निहारिकायें हैं। उनमें से कुछ ही हम देख पाते हैं।

हमारी आकाश-गंगा (गैलक्सी) भी एक निहारिका है और हम उसी के बीच में हैं। निहारिकायें कई प्रकार की होती हैं, परन्तु दो मुख्य जातियाँ हैं, एक तो गांग (अंग्रेजी में गैलेक्टिक) और अगांग (एक्सट्रा गैलेक्टिक)। अगांग निहारिकाओं को अब आकाशगंगा (अंग्रेजी में गैलक्सी) भी कहा जाता है। अगांग निहारिकाओं का नाम ऐसा इसलिये पड़ा कि वे हमारी आकाशगंगा के ही समान हैं। इस प्रकार की निहारिकायें अन्तरिक्ष में एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर हैं। गांग (गैलेक्टिक) निहारिकायें वस्तुतः हमारी आकाशगंगा के ही अन्तर्गत है अथवा उसके आस पास हैं।

इस प्रकार इस ब्रह्माण्ड में असंख्य आकाशगंगायें हैं। अब रेडियो दूरदर्शी जैसी सशक्त दूरबीनों के द्वारा इतने दूरस्थ पिंडों को देखा गया है जिनका प्रकाश हम तक पहुँचने में 50 करोड़ वर्ष लगता है। अर्थात् हम उन्हें उस रूप में देखते हैं जैसे कि वे 50 करोड़ वर्ष पूर्व थे। क्वासर, पल्सर, अदृश्य इन्फ्रारेड तारे तथा खंडहर आदि ऐसे रेडियो
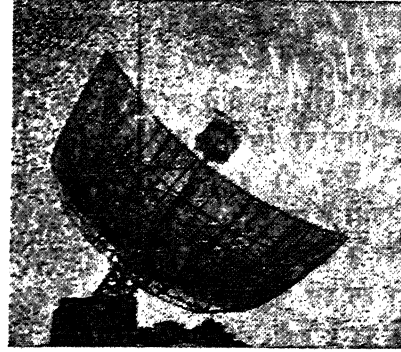
चित्र 2—रेडियो दूरदर्शी

पिंडो का पता चला है जिनकी रचना ही बड़ी विचित्र है। वैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि क्वासर सम्भवतः ब्रह्माण्ड के सबसे दूरस्थ पिंड हैं। पल्सर अपनी धुरी पर घूमता हुआ न्यूट्रान तारा है अर्थात् वह नाभिकीय द्रव्य का ठंडा और बहुत ठोस पिंड है। यह एक सुनिश्चित अवधि के अन्तर से अतितीव्र रेडियो तरंगे छोड़ता है। अदृश्य इन्फ्रारेड तारे ऐसे पिंड हैं जो दिखाई तो नहीं देते पर रेडियो तरंगे छोड़ते रहते हैं। विनष्ट खंडहर आदि पिंड उस महापिण्ड के भग्नावशेष हैं जिसके विस्फोट से ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई है।

ब्रह्माण्ड विद्या के क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों (लगभग 37 वर्ष पूर्व) की गवेषणाओं के फलस्वरूप महत्पूर्ण बातें सामने आई हैं। विख्यात वैज्ञानिक हबल ने अपने निरीक्षणों से ब्रह्माण्ड विद्या की एक नई प्रक्रिया का पता लगाया। हबल ने सुदूर स्थित आकाश गंगाओं से आने वाले प्रकाश का परिक्षण किया और बताया कि पृथ्वी तक आने में प्रकाश तरंगों का कम्पन बढ़ जाता है। यदि इस प्रकाश का वर्णपट प्राप्त करें तो वर्णपट का झुकाव लाल रंग की ओर अधिक होता है। इस प्रक्रिया को डोपलर प्रभाव कहते हैं। ध्वनि सम्बन्धी 'डोपलर प्रभाव से बहुत लोग परिचित

होंगें। जब हम प्रकाश के सन्दर्भ में डौपलर प्रभाव को देखते हैं, तो दूर से आने वाले प्रकाश का झुकाव नीले रंग की ओर होता है और दूर जाने वाले प्रकाश स्रोत के प्रकाश का झुकाव लाल रंग की ओर होता है। इस प्रकार हबल के निरीक्षणों से यह मालूम हुआ कि आकाश-गंगायें हमसे दूर जा रही हैं। हबल ने यह भी बताया कि उनकी पृथ्वी से दूर हटने की गति, पृथ्वी से उनकी दूरी के अनुपात में है। माउन्ट पोलोमर वेधशाला में स्थित 200 सेंन्टमीटर व्यास वाले लेन्स की दूरबीन से खगोलशास्त्रियों ने आकाश-गंगाओं के दूर हटने की प्रक्रिया को देखा है।

दूरबीन से ब्रह्माण्ड को देखने पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम इस ब्रह्माण्ड के केन्द्र बिन्दु हैं और बाकी चीजें हमसे दूर भागती जा रही हैं। यदि अन्य आकाश-गंगाओं में प्रेक्षक भेजे जाँय तो वे भी यही पावेंगे कि हम इस ब्रह्माण्ड के केन्द्र बिन्दु हैं बाकी आकाश गंगायें हमसे दूर भागती जा रही हैं। अब जो सही चित्र हमारे सामने आता है वह यह है कि ब्रह्माण्ड का समान गति से विस्तार हो रहा है और इस विशाल प्रारूप का प्रत्येक बिन्दु अन्य वस्तुओं से दूर हटता जा रहा है।

हबल के अनुसंधान के बाद ब्रह्माण्ड के सिद्धान्तों का प्रतिपादन आवश्यक हो गया था। यह वह समय था जब कि आइन्स्टीन का सापेक्षवाद का सिद्धान्त अपनी शैशवावस्था में था। लेकिन फिर भी आइन्सटीन के सिद्धान्त को सौरमण्डल सम्बन्धी निरीक्षणों पर आधारित निष्कर्षों की व्याख्या करने में न्यूटन के सिद्धान्तों से अधिक सफलता प्राप्त हुई थी। न्यूटन के अनुसार दो पिंडों के बीच की गुरुत्वाकर्षण शक्ति, एक दूसरे पर तत्काल प्रभाव डालती है लेकिन आइन्सटीन ने यह साबित कर दिया कि पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण की शक्ति की गति प्रकाश की गति के समान तीव्र नहीं हो सकती। यहाँ पर आइन्सटीन ने न्यूटन से बाजी मार ली और इसी कारण लोगों को आइन्सटीन का सिद्धान्त पसन्द आया।

रेडियो, आकाश गंगा तथा क्वासर, पल्सर, इन्फ्रारेड तारों की खोज से ब्रह्माण्ड का यह नया रूप यदि अलौकिक नहीं तो चमत्कारी अवश्य बन गया है।

● ●

● "विज्ञान" आपकी पत्रिका है। इसके लिये तन, मन, धन से अपना योग दें।

मैरिनर-9 मंगलग्रह की ओर

अमेरीका ने मंगल यान मैरिनर-9 को 31 मई सन् 1971 के प्रातः भारतीय समयानुसार 5 बजकर 53 मिनट पर सफलता पूर्वक मंगल ग्रह की यात्रा हेतु अंतरिक्ष में छोड़ दिया। इस यान ने अपनी लम्बी यात्रा 11-खंडीय ऊँचे एटलस-सेटर राकेट पर केपकीनेडी से प्रारम्भ की।

उड़ान के 14½ मिनट पश्चात् दो चरणीय राकेट ने कैमरा लेजाने वाले हिस्से को 630 मील दूरी पर उसके लक्ष्य यानी मंगलग्रह की तरफ 24,600 मील प्रति घंटे की चाल से धकेल दिया।

यह यान 14 जून को मंगल ग्रह की कक्षा में प्रविष्ट हुआ। वैज्ञानिकों का कहना है कि मैरिनर-9, चन्द्रग्रह की महत्व पूर्ण जानकारी देगा।

सोयुज-11 द्वारा अंतरिक्ष यात्रा

सोवियत रूस ने अन्तरिक्ष यान सोयूज-11 को तीन यात्रियों सहित 6 जून को भारतीय समयानुसार 10 बज कर 25 मिनट पर छोड़ा और वह थोड़े ही समय में कक्षा प्रविष्ट कर गया। यह यान रूस ने अपने पूर्वरत सोयूज यान से सम्बंध स्थापित करने के उद्देश्य से भेजा है।

इससे पूर्व रूस ने सैल्युत, जिसमें मानव नहीं है, 24 अप्रैल को छोड़ा था, जो अभी भी अंतरिक्ष में परिक्रमा कर रहा है।

सोयुज-11 के कमान्डर लैफ्टीनेंट कर्नल ज्योना दि ब्रोवास्की हैं।

अपैलो-15 अंतरिक्ष यात्रा हेतु तैयार

कैप कनेडी (फ्लोरिडा) के प्रक्षेपण स्थल पर चन्द्रयान अपैलो-15, जो 26 जुलाई 71 को अपनी यात्रा प्रारम्भ करेगा, अपने पूर्व अभ्यास हेतु एकदम तैयार स्थिति में है। इस यान को भारतीय वायुसेना के चीफ मार्शल श्री पी० सी० लाल ने 10 जून को निकट से देखा है, और विशेष जानकारी हासिल की है।

363 फीट ऊँचे इस विशाल राकेट को तीन मील दूर स्थित प्रक्षेपण स्थल तक ले जाने में 8 घन्टे का समय लगा।

नवम्बर में मंगलग्रह: मार्स-2,

सोवियत संघ ने 20 मई 71 को एक विशेष समाचार द्वारा मार्स-2 के छोड़े जाने का समाचार दिया। मार्स-2 छह महीने में मंगलग्रह तक की अपनी यात्रा पूरी करके नवम्बर में वहाँ पहुँच जायेगा। यह ग्रहों के बीच में एक स्वचालित स्टेशन के रूप में कार्य करेगा।

इस समाचार के अनुसार मार्स-2 का वजन चार टन से भी अधिक है और मंगलग्रह तक पहुँचने में लगभग 47 करोड किलोमीटर की यात्रा करनी पड़ेगी।

अंतरिक्ष व सौरमण्डल के बारे में अध्ययन की दिशा में मार्स-2 एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा और यदि इसमें सफलता मिलती है तो अंतरिक्ष दौड़ में रूस एकबार फिर आगे निकल जायेगा।

इससे पूर्व नवम्बर 1962 में रूस ने मार्स-1 अंतरिक्ष में छोड़ा था, परन्तु मई 1963 में पृथ्वी का उससे रेडियो सम्पर्क टूट गया था। मार्स-1 का वजन केवल 893·5 किलोग्राम था।

युवा जगत—

'विज्ञान' के युवा पाठकों के लिये यहाँ कुछ वैज्ञानिक प्रश्न दिये जा रहे हैं। पाठक ध्यान से पढ़कर 1 मिनट में ही सही उत्तर जानने की कोशिश करें, जिससे वे अपनी बुद्धि की तत्परता की परख कर सकते हैं।

1. जब तुम रबर की एक कड़ी छड़ को खरखरे ऊन से रगड़ते हो तो छड़ ऋणावेषित हो जाती है। यह ऋण आवेश इस छड़ पर ऊन में से आता है, और इस तरह ऊन धनावेषित रह जाती है।

अब अगर इस छड़ को किसी आवेश रहित सैमी-कन्डक्टर (धातु-चालक) के पास ले जाया जाय तो धातु पर प्रेरित आवेश उत्पन्न हो जाता है।

2. 4 ओम और 12 ओम के दो प्रतिरोधों को श्रेणीक्रम में जोड़ा जाता है। उनका संयुक्त प्रतिरोध ?

(अ) 12 ओम होगा।

(ब) 16 ओम होगा।

(स) 3 ओम होगा।

(द) 8 ओम होगा।

3. एक चुम्बक को लोहे के टुकड़े से बारबार पीटने पर चुम्बकीय शक्ति—?

(अ) बढ़ जायेगी।

(ब) कम हो जायेगी।

(स) कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

4 रात्रि के समय तारे टिमटिमाते रहते हैं। इसका कारण है—?

(अ) पृथ्वी और तारों के बीच सापेक्ष गति का होना।

(ब) तारों से आने वाला प्रकाश वायुमंडल की भिन्न भिन्न पर्तों से आवर्तित होता है।

(स) तारे ही रुक रुक कर प्रकाश उत्पन्न करते हैं।

विज्ञान-वार्ता

रेगिस्तान में भोजन की फैक्टरियाँ

ऐरोजिना विश्वविद्यालय अमरीका में वातावरण सम्बन्धी शोधकार्य उच्चस्तर पर चल रहा है। यहाँ वैज्ञानिकों ने हाल ही में भविष्यवाणी की है कि समुद्र से लगते हुये रेगिस्तानी इलाकों में भी विद्युत्तशक्ति, जल और भोजन पर्याप्त मात्रा में सुलभ किया जा सकता है।

इंजन चालित विद्युत जनरेटरों से निःसृत होने वाले फालतू ताप का उपयोग समुद्र जल को शुद्ध करने के लिये किया जा रहा है। और इस प्रकार शुद्ध होने वाले जल को पाइपों द्वारा सब्जी की उन फसलों में पहुँचाया जाता है, जो "ग्रीन हाउसों" के अन्दर नियंत्रित वातावरण में उगाई जाती हैं। इन 'ग्रीन हाउसों' का निर्माण प्लास्टिक की बड़ी बड़ी खोलियों को हवा से फुलाकर किया जाता है।

ऐरोजिना विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों का यह अनुमान है कि शुद्ध किया गया समुद्र जल कृषि के लिये आर्थिकदृष्टि से लाभप्रद सिद्ध नहीं होगा लेकिन उन्होंने एक और विकल्प खोज लिया है। उन्होंने एक ऐसी कृषि प्रणाली की खोज की है जिसमें जल की बहुत कम मात्रा की जरूरत होगी। राकफेलर प्रतिष्टान के तत्वावधान में ऐसी प्रणाली का विकास किया गया है, जिसके अन्तर्गत समुद्र तटवर्ती रेगिस्तानी इलाकों को बिजली, जल और भोजन सुलभ करने की व्यवस्था की गई है।

कृत्रिम उपग्रहों द्वारा दूर से निदेशन

अमेरिका के राष्ट्रीय उड्डयन और अन्तरिक्ष प्रशासन ने अभी हाल में पृथ्वी के साधनों का सर्वेक्षण करने में उपग्रहों के प्रयोग के बारे में एक अन्तर्राष्ट्रीय-प्रशिक्षण गोष्ठी आयोजित की थी। भाग लेने वाले देशों में भारत भी था। भारत और अमेरिका तथा अन्य क्रियाशील देशों द्वारा दूर निदेशन अर्थात् दूर से टोह लेने के क्षेत्र में काफी कुछ किया जा रहा है, जो मानव जीवन के लिये बहुत उपयोगी होगा।

दूर से टोह लेने या पता लगाने की विधि एक सापेक्षतया नई प्रविधि है जिसके जरिये दूरस्थ या छिपी हुई वस्तुओं का अध्ययन किया जा सकता है। आमतौर से आकाश या अंतरिक्ष से वस्तुओं के बारे में पता लगाया जाता है। यह प्रविधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि पृथ्वी की सभी चीजों से विद्युत चुम्बकीय विकिरण होता है जो ज्यादातर केवल आँख या आप्टीकल कैमरों की पकड़ से बाहर होता है, किन्तु उन्हें अवरक्त परास में देखा जा सकता है। कैमरे के कलरफिल्टर विभिन्न स्तरों पर अवरक्त विकिरण की माप कर सकते हैं और इस प्रकार आसानी के साथ विभिन्न वस्तुओं की पहचान कर सकते हैं।

अमेरिका शीघ्र ही पृथ्वी के साधनों का सर्वेक्षण करने वाला उपग्रह बनाकर तैयार करने वाला है। अभी तक इस कार्य में विमानों का प्रयोग किया जाता था।

भारतीय प्रतिनिध डा० पिचरोदी ने गोष्ठी को बताया था कि भारत भी दूरीय सर्वेक्षण में काफी रुचि रखता है। भारत में यह कार्य नारियल के वृक्ष को लगने वाले रोग का शीघ्र पता लगाने कि लिये काफी किया गया है।

हमारे पास इस बात के प्रमाण मौजूद है कि भारतीय मानसूनों तथा हवाओं की उच्छृंखलताओं का समुद्र सतह के तापमानों की विषमताओं से गहरा संम्बन्ध है। यदि इनका यथा समय पता चल जाये तो इससे 5 दिन पूर्व मानसून की उच्छृंखलताओं के विषय में भविष्यवाणी किये जाने की संभावना है। इसका भारत की कृषि पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा।

स्वपनों की जानकारी,

हाल ही में जापान में एक ऐसा यंत्र बनाया गया है जो मनुष्य के स्वप्नों व निद्रा के बारे में पूरी जानकारी देता है।

आविष्कारकर्त्ता ने यह पाया कि स्वप्न देखते समय मनुष्य की आँख की पुतलियाँ विशेष प्रकार से चलती हैं। यह पता लगाने के लिए कि मनुष्य स्वप्न किस समय देखना शुरू करता है, उसकी आँखों व जबड़ों के पास एलेक्ट्रोड लगा दिए जाते हैं। स्वप्न आरम्भ होने के पाँच मिनट पश्चात एक घंटी अपने आप बजना प्रारम्भ कर देती है जिससे वह जग जाता है और तब उससे देखे हुए स्वप्न का पूरा हाल पूंछ कर टेपरिकार्ड कर लिया जाता है, तथा बाद में डाक्टर देखे हुए स्वप्न के बारे में पूरा अध्ययन करता है।

आविष्कारकर्त्ता का कहना है कि इस यंत्र के द्वारा रात्रि में स्वप्न देखते हुए किए हुए कार्यों (नींद में चलना आदि) को पूरी तरह रोका जा सकता है तथा न्यूरोसिस (एक विशेष प्रकार का उन्माद) के लिए भी इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

सोयाबीन एक पोषक खाद्य पदार्थ—

सोयाबीन पोषक तत्वों का भंडार है। अभी तक प्रोटीन, एक मात्र स्रोत दालों और तरकारियों से ही प्राप्त की जाती रही है किन्तु कृषि विद्वानों ने सोयाबीन जैसे अन्न को आविष्कृत और उत्पादित कर प्रोटीन की कमी को पूरा किया है और आशा की एक नई किरण स्फुटित की है। उत्तर प्रदेश के सभी हिस्सों में इसकी पैदावार की जा सकती है। अभी तक यह रूस से आयात की जाती रही है।

सोयाबीन के विशेष जानकारों ने बताया है कि इसमें 40 प्रतिशत प्रोटीन, 20 प्रतिशत वसा, 30 प्रतिशत कार्बोज तथा 10 प्रतिशत अन्य लवण तथा तत्व होते हैं। अतः सोयाबीनको पोषक तत्वों का भंडार कहा जाना अधिक उपयुक्त है।

सोयाबीन के लिये जल निकास युक्त दुमट या बलुई दुमट भूमि सर्वोत्तम होती है। गर्मी के मौसम में गहरी जुताई कर खरपतवार नष्ट कर दिये जाते हैं तत्पश्चात वर्षाऋतु में दो-तीन जुताई के बाद खेत पूर्ण तैयार हो जाता है। इसकी बुआई जुलाई में की जाती है। इसकी फसल प्रायः $3\frac{1}{2}$ महीने में पककर तैयार हो जाती है। सोयाबीन की पैदावार लगभग 8 कुंतल प्रति एकड़ होती है।

सोयाबीन के अनेकानेक उपयोग हैं। मुख्यतौर पर इससे दूध, दही, खोआ, मिठाइयाँ, आटा, दाल, सब्जी तथा विभिन्न प्रकार के पकवान तैयार किये जाते हैं। इसका दूध पौष्टिकता की दृष्टि से गाय के समान गुणकारी होता है। व्यावसायिक तौर पर इसका प्रयोग वनस्पति घी, एन्टी वायोटिक दवा एवं शिशुओं के आहार व दूध बनाने में किया जाता है।

(विशेष जानकारी के लिये उपनिदेशक (आलू), कृषि भवन, लखनऊ को लिखें।)

सम्पादकीय

हिन्दी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्तां हमारा

बेचारी हिन्दी रह रह कर दक्षिण भारत वालों की कोपभाजन बनती आई है। इस बार जब राष्ट्रपति अध्यादेश हुआ कि प्रधानमंत्री पद तथा अन्य मन्त्रियों के पदों को हिन्दी में सम्बोधित किया जावे तो तमिलनाडु ने सर्वप्रथम विरोध का स्वर ऊँचा किया। स्थिति कहीं गम्भीर न हो जाय, यह सोचते हुये अध्यादेश वापस ले लिया गया। हिन्दी अपमानित होकर रह गई। हिन्दी वाले क्या करते। टुकुर टुकुर ताकते रहे। उन पर पहले से हिन्दी साम्राज्यवाद लाने का आरोप जा लगा है।

हिन्दी वालों का भी एक वर्ग है जो यह अनुभव करता है कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में हिन्दी की प्रगति के लिये 14 करोड़ रुपये नियत हुये थे जिसमें से, केवल कुछ लाख रुपये व्यय हो सके हैं। सरकार ने हिन्दी के विकास के लिये समुचित यत्न नहीं किये। सरकारी ढील के कारण कार्यालयों में भी हिन्दी बहिष्कृत रही आई है।

अवश्य ही हिन्दी को लेकर जो तू-तू मैं-मैं हो रही है या होती आई है उससे लाभ के बजाय हानि हुई है। राज्य सरकारों को हिन्दी में उच्चतरीय पुस्तकें लिखने या अनूदित करने के लिये एक-एक करोड़ की राशि प्राप्त हुई है। हिन्दी ग्रंथ अकादमियों के माध्यम से पाँच राज्यों में यह कार्य चालू है। किन्तु कार्य की प्रगति अवश्य ही सन्तोषजनक नहीं है जिसके लिये पुनः सरकारी मशीनरी जिम्मेदार है।

विगत 23 वर्षों से हम हिन्दी को 'राष्ट्र भाषा' के रूप में सुनते चले आये हैं किन्तु वह किस क्षेत्र में अपने इस पद की अधिकारिणी सिद्ध हुई है, यह किसी को ठीक से ज्ञात नहीं हो पाया। सरकारी रिपोर्टों के अनुसार कार्यालयों में हिन्दी का प्रवेश नहीं के बराबर है। वैज्ञानिक शिक्षा एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनने में हिन्दी को सफलता नहीं मिली। कहा जाता है कि हिन्दी में उच्चस्तरीय मौलिक ग्रंथों का अभाव है। किन्तु पिछले 10 वर्षों में हिन्दी को समृद्ध बनाने के जो प्रयास हुये हैं या जो मौलिक अथवा अनूदित ग्रंथ छपे हैं, उनसे लोग जानकर भी अनजान बने रहना चाहते हैं।

परतन्त्रता काल में चाहे कवि रहे हों या राजनीतिज्ञ, सभी एक स्वर से हिन्दी की हिमायत करते रहे और जब देश स्वतंत्र हो गया और हम चतुर्दश शती आगे बढ़ गये तो अब हिन्दी का विरोध अपने चरम पर पहुँच चुका है। ऐसा क्यों हुआ यह कोई कहने या सोचने को तैयार नहीं। यहाँ तक कि आम जनता में भी अंग्रेजी के प्रति व्यामोह उत्पन्न हो गया है। वे अपने पुत्र-पुत्रियों को पब्लिक स्कूलों में पढ़ाना, घर में अंग्रेजी का प्रयोग करना, अंग्रेजी के समाचार पत्र पढ़ना आदि को प्रश्रय देते हैं। उन्हें तो

नौकरी चाहिये और वह अभी अंग्रेजी की बू पर मिलती है।

ऐसी स्थिति में हिन्दी सेवकों, हिन्दी प्रेमियों एवं हिन्दी भाषियों का परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे भाषा के प्रश्न को ठीक-ठीक समझें और पूर्व मान्यताओं को आदर दें। यह हो नहीं सकता कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी न होकर कोई अन्य भाषा हो ले। हां, व्यवधान आ सकते हैं। तो फिर वे आवें। भाषा का प्रवाह किसी के रोके नहीं रुकता। अन्ततः हिन्दी अपने पद पर आसीन होकर रहेगी।

विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग से हिन्दी को यह पद और जल्दी प्राप्त हो सकेगा।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं यन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० |3|5|

भाग 108 } अषाढ़ 2028 विक्र०, 1892 शक जून 1971 { संख्या 6

अन्तरिक्ष अभियान और हमारी धरती की समस्यायें

□ निरंकार सिंह

बहुधा यह प्रश्न उठाया जाता है कि अन्तरिक्ष कार्य-क्रम के लिये विपुल धनराशियों का व्यय कहाँ तक ठीक है? क्या मनुष्य अपने उपलब्ध साधनों का सही उपयोग कर रहा है? क्या अन्तरिक्ष कार्यक्रमों को तब तक स्थगित कर देना उचित नहीं है जब तक हमारी धरती पर की समस्यायें समाप्त नहीं हो जाती हैं? इसमें सन्देह नहीं आज हमारी धरती पर करोड़ों लोग अशिक्षित तथा भूखे हैं और मनुष्य का औसत जीवन स्तर अभी बहुत निम्न स्तर पर है। अतएव यह आवश्यक है कि पहले इन दिशाओं में ध्यान दिया जाय। इन भव्य कार्यों की ओर ध्यान देना अतिविकसित तथा विकासशील देशों का प्राथमिक कर्त्तव्य होना चाहिये। इनके कार्यों के लिये भी विपुल धन और पर्याप्त समय की आवश्यकता है और इसके लिये 'बस' युद्धों और शस्त्रों की होड़ पर पैसा लगाना बन्द करने की आवश्यकता है।

हमारी धरती पर की समस्याओं को देखकर अन्तरिक्ष कार्यक्रमों को बन्द कर देना भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रगति प्रतीक्षा करने से नहीं होती। इतिहास साक्षी है कि संसार की अधिकांश प्रगति हर युग की असंतुष्टावस्था एवं समास्याओं के भीतर ही हुई है। और जहाँ तक अन्तरिक्ष पर होने वाले खर्च का सवाल है वह चाहे जितना बड़ा क्यों न हो, मगर किसी भी तरह वह अपव्यय नहीं है। अनन्तः इससे सौ गुना लाभ है। अन्तरिक्ष अनुसंधान, अब यह सभ्यता को गुणात्मक दृष्टि से एक नई मंजिल पर पहुँचा चुका है।

अन्तरिक्ष अनुसंधान में पहले के फलस्वरूप सार्व-भौमिक संचार के नये और संभावनापूर्ण साधनों और एक सफल विश्वव्यापी मौसम सेवा की उपलब्धी हुई है, नाव तथा विमान संचालन में उन्होंने नये सिद्धान्तों का सूत्रपात किया है।

हजारों वर्ष पहले लोग कहते थे कि दुनिया के चारो ओर पारदर्शी शीशे की खोल है। कापर्निक्सकी दूरदर्शिता,

ब्रूनी के कृतित्व, गैलीलियो तथा न्यूटन की बुद्धिमता और त्सियोल्कोव्सकी की वैज्ञानिक प्रतिभा का यह श्रेय प्राप्त है कि आँख पर से शीशे का यह पर्दा हट गया। इन महान् वैज्ञानिकों ने जो उत्कृष्ट कार्य शुरू किया था, उसे जारी रखने के लिए तमाम वैज्ञानिक कार्य कर रहे हैं। इन सभी वैज्ञानिकों के कार्य के फलस्वरूप आज मनुष्य चाँद पर पहुँच गया है। रूस का स्वचालित अन्तरिक्षयान लूना-17 भी चन्द्र धरातल पर उतर गया है। लूना-17 ने चन्द्रमा पर एक स्वतःचालित गाड़ी भी उतारी। यह गाड़ी उतरने के स्थल से कोई 20 मीटर आगे तक गयी और वहाँ पर उसने परीक्षण कार्य आरम्भ किया। इस गाड़ी का नियन्त्रण इलेक्ट्रानिक उपकरणों द्वारा पृथ्वी से ही किया जा रहा है। उस गाड़ी पर एक फ्रेंच लेसर यन्त्र को चन्द्रमा पर अपनी उपस्थिति का बोध कराने के लिए एक फ्रेंच परावर्तक के साथ लगाया गया है। यह रूस की अन्तरिक्ष यात्रा के क्षेत्र में महान् विजय है, क्योंकि इससे मनुष्य के प्राण को जोखिम में डाले बिना अन्य ग्रहों के लिए यात्रा का मार्ग भी प्रशस्त हो गया है। ताजा समाचारों के अनुसार अमेरिका का अपोलो 14 भी चन्द्रमा पर उतर कर आ गया है उसने वहाँ अनेक परीक्षण भी किये हैं।

अन्तरिक्ष अभियान में प्रगति के फलस्वरूप खगोल विज्ञान के क्षेत्र में क्रान्ति हो गयी है और यह विकसित होकर व्यवहारिक विज्ञान का रूप लेने लगी है। मनुष्य ने चन्द्रतल पर पैर रख दिये हैं, स्वचालित अन्तरिक्ष स्टेशन शुक्र पर उतरे हैं और मंगल के पास से गुजरे हैं। पिछले 10-15 वर्षों में हमने ग्रहों के बारे में इतनी जानकारी हासिल कर ली है, जितनी कई सदियों में नहीं की थी। आकाश के कुछ पिंडों की जानकारी मिली है। रेडियो-तारे, क्वासर, पल्सर, अदृश्य इन्फ्रेरेड तारे तथा विनष्ट खण्डहर आदि ऐसे पिण्डों का पता चला है जिनकी रचना इस विश्व की रचना से भिन्न हो सकती। नवीन तथ्यों के प्रकाश में ब्रह्माण्ड विद्या अर्थात् खगोलिकी से सम्बन्धित हमारी धारणाएं शिथिल होती जा रही हैं। उदाहरणार्थ, अब से लगभग 20 वर्ष पहले हायल, गोल्ड और बोल्डी आदि ने ब्रह्माण्ड के जिस स्थिर अवस्था के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड अविनाशी और अजन्मा है, उसकी सत्यता में शंका उत्पन्न हो गयी है। क्वासर और पल्सर की खोज से फैलते हुए ब्रह्माण्ड के किसी कोने से कुछ सूक्ष्म निस्सरित तरंगें इस बात का संकेत दे रही हैं कि अरबों वर्ष पूर्व महाप्रलय की जो ज्वाला स्फुटित हुई थी जिसके फलस्वरूप हमारा भौतिक ब्रह्माण्ड बना, उसी के अवशेष से ये तरंगें आ रही हैं।

अन्तरिक्ष अभियान के ही द्वारा मौसमविदों ने बड़ी-बड़ी उपलब्धियां प्राप्त की हैं। धरती के कृत्रिम उपग्रहों की सहायता से उन्होंने वायुमण्डल की प्रक्रियाओं के बारे में बहुत ज्यादा जानकारी प्राप्त कर ली है। वैज्ञानिक खोजों और अनुसन्धानों का मूल्य आँकड़ों में प्रस्तुत करना कठिन है। मेरा निश्चित विश्वास है कि मौसम विशेषज्ञों के लिए पिछले वर्ष बड़े लाभदायक सिद्ध हुए हैं। इन कुछ वर्षों के भीतर उन्होंने अन्तरिक्ष युग शुरू होने के पहले वैज्ञानिकों द्वारा पूरी एक सदी के भीतर किये गये कामों से अधिक काम कर लिया है।

टेलिविजन देखकर लाखों लोग ज्ञान प्राप्त करते हैं। धरती पर स्थित टेलिविजन सम्पूर्ण संसार की सेवा नहीं कर सकता। परन्तु धरती के कृत्रिम उपग्रहों का उपयोग करके यह समस्या हल हो सकती है। सम्भवतः अगले कुछ वर्षों में अन्तरिक्ष सम्बन्धी पढ़ाई शिक्षा में लागू हो सकती है।

मनुष्य चन्द्रमा पर पहुँच चुका है और उसकी अन्य भावी योजनाएं बनती चली जा रही हैं। आज चन्द्रमा पर, कल मंगल पर और परसों वह किसी अन्य ग्रह पर होगा। यद्यपि चन्द्रमा पर वायुमण्डल नहीं है और मानव जीवन के लिए उन मूल तत्वों का अभाव है, जिन्हें वह जानता है। फिर भी कुछ ऐसी सम्भावनाएं हैं जिनसे यह कल्पना करना सरल है कि वह यहाँ कृत्रिम दशाओं में रहने का प्रयत्न कर सकता है। वह ऐसे आश्रय बनाकर

समुदाय में रहने की चेष्टा कर सकता है जिनमें रासायनिक विधि से निर्मित आक्सीजन का संचार होता रहे। मनुष्य के अन्तरिक्ष में प्रवेश ने पृथ्वी के प्राकृतिक साधनों की खोज और वशीकरण की अपार सम्भावनाएं उन्मुक्त कर दी हैं। नाव तथा वायुयान संचालन में नये सिद्धान्तों का सूत्रपात हो रहा है।

हम शुद्ध पार्थिव आवश्यकताओं के लिए ब्रह्माण्ड सेवाओं के संघटन के निकट पहुँच गये हैं, जैसे सार्वभौमिक भौगोलिक, भूभौतिकीय तथा भूवैज्ञानिक खोज, उपयोगी खनिजों की तलाश भूपृष्ठ के अन्वेषण और कृषि समस्याओं के हल के लिए कृत्रिम उपग्रहों का उपयोग। ये सब अन्तरिक्ष अभियान के लाभ हैं।

अन्तरिक्ष की खोज की प्रगति के साथ हमारे जीवन में बहुत सारे परिवर्तन होंगे। जाँच सम्बन्धी विभिन्न उड़ानें, पर्यवेक्षण चौकियाँ पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले स्पुतनिक जिनपर रहने का इन्तजाम होगा। लोगों को सूचित करेंगे कि हमारी पृथ्वी के चारों ओर क्या हो रहा है। अन्तरिक्ष विजय उसे भविष्य की ओर ले जा रही हैं। अन्त में इस दिशा में संकेत दे देना भी उचित रहेगा कि हो सकता है कुछ राष्ट्र इस अन्तरिक्ष विजय का दुरुपयोग करने में भी पीछे न रहें। अब सब कुछ निर्भर करता मनुष्य के चरित्र पर यदि विज्ञान की महान् उपलब्धियों का उपयोग सही दिशा में करेगा तो उसका भविष्य उज्जवल होगा।

हमारी पृथ्वी पर निर्धनता, अशिक्षा, दास व्यापार और बन्दूकों पर आधारित 'सभ्य' नर हत्या का भी अभी अस्तित्व है लेकिन इतिहास की गति इन कारकों से निर्धारित नहीं होती है। अन्त में सामाजिक न्याय सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के आदर्श उसे निश्चित करते हैं। अतएव अन्तरिक्ष अभियान मनुष्य के उन शक्तिशाली इन्जनों में से एक हैं जो उसे भविष्य की ओर ले जा रहा है।

● ●

लेखकों से निवेदन

- **'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।**
- **लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।**
- **अस्वीकृत लेखों को वापस मंगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।**

रसायनज्ञ आचार्य चाणक्य

□ डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

आसिन्धु हिमाचल पर्यन्त जम्बू द्वीप का विशाल भूभाग भारत प्रचण्ड पौरुष एवं प्रतिभा सम्पन्न केवल एक चक्रवर्ती सम्राट द्वारा प्रशासनीय राष्ट्र है, इसकी सर्वप्रथम न केवल सुस्पष्टता कल्पना करने वाले वरन् सुयोग्य चन्द्रगुप्त मौर्य के माध्यम से अयोग्य नन्दों का समूल उच्छेदन कर अपने स्वप्न को पर्याप्त सीमा तक साकार कर दिखाने वाले महान् तपस्वी एवं त्यागी आचार्य चाणक्य का नाम, विशुद्ध वैज्ञानिक विषय रसायन शास्त्र के साथ सम्बन्ध देखकर हो सकता है, बहुत से पाठक कौतुकान्वित हो जायें। सामान्यतः, केवल मात्र राजनीतिज्ञ के रूप में जाने वाले आचार्य विष्णुगुप्त के संबंध में कुछ ऐसी भी मान्यताएं प्रचलित हैं कि आजकल राष्ट्र के प्रयेक क्षेत्र के प्रत्येक स्तर में प्रविष्ट, देश को खोखला बना देने में संलग्न कुकूटनीतिज्ञों के समान ही चाणक्य भी क्रोध एवं भाव्ना प्रतिशोध की भावना से पूर्ण एक ऐसे कूटनीतिज्ञ थे, जो सत्ता, यश एवं धन लौलुपतापूर्ण लक्ष्यों की सिद्धि के लिए सुनीति, सिद्धान्त एवं सद्सदविवेक को तिलांजली देकर निकृष्ट से निकृष्ठतर उपाय काम में लाने की दुष्ट नीति को हो राजनीति सनझते थे। किन्तु तथ्य एवं ऐतिहासिक अध्ययन इन मान्यताओं की विपरीत निष्कर्षों पर पहुँचाते हैं। आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य की अनुपम कृति, " कौटिलीयम् अर्थशास्त्र " का अध्ययन स्पष्टः यह दर्शाता है कि, कौटिल्य ने केवल अर्थशास्त्र, राजनीति एवं आचारशास्त्र के विदग्ध विद्वान थे वरन् अपने युग के रसायनशास्त्र के भी श्रेष्ठ ज्ञाता थे। सहज ही यह सोचा जा सकता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय के अपने अध्ययन एवं अध्यापन काल में ज्यौतिष, आयुर्वेद औशनस नीति आदि में पांडित्य प्राप्त करने के साथ ही आचार्य चाणक्य ने रसायन शास्त्र का भी सांगोयांग ज्ञान प्राप्त किया होगा। बाल्यःकाल में ही पथ के दुखःद कंटको को समूल बिनष्ट करने के लिये तक्र के प्रयोग एवं नन्दों के महाभात्य राक्षस के 'विषकन्या-षडयंत्र' से चन्द्रगुप्त की रक्षा संबंधी सुप्रचलित किवंदन्तिया उनकी प्रबल इच्छा एवं संकल्पशक्ति की प्रतीक होने के साथ ही चाणक्य रसायनशास्त्र सम्बंधी ज्ञान की पचिायिका भीं है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि प्रस्तुत लेख का लक्ष्य यह नहीं है कि चाणक्य को रसायन शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित घोषित किया जाय एवं उनके ग्रंथ को मूख्यतः रसायनशास्त्र का ग्रंथ सिद्ध किया जाय। हमें तो कौटिल्य की बहुमूखी प्रतिभा के रसायन शास्त्रीय पहलू के दिग्दर्शन के साथ ही यह भी अवलोकित करना है कि चन्द्रगुप्त चाणक्य कालीन भारत में रसायन शास्त्र की क्या अवस्था थी।

आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य एवं कौटिलीयम् अर्थ शास्त्रम्

चाणक्य ऋषि के वंशज होने से चाणक्य एवं कटल गोत्रीय होने से कौटिल्य कहलाने वाले महामना आचार्य का मूख्य नाम विष्णुगुप्त था। यद्यपि चाणक्य के द्वारा 'कोटिलीयम अर्थशास्त्रम्' नामक ग्रन्थ के लिखे जाने के संबंध में विद्वानों में विवाद है, किन्तु कामन्दक के नीतिसार, दण्डी के दशकुमारचरित, वात्स्यायन के कामसूत्र, सोमदव सूरि के नीतिवाक्तामृत, नन्दिसूत्र एवं प तंत आदि में प्राप्य उल्लेखों के आधार पर, हम यह मान सकते हैं कि ईसा से लगभग तीसरी शताब्दि पूर्व में "कौटिलीयम् अर्थ

शास्त्रम् " चाणक्य द्वारा विचरित किया गया। इस ग्रन्थ को आधुनिक दृष्टिकोण से सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय मैसूर के प्राच्य पुस्तकालयाध्यक्ष श्री श्याम शास्त्री को दिया जा सकता है, जिन्होंने (सन् 1906-1909) तंजौर के एक पण्डित द्वारा प्राप्त हस्तलिखित प्रति के आधार पर अंग्रेजी में अनुवाद आदि सहित इसका प्रकाशन किया। इसके पश्चात, पंजाब की ओरिएन्टल सिरीज के अन्तर्गत, प्रोफेसर जाली ने, त्रावणकोर राज्य की संस्कृत सीरीज के अन्तर्गत गणपति शास्त्री ने एवं दिल्ली से पं० गंगा प्रसाद शास्त्री तथा लाहौर से पं०उदयवीर शास्त्री ने भी 1934-45 के मध्य इसके संस्करण प्रकाशित किये। आइये, अब हम 'कौटिलीयम् अर्थशास्त्र' में रसायन शास्त्र की विविध शाखाओं से संबन्धित प्रचुर प्रकरणों का संक्षिप्त समीक्षात्मक अध्ययन करें।

'कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्' में रसायनशास्त्र संबंधी सन्दर्भ—

धातु कर्म :— चाणक्य के ग्रन्थ में धातुकर्म के सम्बन्ध में व्यापक एवं विस्तृत विवरण है। एवं इसके द्वितीय अधिकरण के द्वादश अध्ययन में चाँदी, ताम्र, सीसे, त्रपु (टिन रांगा) एवं लोहे की खानों के लक्षणों का स्पष्ट वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ, ऊसर, चित्र विचित्र वर्ण की तथा पकी हुई मिट्टी के ढेले के आकार भूमि में रांगा पाया जाता है,

"ऊबरकर्बूरः पक्वलोष्ठ वर्णो वा त्रपुधातुः (2-12-14)"।

विविध अयस्कों से धातुएं प्राप्त करना

चाणक्य ने स्पष्ट लिखा है कि स्वर्ण अयस्कों का वर्ण हरिद्रा के समान पीत अथवा हरिताल (As_2O_3) के समान रक्त पीत होता है। अत्यंत तप्त अवस्था में इस अयस्क में से धूम्र एवं फेन निष्कासित होते हैं। कौटिल्य के अनुसार रजत अपनी प्राकृतिक अवस्था में, सीसा, अंजन (Sb_2O_3) तथा लोह-सीसा (PbS-FeS) के साथ प्राप्त होता है। यहाँ यह ध्यानाकर्षणीय है कि रजत के साथ सीसा एवं अंजन की प्राकृतिक प्राप्ति व आधुनिक वैज्ञानिकों को सुविदित है और यह महत्वपूर्ण है कि प्राचीन भारतीय रसायनज्ञ इस तथ्य से सुपरिचित थे। चाणक्य ने विभिन्न वर्णों के ताम्र अयस्कों का उल्लेख कर, सुवर्ण एवं रजत अयस्कों के पृथक्करण तथा उनसे विशुद्ध धातुओं की प्राप्ति की विधियों का स्पष्ट वर्णन किया है। कठोर धातु खण्डों के मृदुकरण के लिये लिखा गया है कि मद्य, मधुक (मुलेठी), तेल, गुड़, सूरणकन्द आदि के योग से तीन बार भावना देने से ही अत्यन्त कठोर धातु खण्ड कोमल हो जाता है। " यवमाषतिल पलशपीलुक्षारै — — — — मार्दवकरः " (2।12।9)। अशुद्ध धातु खण्डों को शोधित करने के लिए उन्हें कई रासायनिक पदार्थों में क्रमशः निमज्जित करने आदि का निर्देश करते हुए आचार्य विष्णुगुप्त ने लिखा है कि तेषाम् अशुद्धा मूढ़ गर्भा वा तीक्ष्णमूत्रक्षार—महिष खर कर—तद्वलेपा वा विशुद्धाः स्त्रवन्ति।" (2।12।8), अर्थात् तीक्ष्ण मूत्रक्षार, गोरोचन-आदि में प्रतिवाप करके तपाने पर अशुद्ध, धातु, शुद्ध एवं द्रावित होकर, बह निकलते हैं। यह भी कहा गया है कि रजत को शुद्धावस्था में प्राप्त करने के लिये उसे सीसा या हड्डियों के साथ तप्त किया जाय। कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त विधि आजकल, (क्युपेल्लेशन) के नाम से प्रयुक्त की जाती है।

आकाराध्यक्ष एवं लोहाध्यक्ष :—राज्य में खदानों एवं धातुओं के उत्पादन विक्रय आदि की सुव्यवस्था के लिये चाणक्य ने आकाराध्यक्ष (डाइरेक्टर जनरल आफ माइनस) एवं लोहाध्यक्ष के पदों की व्यवस्था का निर्देश दिया है। अकाराध्यक्ष के लिये शुल्ब धातुशास्त्र (खनिजों से धातु निकालना), रस पाक एवं मणि राग का विशेषज्ञ होना आवश्यक था। यह अभीप्सित था कि यह अधिकारी एवं इसके योग्य सहायक किट्ट, भूषा, भस्म आदि यंत्रों एवं उपकरणों की सहायता से नई खानों का पता चला सकें तथा धातुओं के उत्पन्न एवं विशुद्धता पर नियंत्रण कर सके। लोहाध्यक्ष का कर्तव्य था कि वह समस्त धातुओं के विविध उपकरणों के निर्माण, वितरण, आदि

पर नियंत्रण रखे।

अक्षशाला, सुवर्णाध्यक्ष खन्यध्यक्ष एवं लवणाध्यक्षः— खन्यध्यक्ष का कर्त्तव्य था शंख, हीरा, रत्न, मणि, मुक्ता, प्रवाल यवक्षार आदि का प्रबन्ध करना एवं इनके क्रय विक्रय का नियंत्रण। लवणाध्यक्ष, नमक के निर्माण, शोधन एवं विक्रय पर नियंत्रण करता था बिना राजाज्ञा के लवण निर्मित नहीं किया जा सकता था। इसी प्रकार स्वर्ण संबंधी विविध रासायनिक प्रयोगों के लिए अक्षशाला एवं जाम्बुनद, शातकुंभ, वेणव आदि प्रकार के स्वर्णों के निर्माण एवं नियंत्रण के लिये सुवर्णाध्यक्ष के संबंध में भी चाणक्य ने लिखा है।

स्वर्ण की परीक्षा, कसौटी, स्वर्ण की चोरी

विविध प्रकार की कसौटियों का वर्णन करते हुए, कसौटी निकर्ष परखींचीगई स्वर्णरेखाओं केवर्णके आधार पर स्वर्ण की शुद्धि जानने की विधियों का वर्णन किया गया है। यह कहा गया है कि कमल के केसर के समान रंग की, चिकनी, कोमल और चमकदार निकर्ष रेखा, श्रेष्ठ स्वर्ण की सूचक होती है "केसरस्निग्धो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च निकष रागः श्रेष्ठः। (2।13।24।)।" यह कहा गया है कि छल करने वाले, खोटे स्वर्ण को अधिक रगड़ कर अथवा शुद्ध स्वर्ण को हलके रगड़ कर अथवा नखों के मध्य गेरू के कण दबाकर उनकी रेखाएं खींच कर प्रवचना का प्रयत्न करते हैं। स्वर्णकार लोग विभिन्न भूषाओं का प्रयोग कर, तथा परिकुट्टन, अवच्छेदन, उल्लेखन, परिमर्दन आदि विधियों से सोना चुरा लिया करते हैं, (2।14।49-53)। उदाहरणार्थ, सोने के गहने में से कुछ सोना काट कर उसके स्थान में समान भारक सीसा भर देना, अवच्छेदन कहलाता है। हरिताल, कुरुविन्द, हिंगुल आदि के चूर्ण से रगड़ कर सोना चुरा लेने की विधि परिमर्दन कहलाती है।

उग्रन्तपथ के अनुसार पीतल, कांस्य, आदि धातुओं के निर्माण में मौर्यकालीन विद्वान् दक्ष थे। न केवल भारत में ही, वरन् विदेशों में भी रसायन-शास्त्र के उच्चकोटि के विद्वान् आचार्य चाणक्य के युग में विजय दुदुंभी बजाते थे, विशाल स्तर पर धातुओं, अयस्कों, रत्नों एवं रासायनिक पदार्थों का आयात-निर्यात होता था, (2।93।)।

मोती, रत्न मणि आदि

कौटिल्य ने जहां अयस्कों, धातुओं लवणों आदि के संबंध में व्यापक रूप से लिखा है वहीं बहुमूल्य रत्नों, मौक्तिक आदि के विभिन्न प्रकारों, शुद्धता के परीक्षण की विधियों आदि के संबंध में भी विस्तार से विचार व्यक्त किये हैं। मणियों की सूर्यकान्त आदि जातियों को गिनाते हुए कहा गया है, शुद्ध स्फटिक, मूलाटवर्णः शीतवृष्टिः, सूर्यकांतश्चेति मणयः, 11।2।33।" जबकि मोतियों के नौ प्रकार इस तरह बतलाये गये हैं "ताम्र मणिकं पाण्ड्यकवाटकं, पाशिक्यं, कौलेयं, चौर्णय, माहेन्द्रं, कार्दमिकं, स्त्रौतसीयं हूलादीयं, हैमवतंच मौक्तिकं" (2।11।(2)। मणियों के मन्दराग आदि दोष भी वर्णित किये गये हैं "मन्दरागप्रमः सशर्करपुष्पच्छिद्रः खण्डो पर्विद्धो लेखाकीर्ण इति दोषाः 2।11।35)। इसी प्रकार इन्द्र नील मणि, वैदूर्य, श्वेतमणि, हीरे, प्रवाल आदि के संबंध में प्रशस्त विवरण प्राप्य है।

विष एवं विष परीक्षा

अर्थशास्त्र के अनुसार (2।18।12-13) निम्न पदार्थ विष हैं अथवा विष वर्ग के हैं, कालकूट वत्सनाम, हालाहल, मेषश्रंग, मुस्ता, कुष्ठ, महाविष, वेल्लितक, भक्त कालिंगक, उष्टक आदि। घड़े में सांप एवं कीट सड़ाने से भी विष निर्माण का उल्लेख है। भोजन में विषों की उपस्थिति का परीक्षण तथा इन विषों के निराकरण की विधियां भी चाणक्य को ज्ञातथीं। कहा गया है कि शाक आदि के रस में विष हो तो नीली पंक्ति जबकि मद्य और जल में काली, शहद में सफेद, दूध में लाल, दही में श्याम धारियां दीखती हैं, (1।21।15।16)।

रासायनिक धूम एवं संग्राम

अर्थशास्त्र के चतुर्दश अधिकरण में रासायनिक युद्ध विधि का मनोरंजक वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ, शत्रु सेना में ज्वर रोग उत्पन्न करने का रासायनिक साधन, पंच कुष्ठक, कोण्डिन्यक कीड़ा, अमतलास, मत्रु और महुआ के योग से निर्मित किया जाता है। "पंजकुष्ठक-कौण्डिन्यक राजवृक्ष मपु मुगप मधुयोघी ज्वरः ।14।1।25। इसी प्रकार अन्धीकर धूम के संबंध में कहा गया है कि सांप की केंचुल, गोबर, घोड़े की लीद और अन्धे सांप का सिर, इनको मिलाकर जलाने से भी अन्धीकर धूम तय्यार होता है, (14।1।12-13)। इसी प्रकार विष चिकाकर, प्राणहारक, मदन, प्रमेह, अमेह, उन्माद एवं कुष्ठकर योगों के वर्णन हैं।

रंगाई विज्ञान, चर्म, रेशम, ऊन के वस्त्रादि

चाणक्य ने चर्म व्यवसाय के संदर्भ में कान्तनावक, प्रेयक, किसी, महाविसी, श्यामिका, कदली, कान्तिका, चन्द्रोत्तरा और शाकुला आदि प्रकार के चमड़ों का उल्लेख किया है। (2।11।77-91) इसी प्रकार चीन पट्टा, कौशिक, पौण्ड्रक आदि रेशमी वस्त्रों तथा ऊन के आविक, भागधिक, सौवर्ण-कुड्यक आदि भेद बतलाये गये हैं (2।11।92-120)। इन विभिन्न वस्त्रों को नील, लाक्षा, मजिष्ठ आदि के योगों द्वारा रंगा जाता था ये वर्ण स्थायी रूप से वस्त्र को अस्तरित कर लेते थे। अनुपात भेद से सम्मित्रण करके विभिन्न वर्णों की सृष्टि भी की जाती थी, (4।1।24-26)।

किण्व, सुराएं तथा सुराध्यक्ष

चाणक्य ने शराबों के प्रमुख प्रकार लिखे हैं—मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय, एवं मधु। इनमें से प्रत्येक प्रकार की सुरा के निर्माण की विधी भी वर्णित की गई है। मेदक पसन्नासवारिष्ट मेरेयमधूनामुदक द्रोणं तण्डुलानामर्धाढक त्रयः प्रस्थः किप्वस्येति मेदक योगः"। मौर्य युग में सुराध्यक्ष नामक राजकीय अधिकारी नियुक्त होता था जिसके अधिकार एवं कर्त्तव्यों के अन्तर्गत सुराओं के निर्माण, सचंय, क्रय-विक्रय आदि की व्यवस्था थी (2।25।1।)। सुराएं, चांवल; इक्षुरस, द्राक्षा आदि पदार्थों से किण्वों (एंजाइम्स) की सहायता से बीज बंधित अथवा किण्वित (फरमेंन्ट) करके प्राप्त की जाती थीं। उदाहरणार्थ, पाठा, लोध्र, तेजोवती इलायची, वालुक (सुगन्धित द्रव्य), मधु, मुलहठइ, केसर, दारु हलदी, मरिच, पिप्पली इन सबके 5-5 कर्ब लेकर भेदक एवं प्रसन्ना नामक सुराओं का किण्व तय्यार किया जाता था (2।25।27।)। इन किण्व की सहायता से, बारह आढक (तौल) चांवल की पिप्टी, पांच प्रस्थ विग्व एवं जाति सम्भार (मसाला) मिलाने से प्रसन्ना नामक सुरा निर्मित होती थी द्वादशाढकं पिप्टस्य, प चप्रस्थाः किण्वस्य पुत्रकत्वक्, फलयुक्तां क जातिसम्भारः प्रसन्ना योगः (2।25।28)। मधुशालाओं में फलाम्ल एवं फल शीधु का विक्रय भी किया जाता था।" अराजपण्याः शतं शुल्कं दधुः फलाम्लाम्लशीनांघूच (2।25।38-29)।"

प्रस्तुत विषय के संबंध में और अधिक विवरण डा० सत्यप्रकाश एवं डा० प्र० चं० राय के ग्रंथों में तथा अर्थशास्त्र की मूल प्रतियों में पाया जा सकता है।

तपस्वी आचार्य चाणक्य को अपने समय के पाखण्डी विद्वानों का विरोध सहना पड़ा था। अपने विषय को पूर्णतः त्याग कर, विविध षड्यंत्रों एवं गतिविधियों में लीन रहने वाले किन्तु छल, छद्म एवं सत्ता के दुरुपयोग के द्वारा तथा-कथित विद्वान् के रूप में ख्याति प्राप्त कर लेने वाले कूटनीतिज्ञ, प्रत्येक युग में उदीयमान प्रतिभाओं को कुचल कर अपना अपना सम्राटत्व बनाए रखने का पुरजोर प्रयत्न करते आये हैं। स्वयं अनेकाग्र रहने वाले ऐसे कूटनीतिज्ञ, मां सरस्वती की विविध विषयों से अर्चना करने वाले साधकों पर एकाग्रताहीनता का आरोप लगाते आये हैं; किन्तु तथ्य तो यह है कि उत्कृष्ट प्रतिभाएं सदैव बहुमुखी होती हैं एवं जिस किसी भी क्षेत्र में प्रविष्ट होती हैं, उसका भण्डार भर देती हैं। उदाहरणार्थ, लोकमान्य तिलक मूलतः गणित की प्रतिमा थे, किन्तु

दैवयोग से उनका क्षेत्र राजनीति बन गया। सभी जानते हैं कि उन्होंने ज्योति, दर्शन, पत्र साहित्य, राजनीति आदि को समान रूप से पुनीत किया। इसी प्रकार आचार्य कौटिल्य की बहुमुखी प्रतिभा के संबंध में भी कहा जा सकता है। उन्होने अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, धर्म, कूटनीति आदि सभी क्षेत्रों में तो अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया ही किन्तु आचार-शास्त्र, रसायन शास्त्र आदि भी उनसे अछूते न रहे, अपितु, लाभान्वित भी हुए। राजनीति के अप्रतिम विद्वान् एवं विराट व्यक्तित्व के धनी आचार्य विष्णुगत चाणक्य, उनकी अमरकृति कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् के अध्ययन के आधार पर 'रसायनज्ञ आचार्य चाणक्य' भी अवश्य कहे जा सकते हैं।

● ●

न्यूट्रान नक्षत्र–पल्सर की खोज

□ श्याम मनोहर व्यास

विधाता का यह ब्रह्माण्ड अनन्त है। हमारी पृथ्वी की तरह अरबों ग्रह इस विशाल ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। सूर्य के समान दीप्तिमान अरबों खरबों तारे हैं। सूर्य भी एक तारा ही है!

आकाश में चमकने वाले असंख्य ज्योति-पिण्ड, सूर्य-चन्द्र, ग्रह तथा अन्य तारागण अनादि काल से मानव का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। अन्तरिक्ष-विज्ञान वेत्ता उनके बारे में जानने के लिये अनवरत प्रयत्नशील हैं।

सीमाहीन ब्रह्माण्ड में हमारा भूलोक विशाल महासागर में एक बूंद के समान है।

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार-ब्रह्माण्ड अपना पुन निर्माण कर रहा है। प्रयोगशाला में किये गये परीक्षणों से वस्तुतः यह सिद्ध होता है कि उच्च शक्ति के विकीरण वाले प्रोटोन कुछ परिस्थितियों में पदार्थ के साथ मिलकर परस्पर प्रक्रिया द्वारा बिद्युत् अणुओं और योग-कणों (पोजीट्रन्स) को जन्म दे रहे हैं। हार्वर्ड के डा० ह्लिप्ले का मत है कि ब्रह्माण्ड के अन्तः नक्षत्रीय दिक् में विचरण कर रहे ब्रह्माण्डीय रजतकण 15 अरब वर्षों में तारों का रूप धारण कर लेंगे। अमेरीका की माउन्ट-विल्सन वेधशाला से कई नई निहारिकाओं का पता चला है।

सबसे निकट का तारा प्राक्सिमा सेन्टोरी है। पृथ्वी से इसकी दूरी $4\frac{1}{3}$ प्रकाश-वर्ष मानी गई है।

यह एक युगल तारा है। व्याध तारा आकाश का सबसे चमकीला तारा है और यह भी सूर्य के काफी निकट है। व्याध का अपना एक उप-तारा भी है। ऐसे बौने नक्षत्रों की पृथक रूप से गणना की गई है। सबसे बड़े बौने-नक्षत्र का व्यास 24000 मील है।

आकार और दीप्ति के अनुसार तारों में भी बहुत अन्तर है। मृग-नक्षत्र का आर्द्रा नामक तारा सूर्य से 400 गुना बड़ा और 3600 गुना चमकीला है। पृथ्वी से इसकी दूरी 300 प्रकाश वर्ष है। कई तारे हमारी पृथ्वी से भी छोटे हैं। 'वान-मानेन' तारे का व्यास पृथ्वी के व्यास का केवल 75 प्रतिशत है। यह सूर्य से 10,000 गुना मन्द है और पृथ्वी से 13 प्रकाश-वर्ष दूर है। तारों से पृथ्वी तक पहुँचने वाली प्रकाश तरंगों के अध्ययन से तारों की स्थिति व उसके तापमान के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

तारे का सामान्य तापमान दस अरब डिग्री सेंटीग्रेड होता है। यह तापमान परिवर्तनशील है।

आकाश गंगा असंख्य तारों की एक चमकती हुई प्रकाश मेखला है जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुये हैं। लगभग सौ वर्ष पूर्व इंगलैंड के खगोल विद् सर विलियम हेर्सेल ने तारों की संख्या व उनके बारे में दूर-दर्शक यन्त्र द्वारा विशेष अध्ययन किया था।

आकाश गंगा में लगभग 40 अरब तारे हैं। आकाश गंगा का व्यास लगभग एक लाख प्रकाश वर्ष है।

आकाश गंगा के ये तारे स्थिर नहीं हैं। सौर-परिवार के अन्य ग्रहों की तरह ये भी आकाश गंगा के केन्द्र-बिन्दु की परिक्रमा करते हैं। आकाश गंगा का यह केन्द्र-बिन्दु सेगिटेरियस नक्षत्र की ओर है।

हमारी अकाश गंगा की तरह और भी करोड़ों आकाश गंगायें इस अनन्त ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। इन्हें निहारिकायें कहते हैं। सबसे निकट की निहारिका आन्ड्रोमेडा-

नेवूला है। इसे हम अपनी नंगी आँखों से भी देख सकते हैं। बहुत सी नीहारिकायें सर्पिल होती है। हमारी आकाश गंगा भी एक सर्पिल नीहारिका है।

नेवूला में तारे ठोस रूप में न होकर अत्यन्त तप्त गैस पुंज के रूप में हैं जिसे प्लाज्मा कहा जाता है। सन् 1967 में कैंब्रिज विश्वविद्यालय के डा० ह्यूइश ने नये आकाशीय पिण्ड 'पल्सर' की खोज की है। अब तक 57 पल्सर खोजे जा चुके हैं।

अन्तरिक्ष विज्ञान वेत्ताओं के अनुसार 'पल्सर' न्यूट्रान नक्षत्र हैं जिनका आकार काफी छोटा होता है। आकार में न्यून होते हुये भी इनका घनत्व काफी है। यदि एक थैले में 'पल्सर' का द्रव्य भरा जाय तो इसका भार कई लाख टन होगा। न्यूट्रान नक्षत्र वह आकाशीय पिण्ड है जो अपने सक्रिय जीवन की समाप्ति पर पहुँच चुका होता है। वह अपनी समस्त नाभिकीय शक्ति का उपयोग कर चुका होता है। सबसे महत्वपुर्ण पल्सर क्रैव नीहारिका में स्थित पल्सर है जो पृथ्वी से 4000 प्रकाश वर्ष दूर है। माना जाता है कि यह उस तारा-विस्फोट का अवशेष है जिसे सन् 1056 में चीनी खगोलज्ञों ने देखा था।

क्रैव नीहारिका के अन्दर पल्सर एक अत्यन्त धुंधला कौंधता हुआ पदार्थ है।

क्वासरों के समान पल्सर भी वैज्ञानिकों के लिये खोज का विषय है। क्वासर अत्यन्त दूरवर्ती एवं अति प्रकाशमान पदार्थ हैं, जो हमारे तारा-मण्डल से परे हैं।

न्यूट्रान जिस प्रकार परमाणु का उदासीन कण है उसी प्रकार पल्सर भी उदासीन नक्षत्र हैं। न्यूट्रान नक्षत्रों के अस्तित्व की संभावना सैद्धांतिक रूप से बहुत वर्षों पूर्व स्वीकार की जा चुकी है। पल्सर का द्रव्य इतना घना है कि नाभिकीय कण आपस में घुस गये हैं। न्यूट्रान नक्षत्र की संरचना अत्यन्त जटिल है। पल्सर का कम्पन काफी तीव्र होता है। स्पन्दन (पल्स) के कारण ही ये पल्सर कहलाते हैं। न्यूट्रान नक्षत्र अपने अक्ष पर घूम रहे हैं और यह अक्ष-गति नियमित स्पंदन को जन्म देती है। इसमें चुम्बकीय प्रभावों का भी हाथ है। कुछ पल्सरों की स्पन्दन अवधि में जो आकस्मिक परिवर्तन देखे गये हैं, शायद वे इन्हीं 'नक्षत्रकंपों' के कारण होते हैं। क्रैब निहारिका में स्थित पल्सर से कुछ ऐसा सूचित होता है कि न्यूट्रान नक्षत्र तारा-विस्फोट का अवशेष होता है और इस कारण शायद वह तारों के विकास की अन्तिम अवस्था है।

सुदूर अन्तरिक्ष में कई 'मृत-पल्सर' भी देखे गये हैं जो स्पन्दनशील नहीं हैं। प्रतिद्रव्य (एन्टी मैटर) व तारा-विस्फोट के कारण नित्य नये नये सितारे भी अन्तरिक्ष में उदय हो रहे हैं। सुपरनोवा का अर्थ तारा.विस्फोट ही है।

अनन्त गतिशील ब्रह्माण्ड के बारे में कई नवीन तथ्य जानने के लिये वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं।

● ●

अल्यूमिनियम धातु—क्या इसका प्रयोग स्वास्थ के लिये हानिप्रद है ?

□ चन्द्रविजय चतुर्वेदी

सम्प्रति अल्यूमिनियम धातु तथा अन्य धातुओं के साथ इसका मिश्र-धातु बर्तनों के रूप में अधिकाधिक उपयोग में लाया जा रहा है। निम्नलिखित सारिणी से इसके प्रमुख मिश्रधातु के उपयोग-क्षेत्र का आभास स्पष्ट रूप से मिल जाता है।

मिश्रधातु	प्रतिशत-संरचना	उपयोग
1. अल्यूमिनियम —कांसा	88—90% कापर 12—10% अल्यू-मिनियम	बर्तन, सिक्के तथा जेवरात आदि।
2. डुरेमिन	92.5% अल्यू-मिनियम 1.5% मैग्निनियम 4% कापर 2% निकिल	समुद्री तथा हवाई जहाज बनाने में।
3. मैग्नेलियम	5—30% मैग्नेलियम 95—70% अल्यू-मिनियम	मशीन के पुर्जे तथा जहाज बनाने में
4. निक्लोय	95% अल्यूमिनियम 1% निकिल 4% कापर	जहाज के पुर्जे बनाने में

स्वर्ण के साथ इसका मिश्र धातु भिन्न भिन्न प्रतिशतता पर भिन्न भिन्न रंग देता है। स्वास्थ के लिये अल्यूमिनियम का हानिप्रद होना उसकी विशिष्ट क्रिया शीलता के कारण है। यह हवा, पानी अम्ल एवम क्षार जो भोजन के महत्वपूर्ण अंग हैं, सभी से स्वच्छन्द रूप से अभिकृत हो विषजन्य पदार्थों का सृजन करता है।

फ्रान्स में युद्ध के समय फौजी सिपाहियों का भोजन अल्यूमिनियम के एक मिश्र धातु के बर्तन बनाया जाता था। उस भोजन को जो कि विशेषतया मांस रहता था फौजियों ने काफी समय तक खाया जिससे उनकी अंतड़ियों में जख्म हो गया। डॉक्टर ने जख्म का कारण भोजन में अल्यूमिनियम आजाने के कारण बताया।

कुछ वर्ष पूर्व ब्रिटिश सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसके अनुसार अल्यूमिनियम धातु की यदि थोड़ी भी मात्रा खून में मिल जाय तो वह कई रोगों को जन्म दे सकती है। यह भोजन के साथ पेट में जाकर पाचक तत्वों से अभिकृत होकर शरीर की पाचन-शक्ति को ही बस क्षीण नहीं करती वरन् पाचक अंगों को कमजोर भी करती है।

डा० राय जी का मत है कि अल्यूमिनियम अंतड़ियों में पहुँचकर शरीर में फास्फोरस की कमी उत्पन्न करता है। फास्फोरस की कमी से पाचक रस अधिक बनने लगता है जिससे मेदे में अम्लीयता की अधिकता हो जाती है और पेप्टिक अल्सर नामक बीमारी हो जाती है। शरीर में फास्फोरस की कमी हृदय तथा स्नायुमण्डल सम्बन्धित बिमारी का भी अशंका बिमारी है।

अब अल्यूमिनियम की क्रियाशीलता पर थोड़ा ध्यान देना है। शुष्क हवा का इस पर कोई प्रभाव नही पड़ता परन्तु आद्र हवा के सम्पर्क में आते ही इसके ऊपर अल्यू-मिनियम आक्साइड की परत जमा हो जाती है। शुद्ध अल्यूमिनियम पर तो शुद्ध जल का तो कोई प्रभाव नही पड़ता परन्तु यदि पानी खारा हो तथा अल्यूमिनियम में भी कुछ अन्य लवण थोड़ी मात्रा में ही विद्यमान हो तो ठण्डे में ही धीरे धीरे क्रिया होती रहती हैं जिससे अल्यू-

मिनियम हाइड्राक्साइड पानी में आजाता है। नाइट्रिक अम्ल को छोड़कर यह अन्य खनिज अम्लों के काफी तनु विलयन में ही धीरे धीरे घुलता रहता है। क्षारों से अल्यूमिनियम क्रिया करके मेटा अल्यूमिनेट तथा अल्यूमिनेट बनाता है जो घुलनशील होते हैं।

ये सारी क्रियायें अल्यूमिनियम के वर्तनों में भोजन पकाने के समय होता रहता है जिससे विचारणीय मात्रा में अल्यूमिनियम का भोजन में आ जाना विल्कुल ही निश्चित रहता है। नीचे की सारिणी में प्रदर्शित किया गया है कि अल्यूमिनियम की कितनी मात्रा इनको इसके बर्तन में पकाने से आ जाती है।

पकाने में जोभाग अल्यूमिनियम का खाद्य पदार्थ में मिल गया (प्रति 10 लाख भाग के साथ)

खाद्य पदार्थ

(1) पत्ता गोभी (सोडे के साथ पकाने पर)—90.50
(2) पत्ता गोभी (बना सोडे के साथ पकाने पर–2.41
(3) टमाटर मिला सब्जियों में— 15.30
(4) चाय एवम कॉफी के साथ— 79.00

प्रयोगों द्वारा यह निश्चित किया गया है कि जब एल्यूमिनियम के बर्तन में पकते हुये भोजन को अल्य-मिनियम के चम्मच से ही चलाया जाय तो बर्तन में एक गेल्वेनिक धारा पैदा होती है और एल्यूमिनियम के घुलने की गति तीव्रतम हो जाती है।

अम्ल, क्षार एवम जल से अभिकृत होने के फलस्वरूप अल्यूमिनियम या तो आक्साइड या हाइड्राक्साइड के रूप में भोजन में प्रविष्ट होता है। अब आहार में उपस्थित सोडियम, कैल्सियम आदि तत्व इनसे क्रिया करके जो लवण बनाते हैं उनका प्रभाव विषैला होता है। एक डॉक्टर ने तो शुद्ध अल्यूमिनियम के बर्तनों के प्रयोग से कुष्ट रोग की उत्पति बताया है। इस प्रकार अल्यूमिनियम के बने हुये बर्तन स्वास्थ पर बहुत ही बुरा प्रभाव डालते हैं अतः इसका प्रयोग भोजन बनाने वाले बर्तनों के रूप में र्वाजत रहे तभी ज्यादा उत्तम रहता है।

● ●

काल—बड़ा विचित्र

□ रतनचन्द लखनपाल

वैज्ञानिक प्रगति में किस ग्राविष्कार ग्रथवा ग्राविष्कारक का योगदान सबसे ग्रधिक है, यह एक वाद-विवाद का विषय हो सकता है, परन्तु विज्ञान के इतिहास के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि उसे नए व क्रान्तिकारी मोड़ देने वालों की संख्या बहुत ग्रधिक नहीं। विज्ञान, जिसे उन दिनों प्राकृतिक दर्शन भी कहा जाता था, की रूढ़ियों तथा ग्रन्ध-विश्वासों की खाई से निकालने ग्रौर उसे दृढ़ ग्राधार प्रदान करने में सर ग्राइजक न्यूटन सन् 1642-1727 ई०) का विशेष हाथ है। उनका दर्शन इतना प्रभावशाली था कि लगभग 250 वर्षों तक, किसी भी प्राकृतिक घटना की व्याख्या उससे बाहर नहीं समझी जाती थी। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के ग्रन्तिम वर्षों में न्यूटनीय दर्शन (ग्रथवा भौतिकी) का स्वच्छन्द शासन डगमगाने लग पड़ा था। उस पर सबसे गहरा ग्राघात सन् 1909 ई० में, ग्रलबर्ट ग्राईनस्टीन ने ग्रपने "विमिष्ट ग्रापेक्षिकता सिद्धान्त" रूपी ग्रस्त्र से किया, जिसके परिणामस्वरूप भौतिकी की ग्रनेक संकल्पनाग्रों में परिवर्तन ग्रनिवार्य हो गया। इस ग्राघात की शिकार हुई संकल्पनाग्रों में से "काल" भी एक है।

न्यूटन, काल को एक ऐसी भौतिक राशि मानते थे, जिसका प्रवाह विश्व की सारी वस्तुग्रों के ग्रस्तित्व से स्वतन्त्र होता है। न्यूटनीय भौतिकी में यह मान लिया गया था कि किन्हीं दो घटनाग्रों के मध्य का कालान्तराल, उनका क्रम ग्रौर समक्षणिकता प्रेक्षक कीं स्थिति, विराम ग्रथवा गातेज ग्रवस्था पर निर्भर नहीं करते। इसी संदर्भ में एक प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि विश्व से सम्पूर्ण द्रव्य व ऊर्जा का विलोपन हो जाए तो क्या उस परिस्थिति में भी काल-प्रवाह उसी प्रकार जारी रहेगा जिस प्रकार ग्रब ? यद्यपि न्यूटनीय दर्शन काल-प्रवाह के जारी रहने की सम्भावना का खण्डन नहीं कहता, तथापि ग्राज तक की वैज्ञानिक उपलब्धियों के ग्राधार पर इस प्रश्न का, कोई स्पष्ट ग्रौर विश्वासनीय उत्तर नहीं दिया जा सकता। काल की मूल प्रकृति ग्रभी तक एक रहस्य बनी हुई है, परन्तु उसके भौतिक गुणों का पर्याप्त स्पष्टीकरण विशिष्ट ग्रापेक्षिकता सिद्धान्त से हो जाता है।

यह सिद्धान्त, न्यूटनीय भौतिकी की कालमापन की विधियों पर ग्राक्षेप नहीं करता, उनके परिणामों में संशोधन की मांग करता है। यह सिद्धान्त केवल समवेग से गतिमान निकायों (ग्रथवा प्रेक्षकों) पर लागू होता है। इसके ग्रनुसार दो प्रेक्षकों के काल के प्रति ग्रनुभव तभी समान होंगे जब वे एक दूसरे की ग्रपेक्षा गतिमान न हों ग्रर्थात् उनका ग्रापेक्षिक वेग शून्य हो। ग्रन्यथा प्रत्येक प्रेक्षक द्वारा मापा गया कालान्तराल ग्रौर घटनाग्रों का क्रम तथा समक्षणिकता उसकी स्थिति व गतिज ग्रवस्था से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। केवल उन घटनाग्रों का क्रम परिवर्तित नहीं हो सकता, जिनमें से एक, दूसरी का कारण हो। इस सिद्धान्त का काल के विषय में सबसे विचित्र परिणाम 'घड़ी विरोधाभास' या 'काल प्रसारण' है, जिसके ग्रनुसार गतिमान निकायों में काल-प्रवाह मन्द पड़ जाता है। यदि किसी गतिमान निकाय का पृथ्वी की

अपेक्षा वेग V हो, तो

$$\gamma = \frac{\text{गतिमान निकाय की घड़ी का सैकण्ड}}{\text{पृथ्वी पर रखी घड़ी का सैकण्ड}}$$

$$= \frac{1}{\sqrt{(1 - V^2/C^2)}} \cdots (1)$$

C—प्रकाश वेग है। इस समीकरण से पता चलता है कि यदि V का मान C से अधिक हो तो $(1 - \frac{V^2}{C^2})$ ऋण होगा। और ऋण राशि का वर्ग मूल अविकल्पित होता है, जिसका काल के सन्दर्भ में कोई महत्त्व नहीं। अतः V का मान C से अधिक नहीं हो सकता। पदार्थीय वस्तुओं के लिए C, वेग की अन्तिम व प्राकृतिक सीमा है। V का मान शून्य और C के मध्य कुछ भी हो सकता है और ज्यों-ज्यों V, C के निकट आती है, γ अनन्त की ओर बढ़ता जाता है। नीचे सारिणी 1 में V और C के भिन्न-भिन्न अनुपातों के लिए γ का बढ़ता हुआ मान दिखाया गया है।

सारिणी 1

$\frac{V}{C} = \frac{\text{गतिमान निकाय का वेग}}{\text{प्रकाश वेग}}$	0·01	0·25	0·50	0·75	0·99	0·999	0·99995	1·000
$\gamma = \frac{\text{गतिमान निकाय में कालान्तराल}}{\text{स्थिर में कालान्तराल}}$	1·000	1·040	1·155	1·512	7·089	22·4	100	∞ अनन्त

ऐसा समझा जाता है कि काल के इस विचित्र गुण का उपयोग, बहुत देर तक जीवित रहने के लिए किया जा सकता है। कल्पना कीजिए एक अप्रैल 1971 को प्रातः सात बजे एक 25 वर्षीय वैज्ञानिक अन्तरिक्ष-यान में बैठ कर ब्रह्माण्ड की सैर करने गया है। अन्तरिक्ष यान निरन्तर प्रकाश वेग के 99·995 प्रतिशत वेग से गतिमान रहने की क्षमता रखता है। ऐसे यान (गतिमान निकाय) के लिए $r = 100$, अतः

अन्तरिक्ष यात्री का वर्ष=पृथ्वी के 100 वर्ष......II

इसका अर्थ यह हुआ कि अपने कैलेण्डर तथा घड़ी के अनुसार जब अन्तरिक्ष यात्री अप्रैल 1972 को वापिस आएगा तो उसे यह जानकर आश्चर्य होगा कि पृथ्वी पर सन् 2071 ई० चल रहा है और उसका बेटा जो अन्तरिक्ष यात्रा पर जाते समय एक माह का नन्हा सा बच्चा था सौ वर्ष का बूढ़ा हो चुका होगा, जबकि उसकी अपनी आयु केवल 26 वर्ष होगी। क्या वास्तविक जीवन में ऐसी अद्भुत घटना सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि विशिष्ट आपेक्षिकता सिद्धान्त में कोई त्रुटि है। वास्तव में ऐसी चमत्कारी घटनाओं के मार्ग में कुछ कठिनाईयाँ हैं।

पहली कठिनाई तकनीकी है। सारणी—1 से पता चलता है कि r का मान तभी गणना योग्य होता है जब V का मान C के अति सन्निकट हो। दैनिक जीवन में वस्तुओं के जिन वेगों से हमारा पाला पड़ता है, वह प्रकाश वेग से इतने कम होते हैं कि काल-प्रसारण नगण्य होता है। सारणी—2 में भिन्न-भिन्न वेगों के लिए वह अवधि दी गई है, जिसके बाद गतिमान निकाय में बैठे प्रेक्षक की आयु में एक सैकण्ड का लाभ हो सकता है।

सारणी—२

गतिमान निकाय का वेग—किलोमीटर प्रति घंटा में	2·72	27·2	54·4	272	2720	27200	39600
वह अवधि[1] जिसके बाद गतिमान निकाय में बैंठे प्रेक्षक की आयु में एक सैकण्ड का लाभ होगा	10 अरब वर्ष	10 करोड़ वर्ष	2·5 करोड़ वर्ष	दस लाख वर्ष	दस हजार वर्ष	100 वर्ष	56 वर्ष

1. परिकलन द्विपद—प्रमेय द्वारा किया गया है।

जिस चाल से हम सैर करने जाते हैं (लगभग 3 किलोमीटर प्रति घंटा), उस पर निरन्तर लगभग 10 अरब वर्ष चलते रहने के बाद एक सैकेण्ड का अन्तर नगण्य है। अपोलो यान, जिसमें बैठ कर मानव चन्द्रमा पर उतरने में सफल हो सका है, सबसे अधिक वेग से चलने वाला मानव निर्मित यान है। उसका अधिकतम वेग 39600 किलोमीटर प्रति घंटा है और इस यान में बैठ कर 39600 किलोमीटर प्रति घंटा वेग से 56 वर्ष तक निरन्तर यात्रा करने के पश्चात एक सैकेण्ड का लाभ कोई महत्त्व नहीं रखता। सो पहली कठिनाई ऐसा यान बनाने की है जिसका वेग इतना अधिक हो कि हम सुविधा पूर्वक काल-प्रसारण का अनुभव कर सकें, परन्तु इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी है।

दूसरी कठिनाई सैद्धान्तिक है। यदि मानव ऐसा यान बनाने में सफल भी हो जाए जिसका वेग प्रकाश-वेग के अति सन्निकट हो तो भी अन्तरिक्ष यात्रा की लौटे 26 वर्षीय पिता का स्वागत करने सौ वर्षीय बेटा आए, ऐसा चमत्कार संभव नहीं। वास्तव में यदि ऐसा हो सके तो जिस सिद्धान्त ने हमें काल के इन विचित्र गुण से परिचित करवाया है उसके मूलाधार का ही खण्डन हो जाएगा। विशिष्ट आपेक्षिकता सिद्धान्त का विवेचन करते समय बहुधा हम भूल जाते हैं कि यह एक स्वयंसिद्ध तथ्य पर आधारित है, जिसे 'आपेक्षिकता नियम' कहते हैं। इस नियम के अनुसार—समवेग से गतिमान प्रत्येक निकाय में प्रकृति के नियम एक से रहते हैं। दूसरे शब्दों में समवेग से गतिमान निकाय में बैठा प्रेक्षक किसी भी प्रयोग द्वारा यह ज्ञात नहीं कर सकता कि वह निकाय गतिमान है अथवा स्थिर। उदाहरणतः पृथ्वी लगभग 30 किलो मीटर प्रति सैकण्ड वेग (लगभग समवेग) से सूर्य का परिक्रमण करती है, परन्तु पृथ्वी पर रहने वालों को को इसका कोई आभास नहीं होता। समवेग से दौड़ रही रेल गाड़ी में वह सभी प्रयोग दोहराए जा सकते हैं जो स्टेशन पर खड़ी रेलगाड़ी पर किए गए थे, और प्राप्त परिणामों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं होगा। यही नहीं रेलगाड़ी में बैठा यात्री यह भूल जाए कि रेलगाड़ी दौड़ रही है तो उसे ऐसा प्रतीत होगा कि रेलगाड़ी स्थिर है और उसके दोनों ओर के खेत; वृक्ष, बिजली के खम्भे आदि एक दिशा में दौड़े जा रहे हैं, जबकि खेतों में काम कर रहे किसान को इसके विपरीत रेलगाड़ी गतिमान और खेत, वृक्ष, बिजली के खम्भे आदि स्थिर प्रतीत होंगे। अन्तरिक्ष यात्री और पृथ्वी पर खड़े प्रेक्षक पर भी यह बातें पूरी तरह लागू होती हैं।

पृथ्वी पर खड़े प्रेक्षक के अनुसार अन्तरिक्ष यान का वेग प्रकाश वेग का 99·995 प्रतिशत है अतः वह

अनुभव करेगा कि अन्तरिक्ष यान की घड़ी धीरे चल रही है और अन्तरिक्ष यात्री प्रत्येक कार्य के लिए पृथ्वी की अपेक्षा 100 गुना समय ले रहा है।

उसे यह जान कर आश्चर्य होगा कि पृथ्वी पर अन्तरिक्ष यात्री 15 मिनट में नाश्ता कर लेता था परन्तु जब वह नाश्ता समाप्त करने में 25 घंटे लेता है। पृथ्वी वासी दूसरे दिन का नाश्ता भी समाप्त कर लेते हैं तब कहीं उसका एक नाश्ता समाप्त होता है। और उसके दूसरी बार नाश्ता करने बैठने तक पृथ्वी वासी 100 नाश्ते कर चुके होते हैं। अन्तरिक्ष यात्री के अनुभव इसके विपरीत होंगे। उसे लगेगा कि उसका यान शून्य दिक में लटका हुआ है और पृथ्वी प्रकाश-वेग के 99.995 प्रतिशत वेग से दूर भागी जा रही है। उसे पृथ्वी की घड़ियाँ धीरे चलती जान पड़ेंगी और उसे यह जान कर आश्चर्य होगा कि पृथ्वी वासी जब दूसरी बार नाश्ता करने बैठते हैं तब तक वह स्वयं सौ नाश्ते कर चुका होता है यह एक विचित्र विरोधाभास है। और कोरी कल्पना प्रतीत होता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि अन्तरिक्ष यात्री तथा पृथ्वी पर खड़ा प्रेक्षक भिन्न भिन्न परिस्थितियों में हैं और और अपनी अपनी परिस्थितियों में उन दोनों के अनुभव ठीक हैं। समीकरण—II में थोड़ा सा परिवर्तन करने से यह विरोधाभास सुलझाया जा सकता है। यदि समीकरण—II को इस प्रकार लिखा जाए

अन्तरिक्ष यात्री पृथ्वी से मापा गया वर्ष=100 (पृथ्वी का पृथ्वी पर से मापा गया वर्ष)—III तो कोई अतिशियोक्ति नहीं होगी। क्योंकि यह दोनो पर्यवेक्षण पृथ्वी पर खड़े प्रेक्षक द्वारा लिए गए हैं। उसी प्रकार अन्तरिक्ष यात्री द्वारा किए गए पर्यवेक्षण के लिए पृथ्वी का अन्तरिक्ष मान से मापा गया वर्ष=100 (अन्तरिक्षयान का अन्तरिक्षयान पर से मापा गया वर्ष) IV

समीकरण III और IV से स्पष्ट हो जाता है कि अन्तरिक्ष यात्री तथा पृथ्वी पर खड़े प्रेक्षक, दोनों के के दृष्टिकोण सही हैं। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि दोनों के दृष्टिकोण सही हैं तो वास्तविकता क्या है? एक वस्तु के दो नाम हो सकते हैं परन्तु भिन्न भिन्न नामों के कारण उसके गुणों में परिवर्तन नहीं आ सकता। वास्तविकता जानने के लिए गणितीय परिकलन की सहायता ली जा सकती है। गणितीय परिकलन करते समय पता चलता है कि उपर्युक्त ब्रम्हाण्ड यात्रा के लिए पहले अन्तरिक्षयान को त्वरित करके प्रकाश वेग के 11,995 प्रतिशत वेग से गतिमान करना होगा फिर समवेग से यात्रा करने के बाद मन्दित करके उसका वेग शून्य करना होगा और वापिस आने के लिए त्वरित करना होगा, ताकि पहले जैसा वेग हो जाए और अन्त में मन्दित करके अन्तरिक्ष यान को पृथ्वी पर उतारना होगां।

इस प्रक्रिया में जब अन्तरिक्षयान समवेग से गतिमान होगा तो अन्तरिक्ष यात्री को पृथ्वी तथा पृथ्वी वासियों को अन्तरिक्ष यान की घड़ियाँ धीरे चलती प्रतीत होंगी। त्वरित और मन्दित होते समय भी लगभग इसी प्रकार के अनुभव होंगे, परन्तु जब अन्तरिक्ष यात्री पृथ्वी पर उतरेगा तो उसकी आयु में उतनी ही वृद्धि हो चुकी होगी जितनी पृथ्वी पर रहने वालों की आयु में।

क्या कभी मानव काल की इस रहस्यमयी प्रकृति के ऊपर से पर्दा उठा सकेगा? इस प्रश्न के उत्तर में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अन्तिम परीक्षण प्रयोग है जिसके लिए उपयुक्त प्रबन्ध अभी तक संभव नहीं हो सका है। परन्तु यदि विशिष्ट आपेक्षिकता सिद्धान्त यथार्थ है तो काल की यह विचित्र कला बाजियाँ भी सच्चाई हैं।

● ●
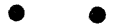
जम्बू-विमान

□ ओमप्रकाश दुबे

भारतवर्ष संसार के अत्यधिक विकासशील देशों में अपना प्रमुख स्थान रखता है और इसकी अन्तर्राष्ट्रीय वायु-सेवा एअर इन्डिया में संसार का सबसे बड़ा तथा सबसे अधिक तीव्रगामी वायुयान बोइंग 747 के प्रवेश से मई 1971 से सुपर-जेट युग का प्रारम्भ हो गया है। बोइंग 747 का दूसरा लोकप्रिय नाम जम्बू-विमान है। यह विमान बम्बई-लन्दन और बम्बइ-न्युयार्क मार्ग से उड़ा करेगा।

जम्बू विमान के आविष्कार से अन्तर्राष्टीय वायु सेवा में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ है। इसके पहले के किसी भी विमान में न इतने अधिक आराम की सुविधा थी और न इतने अधिक पात्रियों के एक साथ बैंटने की व्यवस्था थी। वर्तमान समय के भारतीय वायु सेवा के सबसे बड़े विमान बोइंग 747 से बोइंग 747 लगभग दूना बड़ा है। जम्बू जेट में 362 यात्रियों को भिन्न-भिन्न क्रमानुसार कक्षों में बैंठने की उचित सुविधा है। यह दीर्घकाय विमान 625 मील प्रतिघंटा की चाल से 6,700 मील तक बिना कहीं रुके हुये लगातार उड़ता है। यह दूरी बम्बई और लन्दन के बीच की दूरी से भी अधिक है अर्थात् यह विमान बम्बई से लन्दन रास्ते में बिना कहीं रुके हुये लगभग 11 घंटे में पहुंच जाएगा। यह देखने में एक दीर्घकाय एवं विशाल रूप का है, इसलिये इसे जायन्ट जेट भी कहते हैं। यह आधुनिकतम यन्त्रों तथा एलेक्ट्रानिकी गेयरोंसे सुसज्जित है। इसमें यात्रियों के बैंठने का स्थान इतना बड़ा है कि देखने में बिल्कुल 4-5 साधारण विश्रामालयों के बराबर लगता है। अन्दर से ही उपर के लाउन्ज बार के लिये और उड़ान कक्ष के लिये एक सोपान का प्रबंध है। नीचे का कक्ष सामान रखने के लिये और भार सन्तुलन के लिये होता है। विमान का पूंछ वाला भाग लगभग 62 फीट 4 इंच ऊंचा होता है और इसमें कुल 16 पहिये होते हैं। विमान में हवा जाने के नली का व्यास 7 फीट 9 इंच होता है। बोइंग 747, बोइंग 707 से लगभग 80 फीट अधिक लम्बा होता है। बोइंग 747 की कुल संहति 124,000 पौंड होती है जबकि बोइंग 707 की कुल संहति 42,000 पौंड होती है। इस विमान की पूर्णतया जानकारी प्राप्त करने के लिये इसे निम्नलिखित 52 भागों में बांटा जा सकता है। मौसम राडार ; इनस्ट्रूमेंट लैंडिंग पद्धति ; अग्रिम और रेयर बल्क शीर्ष ; प्रथम श्रेणी यात्री कक्ष (जिसे नीला कक्ष कहते हैं) ; प्रथम श्रेणी स्थान; बहुधंधी कपबोर्ड ; आन्तरिक स्पेयर केस ; प्रवेश द्वार ; क्रियु द्वार ; उड़ान कक्ष ; इन्टरसियल नेविगेसन पद्धति ; उपरी कक्ष का लान्जबार ; क्रियु शृंगार कक्ष ; वी ए एफ एन्टीना ; प्रथम श्रेणी और साधारण श्रेणी का मध्य ; बैंगनी कक्ष ; साधारण यात्री स्थान ; व्यक्तिगत सामग्री

कक्ष ; मुख्य स्ट्रीवार्ड का स्टेशन ; लाल कक्ष ; पीला कक्ष ; गैली इकाइयाँ ; तेरह श्रृंगार कक्ष ; सामग्री कक्ष ; खिड़कियाँ ; मुवी स्क्रीन्स ; मुवी प्रोजेक्टरस ; केबिन फ़्लोर ; वातानुकूल प्रणाली ; पंखे, मुख्य केन्द्रीय वर्ग का स्पार बक्स ; विंग और फ्युजलेग का संविस्थल ; फ्युज लेग, न्युमेटिक मोटर एक्चुएटिंग विंग फ्लैपस, विमान इंजिन, वातानुकूल इकाइयाँ, पेय जल टंकी, फ्रेयानकान्टेनर्स, नोज लैंडिंग गेयर, मुख्य लैंडिंग गेयर, रनवे प्रकाश, लैंडिंग प्रकाश, फारवर्ड होल्ड, केन्द्रीय होल्ड, कान्टेनर्स, पैलेटस, पूंछ, गैरेट वायु शोध सहायक शक्ति इकाई; शक्ति पद्धति, वातानुकूल परिवर्त्तक तथा वायु प्रणाली, केन्द्रीय पूंछ, प्लेन स्पार बक्स, और टरवाइन गैस इक्जास्ट।

बोइंग 747 का मूल्य 22·5 करोड़ रुपया यानि 3 करोड़ डालर है। एअर इन्डिया, जो इस समय अपने बम्बई स्थित विद्यालय में अभियन्ताओं तथा कारीगरों को ट्रेनिंग दे रही है, इस जम्बू विमान को संयुक्त राज्य अमेरिका के आयात-निर्यात बैंक की सहायता से खरीदा है। आशा है कि जम्बू विमान सेवा के शुभारम्भ से भारतीय वायु सेवा के यात्री व्यवसाय में विशेष उन्नति होगी।

● ●

● अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।

● हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।

चन्द्रमा से पृथ्वी की अधिकतम जानकारी की संभावना

सोवियत संघ और अमेरिका के भरसक प्रयन्तों से विस्तार रूप में चन्द्रतल की तथा चन्द्रतल से पृथ्वी के भिन्न-भिन्न प्रकृति, स्वभाव और गुणों का अध्ययन संभव हो सका है। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के सहयोगी सदस्य प्योत्र क्रोपोतकिन ने हाल ही में निष्कर्ष निकाला हुआ बताया है कि चन्द्रमा पृथ्वी की अधिक जानकारी पाने में सहायक है।

चन्द्रमा पर क्रिया शील क्षणकारी शक्तियाँ पृथ्वी जैसी नहीं हैं। चन्द्रमा की पर्वतीय चट्टानों पर सौरपवन, उल्काओं प्रचंड तापीय उतार चढ़ाव और अंतरिक्ष निर्वात का आघात होता है। दूसरी ओर, उसकी सतह कार्बन डाइ आक्साइड, जल और सूक्ष्मपीवों की क्रिया से बची हुई है, जिनसे पृथ्वी पर चट्टानों की संरचना बदल जाती है। इससे यह विश्वास किया जा सकता है कि चाँद्र चट्टानों ने उन आद्य गुणों में से अनेक को संरक्षित रखा है, जिन्हें पृथ्वी की चट्टानों ने गँवा दिया है।

अब यह ज्ञात है कि चान्द्र सागरों को आवेष्टित करने वाला पदार्थ संरचना में बेसाल्टों जैसा ही है, जिनसे भूपर्पटी के काफी बड़े अंश का निर्माण हुआ है। इससे यह विश्वास किया जा सकता है कि हमारे आकाशीय उपग्रह की सतह भी उन क्षेत्रों की संरचना और बनावट के बारे में हमारे ज्ञान में काफी वृद्धि करेगी, जिसे पृथ्वी पर लगभग नहीं ही पाया जा सकता है।

तथापि चन्द्रगर्भ में प्रवेश भी ज्यादा दूर नहीं है। ऐसा विश्वास है कि किसी भी अन्य वस्तु की अपेक्षा चन्द्रमा का अध्ययन ही हमें प्रकृति विज्ञान की मूल समस्याओं, विशेषकर पृथ्वी की उत्पत्ति और भू-वैज्ञानिक-विकास की पहेली के हलके निकट अधिक जल्दी पहुँचा जा सकता है।

यह जानकारी व्यावहारिक भूविज्ञान के लिये भी अपरिमित महत्व की सिद्ध होगी। अक्सर पूछा जाता है कि क्या भविष्य में चाँद्रशिलाओं से टाइटेनियम जैसे खनिजों को निकालना संभव होगा ? अभी इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं लगता। प्रशांत सागर में 13% तक

टाइटेनियम ग्राक्साइड है, जब कि पृथ्वी पर टाइटेनियम अयस्क में इसका अंश 40% या उससे भी अधिक होता है। इसलिये चाँद्र शिलाओं से टाइटेनियम निकालना कोई उचित व्यावहारिक सुझाव नहीं होगा। लेकिन चन्द्रमा के अध्ययन से हमें भूपर्पटी में खनिजों की उत्पत्ति और वितरण के नियमों को ज्यादा अच्छी तरह से समझने में सहायता मिलेगी और इसके फलस्वरूप हम यह जान सकेंगे कि उनकी अधिक कारगर तरीके से कैसे खोज की जाय।

विज्ञान-वार्ता

ध्वनि आवृत्ति का गेंहू के पौधों पर प्रभाव

कनाडा के विख्यात वनस्पति विज्ञान वेत्ता श्री पीअर्‌ल वीनवर्गर ने अपने शोधकार्य के दौरान शीघ्र ही यह निष्कर्ष निकाला है कि उच्च आवृत्ति की ध्वनि से गेंहू के पौधों में निकलने वाले फलदायी बौर बढ़जाते हैं और इसी लिये गेंहू की पैदावार भी बढ़ती है। प्रोफेसर वीनवर्जर ओटावा विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्य कर रहे हैं। उन्होंने तथा उनके साथ कार्य करने वाले शोध-छात्रों ने गेंहू की विभिन्न-विभिन्न जातियों पर उच्च आवृति ध्वनि के प्रयोग किये हैं और परिणाम पाये हैं कि उत्पत्ति को 300 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है।

वैज्ञानिकों ने बताया है कि अगर पौधों के उगने के बाद उनकी प्रारंभिक बढ़ोत्तरी के दौरान ही अगर यह प्रभाव देखा जाय तो वह स्पष्ट रूप से प्रभावित दिखाई देता है। ऐसी अवस्था में कुछ ही हफ्तों में पौधों के बौरों, डालियों में 20-30 प्रतिशत की स्पष्ट वृद्धि दिखाई देती है। जाड़े में पैदा होने वाले गेंहू पर यह ध्वनि प्रभाव, बसन्त ऋतु में जब कि यह करीब करीब पकना शुरू करने लगता है, अधिक प्रभावशाली पाया गया है। इन दिनों देखा गया है कि 4-5 हफ्ते तक ध्वनि करने से 200% उत्पत्ति बढ़ती है, और अगर सम्पूर्ण बसन्त के दौरान गेंहू की फसल को ध्वनि प्रभाव के अन्दर रखा जाय तो यही वृद्धि 300-350 प्रतिशत तक पायी जाती है।

मुख्य रूप से दो ध्वनि आवृत्तियों 500 चक्र प्रति सैकेन्ड तथा 12000 चक्र प्रति सैकेन्ड के प्रभाव देखे गये हैं, प्रभावित परिवर्तन महत्वपूर्ण पाये गये हैं। यह आमतौर पर देखा गया है, कि ध्वनि प्रभावित गेंहू के पौधो की ऊँचाई तथा आकार रचना अप्रभावित और मुक्तरूप से बढ़ने वाले गेंहू के ही समान होती है परन्तु ध्वनि प्रभावित पौधों के बौर और पत्तियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

वैज्ञानिक इस शोध-कार्य की उन्नति में तन-मन से सक्रिय हैं। यह देखा गया है कि, पौधों में बढ़ोत्तरी की अपेक्षा पैदावार कम बढ़ती है, जब कि सैद्धान्तिक रूप से जितने बौर-पत्ती बढ़ेंगे उतने ही पौधे पर आने वाले दोनों की बातें होनी चाहिये। कोशिशें की जा रही हैं कि किस तरह पौधों की उपज और अन्न की पैदावार में समान रूप के परिवर्तन पाये जा सकते हैं।

ये प्रयोग विशेष प्रकार की प्रयोगशालाओं में किये जाते हैं, जहाँ पर पौधे स्थिर ताप, नमी, प्रकाश तथा पुष्टिकर खाद और अन्य तत्वों की उपस्थिति में रहें। ऐसे

ही प्रयोग अन्य पौधों में भी किये जा रहे हैं, परन्तु अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव गेंहूं पर ही देखा गया है।

सूर्य का चूल्हा

मानव के इस व्यस्त जीवन में ईंधन की नितान्त आवश्यकता है । लकड़ी, तेल, पेट्रौल तथा अन्य सभी ईंधनकारी तत्वों की मात्राएें दिन पर दिन घटती जा रहीं हैं । मानव चिन्तित है कि शीघ्र ही ये सब ज्वलनशील तत्व समाप्त न हो जाँय । परन्तु शायद हम भूल रहे हैं कि जब तक सूर्य है, हमें ईंधन के विषय में चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। बस हमें इतना जान लेना होगा कि सूर्य की ऊर्जा का उपयोग कैसे किया जाय।

सूर्य की शक्ति का उपयोग करने में रूस, अमेरिका तथा इसरायल को सहायता मिली है । सूर्य की शक्ति का प्रयोग कर वैज्ञानिकों ने बिजली को सिलिकन सैलों में इकट्ठा कर लिया है । हमारे देश में भी सूर्य की शक्ति के उपयोग की दिशा में कार्य हो रहा है । भारत की राष्ट्रीय प्रयोगशाला में उपरोक्त कार्य के साथ-साथ 'सूर्य कुण्ड' यानी 'सन-पाण्ड' नामक योजना पर भीं कार्य हो रहा है । इस योजना में पानी के निचले सतह में इकट्ठी होने वाली सूर्य की ऊर्जा से बिजली बनाई जाती है। हँगरी तथा इजरायल देशों में ऐसा करना संभव हो गया है। भारत जैसे गर्म देश भी इस विधि से खारी पानी का फायदा उठा सकेंगे।

सोवियत रूस, अमरीका तथा इज्रायल में सूर्य के चूल्हों पर खाना पकने लगा है। छतरी की तरह खुलने वाले ये चूल्हे प्रतिबिम्बित विधि ताप को एक हैंडिल पर केन्द्रित करके गर्मी फेंकते हैं।

हैर ब्राउन विश्वविद्यालय जेरूसेलम के वैज्ञानिकों ने इसी तरह का एक चूल्हा हाल ही तैयार किया है। इस चूल्हे में एक दर्जन समान प्रकार के अवतल दर्पण जिनका व्यास लगभग 30 से० मी० होता है, तीन सीधी रेखाओं में एक 90 से० मी० लम्बाइ के लोहे के आधार पर लगाये जाते हैं। ये दर्पण सूर्य के प्रकाश विकिरणों का परावर्तित कर किसी एक विन्दु पर एकत्र कर देते हैं। यह एकत्र प्रकाश उर्जा हमें उपयोगी गर्मी प्रदान करती हैं। चमकते सूर्य के समय इस तरह के चूल्हे 558 वाट की ऊर्जा प्रदान करता है। इस प्रकार के चूल्हों में 2 लिटर पानी 18-20 मिनट में ही उबलने लगता है।

कम्प्यूटर साइक्लाप्स—3

इंगलैंड की राष्ट्रीय भोतिक प्रयोगशाला के कुछ वैज्ञानिक काफी समय से इस खोज में लगे हैं कि कम्प्यूटर के माध्यम से किसी तरह बात-चीत की जा सके । डॉ० जान पार्क ने साइक्लाप्स—3 नामक एक कम्प्यूटर तैयार करने की घोषणा की है। यह मशीन स्पष्ट रूप में लिखी गई सामिग्री को पढ़ने में सफल सिद्ध हो सकेगी। साथ ही डॉ० पार्क एक अन्य कम्प्यूटर जिसकी कार्य दक्षता इससे अधिक महत्वपूर्ण होगीं के बनाने का प्रयास कर रहे हैं । इसका नाम होगा साइक्लाप्स—4, इस श्रृह्खला के साइक्लाप्स—1 और 2 पहले ही बनाए जा चुके हैं।

साइक्लाप्स—3 में केवल एक परिलोकन (स्कैनिंग) अपर्थर होगा। उसके देखने के उपकरण में बहुत से परिलोकित्र (स्कैनर) एक कतार में लगे होंगे। यह यंत्र बारी बारी से हर शब्द की परीक्षा करेगा। कम्प्यूटेशन क्रिया के प्रथम चरण में, प्रत्येक शब्द की आकृति रेखा को अलग-अलग कई भागों में विभाजित किया जायेगा। इस प्रकार किये हुये हर छोटे भाग के क्षैतिज निर्देशांक, उर्ध्व निर्देशांक और तिरछे पन का ध्यान करके शब्द की विशेष पहचान की जा सकेगी। इसके बाद मशीन यह बतायेगी कि शब्द की कौन सी रेखा कहाँ समाप्त होती है, रेखाएें परस्पर किस बिन्दु पर काटती हैं, अंग्रेजी के 'टी' अक्षर जैसे जोड़ कितने हें तथा शब्द में कितने घुमावदार मोड़ हैं।

मोड़ों तथा रेखाओं और शब्दों के विभिन्न आकार विन्दुओं की संख्या और स्थिति भी मशीन द्वारा पढ़ी या

देखी जा सकेगी। इस मशीन में विशेष रूप से तैयार हुआ शब्द चित्र ऊपर नीचे घूमता रहेगा तथा अपने निजी अक्षरों से तुलनात्मक अध्ययन में उपयोग होगा। इस शब्द चित्र और निजी पुस्तकालय में सबसे अधिक समानता रखने वाले शब्दों की पहचान यह कम्प्यूटर कर सकेगा। इस पूरी क्रिया के सम्पन्न होने में एक मिनट का एक हजारवाँ अंश भी नहीं लगेगा। यह भी आशा की जा रही है कि निकट भविष्य में अधूरे तथा अस्पष्ट शब्दो को पढ़ने और समझने में भी यह मशीन मदद कर सकेगी।

सम्पादकीय

विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान' निरंतर 60 वर्षों से भारतीय जनता की सेवा में रत है तथा इसमें प्रकाशित वैज्ञानिक सामग्री भारतीय जन-भाषा हिन्दी के माध्यम से देश के विभिन्न भागों में पहुँचती रही है। विज्ञान की आधुनिक विलक्षण प्रगति तथा जनजीवन के बदलते हुए मापदण्डों के परिवेश में यह आवश्यक है कि हम लोगों की यह पत्रिका नया मोड़ ले। 'विज्ञान' के सम्पादन में कुछ ऐसे परिवर्तन किए जायं जिससे यह पत्रिका और भी अधिक सक्रिय रूप से पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के प्रसार एवं प्रचार के लिए क्या-क्या नए पग उठाये जायं, इस संदर्भ में हम अपने पाठकों के बहुमूल्य विचारों से अवगत होने के इच्छुक हैं। अतः कृपया अपने मूल्यवान सुझावों से हमें अनुगृहीत करें।

—सम्पादक

'भारतोय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं यन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० |3|5|

भाग 108 } ज्येष्ठ 2028 विक्र०, 1892 शक मई 1971 { संख्या 5

क्वांटम यान्त्रिकी : कुछ जानकारी

□ निरंकार सिंह

हजारों वर्ष पहले जब मनुष्य अज्ञान के महान अन्धकार में प्रगति का रास्ता टटोल रहा था उसने अचानक ही एक दिन पत्थरों के टकराव से उत्पन्न आग की चमक देखी और इस प्रकार पत्थरों के घर्षण से आग उत्पन्न करने की विधि का आविष्कार हुआ। प्रागैतिहासिक काल से अब तक अनेकानेक आविष्कार हुये हैं विशेषतः विज्ञान में पिछले दो सौ वर्षों में अनेक विप्लवकारी खोजें हुयी हैं। विज्ञान की अनेक शाखाओं का प्रादुर्भाव हुआ। अज्ञात क्षेत्रों की खोज में अन्य विज्ञानों की अपेक्षा भौतिक विज्ञान कहीं आगे बढ़ गया है जिसके फलस्वरूप भौतिक विज्ञान की एक नई शाखा क्वांटम यान्त्रिकी का प्रादुर्भाव हुआ। सभ्यता को नयी दिशा मिली, भविष्य का मार्ग प्रशस्त हुआ और समृद्धि की अनेक सम्भावनायें दृष्टिगोचर होने लगीं। यदि क्वांटम यान्त्रिकी न होती तो आज की दुनिया में परमाणु ऊर्जा उद्योग तथा इलेक्ट्रानिकी का कोई अस्तित्व ही नहीं होता।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बड़े ही क्रान्तिकारी विचारों को प्रस्तुत कर मैक्स प्लांक ने ऊष्मीय विकिरण के सिद्धान्त में उत्पन्न कठिनाइयों का समाधान किया। उन्होंने जिन समस्याओं का समाधान किया उनका विशेष महत्व है क्योंकि उनके नये विचारों के आधार पर अनेक आश्चर्यजनक आविष्कार हुये हैं जिनकी पहले कल्पना करना कठिन था। प्लांक की ही परिकल्पनाओं से क्वांटम यान्त्रिकी का जन्म हुआ। इस यान्त्रिकी ने अत्यन्त सूक्ष्म कणों जैसे परमाणु व्यूक्लियस और मौलिक कणों के विश्व का दर्शन कराया।

विज्ञान में किसी पदार्थ का प्रादुर्भाव शून्य से नहीं होता है अतएव क्वांटम यान्त्रिकी को उस क्लासिकल यान्त्रिकी की सन्तान समझना चाहिये जिसका जन्म न्यूटन के आविष्कारों से हुआ। यान्त्रिकी की जो इमारत न्यूटन ने खड़ी की थी उसका आधार न्यूटन के गति के तीन नियम हैं।

न्यूटन के बाद लगभग सौ वर्ष तक क्लासिकल यान्त्रिकी पर आधारित विश्व का पूर्णात क्रमिक व्यवहार सभी भौतिकज्ञों के लिये सन्तोषप्रद रहा पर बहुत काल तक ऐसा सम्भव नहीं हो सका। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में न्यूटनीय या क्लासिकल यान्त्रिकी संकट के द्वार पर पहुँच गई थी। ऐसे अनेक तथ्य प्रकट हुये जो उपर्युक्त ढाँचे में ठीक-ठीक नहीं बैठाये जा सके। यहीं पर क्वांटम यान्त्रिकी की आवश्यकता पड़ी।

जैसे जैसे क्लासिकल यान्त्रिकी रूपी महल ऊपर उठता गया इसी वृहदाकार दीवालों में भ्रान्ति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे, इसमें खतरनाक दरारें उभरने लगीं और अन्ततः नये तथ्यों के आघात से सारा ढाँचा ढहने लगा।

क्वांटम यान्त्रिकी से न केवल नये ज्ञान की उपलब्धि हुई बल्कि इससे विश्व की घटनाओं का अत्यधिक सूक्ष्म और सर्वथा भिन्न समाधान मिला। क्वांटम लैटिन शब्द है इसका अर्थ विविक्त भाग या मात्रा से है। इस नये विज्ञान के अन्तर्गत हम विश्व के गुणों में विद्यमान विविक्ति का अध्ययन करते हैं।

बिना किसी प्रकार के रूप चित्रण के विज्ञान के बारे में सरल और रोचक ढंग से लिखना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है। ऐसी दशा में हम परमाणु, न्यूक्लियस और मौलिक कणों के बारे में अधिक जानने की आशा कैसे कर सकते हैं। इस यान्त्रिकी को समझने के लिये बहुत अधिक अध्ययन की आवस्यता है। इस नये विज्ञान के द्वारा तकनीक, उद्योग, कृषि और चिकित्सा के क्षेत्र में प्रेरणादायक परिणाम मिले हैं तथा विभिन्न क्षेत्रों के द्वार खुल गये हैं। इन क्षेत्रों के कुछ नए उपयोगों के नाम न्यूक्लियर बिजली घर, रेडियो एक्टिव समस्थानिक तथा सौर बैटरी हैं। उज्जवल वर्तमान की ये उपलब्धियाँ और उज्जवलतर भविष्य की सम्भावनायें इन सबका जन्म हमारी इस शताब्दी में ही तब हुआ जब लगभग 70 वर्ष पहले मैक्स प्लांक ने विज्ञान रूपी उपजाऊ भूमि में एक छोटा सा बीज बोया। बीज के जन्म से न जाने कितने वैज्ञानिक इस भूमि में अनुसंधान की खेती करते आये हैं।

क्वांटम यान्त्रिकी का पहला शिल्पिक प्रयोग परमाणु भट्ठी में किया गया जिसमें न्यूट्रान धारायें भारी परमाणुओं के न्यूक्लियसों का विखण्डन कर ऊष्मा और विद्युत उत्पन्न करती है। इस क्षेत्र में क्वाटम यान्त्रिकी से महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त होती है। इसकी सहायता से गणना द्वारा सलयन (फ्यूजन) अभिक्रियाओं से सम्बन्धित तथ्यों की जानकारी-प्राप्त होती है और इससे उत्पन्न होने वाली ऊर्जा का पता पहले से लगाया जा सकता है।

क्वांटम यान्त्रिकी से न केवल द्रव्यों के आश्चर्यजनक गुणों की व्याख्या ही सम्भव हुई बल्कि यह भी मालुम हुआ कि इन गुणों को किस प्रकार विकसित किया जा सकता है। आज के युग में इलेक्ट्रानिकी के क्षेत्र में कार्य करने वाले हजारों शोधकर्त्ताओं और इंजीनियरों के लिये क्वांटम यान्त्रिकी का वह क्षेत्र विशेष जिसे ठोस द्रव्यों का बैण्ड सिद्धान्त कहते हैं मुख्य मार्गदर्शन के रूप में कार्य करता है।

इन सूक्ष्म और फिर भी सामर्थ्यवान इलेक्ट्रानिक उपस्करों ने उपयोग और शिल्प के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन उत्पन्न कर दिया है। आज के युग में फैक्टरी (शक्ति-चलित) गाड़ी अथवा परिवहन साधन की कल्पना इसके बिना नहीं की जा सकती है। हमने यहाँ क्वांटम यान्त्रिकी के साथ विकसित सूक्ष्म जगत से सम्बन्धित कुछ विचारों और संकल्पनाओं द्वारा प्राप्त केवल कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण शिल्पिक उपलब्धियों की सूक्ष्म चर्चा भर की है। क्वांटम यान्त्रिकी के क्षेत्र में अनेकानेक महान आविष्कार निश्चय ही भविष्य में देखने को मिलेंगे।

● ●

पुष्प और उनके रंग

□ अनुवादक डा० जटाशंकर द्विवेदी

सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन का निधन २३ नवम्बर १६७० को हुआ। मृत्यु के कुछ समय पूर्व भारतीय कृषि अनुसंधानशाला के दीक्षान्त भाषण में, फरवरी १६७० में, इस संस्थान के निदेशक डा० एम० एस० स्वामिनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला की व्याख्यानशाला में, डा० रमन ने जो संदेश दिया वह सम्भवतः डा० रमन का अन्तिम भाषण था। इस भाषण का टेप रिकार्ड राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के निदेशक डा० अजितराम वर्मा के पास है जो वास्तव में एक राष्ट्रीय निधि है। मैं डा० वर्मा का आभारी हूँ जिन्होंने टेप रिकार्ड की सामग्री मुझे दी। यह लेख सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन के उस भाषण का हिन्दी रूपान्तर है। उस भाषण के दो अंतिम वाक्य जिन्हें कोष्ठक में लिखा है टेपरिकार्ड में नहीं हैं। डा० वर्मा ने बताया कि जब उन्होंने ये वाक्य कहे तब वे ध्वनिवर्द्धक यंत्र से दूर हट गये थे। किन्तु इन वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें अपनी मृत्यु के निकट आने का आभास हो गया था। ऐसी थी इस महापुरुष की अनुभूति।

—सम्पादक

मेरी इच्छा थी कि मैं भूचालों के सम्बन्ध में बताऊँ। वह भी विशेषकर उन भूचालों की प्रकृति और उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो भारत के कुछ भागों को आतंकित कर रहे हैं। मुझे प्रसन्नता है कि औरंगाबाद के श्रोताओं को न तो भूचाल और न पुष्प ही कष्ट पहुँचा सके। जैसा कि आप जानते हैं पुष्प प्रकृति का एक अंग है। सम्भवतः पुष्प मनुष्य जाति के लिये प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ देनों में से एक है और वे केवल उन सुसभ्य व्यक्तियों के लिये ही नहीं जो दिल्ली और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में निवास करते हैं अपितु सैंडविच द्वीप के और इसी प्रकार के अन्य स्थलों में रहने वाले तथाकथित असभ्य वनवासियों के लिये भी हैं। सभी सभ्यतायें और सभी लोग चाहे वे सभ्य हों या असभ्य, फूलों के प्रति आकर्षित होते रहे हैं और मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि यह आकर्षण केवल महिलाओं को ही रहा है यद्यपि पुरुषों की अपेक्षा वे अपने शृंगार के लिये पुष्पों में अधिक रुचि लेती रही हैं। वैसे मैं जानता हूँ कि बहुत से पुरुष भी बड़ी बड़ी पुष्पमालायें धारण करने के प्रेमी हैं। जब मैं कानपुर गया था तो मैंने भेंट में प्राप्त लाल गुलाब की लगभग एक सहस्र मालायें एकत्र की होंगी। यह आश्चर्यजनक है किन्तु उन्हें पहने रहना कठिन था और मैंने उन्हें तुरन्त उतार कर रख लिया। मैं सदैव ऐसा ही करता रहा हूँ।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि फूलों की सौन्दर्यानुभूति का आकर्षण उनकी सम्पूर्णतया में है, किसी एक विशेषता में नहीं। उनमें रूप का सौन्दर्य तो है ही। मैं उसे समझने का दम्भ नहीं करता मैं यह भी जनने का दम्भ नहीं करता कि कुछ फूलों में इतनी

पंखुड़ियाँ क्यों होती हैं और इसी प्रकार की अन्य बातें भी हैं। फिर दूसरी बात है कि वे किस प्रकार से सज्जित हुये हैं। यदि कोई फूल अकेला ही लगा हो तो वह बहुत सुन्दर दिखाई नहीं देगा। फूलों के सम्बन्ध में यह नियम है कि वे गुच्छों में लगते हैं और उनके द्वारा प्रभावकारी रूप सम्मुख आता है। फिर फूलों का रंग भी महत्वपूर्ण है। फूलों के इसी पक्ष में मेरी विशेष रुचि है और मैं गत कई वर्षों से इसी सम्बन्ध में रुचि लेता रहा हूँ। सुगंधि का भी प्रश्न है। कुछ पुष्पों में अत्यन्त प्रिय गंध होती है और कुछ में अत्यन्त अप्रिय। अंग्रेजी भाषा में इसी कारण से एक कहावत है इसे पुष्पों द्वारा वर्णन करो। यदि आप किसी महिला से घृणा करते हों तो उसे अप्रिय गंध वाले पुष्पों का गुलदस्ता भेंट कीजिये। वह महिला इसका अभिप्राय समझने में गलती नहीं करेगी। किन्तु मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि ऐसा सामान्यतः न करके इस के विपरीत ही व्यवहार किया जाता है।

यहाँ मैं गंध के सम्बन्ध में नहीं कहूँगा, यद्यपि इस पक्ष में भी मेरी अत्यन्त रुचि है। एक दिन सम्भवतः किसी ने मूर्खतापूर्ण सुझाव दिया कि गंध भी "रमन प्रभाव" है। उसके इस कथन का कुछ भी अभिप्राय हो मैं उस व्याख्या की जिम्मेदारी लेने के लिये तैयार नहीं हूँ। सम्भवतः किसी दिन मैं इस विषय पर विचार करूँगा और तब मैं इस सम्बन्ध में कुछ कह सकूँगा। इस समस्या को समझने के पूर्व मुझे जीव विज्ञान के क्षेत्र में कुछ प्रगति करनी पड़ेगी। किन्तु रंग तो एक बड़ी विचित्र और सामान्य वस्तु है, यद्यपि प्रत्येक अवस्था में ऐसी बात नहीं है।

हमें सुन्दर सफेद या नीरंग पुष्प मिलते हैं किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पुष्पों में सर्वाधिक आकर्षक वस्तु उनका रंग है। मैं इस विषय की ओर क्यों अग्रसर हुआ इसके पीछे एक लम्बी कहानी है। दस वर्ष पूर्व की बात है मुझे एक भाषण देने के लिये कहा गया। यह कहानी मैं इसलिये बता रहा हूँ क्योंकि यह कहानी मेरे विपक्ष में है। आप मुझ पर हंसेंगे। बम्बई विश्वविद्यालय के रासायनिक तकनीकी संस्थान के कपूर-संस्मरण-भाषणों में मुझे भाषण देने को कहा गया। मैंने कहा मैं रासायनिक तकनीक के सम्बन्ध में क्या बोलूं? एक भौतिकज्ञ होने के नाते सबसे पहले मुझे जो बात सूझी वह थी रंगों की उत्पत्ति और रासायनिक तकनीक भी, रंग के सम्बन्ध में, अन्य कारणों से ही सही सम्बन्धित अवश्य है। आप सुन्दर वस्त्र बना सकते हैं। गठन तथा अन्य दृष्टियों से भी वे अत्यन्त सुन्दर हो सकते हैं किन्तु यदि रंगों की संगति ऐसी न हुई कि भारतीय महिलायें उन्हें पसन्द करें तो आपकी बनाई हुई सारी साड़ियाँ बेकार हो जायेंगी। रंगों का वस्त्रों के मूल्य में बड़ा महत्व है। इसीलिये मैंने इस विषय को चुनने की सोची। मेरे सामने श्रोताओं की विशाल संख्या थी और जैसा स्वाभाविक था मेरी बोलने की इच्छा प्रबल हो उठी।

अपनी वार्ता में मैंने कहा 'मित्रो मैं आपको परामर्श देता हूँ कि आप एक छोटा सा स्पेक्ट्रमलेखी अपने हाथ में लें और सभी बागों में घूमें और सभी वृक्षों, फूलों, पत्तियों आदि को देखें। अपनी यात्रा के परीक्षणों को समाप्त करते करते आपको रंगों के सम्बन्ध में जितना ज्ञान हो जावेगा उतनी सामग्री आपको पाठ्य पुस्तकों में नहीं मिलेगी।''

मैंने उन्हें यही बताया। फिर मैं वापस आया और अपनी वार्ता को लिखने लगा। यद्यपि भाषण छोटा था फिर भी जब तक मैं उसे लिखकर न दूँ विश्वविद्यालय मुझे पारिश्रमिक नहीं देगा। तभी मेरे विचारों को धक्का लगा क्योंकि मैंने विद्यार्थियों को जो उपदेश दिया था उस पर मैंने स्वयं कभी आचरण नहीं किया। इस देश में जैसा आप सबको ज्ञात है साधारणतः लोग निःसंकोच और बिना मूल्य लिये खूब राय देते हैं किन्तु इसके पूर्व कि किसी को राय दी जाये उसपर स्वयं आचरण करके देख लेना चाहिये। मुझे भी यह सूझा कि उसी समय मैं बैठकर अपने छोटे से बाग के विभिन्न फूलों पर एक दृष्टि क्यों न डाल लूँ। जो भी मैंने देखा उसे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि रंग और अध्यारोपण के सम्बन्ध में उन्नीसवीं शती के विचारों पर आधारित तथ्य मेरे निरीक्षण से मेल नहीं

खाते थे। इसके कुछ उदाहरण दूँ :

बंगलोर में एक विख्यात उद्यान पादप है जिसका नाम मार्निंग ग्लोरी है। यह एक आरोही पादप है जो ऊपर चढ़कर एक बड़े चाप को पूर्णतया आच्छादित कर लेता है। सवेरे तड़के इस पर गाढ़े नीले रंग के घंटी के आकार के आकर्षक पुष्प लगते हैं। ये बड़े ही प्रभावी और सुन्दर होते हैं और इसीलिये इन्हें मार्निंग ग्लोरी कहते हैं। दस बजे के लगभग यह मुरझाना प्रारम्भ हो जाता है, 11 बजे यह पूरी तरह मुरझा जाता है और संध्याकाल यह समाप्त हो जाता है। इसका सौन्दर्य बिल्कुल अस्थायी है किन्तु मैं उसकी ओर देखता रहा। मैं प्रातःकाल शीघ्र उठता हूँ इसलिये मैंने मार्निंग ग्लोरी को उसके पूर्ण वैभवकाल में देखा। मैं आशा करता था कि मुझे इससे लघुतरंगीय स्पेक्ट्रम मिलेगा जिसमें नीले और नील लोहित रंग होंगे किन्तु मुझे आश्चर्य हुआ जब मैंने देखा कि फूल के स्पेक्ट्रम में सामान्यतः पाये जाने वाले स्पेक्ट्रम के सातों रंग-यथा लाल नारंगी, हरा नील आदि थे—जिन्हें आपने अपने स्कूल की कक्षाओं में पढ़ा होगा। इसके अतिरिक्त अवशोषण स्पेक्ट्रम का एक बैंड लगभग 517 से लगभग 620 मिली माइक्रान तक का मिला। 600 से 620 का बैंड काफी चटक था। एक छोटे से भाग के हटा देने से स्पेक्ट्रम में नीले के अतिरिक्त अन्य कोई भी रंग दिखाई नहीं देता। मैं दूसरों के सिद्धान्तों पर विश्वास नहीं करता। मैं अपने निरीक्षण के तथ्यों पर अधिक विश्वास रखता हूँ। मैं यह विचार नहीं कर सका कि पूरे स्पेक्ट्रम के गणितीय अध्यारोपण के द्वारा, जैसा कि पाठ्य पुस्तकों में लिखा है, श्वेत प्रकाश मिलता है तब उसके एक थोड़े से अंग को निकाल देने पर उसे निश्चित रूप से गहरे नीले रंग में कैसे परिवर्तित किया जा सकता है। इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। मुझे यह बात सूझी।

जाकराण्डा मेमोसिफोलिया का उदाहरण भी उल्लेखनीय है। यह सुन्दर वृक्ष फरवरी से मई तक फूलता है। इन दिनों यह बड़ा भव्य लगता है। बंगलोर की कई सड़कें इससे सज्जित होती हैं। दूर से ऐसा ज्ञात होता है जैसे किसी नीले विशाल बादल ने पूरे पेड़ को छा लिया हो। पत्तियाँ बिल्कुल दिखाई नहीं पड़तीं। मैंने कुछ फूलों का परीक्षण किया जिससे पता लगे कि सारा पेड़ नीला क्यों दिखाई पड़ता है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब उसके नीले होने का कोई भी कारण मेरी समझ में नहीं आया। अत्यन्त सावधानी से परीक्षण करने पर पता लगा कि 630 मि० मा० के लगभग एक मन्द अवशोषण बैंड आता है और 570 मि० मा० के लगभग एक उससे भी मन्द अवशोषण बैंड आता है। इन तीनों बैंडों पर अति मन्द अवशोषण बैंड आते हैं किन्तु वे विशिष्ट हैं। उनके द्वारा इस भव्य रंग का प्रदर्शन होता है। इन दो उदाहरणों से मुझे अनुभव हुआ कि फूलों के रंगों के विषय का पूर्ण परीक्षण होना चाहिये और लगभग 5 या 6 वर्ष तक इस समस्या पर कार्य करने के पश्चात् जब मैंने दृष्टि के शरीर क्रिया विज्ञान पर पुस्तक लिखी तो मैंने डा० स्वामिनाथन के पास उसकी एक प्रति पुस्तकालय में रखने के लिये भेजी। इस विषय से सम्बन्धित रासायनिक समस्याओं पर भी विचार करने का प्रलोभन मैं न रोक सका।

मैंने अपने आप से कहा कि मुझे वैसी गलती नहीं करनी चाहिये जैसी हर हिटलर ने की थी। जैसा आप जानते हैं हर हिटलर ने सेना को दो दिशाओं में आक्रमण करने की आज्ञा दी। पूर्व दिशा में रूस पर और पश्चिम दिशा में फ्रांस पर। परिणाम आप जानते हैं। यदि आपके विरोध में दो व्यक्ति हों तो स्थिति भयंकर हो जाती है। इसलिये मैंने विचार किया कि मैं पहले शरीर क्रिया सम्बन्धी पक्ष को देखूंगा। पहले मैं यह सब कर लूं और बाद में कार्बनिक रसायन से निपटूंगा और अब मैं आपके सम्मुख निम्न प्रस्ताव रखने का साहस कर रहा हूँ।

आप लोगों ने 19 वीं शदी के प्रमुख कार्बनिक रसायनज्ञ विलस्टेटर का नाम सुना होगा। उनका नाम मुख्यतः उनके क्लोरोफिल पर काम करने के कारण है। उन्होंने सबसे पहले क्लोरोफिल ए, बी के सम्बन्ध में बताया। उन्होंने यह भी बताया कि अवशोषण और

वास्तविक संरचना के अतिरिक्त इसमें एक बड़ा फोटोन-समूह होता है। उन सब परिणामों को ज्ञात करने के लिये काफी काम किया गया। विलस्टेटर फूलों में रंगों की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण करने के भी उत्तरदायी हैं। उसके कार्य पर बहुत से लोगों ने शोध किया और विशेष करके सर रावर्ट राबिन्सन और उनके दल ने। तभी से शोधकर्ताओं का एक दल फूलों के रंगों पर कार्य करता रहा है और इस विषय पर बहुत-सी पुस्तकें भी मिलती हैं। अन्त में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मुझे कार्बनिक रसायनज्ञों से बिलकुल संघर्ष नहीं करना है। मैं कार्बनिक रसायन का विशेषज्ञ नहीं हूँ और तत्सम्बन्धित कार्य मैं उनके लिये छोड़ता हूँ।

उनके मार्ग में पहली कठिनाई है वे इस समस्या को नहीं समझते। दूसरी कठिनाई विशेष रूप से कार्बनिक रसायन से सम्बन्धित है। यह ज्ञात करने के लिये कि कौन-सा पदार्थ किस प्रकार बना है एक रसायनज्ञ उस पदार्थ को किसी पात्र या बीकर में रखेगा, उस पर अम्ल डालेगा, उसे उबालेगा, उसे पकायेगा और उससे कुछ परिणाम प्राप्त करेगा। जब मैं कहता हूँ कि वे समस्या को बिल्कुल नहीं समझते तो इसका अभिप्राय है कि किसी भी कार्बनिक रसायनज्ञ ने वास्तव में यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि समस्या क्या है? समस्या है—रंग एक अनुभूति है। वह मुख्य रूप से एक शरीर-क्रियात्मक घटना है। इसलिये पहले यह समझना पड़ेगा कि मनुष्य के नेत्रों में रंग की अनुभूति किस प्रकार होती है। इसके पश्चात् ही उसके रासायनिक पहलू पर विचार करना चाहिये। उन्होंने कभी उस पर विचार नहीं किया। उन्होंने कभी इसकी चिन्ता नहीं की। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि पुष्प में रंग का आभास देने वाला कौन है? तब यह ज्ञात हो जावेगा कि रंग क्या है? कम से कम हम केवल नाम के लिये तो यह जान ही सकेंगे कि रंग क्या है। सामान्यतः फूल की पंखुड़ी महत्वपूर्ण है। उसमें पर्याप्त प्रकाश प्रवेश करता है और पर्याप्त प्रकाश विसरित भी होता है। और जैसा आप देखते हैं रंग का प्रादुर्भाव पारगमित या परावर्तित प्रकाश के द्वारा होता है और उसका निश्चय इस तथ्य पर होता है कि स्पेक्ट्रम के कुछ क्षेत्रों का चुनकर अवशोषण होता है और जो प्रकाश बाहर आता है उससे प्राप्त संतत स्पेक्ट्रम में कुछ अंग कुछ कमजोरियों के साथ होते हैं।

अब पुष्पों के रंगों पर विचार करने के लिये, एक ऐसी पद्धति से कुछ जानने का प्रयत्न करना, जो उस वस्तु को नष्ट कर दे किसी काम का न होगा। क्या आप लोगों में से कोई व्यक्ति अपने हाथ के संघटकों का पता लगाने के लिये उसे कटवा देगा। मेरा विचार है कि फूल की पंखुड़ी जैसी कोमल वस्तु के लिये इस प्रकार की पद्धति अत्यधिक हिंसापूर्ण होगी। आपको पुष्प को उसकी जीवित अवस्था में अध्ययन करना होगा और निरीक्षण करने के पश्चात् यदि आप सन्तुष्ट न हों और आवश्यक समझें तो आप फूल को ले लें और उसे स्पेक्ट्रमी प्रकाशमापी या ऐसी ही किसी वस्तु में रख दें। इसके पश्चात् आप निष्कर्षण की ऐसी विधि अपनाएँ जिससे अवशोषणीय पदार्थ की प्रकृति में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो। उसे विसरित पदार्थ से किसी अन्य रूप में बदल दिया जाय किन्तु प्रमुख रूप से न तो प्रकाशीय और न स्पेक्ट्रमिकीय व्यवहार में इस निष्कर्षण पद्धति में किसी प्रकार का अन्तर आवे। निष्कर्षण इसी प्रकार का होना चाहिये। यदि इन दो सिद्धान्तों का आश्रय लिया गया होता तो आपको पाठ्य पुस्तकों में यह नहीं मिलता कि पुष्पों के वर्ण ऐन्थोसायनिनों के कारण है। (विलस्टेटर ने कहा कि अम्लों का उपयोग आवश्यक है—यही उसका बड़ा भारी आविष्कार है) और परिणाम क्या निकला—आपने जो पदार्थ प्राप्त किया वह पुष्पों के वर्ण के लिये महत्वपूर्ण नहीं था—वह एक अन्य ही पदार्थ था जिसका पुष्पवर्ण से कोई सम्बन्ध नहीं।

इस बात को इतना बल देकर कहने का आधार वही है जिसका उल्लेख मैंने अभी जाकान्दा के उदाहरण में किया है। तब से मैंने सैकड़ों नीले रंग के पुष्पों का परीक्षण किया है। अपने बाग को मैंने-प्रयोग-

शाला-वानस्पतिक प्रयोगशाला, जितना मैं उसे बना सकता था बना डाला। सब प्रकार के वृक्ष, बेलें, फूल इत्यादि और उन दोनों ही परिस्थितियों में निरीक्षण करना-जीवित स्थिति में और बाद में निष्कर्षण की ऐसी स्थिति जिसमें पुष्पों की जीवित स्थिति का व्यवहार अक्षुण्य रहे आवश्यक है और डा० स्वामिनाथन मैं आपसे कहूँ कि मैंने ऐसे दो रासायनिक पदार्थों का पता लगा लिया है जो पीले और नारंगी रंग को छोड़कर अन्य सभी रंगों के फूलों में उपस्थिति के लिये उत्तर-दायी हैं—खैर इसे छोड़िये। मैंने उन्हें खोज लिया है और मैं उन्हें फ्लोरोक्रोम कहने की धृष्टता कर रहा हूँ। सम्भवतः कार्बनिक रसायनज्ञ इस बात पर नाक भौंह सिकोड़ेंगे और कहेंगे कि उनके व्यक्तिगत क्षेत्र में मुझे प्रवेश लेने का कोई अधिकार नहीं है।

एक भौतिक वैज्ञानिक भी कार्बनिक रसायन में कुछ उपयोगी कार्य कर सकता है इस तथ्य को अनुभव कराने का एक ही मार्ग था और वह है उस पदार्थ को निर्माण करना और उसे आप लोगों को दिखाना। आप देखें यह फ्लोरोक्रोम ए है जो सभी नीले पुष्पों को उसका नीला रंग देता है। यह फ्लोरोक्रोम बी है जो सभी लाल पुष्पों को उसका लाल रंग देता है। और यदि मैं दोनों को मिला दूँ और उन्हें किसी भी अनुपात में मिलाया जा सकता है। वे एक दूसरे से अभिक्रिया नहीं करते। वे स्वतंत्र रहते हैं और अवशोषण उत्पन्न करते हैं। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ इससे फ्लोरोक्रोम ए के लाक्षणिक अवशोषण बैंड मिलते हैं। दूसरी स्थिति में फ्लोरोक्रोम बी के अवशोषण हैं। मैं इन दोनों को मिला देता हूँ। अध्यारोपित अवशोषण स्पेक्ट्रम दोनों ही स्पेक्ट्रमों के अध्यारोपण द्वारा बना है और इसके परिणाम स्वरूप इस प्रकार के बने मिश्रण के रंग का निश्चय किया जा सकता है। यह रंग वही होगा जिसकी हम सामान्य मिश्रण के नियम से अपेक्षा कर सकते हैं। इनके बीच कोई रासाय-निक क्रिया नहीं होती और महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पौधे में भी जीवित अवस्था में इसी प्रकार का मिश्रण बनता है। बहुत से पुष्पों के रंगों की इससे व्याख्या की जा सकती है कुछ की एक पदार्थ के द्वारा, कुछ की दूसरे पदार्थ के द्वारा और कुछ की दोनों के मिश्रण द्वारा। प्राणि विज्ञान के अनुसार ऐसा होता है कि प्रत्येक पौधे में में दोनों फ्लोरोक्रोम अलग-अलग अनुपातों में उत्पन्न होते हैं और इसी कारण से प्रकृति में अनेक प्रकार के रंगों के सृजन के लिये जो क्रिया होती है उसकी व्याख्या की जा सकती है। यही प्रमुख खोज है। मैं यहाँ रुक कर आपको बोतल देकर कह सकता हूँ कि अब शेष कार्य को आप पूरा कर लें। किन्तु मैं ऐसा नहीं करना चाहता क्योंकि कार्बनिक रसायनज्ञों तथा अन्य व्यक्तियों के मस्तिस्क में कुछ विचार लाना चाहता हूँ। मैं इन दो आश्चर्यजनक पदार्थों के प्रति उनकी रुचि जागृत करना चाहता हूँ। मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि इन दो पदार्थों को तैयार करना अत्यन्त सरल कार्य है। नीला पदार्थ बड़ी सरल विधि से निर्मित किया जा सकता है। आप बहुत से पुष्प ले सकते हैं। कुछ में बहुत अधिक, कुछ में बहुत कम और कुछ में मिली जुली मात्रा में नीला पदार्थ होगा। आप चाहते हैं कि ऐसा न हो। मुझे इस कार्य के लिये उदाहरण स्वरूप एक पुष्प मिला जिससे आप सरलता-पूर्वक यह रंग प्राप्त कर सकते हैं। दक्षिण भारत में इसे शंख पुष्पम या तितली मटर या वह जो कुछ भी हो कहते हैं। यह एक आरोही बेल है और इसमें सुन्दर फूल लगते हैं। यह भूमि पर भी फैलती है। छोटे पुष्पों की आकृति शंख के समान होती है। इसके दो प्रकार हैं एक है श्वेत और दूसरी में केन्द्र में एक पीताभ रंग जिसके चारों ओर एक बड़ा नीला हाशिया रहता है। आपको अब कुछ पुष्प लेकर, उनमें से नीले भाग को कैंची से काटकर एक ट्यूब में लेना है। ट्यूब में कुछ आसुत जल डालकर उसे थोड़ा कुचल देना होगा। रंग बाहर आ जावेगा। यदि आप इस रंग को अधिक शीघ्र और स्थायी रूप में प्राप्त करना चाहते हैं तो आप ऐसीटोन का प्रयोग कर सकते हैं जिससे रंग तुरन्त बाहर आ जाता है। इस प्रकार कुछ पुष्पों से मैंने यह रंग प्राप्त किया है जिसे मैं यहाँ लाया हूँ। यह

एक सप्ताह पूर्व तैयार किया गया था और अब तक यह सम्पूर्ण रूप से स्थायी है।

लाल रंग की कथा दूसरी है। वास्तव में जैसा आप जानते हैं लाल रंजक अनेक पुष्पों में विद्यमान है जैसे गुलाब, वलींडरों और अन्य अनेकों पुष्पों में, हिबिस्कस, चीनी हिबिस्कस आदि किन्तु यहाँ भी यह अन्य वस्तुओं से मिश्रित हैं। इसके एक सुन्दरतम प्रतीक के रूप में जो मुझे प्राप्त हुआ एक आरकिड था जिसे भू-आरकिड कहते हैं और जो सरलतापूर्वक उगाया जाता है। आप इसे बड़े पात्रों में उगा सकते हैं। यदि आपके पास कई पौधे हों तो आप जितने चाहें उतने पुष्प प्राप्त कर सकते हैं। फूल की ओर देखकर ही आप लाक्षणिक बैंड को देख सकते हैं।

इसी विशेष पुष्प से मैंने क्लोरोफिल बैंड की लाक्षणिक संरचना पाई। बाद में अन्य स्थलों पर भी मुझे यह प्राप्त हुआ है। यह विशेष पदार्थ मुझे इसके एक दूसरे प्रकार से मिला जिसके फूल छोटे होते हैं। इनका रंग अधिक गाढ़ा होता है। आप कुछ फूल लीजिये, उन्हें चाकू से काटिये और जल के साथ हिलाइये और कुछ करने की आवश्यता नहीं है। यह संसार की सरलतम पद्धति है यदि आप को ठीक पदार्थ मिल जाय और उससे आप पूर्णरूपेण स्थायी रंग बनालें। यह रंग एक पक्ष से अधिक हुआ बना रखा है। वास्तविक लक्षण जो दोनों के भेदों को परिलक्षित करते हैं अवशोषण स्पेक्ट्रम हैं। यदि आप एक छोटे स्पेक्ट्रोस्कोप से इस नीले क्लोरोक्रोम को गर्दन पर देखें तो बहुत अवशोषण हो जाता है किन्तु यदि आप बोतल की गर्दन देखें तो आपको सुनिश्चित लाक्षणिक बैंड दिखाई पड़ेंगे। ये बैंड परमाणु स्पेक्ट्रम की भाँति तो सुस्पष्ट नहीं होंगे किन्तु फिर भी किसी जीवित पदार्थ के लिये वे जितने सुस्पष्ट हो सकते हैं उतने अवश्य होंगे। लाल या नारंगी लाल क्षेत्र में सुस्पष्ट बैंड उसी प्रकार के हैं, जिनका उल्लेख मैंने मानिंग ग्लोरी के सम्बन्ध में किया है। हरित पीत क्षेत्र में एक और तीसरा नीलाभ-हरित क्षेत्र में। ये तीनों क्रमानुसार क्षीण होते जाते हैं। ये तीनों ही मिलाकर फ्लोरोक्रोम बी और ए के लिए लाक्षणिक हैं। लाल का बिल्कुल ही अवशोषण नहीं होता। पीले और हरे दोनों ही क्षेत्रों में एक-एक तीव्र अवशोषण बैंड है और स्पेक्ट्रम के हरे और नीले क्षेत्रों की सीमा रेखा पर तीसरा बैंड है जो स्पेक्ट्रम में स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

अब मैं यहाँ अपने द्वारा की गई एक अत्यधिक रोचक खोज के सम्बन्ध में बताना चाहता हूँ। वह है फ्लोरोक्रोम बी जिसके कारण लाल रंग उत्पन्न होता है कुछ पत्तियों में भी पाई जाती है। वास्तव में आपको एक टोकरी भर ऐसी पत्तियाँ मिल सकती हैं जिनमें यह लाक्षणिक अवशोषण स्पेक्ट्रम हो। यह उद्यान पादप ट्राडिस्कैंटिया है जिसका एक प्रकार वांडरिंग ज्यू के नाम से ज्ञात है। इसकी पत्तियाँ नील लोहित-रक्त वर्ण की हैं। आप कोई पत्ती लें उसे तोड़ लें, उसमें से क्लोरोफिल वाला खण्ड निकाल लें और शेष को जल के साथ हिलायें और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। आपको वही पदार्थ उसी अवशोषण स्पेक्ट्रम वाला प्राप्त हो जावेगा। मैं यह सब आपको इसके प्रमाण में बताना चाहता हूँ कि आप इस समय एक अकेले रसायन के सम्बन्ध में परीक्षण कर रहे हैं। यह उसी प्रकार का एक अकेला रसायन है जैसा कि क्लोरोफिल है या कोई अन्य पदार्थ। इस प्रकार मैं कह सकता हूँ कि ये दो अलग-अलग रासायनिक पदार्थ हैं।

जिस प्रकार क्लोरोफिल पत्तियों को हरा रंग प्रदान करता है उसी प्रकार ये दोनों पदार्थ फूलों के अलग अलग रंगों को जन्म देते हैं। अच्छा शायद मुझे अब रुक जाना चाहिये क्योंकि मैंने कुछ मजाकिया बातों में आपका बहुमूल्य समय ले लिया है क्योंकि इन बातों की चर्चा का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं था। मैंने यह सब आपका ध्यान आकर्षित करने के लिये किया था। आपका ध्यान आकर्षित करके अब मैं इस सम्बन्ध में आगे की बातें बताऊँगा। मैं यह नहीं चाहता कि आप यह अनुमान लगा लें कि सभी समस्याओं का समाधान हो गया है। अभी तक ऐसा नहीं हो पाया है। जैसे गुलाब का उदाहरण लें। वास्तव में कानपुर में लोगों ने मेरे सर पर फेंक-फेंक कर मालाओं का पहाड़-सा लाद दिया था और ये सब मालायें गहरे लाल गुलाबों की

थीं। यदि आप यहाँ और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् में देखें तो आपको सभी प्रकार के गुलाब मिलेंगे।

वास्तव में मैंने विशेष रूप से गुलाबों की चर्चा की है क्योंकि इसके सम्बन्ध में जनसाधारण अधिक रुचि लेता है। सभी गुलाब लाल नहीं होते। आप स्वयं भी देख सकते हैं। मैं गया और मैंने स्वयं सभी लोगों और कार्यभारी सज्जन के साथ देखा। यदि आप स्वयं इसका सत्यापन करना चाहते हैं और यदि आपको इस क्षेत्र में रुचि है तो आप ऐसा करना चाहेंगे ही। लाल रंग के गुलाब के लाल रंग का मूल जानने के लिये यह आवश्यक है कि आप गहरे लाल रंग के गुलाब से लेकर गुलाबी रंग के गुलाब तक सभी पर परीक्षण करें। इन सारे रंगों का क्षेत्र केवल इसी रंजक की मात्रा पर निर्भर है। रंजक की अधिक मात्रा वाले गुलाब का रंग गहरा और कम मात्रा वाले गुलाब का रंग हल्का होगा और यह क्रम इसी प्रकार चलता जावेगा। जैसा मैंने पाया है ऐसा ही परिणाम सभी परीक्षणों में मिलेगा। रंग की गहराई का निश्चय रंजक की उपस्थित मात्रा से किया जा सकता है।

ऐसीटोन निष्कर्षण पद्धति से यह बात सरलता से बताई जा सकती है। आप एक बीकर लें, उसमें गुलाब की कुछ पंखुड़िया रखें, ऊपर से ऐसीटोन डालें। आप कहेंगे जल क्यों नहीं डालें? जल से भी काम चल सकता है किन्तु ऐसीटोन से और अच्छे परिणाम मिलते हैं। मैं नहीं जानता ऐसा क्यों होता है। हो सकता है ऐसीटोन अधिक शीघ्रता से भेदन करता हो। हो सकता है इसमें कुछ बंधुता हो। आप विलयन के नियम जानते हैं। यह एक भिन्न विषय है। आपको देखकर आश्चर्य होगा कि जैसे ही गुलाब के सुन्दर फूल ऐसीटोन में डाले जाते हैं वे श्वेत हो जाते हैं और सारा रंग ऐसीटोन में आ जाता है। अब आप इस विलयन को नली में ले लें और स्पेक्ट्रसकोप में रख कर देखें तो आपको ये तीन बैंड दिखाई देंगे। वे बहुत तीव्र नहीं होते किन्तु फिर भी वे उपस्थित हैं और आप स्पेक्ट्रम प्रकाशमापी द्वारा उनका अभिलेखन कर सकते हैं। मेरी प्रयोगशाला से एक पाक्षिक पत्रिका **'करेंट साइंस'** निकलती है उसमें मैंने कई वक्र प्रकाशित कराये हैं। किन्तु यहाँ मैं आपको एक आश्चर्य-जनक पौधे के सम्बन्ध में बताऊँगा। कानपुर में मैं जिनके घर में ठहरा था उनके उद्यान में मुझे एक अनुभव हुआ। उनके यहाँ सिनेरेरिया नाम के पादप के बहुत से प्रकार थे। बंगलोर में भी यह खूब उगता है और मैंने उसे बहुत देखा भी है। मैंने कहा कि इसे उगाने में पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ता है। इसके मैंने नमूने उन लोगों के यहाँ से एकत्र किये थे जो समय और धन लगाकर उन्हें उगाते हैं। किन्तु सिनेरेरिया के सम्बन्ध में यह सत्य है कि उससे आपको रंगों का पूरा परास प्राप्त हो जाता है। देखकर विश्वास नहीं होता। सिनेरेरिया में विशेषता यह है कि यह एक बूटी है। यह बड़ी-बड़ी पत्तियों के रूप में उगता है। इसमें केवल एक ही फूल न लगकर एक ही आकार के 20 या 30 फूलों का गुच्छा लगता है और उनका रंग महीनों तक चलता है। फूल मुरझाता नहीं है। आप तोड़-तोड़ कर एक-एक फूल का आराम से सुविधानुसार परीक्षण कर सकते हैं। और आश्चर्य की बात यह है कि आपको कुछ विशेष नहीं करना है। फूल की एक पंखुड़ी लीजिये। उसे स्पेक्ट्रास्कोप के सामने रखिये, उसे टंगस्टन लैम्प से प्रकाशित कीजिये और एक फोटोग्राफी प्लेट पर स्पेक्ट्रम ले लीजिये। इस प्रकार आप को स्पेक्ट्रम का पूरा परास प्राप्त हो जाता है। इस स्पेक्ट्रम में रंग उसी क्रम में रहते हैं जिसमें वे फूल के रंग में रहते हैं।

जो व्यक्ति पुष्प वर्णों में रुचि रखता हो उसके लिये सिनेरेरिया बड़ा महत्वपूर्ण है। मैं इसे एक अन्य दृष्टि से भी अधिक महत्व देता हूँ। वैज्ञानिक दृष्टि से यह आश्चर्य-जनक है क्योंकि यह मुझ जैसे घोर भौतिकज्ञ के सौन्दर्यबोधी मनोवेगों को संतुष्ट करता है। यह आश्चर्यजनक रूप से सुन्दर है। मुझे पता नहीं वैसे शायद यह दिल्ली में भी भली-भाँति उगता है। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि यह पुष्प मेरे सिद्धान्त, मेरी उपलब्धि या मेरी खोज की पुष्टि इतनी ही अच्छी तरह करता है। यह सब कहने से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आप किसी असामान्य पौधे पर प्रयोग करें। मैं सोचता हूँ कि इस विषय में आकर्षित

करने वाली बात यह है कि फूल सैंकड़ों हजारों प्रकार के हैं। ऐसी छोटी वस्तुओं जैसे घास पर या विशाल वृक्षों जैसे लेगास्ट्रोमिया, रोजिया, आसरोमिया प्रोपानिया आदि पर लगते हैं। बंगलौर पूरे वर्ष भर रंग बिरंगे फूलों से सजा रहता है। मेरे उद्यान में भी कुछ पादप हैं। एक पौदा पेटोनिया कहलाता है। यह एक काष्ठीय विसर्पी है। वर्ष के एक मौसम में यह पुष्पयुक्त शाखाओं से ढका रहता है और अतिसुन्दर नीललोहित नील रंग का अच्छा प्रदर्शन करता है।

जहाँ तक इस विषय का सम्बन्ध है सामग्री के अभाव के कारण यह कार्य नहीं रुक सकता। यदि कोई व्यक्ति फूलों का अव्ययन करना चाहता है तो उसे एक बड़ी मात्रा में सामग्री उपलब्ध हो सकती है किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं हैं कि सभी फूल इस दृष्टि से एक समान हैं। मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि फूलों के रंग वर्णक की मात्रा और फ्लोरोक्रोम ए या बी या दोनों का उस पर प्रभाव यदि वह दोनों का मिश्रण है, पर निर्भर है। और फिर पीत वर्णक की भी सम्भावना हो सकती है जो केरोटीनाइड़ों या इसी प्रकार के पदार्थों के कारण हो सकता है। माली सुन्दर रंग के फूल उत्पन्न करना चाहता है इससे इनका भी समावेश हो जाता है। वे अलग-अलग प्रकारों की कलमलगाकर संकर पौधे उत्पन्न करते हैं। आप मेरा अभिप्राय समझ गये होंगे। वे लाल रंग में पीले रंग का प्रवेश कर देते हैं। इसी प्रकार के प्रयोग चलते रहते हैं और विचित्र संकर पौधे उत्पन्न हो जाते हैं। संकर पौधे के प्रति मेरी अरुचि नहीं है। आपने ऐसा गुलाब देखा होगा जिसका एक पृष्ठ लाल है और दूसरा पीला। इसी प्रकार के अन्य प्रयोग भी किये गये हैं। आप पादप विज्ञान के सम्बन्ध में जानते हैं—जितनी सुन्दर वस्तु होगी उतना ही अधिक मूल्य प्राप्त होगा। जब यह नया होगा मूल्य अधिक होगा। पुराने होने पर मूल्य एकदम गिर जावेगा। मैं आपसे यह सब इसलिये कह रहा हूँ कि जब आप इस क्षेत्र में कार्य करें तो इस प्रकार के जटिल संकर जाति के पौधों पर प्रयोग न करें। केवल ऐसे पौधे लें जिनमें एक या अधिक से अधिक दो ही रंगों का मिश्रण हो। इस प्रकार इस शोध कार्य का क्षेत्र विशाल है जिसमें भिन्न-भिन्न मिश्रणों में सब प्रकार के फूलों के रंगों का सूत्रपात जिन कारणों से हुआ हो उनका परीक्षण किया जा सके। इन मिश्रणों में सब प्रकार के संकर पादप और प्राकृतिक पादपों का परीक्षण किया जा सकता है। अनेकों समस्यायें है जिनके समाधान के लिये परीक्षण किये जा सकते हैं।

एक समस्या है कि सभी परिस्थितियों में रंग स्थायी नहीं होता। वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। सिनेरेरिया या आर्काइडों में बैंड क्यों इतना तीव्र और लाक्षणिक है? अन्य पुष्पों के परीक्षणों में बैंड की तीव्रता इतनी स्पष्ट क्यों नहीं है? वह अधिक विसरित क्यों है? बहुत से बैंडों के कारण? उदाहरण के लिये नील लोहित फूल पीले और हरे रंग के मुख्य बैंड प्रदर्शित करते हैं किन्तु वे इतने फैले रहते हैं कि यदि आप उन्हें ठीक से देखना चाहें तो आपको ऐसीटोन में विलयन बनाकर स्पेक्ट्रस्कोप में देखना पड़ेगा। तभी आपको स्पष्ट दिखाई पड़ेगा आप सीधे फूलों में नहीं देख पायेंगे। यह एक विशेष क्षेत्र में सामान्य अवशोषण के कारण मालूम पड़ता है और फिर उसका परिवर्तनशील स्थायीपन? अब मुझे सफलता मिल गई है और मैंने इन तथ्यों को प्रकाशित कर दिया है। इसलिये मुझे इसे विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जो निबन्ध मैं लिख रहा हूँ उसमें मैंने भली भाँति इसका निरूपण कर दिया है।

अब प्रश्न है कि केवल दो ही फ्लोरोक्रोम क्यों हैं, 20 क्यों नहीं? कार्बनिक रसायन के क्षेत्र से सम्बन्धित कुछ विचारों से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है। आपको यह ज्ञात हो जायेगा। मैं आराम के साथ इस पर विचार नहीं करना चाहता। मैंने "करेंट साइंस" में एक शोधपत्र छपवाया है जिसमें मैंने इस पर विवेचन किया है। फ्लोरोक्रोम, उनकी संरचना और उनके स्पेक्ट्रम सम्बन्धी व्यवहार पर मैं आगे लिखूंगा। आज मैं जिस बात को जोर

देकर कहना चाहता हूँ वह यह है :—मैं इसके वानस्पतिक पक्ष के सम्बन्ध में चक्कर में पड़ गया हूँ। मैं वनस्पति विज्ञान या संकरण के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानता। आप देखते हैं यहाँ इस विषय के पंडित विराजमान हैं। यह स्थान उन लोगों से भरा है जो पौधों में अनेक प्रकार की विचित्र क्रियायें करते हैं और वानस्पतिक चमत्कार पैदा करते हैं। आप जानते हैं इससे मेरा अभिप्राय क्या है ? चावल में पर्याप्त प्रोटीन है। यह बात आश्चर्यजनक है। अभी मैंने अपने वैज्ञानिक भाषण की दुरूहता से श्रोताओं को मुक्त करने के लिये जो कहा वह भी इस विषय से ही सम्बन्धित है। कानपुर में एक दक्षिण भारतीय के यहाँ मुझे रात्रि के भोजन पर निमंत्रित किया गया। इस कार्यक्रम के पूर्व एक भाषण था और उन्होंने मुझ से परामर्श मांगा। मैं राय देने में विश्वास नहीं करता किन्तु जब मुझे राय देनी ही पड़े तो मैं बड़ी उग्र और स्पष्ट राय देता हूँ। मैंने दो राय दी। पहली यदि आप यहाँ के लोगों से मिल-जुल कर कार्य करना चाहते हों तो हिन्दी सीखें। उनसे उनकी भाषा में बात करें। एक तमिल भाषी, और वह भी द्रविण मुनेत्र कडगम प्रदेश से आने वाले से यह कहना कठोर ही समझा जायेगा। मैंने उन्हें इस सम्बन्ध में एक व्यावहारिक पाठ दिया और वह व्यावहारिक पाठ यह है :—

मेरा विवाह 67 वर्ष पूर्व हुआ किन्तु मैं बंगलौर में लोकप्रिय नहीं हूँ यद्यपि मैं कह सकता हूँ कि लोग मुझे बरदाश्त कर लेते हैं। मेरी पत्नी बंगलौर में अत्यन्त लोकप्रिय है। इस बात में संदेह के लिये स्थान नहीं। बच्चों से लेकर बुड्ढ़ों तक सभी उनसे गहरा स्नेह करते हैं और बच्चे तो बुड्ढ़ों से भी अधिक। कारण बड़ा सरल है। वह भाषाविद हैं। वे बंगालियों से बंगला में, तमिलनाडु के लोगों से शुद्ध परिष्कृत तमिल में, आंध्र के लोगों से तेलगू में। एवं कन्नड़ वासियों से कन्नड़ में बातें कर सकती हैं। अन्य कुछ भाषाओं के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है। वे संस्कृत में बोल सकती हैं। यद्यपि वे कभी स्कूल नहीं गई फिर भी जैसे आप लोग बोलते हैं उसी प्रकार से वे अंग्रेजी भी बोल लेती हैं। वे संस्कृत जानती हैं। मुख्य बात यह है कि यदि आप किसी व्यक्ति का स्नेह पाना चाहते हैं तो उससे उसकी भाषा में बात करें। आपको शायद विश्वास न हो प्रातःकाल मुझे श्रोताओं के सम्मुख हिन्दी में बोलने को कहा गया। मेरे भाषण की हिन्दी अच्छी नहीं रही होगी क्योंकि मुझे हिन्दी में बोलने का अभ्यास नहीं है। यदि मैं हिन्दी भाषी प्रदेश में रहूँ और साधारण जनों से सम्पर्क रखूं तो मैं हिन्दी का विशेषज्ञ हो जाऊँगा।

दूसरी राय जो मैंने उन्हें दी वह यह है :—इस संस्था में जो हो रहा है उसके सम्बन्ध में यह एक प्रस्ताव है। मैंने उनसे कहा कि चावल खाना छोड़ दो और मांसाहार प्रारम्भ करो। पर्याप्त समय के पश्चात जब चावल में प्रोटीन की मात्रा पर्याप्त हो जायेगी तब चावल खाना ठीक होगा। तब हम विचार करेंगे कि हम चावल खायेंगे या नहीं। मैंने कहा किन्तु तब तक मांस तो प्राप्य है और मांसाहार उत्तर भारत के लोगों को दक्षिण भारत के लोगों की तुलना में अधिक पुष्ट बनाता है। मैं इस विषय में नहीं जानता। इस विषय पर मैंने बहुत-सी विपरीत बातें सुनी हैं। कुछ कहते हैं कि चावल खाने से लोग मूर्ख या बुद्धिहीन हो जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि राजगोपालाचारी और राधाकृष्णन के समान व्यक्ति चावल के आहार के कारण ही उत्पन्न हुये हैं। सत्य क्या है मुझे पता नहीं। किन्तु कृषि अनुसंधान संस्थान के निदेशक प्राधिकरण पर मैं कह सकता हूँ कि लोगों के लिये प्रोटीन अच्छी है। अभाग्यवश प्रोटीन कठिनाई से पचती है। मैंने बहुत दिन हुये प्रोटीन लेना छोड़ दिया और शुद्ध चावल ही लेता हूँ। मैं नहीं जानता इससे मेरी मस्तिष्कीय पद्धतियों पर कुछ विपरीत प्रभाव पड़ा या नहीं किन्तु यदि चावल में कुछ कमी है तो मैं उसे दूसरी रीति से पूर्ण करता हूँ और वह है अधिक मात्रा में दूध और फल लेकर। किन्तु जैसा आप जानते हैं फलों के सम्बन्ध में बड़ी कठिनाई है। भारत में कुछ बढ़िया फल उत्पन्न होते हैं जैसे, केले, आम, काजू, इत्यादि। किन्तु आज इन सब की निर्यात के लिये आवश्यकता है जिससे विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सके। जब गरीबों के लिये केले प्राप्त न हो सकेंगे और आम भी

अमीरों के लिये ही प्राप्त हो सकेंगे। जितने अच्छे आम हैं वे सब ले लिये जायेंगे और हमारे लिये कठोर खट्टे और न खाये जा सकने वाले आम रह जायेंगे। सब अच्छे आम विदेश भेज दिये जायेंगे। मैं सोचता हूँ कि एक दिन ऐसा आवेगा जब मुझे एक रुपये का एक केला खरीदना पड़ेगा। ऐसा होगा, यदि आप प्रत्येक वस्तु निर्यात करते जायेंगे तो उसका भाव अवश्य बढ़ जायेगा।

मैं समझता हूँ कि फ्लोरोक्रोम की कार्बनिक संरचना के भावात्मक विचार की तुलना में आपको यह अधिक रोचक लग रहा होगा। मैं अपने श्रोताओं को इस प्रकार के भावों में बहाकर नहीं ले जाना चाहता। इसके लिये मुझे अत्यन्त सावधानी से काम लेना होगा। मैं आशा करता हूँ कि मैं इस प्रमाण को उसकी सम्पूर्णता के साथ अत्यन्त विश्वास दिलाने वाली पद्धति से आपके सम्मुख प्रस्तुत कर सकूँगा और यह सिद्ध कर सकूँगा कि ये दो रसायन विशेष स्पेक्ट्रोस्कोपीय गुणों वाले हैं, वे एक दूसरे से बिना प्रतिक्रिया किये मिलाये जा सकते हैं और वे ही फूलों के रंगों के लिये उत्तरदायी हैं। वास्तव में अनेकों उदाहरणों या सैकड़ों उदाहरणों से तथ्यों का दिग्दर्शन किया जा सकता है। बात यह है कि तथ्यों को एक ठोस आधार पर खड़ा कर दिया जाय। सिद्धान्त तथा उनका विवरण बाद में प्रस्तुत किया जा सकता है। मैं सोचता हूँ कि यही अच्छा होगा। मैं उनसे कहता हूँ यह दृष्टि का सिद्धान्त बिल्कुल नहीं है। मेरा कार्य निरीक्षण द्वारा प्राप्त ठोस तथ्य है। यदि आप इसे गलत सिद्ध कर दें तो मैं अपने सिद्धांत या यह जो कुछ भी हो उसे समुद्र में फेंक देने को तैयार हूँ किन्तु तथ्यों के विषय में क्या किया जाये। मैं इसी प्रकार की वृत्ति अपने देश के लोगों में चाहता हूँ।

हम ठोस परीक्षणों द्वारा प्राप्त ठोस तथ्यों को अपना आधार बनाते हैं। वास्तव में किसी खोज का मुख्य भाग व्याख्या है। किन्तु निरीक्षण इतना सांगोपांग इतना सम्पूर्ण होना चाहिये कि कोई उसे चुनौती न दे सके। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैं कानपुर एक विशेष उद्देश्य से गया था। मैं समझता हूँ कि मैं इसमें कुछ अंश तक सफल हो गया हूँ और शेष कार्य अपने समय से पूर्ण हो जावेगा। मेरा उद्देश्य यह था: उत्तर प्रदेश की जनसंख्या विशाल है। आपको वहाँ के कालेजों को देखना पड़ेगा जिससे आप समझ सकें कि वहाँ क्या हो रहा है। एक एक कालेज में हजारों विद्यार्थी हैं। यदि उन्हें कालेज के बरामदों में खड़ा किया जाय तो बरामदों में से निकलने के लिये स्थान नहीं बचेगा। जैसा मैंने बताया यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं वहाँ जाऊँ और आपके निदेशक ने मुझे यह संकेत दिया कि यह मेरा कार्य है कि मैं वहाँ जाऊँ और उन लोगों में यह चेतना उत्पन्न करूँ कि राष्ट्र के विकाश में विज्ञान का जो योगदान है उसमें उनकी रुचि बढ़े। मैंने उनके विचारों को झकझोर दिया है। मुझे इस कार्य में आशातीत सफलता मिली है। उन्हें इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनके सामने एक दक्षिण भारत का ब्राह्मण खड़ा है जो एक साफा बांधे हुये है और जिसे नोबुल पुरस्कार भी मिल चुका है। उन्हें जो धक्का लगा है उससे वे वैज्ञानिक शिक्षण पद्धति का पुनर्निरीक्षण कर रहे हैं और इस प्रकार नई पीढ़ी निश्चित रूप से जागेगी और इस सम्बन्ध में कुछ कर दिखायेगी। मैं इसके विवरण में नहीं पड़ूंगा किन्तु मैं समझता हूँ कि यह देश की अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं में से है। जैसे बंगालियों में कहावत है: तेल पड़े हुये सिर में पुनः तेल डालना। ऐसा तब होता है जब कोई अधिक सम्पन्न हो और बहुत अच्छा तेल इस्तेमाल करता हो और आप उससे भी अधिक सुगंधित तेल प्राप्त कर लें और इसी प्रकार क्रम चलता रहे। इस प्रकार के कार्यों की देश को आवश्यकता नहीं है। मैं सोचता हूँ हमें प्रारम्भिक वैज्ञानिक शिक्षा की आवश्यकता है। हम बिल्कुल प्रारम्भिक स्थिति से प्रारम्भ करें और नीचे की पीढ़ी का निर्माण करें। ऐसे थोड़े से संस्थाओं से क्या भला होगा जहाँ कोई बड़ी ऊँची बातें करता है और कुछ लोगों के अतिरिक्त उसकी बात कोई नहीं समझता। आवश्यकता है कि हम वैज्ञानिक वातावरण का निर्माण करें, जहाँ नई पीढ़ी यह समझ सके कि क्या हो रहा है और उनमें उस

कार्य को सम्पन्न करने का उत्साह फूंक दिया जाय। मैंने उन्हें बताया कि उनके पास सब कुछ है। आप सब लोग पुराने वैज्ञानिकों के समान वैज्ञानिक नहीं हो सकते और आप नई पीढ़ी को भी यह बता सकते हैं कि उन सब लोगों के लिये भी यह सम्भव न हो सकेगा। यहाँ मैं वंशानुक्रम ले आया और वह भी मनुष्य जाति का वंशानुक्रम। मैंने कहा तैमूरलंग और नादिरशाह आये और उन्होंने लाखों के सिर कटवा डाले। किन्तु वे सबसे अधिक अविनाशी वस्तु को नष्ट नहीं कर पाये और यह वस्तु है मनुष्य शरीर में उपस्थित जीने। जीने सबसे दीर्घ जीवी वस्तु है। वे कभी नष्ट नहीं होती। विभिन्न पद्धतियों से उनमें परिवर्तन किया जा सकता है। मैंने कहा कि भारत में जीने परिपुष्ट हैं। उनके द्वारा जैसे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं वे योरप के किसी भी देश की तुलना में कमजोर नहीं होंगे। यदि आज हम उनके समान परिणाम प्राप्त नहीं कर पाते हैं तो उसका कारण यह है कि हम अभी निद्रा में हैं और सोचते हैं कि जो कुछ हमें पश्चिम से प्राप्त हो रहा है वह भगवान द्वारा प्रदत्त सत्य है और हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। अब तक पुरानी पीढ़ी द्वारा अभाग्यवश इसी प्रकार के विचारों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। मैंने जैसा कहा आपको इस विचार को त्याग देना है। इस वृत्ति के परित्याग के लिये मैं उग्रतापूर्वक आग्रह करता हूँ। मैंने कहा कि अब हमें जागृत होकर इस सम्बन्ध में कुछ करने की आवश्यकता है। अब हमें पश्चिम के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के सामने उसके बराबर बनकर ही नहीं अपितु उससे भी श्रेष्ठ होकर खड़े होना है। जैसा मैंने कहा अब हम ऐसा अवसर लायें कि अभी जो हम अपना सारा ज्ञान पश्चिमी देशों से ही प्राप्त कर अपने यहाँ फैलाते हैं यह स्थिति बदल जाये। हम प्रयत्न करें कि ऐसा समय आये कि पूर्व से ज्ञान का ऐसा प्रकाश फैले कि वह पश्चिम को प्रकाशित कर दे। यह उसी प्रकार तेजोमय क्रान्तिकारी मसाला है जैसा बालगंगाधर तिलक पुराने समय में देते थे। वे एक भयंकर व्यक्ति थे और गांधी जी के साथ उनकी कोई समानता न थी वे बड़े ही उद्दंड व्यक्ति थे। मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि बालगंगाधर तिलक ने भारत के हित में शान्तिप्रिय महात्मा गांधी से अधिक कार्य किया या गांधी जी ने बालगंगाधर तिलक द्वारा डाली गई नींव पर कार्य किया। यह मेरा अपना विचार है। आप जानते हैं कि यह प्रकाशन के लिये नहीं है। मैं समझता हूँ कि पहले आप राष्ट्र में लड़ने की अग्नि उत्पन्न कीजिये और बाद में उन्हें शान्ति पूर्वक व्यवहार करने को कहिये। इस बात में विसंगति दिखाई देती है किन्तु यदि किसी व्यक्ति में लड़ने के लिये क्रोध उत्पन्न हो गया है तो वह जोर से मार कर सकता है और जब फिर दुबारा मार करने की स्थिति आये तो वह शान्त हो सकता है। मैं समझता हूँ कि मैंने आप लोगों का बहुत समय लिया। (अब मैं इस सम्बन्ध में अधिक नहीं कहूँगा। मेरा समय समाप्त हो गया है। मैं देख रहा हूँ कि भैंसे पर सवार यमराज हाथ में फंदा लिये हुये मुझे बुला रहे हैं। अतः मैं अपना भाषण समाप्त करता हूँ।)

● ●

- **अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।**

- **हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।**

वायु–प्रदूषण

□ डा० शिवगोपाल मिश्र

इधर कुछ वर्षों से वायु-प्रदूषण की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित हुआ है। वायुमण्डल में जीवनदात्री गैस आक्सीजन के चुक जाने के सम्बन्ध में अनेक अटकलें लगाई गई हैं। अनुमान है कि अभी तक 3000 खरब टन आक्सीजन का व्यय इंजनों, भट्टियों तथा कारखानों में हो चुका है फलस्वरूप भविष्य में एक समय ऐसा भी आ सकता है जब वायुमण्डल में आक्सीजन ही न रह जाय। तब फिर क्या होगा ? लेकिन कुछ वैज्ञानिकों का कथन है कि यदि हम विश्व में उपलब्ध ईंधन की सम्पूर्ण मात्रा को जला दें तब भी वायुमण्डल की आक्सीजन में किञ्चित-मात्र ही अन्तर पड़ेगा। वह 20·952% से घट कर 20·8% ही होगी।

कुछ भी हो, वायु-प्रदूषण कोई नवीन घटना नहीं है। भूतकाल में भी लोग इससे संत्रस्त थे। फिर आज जब पूरे विश्व में जनसंख्या का विस्फोट हुआ है और सभ्य बनने की भगदौड़ में राष्ट्रों का औद्योगीकरण हुआ है उससे वायु प्रदूषण ने नये आयाम धारण कर लिये हैं। आज वायु-प्रदूषण की समस्या से विमुख नहीं हुआ जा सकता। प्रत्येक प्राणी को स्वच्छ वायु ग्रहण करने का अधिकार बना रहे इसके लिये वैज्ञानिकों को वायु-प्रदूषण के कारणों, वायु-प्रदूषण के लिये उत्तरदायी कारकों एवं वायु-प्रदूषण पर नियन्त्रण करने के उपायों की विस्तार जाँच पड़ताल करनी आवश्यक है। सौभाग्यवश जापानी तथा अमरीकी वैज्ञानिक इस दिशा में काफी आगे बढ़ चुके हैं। हमारे देश में भी सेंट्रल पब्लिक हेल्थ इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीच्यूट (सी पी एच ई आर आई), नागपुर में वायु-प्रदूषण तथा औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान की दिशा में कार्य सम्पन्न हो रहा है। इस उद्देश्य से नई दिल्ली, कानपुर, कलकत्ता, हैदराबाद, मद्रास, बम्बई तथा अहमदाबाद में केन्द्र स्थापित किये गये हैं। नागपुर में वायु-प्रदूषण के अध्ययन के लिये टोकियो या मास्को जैसा केन्द्र है।

अभी तक भारत वर्ष में वायु-प्रदूषण के सम्बन्ध में दो प्रकार के परीक्षण सम्पन्न हुये हैं।

1. **धूल की मात्रा**—कानपुर, दिल्ली, कलकत्ता तथा बम्बई में वायु की गुणता सम्बन्धी जो परीक्षण हुये उनसे ज्ञात हुआ है कि यदि प्रति घन मीटर वायु में दिल्ली में 700 माइक्रोग्राम धूल उपस्थित रहती है तो कानपुर तथा कलकत्ता में समान रूप से 500 माइक्रोग्राम और बम्बई में केवल 238 माइक्रोग्राम। इसकी तुलना में पाश्चात्य देशों में यह मात्रा 150 माइक्रोग्राम है। राजस्थान के रेगिस्तान से निकट होने के कारण कभी कभी दिल्ली में 10 हजार माइक्रोग्राम तक धूल पाई गई है। है। ये धूल के कण मनुष्यों के श्वास लेने में बाधक बनते हैं।

2. **हानिकारक गैसें**--इन गैसों में से सल्फर डाइ आक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड तथा कार्बन मोनोक्साइड प्रमुख हैं। यह पाया गया कि नई दिल्ली रेलवे स्टेशन के आस पास के भागों में सल्फर-डाइ-आक्साइड की मात्रा अधिक रहती है जो निश्चित रूप से कोयले के जलने के कारण है। किन्तु हाइड्रोजन सल्फाइड की मात्रा दिल्ली में कम तथा बम्बई में अधिक पाई गई है। इसका कारण वहाँ पर समुद्री किनारे का होना है। कार्बन मोनोक्साइड गैस

सड़कों में यातायात के लिये प्रयुक्त मोटरों, स्कूटरों, लारियों आदि में पेट्रोल के जलने से उत्पन्न होती है। यह देखा गया है कि जब सड़कों पर वाहनों का सर्वाधिक संचार होता रहता है उस समय इस गैस की मात्रा उच्चतम होती है। कलकत्ता जैसे व्यस्त नगर में यह गैस इतनी अधिक उत्पन्न होती है कि उसकी तुलना अमरीका के न्यूयार्क या शिकागो जैसे शहरों में पाई जाने वाली कार्बन मोनोक्साइड गैस की सान्द्रता से की जा सकती है।

नवीन सूचनाओं के अनुसार भारत की जनसंख्या 54·7 करोड़ है। बड़े बड़े शहरों की जनसंख्या में वृद्धि हुई है। यदि कलकत्ता की आबादी 70 लाख हो गई है तो दिल्ली की 40 लाख। सीमित क्षेत्र में जन संख्या की वृद्धि का तात्पर्य है सीमित वायु में और अनेक लोगों का भागी बन जाना जिसका अर्थ होता है वायु की खुराक में कटौती। भला कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपने भोजन में कटौती करना पसन्द करेगा किन्तु वायु की यह कटौती उसके बिना जाने, अनदेखे हो रही है जिसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ेगा। फिर यह जितनी वायु मिल रही है वह प्रदूषित भी हैं। जितना ही बड़ा और औद्योगिक शहर होगा, वहाँ उतना ही अधिक वायु-प्रदूषण होगा। वायु-प्रदूषण और औद्योगीकरण में सीधा सम्बन्ध है।

वायु-प्रदूषण के लिये उत्तरदायी कारक

वायु-प्रदूषण प्रमुख पाँच स्रोतों से सम्भव है :

1· **दहन**—घर में ईंधन को जलाने; यातायात के लिये प्रयुक्त मोटरों, ट्रकों, हवाई जहाजों तथा रेलवे इंजनों द्वारा पेट्रोल तथा कोयले के जलाने या खुले स्थानों में कूड़ा, घास-पात के जलाने से वायु-प्रदूषित हो जाती है। प्रदूषण का कारण है बड़ी मात्रा में गन्धक तथा नाइट्रोजन के आक्साइडों का बनना, कार्बन मोनोक्साइड, सीसा, धुआँ, भाप तथा धूल का उठना। ये ही प्रदूषक कहे जावेंगे।

2. **औद्योगिक विकास**—चाहे रासायनिक संयंत्र हों--यथा पेट्रोलियम, उर्वरक, सीमेंट, काँच आदि के कारखाने जिनसे हाइड्रोजन सल्फाइड, सल्फर आक्साइड, धूल तथा धुआँ निकलता रहता है या फिर धातुकर्मी संयन्त्र हों—जैसे कि ऐल्यूमीनियम तथा इस्पात के कारखाने जिनसे धातु ज्वालायें (सीसा तथा जिंक) निकलती है अथवा रद्दी माल से अच्छे पदार्थों की पुनर्प्राप्ति के संयंत्र हो जिनसे धुआँ, कजली, भाप तथा धात्विक धुयें उत्पन्न होते रहते हैं और ये वायु में मिलते रहते हैं।

3. **कृषि कार्य**—चाहे फसलों पर कीटनाशियों का छिड़काव हो या खरपतवार, घासफूस, गोबर लकड़ी आदि का दहन हो, नाना प्रकार के कार्बनिक फास्फेट, क्लोरीनीकृत यौगिक, आर्सेनिक, पारद, सीसा, धुआँ, कजली इत्यादि उत्पन्न होते हैं और वायु को प्रदूषित करते रहते हैं।

4. **विलायक**—स्याही बनाना, रंग लेपन करना, विलायक को शुद्ध करना—इन सभी प्रक्रमों में तमाम हाइड्रोकार्बन तथा कार्बनिक वार्प्प निकलती रहती हैं।

5. **नाभिकीय ऊर्जा**—चाहे अयस्कों का पीसना या छानना हो या रासायनिक पृथक्करण हो अथवा बम विस्फोट के रूप में हो, प्रचुर मात्रा में यूरेनियम, आर्गन, आयोडीन, रेडियो सक्रिय धूलि, स्ट्राँशियम 90, सीजियम 137, कार्बन – 14 आदि निकल कर वायुमण्डल को प्रदूषित करते रहते हैं।

यदि उपर्युक्त में सम्भावित रासायनिक तथा जैविक युद्ध की सम्भावनों से ओतप्रोत नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों को भी सम्मिलित कर दिया जाय तो यह देखा जावेगा कि वायुमण्डल कितनी विधियों से विषाक्त बन सकता है।

वायु प्रदूषक—उपर्युक्त साधनों के साथ साथ प्रदूषकों का भी उल्लेख हुआ है किन्तु सुविधा की दृष्टि से हम उन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं।

1. **धुंआ**—अपूर्ण दहन से धुंआ उत्पन्न होता है। इसमें कजली के छोटे छोटे कण, विभिन्न गैसें तथा कुछ अम्ल भी मिले रहते हैं।

2. **धूल**—धूल के छोटे छोटे कण या तो भूमि

क्षरण के फलस्वरूप या फिर औद्योगिक संयंत्रों से प्राप्त होते हैं।

3. **कुहरा**—भाप, सल्फर ट्राइ आक्साइड आदि तरल अवस्था में कुहरा उत्पन्न करते हैं। किन्तु ऐसे कुहरे के अतिरिक्त भी बड़े बड़े शहरों में कोयला जलाने तथा मोटरों आदि के द्वारा निकले धुयें के कारण भी कुहरा छाया रहता है। इसमें गंधक के यौगिक, धुआँ तथा हाइड्रोकार्बन रहते हैं। ये आँखों में लगने वाले तथा पेड़ पौधों को हानि पहुँचाने वाले होते हैं।

4. **गैसें**—गैसों के रूप में गन्धक तथा नाइट्रोजन के आक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, हाइड्रोकार्बन, कार्बनिक तथा अकार्बनिक अम्ल प्रमुख हैं। (क) गन्धक के आक्साइडों में सल्फर डाइ आक्साइड प्रमुख है जो कोयला जलाने से उत्पन्न होती है। यह रंगहीन गला घोंटने वाली गैस है। कुहरा रहने पर यह सल्फर ट्राइ आक्साइड तथा सल्फ्यूरिक अम्ल में परिणत हो जाती है। (ख) नाइट्रोजन आक्साइडों में NO, NO_2 तथा N_2O प्रमुख हैं। ये वायुमण्डल की नाइट्रोजन तथा आक्सीजन के संयोग से दहन के समय उत्पन्न गैसें हैं। (ग) हाइड्रोकार्बनों में से नैफ्थलीन, ओलेफीन तथा पैराफीन प्रमुख हैं। ये गैसोलीन के अपूर्ण दहन से उत्पन्न होते हैं और ओलेफीन असंतृप्त होने के कारण अत्यन्त भयावह हैं। (घ) अम्लों में से सल्फ्यूरिक अम्ल, तथा नाइट्रिक अम्ल प्रमुख हैं। हाइड्रोजन फ्लोराइड भी प्राप्त होता है। ऐसीटिक, फ्यूमैरिक तथा टैनिक प्रमुख कार्बनिक अम्ल हैं।

उपर्युक्त प्रदूषकों में से गैसों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से सल्फर डाइ आक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड तथा नाइट्रोजन के आक्साइड प्रमुख हैं। अनुमान है कि प्रतिवर्ष 12 लाख टन कार्बन मोनोक्साइड, 17 लाख टन सल्फर डाइ आक्साइड तथा 6 लाख टन नाइट्रोजन आक्साइड शहरी क्षेत्रों से निकलते रहते हैं।

इन प्रदूषकों की मात्रा मौसम की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। वायुमण्डल की कुछ ही किलोमीटर ऊँचाई में सारी गैसें भरी रहती हैं। यदि तेज हवा चलती है या ताप में काफी परिवर्तन होता है तो प्रदूषकों का स्थानान्तरण होता रहता है। बड़े बड़े शहरों में कुहरा छाया रहने का कारण वहाँ की बड़ी बड़ी इमारतों द्वारा दिन में काफी ऊष्मा ग्रहण करके रात में उसे मुक्त करने के कारण है।

वायुप्रदूषण के प्रभाव—वायु प्रदूषण से मनुष्यों तथा पशुओं के स्वास्थ्य और वनस्पति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव—अनुमान है कि वायु प्रदूषण के कारण अनेक प्रकार की गले, नाक तथा आँख की उत्तेजनायें उत्पन्न होती हैं। यहाँ तक कि कैंसर भी हो सकता है।

ऐसा विश्वास है कि प्राकृतिक एयरोसालों (aerosols) से मात्र उत्तेजना उत्पन्न होती हैं किन्तु कोई हानि नहीं पहुँचती किन्तु मनुष्य निर्मित एयरोसाल श्वासमार्ग से भीतर पहुँच कर फेफड़ों को क्षतिग्रस्त कर सकते हैं। अनुमान है कि प्रत्येक बार साँस लेते समय 60 हजार कण प्रवेश करते हैं जिनमें से केवल 120 कण भीतर जा पाते हैं, शेष छन कर बाहर रह जाते हैं। किन्तु ये कण अपने में गैसें छिपाये रहते हैं और फेफड़े के भीतर पहुँच कर उसमें जमा हो सकते हैं। गैसें तो फेफड़ों में सीधी प्रविष्ट हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त ये गैसें आँख से आँसू उत्पन्न कर सकती हैं। जब ये गैसें शरीर की चमड़ी के सम्पर्क में आती हैं तो खुजलाहट उत्पन्न करती हैं। श्वसन मार्ग में पहुँच कर ये खाँसी, छींक उत्पन्न करती हैं तथा कौवे को प्रभावित करती हैं। सल्फर डाइ आक्साइड के प्रभाव से तो निश्चित रूप से ब्रांकाइटिस हो जाता है। हाँ, कैंसर भी हो सकता है या नहीं, इस सम्बन्ध में विशेष आंकड़े प्राप्त नहीं हैं।

कार्बन मोनोक्साइड के कारण मनुष्यों का मस्तिष्क प्रभावित होता है। उनमें सोचने-विचारने की शक्ति घटती है। यह रक्त को अशुद्ध कर देती है।

यह सच है कि मनुष्यों में वायु प्रदूषण को सह लेने की क्षमता है और कुछ हद तक वे इसे सह सकते हैं किन्तु

ऐसी स्थितियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं जब वे ऐसा न कर सकें। ऐसी स्थिति में शहरी लोगों को देहातों की ओर जाना पड़ेगा। एक साथ अनेक प्रदूषकों के प्रभावों को सह सकने में मानव कहाँ तक समर्थ है, यह तो भविष्य ही बतावेगा।

युद्ध के दिनों में आशंका रहती है कि दुश्मन कहीं जैविक अस्त्रों का सहारा लेकर समस्त वायु को प्रदूषित करके मनुष्यों में तरह तरह के रोग न फैला दे। वियतनाम युद्ध में 'कीटाणु' छोड़े जाने की सूचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। कहा जाता है कि ये कीटाणु तो मनुष्य के रंग में परिवर्तन ला देंगे।

वनस्पति पर प्रभाव—मनुष्य की तरह पेड़ पौधे एवं फसलें भी वायु प्रदूषकों से प्रभावित होती हैं।

पौधों के लिये सर्वाधिक घातक गैस सल्फर डाइ आक्साइड है—विशेषतता नई कोंपलें ध्वस्त हो जाती हैं। हाइड्रोजन फ्लोराइड तो संचित होने वाली गैस है। देखा गया है कि वृक्षों में 500 अंश प्रति दश लक्ष अंश हाइड्रोजन फ्लोराइड संचित हो सकती है। इससे पौधे की बाढ़ रुकती है और हरीतिमा जाती रहती है। शोभाकारी वृक्ष तथा लतायें एथिलीन गैस से प्रभावित होती हैं।

चिमनियों या कारखानों के आस पास दूर दूर तक के वृक्षों एवं खेतों की खड़ी फसलों को काफी क्षति पहुँचती है। उनसे उत्पन्न फलों एवं अन्नों में असामान्य रूप से विषैले तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है।

मौसम पर प्रभाव—अनुमान है कि वायु प्रदूषण के कारण मौसम या जलवायु में परिवर्तन हो रहा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यदि पृथ्वी का ताप 3·8° अधिक हो जाय तो आर्क्टिक तथा एंटार्क्टिक का जितना हिम है वह पिघल जावेगा जिससे संसार के अधिकांश बड़े बड़े शहर जलमग्न हो जावेंगे और सम्भावना है कि 100 वर्षों बाद वह समय आ जावे क्योंकि वायु प्रदूषण से वायुमण्डल का ताप बढ़ रहा है। वायुमण्डल के ताप बढ़ने का कारण है अधिक कार्बन डाइ आक्साइड का होना किन्तु इसके विपरीत धूल कणों से ताप घटने की भी समान सम्भावना है। ऐसा अनुमान है कि 1880 से 1940 ई० के बीच पृथ्वी का माध्य औसत ताप 0·4° बढ़ा है जिसमें से आधी वृद्धि वायु में कार्बन डाइ आक्साइड बढ़ने के कारण बतायी जाती है। इसके विपरीत धूल कण सूर्य के विकिरणों को अवशोषित करके पृथ्वी पर के ताप को घटाते रहते हैं।

बचने के उपाय

एक ओर जहाँ नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे वायु-प्रदूषण को घटाने में सभी प्रकार से योग दें, वहीं सरकार का भी यह अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है कि प्रदूषण के परीक्षण का प्रबन्ध करे, औद्योगिक केन्द्रों को आबादियों से दूर स्थापित करे, समय समय पर वायु प्रदूषण की सूचना दे, नागरिकों के लिये सुरक्षा नकाब प्रदान करे। वायु प्रदूषण सम्बन्धी अधिनियम बनाये। किन्तु अन्य भी उपाय हैं। यथा जो व्यर्थ पदार्थ हों उन्हें इस प्रकार से उपचारित किया जाय कि प्रदूषक न रहने पावें, अन्तर्दाही इंजनों में सुधार या फिर बिजली से चालित वाहनों की सुविधा की जाय और औद्योगिक क्षेत्रों में वायु प्रदूषण के लिये विशेष सतर्कता बरती जावे।

● ●

अखिल भारतीय हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य तथा सामग्री प्रदर्शनी

□ विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन म० प्र०

राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के चालीसवें अधिवेशन के अवसर पर

राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के चालीसवें अधिवेशन के अवसर पर विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के तत्वावधान में, अखिल भारतीय हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य एवं सामग्री प्रदर्शनी के समायोजन के द्वारा एक अभिनव एवं स्तुत्य परम्परा प्रारंभ की गयी। फरवरी के अन्तिम सप्ताह में आयोजित इस प्रदर्शनी की भव्यता तथा सफलता से यह सिद्ध हुआ कि राष्ट्रीय भाषा की विज्ञान विषयक सशक्तता एवं समृद्धि के पक्ष में वातावरण निर्मित करने तथा देश के विभिन्न प्रान्तों से आये वैज्ञानिकों तथा स्थानीय शिक्षकों, छात्रों एवं विज्ञान प्रेमी समुदाय को इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष जानकारी देने की दृष्टि से ऐसे प्रयास पर्याप्त लाभदायक एवं प्रभावकारी हो सकेंगे। हिन्दी को विश्वविद्यालयीन तथा उच्चतर स्तरों के हेतु शिक्षण एवं शोध का माध्यम बनाने, हिन्दी के अधिकाधिक ग्रन्थों के प्रणयन के हेतु नवोदित तथा कार्यरत लेखकों को प्रेरित एवं प्रोत्साहित करने तथा अद्यतन उपलब्ध साहित्य से छात्र एवं शिक्षकवर्ग को परिचित कराने की दृष्टि से ऐसी प्रदर्शनियां सभी राष्ट्रस्तरीय विज्ञान सम्मेलनों के अवसरों पर आयोजित करते रहने से बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी।

प्रदर्शनी में रसायन, भौतिकी, गणित, सांख्यिकी, वानस्पतिकी, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी एवं टैकनालाजी, भूविज्ञान, खगोल विज्ञान, सिद्धांत ज्योतिष आदि जैसे 20 से भी अधिक प्रमुख वैज्ञानिक विषयों पर तीन हजार के लगभग ग्रन्थों, लेखसंग्रहों, शोध- एवं अन्य पत्रिकाओं, पाण्डुलिनियों, भितिचित्रों आदि का भव्य प्रदर्शन किया गया।

विश्वविद्यालय पुस्तकालय में सुसज्जित इस प्रदर्शनी का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० कोठारी के मुख्य आतिथ्य में डा० नीलरतन धर द्वारा उद्घाटन किया गया। विशाल संख्या में आगन्तुक विज्ञान वेत्ताओं तथा स्थानीय विद्वानों, छात्रों एवं विज्ञान प्रेमी जनता ने प्रदर्शनी का अवलोकन कर लाभ उठाया।

प्रदर्शनी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग दिल्ली, हिन्दी समिति लखनऊ, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद ट्राम्बे, बम्बई, विज्ञान परिषद, इलाहाबाद, हिन्दी प्रकाशन समिति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद दिल्ली, सूचना मंत्रालय भारत शासन, ग्रन्थ निर्माण निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सोवियत राजदूतावास आदि संस्थाओं ने अधिकाधिक ग्रन्थ एवं साहित्य प्रेषित कर प्रदर्शनी की श्रीवृद्धि की। इन संस्थाओं के सहयोग के सम्न्ध में यह विशेष कथनीय है कि वैतश आयोग दिल्ली ने अपने वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी श्री कृष्णगोपाल एवं उनके दो सहयोगी, काशी विश्वविद्यालय ने डा० श्रवणकुमार तिवारी एवं हिन्दी समिति लखनऊ ने श्री सिन्हा को प्रतिनिधि के रूप में भेजा था।

सी० एस० आई० आर० के महानिदेशक डा० आत्माराम, उ० प्र० हिन्दी ग्रंथ अकादमी के शासी डा० रामकुमार वर्मा, काशी विश्वविद्यालय के डा० नन्दलाल सिंह, मेरठ विश्वविद्यालय के डा० वी० पुरी, आगरा से विक्रम विश्वविद्यालय के सेवा निवृत्त कुलपति डा० माताप्रसाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन

विभागाध्यक्ष एवं अकादमी के महासचिव डा० संतप्रसाद टंडन, तथा रसायन के सेवानिवृत्त आचार्य डा० सत्य प्रकाश, काशी के डा० गोरखप्रसाद श्रीवास्तव, लखनऊ के डा० सियाराम, पिलानी के डा० र० शं० राव, धनबाद के प्रो० एन० एल० शर्मा, सिंद्री के डा० सिन्हा आदि विभिन्न प्रान्तों के तथा स्थानीय सुप्रसिद्ध विद्वानों ने व्यक्तिगत रुचि लेकर अपने ग्रंथ, लेखसंग्रह, पांडुलिपियाँ आदि प्रेषित कर बहुमूल्य सहयोग दिया।

देश के, वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी के सभी प्रमुख प्रकाशकों ने अधिकाधिक पुस्तकें प्रेषित कर प्रदर्शनी की सफलता में योगदान दिया जिनमें दिल्ली के सुल्तानचन्द एण्ड सन्स, शिक्षा भारती (राजपाल एण्ड सन्स), मेरठ के प्रगति प्रकाशन, रस्तोगी एण्ड कं०, रतन प्रकाशन मन्दिर, विज्ञान लोक, इलाहाबाद के सरोज प्रकाशन, किताब महल, पटना के भारती भवन, लखनऊ के हिन्दुस्तानी बुक डिपो, उज्जैन के रामी ब्रदर्स विद्या मन्दिर, माणकचन्द बुक डिपो, इन्दौर के भैय्या ब्रदर्स आदि के नाम प्रमुख हैं। स्थानीय संस्थाओं में जीवाजी वेधशाला, धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय, सिन्धिया प्राच्य विद्या शोध प्रतिष्ठान, माधव विज्ञान महाविद्यालय आदि का सहयोग सराहनीय रहा।

प्रदर्शनी की सफलता के हेतु कुलपति डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन', प्रदर्शनी के संयोजक तथा रसायन विज्ञान पर उच्च स्तरीय ग्रंथों के प्रणेता एवं लब्ध प्रतिष्ठ लेखक डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री, अकादमी के स्थानीय सचिव द्वय प्रो० हरस्वरूप एवं डा० ह० ना० शर्मा एवं पुस्तकाध्यक्ष श्री नन्दकिशोर त्रिवेदी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

● ●

लेखकों से निवेदन

- **'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।**
- **लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।**
- **अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।**

क्या, क्यों, कैसे ?

1. रिक्त अन्तरिक्ष में क्या हैं ?

यदि हम अन्तरिक्ष में से तारे, ग्रह आदि निकाल दें तो क्या वह शून्य हो जायेगा ? नहीं, अन्तरिक्ष रिक्त नहीं हो सकता है। कुछ ही वर्षों पूर्व वाशिंगटन में कारनेगी इन्सटीट्यूट के खगोल शास्त्रियों ने इस प्रकार के परीक्षण किये। उनके द्वारा प्राप्त परिणामों के अनुसार दो तारों के मध्य एक घन गज 'रिक्त' अन्तरिक्ष में 20,000,000 मुक्त इलेक्ट्रान, इतने ही हाइड्रोजन परमाणु, 5 सोडियम परमाणु, 1 पोटैशियम परमाणु तथा 400,000 फोटॉन पाये जाते हैं।

2. कई आदमी गंजे क्यों हो जाते हैं ?

गंजेपन के तीन मुख्य कारण हैं।

(1) सिर के रोगों से भी आदमी गंजे हो जाते हैं।

(2) कई मनुष्य कसा हैट पहिनते हैं, फलस्वरूप रुधिर का संचार बालों तक ठीक से नहीं हो पाता है, और बाल कमजोर हो कर झड़ जाते हैं।

(3) सबसे मुख्य कारण आनुवंशिकी है, जिससे गंजापन संतानों में भी पाया जाता है। इसे पैतृक विरासत समझिये।

3. मक्खी छत अथवा दीवार पर कैसे चलती है ?

यदि मक्खी की टाँग सूक्ष्मदर्शी से देखी जाय, तो दो झिल्लियाँ दिखायी देती हैं, जो छोटे-छोटे बालों से ढकी रहती है। इसके अतिरिक्त टाँगों के सिरे पर चकती के आकार की छोटी रचनाँएं पाई जाती हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का विश्वास है कि यह चकती प्रचूषण का कार्य करती है। जब मक्खी छत अथवा दीवार पर चलती है तो छत तथा चकती के मध्य शून्य उत्पन्न होता है अतः वायु के दाब के कारण मक्खी अथवा अन्य इस प्रकार का कीड़ा नहीं गिरने पाता है।

कुछ अन्य वैज्ञानिकों का मत है कि इसके अन्दर चिपचिपा द्रव पैदा होता है, जो बालों के अन्दर से अति सूक्ष्म नलिकाओं द्वारा आता है। यही मक्खी को ऐसे स्थानों में चलने में सहायक होता है।

4. धुँआ क्या है ?

धुँआ अपूर्ण दहन का परिणाम है। अधिकतर वस्तुयें जिनके जलने पर धुँआ होता है, यदि पूर्ण रूप से जलायी जायें तो प्रायः कुछ रंगहीन गैसों के अतिरिक्त और कुछ नहीं निकलेगा। परन्तु मनुष्य अभी तक उस भट्टी का आविष्कार नहीं कर पाया है, जिससे वस्तु पूर्ण रूपेण जल जाये। हम लोग लकड़ी, कोयला आदि को अंशतः जलाते हैं, फलस्वरूप वस्तु के कुछ कण गैसों के साथ निकलते हैं, और धुँए का निर्माण करते हैं।

5. क्या स्त्री का मस्तिष्क पुरुषों के मस्तिष्क से छोटा होता है ?

स्त्री की खोपड़ी पुरुष की खोपड़ी की अपेक्षा छोटी

होती है, अतः स्त्री का मस्तिष्क भी पुरुष की तुलना में छोटा होता है। परन्तु स्त्री की बुद्धि पुरुषों से किसी भी प्रकार से कम नहीं होती है।

6. **पानी आग को कैसे बुझाता है ?**

पानी आग को दो प्रकार से बुझाता है।

(1) जब अचानक आग पानी द्वारा ढक दी जाती है तो वस्तु को जलने के लिये ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है और आग बुझ जाती है।

(2) पानी जलने वाली वस्तु को ठंडा भी कर देता है, जिससे आग बुझ जाती है।

7. **चमगादड़ अंधेरे में कैसे उड़ पाता है ?**

रात्रि में चमगादड़ उड़ते हैं, परन्तु वे उड़ते समय साधारणतः किसी भी राह के अवरोध से नहीं टकराते हैं, यह बहुत ही रहस्यमयी बात प्रतीत होती है। बहुत बुरी तरह से भयभीत होने पर ही वे किसी वस्तु से टकराते हैं। अत्यन्त सूक्ष्मग्राही यन्त्रों से यह देखा गया है कि चमगादड़ बहुत ही अधिक तारत्व वाली ध्वनि पैदा करते हैं, जिसको मनुष्य के कान नहीं सुन सकते हैं। इन ध्वनियों को 'अल्ट्रासोनिक ध्वनि' (पराश्रव्य ध्वनि) कहते हैं। ये अल्ट्रासोनिक ध्वनियाँ अवरोध से टकरा कर प्रतिध्वनि के रूप में चमगादड़ के कान तक आती हैं, जिससे चमगादड़ को आगे आने वाली वस्तु (अवरोध) का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

कुछ वर्षों पूर्व वैज्ञानिकों का यह विचार था कि चमगादड़ के पंख उसे आगे आने वाली विपत्ति का बोध कराते हैं। जब चमगादड़ के पंखों पर नाखून का रंग लगा दिया जाता है, तो भी वह भली-भाँति उड़ता है, इस प्रयोग से पुराना तथ्य गलत सिद्ध हो गया। अतः चमगादड़ एक प्रकार का प्राकृतिक रडार है।

8. **किसी देश में आणविक विस्फोट का पता दूसरे देश के वैज्ञानिकों को कैसे लग जाता है ?**

प्रत्येक आणविक विस्फोट से उच्च आवृत्ति की ऐसी प्रकाश तरंगों को जन्म होता है, जिनका ज्ञान दूसरे देशों में रखे गये यन्त्रों से हो जाता है। इसके अतिरिक्त माइक्रोबैरोमीटर नामक यन्त्र भी वायुमंडल से इन तरंगों को ग्रहण कर सकता है। किसी भी आणविक विस्फोट से सारी दुनिया की रेडियो-सक्रियता बढ़ जाती है, जिसे यन्त्रों की सहायता से दुनिया में कहीं भी जाना जा सकता है।

9. **क्या अणुबम-विस्फोट के बाद तेज आँधी भी आ सकती है ?**

हाँ, आ सकती है और आती ही है। विस्फोट जितना अधिक भयंकर होगा, आँधी भी उतनी ही व्यापक और जबर्दस्त आयगी। सौ मेगाटन के अणु-बम के विस्फोट के बाद पौने दो हजार मील प्रति घंटा तक के वेग की आँधी के कारण प्रत्येक वर्ग इंच पर 5 पौंड का दाब पड़ेगा।

10. **क्या भिन्न-भिन्न वेगों पर समय का वेग भी भिन्न होता है ?**

हाँ, आइन्स्टाइन ने यह सिद्ध कर दिया है कि वेग जितना अधिक होगा, समय की गति भी उतनी ही कम हो जायेगी। परन्तु यह अन्तर केवल काफी अधिक गति पर ही अनुभव किया जा सकता है। अत्यधिक गति से मनुष्य के सभी अंगों के कार्य जैसे हृदय की धड़कन, फेफड़ों के कार्य आदि बहुत कम गति से होने लगेंगे, यहाँ तक कि मनुष्य को बहुत कम भोजन की भी आवश्यकता होगी। अन्तरिक्ष यात्रियों को भी इस बात का अनुभव छोटे पैमाने पर होता है।

11. **क्या हम अपने देश से इतना बड़ा छेद कर सकते हैं कि उसके सहारे अमेरिका पहुंच जाँय ?**

ऐसा असम्भव है, क्योंकि बीस पच्चीस मील की गहराई में ही इतनी अधिक ऊष्मा मिलेगी, कि आदमी तो क्या सभी मशीनें गलने लगेंगी, अतः ऐसा छेद कैसे खोदा जा सकता है ?

(12) **'एन्टीबायोटिक' क्या हैं ?**

'एन्टीबायोटिक' कुछ चुने हुए जीवाणुओं को नाश करने वाले अत्यधिक शक्तिशाली यौगिक हैं। ये कुछ जड़ी-बूटियों के अवशिष्ट तथा मिट्टी में प्राप्त सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। अन्य प्रकार के जीवाणुओं का नाश

करने हैं। पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, क्लोरोमाइसिटिन तथा ओरियोमाइसिन चार प्रकार के मुख्य 'एन्टीबायोटिक' हैं। ये औषधियाँ विशिष्ट जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न विशेष रोगों का निराकरण करती हैं।

'न्यूमोकोकस' जीवाणु द्वारा उत्पन्न निमोनिया रोग को दूर करने के लिये केवल पेनिसिलिन ही रामवाण औषधि है।

(13) **एकाएक पटाखे की ध्वनि को सुनकर हमारा मुंह क्यों खुल जाता है ?**

जब हम कोई ध्वनि सुनते हैं, तो हमारे कान के परदे पर कम्पन होता है। ध्वनि जितनी अधिक तेज होगी, परदे पर कम्पन भी उतना ही अधिक होगा। तीव्र कम्पन के फलस्वरूप परदा फट सकता है। इस भय को दूर करने के लिये यूस्टेशियन ट्यूब सदैव कान के परदे तक वायु ले जाती है, जो दूसरी ओर से पड़ रहे दाब को सहन कर लेती है। पटाखे की अचानक तीव्र ध्वनि की तरंगें हमारे कान के परदे पर टकराती हैं। परदे को फटने से बचाने के लिये यूस्टेशियन ट्यूब मुँह से हवा ले जाकर कम्पन का सन्तुलन करती है, और अनायास ही हमारा मुँह खुल जाता है।

(14) **वैज्ञानिक लुप्त स्मृतियों को कैसे जागृत कर सकते हैं ?**

कनपटी की पिंडिका की बाहरी त्वचा पर हल्की विद्युत तरंगों के प्रभाव से बचपन तक की भूली बातें याद आ जाती हैं। सम्मोहन या सोडियम एमेटिल जैसी औषधियों के उपयोग से भी लुप्त स्मृतियाँ जग जाती हैं।

(15) **क्या विश्व का तापमान निरन्तर बढ़ रहा है ?**

हाँ, कारखानों की चिमनियों से निरन्तर कार्बन डाइ आक्साइड निकलते-निकलते पिछले सौ वर्षों से तापमान में 13 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 200 ई० तक वर्तमान ताप में 3.6° सें० की वृद्धि होने की सम्भावना है।

(प्रमेन्दु प्रकाश माथुर)

एक नवीन परीक्षा पद्धति

यह परीक्षा पद्धति किसी भी स्कूल, कालिज अथवा विश्वविद्यालय द्वारा अपनाई जा सकती है। आजकल की परीक्षाओं की भांति प्रत्येक कक्षा में एक अथवा दो इनविजिलेटर (निरीक्षक) हों। प्रत्येक कक्षा में 20-30 (जितनी आवश्यकता हो) मेजें एक वृत, अथवा किसी भी अन्य आकार जो कमरे में सम्भव हो, रखी जाये। प्रत्येक मेज पर छपा हुआ एक प्रश्न चिपका दिया जाय अथवा पिन से लगा दिया जावे।

प्रत्येक परीक्षार्थी को एक उत्तर पुस्तिका दे दी जाये जिस पर वह अपना अनुक्रमांक आदि लिख ले।

घण्टी बजने पर प्रत्येक परीक्षार्थी एक मेज पर चला जाये और वहाँ लिखे प्रश्न का उत्तर लिखे। प्रश्न को उत्तर पुस्तिका में न लिखा जाये। 3-4 मिनिट के पश्चात निरीक्षक घण्टी बजाये। घण्टी बजने पर प्रत्येक परीक्षार्थी अपने दायी ओर वाली मेज पर चला जाये। यह क्रम तब तक चलता रहे जब तक प्रत्येक परीक्षार्थी सब प्रश्न न कर ले।

इस पद्धति से विज्ञान एवं कला तथा वाणिज्य के समस्त विषयों की परीक्षा ली जा सकती है। आब्जेक्टिव एण्ड डिस्क्रिपटिव सभी प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं। विषय एवं प्रश्न के अनुसार उत्तर का समय घटाया बढ़ाया जा सकता है। किन्तु समय बहुत अधिक नहीं होना चाहिए अन्यथा परीक्षार्थी आपस में बातचीत कर सकते हैं।

इस पद्धति में एक और लाभ यह है कि छोटे छोटे कई प्रश्नों द्वारा परीक्षार्थी के ज्ञान की अधिक अच्छी परीक्षा ली जा सकती है। जो कि 5-7 लम्बे प्रश्नों से सम्भव नहीं है।

मेरा विश्वास है कि यदि यह परीक्षा पद्धति अपनाई जावे तो नकल एवं अन्य अनुचित साधनों का प्रयोग पूरी तरह बंद हो जायेगा।

(कुलदीप कुमार धिंगरा)

विज्ञान-वार्ता

कृत्रिम कार्निया लगाने का सफल आपरेशन

दिल्ली के राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा विज्ञान अनुसन्धान केन्द्र के चिकित्सक श्री मदन मोहन ने प्लास्टिक की कार्निया लगाने का सफल आपरेशन अभी हाल ही में किया है। ऐसा आपरेशन एशिया में पहली बार किया गया है। इस आपरेशन के सम्बन्ध में 12 वर्षों तक शोध-कार्य करना पड़ा है। इस चिकित्सा केन्द्र के डाक्टरों का कहना है कि मानव कार्निया से जिनकी आखें ठीक नहीं हो सकती उन्हें प्लास्टिक कार्निया लगाने से पुनः रोशनी प्राप्त हो सकेगी। अभी तो इस आपरेशन के करवाने में 500 रुपये खर्च करने पड़ेंगे परन्तु बाद में इनके अधिक मात्रा में निर्माण से यह खर्च घटकर 200 रुपया या 100 रुपये हो जाने की आशा है।

डेक्सान

ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने शल्य क्रिया के पश्चात् घाव में टाँके लगाने के लिये एक नया पदार्थ बनाया है। यह पदार्थ डेक्सान है। अभी तक इस कार्य के लिये नाइलोन, सिल्क तथा सूती धागों का प्रयोग किया जाता था। इन धागों के प्रयोग में एक बड़ी कठिनाई यह है कि ये शरीर के लिये विजातीय हैं और शरीर के ऊतक इनसे इस प्रकार क्रिया करते हैं कि उस स्थान पर सूजन आ जाती है। इस सूजन के परिणाम स्वरूप टाँको के निशान त्वचा पर बने रह जाते हैं।

डेक्सान की विशेषता यह है कि इससे कोई हानिकारी उत्तर-प्रतिक्रिया नहीं होती और यह शरीर में पूर्णतया अवशोषित हो जाता है और धीरे धीरे मूत्र के साथ शरीर के बाहर निकल जाता है। यह पालीगोलिक अम्ल से तैयार किया जाता है और इससे शरीर में कोई हानिकारक प्रतिक्रिया नहीं होती। इस पदार्थ से टाँके लगाने पर यह पाया गया है कि इसके टाँके 15 दिन तक मजबूत बने रहते हैं। इतने समय में या इसके पूर्व ही प्रायः टाँके काट दिये जाते हैं।

संपीड़ित वायु भरे बिस्तर

लंदन के व्हिटिंग्टन अस्पताल में हिलने-डुलने में असमर्थ एवं एक ही आसन पर अधिक समय तक पड़े रहने को बाध्य रोगियों के लिये एक लहरेदार विस्तर का विकास किया गया है। इस पैडनुमा विस्तर में 13 वायु-नलिकायें हैं जिनमें बीच-बीच में एक नलिका छोड़कर बारी बारी हवा भरी जाती है। इस प्रकार रोगी के शरीर पर वायु दाब एक ही स्थान पर केन्द्रित न होकर नियमित रूप से बदलता रहता है। इससे रोगी को बेचैनी नहीं महसूस होती एवं न तो कोई घाव ही बनता है। रोगी के भार के अनुसार वायुदाब को आवश्यकतानुसार बदला जा सकता है। इसकी विशेषता यह है कि यह बिना शोर किये काम करता है एवं बिना किसी देखभाल के लम्बे समय तक कार्य करता रहता है।

पानी के अन्दर फोटो खींचने वाला कैमरा

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि वे एक ऐसे शक्तिशाली कैमरे का निर्माण कर चुके हैं जो अथाह पानी के अन्दर वस्तुओं का फोटो खींच सकता है। उन्होने यह भी बताया है कि यह कैमरा एक घंटे में एक फोटो खीचता है एवं एक बार रील भर लेने पर एक फोटो प्रति घंटे के हिसाब से 24 फोटो ले सकता है। कैमरा स्वचालित है, इसलिये इसे एक बार पानी के अन्दर फिट कर देने पर अथाह जल के अन्दर 24 घंटे में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों के बारे में हम पूरी पूरी जानकारी पा सकते हैं।

मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश प्रकाशित करके एक नवीन दिशा प्रदान की है। इस समय क्या विज्ञान, और क्या मानविकी-दोनो ही क्षेत्रों में विविध विषयों की अंग्रेजी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद हो रहा है। अनुवादकों के समक्ष अभी तक बड़ी कठिनाई यह थी कि कोई एक प्रामाणिक कोश उपलब्ध न था जिसके बल पर स्तरीय अनुवाद सम्पन्न किया जा सकता। सम्मेलन ने केन्द्रीय सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करके इस कोश का प्रकाशन किया है। इसके सम्पादकों में से वैज्ञानिक साहित्य के ख्याति प्राप्त लेखक डा० सत्य प्रकाश भी हैं।

मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश की सबसे बड़ी विशेषता है अभी तक केन्द्रीय वैज्ञानिक एवं तकनीकी आयोग द्वारा प्रकाशित विभिन्न शब्दावलियों को स्थान देकर उसे अत्यन्त प्रामाणिक एवं उपयोगी बनाने का सद प्रयास। इससे भी प्रमुख विशेषता है कोश के प्रारम्भ में दी हुई 46 पृष्ठों की विद्वत्तापूर्ण भूमिका। इस भूमिका में डा० सत्यप्रकाश जी ने वैदिक संहिताओं से लेकर वेबस्टर डिक्शनरी तक के विविध प्रयासों का उल्लेख किया है। अंग्रेजी में प्राप्त विविध डिक्शनरियों का वर्णन मनोयोग के साथ किया गया है। कोई भी कोश एक दो वर्ष के लघु प्रयासों का प्रतिफल न होकर पचीसो-पचासों वर्ष का परिणाम होता है। यह मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश भी विगत 20 वर्षों के अथक प्रयासों का फल है।

भूमिका में वैज्ञानिक शब्दावली के सम्बन्ध में कुछ विशेष सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं और उच्चारण तथा हिन्दी पर्याय सम्बन्धी कतिपय कठिनाइयों का संकेत किया गया है। किसी भी अनुवादक के लिये, जो अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद का कार्य करना चाहता है, यह भूमिका पठनीय है।

लगभग 1600 पृष्ठों के इस कोश में छापे की भूलें तथा कुछ अर्थपरक त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। कई अंग्रेजी शब्द पृथक से स्थान न ग्रहण कर अन्य शब्दों के साथ छप गये हैं।

आशा है यह कृति उपयोगी सिद्ध होगी।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० |3|5|

भाग 108 } वैशाख 2028 विक्र०, 1892 शक, अप्रैल 1971 { संख्या 4

जन-स्वास्थ्य माला–2

मृदा–प्रदूषण

□ डा० शिवगोपाल मिश्र

हम जिन तीन प्रकार के प्रदूषणों का उल्लेख कर चुके हैं उनमें से केवल दो-वायु प्रदूषण तथा जल प्रदूषण-की चर्चा ग्रामतौर पर की जाती है । शायद कुछ ही ऐसे होंगे जो तीसरे प्रकार के प्रदूषण पर ध्यान देते हैं । यह है स्थल-प्रदूषण । निश्चय ही 'स्थल' का प्रयोग कुछ कुछ भ्रामक है । स्थल से हमारा अभिप्राय भूमि या मृदा ही होता है अतः हम 'मृदा-प्रदूषण' के रूप में इस पर विचार करेंगे ।

यह सच है कि हम वायु में साँस लेते हैं और जल को पीते हैं किन्तु आखिरकार मृदा ही वह साधन है जिससे हमें सभी प्रकार का भोजन प्राप्त होता है । शायद यह बहुतों को ज्ञात नहीं है कि मृदा या मिट्टी की ऊपरी सतह ही उर्वरता की खान है जिससे फसलें उत्पन्न होती हैं । मिट्टी की यह उर्वरता उसमें पाये जाने वाले कोटि कोटि अदृश्य (सूक्ष्म) जीवों के कारण है जो मिट्टी के बनने, उसकी संरचना तथा उसकी उर्वरता में सक्रिय हाथ बटाते हैं । यदि ये सूक्ष्मजीव न होते तो भूमि सर्वथा वंध्या होती और फसल के नाम पर कुछ भी न हुआ होता ।

किन्तु नाना प्रकार के सूक्ष्मजीव समान रूप से लाभदायक नहीं हैं । यदि कुछ जीवाणु हमारे लिये उपकारी हैं तो अनेक कीट, नेमैटोड, कवक, यहाँ तक कि जीवाणु भी फसलों के लिये घातक हैं । अपपादप या तृण भी कम हानिकारक नहीं हैं । परिणाम स्वरूप आधुनिक कृषि के अन्तर्गत इन्हें विनष्ट करने के यत्न किये जाते हैं । इन पर नियन्त्रण का एकमात्र साधन है कीटनाशियों का

उपयोग। प्रश्न यह है कि इनसे हानिकारक जीवों या अपतृणों का विनाश तो हो जाता है किन्तु अन्य जीवों तथा परिवेश पर क्या प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः यह जागरूकता मृदा-प्रदूषण समझने की दिशा में पहला पग है।

मिट्टी में सूक्ष्मजीव ही नहीं विकास करते। उसमें निवास करने वाले प्राणियों में प्रोटोजोआ, केंचुये, भृंग, मक्खियाँ तथा अनेक कीट हैं। इनसे भी परे हैं वे सारे पौदे जिनकी खेती की जाती है। अतः यह जान लेना आवश्यक होगा कि यदि रासायनिक विधियों से हानिकारक प्राणियों को विनष्ट करने के उपाय किये जाते हैं तो उनका प्रभाव पौदों तथा उपयोगी जीवों पर क्या हो सकता है ? यही नहीं, मिट्टी की किस्म या प्रकृति को ध्यान में रखते हुये विभिन्न रसायनों का मिट्टी में बने रहना, मिट्टी के भीतर उनकी गतिशीलता तथा भौम जल पर उनके प्रभावों को जानना मृदा-प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

नाना प्रकार के कीटनाशी

विभिन्न देशों में विभिन्न कीटों को नष्ट करने के लिये नवीन कीटनाशियों की खोजें की गई हैं। प्रारम्भ में आर्सेनिक, ताम्र या पारद के यौगिकों का प्रयोग होता था किन्तु कालान्तर में कार्बनिक यौगिकों का प्रयोग होने लगा। सम्भवतः डी० डी० टी० की खोज से कीटविनाश विधियों में युगान्तर उपस्थित हो गया। इसका प्रयोग इस हद तक बढ़ गया कि आज इसके विरुद्ध आवाज उठाई जा रही है कि इसका प्रयोग बन्द हो। कारण, कि यह अद्वितीय कीटनाशी तो है किन्तु अन्य प्रकार से यह हानिकारक है। यह मिट्टियों में दीर्घकाल तक बना रहता है और खाद्य फसलों द्वारा प्रचुर मात्रा में ग्रहीत होने के कारण मनुष्यों के लिये भी विष का काम करता है। चारा चरने वाले दुधारू पशुओं के दुग्ध में भी डी० डी० टी० चला जाता है। यही कारण है कि वैज्ञानिकों ने बहुजन हिताय डी० डी० टी० पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्ध की माँग की है।

डी० डी० टी० एक कार्बनिक क्लोरीन कीटनाशी है। बी० एच० सी०, एल्ड्रिन, हेप्टाक्लोर, डाइएल्ड्रिन, तथा एण्ड्रिन अन्य कीटनाशी इसी के सामान हैं। प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि इन कीटनाशियों में से फलों तथा तरकारियों की फसलों द्वारा सर्वाधिक मात्रा अवशोषित होती रहती है। क्या ये इन फसलों के लिये घातक नहीं हैं ?

मिट्टी में अधिक काल तक बने रहने के कारण उपर्युक्त क्लोरीन यौगिकों के स्थान पर अल्प-स्थायी कार्बनिक-फास्फोरस कीटनाशियों एवं कार्बमिटों का सूत्रपात किया गया है। पैराथियान, मैलाथियान, डायजियान, ऐसे ही यौगिक हैं। किन्तु ये हैं अत्यन्त घातक। यदि कोई यह भूल कर बैठे कि ये अत्यल्प स्थायी हैं अतः इनकी कोई भी मात्रा प्रयुक्त की जा सकती है तो बहुत बड़ा संकट उपस्थित हो सकता है। कारण कि कनाडा में किये गये प्रयोगों से यह स्पष्ट हो चुका है कि इस कोटि के भी कुछ यौगिक डी० डी० टी० की ही भाँति मिट्टी में दीर्घ स्थायी हैं। अतः 'परिवर्तन के लिए परिवर्तन' के उद्देश्य से इन यौगिकों के साथ खिलवाड़ प्रदूषण की समस्या को उग्र बना सकता है।

सूक्ष्मजीवों पर उपर्युक्त कीटनाशियों के प्रभावों का योजनावद्ध अध्ययन हुआ है जिनसे यह पता चलता है कि डी० डी० टी० मृदा-सूक्ष्मजीवों के लिये घातक या मारक नहीं है। चाहे वे कवक हों या जीवाणु, प्रचलित दरों में छोड़े गये कीटनाशियों से इनकी जनसंख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चाहे वे डी० डी० टी० की तरह के कीटनाशी हों या कार्बनिक-फास्फोरस कीटनाशी, समान रूप से निर्दोष हैं। किन्तु क्या ये यौगिक उसी रूप में रहने पाते हैं ? नहीं, विभिन्न सूक्ष्मजीवाणु एल्ड्रिन को डाइएल्ड्रिन में और हेप्टाक्लोर को उसके एपाक्साइड में परिणत कर देते हैं जिसके फलस्वरूप मिट्टियों में सदैव ही डाइएल्ड्रिन और एपाक्साइड के अवशिष्ट अंश प्राप्त होते हैं। यहीं नहीं, कुछ जीवाणु डाइएल्ड्रिन को इससे भी कम घातक यौगिक में बदल सकते हैं। हेप्टाक्लोर इसी रूप में

नहीं रह पाता अतः यह सोचना भ्रामक है कि किसी भी परिस्थित में हेप्टाक्लोर भौम जल में जाकर मिल सकता है। डी० डी० टी० भी डी० डी० ई० में बदलते पाया गया है।

मृदा-पशुओं में केंचुओं का स्थान सर्वोपरि है। वे मिट्टी को उलट पुलट कर उसे वातित करते हैं। यदि किसी भी कीटनाशी के द्वारा केंचुओं की संख्या घटती है तो उसका अर्थ होता है भूमि उर्वरता में ह्रास। रोथैम्स्टेड के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सी० ए० एडवर्ड्स ने यह दिखाया है कि केंचुओं पर डी० डी० टी० जैसे यौगिकों का बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। हेप्टाक्लोर तथा क्लोरडेन ही हानि कारक हैं। कुछ कार्बनिक फास्फोरस यौगिक भी विषैले सिद्ध हुए हैं। किन्तु विचित्र बात यह है कि केंचुए अपने शरीर में मिट्टी की अपेक्षा क्लोरीन कीटनाशियों की 10 गुनी सान्द्रता एकत्र कर लेते हैं अतः यदि पक्षियाँ इन केंचुओं का भक्षण करती हैं तो एक विकट समस्या उत्पन्न हो जावेगी।

मृदा पशुओं में अनेक दीमक, कीट आदि भी सम्मिलित हैं जो मिट्टी में वानस्पतिक अवशेषों के विघटन में सहायक होते हैं। यह देखा गया है कि कीटनाशियों के प्रयोग से इनकी संख्या घट जाती है अतः जंगलों में तथा जंगली मिट्टियों में, जहाँ मृदा-निर्माण इन्हीं जीवों पर निर्भर करता है, कीटनाशियों का प्रयोग वर्जित करना होगा। फिर भी कुछ जीव प्रतिरोधकता विकसित कर लेते हैं।

डी० डी० टी० का पौधों द्वारा अवशोषण उल्लेखनीय माना जाता है। अनुभव है कि एल्ड्रिन का अवशोषण नहीं होता। डाइएल्ड्रिन की पर्याप्त मात्रा मूल-फसलों द्वारा अवशोषित हो जाती है। अनुमान है कि यदि फसल में 0·02 अंश प्रति दस लाख डाइऐल्ड्रिन हो तो वह दुग्ध तथा पशु-पदार्थों की दृष्टि से अग्राह्य है।

दुमट मटियार में तथा उसमें उगाई गई फसलों में कार्बनिक-क्लोरीन की अवशिष्ट मात्रायें
(अंश प्रति दश लाख अंश)

मिट्टी-फसल	डी० डी० टी०	एल्ड्रिन	डाइएल्ड्रिन
फसल के पूर्व मिट्टी	0·39	0.37	1.02
फसले के पश्चात् मिट्टी	0·43	0.14	1.19
चुकन्दर	0·01	0.00	0.07
गाजर	0·00	0·00	0.04
आलू	0·00	0·00	0.03
मक्का	0·04	0·00	0.02
ओट	0·03	0·00	0.02
अल्फाल्फा	0·09	0·00	0.52

आखिर कितनी मात्रा में प्रदूषण माना जाय ?

यह जटिल प्रश्न है। यदि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ अधिक हो तो किसी भी कीटनाशी की अधिकमात्रा भी प्रदूषण-स्तर को नहीं पहुँचने देगी किन्तु यदि बलुही मिट्टी हो तो उसमें प्रदूषण की समस्या उपस्थित हो सकती है।

निष्कर्ष :

मृदा-प्रदूषण मनुष्यों के लिये उतना घातक नहीं है जितना पशुओं के लिये क्योंकि प्रायः कन्द या घासें, जो उनके खाद्य हैं उनमें कीटनाशियों की प्रचुर मात्रायें संग्रहीत हो सकती हैं।

साथ ही नवीन कीटनाशियों की खोज होने के कारण भौम जल के प्रदूषित होने की सम्भावना बढ़ी है क्योंकि वे अधिक जल विलेय हैं।

भविष्य में कीटनाशियों का प्रयोग बढ़ना है, भले ही उनके विरुद्ध आवाज उठ रही हो अतः सावधानी पूर्वक उनके उपयोग किये जाने की आवश्यकता है जिससे मृदा-प्रदूषण नियन्त्रित रहे।

● ●

माइक्रोइलेक्ट्रानिकी के नये आयाम

□ निरंकार सिंह

इलेक्ट्रानिकी की एक विशिष्ट शाखा का नाम मइाक्रो-इलेक्ट्रानिकी है। माइक्रो का अर्थ है सूक्ष्म अर्थात् छोटा और इलेक्ट्रानिकी अर्थात् विज्ञान की वह शाखा जिसमें इलेक्ट्रानों के आचरण का और उनकी नियंत्रित गति का उपयोग करने वाली युक्तियों का अध्ययन किया जाता है। कुल मिला जुलाकर माइकोइलेक्ट्रानिक के अन्तगर्त छोटी छोटी इलेक्ट्रानिक शक्तियों का तथा उनके उपयोग का अध्ययन किया जाता है।

आधुनिक विज्ञान और तकनीकी द्वारा उत्पन्न "माइक्रोइलेक्ट्रानिकी" ने एक नये विश्व का दर्शन कराया है। यह नया विश्व अति सूक्ष्मइलेक्ट्रानिक युक्तियों का विश्व है। जिन तारों से उन्हें अन्य पुरजों के साथ जोड़ा जाता है वे अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं-मनुष्य के बाल से भी दो या तीन गुना महीन। यह टेलीविजन, संचार, रेडियो और कितने ही घरेलू और औद्योगिक उपयोग के क्षेत्रों में मनुष्य के आगे अप्रत्याशित सम्भावनाओं के द्वार खोल देती है।

पिछले कुछ वर्षों में संसार की अनेकानेक आश्चर्यजनक वस्तुओं का आविष्कार हुआ है। इस नए विज्ञान के द्वारा तकनीकी, उद्योग, कृषि तथा चिकित्सा विज्ञान में प्रेरणा-दायक तथा बृहद् क्षेत्रों के द्वार खुल गये हैं। माइक्रो-इलेक्ट्रानिक तकनीक की उपयोगिता अन्तरिक्ष यात्रा, में बेमिसाल साबित हुई है क्योंकि अन्तरिक्ष यानों के जटिल यन्त्र माइक्रोइलेक्ट्रानिक की ही तकनीकियों पर निर्मित हैं। बहरों के लिये छोटे छोटे इयर फोन की उपलब्धि इसी विज्ञान के कारण हुई है। छोटे और पोर्टेबल टेलिविजन सेट माइक्रोइलेक्ट्रानिक तकनीकियों के उपयोग से ही बन सके हैं और टेलीफोन नम्बर के व्यस्त होने पर स्वतः बारबार डायल करने वाले टेलिफोन भी बन गये हैं।

माइक्रोइलेक्ट्रानिकी किसी भी देश के विज्ञान और तकनीकी की क्षमता को आँकने की एक कसौटी है। इस क्षेत्र में प्रगति तभी सम्भव है जबकि देश की प्राविधिक क्षमता और वैज्ञानिक स्तर काफी ऊचें हों। सोवियत रूस ने माइक्रोइलेक्ट्रानिकी के क्षेत्र में सराहनीय उन्नति की है। अमेरिका की 'इलेक्ट्रानिकी' नामक पत्रिका ने सोवियत रूस की प्रगति के सम्बन्ध में लिखा है:—

"पेरिस में इलेक्ट्रानिक उपकरणों की परम्परागत प्रदर्शनी में दर्शक बड़ी संख्या में सोवियत मण्डप पर टूट पड़े और विशेषकर एकीकृत परिपथ प्रदर्शों के आस पास मंडराते रहे———पेरिस में प्रदर्शित एकीकृत परिपथ रूस की व्यापक तकनीकी क्षमता के परिचायक हैं"

अतएव अब एकीकृत परिपथ को समझाने का हम प्रयास करेंगे। मूल विषय की चर्चा करने से पूर्व कुछ अन्य चीजों को समझना आवश्यक है। रेडियो सेट अथवा ट्रान्जिस्टर के भीतरी पुर्जों को तो पाठकों ने देखा ही होगा। ये भीतरी पुर्जे एक प्लेट पर पतले तारों द्वारा जुड़े होते हैं। तारों के जाल से भिन्न भिन्न जुड़े हुये पुर्जों में कुछ के नाम हैं रेजिस्टर, कैपेसिटर, डायोड, क्वायल और ट्रान्जिस्टर। एक सुनिश्चित ढंग से ऐसे पुर्जों की जुड़ी हुई व्यवस्था का नाम परिपथ है। प्रचलित रेडियो टेलीविजन सेट में लगभग ड़ेढ-दो सौ पुर्जे होते हैं।

एकीकृत परिपथ भी एक विशिष्ट प्रकार का लघु परिपथ होता है। इसका वास्तविक आकार $1{\cdot}6 + 1{\cdot}6$ मिलीमीटर होता है। यह उन्ही पुरजों के तानों बानों

से जुड़ा हुआ रेडियो का परिपथ है जिन्हें आप किसी भी रेडियो या ट्रान्जिस्टर को खोलकर देख सकते हैं। बस अन्तर केवल इतना ही है कि ये पुरजे अत्यन्त छोटे रूप में हैं और इतने छोटे हैं कि इन सबको एक में सटा दिया जाय तो वे राई के दाने के बराबर हो जायेगें। फिर भी इसमें पुरजों की संख्या 47 है। अतएव ऐसे पुरजों के दो या तीन सम्मिश्रण एक टेलीविजन अथवा रेडियो सेट के लिये पर्याप्त होंगे।

माइक्रोइलेक्ट्रानिकी के इतने छोटे छोटे पुरजों को बनाने के लिये बड़ी जटिल युक्तियों और तरीकों को उपयोग में लाया जाता है। इतने छोटे परिपथ में पतले तारों को जोड़ना भी एक समस्या है पर लेसर बीम तथा इलेक्ट्रान बीम के द्वारा अब यह सम्भव हो गया है।

माइक्रोइलेक्ट्रानिकी की युक्तियों के अविष्कार से इलेक्ट्रानिक उपकरणों का वजन तथा आकार घटकर इतना छोटा हो गया है कि उन्हे देखने के लिये सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता भी पड़ने लगी है।

माइक्रोइलेक्ट्रानिकी के उपयोग का एक प्रमुख क्षेत्र अभिकलित्र प्रविधियों में है। सोवियत संघ में ऐसे एकीकृत परिपथों का निर्माण किया गया है जिनके मुख्य अवयव सूक्ष्म लेसर है। लेसर सोवियत संघ व अमेरिका द्वारा निर्मित की गई नयी युक्तियां है, जो प्रकाश की सुई जैसी महीन किरणावली का उत्सर्जन करती हैं। लेसर बीम (लेसर किरणावली) के द्वारा अभिकलित्रों कलक्यूलेटर की गति को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। हमारे देश में भी विशेषतः भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र ट्राम्बे में माइक्रोइलेक्ट्रानिकी की तकनीक पर तेजी से कार्य हो रहा है एवं निकटभविष्य में ही हम इस तकनीक से लाभान्वित हो सकेंगे ऐसा विश्वास है।

● ●

अनुप्रयोजित रसायन पर हिन्दी में पुनश्चर्य सन्गोष्ठी

हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मध्यप्रदेश भोपाल ने हिन्दी माध्यम द्वारा तकनीकी एवं वैज्ञानिक विषयों में अध्ययन-अध्यापन के प्रोत्साहन के लिए अनुप्रयोजित या एप्लाइड रसायन पर हिन्दी में एक शिक्षक पुनश्चर्या संगोष्ठी के आयोजन के लिए अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय के अन्तर्गत अभियांत्रिकी महाविद्यालय, रीवा को स्वीकृति दी है। संगोष्ठी में हिन्दी में शोध पत्र, समीक्षा पत्र, तकनीकी निबन्धों के पठन-पाठन के साथ-साथ तकनीकी शब्दावली और साहित्य पर तथा हिन्दी में रसायन के विविध अंगों के अध्ययन-अध्यापन की समस्याओं पर परिचर्चायें भी होंगी। इसमें भोपाल एवं दिल्ली के अधिकारियों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के विद्वान भी मार्ग दर्शन करेंगे। विभिन्न संस्थाओं में कार्यरत सामान्य रसायन, कृषि रसायन, चिकित्सा रसायन, जीव रसायन एवं औद्योगिक रसायन के सभी शिक्षक इसमें भाग ले सकते हैं। यदि वे संगोष्ठी के कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेते हैं, तो उन्हें अकादमी की ओर से मार्ग-व्यय भी दिया जावेगा। जो शिक्षक संगोष्ठी में रुचि रखते हों वे प्रोफेसर डी० डी० शर्मा, अभियांत्रिकी महाविद्यालय, रींवा से इसके कार्यक्रम के सम्बन्ध में सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। संगोष्ठी 5–10 मई 1971 को होगी।

लेसर—एक महत्वपूर्ण आविष्कार

□ राजेश कुमार

सदा सर्वदा से प्रकृति मनुष्य को चुनौती देती आयी है और मनुष्य प्रकृति को। इसी पारस्परिक चुनौती का परिणाम होता है विज्ञान का नूतन-अविष्कार। आविष्कार की यह गति पहले तो बहुत मन्द थी परन्तु आज न केवल मनुष्य बल्कि विज्ञान भी त्वरित गति से भागा जा रहा है। स्पन्दन करते हुए विश्व का रोम रोम क्षण-प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है। कल क्या होने वाला है इसकी कल्पना करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। आज के और 20 वर्ष पहले के विज्ञान में जो अन्तर है, उतना शायद पिछले 200 वर्षों के बीच भी न रहा होगा। इसी गतिशीलता ने मानव को अत्यन्त शक्तिशाली लेसर से सम्पन्न किया है। आज से लगभग एक दशाब्दी पूर्व जिस लेसर की सिर्फ सम्भावना मात्र थी आज न केवल उसका अविष्कार ही हो चुका है प्रत्युत उसे अगणित रूपों में मानव सेवार्थ प्रस्तुत भी किया जा रहा है।

विगत दशाब्दी में यद्यपि छोटी-मोटी खोजें तो विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में हुई हैं परन्तु वैज्ञानिक जगत में क्रान्ति उत्पन्न करने वाली खोजों या मानवीय पहुँच को सरलता से अंगुलियों पर गिना जा सकता है। जिनमें मानव द्वारा चन्द्र-तल पर प्रथम चरण रखने, जींन का संश्लेषण आदि प्रमुख हैं। परन्तु ये खोजें सम्भव हो सकी हैं मुख्यतया दशाब्दी की प्रारम्भिक खोज 'लेसर' के कारण। युग के और वर्तमान विश्व की परिस्थितियों के अनुरूप इस लेसर के आविष्कार को अति-महत्वपूर्ण समझ इसके अविष्कारक, अमेरिकन वैज्ञानिक-चार्ल्स टाउन्ज को 1964 का भौतिकी का नोबुल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

लेसर, 'मेसर' के सिद्धान्त पर कार्य करता है परन्तु चूँकि शक्ति स्रोत के स्थान पर इसमें प्रकाश का उपयोग किया जाता है अतएव इसे 'लेसर' की संज्ञा से विभूषित किया गया। मेसर का आविष्कार अमरीकी वैज्ञानिक टाउन्ज ने 1954 में किया था तथा 1958 में टाउन्ज ने ही सर्वप्रथम लेसर के अविष्कार की कल्पना की थी। टाउन्ज की यह कल्पना और प्रोफेसर थ्यूडार मेमैन सहित अन्य अमरीकी वैज्ञानिकों की अनवरत चेष्टा 1960 के प्रारम्भ में सफलता का रहस्य बनी। इस लेसर का सर्वप्रथम प्रदर्शन इस्पात में छेद करने की शक्ति के द्वारा किया गया।

लेसर रश्मियाँ, जो एक प्रकार की प्रकाश की ही रश्मियाँ हैं, की उत्पत्ति जिस यन्त्र द्वारा की जाती है, उसमें निम्नलिखित चार प्रमुख भाग होते हैं:—

लेसर रश्मियों को उत्पन्न करने वाले उपकरण का प्रमुख भाग वह अंग होता है जिसके इलेक्ट्रानों को आन्दोलित करके लेसर रश्मियाँ उत्पन्न की जाती हैं। ऐसा करने के लिए लगभग 4 सेन्टीमीटर लम्बी एवं 0·5 सेन्टीमीटर व्यास की रूबी केलास की एक छड़ ली जाती है जिसके दोनों सिरे घिसकर समतल व एक दूसरे के समानान्तर कर लिये जाते हैं तथा उन पर एक चमकीली पालिश कर दी जाती है जिससे उनसे प्रकाश का परावर्तन हो सके। दोनों सिरों में से एक सिरे को पालिश करके पूरा चमका दिया जाता है तथा दूसरे पर कुछ कम पालिश की जाती है जिससे कुछ प्रकाश की मात्रा उसमें से होकर गुजर सके। यह रूबी लेसर की छड़ एक एल्यूमीनियम आक्साइड क्रिस्टल होता है जिसमें लगभग 5 प्रतिशत

क्रोमियम भी होता है। गैस अथवा द्रव का भी लेसर को उत्पन्न करने में प्रयोग किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में गैस अथवा द्रव को बेलनाकार नली में बन्द करके छड़ की ही भाँति उसे व्यवहार में लाया जाता है।

इस उपकरण का दूसरा महत्वपूर्ण भाग प्रकाश स्रोत से सम्बन्धित होता है। इसके लिए इलेक्ट्रानिक फ्लोरेसेण्ट नलिका तथा सामान्यतः ज़ेनॉन गैस नलिका का प्रयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त उपकरण को ठंडा रखने का समुचित प्रबन्ध रहता है तथा छड़ के अर्धपालिश सिरे के आगे एक लेंस का प्रयोग किया जाता है जिसका कार्य लेसर किरणों को सूक्ष्म धार के रूप में केन्द्रित करना होता है।

इस यन्त्र से जब लेसर किरणें प्राप्त करनी होती हैं तो जेनान नली में तीव्र प्रकाश उत्पन्न किया जाता है। यह प्रकाश रूबी छड़ के परमाणुओं को उद्दीप्त करता है। उद्दीपन क्रमशः बढता जाता है फलस्वरूप इलेक्ट्रानों में भी आन्दोलन प्रारम्भ हो जाते हैं तथा अन्ततोगत्वा ऐसा समय आता है जबकि इलेक्ट्रान अपनी कक्षाओं को छोड़कर दूसरी कक्षाओं में प्रवेश कर जाते हैं। इसके साथ ही ऊर्जा के रूप में एक फोटॉन कण इससे अलग हो जाता है और छड़ के अन्दर किसी अन्य परमाणु से टकराकर एक और फोटान कण को जन्म देता है। ये कण छड़ में आगे बढ़ते जाते हैं तथा सिरे से परावर्तित होकर पुनः छड़ में लौटते हैं। लौटते समय ये रास्ते में अन्य परमाणुओं से टकराकर दूसरें फोटॉन कणों का जन्म देते हैं। ये सब फोटॉन कण आगे बढ़ते हुए दूसरे सिरे से टकराकर पुनः परावर्तित हो जाते हैं इस प्रकार लगातार क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा इन कणों की संख्या क्रमशः बढ़ती जाती है। ऐसा करते-करते एक समय ऐसा आता है जबकि इन कणों की संख्या अपरिमित हो जाती है और छड़ में उनका रहना मुश्किल हो जाता है, अतः वे अर्धपरावर्ती सिरे से गहरे लाल रंग की लेसर किरणों के रूप में बाहर निकल आते हैं।

जब इस प्रकार से लेसर-रश्मियाँ उत्पन्न की जाती हैं तो वे अत्यन्त तीव्र गति से निकलती हैं तथा लगभग 10^{-8} सेकन्ड तक ठहरती हैं। जब लगातार तरंग के रूप में लेसर उत्पन्न करनी होती है तो इलेक्ट्रान को पूर्व कक्षा में पहुँचने के पूर्व ही इतनी ऊर्जा दे दी जाती है कि वह उसी कक्षा में रहकर दूसरे फोटान कणों को जन्म दे दे। इस प्रकार बारम्बार इलेक्ट्रानों के उद्दीपन के फलस्वरूप अनेकानेक तरंगें क्रमशः स्पन्दन के रूप में छड़ के बाहर आ जाती हैं।

लेसर रश्मियाँ तीन प्रकार की होती हैं— गैस लेसर, ठोस लेसर व अर्धचालक लेसर। लेसर रश्मियों की यह विभिन्नता उपकरण में इस्तेमाल किये गये पदार्थ पर निर्भर करती है। इन तीनों ही प्रकार की लेसर रश्मियों की अपनी विशेषताएँ होती हैं। सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि लेसर की सभी तरंगें एक ही प्रकार की होती हैं और एक ही प्रकार से प्रसारित होती हैं अर्थात् यह प्रकाश न केवल माध्यम से सम्बद्ध होता है प्रत्युत एकवर्णी भी होता है। इसकी तरंग लम्बाई 6943×10^{-8} सेन्टीमीटर होती है। इसके अतिरिक्त यह प्रकाश अत्यन्त सूक्ष्म रूप में निकलता है तथा स्रोत के साथ बहुत छोटा कोण बनाता है। इसका परिणाम यह होता है कि बहुत दूर जाने पर भी इन रश्मियों का फैलाव अधिक नहीं होता। लेसर रश्मियों की तीव्रता भी बहुत अधिक होती है (लगभग 10^{-15} वाट प्रति सेकण्ड) तथा किसी चीज से टकराकर ये ताप व विद्युत उत्पन्न करती हैं। इनके अतिरिक्त इनमें एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी होती है कि नमी के सम्पर्क में आने पर इनकी क्रियाशीलता घट जाती है। वैसे लेसर रश्मियों का वेग प्रकाश के वेग के बराबर ही होता है।

लेसर रश्मियों के इन गुणों का उपयोग मानव को सुविधा पहुँचाने के लिए बड़े पैमाने पर किया जाता है क्योंकि ये ताप व विद्युतीय प्रभाव उत्पन्न करती हैं। कैंसर तथा अन्य रोगों का इलाज इनके द्वारा किया जाता है। इस प्रकार किये गये इलाज की प्रमुख विशेषता यह होती है कि इनसे न तो किसी प्रकार की पीड़ा होती

है और न शल्य चिकित्सा जैसी चीरफाड़ ही करनी पड़ती है।

लेसर रश्मियों के प्रभाव से आँख का आपरेशन भी किया जाता है। अगर रेटिना चक्षुलेन्स से अलग हो जाय तो व्यक्ति अन्धा हो जाता है। पर लेसर रश्मियों की सहायता से वेल्डिंग करके इसे पुनः जोड़ा जा सकता है। यह कार्य कुछ ही क्षणों में सम्पन्न हो जाता है। यहाँ तक कि रोगी को बेहोश भी नहीं करना पड़ता। जब कि सर्जरी द्वारा यह आपरेशन बहुत ही कठिन एवं कष्टकारी होता है।

ऊष्मा केन्द्रित रहने के कारण लेसर का उपयोग धातुओं में छेद करने, वेल्डिंग करने व मनचाहे आकार काटने में किया जाता है, इसकी सहायता से संसार की कठोरतम् वस्तु, "हीरे" को भी सरलता से काटा जा सकता है। लेसर की सहायता से ये कार्य कुछ ही क्षणों में व अत्यन्त सफाई से किये जा सकते हैं।

मौसम निरीक्षण के क्षेत्र में तो लेसर ने क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। लेसर व राडार के मिश्रित सिद्धान्त पर आधारित लिडार ने मौसम विज्ञान की अवर्णनीय मदद की है। माइक्रोवेव राडार से बादलों, धूएं आदि का पता नहीं लग सकता पर लिडार की सहायता से बादलों की सूक्ष्म संरचना, वायु की संरचना, धुन्ध आदि के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है क्योंकि नमीं से इनकी शक्ति में परिवर्तन आ जाता है। इसके साथ ही निस्कासन कोण कम होने के कारण लेसर रश्मियाँ बहुत दूर तक उपयोगी होती हैं।

लेसर के इसी गुण का उपयोग इन्हें चाँद तक भेजने में किया गया। लेसर उपकरण से निकली किरणों को निशाना बाँधकर सूक्ष्म धार के रूप में चाँद तक भेजा गया। सैनिक उपयोग के लिए भी लेसर बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी सहायता से दुश्मन के ठिकानों का सही-सही पता लगाया जा सकता है। लेसर पर आधारित 'कोलिडार' नामक एक ऐसा दूरोपयोगी यन्त्र बनाया गया है जिसकी क्षमता बहुत अधिक है। इसकी सहायता से दुश्मन के स्थान की न केवल दूरी वरन् दिशा भी सही-सही ज्ञात की जा सकती है।

लेसर किरणों की सहायता से मौसम की भविष्यवाणी तथा यातायात नियन्त्रण की कल्पना अब साकार हो गयी है। लेसर प्रकाश का उपयोग करके एक नया 'आप्टिकल मेज रेनर' नामक मेमोरी उपकरण बनाया गया है, जो विमान चालकों के लिए सही मार्ग का निर्देशन करता है। लेसर किरणों की सहायता से यह उपकरण ठीक-ठीक निर्णय देता है कि दायें मुड़ना चाहिये या बाँये, व ऊपर उठना चाहिये या नीचे उतरना चाहिये।

अन्तत: यह निर्विवाद और स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि लेसर का आविष्कार विगत दशाब्दी के महत्वपूर्ण व क्रान्ति-जनक आविष्कारों में से एक है। अतः वर्तमान विज्ञान लेसर के इस आविष्कार के लिए चार्ल्स टाउन्ज व उनके साथियों व सहयोगियों का अत्यधिक ऋणी है।

● ●

- **अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।**

- **हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।**

हिन्दी में वैज्ञानिक अनुवाद की समस्या

□ डा० शिवगोपाल मिश्र

[विज्ञान गोष्ठी के समक्ष 10 **मार्च को दी गई वार्ता-सम्पादक]**

दिसम्बर 1970 के 'विज्ञान' में 'शब्दों के चिन्त्य अनुवाद' तथा 'हमारी बदलती आस्थायें' शीर्षकों के अन्तर्गत मैंने शायद उसी समस्या की ओर संकेत करना चाहा था जिसके सम्बन्ध में मैं आज आपके समक्ष अपने विचार रख रहा हूँ।

यह सच है कि इस समय अनुवाद की धूमधाम है। हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन के अन्तर्गत आजकल अनुवाद कार्य को प्राथमिकता प्राप्त है। चाहे केन्द्रीय सरकार की ओर से अँग्रेजी के वैज्ञानिक ग्रंथों का अनुवाद कार्य हो अथवा हिन्दी ग्रंथ अकादमियों द्वारा प्रदत्त अनुवाद कार्य—सर्वत्र अनुवाद कार्य को प्राथमिकता दी जा रही है। शायद मौलिक लेखन के पूर्व अनूदित साहित्य का प्रचुर भण्डार तैयार करा देना अभीष्ट है। यह शुभ लक्षण है।

मूलभूत प्रश्न

किन्तु अनुवाद कार्य की कुछ समस्यायें हैं। मूलभूत प्रश्न हैं :

(1) क्या उचित ग्रंथों के अनुवाद हो रहे हैं ?

(2) क्या इन ग्रंथों के अनूदक उच्चकोटि के हैं ?

(3) क्या अनूदित ग्रंथ मौलिक ग्रंथों के ही समान समादरित हो सकेंगे ?

आइये हम इन्हीं के आधार पर अपनी बात को और स्पष्ट करें।

जहाँ तक अनुदित होने वाले ग्रंथों का चुनाव है—वह पहले से किया जा चुका है। अब कोई अन्य विकल्प शेष नहीं अतः अनुवाद कार्य होना ही है।

मेरे विचार से जो अनुवाद कार्य होना है, उसकी कोटि एवं उसके अनुवादक की योग्यता पर विशेष बल एवं ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

अनुवाद कार्य की पृष्ठ भूमि है पुस्तकों का आबण्टन अथवा यह कि कौन सी पुस्तक किसके द्वारा अनूदित होगी। शायद यही सबसे कठिन कार्य है जिसकी ओर चुनावकर्ताओं ने ठीक से ध्यान नहीं दिया। अनूदकों का चुनाव करते समय कुछ मूलभूत बातों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए था। ये हैं:

1 क्या अनूदक ने किसी भी स्तर का विशुद्ध हिन्दी ज्ञान प्राप्त किया है ?

2. क्या इसके पूर्व उसने अनूदक के रूप में प्रचुर कार्य किया है ?

3. क्या वह उस विषय का पारंगत है ?

4. क्या उसने उस विषय पर मौलिक लेखन या चिन्तन किया है ?

यदि मूल्यांकन करते समय वह खरा नहीं उतरता तो उसे अनुवाद-कार्य नहीं मिलना चाहिए, भले ही अनुवाद कार्य देने वाले अधिकारी उसके पक्ष में हों।

दूसरी समस्या है स्वयं अनुवाद की।

अनुवाद कैसा हो ? इसके सम्बन्ध में अनेक बातें कही जा सकती हैं। लेकिन प्रमुख हैं:

(1) सही सही पारिभाषिक कोशों एवं वैज्ञानिक शब्दावलियों का संकलन एवं उन पर पूर्ण अधिकार।

(2) पारिभाषिक शब्दों का यथार्थ अनुवाद-यह पक्ष ऐसा है जिसके सम्बन्ध में बहुत कुछ कहना है।

पारिभाषिक शब्दों का अभी भी विकास जारी है। समय समय पर नये समानार्थी नियत किये जाते हैं और कुछ का परित्याग होता है किन्तु अदि अनूदक इनसे परिचित नहीं होते तो कठिनाई प्रस्तुत होती है।

मैंने दिसम्बर 1970 के 'विज्ञान' में Trace, Cwt, Ore, Meal, Cultural practices, yield. आदि शब्दों के चिन्त्य अनुवादों का उल्लेख किया है। किस प्रकार से अर्थ का अनर्थ हो जाता है, अनूदक की थोड़ी गफलत से। सारा मजा किरकिरा हो जाता है।

(3) शब्दों के उच्चारण–बड़ा मतभेद है इस सम्बन्ध में। कारण कि हम अंग्रेजी के शब्दों को अपनी सुविधा के अनुसार उच्चरित करते रहते हैं, उनके वास्तविक उच्चारण पर ध्यान नहीं देते। इसके लिये हमारी शिक्षा-प्रणाली दोषी है।

(4) प्रायः एक विषय का अनूदक विषयान्तर होने पर विमूढ़ बन जाता है अतः उसे वहुविषयक ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

कुछ रोचक अनुभव

इधर 'भारत की सम्पदा' के अनुवाद को प्रसंग में मुझे कई सौ अनूदकों के द्वारा अनूदित सामग्री के अवलोकन का सुयोग प्राप्त हुआ है जिसके आधार पर मैंने अनुवाद सम्बन्धी कठिनाइयों एवं समस्याओं को समझने का यत्न किया है।

'भारत की सम्पदा' कई हजार पृष्ठों का अनुवाद है जिसमें विषयों की विविधता है

हमने जो शैली स्वीकृत की है वह इस प्रकार है :—

अंग्रेजी मूल का हिन्दी अनुवाद पारिभाषिक कोशों के अनुसार दिया गया है। हिन्दी के सरल शब्दों का व्यवहार हो, इसकी चेष्टा की गई है। प्राणिशास्त्र तथा वनस्पति शास्त्र से सम्बन्धित गणों या वंशों तथा कुलों या जातियों के नामों को वेबस्टर कोश को आधार मानकर उच्चारित किया गया है। इनके लैटिन उच्चारण पृथक से दिये गये हैं। साथ ही अंग्रेजी में भी इन्हीं शब्दों को अन्त में प्रस्तुत किया गया है जिससे पाठकों को मिलान करने में सुविधा हो। जितने भी निर्देश आये हैं उन्हें अंग्रेजी में ही रहने दिया गया है। साथ ही फुट, पौण्ड, सेकण्ड इकाइयों के स्थान पर सेंटीमीटर ग्राम तथा सेकंड इकाई का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार अनूदकों द्वारा प्रेषित सामग्री का कायाकल्प हो गया है।

सुझाव

सुझाव है कि अनूदक (1) कोशों का अध्ययन करें।

(2) शब्दों की व्युत्पत्ति पर ध्यान दें, प्रांसगिकता को समझें।

(3) अनुवाद को मात्र धनार्जन का साधन न बनाकर उसे अपनी ख्याति का साधन बनावें।

(4) हिन्दी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने का यत्न करें।

(5) अनुवाद वर्कशापों का आयोजन हो और उसमें सभी अनूदक भागलें, प्रशिक्षित हों।

अच्छे अनुवाद के लिये काफी तैयारी की आवश्यकता होती है। यदि अनूदक अंग्रेजी में व्यक्त भावों को सही सही नहीं समझता तो उसका अनुवाद सर्वथा अग्राह्य बन जावेगा। विभिन्न विदेशी भाषाओं की प्रकृति समझने के लिये अनूदकों को तैयार रहना चाहिए और अपनी शब्द सम्पदा को समृद्ध करने के लिये भारतीय भाषाओं की ओर ध्यान देना चाहिए।

'भारत की सम्पदा' के लिये सामग्री तैयार करते समय यह पहली बार अनुभव किया गया कि न केवल उत्तरी भारत की भाषाओं का वरन् दक्षिण भारत की भाषाओं का समुचित ज्ञान अपेक्षित है। वनस्पतियों की देशी नामावली में इन भाषाओं के जानने की नितान्त आवश्यकता है।

काश ! कि हम अनुवाद की अन्तरात्मा को पहचान कर समय रहते उचित डग भर सकें।

● ●

हृदय-प्रत्यारोपण

□ सुरेन्द्र प्रताप सिंह

विगत दशाब्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों के बारे में यदि विचार किया जाय तो निश्चय ही हृदय प्रत्यारोपण'' की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होगा। मानवहित को देखते हुये यह अपोलो 11 के चन्द्रावतरण से भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। चन्द्रावतरण की दिशा में होने वाले प्रयोगों ने मानवजाति को कंगाल बनाने का कार्य किया है, क्योंकि मानव-हितार्थ उपलब्धियों के नाम पर कुछ भी नहीं मिला। अपोलो योजनाओं ने अमेरिका जैसे सम्पन्न राष्ट्र की भी अर्थव्यवस्था को विचलित कर दिया है। परन्तु हृदय प्रत्यारोपण के आविष्कार ने मानव को प्रकृति पर विजय प्राप्त करने में अत्यधिक मदद किया है, मनुष्य को मौत के पाशविक चंगुल से बचाने का अप्रतिम रास्ता बताया है।

सर्वप्रथम हृत्कपाट का प्रत्यारोपण केपटाउन में डा० क्रिस्चियन बर्नार्ड ने किया। उन्होंने दिसम्बर 1967 में एक नवयुवती के दिल को जो एक कार-दुर्घटना में मर गयी थी, एक नवयुवक व्यक्ति लुइस वास्कान्स्की के कमजोर दिल की जगह लगा दिया और वह व्यक्ति 18 दिन तक जीवित रहा। इसके पूर्व स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के डा० शमवे ने कुत्तों के दिल परिवर्तन करने के अनेकों प्रयोग किये थे और उसमें उनको अभूतपूर्व सफलता भी मिली थी। प्रारम्भिक अवस्था में कुछ अन्य प्रयोग वर्जीनिया के डा० लोवर ने भी मानवीय दिल-परिवर्तन पर किया था जिसमें मस्तिष्क के चोट से मृत एक व्यक्ति के दिल को निकालकर तथा उसे खून से भर कर पुनर्स्थापित कर दिया था और वह दिल धड़कने लगा था। डा० बर्नार्ड का यह एक साहसी कदम था क्योंकि उसके पूर्व लोगों ने हृदय को आत्मा का निवासस्थान तथा अच्छे गुणों का घर माना था और धड़कते दिल को तो अभी भी जीवन का चिन्ह समझा जाता है। डा० बर्नार्ड को मनुष्य के दिल प्रात्यारोपण में कुत्तों की अपेक्षा कम कठिनाई का भी अनुभव हुआ था, किन्तु इस शल्यक्रिया में सबसे बड़ा व्यवधान होता है दिल से सम्बन्धित सम्पूर्ण रक्तवाहिनियों को काटकर दूसरे दिल के साथ उनका पुनःस्थापन। यह क्रिया बहुत ही कठिन है और इसको कोई भी सर्जन ठीक से नहीं कर सका है। इसी तरह की एक और कठिनाई है कि प्रायः एक शरीर किसी बाहरी अंग को अपने अन्दर स्वीकार नहीं करता। यह व्यवधान ठीक उसी तरह का है जैसे किसी घातक कीटाणु से बचने के लिए रक्त के श्वेत कणिकाओं तथा लिम्फोसाइट्स से उत्पन्न विरोधी द्रवों द्वारा कीटाणुओं से संघर्ष। लिम्फोसाइट्स की यही क्रिया उस समय भी होती है जब हृदय प्रतिरोपण होता है। फलस्वरूप रोगी को ज्वर आता है और अत्यधिक मात्रा में श्वेत कणिकाओं के जमा होने से लगता है कि क्षति हो रही है, और इस प्रकार अंग एकदम अस्वीकृत हो जाता है। इस 'अस्वीकृति' को रोकने के लिए डाक्टरों ने निम्न प्रयास किये हैं।

(1) डाक्टरों ने एक्स-रे विकिरण द्वारा उन शरीरांगों को नष्ट करने की प्रथा चलाई जिनसे लिम्फोसाइट्स उत्पन्न होते हैं किन्तु इसके कारण रोगी बाद में किसी भी छूत के रोग से मर सकता है क्योंकि छूत के कीटाणुओं से बचाव के लिये शरीर में अब कोई प्रक्रिया नहीं होती। यही कारण है कि वास्कान्स्की भी 18 दिन बाद निमोनिया के कारण मर गया।

(2) दिलग्राहक तथा दिलदाता के अंगों में अभिन्नता

आवश्यक है। यह अभिन्नता खून में भी होनी चाहिए। यह प्रथा इधर कुछ सफल हो पायी है।

(3) विस्कान्सिन विश्वविद्यालय के डा० फ्रिट्ज बारव श्वेत कणिकाओं की अभिन्नता देखना ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं। अगर दिलग्राहक तथा दिलदाता की श्वेत कणिकायें आपस में मिला दी जाएँ और उनमें कोई प्रक्रिया होती है तो यह मानलेना चाहिए कि दिल प्रतिरोपण अस्वीकृत हो जाएगा। अगर कोई प्रक्रिया नहीं होती तो हृदय प्रतिरोपण सफल हो सकता है।

अतः यह बात स्पष्ट हो गयी है कि हृदय प्रत्यारोपण की खोज न केवल चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में, अपितु सम्पूर्ण विज्ञान के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी कदम है। इसमें अन्य समस्यायें भी हैं जिनका निदान पूर्ण रूपेण अभी संभव नहीं हो सका है। इस दिशा में विश्व के वैज्ञानिक पूर्ण प्रयत्नशील हैं। डा० डेन्टन कूले जो कि विश्व के सर्वाधिक अनुभवी हृदय शल्य चिकित्सक हैं, इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। डा० कूले हाल ही में दो सफल हृदय प्रतिरोपण कर चुके हैं। एक एवरेट थामस का जो 6 माह तक जीवित रहे, दूसरा जार्ज डेबर्ड का जो 1 वर्ष से भी अधिक तक जीवित रहा।

इस प्रगति की दौड़ में भारत भी अब आगे आ रहा है। भारत के शल्य चिकित्सकों ने अपने को सिद्ध कर दिया है कि वे भी किसी से कम नहीं हैं। इस प्रकार का आपरेशन 2-3 बार किया जा चुका है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण आपरेशन 27 जन्, 1968 को किया गया था। उत्तर प्रदेश का एक आदमी जो बम्बई में फिटर था, कमजोर हृदय कपाट के कारण अस्वस्थ था। उसका हृदय निकालकर उसके स्थान पर एक 15 अक्टूबर, 1967 के मरे हुए आदमी का हृदय प्रतिरोपित किया गया। यह हृदय 8 माह तक एक विशेष घोल में सुरक्षित रखा गया था। यह आपरेशन भारत के शल्य चिकित्सकों के लिए गौरव की बात है।

मानव हिताय कार्यों में इस खोज ने निःसन्देह अतुलनीय योग दिया है। शायद मनुष्य अब जीवन मृत्यु के रहस्य को समझने में सफल हो सके। इस दिशा में आदि-काल से प्रयत्नशील मानव अब चैन की साँस ले सकता है। सम्भवतः इस क्षेत्र में आगे के शोध मानव को मृत्युभय से छुटकारा दिला सकें।

● ●

लेखकों से निवेदन

- **'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।**
- **लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।**
- **अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।**

एक महान गणितज्ञ—श्री निवास रामानुजम

□ ओम प्रकाश दुबे

संसार परिवर्तनशील है। मनुष्य इस परिवर्तन शील संसार का एक ऐसा रहस्य है जो प्रत्यक्ष दर्शन में नाशवान, किन्तु वास्तव में ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि का स्थायी स्तम्भ है। वैसे तो इस भौतिक जगत में जन्म-मरण का चक्र सदा चलता रहता है, किन्तु आत्मा जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त, शाश्वत तथा निरन्तर है। महान आत्मा वाले महापुरुष कभी मरते नहीं, उनके कार्य तथा उनका यश निस्सन्देह शाश्वत् एवं भावी पीढ़ी के लिये अनुकरणीय होता है। श्री निवास रामानुजम ऐसे ही भारत माता तथा विश्व के ऐसे ही एक महान गणितज्ञ एवं महापुरुष थे।

श्री निवास रामानुजम का जन्म तमिलनाडु प्रान्त के तन्जोर जिले के कुम्बाकोनम के पास इरोड नामक स्थान के एक ब्राह्मण परिवार में 22 दिसम्बर सन् 1887 ई० को हुआ था। उनके पिता कुम्बाकोनम के एक कार्यालय में लिपिक थे। सात वर्ष की आयु में उनके पिता जी ने कुम्बाकोनम के एक हाई स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजा। जब रामानुजम जी दस वर्ष के थे तभी उनकी अद्वितीय प्रतिभा का आभास होने लगा था। कहा जाता है कि जैसे ही उन्होंने ट्रिगनामेट्री का अध्ययन शुरू किया उसके थोड़े दिन बाद ही ज्या और कोज्या के लिये पुलर के प्रमेय का पुनः आविष्कार किया। दिसम्बर 1903 में उन्होंने मद्रास विश्व विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और जनवरी 1904 में कुम्बाकोनम के एक राजकीय विद्यालय के प्रथम जुनियर में प्रवेश किया। यहाँ पर गणित तथा अंग्रेजी में योग्य विद्यार्थियों को दी जाने वाली सुब्रामण्यम छात्रवृत्ति श्री रामानुजम जी को मिली। विद्यालय में भी वे गणित के अध्ययन में इतने ध्यानस्थ रहते थे कि दूसरे विषय की कक्षा में भी गणित के ही विषय में सोचा करते थे। गणित के प्रति इस असीम प्रेम तथा दूसरे विषयों के प्रति अरुचि के परिणाम स्वरूप वे अनुत्तीर्ण हो गये, जिसके कारण उनकी छात्रवृत्ति रोक दी गयी। दिसम्बर सन् 1907 में वे पुनः प्राइवेट एफ० ए० की परीक्षा में बैठे किन्तु अनुत्तीर्ण ही रहे।

सन् 1912 तक रामानुजम जी का मुख्य व्यवसाय गणित ही था सन् 1909 में उनका विवाह हो गया और तब उनके लिये जीविकोपार्जन आवश्यक हो गया। किन्तु उनके दुर्भाग्य-पूर्ण विद्यालय जीवन के कारण कार्य-प्राप्ति में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। सन् 1912 में मद्रास के पोस्ट-ट्रस्ट कार्यालय में 30 रु० मासिक पर लिपिक का कार्य मिला। मेरी ऐसी धारणा है कि यदि रामानुजम जी को इन दिनों शान्ति-पूर्ण जीवन मिला होता, तो अवश्य ही कल्पना के परे-गणितज्ञ के रूप में उनकी महानता झलक पड़ती।

भारतवर्ष में कौन ऐसा होगा, जो इस महान गणितज्ञ के लिये गर्व नहीं करेगा, जिसकी ज्ञानमयी सुनहली किरणों का विस्तार सम्पूर्ण विश्व में हो गया है। इग्लैंड का श्रेष्ठ गणितज्ञ प्रो० जी० एच० हार्डी ने भारत माता के इस महान सपूत की अद्वितीय प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा किया है। यह गणित का महान जादूगर अधिक पढ़ा नहीं था। गरीबी के कारण इनको गणित की पुस्तकों का कदापि सहयोग न मिल सका। उनके द्वारा लिखा प्रत्येक पृष्ठ एक शोध-पत्र ही होता था। रामानुजम जी कहा करते थे कि नमक्कल देवी स्वप्न में हमें सूत्र बता

जाती हैं, इसलिये जैसे ही प्रातः काल उठता हूँ, कोई न कोई शोध अवश्य कर लेता हूँ।

सन् 1911 में उनका प्रथम शोध-पत्र प्रकाशित हुआ और सन् 1912 में उनकी अथाह योग्यता तथा असीम प्रतिभा का विस्तार हुआ। दो अंग्रेज सर फ्रेन्कीस स्प्रिग और सर गिलबर्ट वाकर उनसे प्रसन्न होकर 60 रू० प्रति मास की विशेष छात्रवृत्ति मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा देना प्रारम्भ किया। जनवरी 1913 में रामानुजम जी ने जी० एच० हार्डी को अपने बहुत से शोध-पत्र भेजे। जिनको पढ़कर हार्डी ने उनकी योग्यता का सही परिचय पाया। सन् 1914 में मद्रास विश्व विद्यालय और ट्रिनिटी कालेज की सहायता से वे इंग्लैण्ड गये और प्रो० हार्डी के साथ शोध कार्य शुरू किया। प्रो० हार्डी ने रामानुजम के विषय में लिखा है।

I owe more to him than to any one else in the world with one exception,. and my association with him in the one romantic incident in my life, I am sure that Ramanujam was no mystic and that religion, except in a strictly material sense, played no important part in his life. Further, I say his religion was a matter of observance and not of intellectual conviction, and I remember well his telling me (much to my surprise) that all religions seemed to him more or less equally true."

रामानुजम जी अपने धर्म के सभी नियमों का अच्छी तरह पालन करते थे। उन्होनें जो बचन अपने माता-पिता को इंग्लैण्ड जाते समय दिये थे, अन्त तक उन बचनों का पालन किया। वे पक्के शाकाहारी थे। कैम्ब्रिज में सदैव कपड़े बदल कर अपने हाथ से भोजन बनाते थे। किन्तु उनका व्यवहार किसी के भी प्रति अशोभनीय नहीं होता था। हर तरह के लोग उनसे मिलने आते और गणित पर स्वेच्छा पूर्वक विवाद किया करते थे।

उनमें एक महापुरुष के सभी गुण वर्तमान थे। ऐसा लगता था कि प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक उनके अभिन्न मित्र हैं। एक बार जब वे इंग्लैण्ड में बीमार थे तो प्रो० हार्डी उनसे मिलने गये। प्रो० हार्डी जिस टैक्सी से गये थे, उसका कैब नम्बर 1729 था, जो उनके रिवाज के अनुसार अशुभ था। जब यह बात प्रो० हार्डी ने रामानुजम जी से कहा तो रामानुजम जी ने कहा कि यह बहुत ही रोचक संख्या है, क्योंकि यह सबसे छोटी संख्या है, जिसे दो भिन्न विधियों से दो घन के योग के रूप में लिखा जा सकता है। स्पष्टीकरण के लिए $1729 = 12^3 + 1^3 = 10^3 + 9^3$। उन्होंने कैम्ब्रिज में रहकर गणित को सपृद्धिशाली बनाने में बहुत योगदान दिया। उनकी अस्वस्थता के कारण उनके बहुत से शोध-कार्य अप्रकाशित ही रह गये। रामानुजम द्वारा गणित के लिये दिये गये योगदान का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) चक्रीय संख्या।

(2) संख्याओं के विश्लेषित सिद्धान्तों की समस्याओं से सम्बन्धित कार्य।

(3) एक लेटिस—विन्दु समस्या।

(4) पार्टीशनस से सम्बन्धित कार्य।

(5) हाइपो ज्यामेट्रिक सिरीज़।

(6) पार्टीशनस का एसिमटोटिक सिद्धान्त।

(7) रामानुजम का फलन।

(8) निश्चित—पूर्णांक।

(9) इलिप्टिक और माडुलर फलन।

(10) अभाज्य संख्याओं का सिद्धान्त।

रामानुजम जी युवावस्था में ही गणित के अनेक प्रश्नों को अपूर्ण छोड़कर अप्रैल सन् 1920 में स्वर्ग सिधारे। 1918 में फेलो आफ रायल सोसाइटी और फेलो आफ ट्रिनिटी कालेज से उन्हें विभूषित किया गया। वे प्रथम भारतीय थे, जिन्हें ये दोनों श्रेष्ठतम उपाधियां मिलीं। रामानुजम जी का नाम एक महान गणितज्ञ के रूप में सदैव स्वर्णाक्षिरों में लिखा जायगा।

● ●

विज्ञान चर्चा

□ डा० हीरालाल निगम

ज्ञान का रथ, खोज का पथ, रथी विज्ञान अपनी जय यात्रा में द्रुत गति से चला जा रहा है, लक्ष्य है—पदार्थ के अन्तिम सत्य का उद्‌घाटन जिसमें निहित है अमरत्व का रहस्य जो मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकेगा। विज्ञान की प्रत्येक अनुभूति इस बात की परिचायक है। आइये, हम विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों का एक संक्षिप्त पर्यवेक्षण करें।

केवल एक वर्ष पूर्व ही अमरीकी वैज्ञानिकों नीरेनवर्ग, खुराना तथा हाले को जीव की उत्पति के रहस्योद्‌घाटन में अभूतपूर्व सफलता मिली थी, उन्होंने डी० एन० ए०, आर० एन० ए०, आदि रासायनिक पदार्थों के संयोग व विलगाव के विशेष क्रम द्वारा "जनन कोड" के सम्पादित होने की खोज की। अब तो वंशानुक्रम के सरल संदेशों का रासायनिक संश्लेषण सम्भव हो गया है। वह दिन दूर नहीं जब हम होने वाले शिशु के जन्म के पहले ही यह निर्धारित कर सकेंगे कि उसकी आंखें नीली होंगी या भूरी, उसका कद लम्बा होगा या ठिंगना, उसका रंग गोरा होगा या काला। इतना ही नहीं सुक्ष्म जीवाणुओं में तो जनन शल्यचिकित्सा (जेनेटिक सर्जरी) के प्रयोग सफलीभूत हो चुके हैं यानी वैक्टीरिया के किसी स्ट्रेन से जीन लेकर दूसरे प्रकार के वैक्टीरिया में धंसाकर उसका वंशानुक्रमीय परिवर्तन कराया जा सकता है, स्तन पायियों के सेलों में ऐसे परिवर्तन कराने का अथक प्रयास जारी है, थोड़े ही समय में यह विलक्षण प्रयोग सफल होगा, ऐसी आशा है। जीवित पदार्थ के पर्याय अमीनों अम्लों को नगण्य मात्रा का परीक्षण अब फ्लूरोमितीय विधि द्वारा सम्भव हो गया है। जापान व अमेरिका के कुछ अनुसन्धान कर्त्ताओं ने मनुष्य के सब से बड़े शत्रु "कैंसर" के वायरस का पता लगा लिया है। इन अत्यन्त सूक्ष्म आकार वाले वायरसों के ज्ञान से जीव की उत्पत्ति के रहस्य का प्रकटीकरण होगा, ऐसी आशा है। कोशिका में प्रवेश करने के उपरान्त ये अत्यन्त सूक्ष्म आकार वाले वायरस अपने को इस प्रकार छिपा लेते हैं कि शक्तिशाली इलेक्ट्रान माइक्रासकोप के नीचे रख कर भी कोशिका के द्रव्य से इनका भेद करना कठिन हो जाता है, इसलिए इन्हें रंग लिया जाता है। रूस के कोव स्थित वायरस विज्ञान संस्थान में अभी हाल ही में वायरस अभिरंजन की एक उन्नत विधि निकाली गई है।

जीव के रासायनिक रहस्यों के इस ज्ञान के साथ चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में आशातीत प्रगति हुई है। हाल ही में स्वीडन में डी० पी० जी० नामक रासायनिक पदार्थ द्वारा रुधिर की प्रभावकारिता में वृद्धि कराने में सफलता प्राप्त हुई है। यह पदार्थ आक्सीजन के समान ही रुधिर की लाल कणिकाओं में विद्यमान प्रोटीनमय रंजक पदार्थ होमोग्लोबिन में अवशोषित होता है। इसका परिणाम यह है कि रुधिराधान के समय दिये जाने वाले रुधिर की मात्रा में कटौती की जा सकेगी, रक्ताल्पता यानी "अनीमिया" के उपचार में सुधार किया जा सकेगा। इसकी सहायता से अंग प्रतिरोपण से उत्पन्न होने वाले प्रति पिण्डों यानी "एंटीबाडोज़" को नियंत्रित किया जा सकेगा और अंगप्रतिरोपण का जोखिम कम किया जा सकेगा।

वस्तुतः अंगप्रतिरोपण से भी एक अगला कदम शल्य-चिकित्सा विज्ञान उठ चुका है—यह है मानव अंग परिवर्तन—लकड़ी, हाथी दांत, खर, नाइलान, डेकरान, प्लेक्सी आदि के बजाय अब एक नये पालिमा "सिलास्टिक" के बने अंगों को लगाने से आशातीत परिणाम प्राप्त हुए हैं। क्योंकि यह "सिलिकोन" पदार्थ जो लोहे के समान कड़ा और तेल के समान स्निग्ध बनाया जा सकता है,

मानव शरीर के आंतरिक तंत्रिका-तंत्र के अनुकूल है और शरीर इसे स्वीकार भी कर लेता है। हाल ही में यह खोज हुई है कि पी० वी० पी० नामक रासायनिक पदार्थ के बने वृक्क शरीर के अन्दर भी लगाये जा सकेंगे। सम्भव है कि कुछ ही समय में ऐसा मानव सामने आये जो कृत्रिम हृदय धारण कर, कृत्रिम फुफ्फुसों से सांस लेता हुआ अपने कृत्रिम नेत्रों से भू-पटल की शोभा का आनन्द लेने में समर्थ हो। शल्यचिकित्सा के उपयोग में आने वाले शस्त्रों व यंत्रों के स्टरिलाइज करने के लिए एक नये द्रव प्लास्टिक पदार्थ का आविष्कार हाल ही में हुआ है जिसमें डुबाने से यंत्र विशेष पर उसकी एक कड़ी परत जम जाती है और काम के समय वह परत कुरेद कर निकाल दी जाती है। इससे सर्जरी की प्रगति अत्यन्त द्रुत होने की आशा है।

सामर्थ्य की दृष्टि से परमाणु ऊर्जा, लेसर किरणें आदि के चमत्कारों से तो आप परिचित ही हैं। कुछ समय पूर्व एपोलो 11 व थोड़े ही दिन पूर्व एपोलो 12 की उड़ानों का अमर इतिहास न केवल रोमांचकारी है बल्कि अभूतपूर्व भी है। "ग्रहों सम्बन्धी आयोजन" के परिणाम स्वरूप शरीर-रक्षा के अनेक पहलुओं के बारे में अधिकाधिक ज्ञान अर्जित हो रहा है जैसे अन्तरिक्ष में विद्यमान वैक्टीरिया के इनफेक्शन से बचाव, अत्यधिक त्वरण, अत्यधिक संपीड़न के प्रभावों से बचाव, रक्त संचारण के क्षुमन से जनित उच्च रक्तचाप, हृदय-आकुलन से बचाव आदि। दूर परीक्षण, दूर चिकित्सा एवं दूर परिचर्या के सब से विलक्षण उदाहरण का प्रदर्शन तो तब हुआ जब अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री फ्रैंक बोरमैन चन्द्रमा की परिक्रमा के समय अस्वस्थ हो गये थे। यह सब 'कम्प्यूटरों या इलेक्ट्रानिक मस्तिष्कों की सहायता से सम्भव हो सका है। कम्प्यूटरों का आविष्कार इस युग का सब से बड़ा यांत्रिकीय आविष्कार है। अंतरिक्ष में अब तो प्रयोगशालायें भी कायम की जा रही हैं, जहाँ धातुओं की वेल्डिंग भी की जा सके। रूस का दावा है कि उसके नव निर्मित "प्लाज्मा जेट ओरियन" नामक अंतरिक्ष इंजन वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का उपयोग ईंधन के रूप में कर सकेंगे। अभी चन्द्र विजय की उत्तेजना कम भी नहीं हुई कि हमारी धरती से दूर लगभग साढे तीन करोड़ मील दूर लाल रंग के ग्रह मंगल ने वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया है। मैरिनर 6 और 7 के भेजे हुये सन्देशों से मंगल पर जीवन की सम्भावनाओं ने जीव विज्ञान के क्षेत्र में अनेक नये प्रश्न उपस्थित कर दिये हैं। पृथ्वी पर जीवन शब्द की जो परिभाषा है, क्या वही अंतिम परिभाषा है? जिन रासायनिक विधियों से गुजर कर पृथ्वी पर जीवन का आविर्भाव हुआ है, क्या केवल उसी प्रकार का जीवन सम्भव है? मंगल के चारों ओर घूमने वाले दो उपग्रहों "डी मोस" तथा "फोबोस" के कलेवर में सम्भवतः इन रहस्यों का समाधान छिपा है।

अन्तरिक्ष उड़ानों के परिणाम स्वरूप चिकित्सा एवं औषधि विज्ञान में एक नये युग का अभ्युदय हुआ है, अभी तक हम पीड़ित, रुग्ण मानव की परिचर्या एवं औषधि के बारे में सोचते थे जब हमारा ध्यान स्वस्थ मानव की ओर गया है। एक दूसरा और पहलू है वह है--स्वास्थ्य व भोजन का चोली-दामन का सम्बन्ध। पृथ्वी पर जीवन की हर वास्तविक्ताएं उस समय और भयावह हो उठती है जब हम विश्व में एक ही पीढ़ी के बाद 3 अरब से 7 अरब की जन संख्या के विस्फोट की सम्भावनाओं की पृष्ठभूमि में जीवन-निर्वाह पर विचार करते हैं। अन्तरिक्ष-उड़ान के सिलसिले में असमान्य खाद्य सामग्री जैसे एलगी पर व्यापक अनुसन्धान हुए हैं और विश्व की खाद्य-समस्या को हल करने में इससे पर्याप्त सहायता मिलने की आशा है।

विज्ञान की अत्यन्त द्रुत गति से बढ़ती हुई सामर्थ्य को देखते हुए महान अमरीकी वैज्ञानिक फुलर की चेतावनी कितनी सही मालूम होती है कि एक ओर तो विशिष्टीकरण के दुरुपयोग से सर्वत्र विस्मृति के साम्राज्य होने की भयावह आशंका है किन्तु दूसरी ओर आने वाले दशक में ही आदर्श समाज के अभ्युदय होने की महान कल्याणकारी आशा है।

आणविक औषधियाँ

□ डा० प्रेम चन्द्र खरे

इससे प्रथम कि हम आणविक चिकित्सा अथवा आणविक औषधियों पर विचार करें, यह आवश्यक है कि हम अणु की बनावट तथा तत्सम्बन्धित शब्दावली के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर लें।

(i) अणु :—इसके विषय में सरलतम शब्दों में कहा जा सकता है कि किसी तत्व की वह लघु से लघुतम इकाई जो किसी भी प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया में अपनी स्वतंत्र सत्ता या स्थित रख सके 'अणु' है।

एक नाभिक को आमतौर पर वैज्ञानिक विद्वानों द्वारा यों प्रस्तुत किया जाता है : 92 u 235 जिसका अर्थ होता है कि प्रताणु 92 होते हैं तथा 235-92=143 नताणु होते हैं जो यूरेनियम के नाभिक का निर्माण करते हैं। इस प्रकार 92 प्रताणु संख्या है (अथवा अणु-संख्या-है जो प्रगट करती है कि पीरियाडिक टेबुल में 92 वाँ तत्व है) तथा 235 'सम्पूर्ण-संख्या' या 'भार संख्या' है जो नाभिक में स्थित प्रताणु तथा नताणु के योग के बराबर है।

इस प्रकार नाभिक नताणुओं तथा प्रताणुओं से बना है। 'A 92 u–235 अणु' एक भारी केन्द्र युक्त नाभिक है जिसमें 92 विद्युदाणु विभिन्न धुरियों के चतुर्दिक तीव्र गति से उसी भाँति चक्कर मार रहे हैं जिस प्रकार सौर-मण्डल में गति हो रही है। ये विद्युदाणु प्रताणुओं के विस्फोट को नाभिक के अन्दर उदासीन या निरपेक्ष किये रहते हैं। इस प्रकार अणु विद्युतीय रूप में उदासीन बना रहता है।

(ii) समस्थानिक :— सम का अर्थ है समान तथा स्थानिक का अर्थ है 'स्थान' या 'स्थिति'। यदि 'पीरियाडिक टेबुल में दो अणु' 'समान स्थिति' धारण किये हों तो उन्हें समस्थानिक कहेंगे।

(iii) समभारी :—विभिन्न दो तत्वों के दो अणु जिनका एक ही सम आणविक भार हों समभारी कहे जाते हैं।

(iv) विकिरण :—किसी भी प्रकार की किरणें (यथा एक्स-किरणें, गामा किरणें या अल्फ़ा, बीटा, नताणु आदि तत्व) जो किसी अणु से छूट कर निकलते हैं इस क्रिया को विकिरण कहते हैं।

(v) रेडियो-सक्रिय :—कोई भी तत्व-यथा यूरेनियम-238, स्वर्ण-198, कोबाल्ट-60 आदि जो निरंतर तीव्रता से विकिरण करते हैं 'रेडियो-सक्रिय-तत्व' कहलाते हैं तथा विकिरण की इस प्रक्रिया को 'रेडियो-सक्रियता' कहते हैं। इस प्रकार रेडियो-सक्रिय आयोडिन (संक्षेप में रेडियो-आयोडीन), एक रेडियो-सक्रिय तत्व कहा जायगा तथा वह आयोडीन का 'रेडियो-आइसोटोप' होगा।

(vi) अलफा-परमाणु :—यह हीलियम अणु का नाभिक है अर्थात् अणु के समस्त 'विद्युदाणुओं' को निकाल कर केवल 'नाभिक' को रहने दिया गया है।

(vii) प्रताणु :—हाइड्रोजन अणु के नाभिक को, जिसका आणविक भार 1 माना जाता है तथा जो एक विद्युदाणु के धन स्फोट के बराबर होता है, प्रताणु कहते हैं।

(viii) नताणु :—वह परमाणु है जो 'स्फोट-रहित' है तथा जिसका भार प्रताणु के समान होता है।

(ix) विद्युदाणु :—यह अत्यन्त हलका ऋण स्फोट युक्त परमाणु है। इसका भार प्रताणु के भार से 1840 गुना कम होता है।

(x) गामा किरणें :—ये एक्स किरणों की भाँति ही लहरें या किरणें हैं जो उनसे सौ से एक लाख गुना अधिक तीव्रता से प्रवेश कर सकती हैं। परन्तु ये भी एक्स किरणों की भाँति गुण रखती हैं।

(xi) लेबल युक्त यौगिक :—जब कोई यौगिक किसी रेडियो सक्रिय तत्व की अल्प मात्रा से संयुक्त होता है तथा यह मात्रा अपनी सक्रियता के कारण उसके लेबल जैसा कार्य करती है तब ऐसे यौगिक को 'लेबल वाला यौगिक कहते हैं।

'आणविक भौतिकी' भौतिक शास्त्र की वह शाखा है जो 'अणु' के अध्ययन से सम्बन्ध रखती है। 'आणविक-औषधि' विज्ञान की वह शाखा है जिसमें समस्त प्रकार की आणविक भौतिक विधियाँ चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से खोजी जाती हैं। आणविक-औषधि-विज्ञान एक तीव्र एवं व्यापक क्षेत्र वाला विज्ञान बनता जा रहा है जिसके अन्तर्गत शरीर शास्त्र के रहस्यपूर्ण तथ्यों के उद्‌घाटन, मार्जन एवं निदान की प्रक्रियायें अन्वेषित की जाती हैं। विश्व के उन्नतिशील देशों में इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भारी प्रयत्न किये जा रहे हैं। लगभग 25 वर्षों की अल्प अवधि में ही 'आणविक-औषधि-विज्ञान' ने मानवकृत प्रयत्नों में सर्वाधिक महत्व का कार्य कर के एक अद्वितीय लेखा उपस्थित कर दिया है।

केवल रेडियो-आइसोटोपों के परिवर्द्धन की कथा ही इसका प्रमाण है। विश्व में समस्त उत्पादित आइसोटोपों में 80 से 90 प्रतिशत किसी न किसी रूप में 'आणविक-औषधियों' के प्रयोग में आते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में प्रतिवर्ष लगभग एक लाख रोगियों की चिकित्सा रेडियो सक्रिय गणक द्वारा की जा रही है।

अत्यधिक प्रचारित 'थेरयूतिक' अथवा चिकित्सा-विधियों की अपेक्षा अप्रचारित दिन-प्रति दिन की रेडियो-सक्रिय गणकों द्वारा अनेकों महत्वपूर्ण रोगों की विभिन्न रूपों में चिकित्सा एक स्थायी महत्ता प्राप्त करती जा रही है। रेडियो-सक्रिय गणक का प्रयोग अब कोई जादू की कला नहीं रह गयी है वरन् इसकी महान् उपयोगिता ने एक महान् मानदण्ड स्थापित कर दिया है तथा यह आणविक-औषधि-विज्ञान के चिकित्सकों के हाथों में एक उपयोगी यंत्र बन गया है।

औषधि रूप में रेडियो-आइसोटोपों के प्रयोग तथा लाभ

यदि मृत ऊतकों की रेडियो-आइसोटोपों से चिकित्सा की जाती है तो अल्प व्यय के अतिरिक्त भी अनेकों लाभ हैं। यदि किसी रोगी को 'कुछ घंटों के अर्द्ध-जीवन' वाले रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग कराया जाए तो बाद को उसकी पुर्नप्राप्ति आवश्यक नहीं क्योंकि वह अत्यन्त शीघ्रता से विघटित हो जाता है। अतएव एक निश्चित विधिवत् गणना की हुई मात्रा का प्रयोग किया जाना आवश्यक होता है, इसी कारण से इनका प्रयोग वाह्य तथा अन्तः दोनों रूपों में किया जा सकता है।

यह ज्ञातव्य है कि कुछ पदार्थ किन्हीं निश्चित प्रतिक्रियाओं के परिणाम-स्वरूप शरीर के किन्हीं भागों, अंगों या ग्लैंड्स में एकत्रित हो जाते हैं तथा इस प्रकार अनेकों विशेष प्रकार के रोगों तथा गुल्म, ट्यूमर (पिण्ड), कैंसर आदि में विशेष प्रकार के रेडियो-आइसोटोप दिये जा सकते हैं तथा इनके देने से रोग स्थानीय बनकर ही रह जाता है। उदाहरण के लिये यदि आयोडीन भीतरी रूप में ग्रहण किया जाये तो वह थॉयरायड गिल्टियों में जमा हो जाता है। इस प्रकार यह सहज ही समझ में आ जाता है कि थॉयरायड-गिल्टियों के विशेष कष्टों में रेडियो-सक्रिय आयोडीन का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक होगा तथा यह थॉयरायड में ही स्थानीय बना रहेगा।

इसी प्रकार रेडियो-सक्रिय लौह, चूना तथा फुष्फुर, या फासफोरस आदि विशेष अंगों या भागों की चिकित्सा हेतु प्रयुक्त हो सकते हैं यथा-अस्थियों की निर्बलता तथा अस्थि-क्षय होने में अथवा दाँतों के रोगों में अथवा अन्य

विशेष प्रकार के रोगों में प्रयोग ।

यह अनुभव द्वारा ज्ञात हुआ है कि गामा किरणें तथा एक्स-किरणें अस्थिमय भागों पर सर्वाधिक प्रभाव डालती हैं जबकि नताणु विशेषतः मांसल भागों पर प्रभावकारी हैं। इसी कारण विशेष क्षेत्रों पर इनके प्रभाव का विशेषतः अध्ययन किया जा रहा है।

रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों का अत्यधिक उपयोग उद्योग संस्थानों तथा कृषि क्षेत्रों में किया जा रहा है किन्तु 'गणकों' के रूप में अपनी सक्रियता को प्रगट करने के कारण उनकी उपयोगिता सर्वाधिक है। यदि इनको किसी व्यक्ति, जीव अथवा पशु को खिला दिया जाय तो यह अध्ययन किया जा सकता है कि यह तत्व किस भाग में जा रहा है अथवा कहाँ पर धारण किया जा रहा है। इसकी उपस्थिति का पता बाहर से गणक द्वारा लगाया जा सकता है। इस गणक को शरीर के बाहर लगाकर 'सक्रियता' की गणना की जा सकती है।

रेडियो-फुष्फुर से यह अनुभव किया गया है कि शोषित या धारण किये गये भाग का 62 प्रतिशत अस्थियों को पाँच दिनों के भीतर प्राप्त हो जाता है। चूहों को कैल्सियम फास्फेट जिसमें फुष्फुर को रेडियो-सक्रिय कर दिया गया था अर्थात् रेडियो-सक्रिय कैल्सियम फास्फेट खिलाया गया था। उसके धारण होने के प्रभाव का अध्ययन करने पर पाया गया कि सर्वाधिक चूना उनके सामने वाले दाँतों को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार पौधों द्वारा रेडियो-सोडियम तथा रेडियो-फुष्फुर का प्रयोग करके उनके तत्वों को धारण करते पाया गया।

क्षारीय फास्फेटिस तथा सिरम फिनाइल एमीन का गणन व अध्ययन करने का काफ़ी प्रयत्न किया गया। कुछ हो 'गणक-तकनीक' की सहायता से रेडियो-आइसोटोपों की चिकित्सा के मुख्य लाभ निम्न पाये गये हैं। इसी क्षेत्र को आणविक चिकित्सा कहा जाता है।

(1) रेडियो-आयोडीन के प्रयोग द्वारा थायरायड के कार्यों का मूल्यांकन।

(2) लाल कोष सहित 'रेडियो-आयोडीन लेबल्ड थायरोनाइन द्वारा थायरायड की परीक्षा

(3) थायरायड कार्यों के परिवर्तन-अनुपात का स्थिरीकरण।

(4) रेडियो-आयोडीन लेबल्ड यौगिकों द्वारा गुर्दों के कार्य का आकलन।

(5) रेडियो-आयोडिनेटेड सिरम अल्ब्यूमिन के साथ कार्डियक मात्रा का आकलन।

(6) मायों-कार्डियल रक्त प्रवाह का आकलन।

(7) रक्त व प्लाज्मा के आयतन को रेडियो-आयोडिनेटेड सिरम अल्ब्यूमिन के प्रयोग द्वारा माप।

(8) रेडियो-क्रोमियम द्वारा लाल कोष की मात्रा का माप।

(9) रेडियो-क्रोमियम द्वारा लाल कोष के अवशेष की माप।

(10) रेडियो कोबाल्ट विटामिन बी 12 द्वारा उच्च रक्तदाब की चिकित्सा।

(11) रेडियो-आयोडिन लेबल्ड ट्रायोलीन तथा ओलीइक अम्ल द्वारा चर्बी के पाचन तथा धारण या शोषण की माप।

(12) रेडियो-आइसोटोपों के शरीर के विभिन्न भागों में एकत्रीकरण की परीक्षा [उदाहरण के लिए—थॉयराइड—से पीड़ित रोगी को आयोडीन 131 की चिकित्सा दी गयी थी। आयोडीन एकत्र क्षेत्रों-फेफड़ों तथा गर्दन मेटास्टेटिक में पता लगाया जा सकता है।

थायरॉयड ग्लैंड जिस मात्रा में, मुख द्वारा ग्रहण की गयी औषधि-मात्रा के रेडियो-आयोडीन को एकत्रित करता है तथा रक्त धारा में लेबल्ड हारमोन मिलाता है या छोड़ता है—वही उसकी कार्य विधि का लेखा है। थायरॉयड कार्यावली के सैकड़ों परीक्षणों में आयोडीन के अवशोषण द्वारा सीधा मापन सबसे अधिक लोकप्रिय विधि है। एक 'गणक-मात्रा' के मुख द्वारा ग्रहण कराये जाने के 24 घंटों बाद सामान्यतः ग्लैंड के एकत्रीकरण की परीक्षा की जाती है। वैसे इससे कम समय में 'एकत्रीकरण' की परीक्षायें सफल हुयी हैं। यह विधि आपेक्षिक रूप में

सरल है तथा उन उलझे रोगों में कार्य विधि की दशा के विषय में विश्वसनीय सूचनायें प्रदान करती है।

इस विषय में जो विधि व्यवहृत की जाती है वह कुछ इस प्रकार है—पाँच से पच्चीस माइक्रोक्यूरी रेडियो-आयोडीन एक ग्लास जल में घोल दिया जाता है अथवा इसे कैपसूल में भर दिया जाता है तब मुख द्वारा ग्रहण कराया जाता है। यह गैस्ट्रो-आंत्रिक भाग द्वारा तुरन्त और पूर्णतया पचा लिया जाता है। एक परिचित रेडियो-आयोडीन की मात्रा अलग रख ली जाती है जिसका प्रयोग बाद में 'मानदंड' के रूप में करना होता है। इसे सीसे के प्लेट पर काउन्टर (गणक) में एकत्र किया जाता है।

रोगी 24 घंटे बाद लौटता है ताकि इस अवधि में थॉयरायड द्वारा, ली गई रेडियो-आयोडीन की मात्रा का कितना प्रतिशत भाग एकत्र किया गया इसका आकलन हो सके।

ग्लैंड (गिल्टी) की उपलब्धि का आकलन बाहर गले पर गणकयन्त्र रख कर 'विकिरणों' की संख्या की गणना करके किया जाता है। इस विधि में मापदंड में रेडियो-सक्रियता की प्रति मिनट गणना ली जाती है और तब रोगी के थॉयरायड में गणना की जाती है किन्तु दोनों में गणक से समान दूरी रक्खी जाती है। इन दोनों मापों का अनुपात ही उपलब्धि है। दोनों मापों में एक सी रेखा-गणितीय माप या विधि अपेक्षित होती है। इसके पश्चात् थॉयरायड ग्लैंड द्वारा रेडियो-आयोडीन की ली गयी मात्रा के प्रतिशत को इस सूत्र द्वारा निकाला जाता है।

प्रतिशत में उपलब्धि

$$= \frac{\text{रोगी की प्रति मिनट गणना}}{\text{'मापदंड' की प्रति मिनट गणना}} \times 100$$

यह देखा गया है कि बढ़ी हुयी थायरायड के रोगियों का उपलब्धि मूल्य 45% से 100% होता है तथा इयूथा-इरायडिस्म रोगियों का 15% और 45% तथा 10% प्रतिशत से नीचे के मूल्य हाइपोथायरायडिज्म प्रगट करते हैं। जैसा कि सभी परीक्षणों में होता है, कहीं-कहीं सीमा रेखा वाले केस और कहीं बहुत ऊपर मूल्य वाले केस भी हो जाते हैं।

टिशू (पेशी) द्वारा जिसमें मांसल-रक्त बाधा रूप में नहीं होता, एक गणकयंत्र को एओर्टा में लगा दिया जाता है। गणकयंत्र को पहली व दूसरी पसली के मध्य त्वचा से लगा दिया जाता है अथवा गणक-ट्यूब की धुरी को दूसरी पसली के ऊपर बाँयी ओर को 10° का कोण बनाते हुये लगाया जाता है तब घोल रूप में 'आयोडिनेटेड मानव सिरम अलब्यूमिन' को सूचीवेध द्वारा अन्तर्नस में प्रवेश करया जाता है, तब रेडियो-सक्रियता के प्रभाव के घुमाव को गतिमापक की सहायता से लिख लिया जाता है यह गतिमापक गति गणना देता है तथा एक चार्ट द्वारा जिसमें ग्राफ़ द्वारा प्रति मिनट गणना अथवा समय के अनुसार सक्रियता की माप दर्ज रहती है, इस गणना में सहायता ली जाती है। रक्त-आयतन तथाघुमाव के क्षेत्रफल में कार्डियक उपलब्धि का आकलन कर लिया जाता है।

हाल ही की खोज रिपोर्टों से पता लगा है कि प्रौढ़ सामान्य स्वास्थ्य वाले पुरुषों की औसत कार्डियक उप-लब्धि 'प्रतिमिनट 6 लीटर' है।

इस प्रकार रेडियो-आइसोटोपों के औषधि रूप में असंख्यों प्रयोग हैं। भारत में भी 'चिकित्सा विज्ञान' ने इन तकनीकों का अध्ययन एवं प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है, यह शुभ लक्षण है। यहाँ के वैद्य डॉक्टर इन तकनीकों पर अनुसंधान करने में काफी रुचि लेने लगे हैं।

● ●
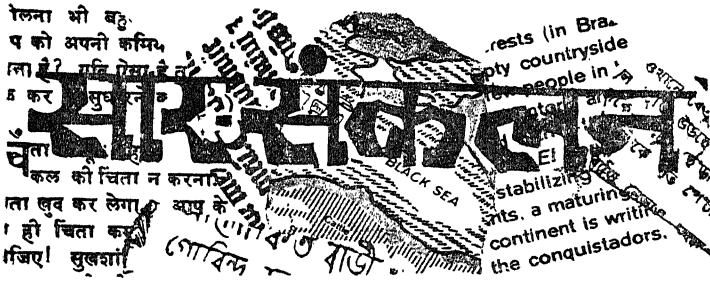
जन्म-चिन्ह

पुराने समय से जन्म चिन्ह शुभ लक्षण माना गया है। जिस व्यक्ति के शरीर पर यह चिन्ह होता था लोग उसे भाग्यशाली मानते थे। इस प्रकार की धारणा लगभग विश्व के सब देशों में विद्यमान थी। रूस में भी जन्म चिन्ह को शुभ माना जाता था। कवियों और प्रेमियों ने भी इसका बड़े सुन्दर और भावपूर्ण ढंग से गुणगान किया है। उनका विश्वास था कि भाग्यवान व्यक्ति के पास ही यह चिन्ह होता है और जीवन की हर खुशी उसे मिलती है। उसे जीवन में कभी भी किसी असफलता का मुँह नहीं देखना पड़ता।

परन्तु सोवियत वैज्ञानिकों के, जन्म-चिन्ह के बारे में, बिल्कुल इसके विपरीत विचार हैं। उनका कहना है कि जन्म चिन्ह सम्भावित खतरे का द्योतक है जो कभी भी व्यक्ति का जीवन दुखमय बना सकता है।

जन्म-चिन्ह क्या है ?

अब प्रश्न उठता है कि आखिर जन्म चिन्ह होता क्या है ? इसका उत्तर देना बहुत सरल है। जब कोई बच्चा पैदा होता है तब उसके शरीर पर गहरे लाल रंग की झुर्रियों वाला निशान बना होता है। इसका आकार छोटा परन्तु बड़ा ही कुरूप और बेढ़ब किस्म का होता है। कभी-कभी इस पर बाल भी उगे रहते हैं जिससे कि कुरूपता और भी बढ़ जाती है। यह शरीर के किसी भी हिस्से में हो सकता है। परन्तु उस समय यह और भी असहनीय हो जाता है जबकि ग्रहण-चिन्ह चेहरे पर अर्थात् नाक, गाल, कान आदि पर होता है। इससे उस व्यक्ति की सुन्दरता में एक प्रकार से ग्रहण सा लग जाता है जो जीवन भर बना रहता है। इसी से जन्म–चिन्ह को ग्रहण-चिन्ह भी कहा जाता है।

बीमारी का कारण

सोवियत प्रोफेसर लीवर निश्नेविच के अनुसार मेलोनोप्रस भूरे या काले ट्यूमर्स होते हैं। ये किसी भी आयु में निकल सकते है और विशेष प्रकार की खराबी के लिए कुख्यात है। अधिकतर मेलोनोमस का आरम्भ चमड़ी के एक स्थान पर इकट्ठा होने और मस्से जैसे जन्म-चिन्हों से होता है।

जन्म-चिन्ह वास्तव में छोटे छोटे जलेबी जैसे या सर्पनुमा होते हैं जो जागने से पूर्व शिथिल पड़े रहते हैं। जब जागते हैं तो सर्प की ही तरह मनुष्य को डस लेते हैं। जिसका परिणाम मृत्यु होता है। उनके जागने में देर नहीं लगती। कभी-कभी कपड़े की रगड़ से भी ये जाग जाते है। पहले इनके रंग में परिवर्तन होता है, फिर ये फैलने लगते हैं और अन्त में फूट पड़ते हैं जिसके बाद इनका रूप अल्सर या ट्यूमर में बदल जाता है। इनका अन्त घातक होता है। इस अवस्था में जन्म-चिन्ह का आपरेशन करना या इसे छेड़ना खतरनाक होता है क्योंकि इससे मेलोनोमस

में विस्तार होने लगता है और इसके जीवाणु चमड़ी के अन्य भागों में फैल जाते हैं।

ग्रहण-चिन्ह उपचार

क्या जन्म-चिन्ह के घातक प्रभाव से बचा जा सकता है? इसका उत्तर है, हाँ! सोवियत वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि ठीक समय पर इसका उपचार किया जाये तब इस रोग से हमेशा के लिए छुटकारा पाया जा सकता है। लेकिन यह कार्य बहुत कठिन है। क्योंकि लोग अक्सर इस रोग के आरम्भ होने पर शीघ्रता से इस ओर ध्यान नहीं देते। इसके अतिरिक्त जन्म-चिन्ह में जब परिवर्तन शुरू होता है तब उसकी गति इतनी धीमी होती है कि कभी-कभी तो उसका पता ही नहीं चलता।

आम तौर पर डाक्टर जन्म-चिन्ह का आपरेशन करने से हिचकिचाते हैं। लेकिन जब आपरेशन किया जाता है तब डाक्टर जन्म-चिन्ह वाले स्थान का काफी बड़ा भाग काट कर अलग निकाल देते हैं जो आम तौर पर दो इंच व्यास तक होता है जिससे कि आस-पास वाली प्रभावित चमड़ी से भी ट्यूमर्स की कोशिकाओं को खत्म किया जा सके। इस प्रकार के आपरेशन से शरीर में एक बड़ा सा निशान पड़ जाता है। यदि यह आपरेशन नाक या गाल पर किया जाये तो कैसा लगेगा! स्पष्ट है कि इस हालत में कोई व्यक्ति आपरेशन करवाने के लिए तैयार ही न होगा।

एक "काकटेल" का आविष्कार

सोवियत जार्जिया के एक रासायनविद् अमीकान कारच्योली ने एक ऐसी दवा तैयार की है जिससे मस्सों और जन्म-चिन्हों को हटाया जा सकता है। यह दवा पीले-हरे रंग की नाइट्रिक "काकटेल" है जो लेक्टिक अम्ल तथा ताँबा और नाइट्रिक अम्ल से बनी है। लेक्टिक अम्ल जन्म-चिन्ह के ऊपर वाले हिस्से को साफ करके ताँबा और नाइट्रिक अम्ल के लिए उसके अन्दर जाने का मार्ग बना देता है। अन्दर पहुंचकर यह दवा ट्यूमर की कोशिकाओं से मिल जाती है और उनका रास्ता रोककर उन्हें हानि-रहित बना देती है। यह काकटेल स्वस्थ कोशिकाओं के लिये बिल्कुल हानिकारक नहीं है। इसका प्रभाव प्रभावित स्थान तक ही सीमित रहता है। ट्यूमर की कोशिकाओं में परिवर्तन की बड़ी उच्च क्षमता होती है और ये जहरीले पदार्थ को बड़ी अधिक मात्रा में पी लेते है। ताँबा और नाइट्रिक अम्ल स्वस्थ कोशिकाओं में बहुत कम मात्रा में पहुँचता है और दूसरी जो हानि होती है वह न होने के बराबर है।

नाइट्रिक अम्ल में जलाने का गुण होता है। लेकिन प्रो० कारच्योली ने जो "काकटेल" तैयार की है उसमें ताँबा और नाइट्रिक अम्ल होने से जलन या दर्द नहीं होता। रोगी को केवल ऐसा अनुभव होता है जैसे कि थोड़ी सी जलन हो रही हो। लेकिन इसका प्रभाव अस्थायी होता है। इस दवा के प्रयोग से एक या दो सप्ताह के भीतर आराम हो जाता है और रह जाता है केवल एक छोटा सा लाल निशान (जन्म-चिन्ह के स्थान पर)।

"काकटेल" में अनेक उपयोगी गुण हैं। इसे न केवल जन्म-चिन्ह और मस्सों को दूर करने वरन् लगभग 15 प्रकार के ट्यूमरों के इलाज में भी उपयोग किया जाता है। यह दवा शरीर के अन्दर पहुँचकर ट्यूमर की कोशिकाओं तथा खून के अन्य हानिकारक कीटाणुओं को भी समाप्त कर देती है।

कारच्योली प्रणाली का जार्जिया की राजधानी त्विलिसी के मेडिकल संस्थान में छः वर्ष तक परीक्षण किया गया है। जब इस दवा के प्रभावकारी गुण का सफलतापूर्वक निरीक्षण कर लिया गया और इसे कारगर पाया गया तब इसको रोगियों के उपचार के लिए प्रयोग में लाने के लिए मास्को में सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी ने सहमति प्रदान कर दी। आजकल सोवियत संघ में "काकटेल" प्रणाली लोकप्रिय ही नहीं बल्कि बड़ी कारगर भी सिद्ध हो रही है। विश्व के अन्य देशों में इसका अभी प्रचार नहीं हुआ है।

विज्ञान-वार्ता

उपवास से चिकित्सा

आर्मेनिया के डाक्टर ग्रान्त सारकिसीग्रान ने 'उपवास से चिकित्सा' की एक नई विधि का विकास किया है। इस विधि से मोटापा समेत उपापचयन की कई खराबियों का सरलतापूर्वक इलाज किया जा सकता है। इस चिकित्सा विधि का उपयोग डाक्टरों की कड़ी देख रेख में एवं केवल उन्हीं अस्पतालों में हो सकता है जहां उपवास चिकित्सा के हर पहलू को समझने वाले सुयोग्य व्यक्तियों की कमी न हो। अस्पताल में भर्ती होने वाले मरीज का सर्वप्रथम सामान्य परीक्षण होता है। प्रत्येक मरीज को उसकी अपनी दशा के अनुसार एक विशेष अवधि तक किसी प्रकार का भोजन नहीं दिया जाता। उपवास के दौरान मरीजों को उनकी इच्छानुसार साधारण या खनिज जल पीने की अनुमति होती है। जल की मात्रा का भी कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। इस बीच खुली हवा में टहलने एवं प्राणायाम करने पर विशेष जोर दिया जाता है। किसी भी प्रकार की औषधि प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी जाती।

आरोग्यलाभ के उपरांत भी भोजन के प्रकार पर प्रतिबन्ध रहता है। चिकित्सा के तुरन्त बाद रोगी को पानी मिला हुआ रस पिलाया जाता है। कुछ दिन बाद भोजन में फलों का सलाद भी शामिल कर लिया जाता है। भोजन की मात्रा भी नियंत्रित रहती है। डाक्टर ग्रान्त के मतानुसार इस प्रकार की चिकित्सा अब बहुत लोकप्रिय हो रही है। इस विधि का स्वागत किया जाना चाहिये।

कैन्सर निरोधी टीके

अमेरिकी वैज्ञानिकों के अनुसार अब वे ऐसी स्थिति में पहुँच चुके हैं जब विविध प्रकार के कैंसर रोगों से मुक्ति पाने के लिये टीके लगाये जा सकेंगे। कैंसर की इन किस्मों में, छाती का कैन्सर, ल्यूकोमिया और सारकोमा भी शामिल हैं, जिनसे सभी प्रकार के कैन्सर ग्रस्तों में से लगभग एक चौथाई लोग पीड़ित हैं।

अमेरिका के राष्ट्रीय कैन्सर संस्थान के वैज्ञानिक डा० फ्रैन्क जे० रोश्चर का कहना है कि कैन्सर निरोधक टीके विकसित करने की विधियाँ उन विधियों से कहीं अधिक कठिन और जटिल हैं, जिनके द्वारा चेचक, खसरा और शिशु-पक्षाघात के टीके विकसित किये गये हैं। डा० रोश्चर का कहना है कि कैन्सर निरोधक टीके का निर्माण अभी भी विकास क्रिया के दौर में है, और इस सिद्धान्त पर आधारित है कि विचारधीन मानवीय कैन्सर, विषाणुओं से उत्पन्न हुये हैं। उनका कहना है कि कुछ प्रकार के कैन्सर रोगों को रोकना अब सम्भव हो चुका है और कुछ अन्य प्रकार के कैन्सर रोगों की रोकथाम की आशा बहुत बढ़ गई। इसके साथ ही साथ एक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है कि किस प्रकार समाज के लोगों को कैन्सर विषाणु युक्त टीके लगवाने के लिये तैयार किया जाय। इसके लिये जनमत में एक परिवर्तन लाना पड़ेगा और अनुसन्धानकर्ताओं को असंदिग्ध रूप से यह प्रदर्शित करना होगा कि ऐसे टीकों से बीमारी नहीं होगी।

समस्यायें भयावह हैं, परन्तु इनसे हमें घबड़ाना नहीं चाहिये। परिणाम उत्साहवर्धक होंगे।

सम्पादकीय

नई सरकार, नये प्रतिमान

भारत की जनता ने केन्द्र पर नई सरकार को बहुमत से आसीन कर दिया है। कहा जाता है कि प्रजातन्त्र का यह अनोखा उदाहरण है जिसमें कांग्रेस को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

नई सरकार स्थापित हो जाने के बाद राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में जो कुछ इंगित किया है और बजट में मोटे तौर से जो कुछ निर्दिष्ट हुआ है उससे भारतीय वैज्ञानिक वातावरण का कुछ पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। यदि राजनीति के साथ विज्ञान की कुछ बातें होती हैं तो स्वाभाविक है कि विज्ञान प्रेमियों का ध्यान उधर आकर्षित होगा।

राष्ट्रपति ने विज्ञान और टेक्नॉलाजी का उल्लेख करते हुये दो अन्य प्रमुख वैज्ञानिक तथ्यों का उल्लेख किया है—एक है बारानी कृषि और दूसरा है प्रदूषण। भारत का औद्योगिक विकास करते समय वायु, जल तथा स्थल-इन तीनों प्रदूषणों से सतर्क रहने का वचन दिया गया है जिससे स्पष्ट है कि राजनीतिज्ञ भी प्रदूषण की समस्या को कम महत्व नहीं प्रदान करते। वे अगले कुछ वर्षों में समुपस्थित होने वाली प्रदूषण-समस्या के प्रति अभी से जागरूक हैं। यह शुभ लक्षण है।

बारानी कृषि का तात्पर्य है वर्षा पर निर्भर रहने वाले क्षेत्रों में खेती करने की पद्धति। भारत ने पिछले तीन वर्षों में कृषि जगत में जो 'हरित क्रान्ति' देखी है उसके परिणामों को अब अधिकाधिक क्षेत्रों और किसानों तक पहुँचाने के उद्देश्य से बारानी कृषि की ओर विशेष ध्यान दिये जाने का वचन दिया गया है। पुनः यह प्रगतिशील कदम है। कहना न होगा, कि इस कदम के फलस्वरूप बारानी क्षेत्रों में सिंचाई के साधनों को जुटाने या ऐसी फसलों को उगाने का यत्न किया जावेगा जो इन क्षेत्रों के लिये उपयुक्त हों।

केन्द्रीय बजट में विज्ञान की उन्नति के लिये भारतीय वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद तथा विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग को मुक्त हस्त से आर्थिक सहायता देने का संकेत किया है। स्पष्ट है कि विश्वविद्यालयों में शोध करने के इच्छुक छात्रों को अधिकाधिक छात्रवृत्तियाँ मिल सकेंगी और अध्यापकों के लिये शोध सहायता।

शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद विज्ञान के स्नातकों के समक्ष वर्षों से बेरोजगारी सुरसा का रूप धारण करके बाधक बनती रही है। अब उन्हें आश्वस्त होना चाहिए—उनके लिये उपयुक्त कार्य मिलने की सम्भावना बढ़ी है।

नई सरकार में "नया खून" लाने का आग्रह है अतः नवयुवकों को आशावान बनकर सुअवसर का सदुपयोग करना चाहिए।

विज्ञान-लेखक एवं विज्ञान की पत्रिकायें अपने अपने कार्य के प्रति जागरूक होकर सुदृढ़ राष्ट्र बनाने में अपना अपना योग दें। यही उपयुक्त समय है—ईमानदारी के साथ काम में जुट जाने का।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० |3|5|

भाग 108 | चैत्र 2028 विक्र०, 1892 शक मार्च 1971 | संख्या 3

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन

मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त

□ श्यामसरन अग्रवाल 'विक्रम'

[विज्ञान के नवम्बर 1970 **अंक के सम्पादकीय अग्रलेख के आधार पर यह लेख लिखा गया है—सम्पादक]**

हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाये जाने का प्रश्न जब विगत दो दशाब्दियों में उन दिनों के निस्सन्देह हिन्दी के बड़े महारथियों और हिमायतियों के होते हुए भी एक अनुत्तरणीय और असमाधानीकृत प्रश्नचिह्न ही बना खड़ा रहा, तो अब भी कुछ किये जाने की आशा रखना एक सलोना दिवास्वप्न ही होगा। ऐसी अन्धेरगर्दी में इस सिर दर्द को झटक कर उतार देना होगा कि 'कब नौ मन तेल हो, कब राधा नचै' की भाँति कब हिन्दी राष्ट्रभाषा हो और कब विज्ञान-प्रसार की दिशा में कुछ किया जाये। मजा तो तब है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा हो, तत्पश्चात् हम कुछ काम करने की सोचें इसकी अपेक्षा अपने कार्यों से जनता पर छा जायें और जनता स्वयं यह माँग उठाये कि हम हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा लेकर रहेंगे। भाषा कभी किसी पर थोपी तो नहीं जा सकती। वह तो जन-मानस को जीत कर स्वयं जनता से ही जनता पर हावी हो जाती है।

उक्त प्रेरक लेख में विज्ञान की हिन्दी पत्रिकाओं के गिनाये हुए चार-पाँच नाम पढ़ कर जी तो चाहा कि कहीं से ऐसा पानीदार चुल्लूभर पानी लाया जाए जिसमें हिन्दी के हिमायती मुँह छिपा सकें। लज्जा की बात है कि जहाँ लन्दन की केवल एक 'परनेल' नामक प्रकाशन संस्था विज्ञान की उत्तम तीन-तीन साप्ताहिक पत्रिकाएँ धड़ल्ले से निकाले; जहाँ हमारे नगर-नगर से एक-एक दो-दो हिन्दी में विज्ञान पत्रिकाएं अपेक्षित हों, वहाँ समूचे भारत देश में केवल

पाँच। कौन कहता है, हमारा मुल्क तरक्की पर नहीं ? हमारे प्रत्येक मध्यम और बड़े नगर से अपने-अपने दैनिक और साप्ताहिक पत्र निकलते हैं, परन्तु उन्हें भला विज्ञान से क्या वास्ता ?

मैं वैज्ञानिक पाठ्यपुस्तक-लेखन की बात नहीं कहता। उस बात में कोई खुश ज़ायका भी नहीं है। वह तो एक उत्पादन-धन्धा बन गया है। प्रकाशक के पास पाठ्यपुस्तक का आकर्षण दिखाते हुए कुछ भी घास-कूड़ा ले जाइये, वह शौक़ से छाप देगा और पैसा भी खड़ा कर लेगा। इसके लिए औसत......(जी हाँ, अपवाद की बात मैं नहीं करता) विज्ञान के अध्यापक और प्राध्यापक की डेस्क पर कागज, कलम, कैंची और गोंद तैयार मिलेगी। इस क्षेत्र में वैज्ञानिक लेखन का अभाव हो, मैं नहीं मानता।

बात जनसाधारण की है, जिसमें हमें विज्ञान की जिज्ञासा जागृत करनी है। इसके लिए अत्यन्त रोचक, सरल और सरस विज्ञानलेखन की आवश्यकता है और प्रचुर मात्रा में वैसी सामग्री के धाराप्रवाह प्रकाशन की भी आवश्यकता है। पाठ्यक्रमोपयोगी विज्ञान पढ़ाना एक बात है और जनता में विज्ञान का चाव जगाना, बिलकुल दूसरी बात। इस दूसरी बात के लिए एक सफल, सरस लेखक को विज्ञान का स्नातक या परास्नातक होने की आवश्यकता नहीं। आवश्यक केवल यह है कि अध्ययन और अभ्यास के द्वारा सामान्य विज्ञान समझने-समझाने की योग्यता प्राप्त कर ले। आज भी यदि सर्वेक्षण को निकलें तो रोचक, सरल विज्ञान-लेखकों में बी० एस-सी०, एम० एस-सी० से कदाचित् बढ़कर ही साहित्यिक कलम के धनी मिलेंगे। ऐसे लेखकों को आवश्यक प्रोत्साहन देने हेतु पुस्तक-प्रकाशक और समाचारपत्र अपनी कूपमण्डूकता से बाहर आवें, अपने क्षितिज बढावें और विज्ञान-पत्रिकाएँ तीन से तेरह होती हुयी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि करें तो लोकोपयोगी सरल विज्ञान-लेखन का उपेक्षित वर्ग स्थिति में स्पष्ट सुधार ला सकता है।

'भारत की सम्पदा' जैसे संग्रहणीय ज्ञानकोश के उत्तम अनुवाद और उच्चस्तरीय मौलिक विज्ञान-लेखन की ओर उस लेख के लेखक की चिन्ता एवं अपेक्षा-आकांक्षा सर्वथा समुचित है और उन्हीं के कथनानुसार हमारी हिन्दी ग्रन्थ अकादमियां समय की माँग और इस चुनौती का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें, इसी में उनके अस्तित्व की सार्थकता है।

इन दोनों अधिक महत्वपूर्ण कार्यों के लिए उच्चस्तरीय वैज्ञानिक लेखकवर्ग तैयार होता चले, यह भी लक्ष्य से बाहर रखना हमें गवारा न होना चाहिये ; वर्ना वही ढाक के तीन पात, कि मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त।

● ●

- **अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।**

- **हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।**

क्रिस्टल-रचना—एक समस्या

□ विष्णुदत्त शर्मा

आप में से बहुतों ने क्रिस्टल देखा होगा। चीनी का क्रिस्टल और मिश्री आदि का क्रिस्टल दैनिक जीवन में बहुत प्रयोग किया जाता है। क्रिस्टल का नामकरण ग्रीक शब्द "क्रिस्टेलॉस" से हुआ, जो प्राचीन समय में चट्टान-क्रिस्टल के रूप में प्राप्य था। यह चट्टान-क्रिस्टल वैभवशाली अवस्था में एल्प की पहाड़ियों के उच्च स्थानों में मिलता था। उस समय ऐसा विश्वास था कि बर्फ इस अवस्था तक जम चुका है कि उसे दोबारा पिघलाया नहीं जा सकता।

क्रिस्टल एक ठोस वस्तु है जो किसी नियम विशेष से कणों की प्राकृतिक स्थिति को प्रदर्शित करती है। एक समय वह था जब प्राकृतिक क्रिस्टल हीरे-जवाहरात के रूप में प्रयोग किये जाते थे किन्तु आज महँगाई बढ़ने के कारण इनका उपयोग कम हो गया है। इनका या इनसे कम मूल्यवान पत्थरों (मणि) का सर्वाधिक आश्चर्यजनक उपयोग इनके प्रकाशीय गुणों के कारण होता है। अतः यह स्वाभाविक है कि क्रिस्टल के अन्य भौतिक गुणों के विषय में विचार करने से पूर्व क्रिस्टल-प्रकाशिकी का अध्ययन बहुत समय पूर्व आरम्भ हो गया होता।

सन् 1912 में क्रिस्टल द्वारा एक्स किरणों के विवर्तन के विषय में यह लुई का ही आविष्कार था जिसने भौतिक शास्त्रियों को परमाणु की आंतरिक व्यवस्था के अध्ययन हेतु एक आवश्यक यंत्र प्रदान किया। इस प्रकार क्रिस्टल-भौतिकी का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिकों को प्रोत्साहन मिला।

क्रिस्टलों को हम सात समुदायों में श्रेणीबद्ध कर सकते हैं :—

1. त्रिनताक्ष
2. एकनताक्ष
3. त्रिविषम-अक्षीय
4. चतुष्कोणीय
5. त्रिकोणीय
6. षट्कोणीय
7. घनीय

उच्च कोटि के बड़े क्रिस्टलों के बनाने की तकनीक को दो विस्तृत शीर्षकों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है :—

1. विलयन द्वारा क्रिस्टल बनाना।
2. द्रवण द्वारा क्रिस्टल बनाना।

1. सर्वप्रथम पदार्थ का संतृप्त विलयन बनाया जाता है, तत्पश्चात् विलयन, को धीरे-धीरे बिना हिलाये वाष्पीकरण रीति से काफी समय तक रखा रहने देने पर क्रिस्टल तैयार हो जाते हैं। इस रीति से क्रिस्टल अशुद्ध बनता है और तैयार करने में समय भी अधिक लगता है। यदि संतृप्त विलयन में, जिस पदार्थ का क्रिस्टल बनाना हो, उसी का बीज (सीड) डालकर, ताप में परिवर्तन किये बिना प्रदोलन अवस्था में शनैः-शनैः वाष्पीकरण किया जाए तो क्रिस्टल शीघ्र एवं बड़ा बनता है। विलयन द्वारा क्रिस्टल बनाने की विधि में प्रायः यह सम्भव होता है कि इसकी प्रकृति बदलने के लिये थोड़ी मात्रा में अन्य पदार्थ भी मिलाना पड़े। उदाहरणार्थ-अमोनियम क्लोराइड के क्रिस्टल बनाने के लिये इसके संतृप्त विलयन में यूरिया मिलाने से बड़ा क्रिस्टल बन जाता है।

द्रवण द्वारा क्रिस्टल बनाने की रीतियों में क्रुसिबिल घुमाने की विधि प्रमुख है-जैसे कायरोपौलस विधि, स्टॉबर

तकनीक तथा वरन्यूग्रल तकनीक। ब्रिजमैन, स्टॉक बार्जर तथा अन्य वैज्ञानिकों ने भी क्रुसिबिल घुमाने की तकनीक को अपनाया जिसमें उन्होंने गोलाकार क्रुसिबिल ली, जिसका नीचे का भाग शंकु समान हो, और उसमें जिस पदार्थ का क्रिस्टल बनाना हो, भरकर एक भट्ठी में रख दिया जाता है। द्रवणांक से ऊपर ताप रखकर क्रुसिबिल को नीचे धीरे-धीरे भट्ठी में लाया जाता है। इस प्रकार क्रिस्टल तैयार करने के लिये ताप प्रवणता को कम करने के साथ ही साथ क्रुसिबिल भी नीचे जाती है। ज्यों-ज्यों क्रुसिबिल नीचे जाती है त्यों-त्यों क्रुसिबिल का शंकु वाला भाग नीचे से ठंडा होना आरम्भ हो जाता है और धीरे-धीरे सम्पूर्ण पिघला पदार्थ ठोस बनकर क्रिस्टल बन जाता है। इस विधि में बीज लगाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। यह तकनीक स्टॉक बार्जर द्वारा कैल्सियम फ्लोराइड तथा लीथियम फ्लोराइड के क्रिस्टल तैयार करने में प्रयुक्त की गई थी।
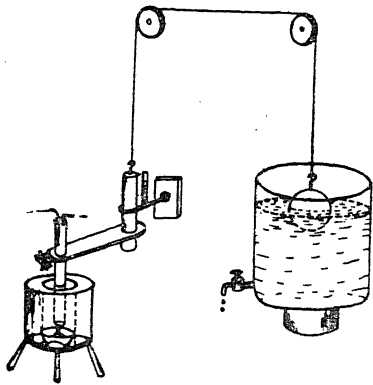
चित्र 1—क्रिस्टल-उपकरण की रेखाकृति

कायरोपौलस तकनीक में पदार्थ क्रुसिबिल में रखकर भट्ठी के अन्दर पिघलाया जाता है। नीचे के भाग में खंदक वाली एक निकल-ट्यूब में छोटा सा बीज लगाकर इतना नीचे किया जाता है कि यह केन्द्रक द्रवित पदार्थ को छू जाये। द्रवित पदार्थ का ताप द्रवणांक से 20-30° अधिक होना चाहिये। ट्यूब के अंदर पानी प्रवाहित करके बीज को ठंडा किया जाता है ताकि कुछ समय के पश्चात् बीज के चारों ओर एक चमकदार छल्ला बनता दिखाई दे। धीरे-धीरे (चित्र संख्या 1) पानी की सहायता से क्रिस्टल को बनाने के साथ ही साथ ऊपर भी उठाया जाता है। इसके ऊपर उठने की गति 3 मि०मी० प्रति घंटा से अधिक नहीं होनी चाहिये।
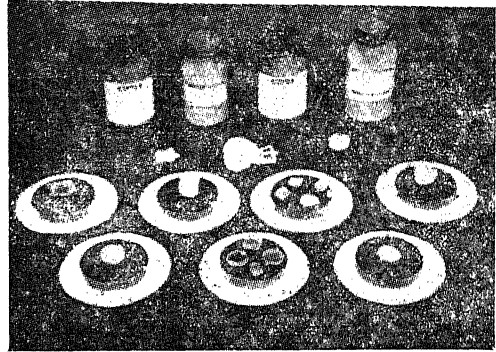
चित्र 2—भिन्न-भिन्न पदार्थों से बने क्रिस्टल

ऐसे पदार्थ, जिनके द्रवणांक अत्युच्च होते हैं उनके क्रिस्टलों को वरन्यूल तकनीक द्वारा बनाने में सफलता मिलती है। इन पदार्थों में विशेष रूप से पद्मराग, नीलमणि या नीलम हैं। अधिकतर विदेशों में क्रिस्टल स्वचालित भट्ठी में तैयार किये जाते हैं और आयात भी होते रहे हैं। भारत में इस प्रकार के साधन उपलब्ध न होने के कारण तकनीशियों को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली में लेखक ने स्वयं रूपांकित उपकरण द्वारा सोडियम क्लोराइड, पोटैशियम क्लोराइड, लीथियम फ्लोराइड, सोडियम ब्रोमाइड, पोटैशियम ब्रोमाइड तथा इन सभी हैलाइडों में कॉपर, एल्यूमीनियम, मैंगनीज़, निकल, कोबाल्ट तथा जिंक आदि अनेक अशुद्धियों से युक्त क्रिस्टल तैयार करके अपना विनीत योगदान दिया है। इस रूपांकित यंत्र द्वारा पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़, दिल्ली यूनिवर्सिटी, इण्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ साइंस, नई दिल्ली तथा अनेक विश्वविद्यालयों में

[शेष पृष्ठ 8 पर]

प्रदूषण

□ डा० शिवगोपाल मिश्र

शहरों के भीतर या गाँवों में जहाँ भी जाओ साँस लेने में कष्ट होता है, मुँह में गर्द-गुबार भरता है या नाक से धुँआ भीतर जाने लगता है, आँखें कड़ुवाने लगती हैं और घर्र घर्र की आवाज से कान फटने लगते हैं।

घरों की छतों में या फर्शों पर नित्यप्रति धूल, कोयले के छोटे छोटे कणों तथा हल्के कचरे की पतली परत जमी दिखाई पड़ती है। मकानों की दीवालें धीरे धीरे धूमिल पड़ने लगती हैं।

कपड़ों की दुर्दशा है। धुले सफेद कपड़े तुरन्त गँदले पड़ जाते हैं।

सड़कें हैं कि तेल ही तेल छितरा नजर आता है। सडकों की बगल से बहने वाली नालियाँ और नाले—उनकी पूछो मत। पंक-भार से लदे।

नदियों का पानी किसी जमाने में स्वच्छ और पेय माना जाता था किन्तु अब तो उनमें पानी की कमी हो गई है और जो पानी है वह भी गंदला और दूषित। नदियों में गिरने वाले नालों, पनालों की संख्या बढ़ी है, फैक्टरियों के बेकार-पानी को नदियों में लाकर छोड़ा जाने लगा है, धोबी कपड़े धोने लगे हैं, मृत लाशों का जल दाह होने लगा है। परिणाम यह हुआ है कि नदियाँ अब गंदगी की घर हैं।

तो साधारण प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यों हुआ ?

छोटा सा उत्तर है—जनसंख्या बढ़ी है, औद्योगिकीकरण हुआ है और हम अधिक 'सभ्य' बने हैं जिसके कारण आवागमन के साधनों में वृद्धि हुई है, उद्योगधन्धों से निकले दूषित पदार्थों में बढ़ोतरी हुई है। कम स्थान में अधिक लोग रहने के कारण स्वास्थ्य-प्रबन्ध नहीं हो पा रहा और सड़कों में मोटरों, स्कूटर, तांगों, रिक्शों की संख्या में वृद्धि होने के कारण 'शोर' बढ़ा है, धुँआ-धक्कड़ बढ़ा है, गर्द-गुबार बढ़ा है, गंदगी बढ़ी है, तेल छितर गया है। फिर हवाई जहाजों ने ऊपर से वायु मण्डल को 'शोर' तथा गंदगी से संतृप्त कर दिया है। नदियों तथा समुद्रों में जलयानों ने तथा कहीं-कहीं समुद्र के भीतर से तथा उसकी सतह पर फैले पेट्रोल ने अंधेर मचा रखा है।

तात्पर्य यह कि चाहे, थल हो या जल अथवा वायु—सर्वत्र ही गंदगी बढ़ी है।

सड़कों के किनारे के वृक्ष या फसलें धूलधूसरित मिलेंगी। फैक्टरियों के आसपास की सारी वनस्पति जली हुई, या मुरझी मिलेगी। नदियों में मरी हुई मछलियाँ दिखेंगी। खेतों में मरी हुई चिड़ियाँ और पशु तथा होटलों का भोजन खाकर मरने वाले मनुष्यों की सूचनायें नित्य-प्रति समाचार पत्रों में छपती रहती हैं। औद्योगिक शहरों-यथा कानपुर, कलकत्ता, बम्बई में श्रमिकों के आवासों की गंदगी और उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों ने बहुत पहले से हो-हल्ला मचा ही रखा है।

याद आती है पुराने लोगों की सीखें-स्वच्छ वायु का सेवन करो। जंगलों में तपस्या करो।

स्मरण हो आती हैं साहित्यिक जनों की उक्तियाँ-भर रहा है गरल से संसार जैसे हार खाकर। याद आते हैं कलुष, कलंक, कालिमा, घुटन, दूषण जैसे बिखरे हुये शब्द।

आइये ! इस भूमिका के साथ हम 'प्रदूषण' पर विचार करें।

प्रदूषण : जो कुछ सहज रूप में है, जो साम्यावस्था है, जिससे मनुष्य स्वस्थ और सुखी रह सकता है, यदि उसमें परिवर्तन आ जाय जिससे उसे सामान्य जीवन-क्रियाएँ पूरी करने में बाधा का अनुभव हो, तो उसे हम प्रदूषण, दूषण या कलुषीकरण की संज्ञा प्रदान करेंगे। अर्थात् जब जीवित रहने की न्यूनतम आवश्यकतायें वर्जित होने लगती हैं तो प्रदूषण की समस्या उग्र होने लगती है। मनुष्य की आवश्यकताएँ हैं वायु तथा जलवायु वह में वह साँस लेता है और पानी के द्वारा वह शारीरिक क्रियाओं को पूरा करता है। फिर मनुष्य मूलतः स्थलचारी है भले ही वह अन्तरिक्ष की उड़ान भरने लगा हो। उसके पास-पड़ोस में यदि कोई असंतुलन हुआ है तो वह खाद्य सामग्री के रूप में उस पर प्रभाव डालेगा। इसका ज्वलन्त उदाहरण है खेतों (मिट्टी) का प्रदूषण होने पर मनुष्य या पशुओं का प्रभावित होना।

प्रदूषण के प्रकार : स्पष्ट है कि प्रदूषण भी तीन प्रकार का होगा—वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा स्थल प्रदूषण। सम्भवतः आजकल वायु प्रदूषण पर बल दिया जा रहा है। इसका कारण यह है कि बड़े नगरों में खाँसी, दमा, कैंसर आदि की बीमारियों में जो वृद्धि हुई है उसके लिये दूषित वायु को उत्तरदायी बताया जाता है। यह सही भी है। किन्तु जल प्रदूषण कुछ कम गम्भीर नहीं है। उल्लेखनीय बात तो यह है कि बड़े बड़े नगरों में जल-संदूषण की समस्या, अनेक वर्षों से जल-प्रबन्ध के होते हुये भी उग्र रूप धारण करती जा रही है।

प्रदूषण के कारण

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे प्रदूषण के कारणों की झलक तो हो ही जाती है। प्रदूषण के मुख्य कारण हैं—

(क) उद्योगों का विस्तार-चाहे कृषि हो या अन्य उद्योग-इन सबके विस्तार के फलस्वरूप अधिकाधिक स्थानों में प्रदूषण हुआ है।

(ख) यातायात—चाहे स्थल के यातायात हों या जल अथवा वायु सभी प्रकार से धूल, धूम, शोर आदि में आशातीत वृद्धि हुई है।

(ग) नाभिकीय परीक्षण—इनके द्वारा न केवल किसी एक राष्ट्र के भीतर वरन् अन्तर्राष्ट्रीय प्रदूषण की समस्या-गम्भीर स्थिति-उत्पन्न हो गई है।

(घ) ईंधन—चाहे पेट्रोल हो, या कोयला, लकड़ी या उपले-इन सबों के जलने से प्रदूषण को बढ़ाने वाले कारक उत्पन्न होते हैं। ईंधन जलने से वायुमण्डल के आक्सीजन का व्यय होता है जिससे साँस लेने के लिये स्वच्छ वायु में कमी होती जाती है।

प्रदूषण के कारक

कारणों और कारकों में घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राय: तीन प्रकार के कारक प्रदूषण के लिये उत्तरदायी कहे जा सकते हैं :

1. वायु प्रदूषक : सम्भवतः इनकी संख्या सबसे अधिक है और ये सबसे महत्वपूर्ण भी हैं। धुँआ, धूल कण, कुहासा, सल्फर डाइ आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड, ओज़ोन, ऐल्डिहाइड तथा हाइड्रोकार्बन प्रमुख प्रदूषक हैं। इनके अतिरिक्त मोटर के पेट्रोल से निस्सृत सीसा धातु सर्वत्र व्याप्त है।

2. कीटनाशी-ये मिट्टियों के द्वारा फसलों, अन्नों को प्रदूषित करते हैं। आये दिन डी० डी० टी० के द्वारा हुई मृत्युएँ उल्लेखनीय हैं।

3. रेडियोऐक्टिव धूलि-जितने भी नाभिकीय परीक्षण होते हैं उनसे इतनी रेडियोऐक्टिव धूलि बनती है जो परीक्षण स्थल से हजारों मील दूर जाकर नीचे बैठती है और वनस्पतियों तथा पशुओं, पक्षियों एवं मनुष्यों द्वारा उपयुक्त होकर नाना व्याधियों का कारण बनती है। इस धूलि में सीजियम-90 विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रदूषण से हानियाँ

प्रदूषण से कई प्रकार की हानियाँ हैं किन्तु इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण जनता के स्वास्थ्य से सम्बन्धित है।

इसके पश्चात् मछलियों का विनाश, वनस्पति विनाश, वायु दुर्घटनायें, जलवायु पर प्रभाव।

स्वास्थ्य सम्बन्धी हानियों में गले के रोगों की उत्पत्ति, कैंसर में वृद्धि, आँखों के रोग, कान सम्बन्धी रोग, सीसा की विषाक्तता, मानसिक तथा हृदय सम्बन्धी उद्वेग प्रमुख हैं।

प्रदूषण निराकरण के उपाय

1. औद्योगिक केन्द्रों को घनी बस्तियों से दूर रखना।

2. मोटर गाड़ियों को सुरक्षा-साधनों से लैस करना जिससे कम से कम धुँवा निकले। खुले स्थानों में कोयला न जलाया जाय। चिमनियों में सुधार।

3. प्रदूषण के दुष्प्रभावों से बचने के लिये सुरक्षा साधनों का प्रयोग-यथा कर्मियों द्वारा नकाब का पहनना, चश्मे लगाना आदि।

4. प्रदूषण-परीक्षण का प्रबन्ध—बड़े-बड़े शहरों में नैत्यिक प्रदूषण की प्रमाप के लिये वैज्ञानिक विधियों का विकास।

5. नागरिकों में जागरूकता-नागरिक उद्बुद्धता के द्वारा प्रदूषण में कमी हो सकती है। नागरिक अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करें और स्वच्छ रहने का व्रत लें।

6. अधिनियमों का लागू होना--बड़े बड़े शहरों में प्रदूषण अधिनियम लागू करके उनका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।

आजकल विश्व के जिन दो-प्रमुख देशों में प्रदूषण के प्रति सर्वाधिक सचेष्टता देखी जा रही है वे हैं-जापान तथा अमरीका। कहा जाता है कि जापान की राजधानी टोकियो विश्व में सबसे अधिक प्रदूषित शहर है। यहाँ प्रतिमास प्रति वर्ग किलोमीटर में 34 टन कजली एकत्र होती है जब कि न्यूयार्क में यही मात्रा इसकी आधी है। टोकियो के विद्यार्थी कक्षाओं में नकाब पहन कर जाते हैं, सड़क का पुलिस थोड़ी थोड़ी देर में आक्सीजन में साँस लेने जाता है। इतनी सतकर्ता के बावजूद 20% लोगों को आँख, नाक तथा गले की बीमारियाँ होती रहती हैं। अकेले अमरीका में वायु प्रदूषण के फलस्वरूप प्रतिवर्ष 50 करोड़ डालर की वनस्पति नष्ट होती रहती है।

अनुमान है कि समुद्रों में प्रतिवर्ष 5000 टन पारद पहुँचता है। यह मात्रा उन कीटनाशियों के घुल घुलकर नदियों द्वारा समुद्र तक पहुँचने से प्राप्त होती है, जो प्रतिवर्ष फसलों में प्रयुक्त होते रहते हैं। यह पारद समुद्र की मछलियों के लिये प्राणान्तक बन जाता है। इसी प्रकार से सीसा भी पहुँचता रहता है। प्राकृतिक अपक्षय से प्रतिवर्ष 150,000 टन सीसा समुद्र में पहुँचता है किन्तु पिछले 50 वर्षों में इस मात्रा में वृद्धि हुई है क्योंकि अनुमान है कि उत्तरी गोलार्द्ध में प्रतिवर्ष आटोमोबाइल इंजिनों में जितना ईंधन जलता है उससे लगभग 350,000 टन सीसा निकलता होगा जो वायुमण्डल में व्याप्त है। यही नहीं, अनुमान है कि यातायात के समय प्रतिवर्ष लगभग 10 लाख टन तेल समुद्र में गिर जाता है जो 18 महीने तक रहा आता है।

जापान में प्रदूषण फैलाने वाले दोषी व्यक्ति या संस्थान को 3 वर्ष की सजा या 63000 रुपये के दण्ड का विधान है।

हमारे देश में कलकत्ता (1905 में), बम्बई (1912), कानपुर (1958) तथा दिल्ली और गुजरात (1970) शहरों के लिये वायु प्रदूषण सम्बन्धी अधिनियम बने हैं किन्तु ये अपूर्ण हैं और कागजी हैं।

स्पष्ट है कि जन-स्वास्थ्य के प्रंसग में प्रदूषण की समस्या एक विचारणीय सामयिक समस्या है जिसके प्रति प्रत्येक व्यक्ति को सचेष्ट रहना चाहिए। सरकार का परम कर्तव्य है कि प्रदूषण समस्या को हल करने के सभी सम्भावित उपायों को अमल में लावे। ज्यों ज्यों औद्योगीकरण होता जा रहा है, शहरों की जनसंख्या बढ़ती जा रही है और आधुनिक सुख सुविधाओं की पूर्ति के उद्देश्य से जो भी साधन प्रयुक्त किये जा रहे हैं उनसे प्रदूषण की समस्या उग्र से उग्रतर रूप धारण करती जा रही है।

आँख खोलने वाले तथा दहला देने वाले कुछ प्रासंगिक आँकड़े दिये जा रहे हैं :—

1. एक मोटरकार 100 किलोमीटर दौड़ने में उतना आक्सीजन का उपयोग कर लेती है जिसमें एक व्यक्ति एक वर्ष साँस ले सकता है। यदि कोई जेट विमान दिल्ली से लन्दन यात्रा करे तो वह 45 टन आक्सीजन का उपभोग कर चुकेगा। यदि इसी गति से आक्सीजन का अपव्यय हुआ तो निश्चय है कि साँस लेना दूभर हो जावेगा।

2. अनुमान है कि प्रति वर्ष उद्योगों के कारण लगभग 80 करोड़ टन प्रदूषक (कजली, धुआ, गैस, रासायनिक पदार्थ) उत्पन्न होते रहते हैं। पिछले 70 वर्षों में वायु मण्डल में कम से कम 12·5 लाख टन फ्लिंट, 14 लाख टन आर्सेनिक, 6 लाख टन ऐंटीमनी, 10 लाख टन कोबाल्ट तथा 8 लाख टन निकेल जा चुका है।

3. कलकत्ते में यातायात के पूरे दौर के समय जितनी कार्बन मोनोआक्साइड उत्पन्न होती है वह न्यूयार्क तथा शिकागो की अपेक्षा कम नहीं होती। रेलवे स्टेशनों के आस पास सल्फर डाइआक्साइड की मात्रा सदैव अधिक होती है। दिल्ली में धूल की मात्रा कानपुर तथा कलकत्ते की 1·4 गुनी और बम्बई की लगभग तिगुनी होती है। गर्मी के दिनों में इस मात्रा में काफी वृद्धि हो जाती है।

अब आप स्वयं सोचें कि प्रदूषण गूढ़ समस्या है या नहीं।

● ●

[पृष्ठ 4 का शेषांश]

क्रिस्टल तैयार करके बहुत से अनुसंधान किये जा रहे हैं। इन क्रिस्टलों को बनाने के समय समस्या यह उत्पन्न हुई कि जब सोडियम क्लोराइड तथा कोबाल्ट क्लोराइड का क्रिस्टल बन सकता है तो फिर पोटैशियम क्लोराइड और कोबाल्ट क्लोराइड के मिश्रण का क्यों नहीं बन सकता? आशा है कि क्रिस्टल बनाने में रत तकनीशियन एवं शोध-कर्त्ता इस समस्या का समाधान कर पायेंगे।

वर्तमान संचार व्यवस्था को उचित ढंग से चलाने और यांत्रिक शक्ति को विद्युत शक्ति में बदलने के लिये ये क्रिस्टल प्रयोग किये जा रहे हैं। क्वार्ट्ज का क्रिस्टल आजकल घड़ियों में तथा युद्ध और शान्ति के समय में अनेक यंत्रों में लाभप्रद सिद्ध हुआ है। कृत्रिम नीलमणि का क्रिस्टल अधिकतर घड़ियों, यंत्रों के छर्रों और फ़ोनोग्राफ़ की सुइयों में काम आता है। सोडियम क्लोराइड, पोटैशियम ब्रोमाइड, लीथियम फ्लोराइड और सीज़ियम ब्रोमाइड आदि के क्रिस्टल प्रिज्म् तथा लेंस बनाने के काम में अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन क्रिस्टलों द्वारा पराबैंगनी एवं अवरक्त पैक्ट्रोग्राफ की उत्पत्ति भी व्यापारिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। सक्रिय सोडियम आयोडाइड जैसे क्रिस्टल नाभिक अणु के लिये प्रस्फुर गणित (सिन्टिलेशन काउंटर) में प्रयोग किये जाते हैं। सिलिकान तथा जरमेनियम क्रिस्टल ट्रांजिस्टर में बहुत उपयोगी हैं। इस प्रकार क्रिस्टल वर्तमान युग में बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुये हैं।

● ●

गुरुत्वीय-तरंगों की खोज

□ वेद प्रकाश श्रीवास्तव

अल्बर्ट आइन्सटीन ने 1916 में सापेक्षवाद के व्यापक सिद्धान्त के प्रतिपादन के समय ऊर्जा-वाहक गुरुत्वीय तरंगों की परिकल्पना की थी। उनका विचार था कि जिस प्रकार एक दोलनकारी आवेश विद्युत-चुम्बकीय तरंगों का उत्सर्जन करता है उसी प्रकार भौतिक पिण्डों के दोलन से गुरुत्वीय तरंगें उत्पन्न होती हैं। इन तरंगों और विद्युत-चुम्बकीय तरंगों में अनेक समानताएँ हैं। विद्युत-चुम्बकीय तरंगों की तरह ये भी ऊर्जा वाहक होते हैं और प्रकाश वेग से संचारित होते हैं। गुरुत्व तरंग की कल्पना प्रगतिशील गुरुत्व क्षेत्र के रूप में की जा सकती है। विद्युत चुम्बकीय तरंगों का विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र से जो सम्बन्ध है ठीक वही गुरुत्व तरंगों का गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से होता है। फिर भी दोनों प्रकार की तरंगों में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर हैं। यथा विद्युत चुम्बकीय तरंग केवल आवेशित पिण्डों पर बल लगाते हैं परन्तु गुरुत्व तरंग किसी भी ऐसे आवेशित या अनावेशित वस्तु पर बल लगा सकते हैं जो संहतीय हो। विद्युत चुम्बकीय तरंग रास्ते में पड़ने वाले आवेशित पदार्थ को गति प्रदान कर सकते हैं परन्तु गुरुत्व तरंगें जब किसी संहति से टकराती हैं तो उसके आर-पार हो जाती हैं और वस्तु में फैलाव और संकोच उत्पन्न कर देती हैं। फलस्वरूप वस्तु की सतह कम्पनावस्था में आ जाती है। कम्पन का आयाम मुख्य रूप से वस्तु के विस्तार पर निर्भर करता है।

यद्यपि पचास वर्ष पूर्व ही आइन्सटीन ने गुरुत्व तरंगों का अस्तित्व गणितीय आधार पर सिद्ध कर [दिया था परन्तु इनका पर्यवेक्षण पिछले वर्ष तक सम्भव न हो सका। इसका मुख्य कारण गुरुत्व ऊर्जा का अत्यन्त क्षीण होना था। आइन्सटीन और एडिंग्टन नें गणना द्वारा यह परिणाम निकाला कि यदि एक मीटर लम्बे छड़ को उसके केन्द्र के चारों तरफ जितना तेज सम्भव हो सके घुमाया जाय तो उत्सर्जित ऊर्जा लगभग 10^{-37} वाट होगी। इस स्तर की ऊर्जा का माप अभी सम्भव नहीं हो सका है। इन्हीं कारणों से अनेक उच्चकोटि के वैज्ञानिक इन तरंगों के पर्यवेक्षण की सम्भावना में विश्वास नहीं करते थे। परन्तु मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय, अमेरीका के वैज्ञानिक प्रोफेसर जोसेफ वेबर का विचार कुछ और ही था। उनका मत था कि यद्यपि प्रयोगशाला में गुरुत्व तरंग उत्पन्न करना और सुयोग्य ग्राहक यंत्र का निर्माण करना सम्भव नहीं है, फिर भी ब्रह्माण्ड में ऐसे प्राकृतिक स्रोत विद्यमान हैं जो तीव्र गुरुत्व तरंगें उत्सर्जित करते हैं। ये स्रोत तारकीय पिण्ड, सुपरनोवा, पल्सार इत्यादि हो सकते हैं।

वेबर ने जून 1969 के फिजीकल रिव्यू लेटर में गुरुत्व तरंग के आविष्कार की घोषणा कर विज्ञान जगत को आश्चर्यचकित कर दिया। प्रोफेसर वेबर ने, जो पिछले एक दशक से गुरुत्व तरंगों पर अनुसंधान कर रहे हैं, इन तरंगों को ग्रहण करने के लिए एक संयंत्र बनाया जिसे "उच्च-आवृत्ति ग्राहकयंत्र" कहते हैं। इस विशेष आवृत्ति पचास का चुनाव इसलिए किया गया क्योंकि अमेरीकी वैज्ञानिक डाक्टर एफ० जे० जीशन के अनुसार सुपरनोवा इत्यादि से इस आवृत्ति पर उत्सर्जित ऊर्जा बहुत अधिक 10^{50} अर्ग प्रति सेकण्ड होगा। इस उपकरण में मुख्य रूप से अल्यूमीनियम का डेढ़ टन भार का एक ठोस बेलन होता है, जिसके सतहों पर क्वार्ट्ज के विद्युतदाब क्रिस्टल लगे

रहते हैं। यह बेलन एक निर्वात कक्षा में लटकता रहता है। जब कोई गुरुत्व तरंग बेलन से गुजरती है तो बेलन की सतह कम्पनावस्था में आ जाती है। क्वार्ट्ज क्रिस्टल कम्पन के यांत्रिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं (इसी प्रकार का ऊर्जा रूपान्तरण फोनोग्राफ और टेप-रेकार्डर में होता है।) इनको विशेष प्रकार के इलेक्ट्रानिक संयंत्र से गुजार कर प्रवर्धित करने के बाद एक चार्ट पर रिकार्ड कर लिया जाता है। स्थानीय घटनाओं से उपकरण को प्रभावमुक्त करने के लिए इस प्रकार के दो ग्राहक यंत्र 1.6 कि०मी० की दूरी पर मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय में स्थापित किये गये। इनमें सुग्राही गैल्वेनोमीटर और नतिमापी भी लगे थे। जब बेलन कोई गुरुत्व तरंग ग्रहण करता है और यदि उसी समय गैल्वेनोमीटर और नतिमापी के पाठ में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो रिकार्ड किये गये सिगनल को एक "इवेन्ट" कहते हैं। वेबर और उनके सहयोगी ऐसे "इवेन्ट्स" का रिकार्ड 1967 के प्रारम्भ से ही कर रहे हैं परन्तु उपर्युक्त प्रयोग में गुरुत्व तरंगों का कोई चिन्ह न मिला। पर्यवेक्षण की निश्चितता बढ़ाने तथा भूतत्वीय सिगनल को ब्रह्माण्डीय सिगनल से अलग करने की दृष्टि से इसी प्रकार के कुछ ग्राहक संयंत्र मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय में तथा दूसरे इनसे 1000 कि० मी० दूर शिकागो के निकट स्थापित किये गये। दिसम्बर 1968 में प्रथम बार दोनों स्थानों पर एक ही प्रकृति के सिगनल रिकार्ड हुये। 30 दिसम्बर, 1968 और 21 मार्च, 1969 के बीच इस प्रकार के 40 "इवेन्ट" रिकार्ड किये गये। इस प्रयोग से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि दोनों स्थानों के यंत्रों द्वारा ग्रहण किये गये सिगनल गुरुत्व तरंग के है जिनका स्रोत एक ही है।

वैसे इस प्रयोग के परिणाम गुरुत्व तरंगों का अस्तित्व सिद्ध करते हैं फिर भी अभी और प्रयोगों की आवश्यकता है जो गुरुत्व ऊर्जा स्रोत को निश्चित कर सके। प्रोफेसर वेबर ने मत प्रकट किया है कि अल्यूमीनियम के बेलन के स्थान पर प्राकृतिक पिण्डों जैसे पृथ्वी या चन्द्रमा का प्रयोग किया जा सकता है। चन्द्रमा एक आदर्श ग्राहक यंत्र का कार्य कर सकता है। यदि प्रोफेसर वेबर के परिणामों की पुष्टि भविष्य के प्रयोगों से हो सके तो यह न केवल वेबर की व्यक्तिगत सफलता होगी वरन् आइन्सटीन का सापेक्षवाद सिद्धान्त और सुदृढ़ हो सकेगा। ब्रह्माण्ड सम्बन्धी हमारा ज्ञान मुख्य रूप से विद्युत चुम्बकीय तरंगों पर आश्रित है। गुरुत्व तरंग के अस्तित्व से ब्रह्माण्ड के गूढ़ रहस्यों को समझने के लिए सर्वथा नया रास्ता खुल जायेगा। हो सकता है मानव एक दिन गुरुत्व ऊर्जा का कल्याणकारी उपयोग कर सके।

● ●

लेखकों से निवेदन

- **'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।**
- **लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।**
- **अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।**

विटामिन और उनकी उपयोगिता

□ प्रवेन्द्र नाथ

विटामिनों की खोज 19 वीं शताब्दी के आस पास हुई। विभिन्न प्रकार के प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया गया कि जन्तुओं के लिये साधारण भोजन के अतरिक्त कुछ अन्य 'सहायक पदार्थ' भी आवश्यक हैं। बेरी-बेरी एवं स्कर्वी नामक रोग जो कि शताब्दियों से ज्ञात थे परन्तु उनका निवारण नहीं ज्ञात था इन सहायक पदार्थों को भोजन में मिला कर देने से ठीक हो गये। इन सहायक पदार्थों का का पता सबसे पहले हॉपकिन्स नामक वैज्ञानिक ने लगाया।

फन्क नामक वैज्ञानिक ने इन पदार्थों को विभिन्न प्राकृतिक वस्तुओं से पृथक करने का प्रयत्न किया। उसकी शुरू की खोजों में जो पदार्थ पहचान में आये वे सभी आधारभूत नाइट्रोजन से सम्पन्न थे। इसलिए उसने VITAL=जीवन सम्बन्धी+AMINE=एक नाइट्रोजन यौगिक शब्दों को जोड़कर VITAMINE नाम दिया। बाद में यह ज्ञात हुआ कि और भी इसी प्रकार के पदार्थ हैं जो कि कार्यसम हैं लेकिन वे नाइट्रोजन सम्पन्न नहीं हैं। परन्तु यह नाम इतना प्रचलित हो चुका था कि इसे बदला नहीं जा सकता, केवल अंतर के लिए अंतिम शब्द 'E' को हटा दिया गया।

इसलिए अब विटामिन उन सभी पदार्थों को सामूहिक रूप से कहते हैं जो भोजन के साथ थोड़ी और संतुलित मात्रा में प्राप्त किये जाते हैं तथा जिनकी कमी या अधिकता से विभिन्न प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। इन रोगों का निवारण क्रमशः उनको भोजन में मिला कर देने से अथवा शरीर से उनको निकालने से हो सकता है।

जंतुओं को ये मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों तथा जीवाणुओं से तथा अन्य जंतुओं से प्राप्त होते हैं। कुछ इनका शरीर में संश्लेषण भी कर सकते हैं।

बीसवीं शताब्दी के आते आते इनका ज्ञान भली प्रकार से हो गया। अब भी इन पर खोजें चल रही हैं और बहुत से पदार्थ ऐसे ज्ञात हुए हैं जो शरीर के लिए आवश्यक हैं और जिनकी कमी से विभिन्न प्रकार के रोग हो जाते हैं परन्तु उनका शारीरिक क्रियाओं में क्या योगदान है यह अभी ठीक से ज्ञात नहीं हो सका है।

शरीर द्वारा ये किस प्रकार ग्रहण किये जाते हैं इसको आधार मानकर इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया गया है :—

(i) जल में घुलनशील विटामिन

(ii) वसा में घुलनशील विटामिन

वास्तव में यह नामकरण बहुत शुद्ध नहीं है। यह केवल इसलिए दिया गया है कि वसा घुलनशील विटामिन आहार नली द्वारा प्राकृतिक वसा के साथ शोषित किये जाते हैं जबकि जल घुलनशील विटामिन स्वतंत्र रूप से शोषित किये जा सकते हैं। वसा घुलनशील समूह के प्रमुख विटामिन हैं—ए, डी, ई तथा के। जल घुलनशील समूह के प्रमुख विटमिन हैं—'सी' तथा 'बी-कॉम्पलेक्स' समूह के विटामिन।

वसा घुलनशील विटामिन समूह

अनेक भोजन सम्बन्धी खोजों में यह देखा गया है कि यदि प्राकृतिक भोजन से वसा को निकाल दिया जाय तो विभिन्न प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। वास्तव

में ये वसा घुलनशील विटामिन की कमी के कारण होते हैं। आइये प्रत्येक विटामिन के सम्बन्ध में अलग अलग विचार करें।

विटामिन ए :—चूहों को जब संश्लेषित व निर्धारित भोजन पर रक्खा गया तो अनेक प्रकार के रोग पैदा हो गये जिनमें से शारीरिक वृद्धि में कमी तथा जीरोफ्थैलमिया नामक गड़बड़ियाँ मक्खन तथा अंडे की जर्दी देने से ठीक हो गयीं। मैकालम तथा सीमन्ड्स नामक वैज्ञानिकों ने मक्खन तथा अंडे की जर्दी में पाये जाने वाले इस क्रियाशील पदार्थ को विटामिन 'ए' का नाम दिया।

बाद में यह देखा गया कि केवल यह ही नहीं वरन् अनेक पीले रंग की शाक-सब्जियों में इन रोगों को ठीक करने की क्षमता है। स्टीनबक नामक वैज्ञानिक ने यह घोषणा की कि सभी पीले रंग के खाद्य पदार्थों में कैरोटीन नामक हाइड्रोकार्बन होता है जो शरीर में चयापचित होकर विटामिन 'ए' उत्पन्न करता है।

विटामिन 'ए' की कमी से शरीरिक वृद्धि में अवरोध उत्पन्न हो जाता है तथा जीरोफ्थैलमिया नामक रोग हो जाता है। इस रोग में आँखों में मृत-ऊतकों की एक पर्त चढ़ने लगती है जो कि बढ़ते बढ़ते अँधेपन को जन्म दे सकती है। यह रोग मुख्यतः बच्चों में देखा गया है। यह 'देखने' की रासायनिक क्रिया में भी सक्रिय भाग लेता है इसलिए इसकी कमी आँखों में अनेक रोग पैदा कर देती है। आँखों की रतौंधी का भी यही कारण है। इसकी कमी से शरीर की हड्डियाँ कमजोर होने लगती हैं तथा अनेक प्रकार के चर्म रोग हो जाते हैं। इनकी अधिकता से जोड़ों में दर्द तथा सिर के बाल झड़ने लगते हैं। स्त्रियों में यह गर्भावस्था में अत्यंत आवश्यक है।

सभी प्रकार की पीली सब्जियाँ व फल तथा पत्तेदार सब्जियाँ कैरोटीन के मुख्य स्रोत हैं। विटामिन 'ए', दूध, वसा, कलेजी व गुर्दे इत्यादि से प्राप्त किया जा सकता है।

संक्षेप में, हमें अपनी आँखों की रक्षा के लिए विटामिन 'ए' की पर्याप्त मात्रा आवश्यक है।

विटामिन 'डी' :—सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में इंग्लैण्ड में बड़ा ही भयानक कोहरा पड़ा। कई महीनों तक सूर्य के दर्शन नहीं हुए। इस बीच लोगों ने यह पाया कि बच्चों की हड्डियाँ कमजोर होती जा रही हैं। इस बीमारी का नाम रिकेट्स दिया गया, लेकिन इसका कोई मूलभूत कारण न मालूम हो सका यद्यपि इसका सम्बन्ध सूर्य से लगाया गया क्योंकि पुनः सूर्य निकलने पर बीमारी ठीक होती गयी। सन् 1918 में मेलनबॉय नामक वैज्ञानिक ने खोज की कि यदि इस प्रकार के रोगियों को कॉड-लीवर-ऑयल दिया जाय तो रोग ठीक हो सकता है। तत्पश्चात् सन् 1919 में हल्डश्चिनस्की नामक वैज्ञानिक ने यह दिखाया कि रैकिटिक बच्चों के ऊपर यदि अल्ट्रा-वायलेट किरणें डाली जायँ तो रोग ठीक हो सकता है। सन् 1922 में मैकॉलम ने कॉड-लीवर-आयल के इस क्रियाशील पदार्थ को विटामिन 'डी' कहा।

अनेकों प्रकार के स्टेरॉल जो जंतुओं, वनस्पतियों व जीवाणुओं में पाये जाते हैं अल्ट्रा-वायलट किरणों से प्रभावित होकर विटामिन 'डी' का संश्लेषण करते हैं। वास्तव में विटामिन 'डी' कई क्रियाशील पदार्थों का एक मिश्रण है जो संरचना में एक दूसरे से काफी मिलते-जुलते हैं और सामूहिक रूप से रिकेट को ठीक करने में सहायक होते हैं।

इनका मुख्य कार्य कैल्शियम तथा फास्फोरस नामक खनिजों के पाचक नली द्वारा शोषण में सहायता देना है। हड्डियों का मुख्य तत्व कैल्शियम-फास्फेट है इसलिए इसकी कमी से हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं। गुर्दे द्वारा फास्फोरस का निष्कासन भी ये संचालित करते हैं। रिकेट्स में कैल्शियम व फास्फोरस का शोषण कम होता है और हड्डियाँ कमजोर होकर टेढ़ी होती जाती हैं। इनकी अधिकता से गुर्दे तथा धमनियों में घाव हो जाते हैं तथा हड्डियाँ जरूरत से ज्यादा कड़ी पड़ जाती हैं जिससे उनके टूटने का भय बना रहता है।

इनका मुख्य स्रोत मछली व मछली खाने वाले जानवरों का जिगर है। दूध व यीस्ट इत्यादि भी इसके

अच्छे स्रोत हैं।

विटामिन 'ई' :—सन् 1922 में बिशप एवं इवान्स नामक वैज्ञानिकों ने कुछ खाद्य पदार्थों में एक मूल तत्व की घोषणा की जो चूहों में नियमित प्रजनन के लिए आवश्यक हैं। बाद में इनका प्रभाव मनुष्यों पर भी देखा गया। इस तत्व का नाम विटामिन 'ई' रक्खा गया। अब तक लगभग आठ ऐसे पदार्थ ज्ञात हो चुके हैं जिनमें प्रजनन वृद्धि की क्षमता होती है। इन्हें रासायनिक भाषा में 'टोकोफेरॉल' कहते हैं। शरीर में इनका अभी तक कोई मुख्य कार्य नहीं ज्ञात हो सका है। वैसे इनकी कमी से मांसलता में कमी, प्रजनन गड़बड़ियाँ, स्टीटोरिहा इत्यादि हो सकता है। इनकी कमी से लाल-रक्त कोशिकायें भी नष्ट होना शुरू हो जाती हैं (इस प्रक्रिया को पर-ऑक्साइड-हीमोलिसिस कहते हैं)। मुख्य स्रोत हैं—दूध, अंडा, मछली, मांस, पत्ती वाली सब्जियाँ तथा अनाज।

विटामिन 'के' :—सन् 1929 में डेम नामक वैज्ञानिक ने यह देखा कि मुर्गियों को संश्लेषित व निर्धारित भोजन देने से उनके अंदर चोट लगने पर रक्त को रोकने की क्षमता जाती रही या काफी देर पश्चात् उस स्थान पर रक्त जमा और रक्त का बहना बन्द हुआ। सन् 1935 में उसने अनेकों खाद्य पदार्थों में रक्त जमाने वाले इस पदार्थ की घोषणा की तथा इसका नाम विटामिन 'के' रक्खा। बाद में ये अल्फा-अल्फा नामक वनस्पति से तथा फिश-मील से पृथक किये गये। यद्यपि इनकी संरचना में अंतर था परन्तु गुण समान थे।

इनका मुख्य कार्य है यकृत द्वारा प्रोथ्राम्बिन नामक पदार्थ के संश्लेषण में सहायता देना। प्रोथ्राम्बिन नामक पदार्थ के न होने से या कम होने से चोट लगने पर रक्त जमने का समय बढ़ जाता है जिससे रक्त की काफी हानि होती है। ये शरीर में ऑक्सीडेटिव-फास्फोराइलेशन नामक क्रिया में भी सहायक होते हैं जिसके द्वारा हमें एडीनोसीन-ट्राई-फास्फेट नामक यौगिक के रूप में ऊर्जा प्राप्त होती है।

भोजन में इसकी कमी कठिनाई से ही पैदा होती है क्योंकि ये खाद्य-पदार्थों में काफी मात्रा में मिलते हैं तथा हमारी आंत में स्थित जीवाणु इनका संश्लेषण भी करते हैं। मुख्य स्रोत हरी पत्तीदार शाक-सब्जियाँ हैं। सड़ा हुआ मांस व कुछ वनस्पतियाँ भी अच्छी स्रोत हैं क्योंकि इन पर जिवाणु काफी मात्रा में पाये जाते हैं।

जल घुलनशील विटामिन समूह

विटामिन 'सी' :—स्कर्वी नामक रोग मनुष्यों में शताब्दियों से ज्ञात था। यह देखा गया कि ताजी सब्जियाँ तथा नीबू-परिवार के फलों का रस देने पर यह रोग ठीक हो गया। जिल्वा नामक वैज्ञानिक ने स्कर्वी-निवारण पदार्थ का पता नीबू के रस में लगाया। बाद में जेंट-ग्योरगायी तथा अन्य वैज्ञानिकों की सामूहिक खोज के आधार पर इसे विटामिन 'सी' कहा गया। इसका एक बहुप्रचलित नाम 'एस्कॉरबिक-एसिड' भी है। कई जंतु इसे अपने शरीर में संश्लेषित कर सकते हैं।

इसकी कमी से स्कर्वी नामक रोग बहुतायत से हो जाता है जिसका लक्षण है—जल्दी घाव होना और उनका जल्दी ठीक न होना, दातों के चारों ओर मसूढ़ों का कमजोर होना जिसकी वजह से सूजन व दाँतों का हिलना एवं हड्डियों का जल्दी-जल्दी टूटना। इसकी कमी से कई चर्म रोग भी हो जाते हैं। वास्तव में इनकी कमी कोशिकाओं को जोड़ने वाले पदार्थ कोलैजन के संश्लेषण में बाधा उत्पन्न कर देती है जिसकी वजह से ऊतक ढीले पड़ जाते हैं। ये शरीर की हाइड्रोजन-स्थानान्तरण की कई प्रक्रियाओं में सक्रिय भाग लेते हैं।

इसके मुख्य स्रोत सिट्रस परिवार की वनस्पतियाँ व ताजे फल तथा शाक-सब्जियाँ हैं।

बी-काम्पलेक्स समूह :—पहले इन्हें एक ही विटामिन समझा जाता था क्योंकि इनकी सामूहिक कमी से बेरी-बेरी रोग का होना पाया गया था। बेरी-बेरी एक प्रकार का लकवा होती है। परन्तु बाद की खोजों द्वारा यह पता चला कि कई ऐसे पदार्थ हैं जिनकी कमी बेरी-बेरी का

जन्म देती है। वास्तव में बी-काम्पलेक्स समूह के विटामिन शरीर की प्रक्रियाओं में एक दूसरे के ऊपर इतना निर्भर रहते हैं कि एक की कमी सारे समूह में गड़बड़ी पैदा कर देती है जिसका परिणाम अनेक प्रकार के रोग हैं। इस समूह के कई विटामिन शरीर की जैव-रासायनिक क्रियाओं में सह-एन्जाइम के रूप में क्रियाशील होते हैं। इसलिए शरीर की बहुत सी चयपचय क्रियाओं के लिए ये अत्यंत आवश्यक हैं। ये संख्या में कई हैं इसलिए इनका वर्णन हम संक्षेप में करेंगे।

1. **थायमिन :** इसे सन् 1926 में जेन्सन व डोनथ नामक वैज्ञानिकों द्वारा चावल की ऊपरी पर्त से पृथक किया गया। 1939 में इसका रासायनिक संश्लेषण विलियम्स ने किया। इसमें दो फास्फोरिक एसिड के अणु संयुक्त होकर एक अत्यंत आवश्यक एवं प्रचलित थायमिन-पायरो-फास्फेट की रचना करते हैं जो शरीर की जैविक-क्रियाओं में सह-एंजाइम के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये बच्चों की शारीरिक वृद्धि के लिए आवश्यक हैं। इनकी कमी पारिधिक-तंत्रिका-तंत्र, आहार नली तथा हृदय-रक्त-नलिका संस्थान को प्रभावित करती है, जो बेरी-बेरी, एंल्कोहल-न्यूराइटिस तथा पेलैगरा-न्यूराइटिस को जन्म दे सकते हैं। इसके मुख्य स्रोत हैं-अपरिष्कृत अनाज, कलेजी, दिल, गुर्दा, तथा सुअर का माँस इत्यादि !

2. **रीबोफ्लेविन :** इसकी खोज वारबर्ग, कुह्न तथा क्रिश्चन नामक वैज्ञानिकों ने 1932 के आसपास की। इसकी उपस्थिति का प्रथम ज्ञान दूध में हुआ था। प्रकृति में सभी हरे पौधे और जीवाणु इसे संश्लेषित करते हैं। मुख्य यौगिक एफ० एम० एन० (FMN) और एफ० ए० डी० (FAD) शरीर के कई पीत-वर्ग-एंजाइम के मुख्य अंग हैं और विभिन्न हाइड्रोजन-स्थानान्तरण की क्रियाओं में सक्रिय भाग लेते हैं।

इनकी कमी से होठों में घाव व पीड़ा, चीलोसिस (मुख के कोनों का फटना), चेहरे का खुरदुरा होना, लाल-जीभ हो जाना तथा आँखों पर भी प्रभाव पड़ता है। यद्यपि यह लक्षण केवल रीबोफ्लेविन की कमी के कारण नहीं हैं फिर भी इसकी कमी ये लक्षण पैदा कर सकती है। इसके मुख्य स्रोत हैं—दूध, कलेजी, गुर्दा, अंकुरित जई, गेहूँ, जौ व मक्का के दाने तथा पीली हरी सब्जियाँ।

3. **नियासिन:** इसकी कमी पेलैगरा नामक रोग को जन्म दे सकती है। गोल्डबर्गर नामक वैज्ञानिक ने इसे पी० पी० फैक्टर (पेलैगरा-प्रिवेंटिव) का नाम दिया। पेलैगरा का अर्थ होता है खुरदरी-त्वचा का होना। इस प्रकार की बीमारी अमेरिका में अधिक व्याप्त है। इसके लक्षण हैं-त्वचा का खुरदरा होना, चकत्तों का पड़ना, तंत्रिकाओं में घाव होना, आहार नली में घाव तथा यकृत का धब्बेदार होना। यकृत से वसा भाग का नष्ट होना तथा जीभ में घाव होना भी इसकी कमी के लक्षण हैं। इसके दो मुख्य यौगिक 'सह-एंजाइम प्रथम' (NAD) व 'सह-एंजाइम द्वितीय' (NADP) शरीर की अनेक एवं मुख्यतया हाइड्रोजन-स्थानांतरण की क्रियाओं में भाग लेते हैं। इसके मुख्य स्रोत हैं : यीस्ट, कलेजी, व मुर्गियाँ। दूध, टमाटर व पत्तीदार-सब्जियाँ भी अच्छे स्रोत हैं।

4. **पैन्टोथेनिक एसिड :** यह विभिन्न प्रकार के जंतुओं, पौधों और जीवाणुओं तथा यीस्ट के लिए आवश्यक है। प्रायोगिक जन्तुओं में इसकी कमी से बहुत प्रकार के रोग हो गये इसलिए यह अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इसकी कमी मुख्यतः किस रोग को जन्म देती है। वैसे नवजात शिशु की शारीरिक वृद्धि में कमी, प्रजनन गड़बड़ी, एड्रीनल नामक ग्रन्थि के ऊतकों का नष्ट होना तथा पाचन-सम्बन्धी गड़बड़ी व डायरिया इसकी कमी के मुख्य लक्षण हैं। त्वचा का रंगहीन होना तथा उखड़ना भी इसकी कमी से होता है। लिपमैन नामक वैज्ञानिक ने इसके एक यौगिक सह-एंजाइम 'ए' का विस्तृत रूप से अध्ययन किया और घोषणा की कि यह शरीर की विभिन्न-मुख्य जैव रासायनिक क्रियाओं में सक्रिय भाग लेता है। इसके मुख्य स्रोत हैं-अंडे की जर्दी, गुर्दा, कलेजी व यीस्ट। शकरकन्द, खांड़ व मखनिया दूध भी अच्छे स्रोत हैं।

5. **विटामिन 'बी' 6 :** ये सह-एंजाइम के रूप में

अधिक क्रियाशील होते हैं। वास्तव में यह एक समूह का नाम है जो कि पिरीडीन नामक वस्तु के यौगिक हैं। सह-एंजाइम के रूप में ये अमीनो-अम्ल के चयापचय में सहायक होते हैं। मनुष्यों में इनकी कमी से विभिन्न प्रकार के रक्त-दोष उत्पन्न हो जाते हैं तथा शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है। बच्चों में इनकी कमी से मांसपेशियों का अनैच्छिक उग्र संकुचन देखा गया है। इनके मुख्य स्रोत हैं—यीस्ट, गेहूँ, मक्का, कलेजी इत्यादि। वैसे इनकी कमी कम ही देखी गयी है क्योंकि हमारी आंत में स्थित जीवाणु इनका संश्लेषण करते रहते हैं।

6. **बायटिन** : यह शुरू में जीवाणुओं की वृद्धि के लिए आवश्यक बताया गया था। बाद में, इनकी कमी से मनुष्यों में भी कुछ रोग देखे गये इसलिए इसे बी-काम्प-लेक्स समूह में सम्मिलित कर लिया गया। यह सह-एंजाइम के रूप में अधिक प्रसिद्ध है जहाँ कि यह कार्बन-डाई-ऑक्साइड के स्थिरीकरण में सहायक होता है। यह अंडे की सफेदी में पाये जाने वाले एक घातक प्रोटीन 'एविडिन' से शरीर की रक्षा भी करता है। इनकी कमी पैदा करना अत्यंत कठिन है क्योंकि आंत-स्थित जीवाणु इनका संश्लेषण करते हैं। वैसे प्रयोगात्मक परीक्षण में इनकी कमी से मांसपेशियों में दर्द, शारीरिक वृद्धि में कमी, मुख और नाक का सूजना तथा नाड़ी-संस्थान में गड़बड़ी व शरीर का काँपना इत्यादि हो सकते हैं। इसके मुख्य स्रोत हैं—अंडे की जर्दी, गुर्दा, कलेजी, टमाटर व यीस्ट।

7. **फोलिक एसिड समूह** : इनके कई यौगिक होते हैं और करीब करीब हर एक सह-एंजाइम के रूप में क्रियाशील होते हैं। जीवाणु इनका संश्लेषण करते हैं। ये शरीर की विभिन्न जैव-रासायनिक क्रियाओं में 'एक कार्बन परमाणु' के स्थानान्तरण में सहायक होते हैं। इनकी कमी शरीर में डी० एन० ए० (DNA) नामक महाअणु के संश्लेषण में बाधा उत्पन्न कर देती है तथा कोशिका-विभाजन में भी गड़बड़ी हो जाती है। अनेक प्रकार के रक्त दोष व एनीमिया, डायरिया तथा आहार नली में घाव भी इनकी कमी के कारण होते हैं। इनके स्रोत हैं-पत्तीदार-हरी सब्जियाँ, फूलगोभी, गुर्दा, कलेजी इत्यादि।

8. **लाइपोइक एसिड** : यह जीवाणुओं के भोजन सम्बन्धी परीक्षणों में पाया गया था। इसकी कमी कम ही देखी गयी है तथा कोई उल्लेखनीय रोग नहीं देखा गया। यह सहएंजाइम के रूप में अधिक प्रचलित है।

9. **विटामिन 'बी'** 12 : यह मनुष्यों में 'परनी-शियस-एनीमिया' नामक रोग के विरुद्ध क्रियाशील होता है तथा अनेकों जैव-रासायनिक क्रियाओं में सह-एंजाइम के रूप में सहायक होता है। इसकी कमी तंत्रिका-तंत्र, आहार-नली इत्यादि पर प्रभाव डालती है। शारीरिक वृद्धि रुक जाती है। इसके मुख्य स्रोत हैं-गुर्दा, जिगर, मांस, दूध, पनीर व अंडा।

10. **पैरा-ऐमीनो-बेन्जोइक-एसिड** : इन्हें बी-काम्प-लेक्स समूह में इसलिए सम्मिलित किया गया है क्योंकि जीवाणुओं में ये फोलिक-अम्ल समूह के संश्लेषण में सहायक होते हैं और हमें इन जीवाणुओं से फोलिक-अम्ल प्राप्त होता है।

11. **इनोसिटॉल**: इनका रासायनिक नाम हेक्सा-हाइड्राक्सी-साइक्लो-हेक्सेन है। केवल इसकी कमी से कोई विशेष रोग नहीं पाया गया है।

कुछ लोग 'कोलीन' नामक पदार्थ को भी विटामिन का रूप मानते हैं कारण कि वे जैविक-क्रियाओं में अत्यंत सहायक होते हैं।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि खाद्य पदार्थों के साधारण ज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है। मात्र सन्तुलित भोजन से ही हम शरीर के अनेक रोगों से स्वयं बच सकते हैं। विटामिनों के सम्बन्ध में सूक्ष्म ज्ञान हमें अनेक रोगों से मुक्ति दिला सकता है।

● ●

चन्द्रमा का पर्यवेक्षण और अनुसन्धान

□ अकादमीशियन बोरिस पेत्रोव

चन्द्रमा जो पृथ्वी का निकटतम आकाशीय पिंड और उसका शाश्वत उपग्रह है, लम्बे समय से वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित करता रहा है। न सिर्फ वैज्ञानिकों बल्कि लेखकों के लिए भी चन्द्रमा एक दिलचस्प विषय रहा है। यहाँ तक कि 17वीं सदी के मध्य में सीरेने डी बर्गेरेस ने भी अपने कल्पनाप्रधान उपन्यास "दूसरा प्रकाश" या चन्द्रमा के साम्राज्य और राज्यों के ब्रह्माण्डीय इतिहास का घटना-स्थल चन्द्रमा को ही बनाया था।

गैलीलियो गैलिली द्वारा चन्द्रमा के पर्वतों और घाटियों का अनुसन्धान किये हुए साढ़े तीन शताब्दियाँ बीत चुकी हैं। न केवल चन्द्रमा के महाद्वीप, पर्वत और "समुद्र" बल्कि उसके अग्र भाग के गर्तों और ज्वालामुखों की भी क्रमशः खोज कर ली गयी और उन सबके नामकरण भी कर लिये गये।

4 अक्तूबर, 1959 को सोवियत स्वचालित खोज यान लूना-3 चन्द्रमा के लिए रवाना हुआ। चन्द्रमा के पृष्ठ भाग के चित्र लेकर जिसे मनुष्य ने आज तक देखा नहीं था, इसने खगोलविदों के समक्ष अध्ययन और कार्य के विशाल क्षेत्र के द्वार खोल दिये। इससे प्रकृति के एक अत्यन्त गुप्त रहस्य की खोज शुरू हुई यद्यपि अब तक हमने, बहुत अधिक दूरी से चन्द्रमा का पूर्ण रूप देख लिया था।

फरवरी 1966 में सोवियत स्वचालित टोह-यान लूना-6 के टोह-यान ने अनुसन्धान के क्षेत्र में कई उपलब्धियाँ अर्जित कीं। यह एक अन्य आकाशीय पिण्ड पर बिना झटके के उतरा और इस प्रकार 20वीं शताब्दी की तकनीकी के उच्च स्तर का परिचय दिया, इसने चन्द्रमा पर जो अब पृथ्वी-वासियों के समक्ष अपने रहस्यों को प्रकट करने लगा था, पहुँचने के बारे में वैज्ञानिकों के विश्वास को बल दिया, और सबसे बड़ी बात तो यह कि इसने चन्द्रमा की सतह पर विद्यमान कई मीटर मोटी धूल की परत होने की टामस गोल्ड की उस प्राक्कल्पना को जिसके अनुसार यह कहा जाता था कि वह धूल चन्द्रमा की सतह पर उतरने वाली किसी भी चीज को "निगल" जायेगी, गलत सिद्ध कर दिया।

फिर उसी वर्ष दिसम्बर में लूना-13 चन्द्रमा पर सीधे प्रायोगिक अनुसन्धान चलान का अग्रणी बन गया। उस पर लगे यंत्रचालित भूमि मापन मीटर और विकिरण घनत्व नापने वाले मीटर ने पहले पहल चन्द्र-भूमि की बनावट और विकिरण स्थितियों के बारे में सही सूचना दी।

मानव-निर्मित चन्द्र टोह यानों-10, 11, 12, 14 और 15 द्वारा जो चन्द्रमा की निकटस्थ कक्षा, चन्द्रमा की मानव-निर्मित कक्षाओं में प्रक्षेपित की गयी, एक महत्वपूर्ण कार्य पूरा किया गया।

सितम्बर 1970 में स्वाचलित टोह यान लूना-16 की पृथ्वी-चन्द्रमा-पृथ्वी मार्ग पर सनसनीखेज उड़ान हुई। वह 12 सितम्बर को प्रक्षेपित किया गया था और 20 सितम्बर को वह चन्द्रमा के उर्वरता सागर क्षेत्र में उतरा।

चन्द्रमा की सतह पर कई पूर्व-निर्धारित वैज्ञानिक प्रयोग सम्पन्न करने के बाद उसने एक विशेष बरमा यंत्र की सहायता से विभिन्न गहराइयों से चन्द्र धरातल के नमूनों को इकट्ठा किया। बरमे ने 35 सेंटीमीटर की

गहराई तक मिट्टी खोदी जहाँ उसे कड़ी चट्टान मिली।

अब चन्द्र धरातल से पुनः उड़ान भरने की बारी थी, और यही शायद इस मिशन का सबसे कठिन काम था। टोह यान को धरती पर लौटाने के लिए यह आवश्यक था कि चन्द्रमा के स्थानीय लम्ब के अनुसार उसकी सापेक्ष स्थिति को उच्चतम सावधानी व सूक्ष्मता के साथ निर्धारित किया जाय, तत्सम्बन्धी गणनाओं को पृथ्वी पर प्रेषित किया जाय, उसकी नियंत्रण प्रणाली में, प्रत्यावर्ती राकेट के आवश्यक त्वरण वेग की सूचना भरी जाय, राकेट के प्रचालन के क्रम के सम्पूर्ण तार्किक परिपथ को पूर्ण सन्नद्धता की स्थिति में रखा जाय और इस बात को सुनिश्चित बनाया जाय कि वे अपना निर्धारित काम एकदम सटीक ढंग से करेंगे।

लूना-16 स्वचालित टोह-यान एक अवतरण मंच, मिट्टी उठाने की विधि और पृथ्वी पर लौटाए जा सकने वाले पैक सहित चन्द्रमा से पृथ्वी की ओर आने वाली एक राकेट से सज्जित था।

अवतरण मंच के यंत्र-कक्ष में संगणना, दिशासूचक और नियंत्रण के वैद्युतिक यंत्र, स्थिरीकरण और स्थिति निर्धारण प्रणालियाँ, मापन यंत्र, पावर सप्लाई स्रोत, ऊँचाई और अवतरण के समय वेग मापन के रेडियो यंत्र और डोसीमीट्रिक उपकरण सज्जित किये गये थे।

इन सभी प्रणालियों और यंत्रों का नियंत्रण एक प्रोग्राम-टाइमिंग विधि से हुआ।

अवतरण यंत्र ने चन्द्रमा से पृथ्वी पर आने वाले राकेट की प्रक्षेपण विधि का भी काम किया।

24 सितम्बर को पृथ्वी पर प्राप्त किया जाने वाला पैक ड्झेजकार्गे नगर के पास पृथ्वी पर पहुँचा और 100 ग्राम से अधिक अति मूल्यवान चन्द्र नमूनों को सुरक्षित रूप से पृथ्वी पर पहुँचा दिया।

लूना-16 के प्रक्षेपण के पाँच सप्ताह बाद 17 नम्बर 1970 को लूना-17 चन्द्रमा के लिए रवाना हुआ। इसने चन्द्र धरातल के वर्षा-सागर क्षेत्र में लूनोखोद-1 नामक रोबोट गाड़ी अथवा चन्द्र-वाहन जिसका धरती से रेडियो-नियंत्रण किया जा रहा है विश्वासपूर्वक चन्द धरातल पर घूम रहा है और टेलीमीटरिक धाराओं पर रेडियो से चन्द्र धरातल सम्बन्धी सूचनाएँ प्रेषित कर रहा है। यह चन्द्र गर्तो, गड्ढो और ऊँचाइयों आदि पर चढ़ता हुआ, अवरोधों से बचता हुआ चल रहा है। यह अपना रास्ता बदलता तथा मुड़ता भी है। इसके आठ पहिये चन्द्र धरातल पर अपने चिन्ह छोड़ रहे हैं और नवां पहिया चन्द्र गाड़ी की गति का मापन करता है।

चन्द्रमा का वातावरण चंद्र-दिवस की अवधि में 130 डिग्री सेंटीग्रेड और चंद्र-रात्रि की अवधि में शून्य से 130 डिग्री सेंटीग्रेड नीचे तक पहुँच जाता हैं। चंद्र-गाड़ी इस वातावरण से विश्वसनीय रूप से अप्रभावित रहती है और इसकी लघु प्रयोगशाला व्यापक अनुसंधान चलाती है। वातावरण के तापमान से अलग, इसके यंत्र-कक्ष में 15-20 सेंटीग्रेड का तापमान और करीब 750 मिली मीटर का दाब कायम रखा जाता है। रेडियो-ट्रांसमीटर का दिशा निर्देशक एन्टेना "पृथ्वी-चन्द्रमा" रेडियो-सेतु का ठीक-ठीक संचालन सुनिश्चित बनाता है। यह चंद्र-वाहन की सभी प्रणालियों के कार्य और चतुर्दिक दृश्यावलि तथा वातावरण की भौतिक बनावट के बारे में सूचनाएँ प्रेषित करता है। यह सारी सूचना इस अद्वितीय वाहन के डिजाइन-कर्ताओं और इसके चालक-दल के लिए जो इस रेडियो संकेतों द्वारा चन्द्र धरातल पर चला रहा है, अत्यावश्यक है। स्मरणीय है कि रेडियो सम्पर्क सेतु 400,000 किलोमीटर लम्बा है।

प्रथम सोवियत रोबोट गाड़ी की यात्रा और इसके अनुसंधान उपकरणों का कार्य चन्द्र अनुसन्धान के क्षेत्र में गुणात्मक रूप से एक नितांत नया चरण है। पहले कदम सदा कठिन होते हैं और चन्द्र मार्ग का पहला किलोमीटर भी किसी प्रकार सरल नहीं था। फिर भी इस यान के चालक दल, वैज्ञानिकों और डिजाइनकर्ताओं ने अमूल्य अनुभव प्राप्त किये और इसने जो अनुसन्धान-सूचनाएँ उपलब्ध कीं वे अति-संभावनापूर्ण आशाएँ जगाती हैं।

अपने बड़े भाइयों—ल्यूनिकों द्वारा शुरू किये गये

कार्य के उत्तराधिकारी के रूप में अन्तरिक्ष रोबोट अपने निर्धारित कार्य को भली-भाँति सम्पन्न कर रहा है।

सोवियत संघ एवं अमरीका दोनों के कार्यक्रमों के अन्तर्गत चन्द्र अनुसन्धान एवं अन्वेषण के व्यापक कार्यक्रम इन 11 वर्षों में चलाये गये हैं और यद्यपि कई विशेषज्ञ यह सोचते हैं कि परिणामों ने पुराने प्रश्नों के उत्तरों से कहीं अधिक नये प्रश्न उभारे हैं, मैं उनसे सहमत नहीं हो सकता। यह अवश्य है कि चन्द्रमा की उत्पत्ति तथा आन्तरिक ढाँचे की समस्या का हल अभी दूर है किन्तु चन्द्र सतह के भौतिक गुणों तथा रासायनिक रचना, चन्द्रमा एवं उसके निकटअन्तरिक्ष की भौतिक दशा और भौगोलिक या चन्द्र-भौगोलिक तथा चन्द्रकीय अनुसंधान का भविष्य में होने वाले अध्ययन के लिये इन परिणामों का महत्व कभी कम करके नहीं आँका जा सकता।

चन्द्रमा पर होने वाले विभिन्न प्रकार की तकनीकी और प्राणिशास्त्रीय प्रयोग और इसकी चहुँमुखी खोजबीन भी बहुत रोचक है। सोवियत वैज्ञानिक स्वचालित सुविधाओं को बहुत महत्व देते हैं जिसकी संभावनायें अनवरत बढ़ रही हैं।

अतः दूसरे नक्षत्रों की सतह पर चल सकने में तथा किये गये परीक्षण का परिणाम पृथ्वी पर पहुँचाने में समर्थ, स्वचालित सुविधाओं से युक्त लूना-16 और लूना-17 के स्वचालित-परीक्षण और मण्डल के नक्षत्रों के अध्ययन के लिये मदद देने वाले नवीन उपकरण हैं। चलती फिरती प्रयोगशाला लूनोखोद-1 द्वारा किये गये अनुसन्धान तथा एक स्वचालित टोह-यान द्वारा चन्द्रभूमि के नमूनों की प्राप्ति स्वचालित सुविधाओं के श्रेष्ठ उदाहरण है।

निकट भविष्य के लिए, सूर्य, नक्षत्रों, चन्द्रमा, अन्तर्ग्रह-माध्यम तथा पृथ्वी के निकट अन्तरिक्ष के भौतिक गुणों में अनुसंधान को जारी रखना और बढ़ाना, सोवियत अन्तरिक्ष कार्यक्रम के अन्तर्गत निर्धारित कार्य हैं।

सोवियत वैज्ञानिक सफलतापूर्वक स्वचालित यंत्रों के लिए तकनीकी सुविधाओं तथा सिद्धान्त का विकास कर रहे हैं तथा वर्तमान ब्रह्माण्ड विज्ञान की मूल समस्याओं को प्रभावकारी रूप से हल करने के लिए नये रास्ते और तरीके ढूँढ रहे हैं।

सीधे अन्तरिक्ष का अध्ययन मुश्किल से 15 वर्ष पहले आरम्भ हुआ तथा विश्व के रहस्यों को समझने के लिये, इस अध्ययन-जनित सम्पूर्ण वैज्ञानिक एवं क्रियात्मक परिणामों को पहले से देख पाना अभी कठिन है। जैसा कि हम अनुभव करते हैं, अन्तरिक्ष अनुसन्धान कई आविष्कारों की ओर ले जाता है तथा हमारे सौर-मण्डल और अन्तरिक्ष के ढाँचे के बारे में वर्तमान विचारों को सुदृढ़ रूप से बढ़ाता तथा कभी-कभी उनमें आमूल परिवर्तन करता है।

अन्तरिक्ष अनुसन्धान तथा अन्वेक्षण का एक व्यापक कार्यक्रम बनाना बहुत ही आवश्यक है और स्वचालित उपकरण इस समस्या को बहुत सफलता से हल कर रहे हैं। ये वे उपकरण हैं जो गहन सैद्धान्तिक विचारों के लिए निरन्तर बहुमूल्य वैज्ञानिक जानकारी, प्राथमिक स्थिति-निर्धारण, विस्तृत वैज्ञानिक ज्ञान तथा आँकड़े उपलब्ध कराते हैं।

कई सौ डिग्री तापमान का अन्तर, सैकड़ों वायुमण्डलीय दबाव तथा ब्रह्माण्डीय वायु शून्यता और लाखों किलोमीटर की दूरी पार करना, जो मनुष्य के लिये नितान्त कठिन है, ऐसी दशाओं में कार्य करने में सक्षम "निपुण" रोबेट —वही अकेले अज्ञात में मनुष्य का पथ बना सकते हैं।

● ●

पुस्तक समीक्षा

1. **विज्ञान प्रगति**: दिसम्बर1970-जनवरी 1971: खाद्य और पोषण विशेषांक, पृष्ठ संख्या 429-615=186, मूल्य 50 पैसे

प्रकाशक : वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली।

न केवल जीने के लिये भोजन चाहिए वरन् सोचने-विचारने के लिये भी भोजन चाहिए। सभी देशों के वासी भोजन की आवश्यकता एवं उसकी उपयोगिता से परिचित हैं। उन्होंने अपनी रुचि के आधार पर भोजन-प्रवृत्तियों का आविष्कार भी किया है जिसके फलस्वरूप शाकाहारी और मांसाहारी—ये दो प्रमुख सामूहिक प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या ये प्रवृत्तियाँ वैज्ञानिक दृष्टि से सभी प्रकार से पूर्ण एवं सन्तोषजनक हैं ? और यदि नहीं तो उनमें क्या सुधार लाने होंगे ?

'विज्ञान प्रगति' ने इस विशेषांक को प्रकाशित करके पाठकों को सोचने तथा जागरुक होने की दिशा में प्रेरित किया है। पोषण की समस्या खाद्यमोर्चे पर विजय, खाद्यों का भंडारन, परिरक्षण और उपचार, स्वास्थ्य और पोषक भोजन, भोजन खाइये विष नहीं, खाद्य और पोषण अनुसन्धान संस्थायें तथा विविध स्तम्भों के अन्तर्गत 40 से अधिक विचारपूर्ण लेखों को स्थान देकर सम्पादकों ने न केवल पूर्व आयोजना का वरन् देश के भीतर खाद्य और पोषण के प्रति बौद्धिक जागरूकता का परिचय दिया है। इन लेखों के लेखकों में से कई लब्ध प्रतिष्ठ शोधकर्ता एवं वैज्ञानिक भी हैं। हिन्दी के माध्यम से शायद पहली बार इतनी वैज्ञानिक सामग्री एक साथ प्रकाश में आई है

आकर्षक मुख चित्र, सुन्दर छपाई, चित्रों की बहुलता के साथ साथ लेखकों के सचित्र परिचय सम्मिलित होने के कारण इस विशेषांक में चार चाँद लग गये हैं।

अन्त में यह इंगित करना परम कर्तव्य होगा कि ऐसे विशेषांक में प्रासंगिक चित्रों को ही स्थान देना चाहिए था, स्थान बचाने के लिये और महीन टाइप का प्रयोग करना चाहिए था तथा उच्चस्तरीय सामग्री को दृष्टि में रखते हुये छापे की भूलों को कम से कम होना चाहिए था। फिर भी इतने बड़े अंक में ऐसी कमियों का रह जाना स्वाभाविक है।

यह विशेषांक सारगर्भित सामग्री से पूर्ण होने के कारण संग्रहणीय, पठनीय एवं प्रशंसनीय है।

2. **खेती** : जनवरी 1971, संतुलित उर्वरक, **प्रकाशक**-भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली, मूल्य 60 पैसे, पृष्ठ संख्या 44.

इस किसानोपयोगी पत्रिका में उर्वरकों के उपयोग एवं तत्सम्बन्धी नवीन तथ्य पर विशेष सूचना प्रस्तुत की गई है। इसके लिये कृषि विज्ञान के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त अनेक विद्वानों के लेख प्राप्त किये गये हैं। उन्हें चित्रों से सज्जित करने के प्रयास भी हुए हैं। मुख पृष्ठ अत्यन्त आकर्षक बन सका है। ऐसे आवरण-सज्जा एवं सामग्री के लिये सम्पादक बधाई के पात्र हैं। अब तो ऐसा प्रतीत होने लगा है कि हिन्दी पत्रकारिता क्षेत्र में विज्ञान पत्रिकायें प्रमुख स्थान ले रही हैं। हाँ, अभी प्रेस अपना दायित्व नहीं निभा पा रहे। 'खेती' में भी छापे की अनेक भूलें मिल जावेंगी।

3. **मिट्टियाँ—उष्णकटिबन्धीय एशिया में उनका रसायन तथा उर्वरता**-मूल लेखक-ताम्हणे, मोतीरमानी, बाली तथा डोनाहू। हिन्दी अनुवादक-टी० पी० पाठक,

प्रकाशक-प्रेंटिसहाल आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड। पृष्ठ संख्या 448, मूल्य 15·00 रु०। प्रथम संस्करण 1970।

भारत में मृदा विज्ञान की प्रगति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस समय भारतीय लेखकों द्वारा लिखित इस विषय पर दर्जनों पुस्तकें उपलब्ध हैं। ये मुख्यतया अंग्रेजी में हैं। कुछ पुस्तकें हिन्दी में भी प्राप्त हैं किन्तु अभी तक अधिकांश अंग्रेंजी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था।

प्रस्तुत पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा लिखित पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी पुस्तक का मुख पृष्ठ, सम्पूर्ण सज्जा, छपाई आदि अत्यन्त मनोहारी हैं। अनूदक भी हिन्दी तथा विज्ञान दोनों का विद्वान है अतः आशा यही करनी चाहिए कि हिन्दी अनुवाद के साथ न्याय बरता गया होगा। मूल पुस्तक की भाँति अनूदित कृति में सामग्री का विभाजन तद्‌तद्‌ अध्यायों में हुआ है। अन्त में परिशिष्ट क में वर्णक्रमानुसार परिभाषायें दी गई हैं। शायद हिन्दी में प्रकाशित वैज्ञानिक कृति की यह पहली विशिष्टता कही जा सकती है, भले ही अंग्रेजी पुस्तकों में यह आम शैली रही हो। अनूदक ने सबसे अन्त में अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली देकर पाठकों के लिये महान उपकार किया है।

अनुवाद के सम्बन्ध में कुछ भूलभूत सिद्धान्तों की चर्चा आवश्यक है। अनूदक ने यत्र-तत्र हिन्दी शब्दों के साथ कोष्ठक में अंग्रेजी शब्द भी दे दिये हैं। सन्दर्भ या निर्देश को अंग्रेजी में ही रहने दिया है। भाषा के सम्बन्ध में हर अनूदक की अपनी शैली होती है। इस पुस्तक में मध्यम मार्ग का अनुसरण हुआ है। न वह पंडिताऊ है और न एकदम सरल ही। विषय के अनुसार भाषा तथा शैली करवटें लेती हैं।

इस अनुवाद में कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं—जैसे

1. उच्चारण सम्बन्धी—एकही शब्द कई स्थानों पर भिन्न भिन्न रूप में प्राप्त है—उदाहरणार्थ—मोलिब्डीनम (पृ० 219), मोलब्डिनम (166), मोलिब्डिनम (260), तथा मोलिब्डेनम (4)—इस वर्ग की त्रुटियों की संख्या काफी बड़ी जान पड़ती है।

2. पारिभाषिक शब्दावली—घोल, रवा तथा ताप-क्रम, जो अब बिल्कुल ही ग्राह्य नहीं है, उन्हें प्रश्रय दिया गया है।

3. अंग्रेजी शब्द—सैंपिल (पृ० 104), ब्लैंक (335), जनरा (पृ० 218,) नोट आदि का इसी रूप में प्रयोग

4. निर्देश—कई निर्देशों में लेखकों के नाम अशुद्ध छपे हैं।

अभी भी पौंड। एकड़ का इस्तेमाल शोच्य है। दिन प्रतिदिन अनुवादकों की जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है। हिन्दी को विज्ञान की भाषा बनाने में उनका सबसे बड़ा हाथ है अतः सभी प्रकार की त्रुटियों के निराकरण का प्रयत्न होना चाहिए।

प्रस्तुत कृति हिन्दी में छप जाने से विश्वविद्यालय के कृषि छात्रों के लिये बहुमूल्य पाठ्य पुस्तक सिद्ध होगी—इसमें सन्देह नहीं। यह संग्रहणीय है।

नया नियोग

अमरीका की टाइलर क्लिनिक के अनुसार अमेरिका में दर्जनों डाक्टर कृत्रिम गर्भाधान का धंधा पिछले अनेक वर्षों से कर रहे हैं। इसमें बीस डालर पर विद्यार्थियों से या जो भी देना चाहे वीर्य लिया जाता है । वे क्लिनिक में जाकर वीर्य दे आते हैं और स्त्रियाँ जाकर संचित वीर्य कोष में से वीर्यरोपण करा आती हैं । मिशिगन विश्वविद्यालय के प्रजनन-विज्ञान के शोध संस्थान का कहना है कि केवल उन्होंने ही लगभग 600 बच्चों को दान दिये गये वीर्य से उत्पन्न किया । इस प्रक्रिया को वे वीर्यदाताओं द्वारा प्रदत्त कृत्रिम गर्भाधान के नाम से पुकारते हैं ।

अमरीका में अनेक वीर्य कोष हैं जिनमें वीर्य को लम्बी अवधि तक संरक्षित करने का प्रबन्ध है—ठीक वैसे ही जैसे रक्त कोषों में । किन्हीं किन्हीं क्लिनिक में प्रतिदिन दस गर्भाधान कराये जाते हैं ।

सामान्यतः गर्भाधान न होने के दो कारण हैं—वीर्य का गाढ़ापन और शुक्राणुओं की संख्या में कमी । कृत्रिम गर्भाधान में इन दोनों पर विजय प्राप्त कर ली गई है।

कृत्रिम गर्भाधान पशुओं में बहुत पहले से होता आया है किन्तु मनुष्यों में इसका प्रचलन आश्चर्यमय है । अमरीकी धर्म चिन्तक फादर फाइलैस इसके विरोधी हैं । वे इसे पर-पुरुष द्वारा स्त्री संभोग के तुल्य मानते हैं । वे स्वयं पति के वीर्य से अपनी पत्नी के कृत्रिम गर्भाधान को वैध मानते हैं ।

कहते हैं कि डाक्टर ऐसी स्त्रियों का नाम बताने को तैयार नहीं जो कृत्रिम गर्भाधान कराती हैं किन्तु सर्वेक्षण के आधार पर यह पता चला है कि गर्भाधान कराने वाले अधिकांश दम्पतियों का वैवाहिक जीवन सुखी रहा है ।

यद्यपि कृत्रिम गर्भाधान कभी भी बाजारू चीज नहीं होने को है किन्तु भविष्य में समझदार पति अपने शुक्राणुओं की जाँच कराकर स्वस्थ और सुघर शुकाणुओं को ही ही आरोपित कराना उचित समझेंगे ताकि जो सन्तान उत्पन्न हो वह स्वस्थ हो । लेकिन यह आवश्यक नही । शायद ग्रीक चिन्तकों की यह ऊहा कि सन्तान पैदा करने का भार केवल श्रेष्ठ और प्रतिभासम्पन्न लोग करें, इस शताब्दी के अन्त तक चरितार्थ होने लगे ।

विज्ञान-वार्ता

हरित क्रान्ति के क्षेत्र में एक और कड़ा कदम

अधिक उपज देने वाले गेहूँ का विकास करके कृषि जगत को एक नई दिशा प्रदान करने वाले अमेरिका के कृषि वैज्ञानिक डा० बोर्लो का कहना है कि वे मक्के की एक अत्यधिक लाइसिन युक्त किस्म का विकास करने में सफल हुये हैं जो उन लोगों के स्वास्थ्य सुधार में सहायक होगी जो प्रोटीन के लिये केवल अन्न और दालें ही खाते हैं। उनका कहना है इस किस्म से किसान अधिक उपज प्राप्त कर सकेगा। इस किस्म में किसी किस्म की बीमारी एवं कीड़ा नहीं लगेगा। अनुमान किया जाता है कि दो या तीन एकड़ में खेती करके जीविकोपार्जन करने वाले किसान के परिवार के भोजन में इस नई किस्म के माध्यम से प्रोटीन की मात्रा में बहुत अधिक वृद्धि हो सकेगी।

एच० जी० एच०

मानव शरीर में उत्पन्न होने वाली अनेक विषमताओं एवं रोगों का अध्ययन एवं उनके नियंत्रण के लिये वैज्ञानिक कृत्रिम रासायनिक तत्वों के उत्पादन का प्रयत्न कर रहे हैं। ये ऐसे तत्व हैं जो मानव शरीर में उत्पन्न होते रहते हैं। कृत्रिम पदार्थों की बढ़ती हुई सूची में अब अमेरिकी वैज्ञानिकों ने "एच० जी० एच०" नामक रासायनिक तत्व सम्मिलित कर दिया है। इस तत्व के द्वारा मानव शरीर की लम्बाई एवं मोटाई को नियंत्रित किया जा सकता है। शरीर आहार के कुछ अंशों का कैसे प्रयोग करता है इसका नियंत्रण इसी के द्वारा होता है। यह शरीर के ऐसे अन्य महत्वपूर्ण कार्यों का नियमन करता है, जो मनुष्य के शरीर में कैंसर के विकास में योग दे सकते हैं।

कृत्रिम एच० जी० एच० के उपलब्ध हो जाने से अब अनुसन्धानकर्त्ताओं को कार्य करने में बाधा नहीं होगी। पहले इन्हें एच० जी० एच० की उस थोड़ी सी मात्रा पर निर्भर रहना पड़ता था जो मृत शरीर से निकाली जाती थी। इस प्रकार अब शीघ्र ही यह पता लगाया जा सकेगा किन कारणों से मनुष्य बौने या असाधारण रूप से लम्बे होते हैं। वैज्ञानिक यह भी पता लगा सकेंगे कि मनुष्य या अन्य प्राणी क्यों एक निश्चित लम्बाई तक बढ़ते हैं और उसके बाद उनकी वृद्धि रुक जाती है। असाधारण रूप से मोटे या पतले होने के रहस्य का भी पता लगाया जा सकेगा।

एच० जी० एच० उन ज्ञात 10 रासायनिक तत्वों में से एक है जो कफ सम्बन्धी ग्रंथि के सामने के भाग से निकाले जाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कफ सम्बन्धी ग्रंथि चयापचय सम्बन्धी रोगों तथा कैंसर आदि रोगों के रोकने में सहायता करती है। इस ग्रंथि और इससे पैदा होने वाले तत्वों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने पर इन समस्त रोगों के उपचार के सम्बन्ध में नई-नई बाते मालूम हो सकेंगी।

सम्पादकीय

अन्तराष्ट्रीय भूमि उर्वरता विचार गोष्ठी

9 फरवरी से 14 फरवरी 1971 तक दिल्ली में 'विज्ञान भवन' में विश्व भर के 500 से अधिक मृदा वैज्ञानिक एवं शस्य वैज्ञानिकों ने मिलकर भूमि उर्वरता सम्बन्धी विविध पक्षों पर शोध निबन्ध पढ़ा और अन्त में सामूहिक प्रस्ताव द्वारा वैज्ञानिकों का ध्यान विश्व की मिट्टियों में व्याप्त जिंक (यशद) न्यूनता की ओर आकृष्ट किया। यह विचार गोष्ठी पहली अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी है जिसके लिए भारत को चुना गया। इस गोष्ठी के आयोजन में भारतीय मृदा विज्ञान तथा शस्य विज्ञान समितियों के अतिरिक्त भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् ने सक्रिय भाग लिया। इस गोष्ठी में विदेशों के लगभग 100 और देश के लगभग 500 वैज्ञानिक उपस्थित थे। अस्ट्रेलिया, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, मिश्र आदि देशों के मूर्धन्य मृद्रा एवं शस्य विज्ञान विशेषज्ञों ने इस गोष्ठी में भाग लिया। इस अवसर पर एक सौ से अधिक शोध निबन्ध पढ़े गये।

गोष्ठी की सफलता इसी बात से आँकी जा सकती है कि संयोजकों ने इस अवसर पर कई सौ पृष्ठों का उपयोगी साहित्य तैयार कराकर वितरित किया जिससे देश में हुई वैज्ञानिक प्रगति की झाँकी प्रस्तुत होती है।

इस अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि देश के वैज्ञानिक परस्पर मिलजुल सके, अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर सके और विदेशों में होने वाली प्रगति से अवगत हो सके।

इस अवसर पर जितने शोध निबन्ध पढे गये, वे यद्यपि कई विभागों से सम्बन्धित थे किन्तु भूमि सर्वेक्षण, फास्फेट उर्वरकों का प्रयोग और सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की उपलब्धि—ये तीन विषय प्रमुख थे। निबन्धों के पढ़ने के बाद जो विचार-विमर्श हुआ वह अत्यतन्त विचारोत्तेजक एवं सारगर्भित था। यद्यपि इन समस्त निबन्धों को पहले से प्रकाशित करने का आयोजन हुआ था किन्तु प्रेस में किंचित कठिनाइयों के कारण वे छप कर वितरित नहीं हो पाये अन्यथा प्रश्नकर्ताओं को और भी सुविधा हुई होती।

'विज्ञान भवन' दिल्ली में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं के लिये महत्वपूर्ण स्थान है। इस विचार गोष्ठी का उद्घाटन से लेकर समापन-समारोह तक का पूरा कार्यक्रम इसी भवन में सम्पन्न हुआ। किन्तु एक अभाव जो लगातार खटकता रहा वह था स्लाइड प्रदर्शन एवं श्यामपट्ट की समुचित व्यवस्था का न हो पाना। ऐसी गोष्ठियों में इन दोनों का अभाव खलने वाला बन जाता है। दूर-दूर बैठे लोगों को पट पर प्रक्षेपित स्लाइडों के अक्षर नहीं दीख पाते थे और जब किसी को कुछ लिखना होता तो उसे निराश होना पड़ता था। शायद इसकी पूर्व कल्पना नहीं की जा सकी थी अन्यथा पूरा का पूरा कार्यक्रम नितान्त सफल हुआ होता।

दिल्ली महानगरी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का संगम-स्थल है। किन्तु उसकी विशाल दूरियाँ जनसाधारण को बौखला देने वाली हैं। सम्भवतः भारतीय प्रतिनिधियों के लिये यह कठिनाई विशेष रूप से उपस्थित हुई हो। अन्यथा विदेशी वैज्ञानिकों के सुख-सुपास का पूरा ध्यान रखा गया था।

भारत विज्ञान की विविध शाखाओं में प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। मृदा विज्ञान और मृद्रा रसायन वे नव विकसित शाखायें हैं जिन पर महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। इस अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी के द्वारा भारतीय

कार्यकर्ताओं को अपनी शोधों को सुसंयोजित बनाने और उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समझने-समझाने का यह अपूर्व अवसर सिद्ध हुआ है।

हमारा देश अत्यन्त विशाल है। कन्या कुमारी से कश्मीर तक विविध प्रकार की जलवायु एवं मिट्टियाँ हैं। "हरित क्रान्ति" के प्रवर्तन से नित नई-नई समस्यायें प्रकट हो रही हैं। देश के वैज्ञानिक इनके प्रति जागरूक हैं और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होड लेने में सक्षम हैं, इस गोष्ठी से यह स्पष्ट लक्षित हो गया है।

हम संक्रांति काल से गुजर रहे हैं। यदि नाना प्रकार की समस्यायें हमारे पथ को रोक कर खड़ी हो जायें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। प्रबुद्ध वैज्ञानिक कठिनाइयों के बीच भी मार्ग बनाने में शतत प्रयत्नशील हैं। विदेशों से उनके सम्पर्क स्थापित हो जाने से पथ में आगे बढ़ने में उन्हें सहायता ही मिलेगी।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० |3|5|

भाग 108	फाल्गुन 2027 विक्र०, 1892 शक फरवरी 1971	संख्या 2

चन्द्र ज्ञान से चन्द्र यान तक

□ डा० अशोक शर्मा

रात्रि में गगन की सर्वाधिक आकर्षक तथा महत्वपूर्ण निधि, चन्द्रमा ने मानव की कल्पना-तरंगों को सर्वदा उद्वेलित किया है। चन्द्रमा की अद्वितीय एवं अनुपमेय सुन्दरता ने, जो कि उसके मुख मंडल पर विद्यमान काले विन्दुओं से और भी मुखरित हो उठती है, सदियों से मानव-मात्र के हृदय को प्रणय एवं रोमाँच की भावनाओं से ओत-प्रोत किया है। फलतः चन्द्रमा के प्रति कुतूहलमयी भावनाओं से प्रेरित मानव उसके रहस्योद्घाटन के लिये सतत प्रयत्नशील रहा है। चन्द्रमा की प्रत्यक्ष गति का अध्ययन सहस्त्रों वर्ष पूर्व से किया जाता रहा है और एक चन्द्र मास की अवधि का ज्ञान प्राचीन काल से ही भारतीय, चीनी तथा बेबीलोनिया के वैज्ञानिकों को था। याप्ले ने सन् 1959 में राडार द्वारा चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच की दूरी 3,84,402$\pm$1 कि० मी० निकाली। चन्द्रमा का कोणीय व्यास प्राचीन समय से ही ज्ञात था। पृथ्वी को केन्द्र मानकर निकाला गया चन्द्रमा का प्रत्यक्ष कोणीय व्यास 1865·2" पाया गया, जो कि 204·8" के मान से पृथ्वी से इसकी न्यूनतम से महत्तम दूरी के बीच बदलता रहता है। चन्द्रमा की मध्यमान दूरी से उसका व्यास 1738 कि० मी० निकाला गया है। यह मान पृथ्वी के एक चौथाई से कुछ अधिक होता है। चन्द्रमा की पृथ्वी से दूरी तथा व्यास के ज्ञान के बाद उसकी दूसरी प्रमुख गणना उसकी संहति है जो कि पृथ्वी की कक्षीय या अक्षीय गति पर उसके प्रभाव द्वारा ज्ञात की जा सकती है। 1963-65 में अन्तरिक्ष यानों के प्रक्षेप्यपथ पर पड़ने वाले चन्द्रमा के प्रभाव की गणना द्वारा उसकी संहति का शुद्धतम मान ज्ञात किया जो कि $7·35 \times 10^{25}$ ग्राम या 73 ट्रिलियन टन आया। पृथ्वी तथा चन्द्रमा की संहतियों का अनुपात 81·3 है। अतः हम संक्षेप में कह सकते हैं कि चन्द्रमा लगभग एक गोलीय पिण्ड है जिसकी पृथ्वी से मध्यमान दूरी तीन लाख चौरासी हजार चार सौ किलो मीटर, व्यास 1738 किलोमीटर और संहति लगभग 73 ट्रिलियन

टन है। उपर्युक्त तथ्यों का उपयोग करके हम चन्द्रमा का मध्यमान घनत्व और पलायन वेग (जो कि क्रमश: 3.34 ग्राम/से०मी०^3 और 2·38 कि०मी०/सेकेन्ड है) निकाल सकते हैं। तुलना के लिये पृथ्वी का मध्यमान घनत्व 5·54 ग्राम/से० मी०^3 और पलायन वेग 11·2 कि० मी०/सेकण्ड है। चन्द्रमा पर गुरुत्वीय त्वरण 162 से० मी०/से०^2 तथा पृथ्वी पर गुरुत्वीय त्वरण 980 से० मी०/से०^2 है। गुरुत्वाकर्षणीय खिंचाव कम होने के कारण किसी वस्तु का चन्द्रमा पर भार पृथ्वी पर उस वस्तु के भार के $\frac{1}{6}$ से कुछ कम होता है।

चन्द्रमा की गति का ज्ञान आँख द्वारा (बिना दूरदर्शी) सदियों पहले कर लिया गया था। आधुनिक उपकरण चन्द्रगति के सूक्ष्म ज्ञान के लिये आवश्यक अवश्य रहे हैं किन्तु उनसे चन्द्रमा की गति की नवीन विशेषता या विचित्रता सिद्ध नहीं की जा सकी। सत्रहवीं शताब्दी के अंत में कौसिनी ने चन्द्रमा की गति के तीन निम्नलिखित अनुभूत नियमों को बताया:

(1) चन्द्रमा की कक्षीय तथा अक्षीय गति के आवर्त-काल लगभग समान हैं। ब्रान्वियेविज (1950) ने बताया कि दोनों आवर्तकाल 0·1 सेकेन्ड की त्रुटि तक बराबर हैं। परिणाम स्वरूप चन्द्र–तल का एक भाग ही सदैव पृथ्वी की ओर रहता है और दूसरी ओर का तल पृथ्वी से कभी दिखायी नहीं देता।

(2) पृथ्वी की कक्षा से चन्द्रमा की अक्ष का झुकाव स्थिर है।

(3) चन्द्रमा की घूर्णन अक्ष, क्रान्तिवृत और चन्द्र कक्षा के ध्रुव एक ही तल में हैं।

चन्द्र कक्षा लगभग दीर्घवृत्तीय है जो कि उसके आकार में होने वाले लगभग 10% अन्तर के लिये उत्तरदायी है। चन्द्रमा की गति मुख्यतः चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच लगने वाले गुरुत्वाकर्षणीय बल पर निर्भर करती है, परन्तु उसकी गति पर अन्य ग्रहों तथा सूर्य के आकर्षण का भी प्रभाव पड़ता है। न्यूटन ने 1687 ई० में चन्द्र गति के मुख्य दो-गुणों और विशेषताओं का निरूपण किया था। 1780 ई० में लैगरेंज ने इसकी विस्तृत रूप से व्याख्या की। कहे हुये तथ्यों में से अधिकतर बिना दूरदर्शी की सहायता के प्राप्त किये जा सकते हैं।

दूरदर्शी द्वारा निरीक्षण

गैलीलियो ने 1609-10 की शिशिर ऋतु में सर्व प्रथम अपने दूरदर्शी से चन्द्रमा को देखा। चन्द्र-ज्ञान के इतिहास का यह एक स्वर्णिम दिन ही नहीं था अपितु आधुनिक नक्षत्र विद्या के उदय का भी दिन था। उस दिन से फिर न जाने कितने ही मनुष्यों ने चन्द्रमा की मन मोहक सुन्दरता का निरीक्षण किया। दूरदर्शी के द्वारा जब कोई व्यक्ति चन्द्रमा को देखता है तो उसे आश्चर्य होता है कि चन्द्रमा में बैठी सूत कातती बुढ़िया (भारतीय लोकोक्ति) या पुराना चोर (जर्मन या पालीनेशियन लोकोक्ति) नहीं दिखायी देते बल्कि एक विशाल, पहाड़ों और खड्डों से भरा स्थान दृष्टिगोचर होता है। चन्द्र-तल स्पष्टतया दो प्रकार की सतहों में विभक्त है इनमें से एक चमकदार ऊंचे भूखण्ड तथा दूसरा समतल मैदान है। इन भूखण्डों को गम्भीरता के समुद्र और शाँति के समुद्र जैसे नाम दिये गये हैं। इनमें से शाँति के समुद्र पर ही नील एम्सट्राँग नामक प्रथम मानव ने अपने चरण रखे। प्रकाशीय दूरदर्शी यंत्रों की उन्नति के साथ-साथ चन्द्रमा का अधिक सूक्ष्म निरीक्षण भी सम्भव होता गया तथा चन्द्रतल के मानचित्र तैयार किये जाने लगे। चन्द्रमा के अधिक अच्छे मानचित्रों को अमेरिका में काइपर और उनके साथियों ने दूरदर्शीय निरीक्षण द्वारा तैयार किया और उसमें 1 कि० मी० तक का तलीय पृथक्करण अंकित करने में सफल हुये। 7 अक्टूबर 1959 को चन्द्रयान ल्यूना-3 द्वारा जो 4 अक्टूबर को प्रक्षेपित किया गया था, मनुष्य ने चन्द्रमा के अदृश्य तल का भी चित्र लेने में सफलता प्राप्त की। यह भी चन्द्र-ज्ञान के इतिहास का एक महत्वपूर्ण चरण था। यह विलक्षण अभियान 31 जुलाई 1964 को अमेरिका ने रेन्जर-7 को भेजकर दुहराया। रेन्जर-7 ने मेयर न्यूबियम पर उतरने के बाद चन्द्रतल के लगभग 4000 चित्र भेजे।

इसके बाद रेन्जर-8 और रेन्जर-9 क्रमशः शाँति के समुद्र और अल्फोन्सिस चोटी के पास (20 फरवरी 1965 को) उतरे तथा इस प्रकार रेन्जर कार्यक्रम द्वारा कुल मिलाकर 17,700 टेलीविजन चित्र प्राप्त हुये। रेन्जर-7 से 9 तक के कार्यक्रम के फलस्वरूप प्राप्त चित्र ल्यूना-3 द्वारा भेजे गये चित्रों की अपेक्षा अधिक अच्छे थे। उनमें 1 मी० क्षैतिज पृथक्करण और $\frac{1}{2}$ मीटर लम्बीय पृथक्करण था। टेलीविजन के निरीक्षणों के आधार पर वैज्ञानिकों में चल रही विवादास्पद चर्चायें समाप्त हो गयीं। कुछ वैज्ञानिकों का मत था कि चन्द्र तल पर स्थित गड्ढे उल्कापातों की टक्करों के कारण बने थे जब कि कुछ का विचार था कि वे ज्वालामुखी पर्वतों के कारण बने थे। वास्तव में अधिकाँश गड्ढे ज्वालामुखी पर्वतों के कारण ही बने थे किन्तु कुछ के निर्माण का कारण उल्कापात भी था। मेरिया के नाम से पुकारे जाने वाले मैदान लावा के द्वारा बन गये हैं। मेयर तल पर पहाड़ियां तथा घाटियां दोनों ही दिखाई पड़ती हैं। घनात्मक रूपों में आने वाले पहाड़ इत्यादि चन्द्रमा की आन्तरिक गतियों के कारण बने हैं। यही आंतरिक गतियाँ घाटियों की भी जनक हैं। पहाड़ एक प्रकार के सफेद पदार्थों से ढके हुये हैं जिसका पता अभी तक नहीं लग सका है। उल्कापात से बने गढ्ढे दो प्रकार के हैं।

(1) प्राथमिक संघट्ट गढ्ढे।

(2) द्वितीयक संघट्ट गढ्ढे।

द्वितीयक संघट्ट गढ्ढे प्राथमिक संघट्ट गड्ढों में आपस में टक्कर के बाद बाहर फेंके गये पदार्थ के दुबारा संघट्ट से बने हैं। जुलाई 1964 के बाद से सम्पूर्ण चन्द्र-तल के मानचित्र ल्यूना और जोन्ड श्रेणी (U.S.S.R.) तथा रेन्जर, सर्वेयर और आरबिटर (U.S.A.) श्रेणी द्वारा लिये गये अत्यधिक पृथक्करण के चित्रों द्वारा तैयार किये गये हैं।

चन्द्रतल की अवस्था

चन्द्रमा के विषय में इतनी जानकारी हो जाने के बाद उसके तल के ताप, रचना तत्वों और उसकी मिट्टी के भौतिक गुणों के बारे में सोचने के लिये हमें बाध्य होना पड़ता है। अन्तरिक्ष युग के पूर्व ऊपरी प्रश्नों का उत्तर ढूढ़नें का प्रयास प्रकाशमितीय, रेडियोमितीय और वर्णक्रममापीय अध्ययनों द्वारा किया गया था। फिर भी चन्द्र-तल की सही अवस्था का ज्ञान नहीं हो सका। चन्द्र-तल के ताप को सबसे पहले लार्ड रौस ने 1869-72 के मध्य ज्ञात किया। उसके बाद 1884-87 में लेन्गले और 1894-1906 के मध्य वेरी ने ज्ञात किया। पेटिट और निकल्सन ने 1930 में माउन्ट विल्सन स्थित दूरदर्शी तथा एक बहुत ही सुग्राही ताप-युग्म का उपयोग करके चन्द्र तल के विभिन्न भागों का ताप ज्ञात किया। उनके निरीक्षणों से यह ज्ञात हुआ कि चन्द्र-तल का ताप दोपहर को 210° F से मध्यरात्रि को —250°F के बीच बदलता रहता है। पेटिट और निकल्सन ने चन्द्र ग्रहण के समय होने वाले ताप परिवर्तन का अध्ययन किया और देखा कि चन्द्र ग्रहण के एक घन्टे के अन्दर ताप 250° F कम हो गया, जिससे ज्ञात हुआ कि चन्द्र-तल की ऊष्मा चालकता चट्टानों की ऊष्मा चालकता की अपेक्षा काफी कम है। ऊपरी मापों में चन्द्र-तल का ताप उसके द्वारा मुक्त की गई अवरक्त विकिरण की माप द्वारा ज्ञात किया गया था। डिक और बेरिन्गर ने चन्द्रमा से मुक्त की गई सूक्ष्म तरंगों की माप की और उसके आधार पर चन्द्रमा का ताप ज्ञात किया लेकिन सूक्ष्म तरंगों के विकिरण द्वारा निकाला गया ताप अवरक्त विकिरण की गणना द्वारा प्राप्त ताप से कम था तथा चन्द्रमा की सम्पूर्ण सतह पर लगभग समान था। सूक्ष्म तरंगों की गणनाओं द्वारा निकाले ताप में कमी इसलिये थी कि ये सतह के नीचे का ताप देते थे। चन्द्र-तल की फ्लेमिस्टेड घोस्ट रिंग का ताप सर्वेयर-1 के द्वारा (2 जून 1966) वहीं नापे जाने पर +180° F आया। उस समय सूर्य का चन्द्र तल से उन्नतकोण 31° था। चन्द्रमा का प्रकाशमितीय अध्ययन सबसे पहले हर्शेल ने 1847 में, वर्णक्रममापी अध्ययन विलसिंग और स्कीनर ने 1907 में और ध्रुवणमापीय अध्ययन आर्गो ने 1811 में शुरू किया। तबसे यह कार्य कई वैज्ञानिकों द्वारा समय-समय पर किया

गया और उन सबका परिणाम यह था कि चन्द्र तल के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णान्तर अत्यन्त न्यून था जो कि पृथ्वी के वैषम्य में है। रंग-दीप्ति रेखाचित्र पृथ्वी के साधारण पदार्थों के रंग-दीप्ति रेखाचित्रों के समान न था। चन्द्र तल के ध्रुवीकरण गुणों से ज्ञात होता है कि उसका तल छोटे-छोटे ज्वालामुखीय राख के दानों से बना है। यही परिणाम राडार संकेतों के अध्ययन से भी प्राप्त होता है।

बे (1946) ने चन्द्रमा से परावर्तित रेडियो प्रतिध्वनि का अध्ययन सबसे पहले किया। राडार प्रतिध्वनि का बाद में और अध्ययन किया गया तथा ज्ञात हुआ कि प्रतिध्वनि, पृथ्वी के किसी मरुस्थल से परावर्तित होकर आयी राडार गुंज के समान थी। यद्यपि उपरोक्त अध्ययनों से चन्द्रमा के बारे में कोई नया सिद्धान्त तो न निकाला जा सका लेकिन उपरोक्त निरीक्षणों के आधार पर तथा ग्रह-उद्‌गम सिद्धान्त के आधार पर चन्द्रमा के विषय में कई रोचक धारणायें अवश्य बनायी गयीं। उदाहरणार्थ गोल्ड ने 1955 में प्रस्तावित किया कि मेरिया कई सौ मीटर गहरा धूल का फैला हुआ मैदान है। जिसमें धूल के कण एक दूसरे से इतनी दृढता से नहीं चिपके हैं कि उन पर कोई आदमी खड़ा रह सके, बल्कि वह उसमें धंस जायगा। 1961 में सैलिसबरी ने कहा कि चन्द्र तल पर हिम नदियों की सम्भावना है जो धूल तथा पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों से ढकी हुयी हैं। विल्सन के अनुसार चन्द्रमा के फैले हुये मैदान हाइड्रोकार्बन-पदार्थ से ढके हुये हैं। चन्द्र तल की रासायनिक प्रकृति को 1958 में प्लेट ने अति क्रियाशील बताया और कहा कि वहाँ पर ऊष्मा रेचक क्रियायें आसानी से प्रारम्भ हो सकती हैं और मानव के चन्द्रतल पर उतरने से ही विस्फोटक रासायनिक प्रतिक्रियायें हो सकती हैं। अतः चन्द्र तल अभियान मानव के लिये भयानक हो सकता है।

अभी तक प्रयोगात्मक रूप से चन्द्र-तल के यान्त्रिक गुण और शक्ति का ज्ञान न हो सका था। फरवरी 1965 में चन्द्र-तल के मेयर ट्रेनक्विलिटेटिस में उतर कर रेन्जर-8 ने उपरोक्त तमाम संदेहों को दूर कर दिया। उसके तल पर उतरने से ज्ञात हुआ कि तल पर्याप्त मजबूत है। मेरिया लावा के इकट्‌ठा होने से बने हैं। 31 जनवरी 1966 को सोवियत रूस ने ल्यूना-9 को चन्द्रमा की ओर प्रक्षेपित किया। इसके द्वारा किये गये प्रयोगों के परिणाम स्वरूप ज्ञात हुआ कि चन्द्र तल की रेडियो-धर्मिता बहुत ही कम है। सतह छोटे-छोटे गड्ढों तथा छिद्रों से परिपूर्ण है जो ज्वालामुखी से बने मालुम पड़ते हैं। तत्पश्चात् सर्वेयर-१ फ्लैमस्टीड घोस्ट रिंग पर उतारा गया। उसके टेलीविजन कैमरा को उस ओर रखा गया जिधर एक अत्यधिक दबाव की नाइट्रोजन की धार चन्द्र तल पर डाली गयी थी। इस प्रयोग में किसी भी प्रकार के धूल के बादल नहीं दिखायी दिये जिससे ज्ञात हुआ कि सतह के पदार्थ के अणु ससंजक गुणों वाले थे। चन्द्रमा कि मिट्टी का रंग हल्के भूरे से मध्यम भूरे रंग तक बदलता हुआ पाया गया है। उसकी परावर्तकता तथा ऊष्मा-चालकता को भी निकाला गया है।

24 दिसम्बर 1966 को ल्यूना-13 के द्वारा एक रोचक प्रयोग किया गया। लगभग 1 इंच व्यास की एक छड़ को चन्द्रतल में धंसाया गया जिससे ज्ञात हुआ कि चन्द्र तल भी लगभग पृथ्वी-तल के समान मजबूत है। परन्तु चन्द्रतल का घनत्व पृथ्वीतल के घनत्व की अपेक्षा कुछ कम है। यही प्रयोग सर्वेयर-3 (19 अप्रैल 1967) के द्वारा दुहराया गया जिससे उपरोक्त जानकारी की पुष्टि हो गई। साथ ही साथ यह भी सिद्ध हुआ कि चन्द्रमा की मिट्टी भीगी पुलिन बालू की तरह व्यवहार करती है। सर्वेयर-5 तथा सर्वेयर-6 (10 सितम्बर तथा 9 नवम्बर 1967) के द्वारा किये गये चन्द्र-चट्टानों के विश्लेषण से पता चला कि वे बेसाल्टिक चट्टानों के प्रकार की हैं। उपरोक्त परीक्षणों से यह भी ज्ञात हुआ कि चन्द्र चट्टाने मानव के भ्रमण के लिये उपयुक्त हैं।

चन्द्र-वायुमण्डल और मानव अवतरण

चन्द्र-तल की अवस्था जानने के बाद वहाँ के वातावरण तथा वायुमण्डल की जानकारी के लिये उत्सुकता स्वाभाविक है। चन्द्रमा के वायुमण्डल का उसके तल पर घनत्व निकालने के लिये सर जिआर्ज एअरी (1835-1881)

ने चन्द्रमा द्वारा बृहस्पति ग्रह के आच्छादित किये जाने पर उसके अदृश्य से पुनः दृश्य होने के बीच का समय ज्ञात किया। चन्द्रमा की आकृति-विकृति के कारण इस प्रकार की गणना द्वारा सही सही फल ज्ञात करना कठिन था फिर भी चन्द्रमा के वायुमण्डल के घनत्व के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा सका। पिकरिंग ने उस प्रकार के प्रेक्षणों के आधार पर बताया कि चन्द्रमा का वायुमण्डलीय घनत्व पृथ्वी के वायुमण्डलीय घनत्व का $\frac{1}{400}$ गुना है। सन् 1940 में फेसेनकोव और लिप्सकी ने चन्द्र वायुमण्डल द्वारा प्रकीर्णित प्रकाश की माप की और यह अनुमान लगाया कि चन्द्रमा का वायुमण्डलीय घनत्व पृथ्वी के वायुमण्डलीय घनत्व का $\frac{1}{2000}$ गुना है। ल्योट और डोलफस ने इसे संशोधित करके $\frac{1}{10000}$ कर दिया। सन् 1956 में रेडियो-ज्योतिषीय मापनों द्वारा ज्ञात हुआ कि व्यावहारिक दृष्टि से चन्द्रमा पर कोई वातावरण नहीं है। रेडियो ज्योतिषियों ने क्रेव नामक निहारिका से आती हुई और चन्द्रमा के सानिध्य से गुजरती हुई रेडियो तरंगों का अध्ययन किया। पृथ्वी से किये गये इन प्रयोगों द्वारा चन्द्रमा पर किसी प्रकार के वायुमण्डल की उपस्थिति की पुष्टि नहीं हुई इसलिये हम कल्पना कर सकते हैं कि वहाँ पर अत्यधिक निर्वात है। चूँकि चन्द्रमा का क्षीण गुरुत्वाकर्षण वायुमण्डलीय गैसों को पर्याप्त समय तक अपने साथ रखने में असमर्थ है अतः उपरोक्त फल यथार्थ प्रतीत होते हैं। यद्यपि चन्द्र तल की कुछ आकृतियाँ उल्कापातों या ज्वालामुखीय प्रतिक्रिया के कारण बनी हैं और इन क्रियाओं में गैसें उत्सर्जित होती हैं परन्तु इसके बारे में विश्वसनीय जानकारी नहीं है तो भी सम्भव है कि कभी कभी अल्प काल के लिये चन्द्र-तल पर गैसीय वातावरण रहता हो।

चन्द्रमा के वातावरण से सम्बन्धित अधिक जानकारी ल्यूना-10 द्वारा प्राप्त की गयी, जो कि 4 अप्रैल 1966 को प्रक्षेपित किया गया था। इससे ज्ञात हुआ कि चन्द्रमा के समीप इलेक्ट्रान घनत्व, कास्मिक रे फ्लक्स का 70 से 100 गुना है तथा चुम्बकीय क्षेत्र का मान अँतर्ग्रहीय क्षेत्र से कुछ ही अधिक है। आर्बिटर-1 के द्वारा जो चन्द्र कक्षा में 14 अगस्त 1966 को पहुँचा था वहाँ के गुरुत्वीय क्षेत्र का अध्ययन किया गया जिससे वहाँ अँतरिक्षयान भेजने तथा नियँत्रित रखने में सहायता मिली तथा ज्ञात हुआ कि चन्द्रमा का गुरुत्वीय क्षेत्र पृथ्वी के गुरुत्वीय क्षेत्र की अपेक्षा अधिक अनियंत्रित है। आर्बिटर-2 (6 नवम्बर 1966) और अर्बिटर-5 (1 अगस्त 1967) के बीच अमेरिका ने चन्द्रमा की कक्षा में उसकी परिक्रमा करने के लिये पाँच अँतरिक्षयान भेजे जिससे चन्द्रमा पर होने वाले उल्कीय संघट्ट, चन्द्र-विकिरण, गुरुत्वीय क्षेत्र, आयन-मंडल चुम्बकीय क्षेत्र, कास्मिक रे तीव्रता और सौर-कणों के फ्लक्स का पता लगाया गया। उपरोक्त खोजों के परिणाम से ज्ञात हुआ कि चन्द्र-वातावरण में पहुंचकर मनुष्य का चन्द्र तल पर सुरक्षित ढंग से उतरना सम्भव है। इसी समय ल्यूना-13 (24 दिसम्बर 1966) ने चन्द्र-तल पर उतर कर सतह की मजबूती तथा गामा-सक्रियता का पता लगाया। उपरोक्त परीक्षणों के बाद चन्द्र-तल पर क्रमशः सर्वेयर-5 (10 सितम्बर 1967) सर्वेयर-6 (9 नवम्बर 1967) और सर्वेयर-7 (9 जनवरी 1968) को उतारा गया, जिनके द्वारा वहाँ की ऊँची व नीची सतहों की चट्टानों का रासायनिक विश्लेषण किया गया। जिससे इस बात की पुष्टि हुई कि वहाँ की चट्टानों की रासायनिक रचना बेसाल्टिक प्रकार की ही है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऊँची सतहों की चट्टानों में लोहे की मात्रा नीची जगहों की चट्टानों की अपेक्षा कम होती है। इस प्रकार मनुष्य की 2000 वर्षों तक की खोज का परिणाम यह निकला कि आवश्यक सावधानियों को ध्यान में रखकर चन्द्रमा पर सुरक्षा पूर्वक उतरा जा सकता है। इसलिये 21 दिसम्बर 1968 को अपोलो-8 में बोरमैन, लावेल और एन्डर्स को बैठाकर प्रक्षेपित किया गया। चन्द्र तल को पास से देखने वाले ये प्रथम यात्री थे। उन्होंने चन्द्रमा को न्यूनतम 69·6 मील की दूरी से देखा। अपोलो-9 और 10 (3 फरवरी और 8 मई 1969) को क्रमशः भेजकर अंतरिक्ष यान संचालन की आवश्यक जानकारी प्राप्त की गयी।

[शेष पृष्ठ 7 पर]

ऊँट की प्यास

□ नागपाल टी० डी०

रेगिस्तान में ऊँट की तुलना जहाज से की जाती है। सम्भवतः ऐसा इस लिये किया जाता है क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में आने वाली कठिनाइयों को सहन करता हुआ यह अपने बोझ अथवा सवारी के साथ बड़ी से बड़ी यात्रा तय कर लेता है जो दूसरे किसी भी भार वाहन और सवारी के लिये शायद सम्भव नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस पशु का शरीर ही इन कठिनाइयों को सहन करने के अनुरूप बना होता है—जैसे रेतीली आँधी से बचाव के लिये अपने नासाद्वारों तथा नेत्रों को ढक लेने के साधन हैं। अपनी लम्बी गर्दन की पहुँच से ऐसे स्थानों पर थोड़े बहुत उगे वृक्षों और झाड़ियों की पत्तियां तथा कोपलें खा सकने के कारण रेगिस्तानों में आहार अभाव का इस पशु पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

मरुस्थल की सबसे बड़ी समस्या जल अभाव की है। यह समस्या पशु के लिये भी उतनी ही गम्भीर है जितनी कि मनुष्य के लिये है। किन्तु इस समस्या पर विजय पाने के लिये ऊँट की कुछ अपनी विचित्र अनुरूपता है। अरब के रेगिस्तानों में ऊँटों की सवारी करने वालों का कुछ ऐसा विचार था कि इसके शरीर में एक पानी की थैली होती है जिससे यह पशु पानी संचयन करके रखता है। इस आधार पर कई सवारों ने अपनी प्यास सहन न कर पाने पर पानी के लिये अपने ऊँटों को मार दिया-ऐसी कहानियां अभी तक प्रचलित हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। ऊँट के शरीर में इस प्रकार की कोई अलग से विशेष थैली अथवा स्थान नहीं होता जिसमें जल भरा रहता हो और चाहने पर इसे प्राप्त किया जा सके।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर ऊँट जल अभाव की समस्या को किस प्रकार हल करता है। शैमिड्ट-नेलसन (1956) द्वारा इन पशुओं पर किये गये विचित्र परीक्षणों से पता चलता है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी ऐसे वातावरण में रहते-रहते इस पशु की शारीरिक क्रियाओं में कुछ ऐसे परिवर्तन आ गये हैं जिससे इसका शरीर जल-अभाव को सहन कर लेता है। ऐसा देखने में आया है कि यह पशु अपने शरीर के कुल जल का 40 प्रतिशत तक निर्जलीकरण द्वारा हुई जल क्षति को आसानी से सहन कर लेता है, जबकि अन्य कोई भी स्तनधारी 12 प्रतिशत से अधिक ऐसी क्षति को सहन नहीं कर पाता और उसकी मृत्यु हो जाती है। इस पशु में निर्जलीकरण द्वारा जल की क्षति की गति बहुत ही सीमित होती है क्योंकि एक तो इसकी त्वचा बहुत ही मोटी और ऊनयुक्त होती और दूसरा इसकी त्वचा में अन्य स्तनधारियों की तरह पसीने की ग्रन्थियाँ नहीं होती इसलिये इसे पसीना भी नहीं आता जो प्रत्येक जीव में निर्जलीकरण का एक मुख्य साधन होता है। इनके अतिरिक्त ऊँट की सबसे बड़ी क्रियात्मक विशेषता इसके शारीरिक ताप में दैनिक परिवर्तन है जो 6·6° सें० तक आवश्यकतानुसार घटता-बढ़ता रहता है। बाह्य ताप के बढ़ जाने पर यह बढ़ जाता है और इसके साथ ही घट भी जाता है जिससे इसके शरीर से वाष्पन बहुत कम हो पाता है और इस कारण निर्जलीकरण और भी कम होता है।

ऊँट के अपने रक्त और ऊतक द्रव्य को एक बड़ी सीमा तक तनु कर लेने की विशेषता कोई कम आश्चर्यजनक नहीं है। इस पशु को जब जल पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है तो यह इतनी मात्रा में पी जाता है कि इसके रक्त की केन्द्रक रहित लाल रक्त कोशिकाएँ अपने साधारण आकार से 240

प्रतिशत तक फूल जाती हैं जो इस सीमा तक अन्य किसी भी पशु के लिये जीवित अवस्था में सम्भव नहीं है। अन्य पशुओं में इन कोशिकाओं के फूलने की सीमा 130 प्रतिशत और मनुष्य के लिये 165 प्रतिशत तक है।

ऊँट में जलाभाव सहनशीलता ज्ञात करने के लिये एक परीक्षण में शैमिड्ट-नेलसन ने इन्हें कुछ समय के लिये बिना पानी के और जहाँ तक सम्भव हो सका उनको सूखा आहार देकर रखा। तो पता चला कि गर्मियों में 17 दिन तथा जाड़ों में 30 दिन तक बिना एक बूंद पानी पिये यह पशु पूर्ण स्वस्थ और सामान्य कार्य के लिये योग्य पाया गया। अधिक समय तक प्यासे रहने के बाद पानी मिलने पर यह पर्याप्त मात्रा में पानी पी जाता है। 315 कि० ग्रा० शारीरिक भार का एक ऊँट एक समय 10 मिनट में 130 लिटर पानी पी जाता है और यदि इसे नियमपूर्वक पानी मिलता रहे तो इसे प्रतिदिन एक आयु के अनुसार 18-36 लिटर जल की आवश्यकता होती है। भारतीय मरुस्थलों में ऊँट को हर दूसरे दिन पानी की आवश्यकता पड़ती हैं, जबकि इनसे चार दिन तक बिना पानी के सामान्य रूप से कार्य लिया जा सकता है। किन्तु सोमाली के ऊँटों में यह क्षमता और भी अधिक होती है।

जहाँ तक सम्भव हो, इनको नियमपूर्वक दिन में एक बार आहार से पूर्व और बोझा उतार लेने के बाद स्वच्छ और ताजा पानी अवश्य पिलाना चाहिये। बहते जल की अपेक्षा ऊँट स्थिर जल को पसन्द करता है।

● ●

[पृष्ठ 5 का शेषांश]

चन्द्र अभियान अपने चरमोत्कर्ष पर 16 जुलाई 1969 को पहुंचा जबकि अपोलो-11 अपने यात्रियों नील आम्सट्रॉंग, एडविन ई एल्ड्रिन और माइकेल कोलिन्स के साथ अमेरिका के फलोरिडा प्रदेश के केप कनेडी नामक स्थान से प्रक्षेपित किया गया। आशायुक्त उद्विग्नता के वातावरण में दम साधे बैठी मानवता उस समय प्रफुल्लित हो उठी जब सर्व प्रथम नील आम्सट्रॉंग के चरण चन्द्र-तल पर पड़े। इस प्रकार 2000 वर्ष पुराना चन्द्र तथा मानव का प्रेमानुराग दोनों के मधुर मिलन द्वारा पूर्ण ही नहीं हुआ अपितु चन्द्र-खोज सम्बन्धी एक युग का सूत्रपात भी हो गया है जिससे मानव चिर सुन्दर चन्द्रमा का अधिकाधिक सत्य ज्ञान प्राप्त कर सकेगा।

● ●

अन्धेरे में प्रकाश के दाता

□ श्याम मनोहर व्यास

आपने रात्रि के अन्धकार में चमकता हुआ घड़ी का डायल देखा होगा, टिनोपाल से धुले हुये उजले वस्त्र भी पहने होंगे, पत्थरों की टकराहट से उत्पन्न चमक भी देखी होगी और ट्यूबलाइट के प्रकाश में पुस्तक भी अवश्य पढ़ी होगी। उत्तरी ध्रुव क्षेत्र की मेरु प्रभा के बारे में भी सुना होगा जिसके कारण रात्रि जगमगाती रहती है ! कैल्सियम कार्बोनेट की लालिमा और फ्लोरस्पार की नीलिमा के बारे में भी सुना या पढ़ा होगा।

क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि इस प्रकार से उत्पन्न चमक या प्रकाश के पीछे क्या रहस्य है ? नहीं, तो आइये इसका समाधान ढूंढ़े।

संदीप्ति है क्या ?

इस चमक के पीछे एक भौतिक क्रिया निहित है जो ऊर्जा का प्रकाश में परिवर्तन है।

पदार्थ के परमाणु तीन मूल कणों से बने होते हैं— प्रोटान, न्यूट्रान एवं इलेक्ट्रान।

वैज्ञानिक बोर ने सन् 1913 में बताया कि इलेक्ट्रान निश्चित ऊर्जा-स्तरों पर बिना ऊर्जा उत्सर्जित किये या अवशोषित किये चक्कर लगाता रहता है किन्तु जब कोई इलेक्ट्रान एक ऊर्जा-स्तर से दूसरे ऊर्जा-स्तर पर आता है तो ऊर्जा का उत्सर्जन या अवशोषण होता है। यह उर्जा एकवर्णी प्रकाश के रूप में होती है। जब किसी परमाणु को ऊर्जा प्रदान की जाती है तो इसे सबसे बाहरी कक्षा वाले इलेक्ट्रान प्राप्त करते हैं। यदि दी गई ऊर्जा में केवल इतनी ही सामर्थ्य रहती है कि वह इलेक्ट्रान को केवल एक कक्षा की दूरी तक ले जा सके तो इलेक्ट्रान मूल अवस्था तक आने में एक तरंग-दैर्ध्य का प्रकाश उत्सर्जित करेगा। इसी प्रकार काफी अधिक ऊर्जा देने पर तत्व के स्पेक्ट्रम में अनेक स्पेक्ट्रम-रेखायें दिखाई देंगी।

कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो किसी भौतिक क्रिया के फलस्वरूप किसी विशेष ऊर्जा का पहले अवशोषण करते हैं जिससे उस पदार्थ के परमाणु उत्तेजित हो जाते हैं। जब ये परमाणु पुनः अपनी पूर्व अवस्था में आते हैं, तो अवशोषित ऊर्जा को प्रकाश के रूप में प्रकट करते हैं। इस क्रिया को 'संदीप्ति' कहते हैं। ऐसे पदार्थ 'संदीप्तिशील पदार्थ' कहलाते हैं।

किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जितनी ऊर्जा अवशोषित की जाय, वह सब ही प्रकाश में परिवर्तित हो। ऊर्जा की कितनी मात्रा प्रकाश में परिणत होगी यह उस पदार्थ के घनत्व, शुद्धता एवं उसकी क्रिया क्षमता पर निर्भर करती है।

कुछ अशुद्धियाँ ऐसी भी हैं, जिनसे संदीप्ति की क्रिया में अवरोध उत्पन्न होता है। इन्हें विष कहा जाता है। इन विषों के कारण रात्रि में पूर्ण अन्धकार हो जाता है नहीं तो हमारे आस-पास संदीप्ति की क्रिया इतनी तेजी से हो रही है कि सारा संसार रात भर जगमगाता रहे।

संदीप्तिशील पदार्थों में कुछ विशेष प्रकार के परमाणवीय स्थल अथवा केन्द्र होते हैं जो ऊर्जा का अवशोषण करके इलेक्ट्रान-संक्रमण द्वारा ऊर्जा को विद्युत-चुम्बकीय विकिरण के रूप में बाहर निकालते हैं।

वैज्ञानिक संदीप्तिशील पदार्थों पर काफी अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं। जिन्क-सल्फाइड़ के क्रिस्टलों पर प्रयोग कार्य हो रहा है किन्तु संदीप्ति पदार्थ का मौलिक गुण नहीं

है। कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जिन्हें यदि अतिरिक्त ऊर्जा दी जाय तो वे अपनी संदीप्ति खो बैठते हैं। इस क्रिया को 'स्फुरदीप्ति' कहते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं कि यदि उनके अतिरिक्त ऊर्जा स्रोत को हटा दिया जाय तो भी उनमें वर्षों तक संदीप्ति बनी रहती है। इन विशेष गुण वाले पदार्थों को 'फास्फर' या 'उत्तरदीप्तिशील' कहा जाता है।

रेडार यन्त्रों में फास्फर का उपयोग किया जाता है। अमेरिका भौतिक अनुसन्धान शाला में फास्फर पर काफी अनुसन्धान कार्य होरहा है।

ट्यूब लाइट का प्रकाश संदीप्ति-क्रिया का चमत्कार है। ट्यूब-लाइट की भीतरी दीवार पर हैलोजन-फास्फेट नामक रासायनिक यौगिक का लेप होता है। इस लेप में मैंगनीज एवं ऐन्टीमनी धातुओं की अशुद्धियाँ होती हैं जिसके कारण संदीप्ति की क्रिया होती रहती है।

जीव-जन्तुओं में भी संदीप्ति

संदीप्ति का गुण जड़ द्रव्यों में ही नहीं जीव—जन्तुओं में भी पाया जाता है। जुगनू, फुगी, मधुरिका और अन्य कई समुद्री जीव-जन्तुओं में यह गुण पाया जाता है। जीव जन्तु आक्सीकरण की क्रिया के द्वारा मुक्त होने वाली ऊर्जा से प्रकाश उत्पन्न करते हैं। मादा जुगनू में जब यौन-उत्तेजना होती है तो उसके शरीर में एक विशेष प्रकार की रासायनिक क्रिया होती है और फलस्वरूप संदीप्ति द्वारा वह काफी प्रकाश उत्पन्न करती है। साधारण जुगनू का प्रकाश भी रात्रि में टिमटिमाता हुआ आकर्षक जान पड़ता है।

कई वनस्पतियों में भी यह गुण पाया जाता है। हिमालय के वनों में रात्रि के अन्धेरे में कई जड़ी-बूटियाँ भी चमकती देखी गई हैं।

समुद्र में पायी जाने वाली कई प्रकार की मछलियाँ भी संदीप्तिशील होती हैं। कई मछलियों से विद्युत भी उत्पन्न होती है।

संदीप्ति का उपयोग

न्यूक्लीय विकिरणों की मात्रा को मापने के लिये 'ताप-संदीप्ति' नामक विधि का उपयोग किया जाता है। इसमें पदार्थ को गर्म करके संदीप्ति प्राप्त की जाती है। इस विधि से पुराने बर्तनों और खनिजों की आयु का ठीक ठीक पता लगाया जाता है। दाब प्रघात इत्यादि से भी ताप-संदीप्ति पैदा हो सकती है।

साधारण प्रकाश सात रंगों का मिश्रण है। यदि कोई वस्तु हमें हरी दिखाई देती है तो इसका अर्थ है कि वह वस्तु अपने ऊपर पड़ने वाले प्रकाश में से केवल हरी रश्मियों को परावर्तित करती और अन्य छह रंगों की किरणों को सोख लेती है।

टिनोपाल स्फुरदीप्तिशील पदार्थ है। वह सूर्य की किरणों में व्याप्त परा बैंगनी किरणों का अवशोषण करके उन्हें नीले-जामुनी रंग में बदल देता है। इस प्रकार कपड़े में नीले रंग की कमी की पूर्ति हो जाती है और कपड़े उजले तथा सफेद दिखाई देते हैं।

स्फुरदीप्तिशील पेंट का उपयोग किसी विशेष रंग वाले प्रकाश की मात्रा बढ़ाने के लिये किया जाता है। पेंट सब रंगों की रश्मियों को किसी एक रंग में परिणत कर देता है जिससे उस रंग की तीव्रता बढ़ जाती है। ऐसे पेन्ट का उपयोग प्रचार-कार्यों, वायुयानों एवं घरों आदि की की रंगाई में किया जाता है। विशेष विवरण के लिये विज्ञान, मार्च-अप्रैल 1970 का अंक पढ़ें।

● ●

भारतीय विज्ञान—तब और अब

□ लक्ष्मेन्द्र चोपड़ा

प्रत्येक राष्ट्र की एक अमूल्य सम्पत्ति रहती है, वह है उसकी प्राचीन संस्कृति एवं उसका इतिहास। अगर इस अमूल्य सम्पत्ति को वह राष्ट्र किसी कारणवश खो देता है तो वह राष्ट्र अभागा है। यही हमारे साथ हुआ है; परन्तु फिर भी हम अभागे नहीं हैं। कहावत है कि "सुबह का भूला शाम को घर लौट आये तो भूला नहीं कहलाता।"

हमारे भारत की प्राचीन संस्कृति में कला का विशिष्ट स्थान माना जाता है; परन्तु अगर हम इतिहास के पृष्ठों को पलटते हुये उस युग में पहुँच जायें जो 'धर्म-युग' कहलाता था; चमत्कारों का युग है, जिसे हम कपोल-कल्पित समझ भूल रहे हैं। इन तथाकथित कल्पनाओं को तथ्यों की कसौटी पर परख कर देखें तो हमें विश्वास हो जायेगा कि यह मात्र कल्पनाएँ नहीं हैं, बल्कि वह सत्य है जो विज्ञान कहलाता है।

महाभारत में प्रसंग है जिसमें नेत्रहीन धृतराष्ट्र को संजय दरबार में ही बैठे-बैठे, दूर कुरुक्षेत्र में होने वाले युद्ध का विवरण सुनाता है। ऊपर से यह प्रसंग मात्र कोरी कल्पना प्रतीत होता है; लेकिन आज के 'टेलीविजन' के साथ इस प्रसंग पर विचार करने पर यह कल्पना प्राचीन भारत के उच्च भौतिकी का अध्याय सिद्ध होती है। न जाने ऐसे कितने अध्याय प्राचीन भारतीय ग्रंथों में बिखरे पड़े हैं।

वेदों एवं पुराण से लेकर रामायण एवं महाभारत में जगह जगह अग्नि-वर्षा करने वाले एवं रात्रि में दिवाकर-सम प्रकाश देने वाले बाणों का वर्णन है; जो निरा असत्य एवं कथा समान लगते हैं। परन्तु जब हम वर्तमान युग के लाइट बमों, हथगोलों एवं अणुबमों से तुलना करते हैं तो सहसा विश्वास होने लगता है कि ये अग्नेयास्त्र वर्तमान बमों के विस्तृत एवं विकसित रूप थे।

अणु की व्याख्या हमारे प्राचीन भारतीय ऋषि, युगों पूर्व कर चुके हैं। युगों पूर्व भारतीय दर्शन के रचयिता महर्षि कणाद ने कहा था कि "द्रव्य सूक्ष्म अविभाज्य कणों से; जिन्हें परमाणु कहते हैं, बनता है। इनके पारस्परिक योग से परमाणुक प्रकार के बड़े कण बनते हैं।"

प्राचीन भारतीय रसायन के जन्मदाता तथा तियक-पातन-प्रक्रिया के आविष्कारक तथा लौह धातु को स्वर्ण में परिवर्तित करने की विधि के ज्ञाता नागार्जुन की विश्व के अनेक ग्रंथों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। क्या उपरोक्त तथ्य प्राचीन भारतीय रसायन के उज्जवल पक्ष पर प्रकाश नहीं डालते?

अंकशास्त्रों के रचयिता एवं प्रमुख वैज्ञानिकों में आर्य भट्ट भास्कराचार्य ने पाटी गणित, त्रिकोणमिति एवं बीज गणित के क्षेत्र में अन्य भारतीय ज्योतिषियों तथा गणितज्ञों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य किया तथा विश्व के दो प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री वोट एवं प्रोफेसर मैकडानल और प्रमुख इतिहास खोजी स्वीडक कोट को प्राचीन भारतीय अंकशास्त्र की प्रशंसा करने तथा उसका महत्व स्वीकार करने को बाध्य कर दिया।

वेदों में वर्णित एवं वर्तमान औषधि विज्ञान में कोई विशेष अंतर नहीं है। परन्तु दुर्भाग्य से हम कई औषध-वनस्पतियों को पहचान नहीं पा रहे हैं तथा कई वनस्पतियाँ प्रकृति से लुप्त हो गई हैं।

ध्वनि भौतिकी विज्ञान के प्राचीन वैज्ञानिकों एवं शिल्पियों ने; जैसे पल्लव शिलपकार (जिन्होंने काञ्ची नरेशों के विशाल ध्वनि कक्ष बनाये हैं) तथा उन्हीं के समकक्ष तंजोर में संगीत कक्ष बनाने वाले शिल्पियों ने ध्वनि विज्ञान को

एक नई दिशा प्रदान की थी।

सामान्य विज्ञान के बहुत से तथ्य जैसे; मुद्रणकला, मुद्रा की ढलाई, वस्त्रों का निर्माण, शक्कर उद्योग जैसे अनेकों तथ्य हमारे प्राचीन इतिहास में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।

परन्तु कालांतर में विदेशियों के निरन्तर क्रूर आक्रमणों एवं आपसी फूट ने हमारे इस अमूल्य मौलिक विज्ञान को नष्ट कर दिया एवं हम इसे भूल गये।

वर्तमान युग के भारतीय विज्ञान का सूत्रपात बंगाल के महान भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बसु एवं आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय; जिन्हें कि भारतीय रसायन का पिता कहा जाता है के सद्प्रयत्नों से हुआ।

सर जगदीश चन्द्र बसु ने अपने मौलिक सिद्धांतो एवं दिशा प्रयोगों द्वारा समस्त विश्व के समक्ष एक चुनौती रखदी एवं वर्षों से सुप्त भारतीय विज्ञान को एक नई प्रदान की। उन्होंने न केवल वनस्पतियों के जीवन के सम्बन्ध में व्याख्या कर वर्तमान वनस्पति विज्ञान की नींव रखी बल्कि विद्युतीय, चुम्बकीय एवं तरंगीय विज्ञान की उन्नति में सहयोग कर "बेतार के तार" उपकरण में अपना महत्व-पूर्ण योगदान दिया। आपने अपनी पुरस्कार राशि द्वारा "बसु रिसर्च इन्स्टीट्यूट" की स्थापना की जो आज विदेशियों के लिये आकर्षण का केन्द्र है।

सन् 1876 में डा० महेन्द्र लाल सरकार द्वारा "इंडियन एसोसियेशन फार दी कल्टीवेशन आफ साइन्स" एवं सन् 1940 में 'बोर्ड आफ साइन्टिफिक एंड इन्डस्ट्रियल रिसर्च' नामक संस्थाएं भारतीय विज्ञान की उन्नति में अपना योगदान देने के लिये आगे आईं। लेकिन विदेशी शासन ने इनके विकास में कोई योगदान नहीं दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त पश्चात भारत सरकार तथा स्व० नेहरू ने भारतीय विज्ञान के उन्नति कार्य को विशेष महत्व एवं सहायता दी। पंचवर्षीय योजनाओं में विज्ञान की प्रगति के लिये भरपूर धनराशि एवं सामग्री की व्यवस्था की गई; जिसके कारण वर्तमान भारतीय विज्ञान उन्नति-शील है। इस संदर्भ में हम डा० शान्तिस्वरूप भटनागर के विशेष ऋणी हैं; जिनके सबल एवं महत्वपूर्ण योगदान के कारण राष्ट्र में प्रयोग शालाओं का विकास हो पाया। डा० भटनागर ने स्वयं चुम्बक विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण आविष्कार किये। परन्तु एक के बाद एक अनेक भारतीय वैज्ञानिकों ने विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान कर भारतीय विज्ञान को महत्वपूर्ण योगदान दिया।

नोबल पुरस्कार विजेता भारतीय वैज्ञानिक प्रो० चन्द्र शेखर वेंकट रमन अपने महत्वपूर्ण आविष्कार "रमन प्रभाव" द्वारा अणुओं की रचना की महत्वपूर्ण जानकारी विश्व को प्रदान की। प्रो० रमन ने भारतीय वाद्य यंत्रो की ध्वनि की वैज्ञानिकता के भी कई तथ्य विश्व के सम्मुख रखकर उनकी श्रेष्टता सिद्ध की। प्रो० रमन के प्रमुख सहयोगी प्रो० कृष्णन का उल्लेख न करना उनके प्रति अन्याय होगा। प्रो० के० एस० कृष्णन ने "रमन प्रभाव" के अविष्कार के समय प्रो० रमन को भरपूर सहयोग दिया। साथ ही साथ उन्होंने प्रकाश विज्ञान, ताप गति तथा चुम्बकत्व विज्ञान के क्षेत्र में भी अपना अमूल्य योगदान दिया।

भौतिकी के इन दो महान वैज्ञानिकों का उल्लेख करते समय एक और वैज्ञानिक डा० साहा को हम नहीं भूल सकते। डा० मेघनाथ साहा ने ताप विज्ञान में तापीय आयनी-करण सम्बन्धी गवेषणाएं कर भारतीय विज्ञान के अध्याय में एक नया पृष्ठ लिखते हुए विश्व को स्तम्भित कर दिया।

अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय विज्ञान की रक्षा के लिए डा० कोठारी के योगदान को भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग कभी नहीं भुला पायेगा जो उन्होंने रक्षा मंत्रालय के परामर्शदाता के रूप में दिया है। साथ ही साथ उन्होंने खगोल भौतिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

भारत सरकार एवं भारतीय जनता को टाटा केमिकल इन्स्टीट्यूट का ऋणी होना चाहिए जिसने कि भारत को "कैस्केड थ्योरी आफ इलेक्ट्रान शावर्स" के महान आविष्कारक एवं भारतीय परमाणुशक्ति के जन्मदाता डा० होमी जहाँगीर भाभा जैसे नर रत्न दिये।

आपके उत्तराधिकारी एवं "भाभा एटामिक इन्स्टीट्यूट" के सर्वोच्चाधिकारी डा० साराभाई से जो कि भारत सरकार एवं भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा निर्मिति "थुम्बा राकेट केन्द्र" (अब संयुक्त राष्ट संघ को समर्पित) के भी सर्वोच्च पदाधिकारी हैं भारतीय जनता को बहुत आशाएँ हैं।

डा० ज्ञान चन्द्र घोष की प्रकाश-रसायन, विद्युत-रसायन, तथा औद्योगिक गैस प्रक्रियाओं सम्बन्धी मौलिक गवेषणाओं ने काफी प्रसिद्धि पाई है। गवेषणाओं के सम्बन्ध में एक और भारतीय वैज्ञानिक जिन्हें भारतीय न्यूटन भी कहा जाता है विशेष उल्लेखनीय है, ये हैं श्री रामनुजम। इनकी गणित सम्बन्धी गवेषणाओं की विश्व के प्रमुख वैज्ञानिकों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए महत्व पूर्ण माना है।

पौध-रसायन विज्ञान में प्रो० तिसवेंकर एवं श्री राजेन्द्र शेषाद्री ने कई नये महत्वपूर्ण पृष्ठ जोड़े हैं।

हाल ही में नोबल पुरस्कार के विजेता भारतीय वैज्ञानिक डा० हर गोविन्द खुराना भी अभिनन्दन के पात्र हैं। आपने विदेश में रहते हुये भारतीय औषधि विज्ञान का डंका विश्व भर में बजा दिया। डा० खुराना के अतिरिक्त डा० ब्रह्मचारी तथा डा० चोपड़ा सहित कई अन्य वैज्ञानिकों ने औषधि विज्ञान में भारतीय आविष्कारों का विकास किया।

भारतीय विज्ञान अपनी उन्नति की चरम सीमा की ओर तेजी से बढ़ रहा है। "इन्डियन साइन्स कांग्रेस" इस दिशा में विशेष प्रगतिशील है। वर्तमान में अधिकांश भारतीय पत्रिकाओं में भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा लिखित विशेष महत्वपूर्ण आविष्कारों सम्बन्धी लेख होते हैं, जो कि "भारतीय विज्ञान" की प्रगति का माप दण्ड सिद्ध हो रहे हैं।

उपरोक्त नामांकित भारतीय आविष्कारकों के अतिरिक्त अनेकों ज्ञात-अज्ञात भारतीय वैज्ञानिकों ने अपना योगदान देकर आधुनिक भारतीय विज्ञान को संसार के समक्ष एक समृद्धशाली, उन्नत एवं अग्रणी विज्ञान के रूप में रखते हुए भारत का मस्तक ऊँचा किया है। भारत सरकार, भारतीय छात्र वर्ग एवं भारतीय वैज्ञानिक विज्ञान की उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं। भारत भर की लगभग 40-50 हजार राष्ट्रीय एवं व्यक्तिगत प्रयोगशालाओं में भारतीय वैज्ञानिक एवं छात्र विज्ञान में नये प्रयोगों के पृष्ठ जोड़ रहे हैं तथा अनुभव प्राप्त कर रहे हैं।

निश्चय ही भारतीय विज्ञान का भविष्य भी उज्जवल है, भूतकाल तो उज्जवल था ही।

● ●

- **अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।**

- **हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।**

कालिदास के महाकाव्य रघुवंश में विज्ञान सम्बन्धी उल्लेख

□ डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

महाकवि कालिदास की सर्वतोमुखी प्रखर प्रतिभा एवं विविध शास्त्रों सम्बन्धी उनकी विद्वत्ता विश्व विदित है। कालिदास साहित्य में धर्म, दर्शन, नीति आदि शास्त्रों सम्बन्धी प्रयोगों के अतिरिक्त विज्ञान की विविध शाखाओं सम्बन्धी संदर्भ भी प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं। ये संदर्भ कालिदास के विज्ञान के ज्ञान के तो परिचायक हैं ही साथ ही कालिदास कालीन भारत में विज्ञान के विकास की स्थिति के मूल्यांकन में भी सहयोगी हैं। शोधकार्य की दृष्टि से कालिदास के समग्र साहित्य के विज्ञान सम्बन्धी उल्लेखों का संकलन, वर्गीकरण, एवं समीक्षात्मक अध्ययन एक रोचक विषय है। लेखक ने इस दिशा में किये गये कार्य के अवसर पर कालिदासकालीन भारत में विज्ञान के विकास का विदेशों में हुए समकालिन विकास से तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास भी किया है। वेद–ब्राह्मण-उपनिषद् आदि कालिदास के पूर्ववर्ती एवं इसी प्रकार परवर्ती वाङ्मय के अध्ययन के आधार पर भारत में हुए वैज्ञानिक विकास की शृंखलाबद्धता के विवेचन का भी लक्ष्य रखा गया है। इस कार्य के फलस्वरूप कालिदास की कृतियों में विज्ञान सम्बन्धी कई रोचक प्रकरण प्राप्त हुए हैं। वर्तमान लेख में कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के ज्योतिष एवं रसायन सम्बन्धी प्रमुख विषयों पर संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

रघुवंश में ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी संदर्भ

महाकवि कालिदास को नक्षत्र एवं फलित ज्योतिष का विशद ज्ञान था। 'रघुवंश' के छठे सर्ग में कालिदास द्वारा प्रयुक्त सुप्रसिद्ध सुभाषित "नक्षत्र तारा ग्रह संकुलापि ज्योतिष्मती चंद्रमसैव रात्रिः" उनके नक्षत्र ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान की सूक्ष्मता को निर्देशित करता है। नक्षत्र ज्योतिष के अनुसार तारा (स्टार) शब्द, किसी भी स्थिर, टिमटिमाने वाले आकाशीय पिण्ड के लिये प्रयुक्त होता है जबकि 'ग्रह' (प्लेनेट) का प्रयोग क्रांति मण्डलीय क्षेत्र में पश्चिम से पूर्व की ओर गतिशील, चमकदार आकाशीय पिण्डों के लिये किया जाता है। तारों के वे विशिष्ट आकृति वाले झुण्ड जो कि क्रांतिमण्डलीय क्षेत्र में ग्रहों के मार्ग के आसपास स्थित रहते हैं, नक्षत्र कहलाते हैं। उदाहरणार्थ, ध्रुव एवं अगस्त्य आदि तारे हैं, अश्विनी, पुष्य, मृग आदि नक्षत्र हैं, गुरू, शुक्र आदि ग्रह हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से आकाश में देखे जा सकते हैं। कालिदास ने नक्षत्र, तारा, ग्रह शब्दों का अलग अलग प्रयोग कर यह दर्शाया है कि इन तीन विभिन्न प्रकार के आकाशीय पिण्डों का अन्तर उन्हें ज्ञात था। यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कालिदास काल में भारतीय ज्योतिष विकास के इस सोपान तक पहुँच चुका था।

ऋग्वेद से लेकर कालिदास युग तक ज्योतिष की सिद्धान्त एवं फलित दोनों शाखाओं का उत्तरोत्तर विकास होता रहा। कालिदास ने एक स्थल पर प्रयोग किया है "बुबुधे न बुधोपम:" (रघु 1|47)। यह प्रयोग इस तथ्य का स्पष्ट परिचायक है कि कालिदास के समय तक बुध ग्रह के सम्बन्ध में प्रचुर ज्ञान प्राप्त किया जा चुका था। "अमी ये पचोक्षणा" आदि ऋचाओं का आधार लेकर इस लेख के लेखक ने इस प्रस्थापना की पुष्टि की थी ("साइन्स इन द वेदाज, कलकत्ता सिम्पोजियम व्हाल्यूम, बुल० निसी० 1963, पृ० 94–104) कि ऋग्वेद काल में केवल पाँच

ग्रह ज्ञात थे। श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित (भारतीय ज्योतिष सूचना विभाग, उ० प्र०) का भी यही मत है। सत्ताइस नक्षत्रों के नाम तो अथर्ववेद में भी प्राप्त होते हैं किन्तु ग्रहों के सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत नहीं मिलते। वराहमिहिर की वृहत्संहिता में नवग्रह सम्बन्धी विस्तृत विवरण है। यदि वराहमिहिर को कालिदास का समकालीन माना जाय तो इस प्रस्थापना की पुष्टि होती है कि उस समय तक बुध जैसे क्षीण प्रकाश वाले एवं सर्वदा सूर्य के साथ रहने वाले ग्रह का एवं राहु, केतु जैसे काल्पनिक बिंदु ग्रहों का भी ज्ञान प्राप्त किया जा चुका था।

कालिदास ने रघुवंश के बारहवें सर्ग के अट्ठाइसवें श्लोक में विराध के द्वारा राम का मार्ग रोकने के प्रकरण में विराध की राहु से जो उपमा प्रस्तुत की है, वह ज्योतिष की दृष्टि से आलोच्य है। वस्तुतः चन्द्र का मार्ग किसी ठोस आकाशीय पिण्ड द्वारा नहीं रोका जाता। चन्द्र ग्रहण पृथ्वी की छाया के कारण होता है, यह तथ्य कालिदास युग में सैद्धान्तिक ज्योतिष की दृष्टि से ज्ञात था। यदि पौराणिक किंवदन्ति के दृष्टिकोण से यह उपमा देखी जाय तो विवाद का प्रश्न नहीं रहता किन्तु कालिदास के ज्योतिष के ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में यह उपमा अवश्य आलोच्य बन जाती है।

महाकवि कालिदास ने "सर्वासु मातृष्वपि........ नेता चमूनामिव कृत्तिकासु" (रघु 14|22) में राम की तीन माताओं की उपमा कृत्तिकाओं से दी है। कृत्तिका नक्षत्र जिसे आजकल नीहारिका पुंज माना जाता है, भारतीय नक्षत्र शास्त्रीय दृष्टि से छः दृश्य तारों का समूह है। महाभारत में भी कार्तिकेय जन्म प्रकरण (वनपर्व, अध्याय 230) में कृत्तिकाएं छः बतलाई गयी हैं। यदि कृत्तिकाओं एवं कार्तिकेय के स्नेह की प्रगाढ़ता की तुलना राम एवं उनके माताओं के स्नेह से की जाय तो बात अलग है, अन्यथा, "उपमा कालिदासस्य" वाले कवि की यह उपमा विचारणीया है।

रघु की विजय यात्रा के प्रकरण (रघु 4|21) में कालिदास ने इस नक्षत्र शास्त्रीय तथ्य का बड़ी निपुणता से प्रयोग किया है कि दक्षिणी गोलार्ध में वर्षा के उपरान्त अगस्त्य तारे का उदय प्रारम्भ हो जाता है। अन्य असंख्य तारों की तुलना में, अगस्त्य तारा अत्यधिक प्रकाशवान है, अतः "कुम्भयोनेर्महोजसः" में "महोजसः" शब्द का प्रयोग नक्षत्र शास्त्रीय तथ्य के उपयोग एवं रघु के "महोजसत्व" की ओर संकेत की दृष्टि से प्रशंसनीय है।

कालिदास ने समुद्र में ज्वार का कारण चन्द्रमा को माना हैं, (रघु 16|27) जो कि आधुनिक भूगोल, गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त एवं नक्षत्र ज्योतिष का सर्व विदित तथ्य है।

सिद्धान्त ज्योतिष का जनजीवन में उपयोग, अर्थात् फलित ज्योतिष के प्रारम्भ के संकेत यद्यपि वेदों में स्पष्टतः प्राप्य नहीं हैं किन्तु कालिदास साहित्य में इस सम्बन्ध में कई सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। "यात्रानुकूले हनि" (रघु 16|25) से यह ज्ञात होता है कि यात्राओं आदि के लिये शुभ दिन एवं मुहूर्त खोजे जाने लगे थे। कालिदास ने "ब्राह्म मुहूर्त" (रघु 5|26) शब्द का भी प्रयोग किया है। यह संदर्भ, कालिदास काल में मुहूर्त प्रणाली के प्रचलन का प्रतीक है। ज्योतिष के अनुसार 'मुहूर्त' समय की एक इकाई है एवं समय के मापन एवं ज्ञान का एक साधन है। भारतीय संस्कृति में ब्राह्म मुहूर्त्त का महत्व सर्वविदित है। फलित ज्योतिष के अनुसार पुष्य नक्षत्र बड़ा उत्तम माना गया है। (मुहूर्त्त चिंतामणि, नक्षत्र प्रकरण एवं वृहद्दैवज्ञ रंजन)। पुष्पराग मणि से भी इस नक्षत्र का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। कालिदास ने "तस्य प्रभानिर्जित पुष्प रागं पौष्यां तिथौ पुष्य मसूत पत्नी" (रघु 18|32) में फलित ज्योतिष सम्बन्धी इन मान्यताओं का सुन्दर निर्देशन किया है।

चन्द्र जैसे कमनीय राम के साथ, बुध जैसे लक्ष्मण एवं भरत रूपी गुरु की मनोहारी उक्ति की कालिदास ने सराहनीय कल्पना की है (रघु 13|76)। इसी प्रकार राम-लक्ष्मण के लिये पुनर्वसु नक्षत्र की उपमा देकर अपने ज्योतिष शास्त्रीय ज्ञान का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

चैत्र एवं वैशाख मासों के लिये कालिदास ने मधु एवं माधव शब्दों का प्रयोग किया है (रघु 19|7)। वैदिक

युग में भी ये ही नाम प्रचलित थे (वि० रा० शास्त्री, साइन्स इन द वेदाज, कलकत्ता सिम्पोजियम व्हाल्यूम, उपर्युक्त संदर्भ)। चान्द्र पद्धति के आधार पर चैत्र एवं वैशाख नाम ही व्युत्पन्न होते हैं। कालिदास के द्वारा मधु एवं माधव नामों का उपयोग उनके युग में वैदिक एवं सौर नामावली के प्रचलन का संकेत करता है।

रघुवंश में रसायन शास्त्र सम्बन्धी संदर्भ

रसायन शास्त्र का अध्ययन क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। पदार्थ की रचना के मूलभूत कारण से सम्बन्धित सिद्धान्त एवं प्रयोग, पदार्थों के गुण धर्मों का अध्ययन, पदार्थों के संघटनात्मक रासायनिक परिवर्तनों का अध्ययन आदि रसायन शास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

रसायन शास्त्र के इतिहास के प्रमुख मान्य ग्रंथ सामान्यतः पार्टिंगटन एवं होमयार्ड आदि विदेशी विद्वानों द्वारा ही लिखे गये हैं। कई कारणों से भारत में रसायन के विकास की परम्परा का एवं विकास के स्तर का विवेचन इन विद्वानों के ग्रंथों में उचित रूप में नहीं हो पाया है। अब उचित समय है जब हम भारत की देन का निष्पक्ष अध्ययन कर भारत को योग्य महत्व का स्थान दिला सकते हैं। यद्यपि डा० प्र० चं० राय एवं डा० सत्यप्रकाश आदि ने इस क्षेत्र में स्तुत्य प्रयास किये हैं किन्तु अभी भी बहुत बड़ा कार्य शेष है। इस दिशा में कालिदास साहित्य का अध्ययन विस्मृत शृंखलाओं को जोड़ने आदि की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है।

कालिदास ने कई स्थलों पर आसव शब्द का प्रयोग किया है। रसायन शास्त्र में आसवन (डिस्टिलेशन) क्रिया द्वारा प्राप्त द्रव आसव कहे जाते हैं। आधुनिक अर्थों में एलकोहाल, सुरा या शराब आदि शब्द आसवों के लिये प्रयुक्त होते हैं। रघु की दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में" "ताम्बूलीनाम् दलेस्तत्र......नारिकेलासवं...पपुर्यशः" (रघु 3|42) योद्धाओं के द्वारा महेन्द्र पर्वत पर ताम्बूल पत्रों द्वारा नारिकेल आसव के पान का वर्णन है। अङ्ग देश के समुद्रतटीय प्रदेश में स्थित महेन्द्र पर्वत पर ताम्बूल लताएं अब भी प्रचुरता से प्राप्त होती हैं या नहीं तथा ताम्बूल पत्रों के दोनों में सुरापान सम्भव है या नहीं, यह एक विचारणीय विषय है। पारसीकों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त द्राक्षालताओं से परिपूर्ण, पश्चिमोत्तर क्षेत्र में, सैनिकों के द्वारा द्राक्षा-मद्य के पान का वर्णन आता है। आसवन की क्रिया का ज्ञान ऋग्वेदिक युग में भी था (वि० रा० शास्त्री, साइन्स इन द वेदाज, उपर्युक्त संदर्भ)। किन्तु वेदों में विविध प्रकार की सुराओं सम्बन्धी संकेत प्राप्य नहीं है। अतः उपर्युक्त विवेचन दर्शाता है कि कालिदास के युग तक इस दिशा में काफी विकास हो चुका था। इस प्रसंग में यह कहना उपयुक्त होगा कि कोटिलीय अर्थशास्त्र में "सुरा प्रसन्नासवारिष्ट मैरेय मधूना मुदक द्रोणं ..." के अनुसार छः प्रकार की सुराओं का स्पष्ट उल्लेख है तथा इन सुराओं की निर्माण विधियों का भी संकेत है।

कालिदास युग में स्वर्ण की शुद्धि की परीक्षा के लिये कसौटी (निकष) विधि एवं ज्वाला परीक्षण विधियों का उपयोग होता होगा, जैसा कि निम्न श्लोकों से स्पष्ट है "हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापिवा।" एवं "निकषे हेम रेखेन श्रीरासीदनपायिनी" (रघु 17|43) तत्वों की शुद्धि एवं अभिज्ञान के हेतु रसायन शास्त्र में ज्वाला परीक्षण विधि आज भी विकसित रूप में प्रचलित है।

पदार्थ के मूलभूत कारण के सम्बन्ध में कालिदास ने महर्षि कपिल की सांख्य दर्शन सम्बन्धी विचारधारा से सम्बन्धित कई प्रयोग किये हैं। "पचानामपि भूतानामुत्कर्ष पुपुक्षुर्गुणैः" (4|11) में पंचमहाभूतों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पाँच गुणों के विकास का उल्लेख हुआ है। यह सांख्यदर्शन सम्बन्धी प्रकरण है। इसी प्रकार "पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु" (2|57), "तं वेधा विदधे-नूनं महाभूत समाधिता" (1|29), एवं भूतानां महता षष्ठं (17|78) में सांख्य दर्शन सम्बन्धी विचारधारा ही उभरी है।

कालिदास युग में विविध प्रकार के रासायनिक पदार्थों

[शेष पृष्ठ 23 पर]

महान भारतीय भौतिकविद्-प्रो० सत्येन्द्र नाथ बोस

□ निरंकार सिंह

उनकी बड़ी बड़ी आँखों में मैने कर्मनिष्ठा की अनिर्वाण ज्योति को जलते देखा। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे वह दुर्भेद्य अन्धकार में छिपे विश्व के गूढ़ रहस्य को खोज रही हो। मुखमण्डल पर झुरियाँ पड़ गयी हैं लेकिन फिर भी वह महिमामय है, मानों प्रतिभा उससे प्रतिभासित हो रही हो। वाणी में अद्भुत ओज है। उनके बाल श्वेत हो गये हैं। मस्तक को देखने से अद्भुत गाम्भीर्य का आभास मिलता है। उनके कमरे में मैने दो व्यक्तियों के चित्र देखे हैं। एलबर्ट आइन्सटाइन और रोमा रोले। ऐसा जान पड़ता है कि वे अधिकतर कार्य करने की प्रेरणा इन्हीं मनीषियों से लेते हैं। उनके तख्त पर चारों ओर कागज व पुस्तकें पड़ी थीं। आज 76 वर्ष की आयु में भी वे आइन्सटाइन के सामान्य सापेक्षवाद के 'एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त' व साइक्लो-टिक समीकरणों में उलझे हुये हैं।

विश्व विख्यात वैज्ञानिक एलबर्ट आइन्सटाइन भी बोस के कार्य को देखकर हैरत में पड़ गये थे। उनके विशिष्ट कार्यों को देखते हुये इंग्लैंड की रायल सोसाइटी ने उनको अपना फेलो नियुक्त किया है। भारत सरकार ने आपको भौतिकी के राष्ट्रीय प्रोफेसर से सम्मानित किया है। 'क्वाण्टम स्टेटिस्टिक' के जन्मदाता के रूप में आप विश्व में प्रसिद्ध हैं। आइन्सटाइन भी आपके कार्य को महानता से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने बोस के कार्य का सफलता पूर्वक विस्तार किया और उसके आधार पर एक परमाण्विक गैस के लिये क्वाण्टम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त का नाम "बोस आइन्स स्टेटिस्टिक" पड़ा। परन्तु अब यह सामान्यतः "बोस स्टेटिस्टिक" के नाम से ही जाना जाता है। आइन्सटाइन द्वारा प्रतिपादित सापेक्षवाद को अच्छी तरह समझने वाले वैज्ञानिक वैसे ही इने गिने हैं और उसमें संशोधन का सुझाव देने वाले तो और भी कम। अस्तु 'बोस आइन्सटाइन स्टेटि-स्टिक' के प्रतिपादन से अपनी तरुण अवस्था में ही प्रो० सत्येन ने अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया और सारे विश्व में अपनी विद्वता की धाक जमा दी।

बोस आइन्सटाइन स्टेटिस्टिक के सिद्धान्त के प्रतिपादन के फलस्वरूप महान वैज्ञानिक मैक्सवेल और बोल्टजमान द्वारा प्रतिपादित अणुओं के व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं का भी समाधान हो गया। आज विज्ञान जगत में परमा-णुओं के मौलिक कणों की एक श्रेणी का नाम प्रो० बोस के नाम पर बोसोन रखा गया है।

1934 में आपके सापेक्षवाद सम्बन्धी मौलिक निबन्ध आइन्सटाइन की टिप्पणियों सहित प्रकाशित हुये। इन निबन्धों की विश्व के प्रमुख वैज्ञानिक में बड़ी चर्चा हुई। प्रो० बोस की ख्याति दिनोदिन बढ़ती गई। 1924 में ही बोस ने प्लांक के विकीकरण नियम से सम्बन्धित एक सूत्र को बड़े ही क्रान्ति कारी विचारों के साथ नये ढंग से जर्मन भाषा की एक पत्रिका में प्रस्तुत किया। महान भौतिकविद् आइन्सटाइन ने उनके इस कार्य का अनुवाद किया। अनुवाद के अन्त में उन्होंने अपनी ओर से इस कार्य की प्रसंशा में निम्न पंक्तियाँ जोड़ दीं।

"मेरे विचार में प्लांक के सूत्र की जो व्युत्पत्ति बोस ने दी है वह प्रगति की दिशा में एक महत्वपूर्ण चरण है। यहाँ प्रयुक्त विधि एक आदर्श गैस का क्वाँटम सिद्धान्त भी व्यक्त करती है, जैसा कि मैं कहीं अन्यत्र सिद्ध करूँगा।"

महान वैज्ञानिक होते हुये भी आप कला, संगीत और साहित्य के बड़े प्रेमी हैं। बंगाली, हिन्दी, अंग्रेजी के अतिरिक्त यूरोप की कई भाषाओं पर आपका विशेष अधिकार है। प्रो० बोस को छोटे बच्चों से विशेष स्नेह है यही कारण कि उनके पड़ोस के बच्चे बेधड़क सवाल हल कराने उनके पास पहुँच जाते हैं। गणित के साथ ही वे बच्चों के साथ शतरंज भी चाव से खेलते हैं।

विज्ञान का विकास करने और उसे सतत रूप से आगे बढ़ाने के लिये जिन वैज्ञानिकों ने योग दिया है उनमें प्रो० बोस का नाम भी सदा अग्रगण्य रहेगा। प्रो० सत्येन्द्र नाथ बोस का जन्म सन् 1864 में वर्ष के प्रथम दिन हुआ था। उनका विद्यार्थी जीवन बड़ा प्रतिभापूर्ण था। उन्होंने बी० एस० सी० आनर्स व एम० एस० सी० की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुये पास की। कई वर्षों तक प्रो० बोस ढाका तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में विज्ञान विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते रहे। कुछ समय तक वे विश्वभारती के वाइस चान्सलर भी रह चुके हैं। इन दिनों कलकत्ते में अपने घर पर स्वतन्त्र रूप से वैज्ञानिक कार्य में अनुसंधानरत हैं। अभी देश को आप से बहुत कुछ आशायें हैं।

● ●

लेखकों से निवेदन

- **'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।**
- **लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।**
- **अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।**

तैरते हुए महाद्वीप

बाईस करोड़ वर्ष पहले हमारी पृथ्वी के विशाल महाद्वीप कहाँ थे और उनकी स्थिति के कारण दुनिया की क्या शक्ल थी ? ढाई करोड़ वर्ष बाद ये विशाल महाद्वीप कहाँ होंगे और उन की स्थिति के कारण दुनिया की क्या शक्ल होगी ?

दोनों ही सवाल काफी रोचक हैं और पिछले लगभग डेढ़ सौ बरस के दौरान इन के कम-से-कम पहले सवाल का जवाब पाने की कोशिश दुनिया भर के वैज्ञानिक करते रहे हैं। लेकिन ये सवाल जितने मनोरंजक हैं उतने आसान नहीं हैं। इन सहज दीखने वाले प्रश्नों के उत्तर किसी पहेली की तरह एक-एक टुकड़ा जोड़ कर ही पाये जा सकते हैं। ये सूत्र कभी समुद्र की गहराइयों में मिलते हैं, कभी पृथ्वी के चिप्पड़ की परतों में और कभी विलुप्त जंतुओं के अवशेषों में। कुछ महीनों पहले एंटार्कटिका महाद्वीप के विशाल बर्फीले मैदान पर मिले एक विलुप्त जंतु के साक्ष्य पर वैज्ञानिकों ने परिणाम निकाला था कि किसी जमाने में आस्ट्रेलिया, दक्षिण एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका महाद्वीप एक दूसरे से जुड़े हुए थे। अब अमेरिका के दो वैज्ञानिकों **डॉ० रॉबर्ट एस० दिएज, डॉ० जॉन सी० होल्डेन** ने इसी परिणाम तक पहुंचने के लिये दूसरा रास्ता अपनाया है। अपने परिणाम तक पहुंचने के लिए उन्होंने जिन दिशाओं में अध्ययन किया वे हैं :

- महाद्वीपों के 'तैरने' (फिसलने) की रफ्तार,
- उन के फिसलने की दिशा,
- उन की सीमा-रेखाएँ,
- उन की वर्तमान स्थितियाँ,
- समुद्र-गर्भीय पर्वत-श्रेणियों का विस्तार,
- चुम्बकीय जल-क्षेत्रों की पुरानी दिशाएँ, और
- भूगर्भीय संरचना में समानताएँ.

एक विशाल महाद्वीप : इन तमाम सूत्रों का अध्ययन बरसों तक करने के बाद दिएज़ और होल्डेन ने नतीजा निकाला है कि अब से 22 करोड़ 50 लाख वर्ष पहले, पर्मियन युग में, सभी महाद्वीप एक दूसरे से जुड़े हुए थे और पृथ्वी पर केवल एक विशाल महाद्वीप था। जाहिर है कि महासागर भी केवल एक ही था। इस महाद्वीप को **पैंजिया** कहा जाता है। पैंजिया के जमाने में दक्षिण अमेरिका अफ्रीका से सटा था और अमेरिका का पूर्वी समुद्र-तट उत्तरी अफ्रीका के भूखण्ड से चिपका था। भारत, दक्षिण अफ्रीका और एंटार्कटिका के बीच दबा हुआ था और आस्ट्रेलिया महाद्वीप एंटार्कटिका का एक हिस्सा था। दिएज़ और होल्डेन के अनुसार यह विशाल महाद्वीप पृथ्वी के एक किनारे पर 60 अंश पश्चिम देशांतर से 120 अंश पूर्व देशांतर तक स्थित था। उस समय तक पृथ्वी की उम्र क़रीब साढ़े 4 अरब वर्ष हो चुकी थी, कुछ पौधे उग आये थे, कुछ कीट-पतंगे भुनभुनाने लगे थे और कुछ उरग जल और थल दोनों में विचरण करने लगे थे।

लेकिन पैंजिया की उम्र ज्यादा नहीं रही। क़रीब 50

लाख वर्ष बीतते-बीतते वह टुकड़ों में बँटने लगा। सब से पहले वह दो बड़े हिस्सों में बँटा—उत्तर में **लॉरेशिया और** दक्षिण में **गोंडवानालैंड**। लॉरेशिया में उत्तरी अमेरिका और एशिया सम्मिलित थे तथा गोंडवानालैंड में दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया और एंटार्कटिका। अब से 13 करोड़ 50 लाख वर्ष के आसपास ये दो विशाल भूभाग और छोटे भागों में विभाजित हो गये और 6 करोड़ 50 लाख वर्ष के आसपास ये महाद्वीप धीरे-धीरे फिसलते हुए एक दूसरे से अलग होते गये और अंत में आज की स्थिति में पहुंच गये.

पर्त दर पर्त : बहुत जमाने से सोचा जा रहा है कि महाद्वीप हमेशा से एक ही जगह पर स्थिर नहीं है, बल्कि धीरे-धीरे फिसलते रहते हैं। यह फिसलना क्यों होता है, इस बारे में अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किये जा चुके हैं। भूगर्भ-वैज्ञानिकों का अनुमान है कि महाद्वीप और महासागर दोनों की स्थिति ठीक वैसी ही है जैसे पुरानी जमी हुई बर्फ पर नयी बर्फ़ की परत जम जाये। जब गर्मी पड़ती है तब नयी बर्फ़ की परत गर्म हो कर थोड़ी पिघलती है और पुरानी बर्फ़ की तह पर फिसलने लगती है, जब कि पुरानी बर्फ़ की तह पहले की तरह जमी रहती है। भूगर्भ-वैज्ञानिकों का मत है कि बर्फ की इन्हीं परतों पर हमारी पृथ्वी के महाद्वीप और महासागर लगभग 80 किलोमीटर या उस से भी अधिक मोटी एक ठोस पदार्थ की पर्त पर सवार थे। ठोस पदार्थ की यह पर्त लाखों वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र पर फैली हुई है। ये विशालकाय पर्तें पृथ्वी के गर्भ-क्रोड़ पर तैरती अथवा फिसलती रहती हैं। दिएज़ और होल्डेन का अनुमान है कि महाद्वीपों और महासागरों के फिसलने का यही असली कारण है।

अन्य भूगर्भ-वैज्ञानिकों का भी यही विचार है। **डॉ० जॉन० एम० बर्ड** और **डॉ० जॉन एफ़० डेवी**, दो अमेरिकी भूगर्भ-वैज्ञानिकों का खयाल है कि इस तरह फिसलते हुए जब भारत उपमहाद्वीप का भूखण्ड एशिया महादीप के भूखण्ड से जा टकराया तो एक गहरी खाई बन गयी। दोनों भूखण्ड एक-दूसरे को दबाते रहे और उन के किनारे नीचे की ओर धँसते गये। ऊपर का पदार्थ नीचे गर्म क्रोड़ की तरफ़ चलता गया। आखिर में जब दोनों भूखण्ड एक-दूसरे से जा टकराये तब उनका अपेक्षाकृत हल्का पदार्थ मुख्य भूखण्ड से अलग हो कर ऊपर उठ गया और बाद में आज के हिमालय पर्वत का आकार ग्रहण कर सका। डॉ० बर्ड का कहना है कि पर्वतों के निर्माण का यह एक तरीक़ा है। दूसरा ढंग वैसा है जैसा दक्षिण अमेरिका के ऐंडीज पर्वत श्रेणी के निर्माण के समय हुआ था। तब महासागर वाली तह खिसक कर महाद्वीप वाली तह के नीचे जा पहुँची थी और पृथ्वी की सतह ऊपर उठ आयी थी, जो बाद में ऐंडीज पर्वत-श्रेणी कहलायी।

दूसरे भूगर्भ-वैज्ञानिकों को डॉ० बर्ड का यह स्पष्टीकरण हर दिशा में उचित नहीं मालूम पड़ता, बर्ड के अनुसार पर्वत-श्रेणियों का निर्माण केवल इन्हीं दो तरीक़ों से हो सकता है, जब कि दूसरे भूगर्भ-वैज्ञानिकों का तर्क है कि इन दोनों ही विधियों से संसार के कई पर्वत-श्रेणियों के निर्माण का कारण नहीं बताया जा सकता, वे सोवियत संघ की ऊराल पर्वत-श्रेणी का उदाहरण लेते हैं। उनका कहना है कि यह पर्वत-श्रेणी महाद्वीपों के फिसलना आरम्भ करने के लाखों वर्ष पहले बन चुकी थी, जबकि बर्ड के सिद्धांतानुसार वह बन ही नहीं सकती थी, तब आखिर वह कैसे बन पायी ? बर्ड ने अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहते हुए इस या इस जैसी अन्य पर्वत-श्रेणियों के निर्माण का स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने कहा है कि बहुत समय पहले महाद्वीपीय पर्त्तें थीं, जो खुल गयी थीं और पर्वत-श्रेणियों का निर्माण करने के बाद बंद हो गयीं।

भविष्य में क्या होगा ? : आज के भूगर्भ-वैज्ञानिक पृथ्वी के अतीत को जानने की जो कोशिश कर रहे हैं वह अतीत की सही जानकारी प्राप्त करने की दिशा में कितनी सफल होगी यह तो हम नहीं जानते, लेकिन इतना ज़रूर समझ चुके हैं कि पृथ्वी के महाद्वीप और महासागर आज जिस आकार-प्रकार के हैं उन का वही आकार-प्रकार अतीत में नहीं था और भविष्य में भी नहीं रहेगा। पैमाइश की जा चुकी है कि सभी महाद्वीप कम या अधिक रफ्तार से लगा-

हैं। उन की अधिकतम रफ्तार प्रतिवर्ष 4 इंच या लगभग 10 सेंटीमीटर होती है। जरा कल्पना तो कीजिए कि आज से ढ़ाई करोड़ वर्ष बाद पृथ्वी की स्थिति क्या होगी ?

उत्तरी अफ्रीका उत्तर में खिसकता हुआ भूमध्य सागर को रौंदता हुआ यूरोप से जा मिलेगा और भूमध्य सागर अधिक से अधिक एक बड़ी झील बन कर रह जायेगा। उधर आस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया और फ़िलिस्तीन एक दूसरे से जुड़ जायेंगे और शायद इस तरह बना भूभाग हिंद-चीन से मिल कर एशिया का एक हिस्सा बन जायेगा। तीसरी तरफ़ अमेरिका के पश्चिमी तट के तमाम नगर और राज्य एक-दूसरे के पास खिसक जायेंगे और उत्तरी अमेरिका काफ़ी चपटे आकार का हो जायेगा। अपनी दुनिया की एक विशेष आकृति देखने के अभ्यस्त हम लोगों को भविष्य की दुनिया की वह आकृति शायद अच्छी न लगेगी, लेकिन प्रकृति की अदम्य शक्तियों के आगे मानव का क्या वश है ?

इन्फ्लुएंजा की चमत्कारी औषधि

फ्लू की रोकथाम करने वाली नयी दवा इन्टरफेरोन का इतिहास दस साल से ज्यादा का नहीं है। इसका समारम्भ लन्दन के राष्ट्रीय चिकित्साशोध संस्थान से हुआ। इस दवा की खोज एक अंग्रेज वैज्ञानिक ए० आइज़क व उनके सहयोगियों ने की। उनकी शोध का विषय था "प्रायोगिक इंफ़्लूएंजा में वाइरसों (विषाणुओं) की तथा-कथित दखलन्दाजी की प्रक्रिया।" इस प्रक्रिया का सार-तत्व यह है कि शरीर के जो ऊतक वाइरसों से ग्रस्त हो जाते हैं वे अन्य वाइरसों के प्रभाव से प्रतिरक्षित हो जाते हैं। शोध-कर्ताओं ने इस प्रकार की प्रतिरक्षा-क्षमता प्रदान करने वाले घटक का पता लगा लिया। पहले से अज्ञात यह घटक एक ऐसा निम्न आणविक प्रोटीन है जो कोशिकाओं के अन्दर "पहले आने वाले" वाइरसों के प्रभाव से उत्पन्न होता है। इसी प्रोटीन को इन्टरफेरोन कहा गया।

इन्टरफेरोन की खोज, वस्तुतः, रोग प्रतिरक्षा विज्ञान के नये अध्याय की प्रथम पंक्ति है। रोग प्रतिरक्षा विज्ञान रोग-संक्रमण को जीव-शरीर द्वारा ग्रहण न करने की प्रक्रिया का अध्ययन करता है।

इन्टरफेरोन की उत्पत्ति विशिष्ट स्थिति पर निर्भर नहीं है। दूसरे शब्दों में यह पदार्थ एक विशेष वाइरस के प्रभाव से नहीं बल्कि किसी भी वाइरस के प्रभाव से उत्पन्न हो सकता है। परन्तु एक भिन्न व्यक्तिगत इन्टरफेरोन भी होता है। यह इन्टरफेरोन विभिन्न जानवरों की विभिन्न प्रजातियों के ऊतकों में उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ, एन्थ्रोपायड (मानवसम) वनमानुषों में उत्पन्न होने वाले इन्टरफेरोन की रासायनिक संरचना मनुष्य के ऊतकों में उत्पन्न होने वाले इन्टरफेरोन से भिन्न होती है। इन्टरफेरोन की उत्पत्ति के विपरीत विभिन्न जीव-शरीरों में उत्पन्न होने वाले प्रतिविष (एन्टीबाडी) अत्यन्त विशिष्ट होते हैं: जैसे चेचक वाइरस को नष्ट करने वाले प्रतिविष पोलियो या अन्य बीमारियों के वाइरसों के खिलाफ कुछ भी करने में असमर्थ होते हैं।

मनुष्य को हर सम्भव प्रकार के रोग-संक्रमण से बचाने के लिए, जीव-शरीर में, कई प्रकार के प्रतिविषों को कृत्रिम रूप से उत्पन्न कराने की आवश्यकता है। यानी जितने रोग उतने प्रतिविष। इसी वजह से चेचक, पोलियो आदि से सुरक्षित रहने के अलग-अलग प्रकार के टीकों की जरूरत होती है। परन्तु इसके साथ ही यह भी सच है कि हर प्रकार की बीमारी से बचाने के लिए टीके तैयार करना व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव है। खासतौर पर इंफ्लुएंजा जैसी बीमारियों में, क्योंकि ये बीमारियाँ अलग-अलग तरह के वाइरसों से उत्पन्न होती हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में टीकों और विशाल जन-समुदायों को टीके लगाने का काम महत्वपूर्ण है लेकिन आज के चिकित्सक सिर्फ इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हैं।

रोग-प्रतिरोध शक्ति बढ़ाने के उपायः आजकल हम अपने लगभग हर नागरिक को (उसके जन्म-दिन से ही) प्रतिरक्षात्मक टीके लगा देते हैं। पर हमें यह नहीं मालूम कि इस प्रकार के टीके सबके लिए जरूरी हैं या नहीं। चिकित्सकों ने यह बात नोट की है कि हर व्यक्ति की रोग-निरोधी क्षमता में अन्तर होता है। उदाहरणार्थ फ्लू की भयानकतम महामारी में भी कुछ लोगों में रोग के तार खिसकते रहते

लक्षण भी नजर नहीं आते और कुछ को थोड़ी सी तकलीफ भर होती है। यह बात फ्लू ही नहीं बल्कि बहुत सी अन्य बीमारियों पर भी लागू होती है। कुछ व्यक्तियों में इन बीमारियों के विरुद्ध प्राकृतिक प्रतिरोध क्षमता होती है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इसी प्रतिरोध को बढ़ाने के तौर-तरीके खोज रहा है।

जो घटक जीव-शरीर की प्रतिरोध क्षमता को निर्धारित करते हैं उनमें ऊतकों की इन्टरफेरोन उत्पन्न करने की शक्ति एक है। अलग-अलग व्यक्तियों में यह शक्ति कम-ज्यादा होती है। प्रत्यक्षतः यह शक्ति मुख्यतः जीव-शरीर के अन्तर्जात लक्षणों से निर्धारित होती है। उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार जन-समुदाय के 12 से 35 प्रतिशत व्यक्तियों के आनुवंशिक तत्व ऐसे होते हैं कि उनके शरीर बहुत कम मात्रा में इन्टरफेरोन उत्पन्न करते हैं। इसके अलावा यह गुण उम्र पर भी निर्भर करता है। दो वर्ष की आयु तक के शिशुओं तथा 60-65 वर्ष के वृद्धों के शरीर बहुत कम इन्टरफेरोन बनाते हैं।

शरीर के अन्दर इन्टरफेरोन की उत्पत्ति वाह्य स्थितियों पर भी निर्भर करती है। उदाहरणार्थ, जलवायु या (अधिक सही बात कहें तो) वायु के तापमान पर। मानव–शरीर में गर्म दिनों की अपेक्षा शिशिर व शरद्काल में बहुत कम इन्टरफेरोन बनता है। यही कारण है कि गर्मियों की ऋतु में 'फ्लू' की बीमारी सर्दी के दिनों की अपेक्षा कम होती है ? जाहिर है कि यदि शरीर के ऊतकों में इन्टरफेरोन उत्पन्न करने की शक्ति बढ़ा दी जाय तो शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता भी बढ़ाई जा सकती है।

उज्ज्वल भविष्य: यह सोवियत अनुसंधानकर्ताओं का ही काम था कि उन्होंने ही पहले-पहल ऐसा व्यावहारिक कार्य किया जिसके फलस्वरूप हमारे लिए इस बात पर बल देना सम्भव हो गया कि इंफ्लूएंजा की रोकथाम में इन्टर-फेरोन का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। इस तरह का काम सोवियत स्वास्थ्य मंत्रालय के संक्रामक-रोग-विज्ञान के शोध-संस्थान तथा सोवियत विज्ञान अकादमी के एन० एफ० गामालेइया संस्थान के वैज्ञानिकों व डाक्टरों के सहयोग से किया गया है। सन् 1969 में फैली इंफ्लुएंजा-महामारी के दौरान इन्टरफेरोन से तैयार दवाएँ लगभग 12,000 वयस्कों व बच्चों को दी गयीं। इससे लगभग 60% लोगों में इस बीमारी का प्रकोप नहीं पड़ा। इसके अलावा चेरिओो-शिकन्स्की जिले के 78 वें पोलीक्लीनिक के डाक्टरों ने 140 मरीजों को सूघंने की एक ऐसी दवा दी जो इन्टरफेरोन से तैयार की गयी थी। इस प्रकार की चिकित्सा बहुत लाभदायक सिद्ध हुई। एक ही दिन में बुखार और बीमारी के सारे लक्षण गायब हो गये।

जाहिर है कि इंफ्लुएंजा की चिकित्सा करने के स्थान पर रोग को होने ही न देना अधिक अच्छा है। इंफ्लुएंजा विरोधी टीके लगाने के साथ-साथ इन्टरफेरोन का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इसमें चिकित्सा की तुलना में कम दवा खर्च होती है। रोग के रोक-थाम का काम सबसे पहले बच्चों और बूढ़ों पर किया जाना चाहिए क्योंकि इनमें रोग-विरोधी क्षमता, अपेक्षाकृत, कम होती है। शेष लोगों को बीमारी से बचाने के लिए 'इन्टर-फेरोजेन' दे देना ही काफी है। यह पदार्थ जीव-शरीर के लिए हानिरहित होते हैं पर वाइरस जैसी कोशिकाओं के लिए घातक हैं और उनके अन्दर और अधिक इन्टरफेरोन उत्पन्न करने में उद्दीपक का काम करते हैं।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना सम्भव होगा कि इन्टरफेरोन का गहन उत्पादन करने वाली पहली प्रयोग-शाला भी सोवियत संघ में ही बनायी गई है। अब इस प्रकार की प्रयोगशालाओं का जाल सा बिछाया जा रहा है। आशा की जाती है कि इन्टरफेरोन अनेक प्रकार के वाइरसों का मुकाबला करने में समर्थ होगा। इन्टरफेरोन के इस मूल्यवान गुण को याद रखना चाहिए कि यह एक हानिरहित दवा है। इससे न तो कोई आनुवंशिक खराबी पैदा होती है न किसी प्रकार की एलर्जी।

विज्ञान-वार्ता

चिकित्सोपचार में अंतरिक्ष-कार्यक्रम का योगदान

अमेरिका में चल रहे अंतरिक्ष कार्यक्रम से सम्बन्धित अनुसन्धान से प्रादुर्भुत चिकित्सा सम्बन्धी सफलताओं ने चिकित्सोपचार के सुधार में एक नई आशा की किरण दिखाई है। इस दिशा में उत्तरोत्तर सुधार हो रहा है परन्तु इसका प्रचार अभी बहुत कम हुआ है।

अमेरिका में सर्वाधिक पाया जाने वाला मूत्र-नली से सम्बन्धित रोग अब स्वचल प्रविधि द्वारा आसानी से बड़े पैमाने पर पहचाना जा सकता है। इस प्रविधि के अंतर्गत एक संवेदनशील फोटोइलेक्ट्रानिक रिकार्डर का प्रयोग होता है। यह उपकरण उस प्रकाश की चमक को अंकित करता है, जो उस समय उत्पन्न होती है जब जुगुनू की पूँछ के रसायन (लुसिफेरिन और लुसिफेरेस) किसी रोगी के मूत्र में सन्निहित कीटाणुओं के सम्पर्क में आते हैं। यह उपकरण किसी मूत्र के नमूने का परीक्षण 15 मिनट में करता है और परिणाम के लिये किसी अन्य नमूने को 1 मिनट में स्वीकार करता है। परीक्षण का पूरा कार्य स्वचल होता है। इसके विपरीत किसी भी चिकित्सक को मूत्र परीक्षण करने में 24 से 48 घन्टे तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

इसके अलावा अन्तरिक्ष कार्यक्रम के द्वारा मधुमेह, गुर्दे एवं मूत्राशय के रोग का बड़े पैमाने पर उपचार सम्भव हो गया है। एक्स-रे, रक्तचाप के माप, हृदय के रोगी के धड़कन की माप, बच्चों को शीत से बचाने का स्वचालित उपकरण एवं पंगुओं के लिये स्वचालित आठ पहियों वाली कुर्सी अन्तरिक्ष कार्यक्रम की देन के उदाहरण हैं। इस कुर्सी का नियंत्रण अपंग अपनी ठुड्ढी से भी कर सकता है।

अंतरिक्ष में प्रयुक्त करने के लिये विकसित नये टिकाऊ धातु मिश्रणों और चिकनाहट उत्पन्न करने वाले पदार्थों का परीक्षण अब कूल्हे की हड्डी जोड़ने वाले पदार्थ या रोगियों को चिकनाहट प्रदान करने वाले पदार्थों के रूप में हो रहा है। पशुओं के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्रयोग काफी आशाजनक रहे हैं।

खारी जमीनों में फसल

भारतीय कृषि अनुसंधानशाला, नयी दिल्ली ने खारी जमीन में खेती करने का एक नया तरीका निकाला है। इसे गड्ढों द्वारा सिंचाई करने का तरीका कहते हैं। इस तरीके में मेंड़दार क्यारियां बनायी जाती हैं और इन क्यारियों की एक मेंड़ छोड़ कर दूसरी मेंड़ के बगल वाले गढ़े के किनारे पर बीज बोया जाता है। जिस गढ़े में बीज बोया जाता है, सिंचाई केवल उसी में की जाती है, बाकी को खाली छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार सिंचाई वाले गढ़े का लवण सूखे गढ़े में आ जाता है और बीज के सामान्य रूप से अंकुरित होने के साथ-साथ फसल की वृद्धि भी सामान्य रूप से होती है।

खारी जमीनों में इस तरीके को अपना कर मक्का, आलू, कपास तथा अनेक सब्जियों की फसलें ली जा सकती हैं।

बाजरे में चेंपा की बीमारी

पंजाब के लुधियाना कृषि विश्वविद्यालय की रिपोर्ट से पता चला है कि बाजारे की फसल में बालों को लगने

वाली चेंपा बीमारी की रोकथाम कई तरीकों से की जा सकती है। इस बीमारी से बालों में कम दाने पड़ते हैं।

रिपोर्ट में बताया गया है कि इस बीमारी की रोक-थाम के लिए बोने के लिए बीज ऐसी फसल का लें जिसे यह बीमारी न लगी हो। इस बीमारी में बालों में मधु बिन्दु दिखाई देता है जो इसका सबसे पहला लक्षण है। ऐसी बालों को निकाल कर जला दें।

इसके अलावा, फसल पर आखिरी पत्ती निकलने की अवस्था में 0·5 प्रतिशत जिरम के गाढ़े घोल का छिड़काव भी करना चाहिये या आक्सीक्योराइड और जिनेब दवाओं को 1:2 के अनुपात में मिला कर उसके मिश्रण को 0·2 प्रतिशत गाढ़े घोल के हिसाब से छिड़कें। घोल का छिड़काव पाँच दिन के अन्तर से दो या तीन बार करना चाहिये।

● ●

[पृष्ठ 15 का शेषांश]

का उपयोग होता था। चन्दन, अगुरु, कालागुरु से निर्मित वर्त्तिकाओं एवं सुगन्धित धूप चूर्णों के प्रयोग के कई संकेत (6|8, 8|71 आदि) प्राप्य हैं। अन्य रासायनिक एवं वानस्पतिक पदार्थों में, शिलाजीत, हरिचन्दन, महावर, अंजन, गोरोचन, कस्तूरी, शमीपत्र, लाज आदि उल्लेख-नीय हैं। दीपक जलाने के लिये इंगुदि के तेल का प्रयोग होता था। पानी को पीला रंग देने वाला कोई चूर्ण तैयार किया जाता था या अन्य कोई विधि प्रचलित थी। सोने की पिचकारियों से रंगीन पानी छिड़कने की परिपाटी भी प्रचलित थी जैसा कि "वर्णोदकेः काञ्चन शृङ्गमुक्तैः" (16|70) से स्पष्ट होता है।

कालिदास के युग में कई प्रकार के रत्न (क्रिस्टल) उदाहरणार्थ सूर्यकान्त, बिल्लोर, पद्मराग, इन्द्रनील, मुक्ता, शंख, प्रवाल, स्फटिक आदि प्रयोग में लाये जाते थे। उनके युग में बड़े स्तर पर रत्नों का एवं अन्य खनिज रासायनिक पदार्थों का उत्खनन होता था जैसा कि निम्न श्लोकांशों से प्रतिबिम्बित होता है, "खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः "(17|-67)........."रत्नोपहारैरुदितैः खनिभ्यः"।

कालिदास साहित्य में विज्ञान की दृष्टि से अनुसंधान के लिये प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। कालिदास साहित्य के विद्वान शिक्षकों, छात्रों एवं पाठकों के लिये, आधुनिक वैज्ञानिक विकास की पृष्ठभूमि में, कालिदास के साहित्यगत किन्तु विज्ञान से सम्बन्धित संदर्भों की नूतन दृष्टिकोणों से व्याख्या, एक रोचक विषय हो सकता है। प्रस्तुत लेख विज्ञान के संदर्भ में कालिदास साहित्य के शोध की दिशा में कई तथ्यों पर विस्तृत विवेचन की आवश्यकता का संकेत मात्र है।

● ●

सम्पादकीय

विज्ञान सप्ताह

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' के तत्वावधान में भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाली वैज्ञानिक पत्रिकाओं की ओर से सारे देश में धूम धाम के साथ 'विज्ञान सप्ताह' मनाया जा रहा है। यह पहला अवसर है जब 'विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की दिशा में ऐसा सुसंगठित प्रयास किया जा रहा है। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान प्ररिषद नई दिल्ली की प्रेरणा से 'भारतीय विज्ञानप त्रिका समिति' का गठन आज से $2\frac{1}{2}$ वर्ष पूर्व किया गया था। अब वह गतिशील हो उठी है। जिसका प्रमाण है उसकी गतिविधियों का मुखर हो उठना। यद्यपि इस समय भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति के सदस्यों की संख्या 12 है किन्तु अनेक नवीन सदस्यों के बनने की आशा है। प्रयास यही हो रहा है कि विज्ञान का सन्देश जनजन तक पहुंचने के लिये विभिन्न भारतीय भाषाओं को माध्यम स्वरूप चुना जा सके। हर्ष का विषय है कि मद्रास, उदयपुर, हैदराबाद तथा दिल्ली से प्रकाशित होने वाली वैज्ञानिक पत्रिकाओं की ओरसे इस अवसर पर अत्यन्त विचारोत्तेजक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया है।

'विज्ञान सप्ताह' का मुख्य उद्देश्य है सामान्य जनता को विज्ञान की उपयोगिता से परिचित कराना। यह परिचय न केवल लोकप्रिय वैज्ञानिक भाषणों के द्वारा वरन् उपयुक्त प्रदर्शिनियों एंव रेडियो तथा टेलीविजन के माध्यम से भी जन-जन को दैनिक जीवन में विज्ञान की उपयोगिता के प्रति जागरूक बनाना है।

सबसे बड़े उल्लास की बात तो यह है कि विज्ञान सप्ताह की सफलता के लिये प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी, सूचना और प्रसारण मंत्री श्री सत्यनारायण सिनहा, टाइम्स आफ इंडिया के प्रधान सम्पादक श्री बी० जी० वर्गीज, राष्ट्रीय भौतिक अनुसंधान शाला के निदेशक डा० अजित राम वर्मा तथा वैज्ञानिक एंव औद्योगिक अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली के महा निदेशक डा० आत्माराम ने अपने शुभ संदेश भेजे हैं। हम डा० वर्मा के इस विचार से पूर्णतया सहमत हैं कि विज्ञान को प्रयोगशालाओं और अध्ययनकक्षों तक सीमित न रखकर उसे जन-जन का विषय बनाना है। 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' के विकास की सारी जिम्मेदारी विज्ञान पत्रिकाओं पर है। वे इसे निष्ठा एवं लगन के साथ निभायें, यही शुभेच्छा है।

भारत की स्वाधीनता की 23 वर्ष की अवधि में भी हम पूर्णरूपेण विज्ञान की चुनौती को स्वीकार करने में समर्थ नहीं हो पाये, यह हम सबों के लिये विचारणीय विषय है। अब आगे और समय न खोकर सभी प्रकार से जागरूकता का परिचय दें, विज्ञान को लोकप्रिय बनावें, उपयोगी साहित्य का सृजन करें, और स्वस्थ वैज्ञानिक परम्परा का विकास करें। हमारे पूर्वज सर्वगुण सम्पन्न एवं दिव्य शरीरधारी पुरुष हो चुके हैं। वर्तमान को भी हम उसी प्रकार से हस्तामलक करके अपनी योग्यता का परिचय दें। वह समय आ गया है जब अन्य राष्ट्रों का मुखापेक्षी न बन कर भारत को आत्मनिर्भरता का प्रमाण प्रस्तुत करना है। 'विज्ञान सप्ताह' जैसे आयोजनों से समुचित दिशा का निर्देश हो सकेगा।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० |3|5|

भाग 108 — माघ 2027 विक्र०, 1892 शक, जनवरी 1971 — संख्या 1

आनुवंशिकता का सिद्धान्त और उसके उपयोग

□ डा० जटा शंकर द्विवेदी

सामान्यतः यह देखने में आता है कि मुखाकृति, स्वास्थ्य तथा अन्य अनेकों गुणों में पिता और पुत्र में सामञ्जस्य होता है। ऐसा भी देखा गया है कि कुछ रोग भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत के रूप में मिलते हैं। कभी कभी दो पीढ़ियों में गुणों में वैषम्य भी होता है। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न उठता है कि जो प्राणी जन्म के कारण एक दूसरे से सम्बन्धित हैं उनके गुणों में साम्य या वैभिन्न की उत्पत्ति किस प्रकार होती हैं। इस सम्बन्ध में खोज बीन करने पर आनुवंशिकता का सिद्धान्त स्थिर किया गया।

रूप, रंग, स्वभाव तथा अन्य लक्षणों का संतति में पूर्वजों से आना ही आनुवंशिकता कही जाती है। यह गुण वनस्पति और प्राणियों दोनो ही में पाया जाता है। माता-पिता के गुण दोषों का संतान में उत्पन्न करने वाला पदार्थ पित्रागत पदार्थ कहलाता है जो नाभिक सूत्रों (क्रोमोसोमों) में होता है और नाभिक सूत्रों के परोगमन के द्वारा पित्रैकों (जीनों) का पुनः संयोजन होता है।

आनुवंशिकता में कोशिका का स्थान महत्वपूर्ण है। कोशिका एक अति सूक्ष्म झिल्ली से घिरी रहती है। इसमें जीवद्रव्य रहता है और इसके भीतर एक नाभिक होता है। माता के गर्भ का अंड एक कोशीय होता है। इसी प्रकार पुरुष का शुक्राणु भी एक कोशीय होता है। इन दोनों के संयोग से एक नई कोशिका का निर्माण होता है। यह कोशिका बढ़ने पर दो कोशिकाओं में विभक्त हो जाती है और यह क्रिया अनवरत् चलती रहती है। प्रत्येक कोशिका में माता पिता से प्राप्त लक्षणों के समस्त उत्पादक या पित्रैक विद्यमान रहते हैं। अनुमानतः पित्रैक का व्यास 10^{-7} से० मी० से कम ही होता है। पित्रैक कुछ सूत्रों की कोशिकाओं में इस प्रकार रहते हैं जैसे इमली के बीज इमली के फल में रहते हैं। ये सूत्र नाभिक सूत्र (क्रोमोसोम) कहलाते हैं। प्रत्येक प्राणी या पौधे के लिये इन सूत्रों की संख्या निश्चित रहती है। अंडाणु और शुक्राणु के

संयोग से उत्पन्न नवीन प्राणी के नाभिक सूत्रों की संख्या, उस जाति के प्राणियों के लिये निश्चित संख्या के समान हो जाती है। नाभिक सूत्र सामान्यतः इतने बड़े होते हैं कि उन्हे सूक्ष्मदर्शी से देखा जा सकता है।

अंडाणु और शुक्राणु या फिर बीजाणु और पराग के संयोग में पित्रैकों का विशेष हेर फेर होता है जिसके परिणाम स्वरूप तत्सम्बन्धित लड़ियों के कुछ टुकड़ों में अदल बदल हो जाता है। इस प्रकार उत्पन्न नाभिक सूत्रों में पित्रैकों की संख्या पूरी रहती है। प्रत्येक नाभिक सूत्र दुहरा रहता है। यह भी सम्भव है कि नाभिक सूत्रों के दोनों अंसों में एक किसी लक्षण की वृद्धि करता हो और दूसरा उसी लक्षण का ह्रास। इस प्रकार नाभिक सूत्र के दोनों अंश मिलकर ही उस लक्षण की मात्रा या अवस्था का निर्धारण करते हैं।

प्राणी की प्रारम्भिक कोशिका में आधे नाभिक सूत्र माता से और आधे पिता से प्राप्त होते हैं। प्राणी के माता पिता को भी उनके माता पिता से इसी प्रकार से पित्रैक मिले रहते हैं। इस प्रकार सम्भाविता सिद्धान्त के आधार पर संतति को प्राप्त होने वाले प्रमुख लक्षणों के सम्बन्ध में कुछ तथ्य निर्धारित किये जा सकते हैं। आनुवंशिकता के नियमों का पता लगाने के लिये मेंडिल ने पाइसम सेटाइवम जाति के पौधों (मटरों के पौधों) पर प्रयोग किये। उसने इन पौधों में कई प्रकार की विभिन्नतायें देखीं-यथा कुछ के बीज गोल थे और कुछ के सिकुड़े हुये थे, कुछ के बीजपत्रों का रंग पीला था, कुछ का हरा ; कुछ के बीजों के छिलके श्वेत थे और कुछ के भूरे ; कुछ की फलियाँ सर्वत्र फूली थीं कुछ की फलियाँ दानों के बीच में संकुचित थीं, कुछ की फलियों का रंग हरा था और कुछ का पीला, कुछ के फूल तने पर सर्वत्र थे कुछ के केवल शिखा पर और कुछ के तने लम्बे थे और कुछ के नाटे।

सामान्यतः पाइसम सेटाइवम में स्वयम् निषेचन होता है जिसके फलस्वरूप उसकी सभी उपजातियों की विशेषतायें पीढ़ी दर पीढ़ी वैसी ही रहती हैं। मैंडिल ने अपने प्रयोगों में एक लम्बे पौधे को एक नाटे पौधे से निषेचित किया। ऐसा करने के लिये उसने एक पौधें के पुंकेसर काटकर फेंक दिये और दूसरे पौधे से परागकण लेकर इस पौधे के वर्तिकाग्र पर छिड़क दिये। इस प्रकार एक नाटे पौधे के पराग और दूसरे लम्बे पौधे के बीजांड के संयोग से उत्पन्न बीजों द्वारा जो पौधे उत्पन्न हुये वे सब लम्बे थे। किन्तु इन सब लम्बे पौधों से स्वयम्निषेचन द्वारा प्राप्त बीजों से जो पौधे उत्पन्न हुये उनमें लगभग 75 प्रतिशत पौधे लम्बे थे और 25 प्रतिशत पौधे नाटे। बीच के आकार का कोई पौधा नहीं मिला। साथ ही नाटे पौधों से प्राप्त बीज उगाने पर सदैव नाटे पौधे ही मिले किन्तु लम्बे पौधों से प्राप्त बीज उगाने पर देखा गया कि इनमें से एक तिहाई बीजों से प्राप्त पौधे सदैव ही लम्बे हुये किन्तु शेष दो तिहाई पौधों से प्राप्त बीज उगाने पर कभी लम्बे और कभी नाटे पौधे मिले। यही परिणाम हर पीढ़ी में मिला। पौधों के अन्य लक्षणों पर भी प्रयोग करने पर मैंडिल ने पाया कि यही नियम उन लक्षणों पर भी पूरा उतरता है। इन प्रयोगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लम्बे और नाटे पौधों के संयोग से प्राप्त बीजों की दूसरी पीढ़ी में जो पौधे प्राप्त हुये उनमें तीन प्रकार के लक्षणों से युक्त पौधे हैं। पहले वे जो हर पीढ़ी में लम्बे ही रहेंगे ; दूसरे वे जो हर पीढ़ी में नाटे ही रहेंगे और तीसरे वे जो कभी नाटे पौधों को और कभी लम्बे पौधों को अगली पीढ़ियों में उत्पन्न करेंगे। ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब हम निम्न सिद्धान्त को मान्यता दें : पीढ़ी प्रति पीढ़ी लम्बे उगने वाले पौधे के पराग कण या बीजाणु में दो पित्रैक ऐसे होते हैं जो पौधे को लम्बा करते हैं। इसी प्रकार पीढ़ी प्रति पीढ़ी नाटे उगने वाले पौधों में दो पित्रैक ऐसे होते हैं जो पौधे को नाटा करते हैं। इस प्रकार एक लम्बे और एक नाटे पौधे के संयोग से उत्पन्न होने वाली संतान में से प्रत्येक में एक पित्रैक लम्बा करने वाला और दूसरा नाटा करने वाला होता है। लम्बा पित्रैक नाटे करने वाले पित्रैक से अधिक सबल होता है और नाटा करने वाले पित्रैक को दबा लेता है। इस प्रकार पहली पीढ़ी में उत्पन्न संताने केवल लम्बी

होती हैं। अब आगे की पीढ़ी में यदि माता और पिता में एक से प्राप्त पित्रैक लम्बा करने वाला और दूसरे से प्राप्त पित्रैक नाटा करने वाला हुआ तो सन्तान लम्बी होगी, किन्तु यदि माता और पिता दोनों से ही प्राप्त पित्रैक नाटे हुये तो संतान नाटी और यदि दोनों से प्राप्त होने वाले पित्रैक लम्बे हुये तो सन्तान लम्बी ही होगी। इस प्रकार चार प्रकार की सम्भावनायें हो सकती हैं:

(1) मातृ पित्रैक लम्बा करने वाला और पितृ पित्रैक लम्बा करने वाला— सन्तान लम्बी

(2) मातृ पित्रैक लम्बा करने वाला और पितृ पित्रैक नाटा करने वाला—सन्तान लम्बी

(3) मातृ पित्रैक नाटा करने वाला और पितृ पित्रैक लम्बा करने वाला—सन्तान लम्बी

(4) मातृ पित्रैक नाटा करने वाला और पितृ पित्रैक नाटा करने वाला—सन्तान नाटी

इस प्रकार 25 प्रतिशत पौधे सदैव नाटे और 75 प्रतिशत पौधे लम्बे होंगे। इसी सिद्धान्त पर तीसरी पीढ़ी के पौधों में स्वयम् निषेचन से किस प्रकार की सन्तान (नाटी या लम्बी) होगी इसका निर्णय किया जा सकता है।

अब हम लम्बाई और नाटेपन के अतिरिक्त अन्य गुणों पर विचार करेंगे। यदि पीले और गोल बीज वाले पौधे को हरे और सिकुड़े बीज वाले पौधे से निषेचित करें तो हमें चार प्रकार के पौधे प्राप्त हो सकेंगे। पहले में बीज पीले और गोल, दूसरे में बीज पीले और सिकुड़े, तीसरे में बीज हरे और गोल और चौथे में बीज हरे और सिकुड़े। प्रयोगों द्वारा मैंडिल ने ज्ञात किया कि पीले और हरे में पीला रंग प्रबल है और गोल और सिकुड़े में गोल प्रबल है। इन सूत्रों पर ध्यान देने से और सम्भावना सिद्धान्त पर विचार करने से पता लगता है कि इन चारों प्रकार के बीज उत्पन्न करने वाले पौधों का अनुपात इस प्रकार होगा: पीले और गोल : पीले और सिकुड़े : हरे और गोल : हरे और सिकुड़े

9 : 3 : 3 : 1

मैंडिल ने अपने प्रयोग द्वारा इस प्रकार के पौधों का जो अनुपात निकाला वह लगभग ऊपर दिये हुये अनुपात के ही समान था।

बाद में प्रयोग करने पर कुछ जननविज्ञों ने मीठे मटर (लेथाइरस ओडोरेटस) पर प्रयोग करके पता लगाया कि यह सिद्धान्त यहाँ दो जोड़ी लक्षणों के लिये ठीक नहीं बैठता। इस मटर पर प्रयोग करते समय देखा गया कि निषेचन द्वारा दूसरी और बाद की पीढ़ियों में फूल का बैंगनी रंग लाल रंग से और लम्बा पराग गोल पराग से अधिक प्रबल है। इस प्रकार मैंडिल के सिद्धान्त के अनुसार निम्न चार प्रकार के पौधों का अनुपात निम्न होना चाहिये:

बैंगनी–लम्बे : बैंगनी–गोल : लाल–लम्बे : लाल–गोल

9 : 3 : 3 : 1

किन्तु यह अनुपात प्रयोगों द्वारा 14 : 1 : 1 : 4 पाया गया।

मारगन ने सामान्य कदली भक्षी (ड्रासोफिला मेलानोगेस्टर) पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि सब पित्रैक 4 वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। एक समूह का कोई एक पित्रैक अन्य समूहों के पित्रैकों के साथ स्वतंत्रता पूर्वक संयोजित या वियोजित होता है किन्तु यह भी संभव है कि एक ही समूह के दो पित्रैक स्वतंत्रता पूर्वक वियोजित न हों और एक ही नाभिक सूत्र पर स्थित दो पित्रैक साथ ही साथ संतति में पहुंच जाँय। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पित्रैक एक ही नाभिकसूत्र पर जितने ही एक दूसरे के समीप होंगे उनकी संतति में साथ साथ पहुँच जाने की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी। इसी सिद्धान्त के आधार पर नाभिक सूत्र पर स्थित विविध गुणों वाले पित्रैकों का क्रम निश्चित किया गया और एक सूत्र पर रहने वाले पित्रैकों को ग्रथित पित्रैक का नाम दिया गया।

आनुवंशिकता के नियमों के प्रयोग से अनेक प्रकार के लाभ हुये हैं। माता पिता के संयोग से पुत्र उत्पन्न होगा या पुत्री इसकी व्याख्या अब सम्भव हो सकी है। संकर जाति के पौधों के उगाने में भी पर्याप्त सफलता मिली है।

[शेष पृष्ठ 5 पर]

कैंसर

□ डा० सत्येन्द्र नाथ त्रिपाठी

प्रकृति के ऊपर विजय की भावना रखने वाला वैज्ञानिक कैंसर के विषय में अभी सफल नहीं कहा जा सकता। इस भयानक बीमारी का स्पष्ट रूप और इससे छुटकारा पाना अभी भी बहुत कुछ ईश्वर के ही आधीन है। ईश्वर की दया उन्हीं को मिली समझिये जिन्हें कैंसर नहीं हुआ क्योंकि कैंसर के वास्तविक रोगी को आज तक बाचाया नहीं जा सका।

वैज्ञानिकों का स्पष्ट मत है कि प्रत्येक पाँच व्यक्तियों में एक व्यक्ति कैंसर से किसी न किसी रूप में मरता है। इंगलैण्ड और वेल्स में प्रतिवर्ष 5,50,000 मौतों में से 1,10,000 मौतें कैंसर से होती हैं।

कैंसर क्या है ?

शरीर के किसी भी भाग में ऐसी नई कोशिकाओं या अवयवों का उत्पन्न होना, जिनकी वृद्धि की गति असाधारण हो और जो साधारण अवयवों से बिल्कुल भिन्न हों, कैंसर कहा जाता हैं। कैंसर आमाशय, फेफड़े, गुर्दे, अर्थात् शरीर के किसी भी अंग में हो सकता है। यहाँ तक कि बाहर की त्वचा पर भी त्वचा का कैंसर हो सकता है। सबसे विचित्र बात तो यह है कि इन नये अवयवों की उत्पत्ति और वृद्धि से बहुत ही पीड़ा होती है और शरीर के नित्य के कामों में, जिससे शरीर का संतुलन रहता है, रुकावट पैदा हो जाती है।

दूसरी विचित्र बात तो यह है कि दुनियाँ के एक प्रदेश को लेकर कैंसर के विषय में कोई अंदाज नहीं लगाया जा सकता। जापान में आमाशय का कैंसर, फ्राँस में गले का कैंसर, इंगलैंड और स्काटलेंड में फेफड़े का कैंसर और इंग-लैन्ड, स्काटलैन्ड, तथा अमेरिका में औरतों का सीने का कैंसर अधिक होता है।

कैंसर कैसे होता है।

ऐसा अनुमान है कि कुछ कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थ शरीर के भीतर किसी भी रूप में पहुँच कर कैंसर पैदा करते हैं। आवर्तसारिणी के सभी संक्रमण तत्व अकार्बनिक पदार्थों के उदाहण हैं। बहुत से एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन, एरोमैटिक ऐमीन, ऐजो रंजक, N-नाइट्रोसो यौगिक, नाइट्रोसामाइड और कुछ पदार्थ जो भोजन और दवाइयों के रूप में प्रयोग में आते हैं कार्बनिक पदार्थों के उदाहरण हैं। सिगरेट पीने की अधिक मात्रा भी कैंसर होने का एक कारण बताई जाती है। इन सभी कैंसर उत्पादक पदार्थों को कार्सीनोजीन कहते हैं। अद्भुत बात तो यह है कि कोई कार्सीनोजीन यदि चूहे में फेफड़े का कैंसर पैदा करती है, तो कुत्ते में गुर्दे या कोई और, तथा मनुष्य में भी कोई दूसरा कैंसर पैदा कर सकती है। प्रयोगशालाओं में प्रयोग में आने वाले बहुत से पदार्थ कार्सीनोजीन होते हैं। इस खतरे से बचने के लिये अभीतक प्राप्त सूचना डा० सर्ल द्वारा सारणीबद्ध की जा चुकी है जिसे प्रत्येक प्रयोगशाला में रहना चाहिये और जिसकी प्रत्येक वैज्ञानिक को जानकारी होनी चाहिये। डी० डी० टी० तथा डाइएल्ड्रिन का व्यवहार कैंसर उत्पन्न करने की प्रवृत्ति के कारण रोक दिया गया है। आइसोनिआजिड जो कि तपेदिक की एक मात्र दवा है चूहों में फेफडे का कैंसर उत्पन्न कर देती है। मोमफली तथा ऐल्कलायडों में प्राकृतिक रूप में कार्सीनोजीन पाये जाते हैं।

कैंसर का उपचार

कैंसर की आज तक कोई अचूक दवा नहीं मिल सकी है। इसका एक कारण तो यह है कि बहुतायत में मिले

चूहे का कैंसर यदि उसके फेफड़े में है तो आदमी का भी कैंसर वहीं होगा और उसी दवा से ठीक भी होगा यह आवश्यक नहीं होता। दूसरे, हो सकता है कि वह कैंसर ठीक भी हो जाय पर निश्चित ही कोई और नया कैंसर पैदा हो जायगा।

रेडियोऐक्टिव विकिरणों से कुछ थोड़ा बहुत लाभ कैंसर के उपचार में मिल सका है। कुछ मामलों में चीड़ फ़ाड़ का कार्य लाभदायक हो सका है। इन की दोनों विधियों को क्रमशः रेडियोथेरैपी और सर्जरी कहते हैं। एक और भी विधि है जिसे कीमोथेरैपी कहते हैं। इसमें कुछ ऐल्कली-कारकों, ऐंटीमेटाबोलाइटों, हारमोनों, ऐंटीबायटिकों को इंजेक्शन के द्वारा शरीर के अंदर प्रविष्ट करते हैं।

किन्तु ये अपूर्ण विधियाँ है। अभी बहुत कुछ करना शेष है।

● ●

[पृष्ठ 3 का शेषांश]

एक जंगली झरबेरी वेस्का और घरेलू झरबेरी की कलम लगाने से एक संकर झरबेरी प्राप्त हुई है। इस से प्राप्त बेर घरेलू झरबेरी के समान बड़े और जंगली झरबेरी की गंध के होते हैं। वेस्का में 14 और घरेलू झरबेरी में 56 नाभिक सूत्र होते हैं। संकर झरबेरी में यह संख्या 35 हो जाती है। जापानियों ने तरबूज पर प्रयोग किये। उन्होंने 22 नाभिक सूत्रों वाले तरबूज पर कोलचिसीन की कलम लगाकर उससे 44 नाभिक सूत्रों वाला पौधा प्राप्त किया। इस 44 नाभिक सूत्रों वाले पौधे को 22 नाभिक सूत्रों वाले सामान्य तरबूज से कलम करके 33 नाभिक सूत्रों वाला एक तरबूज बनाया जिसमें एक भी बीज नहीं होता। इस बिना बीज वाले तरबूज को खाने में कितना आनन्द मिलता होगा यह स्मरणीय है।

बड़ी मात्रा में उगाई जाने वाली फसलों में से सर्वप्रथम संकर मक्का तैयार की गई जिसकी पैदावार सामान्य मक्का से कई गुनी अधिक है। इसी प्रकार के प्रयोग अन्य अनाजों पर भी किये जा रहे हैं और उत्तम कोटि के बीज प्राप्त हो रहे हैं, जिनसे अन्न संकट से मुक्ति पाने का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। पशुओं में भी इस प्रकार के प्रयोग होते रहे हैं। हम खच्चर से भलीभाँति परिचित हैं। यह घोड़ी और गधे के संयोग से उत्पन्न होता है। यह भलीभांति ज्ञात है कि खच्चर घोड़ी और गधे दोनों की तुलना में अधिक पुष्ट और दीर्घजीवी होता है। किन्तु खच्चर की आगे संतान नहीं होती यह दोष भी है। पशुओं पर प्रयोग करके ऐसी गायें उत्पन्न की गई हैं जो अपने माता पिता की नस्ल की अपेक्षा अधिक दूध देती हैं और उनके दूध में मक्खन की मात्रा भी अधिक रहती है। संकरण के द्वारा ऐसे पशु भी उत्पन्न किये गये जिनका मांस अधिक स्वादिष्ट होता है; ऐसे सुअर उत्पन्न किये गये हैं जिनके मांस में वसा की मात्रा अपेक्षाकृत कम रहती है और ऐसी मुर्गियाँ भी पैदा की गई हैं जो अधिक और बड़े आकार के अंडे देती हैं।

इस प्रकार आनुवंशिकता के सिद्धान्तों का प्रयोग करके संकर जाति के पौधे, पशु, पक्षी आदि उत्पन्न करके उनकी नस्ल में सुधार किया गया है इससे मनुष्य धीरे धीरे अपनी अनेक समस्याओं का समाधान करने मे समर्थ हुआ है। संकरण का क्षेत्र विशाल है और इसकी उपलब्धियों की ओर लोग आशा भरी दृष्टि से देख रहे हैं।

● ●

प्रलेख-परीक्षण

□ विष्णु दत्त शर्मा

प्रलेख को किसी भी ढंग से कुरूप क्यों न बना दिया जावे परन्तु फोटोग्राफी की सहायता से प्रलेख के तत्व का भास हो जाता है। प्रलेख को कुरूप नाना प्रकार से किया जा सकता है—उदाहरणार्थ रबड़ से मिटाकर, कुछ अंश जोड़ कर अथवा निकाल कर, जलाकर, दुर्घटना से, जानबूझ कर तथा विद्वेषपूर्ण भावना से।

प्रलेख परीक्षण में सर्वाधिक उपयोगी उपकरण सूक्ष्म-दर्शक यंत्र है। सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता से छोटे से छोटे चिह्न का भी पता चल जाता है, यहाँ तक कि कागज की किस्म, उस पर बनी मोहर और शब्द के अंत में लगा बिन्दु भी। सूक्ष्मदर्शक यंत्र का उच्च आवर्धन होने के कारण किसी भी वस्तु का व्यास 200 गुणा तक बढ़ाया जा सकता है।
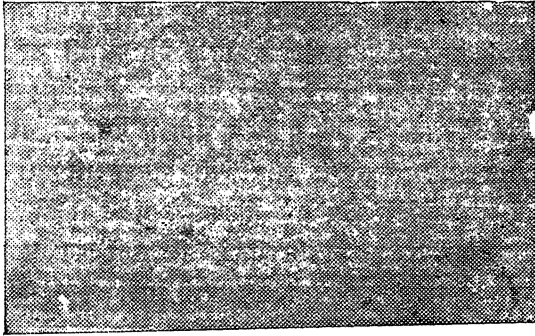
चित्र 1(अ)—क्रिया करने से पूर्व गुप्त लेख

जहाँ तक प्रलेख परीक्षण का प्रश्न है, यह निर्भर करता है कि किस प्रकार की स्याही प्रयोग में लाई गई थी। स्याही एक ही बोतल से थी अथवा भिन्न-भिन्न बोतलों से। दूसरे स्याही की आयु के ऊपर भी निर्भर है—उदाहरणार्थ जिस शब्द में परिवर्तन किया गया है अथवा
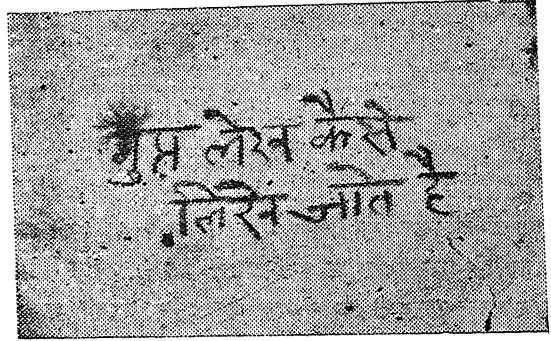
चित्र 1(ब—क्रिया करने के बाद गुप्त लेख

दिनांक आदि बदला गया है, क्या वह एक ही समय किया गया है अथवा कुछ समय बीतने के पश्चात्। इस प्रकार का कार्य अधिकतर व्यापारियों के हिसाब में तथा वसीयत आदि में किया जाता है। रासायनिक परीक्षण द्वारा पुष्टि करने से पूर्व कभी-कभी फोटोग्राफी तकनीक से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि भिन्न-भिन्न स्याही प्रयोग में लाई गई है। सी० ए० मिचैल अपने प्रकाशन (दी साइंटिफिक डिटेक्टिव, सन् 1931) में वर्णन करते हैं कि एक मनुष्य ने 2000 पौंड का दावा किया जो कि उसके पत्र में लिखा था। फोटोग्राफी प्रमाण से सिद्ध हो गया कि वास्तव में वह 2000 पौंड था। किन्तु समय बीतता गया और पौंड देने वाले ने दावा किया कि 2000 पौंड के स्थान पर 200 पौंड थे। अतः सन् 1914 का कोर्ट केस जब सात वर्ष पश्चात् 1921 में दोबारा फोटो लिया गया तो 2000

के स्थान पर 200 ही थे । कारण कि अंत में जोड़ा गया शून्य इतने समय के पश्चात फीका हो गया क्योंकि वह दूसरी स्याही से लिखा गया था । इस प्रकार के अभियोग में नीली और बैंगनी सुग्राही प्लेटें प्रयोग में लाई गई थीं, जिन पर फोटो लेने से यह स्पष्ट हो गया कि दो भिन्न स्याहियों को प्रयोग में लाया गया था ।
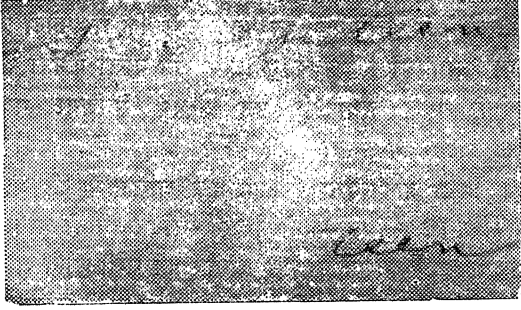
चित्र 2—प्रलेख परीक्षण में स्याही का अंतर

ऐसी स्याही जो आंखों से दिखाई नहीं देती किन्तु उनकी छाया में थोड़ा अंतर है, यदि रंगीन स्क्रीन की सहायता से फोटो लिया जाए तो लाभप्रद होगा क्योंकि स्याही का छाया वैषम्य बढ़ जाएगा । विशेषकर यह विधि बैंगनी कागज पर कापीइंग पैंसिल से लिखे गये प्रलेख के लिये है । इस प्रकार के कार्य के लिये ऐसा फिल्टर चयन करना चाहिये जो केवल एक ही निश्चित रंग के प्रकाश का पारेषण करे तथा अन्य रंगों का अवशोषण करले । कुछ विशेष प्रकार के फिल्टर होते हैं जो मोनो-क्रोमेटिक प्रकाश पारेषण करते हैं अर्थात् एक ही तरंग आयाम वाले प्रकाश को । ऐसे समय में फिल्टर या तो उस रंग का प्रयोग करना चाहिये जिस रंग का धरातल हो अथवा जिस रंग के शब्द हों । कारण कि प्रथम पक्ष में फोटो में धरातल दिखाई ही नहीं देगा ।

सी० ए० मिचैल तथा वार्ड (ऐनेलिस्ट, 1932, **57**, 706) की विधि के अनुसार विविध बोतलों से ली गई स्याही का ज्ञान हो जाता है । उन्होंने अपनी तकनीक में बतलाया कि केमनेर लेंस तथा सूक्ष्मदर्शक यंत्र के बीच एक कोश में बोतल की काली-नीली स्याही को पानी द्वारा हल्का करके भरने के बाद प्रलेख का फोटो ले लेना चाहिये, जिससे स्याही में विद्यमान ऐस्बेस्टास रेशे, आलू कणिका, जिप्सम तथा अन्य मक्खी-मच्छर आदि के पंख का ज्ञान हो सके ।

यदि एक साधारण वर्णान्ध फोटोग्राफी प्लेट का प्रयोग किया जाए तो लाल, नारंगी, तथा पीले रंग प्लेट पर लगभग काले प्रतीत होंगे किन्तु हरे रंग गहरे और बैंगनी एवं नीले रंग इतने हल्के दिखाई देंगे कि लगभग श्वेत ही प्रतीत होंगे । इस प्रकार की कठिनाईयों को आर्थो-क्रोमेटिक प्लेट और रंगीन फिल्टर प्रयोग करके दूर किया जा-सका है ।

ऐसे प्रलेख जिनमें कोई अंक या शब्द जोड़ कर अथवा मिटाकर परिवर्तन किये गये हैं, सरलतापूर्वक रंगीन फिल्टर प्रयोग करने से भांति-भांति की स्याही का ज्ञान हो जाता हैं । उदाहरणार्थ अंग्रेजी में 1 का 4 और 10; 3 का 8 तथा 0 का 6 बन सकता है । इसी प्रकार हिन्दी में 2 का 3, 8 का 9 तथा 1 का 10 बन सकता है । मिटाने के लिये या तो रबड़ प्रयोग किया जावेगा अथवा किसी रासायनिक ढ़ंग से या यांत्रिक विधि से । इस तरह के परिवर्तनों को पराबैंगनी प्रकाश में प्रतिदीप्त फोटोग्राफी तकनीक की सहायता से पहचाना जा सकता है । एक बार लिखने के पश्चात् जब स्याही सूख जाये और उसके बाद उस शब्द के ऊपर फिर दोबारा लिखा जाये और उस शंकित भाग का अणुफोटो लिया जाए तो पहचानने में सफलता मिल जाती है, कारण कि पेन का स्ट्रोक भिन्न-भिन्न स्थान पर होगा । जब पेन से लिखा जाता है तो स्याही हल्की रहती है किन्तु अंतिम सिरे (स्ट्रोक) पर स्याही गाढ़ी होती है ।

ऐसी अवस्था में जब शब्द को मिटाने के लिये चाकू, ब्लेड अथवा रबड़ का प्रयोग किया जाता है तो रगड़ के कारण कागज हल्का हो जाता है जिसका फोटो लेने के लिये प्रकाश की किरणों को किसी कोण से तिरछी आनी

चाहिये। कुछ जालसाज कागज को पूर्वस्थिति में लाने के लिये बोरेक्स (सुहागा), स्टीयरीन तथा सोडियम सिलिकेट का प्रयोग करते हैं। अतः ऐसी स्थिति में परिवर्तित प्रलेख का अन्तर केवल परावर्तन द्वारा ही ज्ञात हो सकता है। यदि कागज के धरातल से रेशों को हटाने के लिये चाकू प्रयोग में लाया गया है तो पारगमित प्रकाश द्वारा फोटो लिया जा सकता है। परिणामस्वरूप पारगमित प्रकाश से प्रभावित भाग एक धब्बे के रूप में दिखाई देगा। इसकी पुष्टि करने के लिये प्रभावित भाग को यदि काफी समय तक हाइड्रोजन सल्फाइड में रखा जाए तो आयरन तत्व जो कि कागज में अदृश्य स्याही के कारण शेष रह गये हैं, काले पड़ जायेंगे और इस प्रकार उस भाग का फोटो लेने में सरलता होगी। ऐसी अवस्था में जब शब्द को किसी रासायनिक ढंग से मिटाया गया है और दूसरा शब्द उसके स्थान पर लिखा गया है तो भी हाइड्रोजन सल्फाइड गैस उपयोगी सिद्ध हो सकती है। ऐसे स्थान पर जहाँ पर पराबैंगनी प्रकाश उपलब्ध नहीं है, इस गैस द्वारा ही फोटो लेने में सहायता मिलती है। यदि इस गैस से प्रभावित प्रलेख को काफी समय तक अम्ल वायुमंण्डल में खुला रखा जाए तो बाद में लिखा हुआ शब्द हल्का हो जाएगा, जिसका कि सुगमता से फोटो लिया जा सकता है।

कभी-कभी यह देखा गया है कि प्रलेख एक बार लिखने के पश्चात् मोड़ दिया गया हो, तो उस पर बाद में लिखने से स्याही फैल जाती है जो तुरंत पहचानी जा सकती है। घटिया किस्म के कागज पर यदि मिटाकर फिर लिखा जाता है तो भी स्याही केशिका प्रभाव से फैल जाती है।

साधारणतया पेंसिल से लिखने के पश्चात् यदि उस पर पेन से भी लिख दिया जाए तो प्रलेख में जालसाजी का कार्य प्रतीत होता है। इस प्रकार के जालसाजी कार्य को फोटोग्राफी की सहायता से सुगमतापूर्वक पहचाना जा सकता है। यदि ध्यानपूर्वक फोटोग्राफ से अध्ययन किया जाए तो जाली-प्रलेख में अनियमित रेखा, दांतेदार किनारे, रेखा के अंतिम सिरे पर एक छोटी-सी घुंडी अथवा फैली हुई तथा सभी शब्दों की रेखा की एक समान मोटाई दिखाई देगी। असली प्रलेख के फोटोग्राफ में मुख्य रेखा स्पष्ट, साफ किनारे तथा रेखा का अंतिम सिरा बर्छा समान तेज नुकीला दिखाई देगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जालसाजी किये गये प्रलेखों में रेखाओं के अंतिम सिरे अनियमित होते हैं और सिरे पर स्याही की एक छोटी सी बूंद पाई जाती है जो कि मुख्य रेखा से जुड़ी भी नहीं होती। ऐसे प्रलेखों के लिये यह आवश्यक नहीं कि अणुफोटो ही लिया जाए बल्कि उच्च कोटि के लेंस वाला कैमरा भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस प्रकार से लिया गया फोटो विभेदन-क्षमता की हानि बिना ही, पर्याप्त बड़ा किया जा सकता है। अधिक जालसाजी की जहाँ पर शंका हो वहाँ पर फोटो लेकर स्लाइड बनानी चाहिये ताकि प्रक्षेप करने के पश्चात् अन्तर का भली-भाँति ज्ञान हो सके। इस ढंग से जाली-पत्र, शब्द तथा जाली-हस्ताक्षर का पता चल जाएगा। वास्तव में देखा जाए तो एक मनुष्य अपने हस्ताक्षर कभी भी एक समान नहीं कर सकता। अतः इस समय यह आवश्यक है कि व्यक्ति विशेष के किये गये हस्ताक्षर तथा शंकित हस्ताक्षर में ढलान में अंतर और दो शब्दों के बीच की दूरी प्रधान है। एक ही मनुष्य दो बार में एक समान हस्ताक्षर करे, यह असम्भव है। अतः निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् ज्ञात होता है कि एक व्यक्ति जितनी बार हस्ताक्षर करेगा, उसमें अन्तर आ जाना स्वाभाविक है।

यदि किसी विषय विशेष का स्पष्टीकरण सम्पूर्ण न्यायाधीश तथा उपस्थित जनता के सम्मुख रखना होता है तो एक ही फोटो को सभी के पास जाकर दिखाना कठिन हो जाता है और साथ ही फोटो के खराब होने का भी भय रहता है। ऐसी अवस्था में प्रोजेक्टर में काम आने वाली स्लाइड बनाकर दिखलाना अत्युत्तम एवं सरल होगा और इस प्रकार समय भी कम लगेगा। चित्रों को प्रक्षेप करने के लिये एपिडायास्कोप का भी प्रयोग किया जा सकता है।

ऐसे बहुत से जालसाज हैं जो पुस्तक या कापी का पृष्ठ फाड़ देते हैं जिससे पता चल जाता है कि इससे पूर्व अथवा

बाद में कुछ लिखा अवश्य गया था।

ऐसे अभियोगों में देखा जाता है कि कागज का काटा गया किनारा कागज के दूसरे किनारे से लम्बा भी है, अथवा नहीं। दूसरे कागज की बनावट तथा उस पर बने ट्रेडमार्क द्वारा ज्ञात हो जाता है कि कागज किस मिल से तैयार हुआ है, जिससे कागज का साइज, मोटाई आदि का ज्ञान होता है। ऐसे अपराधों में न केवल जालसाजी कागज फाड़ने की ही होती है बल्कि धमकी पूर्ण पत्र, बिना हस्ताक्षर किया गया पत्र, पार्सल, पुस्तकों को कुरूप करना, प्रलेखों को खराब करना तथा पर्चा चिपकाना आदि भी सम्मिलित हैं।

जिस प्रलेख पर शंका हो, उसका फोटो लेने पर यदि वास्तविक प्रलेख के साथ एक शीशे की प्लेट पर रखकर नीचे से प्रकाश दिया जाए तो सरलता से अंतर का ज्ञान हो जाता है। अधिक विवरण एवं विस्तार में अध्ययन करने के लिये शब्दों पर ज्यामिति चित्र की सहायता से शब्दों तथा अक्षरों की एक दूसरे से दूरी, रेखाओं का ढलान तथा अक्षरों के लिखने के ढंग आदि को सुगमता से तुलना करके असंगति को ज्ञात किया जा सकता है। सभी पुलिस अधिकारी अंगुली-छाप में प्रयोग की गई एक केंद्रीय वृत विधि से अवगत हैं। अतः इसी प्रणाली को ध्यान में रखते हुए शब्दों तथा अक्षरों की बनावट का भी पता चल जाता है।

यद्यपि जालसाज बैंक नोट में इतनी चतुरता से जालसाजी करता है कि साधारणतया आंखों से निरीक्षण करने पर दिखाई नहीं देता, किन्तु फिर भी पृष्ठभूमि के मुद्रण में जटिलता होने के कारण वह (जालसाज) गलती कर जाता है, जिसका अभिज्ञान केवल फिल्टर प्रयोग करने पर फोटोग्राफी से ही किया जा सकता है। पृष्ठभूमि के रंग जैसा ही रंगीन फिल्टर लेना उपयोगी होगा ताकि निरीक्षण हेतु आवश्यक रूप रेखा ही दिखाई दे।

आयु के साथ साथ हस्तलेख में भी परिवर्तन आ जाता है किन्तु आवश्यक एवं मूल विशेषता में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार से एक वयोवृद्ध मनुष्य का हस्तलेख और उसके आरम्भिक लेख में काफी अन्तर आ जाता है। अतः वास्तविक लेख तथा शंकित लेख का बहुत ही ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् ही तुलना करनी चाहिये। धमकी देकर पत्र द्वारा रुपया मांगना, दबाव से रुपया ऐंठना, हस्ताक्षर बिना लिखा गया पत्र तथा किन्ही अवस्थाओं में हत्या करना आदि भी इसी अपराध में सम्मिलित हैं। कभी-कभी यह देखा गया है कि हत्या-स्थान पर कोई कागज का टुकड़ा मिल जाता है, जिसपर कुछ न कुछ लिखा हो। अतः इस कागज के हस्तलेख से हत्यारे का पता चल सकता है। यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है तो उसके पास अथवा द्वारा लिखा गया पत्र इस विषय का का प्रमाण दे सकता है कि उस अमुक व्यक्ति ने आत्म-हत्या की है अथवा उसकी हत्या की गई है। इस प्रसंग में मुझे एक दृष्टांत याद आ गया कि एक व्यक्ति ने किसी महाजन की मृत्यु के पश्चात् एक जाली वसीयत अपने नाम लिखकर तैयार करली। वह महाजन अविवाहित था और उसके सम्बन्धी भी उसके पास नहीं आते थे, किन्तु उस व्यक्ति को उसके सम्बन्धियों के विषय में ज्ञानकारी नहीं थी और समझता था कि महाजन की सम्पत्ति पर अधिकार का दावा करने वाला कोई नहीं है। वसीयत पर जाली अंगूठे-निशानी लगी हुई थी। अब प्रश्न उठता है कि क्या वह महाजन शिक्षित था अथवा अशिक्षित? यदि वह शिक्षित था तो उसे अंगूठा लगाने की क्या आवश्यकता थी? अतः स्पष्ट है कि निशानी अंगूठा मरणोपरांत ही लगाया गया था। यदि वह अशिक्षित था तो इस घटना से पूर्व भी उसने कहीं न कहीं पर अवश्य ही अपने जीवन में अंगूठा लगाया होगा। अतः दोनों निशानी की तुलना करने पर अभियोग सरल हो गया। यह तुलना अंगुली-छाप तकनीक के आधार पर की जा सकती है।

पुलिस अधिकारी एवं वे कर्मचारी जो टाइप करना जानते हैं, सभी सहमत हैं कि टाइप मशीन की अपनी-अपनी विशेषता होती है। किन्ही टाइप मशीनों का छापा छोटा होता है तो किन्हीं का बड़ा और सब निर्भर करता है निर्माताओं पर। प्रत्येक निर्माता अपनी मशीन का रूपांकन

करने के समय अक्षरों का रूप, दो अक्षरों के बीच की दूरी, दो लाइनों के बीच का अंतर तथा स्ट्रोक आदि को ध्यान में रखता है। अतः कोई भी जालसाजी का प्रलेख मिलने पर सर्व प्रथम यह प्रश्न उठता है कि टाइप करने के लिये किस टाइप मशीन का उपयोग किया गया है ? क्योंकि सभी निर्माताओं ने अपना मानदण्ड बना रखा है। यदि शंकित मशीन से टाइप करके पूर्व वर्णित विधि के अनुसार प्रलेख को शीशे पर रखकर नीचे से प्रकाश पारेषित किया जाये तो अन्तर स्पष्ट रूप से दिखाई देगा। इस प्रकार से मशीन का उपयोग, अपराधी का पता लगाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

टाइप मशीन में प्रयोग किया गया कार्बन कागज भी अपराध अभिज्ञान में पथप्रदर्शक बन सकता है। जब टाइप किया जाता है तो कागज पर रिबन का छाप ही शब्दों के रूप में आता है जिसमें रिबन के रेशे द्वारा अक्षरों की बनावट में कुछ अन्तर आ जाना सम्भव है, किन्तु कार्बन पेपर पर छाप स्पष्ट होगी। अतः कार्बन पेपर की स्लाइड न्यायालय में प्रदर्शित करना श्रेयस्कर होगा। किसी भी टाइपमशीन के अक्षरों की स्लाइड बनाने के लिये यदि सफेद कागज पर उल्टा कार्बन पेपर लगा दिया जावे और उल्टा भाग स्लाइड के काम लाया जाये तो यह सरल उपाय होगा। कारण कि प्रथम तो यह कागज पर ही 'नेगेटिव' बन जाएगा। दूसरे इस 'नेगेटिव' को ही स्लाइड के रूप में प्रक्षेप करने पर काली धरातल पर सफेद अक्षर होंगे जो कि प्रक्षेप करने के समय आंखों को आराम भी देगा। यह विधि केवल अक्षरों की दूरी, लाइनों के अंतर आदि में ही उपयोगी हो सकती है। अन्यथा टाइप किये गये प्रलेखों का फोटोग्राफ साधारण प्रकाश, तिर्यक प्रकाश एवं पारेषित प्रकाश में लेना चाहिये।

जिस प्रकार प्रलेख पर रबड़ द्वारा मिटाये गये निशानों का भी भली प्रकार पता लगा लिया जाता है, उसी विधि से मोहर पर लगे निशान, जो कि पढ़ने में भी कठिनाई उत्पन्न करते हैं, को भी जाना जा सकता है। किन्हीं-किन्ही अवस्थाओं में तो रंगीन फिल्टर का प्रयोग करना भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। जिन मोहरों से निशान को रासायनिक विधि से समाप्त किया गया है, ऐसी परिस्थिति में पराबैंगनी प्रकाश की सहायता से फोटो लेना श्रेयस्कर होगा।

कभी-कभी छपे हुये कागजों की मोहरों से लाख की मोहर पर नकल कर ली जाती है। जब यह संदेह हो कि मोहर असली नहीं है तो दोनों मोहरों को, अर्थात् असली तथा नकली मोहरों को फोटोग्राफ कर लिया जाता है। इन दोनों में अंतर जानने के लिये फिल्टर की गई पराबैंगनी किरणों द्वारा भी इनका परीक्षण करना चाहिये।

नक्काशी की गई मोहरों को यदि पानी अथवा अन्य द्रव से भिगोकर लोहा करने से मिटा दिया गया है तो ऐसी अवस्था में पता लगाने के लिये तिरछे प्रकाश में फोटो लेना अनिवार्य है। इस प्रकार से मिटा दी गई मोहरों को यदि वाष्प द्वारा भिगो दिया जाये और सूखने पर फोटो लिया जाये तो फोटो का परिणाम अच्छा होगा। यद्यपि लाख का परीक्षण करना रसायनवेत्ता का कार्य है फिर भी जाली मोहर के बड़े फोटो से उसकी अपूर्णता का ज्ञान हो जाता है। असली तथा नकली दोनों मोहरों का रंगीन फिल्टर की सहायता से वर्ण-सुग्राही प्लेट पर फोटो लेना चाहिए जिससे कि उनके रंगों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर का भी ज्ञान हो सके। जहाँ तक मुद्रण, टाइप मशीन के रिबन, तथा रिकार्ड कार्बन पेपर के रंगों का प्रश्न है वहाँ अवरक्त प्रकाश में फोटो लेना उचित होगा। रंगीन स्याही, नीला कार्बन पेपर, रंगीन कार्पीइंग पेंसिल के प्रलेख आदि का फोटो पराबैंगनी प्रकाश एवं फिल्टर किये गये पराबैंगनी प्रकाश में भी लेने का प्रयत्न करना चाहिये।

रंगीन पदार्थों तथा फोटोग्राफी कार्य हेतु कप्तान ऐ० जे० क्वीर्क ने नजरी परीक्षण के लिये एक मूल्यवान यंत्र का रूपांकन किया। इसको क्रोमोस्कोप अर्थात् वर्णदर्शी कहते हैं और प्रयोगशाला में सुगमता से तैयार किया जा सकता है। तीन बल्ब लेकर प्रत्येक को धारा-नियन्त्रक से जोड़ कर प्रत्येक बल्ब के सम्मुख एक-एक प्रारम्भिक वर्ण वाला फिल्टर लगा देना चाहिये। धारा-नियन्त्रक द्वारा प्रकाश

की तीव्रता को न्यूनाधिक किया जा सकता है। तीनों फिल्टर से निकले प्रकाश को एक पुंज में मिलाकर परीक्षण हेतु प्रलेख पर डाला गया। धारा-नियंत्रक की सहायता से जिस रंग का प्रकाश पुंज चाहिये-मिल सकता है और यह सब कुछ निर्भर करता है प्रलेख के वांछित रंग पर। मान लिया कि लाल-स्याही से लिखे गये प्रलेख पर काली स्याही गिर जाने के कारण पढ़ने में कठिनाई है तो धारा-नियंत्रक की सहायता से प्रकाश रंगों को इस प्रकार मिलाएं कि काली स्याही दिखाई न दे और लाल रंग का लेख पढ़ा जा सके। यह तभी हो सकता है जबकि प्रलेख की पृष्ठभूमि भी प्रकाश-पुंज द्वारा काली कर दी जाए। वास्तव में यह वर्ण फिल्टर की विभिन्नता तकनीक है।

ऐसे बहुत से दृष्टांत हैं जहाँ पर तिर्यक प्रकाश का उपयोग अधिक महत्व रखता है। जब एक मोटर ड्राइवर गाड़ी चलाता है और सामने से आ रही गाड़ी के तिर्यक् प्रकाश द्वारा सड़क पर विद्यमान गढ्ढे आदि को वह भली प्रकार देखने में समर्थ है तो इस कारण से बहुत सी दुर्घटनाओं से वह अपने आप को बचा सकता है। किसी भी प्रलेख को परीक्षण करने के समय एक बेलनाकार परावर्तक में लगाये गये बल्ब द्वारा तिर्यक् किरण डाली जाती है और जिसके फलस्वरूप प्रलेख में उभरे हुए शब्दों से प्रकाश जाता है और दबे हुए भाग में छाया आ जाती है इस प्रकार अधिक वैषम्य वाली प्लेट तथा अधिक वैषम्य वाला व्यक्तकारी प्रयोग करने से फोटो में वैषम्य बढ़ जाता है। वास्तव में यदि अध्ययन किया जाए तो तिर्यक् प्रकाश तकनीक अधिकतर ऐसे बिना हस्ताक्षर किये अथवा पेंसिल से लिखे गये पत्रों में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। बहुत से मनुष्य पत्र लिखते समय नोट बुक, पत्र-पैड तथा अन्य ऐसी ही वस्तुएं नीचे रखने के लिये प्रयोग में लाते है। पेंसिल से लिखने पर इन सभी लेखों का नीचे रखी गई वस्तु कागज पर छाप रह जाती है सकती जो कि तिर्यक् प्रकाश की सहायता से फोटोग्राफ की जा है। कभी-कभी लिफाफा जिसमें पत्र प्राप्त किया गया हो गुम हो जाता है परन्तु धातु मोहर की पत्र पर छाप आ जाती है जिससे सम्बद्ध डाकघर का आभास हो जाता है। ज्योति का सर्वोत्तम कोण देखने के लिये लेंस तथा वस्तु के बीच का स्थान अंधकार से घिरा हुआ होना चाहिये और प्रकाश की रेखा छिद्र इस प्रकार घुमायी जाए ताकि प्रलेख की रूप-रेखा भली प्रकार दिखाई देने लगे। आसबोर्न के मातानुसार उपरोक्त छाप का अधिकतम विवरण प्राप्त करने के लिये त्रिविभितीय-अणु-फोटोग्राफ तैयार करना चाहिये। सूर्य द्वारा उत्पन्न तिर्यक् प्रकाश भी कहीं-कहीं पर उत्तम सिद्ध हुआ है। उदाहरणार्थ कार के पहिये का निशान, भूमि तथा घास पर पड़े निशान आदि।

चित्र 3—भस्मीभूत प्रलेख
(क) साधारण प्रकाश में (ख) अवरक्त प्रकाश में

कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि भस्मीभूत प्रलेख का अपना अस्तित्व है और उनके गूढ़ लेख-अभियोग में महत्व रखते हैं। यद्यपि भस्मीभूत प्रलेखों को फ्रेम करने के लिये अनेक विस्तृत विधियाँ हैं, फिर भी जहाँ तक सम्भव हो इन फ्रेम किये गए प्रलेखों को कम ही छूना चाहिये। इनका फोटोग्राफ लेकर न्यायालय में सभी सम्बद्ध व्यक्तियों को दिखलाना श्रेयस्कर होगा। मुख्यतः जब युद्ध, गृहयुद्ध अथवा महायुद्ध होता है तो असंख्य मूल्यवान प्रलेख अग्नि में स्वाहा कर दिये जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में कुछ प्रलेख अथवा रिकार्ड या तो पूर्णतया अग्नि में नष्ट हो जाते हैं या अर्धरूप में भस्म पाये जाते हैं। प्रयोग में लाई गई तकनीक तथा विधियाँ निम्न पाँच उद्देश्यों पर आधारित हैं :—

1. भस्मीभूत अंश—अर्थात् पूर्णतया या आंशिक।
2. कागज की जाति तथा रूप।
3. प्रलेख का किण्व-भोज—अर्थात् ऐसा माध्यम जो शंकित मनुष्य अथवा अपराधी ने संदेश भेजने में प्रयोग किया हो।
4. स्याही की प्रकृति।
5. झुलसने की अवस्थायें—अर्थात् खुली हवा, जाली, अथवा बंद स्थान जैसे सन्दूक आदि में।

ऐसी अवस्था में जब प्रलेख आंशिक रूप में झुलस गया हो तो लेख साधारणतया दिखाई देता है और बिना किसी उपाय अथवा उपचार के फोटोग्राफ किया जा सकता है। किन्तु आंशिक रूप में झुलसने पर कागज की जाति और लिखे गये शब्दों की संख्या का विशेष महत्व है।

लिखने की साधारण स्याही, जिसमें रंग-सामग्री मिली, आमतौर पर लोह—पित्त द्रव पर आधारित होती है। जब कोई भी प्रलेख अथवा रिकार्ड झुलस जाता है तो रंग-सामग्री नष्ट हो जाती है और लौह-पित्त द्रव जलकर आयरन आक्साइड के रूप में जमा हो जाता है जो रंग में हल्का बादामी होता है। यदि भस्मीभूत अथवा झुलसे कागजों को अल्यूमीनियम ऐसीटेट के 10 प्रतिशत घोल से पेंट कर तारों की जाली में रख कर सुखाया तथा जलाया जाए तो परिणाम-स्वरूप राख सफेद रंग की हो जाएगी और अक्षर लाल रंग के। इस प्रकार वर्ण-सुग्राही प्लेट, फिल्टर एवं तिर्यक् प्रकाश की सहायता से फोटो लिया जा सकता है। यदि जलाने की दशा को भली प्रकार नियंत्रित किया जाए तो यह विधि पेंसिल-लेखों के लिये सर्वोत्तम सिद्ध होगी। यहाँ पर यह ध्यान दिया जाए कि यदि इस विधि से फल प्राप्त नहीं हुआ तो अन्य किसी भी उपाय से नहीं होगा।

ऐसा देखा गया है कि पेंसिल लेख जलने के पश्चात् गूढ़ हो जाता है। कारण कि पेंसिल सुर्मे में ग्रेफाइट तथा मिट्टी होती है जिसके जलने पर मिट्टी अपनी रूप रेखा बना देती है और ग्रेफाइट जलकर कार्बन रंगीन आकृतियों को खनिज रंगों की सहायता से ज्ञात किया जाता है क्योंकि खनिज रंग जलने पर विघटित नहीं होने देते। खनिज रंग कार्बनिक रंग सामग्री होती है जो कार्बनिक माध्यम में घोल कर तैयार किये जाते हैं। इनमें अनेक रंग झुलसने पर शीघ्र समाप्त हो जाते हैं किन्तु अनेक मुलम्मे चढ़े कागजों पर प्रयोग में लाये जाते हैं। चूँकि बहुत-सी स्याही में कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनों ही तत्व होते हैं अतः अन्य विधियों से भी प्रलेखों को पढ़ा जा सकता है। टाइपलिपि, कार्बन कापी आदि भी इसी विधि से पढ़ने में आ सकती है।

कुशल कार्य करने वालों के अनुभवों से प्रतीत होता है कि यदि किन्हीं कारणवश एक विधि असफल रहती है तो दूसरी सफल हो सकती है। अतः यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम उस विधि को काम में लाना चाहिये जिससे प्रलेख खराब न हो और धीरे-धीरे अधिक कठिन प्रयोग करने चाहिये। वाशिंगटन के पुलिस विभाग के आर० डेविस के मतानुसार (ब्यूरो आफ स्टैंडर्ड साइंस पेपर्स, 1922-23, **18**, 445) यदि झुलसे प्रलेख को दो फोटोग्राफी प्लेट के बीच में दाब कर दो सप्ताह तक किसी ऐसी गैस में छोड़ दिया जाए, जिस कारण प्लेट धूमिल हो जाए तो प्लेट को व्यक्त करने पर देखा गया कि लेख काली पृष्ठभूमि पर सफेद हो गया। यदि प्रलेख दोनों ओर लिखा हुआ हो तो इस विधि से कठिनाई उत्पन्न होगी।

दूसरी विधि शुद्ध फोटोग्राफी विधि है जिसको जी० ए० जोन्स तथा न्यू स्काटलैंडयार्ड के सुपरिन्टेडेंट चैरिल (नेचर, 1941, **147**, 676) ने खोजा है। जहाँ क्लोरल हाइड्रेट विधि असफल है वहाँ यह विधि उत्तम फल देती है। क्लोरल हाइड्रेट विधि में कागज की सतह की चमकीली परावर्तकता और उस भाग के बीच जहाँ पर स्याही लगी हो, फोटोग्राफी प्लेट द्वारा अंतर का वास्तविक पता लगाना है। इसके साथ ही साथ स्याही के फीका होने का कारण कागज की सतह को नष्ट भ्रष्ट करना, निब का अधिक दबाव, अथवा स्याही में अकार्बनिक यौगिकों के अवशिष्ट का अभी भी पता नहीं है। किन्तु इस विधि में लेख फोटोग्राफ में चमकीली परावर्ती पृष्ठ पर गहरी रेखाओं के रूप में दिखाई देता है।

डब्यू० डी० ढेलर और एच० जे० वेल्स (नेचर, 1914, **147** 417) ने पता लगाया कि यदि झुलसे हुए प्रलेखों को ऐल्कोहल में बने क्लोरल हाइड्रेट के 25% घोल में डुबोकर 60⁰ से० पर सुखाया जाए **और** यह क्रिया तब तक की जाए जब तक कि सतह सफेद रवे का द्रव्यमान न बन जाए। तदुपरान्त उपरोक्त घोल में 10 प्रतिशत ग्लिसरीन मिलाकर प्रलेख पर क्रिया की जाए तो अनेक बार लेख स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रकार मिले प्रलेख का वैषम्य रंगहीन-सुग्राही प्लेट पर फोटो लेना चाहिये। इस विधि में सफलता मिलने पर प्रलेख के दोनों ओर के पृष्ठों का अलग-अलग फोटो लेना श्रेयस्कर होगा।

एच० डी० मूरे (नेचर, 1941, **148**, 199) के मतानुसार प्रलेख पर 5 प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट की क्रिया कराने पर अधिक विवरण प्राप्त हो सकते हैं। इन्होंने अपनी तकनीक में बतलाया कि यदि प्रलेख-नमूने को किसी शीशे की प्लेट के सहारे सिल्वर नाइट्रेट के घोल में तीन घंटे रखा जाए तो लेख की रूप रेखा भूरी पृष्ठभूमि पर काली दिखाई देगी। इसको अनेक बार आसुत जल में धोने के पश्चात् सुखा लिया जाए ताकि फोटो लिया जा सके। मुद्रित प्रलेखों का इस विधि से फोटोग्राफ लेना अधिक सफल सिद्ध हुआ है।

स्याही से लिखे प्रलेख जब झुलस जाते हैं तो उनपर आयरन आक्साइड के अवशेष रह जाते हैं जिनको रासायनिक क्रिया द्वारा ही पता लगाया जा सकता है। उपयोग में ऐसे अभिकर्मक लाने चाहिये जो लोहे को रंगीन क्रिया प्रदान कर सकें। उदाहरणार्थ-टैनिक अम्ल, अमोनियम सल्फाइड अथवा पोटेशियम-फैरो-साइनाइड प्रयोग में लाये जा सकते हैं। स्थायी रिकार्ड रखने के लिये पोटेशियम-फैरो-साइनाइड को 2 प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ मिलाकर प्रलेख पर क्रिया की जाए तो लोह के कारण गहरा नीला रंग हो जाएगा किन्तु पृष्ठभूमि नीली होने के कारण प्रायः वैषम्य कम हो जाता है।

अन्य विधि में भस्मीभूत प्रलेखों को दो सप्ताह तक बेंजाइल ऐल्कोहल में भिगोकर रखना चाहिए। तत्पश्चात् इस ऐल्कोहल में घुले कनाडा-बालसम से शीशे की प्लेट पर परत चढ़ाकर उपरोक्त प्रलेख को चिपकाना चाहिए। दूसरी इसी प्रकार की शीशे की प्लेट उसके ऊपर रखी जाए, जिससे कि भस्मीभूत और ऐल्कोहल में डुबोया प्रलेख दोनों प्लेटों के बीच में आ जाए। जिलैटिन फिल्टर में थोड़ी हरे रंग की झलक मात्र देकर लाल स्क्रीन के साथ मिलाकर फिल्टर तैयार किया जाए और इसकी सहायता से पैन्क्रोमैटिक प्लेट पर फोटो लिया जाए। इस प्रकार वे सभी विकिरण, जिनकी तरंग आयाम 7300 A° से कम हैं, रुक जावेंगे और लेख स्पष्ट-रूप से दिखाई देगा।

कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि धूल अथवा फटने के कारण स्याही या पेंसिल से लिखा गया प्रलेख पढ़ा नहीं जाता। अतः ऐसी अवस्था में किसी घोलक से साफ करके फिल्टर की सहायता से फोटो लेना चाहिये। विशेषकर यदि लेख रंगयुक्त है तो नीले-काले लेख के लिये पीला नारंगी फिल्टर को आर्थोक्रोमेटिक प्लेट के साथ प्रयोग करना होगा जबकि हरे लेख के लिये पैन्क्रोमेटिक प्लेट के साथ लाल रंग का फिल्टर अधिक उपयोगी होगा।

जब प्रलेख पर स्याही इतनी हल्की हो गई हो कि विद्यमान रंग प्रायः समाप्त तथा अदृश्य हो गया हो और

स्याही पीली अथवा बादामी रंग की दिखाई देने लगे तो फोटोग्राफी की सहायता से गूढ़ा किया जा सकता है। ऐसी
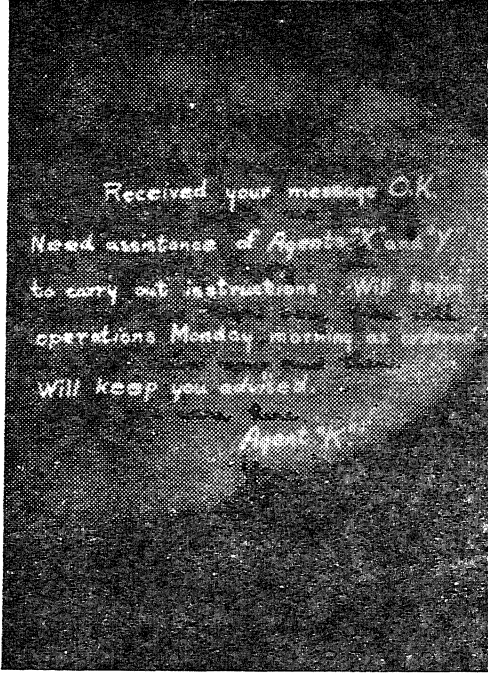
चित्र 4—पराबैंगनी प्रकाश में गुप्त लेख
(साइंटिफिक क्रिमनोलोजी से उद्भृत)

परिस्थिति में फिल्टर किये गये पराबैंगनी प्रकाश में फोटोग्राफी का परिणाम अच्छा प्राप्त हो सकता है। रंगीन लेखों तथा टाइप लिपियों, जिनमें किसी अक्षर / शब्द के जोड़ने की शंका हो की सर्वोत्तम फोटोग्राफी के लिये रंगीन फिल्टर का ही प्रयोग करना चाहिये, जिससे आभास मिल सके कि जालसाजी कहाँ और किस अवस्था में की गई है। उन गुप्त प्रलेखों को जो कि अदृश्य स्याही द्वारा लिखे गये हैं, वास्तव में ऐसे लेख युद्ध-बंदी, शत्रु-एजेन्ट, अपराधी झुंड, गुप्त समितियों के सदस्यों, राजनीतिक गुटों तथा देश-विदेश के कुटनीतिज्ञों द्वारा पत्र व्यवहार में मिलते हैं। युद्ध के समय प्रायः ऐसा पाया जाता है कि शत्रु-एजेन्ट अपने देश को अपने मित्र के पास कुशलता का पत्र दृश्य स्याही में भेजता है और साथ ही साथ उसी पृष्ठ पर अदृष्य स्याही से हमारे देश की गोपनीयता का भंडा-फोड़ करता रहता है। साधारणतया जब एक अपराधी अपने मित्र के पास संदेश भेजता है तो उसका अभिज्ञान करना सरल है किन्तु जब एक गुप्तचर एजेंट विशेष संदेश भेजता है तो उसका पता लगाना कठिन होता है।

गुप्त स्याही में अधिकतर मुँह की लार, मूत्र, दूध टूथ पेस्ट, चूने का पानी, सफेदी (कलई), साबुन, सुगन्ध, प्याज, औषधियाँ, इन्फ्लूएन्जा की गोली, कोबाल्ट्स-क्लोराइड, फैरिक-सल्फेट, आक्सेलिक अम्ल, ऐसिटिक अम्ल तथा नमक के तेजाब प्रयोग में लाये जाते हैं। रसायन पक्ष की ओर ध्यान न देकर फोटोग्राफी का ध्येय सम्मुख रखते हुए यही लिखना उचित है कि नाना प्रकार से रासायनिक क्रिया करने के पश्चात् जब अदृश्य स्याही का लेख दृष्टिगोचर हो जाये तो पराबैंगनी प्रकाश तथा अवरक्त प्रकाश में उचित फिल्टर तथा फोटोग्राफी प्लेट लगाकर फोटो लेना चाहिये, जिससे अदृश्य स्याही के अस्तित्व का ज्ञान हो जाए।

● ●

कोयला की खाद

□ डा० प्रेम चन्द्र खरे

बाग बगीचों के पौधघरों तथा गमलों में की जाने वाली कृषि में प्राकृतिक भूमि के अतिरिक्त अन्य माध्यमों द्वारा पौधों का उगाना 'न्यूट्रीकल्चर' संसार के सभी भागों में वर्षों से प्रचलित है। इसके अन्तर्गत तरल या जल-खाद, बालू, कंकर या वर्मीकुलाइट माध्यम तथा पोषण तत्व समन्वित पदार्थों का खाद रूप में प्रयोग आदि गिने जाते हैं। अन्य माध्यम-संवर्धन विधियों के निरंतर प्रयोगों द्वारा तथा विद्वानों के आधार पर ये बहुत लोकप्रियता प्राप्त करती जा रही हैं। इसका मूल कारण यह है कि प्राकृतिक भूमि की अपेक्षा, मिश्रण पोषक के एक निश्चित माध्यम में, जिसमें सर्वोत्तम अनुकूल पोषण तथा अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर दी गयी हो, बहुत अधिक उत्पादन किया जा सकता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि नम प्रदेशों, अति-वर्षा वाले क्षेत्रों अथवा कटिबंधीय क्षेत्रों में पौधों का उगाना एक अत्यन्त श्रमसाध्य, समयसाध्य तथा प्रायः अव्यावहारिक कृषिकार्य बन जाता है। इसके प्रतिकूल अन्य माध्यम-संवर्धन विधियों द्वारा सभी परिस्थितियों में सफलतापूर्वक अच्छी फसलें ली जा सकती हैं। अतः ऐसी विधियों के विकास तथा अन्वेषण की महत्ता बहुत अधिक है जो बहुत सरल, कम खर्च तथा व्यावहारिक सिद्ध हो।

अन्य देशों में अप्राकृतिक पोषण विधियों के विकास में काफी सफलता प्राप्त की गयी है परन्तु हमारे देश की गरीब जनता के लिए वे उतनी लोकप्रिय नहीं बन सकी हैं। यहां इस दिशा में अभी विशेष प्रगति भी नहीं की जा सकी है। यहां व्यक्तिगत खोज द्वारा कोयले को खाद के रूप में प्रयुक्त करके पौधे उगाने में जो सफलता प्राप्त की गयी है, उसकी चर्चा की जा रही है ताकि इसका शैक्षिक ज्ञान दिया जा सके तथा उद्यान प्रेमी, मालियों तथा ऐसे उत्साही महानुभावों जो इन विधियों से लाभ उठाना चाहें, पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकें।

चारकोल तथा मिट्टी के तत्व

1. मृत्तिका की भांति चारकोल भी एक ठोस पदार्थ है। मिट्टी के समान ही पौधों के अंकुरण के लिए प्राकृतिक, उपयुक्त तथा प्रभावकारी माध्यम है।
2. मिट्टी के कणों के मध्य में ही रिक्त स्थान होते हैं, चारकोल के कणों के मध्य तथा अन्त दोनों में रिक्त स्थान होता है।
3. मिट्टी के कण चिपक जाते हैं तथा उनके रिक्त स्थान कम हो जाते हैं। वह कड़ी-कठोर हो जाती है। परन्तु चारकोल के कण चिपकते नहीं। अतः उनके रिक्त स्थान बने रहते हैं। चारकोल के कण अपने अन्दर रिक्त स्थान रखते हैं। अतः वे मिट्टी की अपेक्षा अधिक जल धारण करते हैं।
4. चारकोल एक शुद्ध अघुलनशील कार्बन है और व्यवहार्यतः अक्रिय है। जब कि मृत्तिका विभिन्न यौगिकों का अनोखा समिश्रण है। अतः वह पूर्णतया घुलनशील, थोड़ा घुलनशील या अघुलनशील हो सकता है और तदनुसार सजीव, अल्प-सजीव (या अल्प क्रियाशील) अथवा निर्जीव हो सकता है।
5. यदि चारकोल को रासायनिक खादों में मिला

कर रख दिया जावे तो खाद के तत्व चारकोल के रिक्त स्थानों में प्रविष्ट हो जाते हैं तथा सरलता से पौधों को प्राप्त हो जाते हैं। मिट्टी खादों से मिलकर रासायनिक प्रक्रिया करती है और तत्वों को पौधों के लिये अप्राप्य बना देती है।

6. अन्तर्वर्ती गुण के कारण चारकोल को मृत्तिका की अपेक्षा अधिक सरलतापूर्वक रासायनिक द्रव्यों, ताप या उबलते जल के द्वारा शुद्ध (कीटाणुरहित) किया जा सकता है। इसमें किसी रासायनिक परिवर्तन की आशंका नहीं रहती है।

7. शुद्धीकरण के बाद कोयले को बार-बार प्रयोग किया जा सकता है। मिट्टी में भौतिक, रासायनिक या कोई भी शुद्धीकरण प्रक्रिया सरलता से नहीं की जा सकती और यदि की जाती है तो उसका प्रभाव मिट्टी पर पड़ता है।

खाद तथा माध्यम

वे खादें जो जल में घुल जाती हैं प्रायः लौह तत्व तथा चूना से रहित होती हैं, अतः पूर्ण खाद नहीं कहलातीं। पूर्णतया पानी में घुलने वाली खादें पूर्णखादें कही जाती हैं परन्तु वस्तुतः पूर्णखादें नहीं होतीं। उनमें लौह तथा ऐसे यौगिक होते हैं जो अधिक मूल्य वाले होते हैं। इस प्रकार ये अपेक्षाकृत अधिक खर्चीली खादें बन जाती हैं।

पानी में घुलकर खादें अम्लत्व, क्षारिता अथवा निर्लेप प्रतिक्रियायें उत्पन्न करती हैं अतः मिट्टी की किस्मों तथा पौधों की आवश्यकताओं के अनुकूल उनका प्रयोग अपेक्षित होता है।

वे खादें जो जल में अधिकांशतः या अंशतःघुलनशील तत्वों से समन्वित एवं घोल रूप में अप्रतिक्रियाशील होती हैं, वही खादें वास्तव में पूर्ण कही जा सकती हैं। चारकोल माध्यम के लिए सर्वाधिक उपयुक्त यही खाद है क्योंकि चारकोल पोषक तत्वों से रहित होता है।

खादें एक प्रकार की रसायन-द्रव्य हैं जो अत्यन्त सघन रूप में कर दिये गये होते हैं। सजीव पौधों के किसी भी भाग से सम्पर्क प्राप्त करके वे उसे हानि हुँपचाते हैं। अतः खादों को सम्पृक्त घोल के रूप में या घोल-मिश्रणों के रूप में ही सावधानी से प्रयोग करना चाहिए।

पात्र या गमले

चिकनी मिट्टी, पत्थर, टाइल के बने नांद या गमले, जो वायु संचार की गुंजाइश नहीं रखते, उतने लाभदायक नहीं जितने मिट्टी के गमले, जिनमें रिक्त स्थान होते हैं तथा हवा का संचार कर सकते हैं। बहुत बड़े नांद यद्यपि खाद या कोयले की काफी मात्रा रख सकते हैं परन्तु उनमें जल के निकास तथा वायु संचार में बाधा पड़ने की शंका रहती है। अतएव नांद या गमले ऐसे चुनने चाहिए जिनमें जड़ों के फैलाव, तथा बढ़ाव के लिए जल निकास तथा वायु संचार की सुविधा हो। पालीथीन के काले रंग के गमले जिससे जड़ों के बढ़ाव पर धूप का प्रभाव न पड़े, जिनमें जल निकास या जल रिसने हेतु बारीक छिद्र हों तथा जिनमें वायु का संचार हो सके अच्छा काम देते हैं।

विधि

कोयले का स्टाक रखने वालों के यहां बहुत सा कोयले का चूरा या चिप्स, या भुरकुन कूड़े के रूप में पड़ा रहता है तथा अपेक्षाकृत कम मूल्य पर सुविधा से प्राप्त हो जाता है। टूटे कोयले को छन्नों द्वारा छान लेने से आवश्यक आकार वाला चूरा जो ८ क्यूबिक से० मी० से महीन धूल जैसा हो, प्राप्त किया जा सकता है। नन्हें कणों की जितनी अधिक संख्या होगी उतनी ही अधिक प्रति इकाई आयतन उसकी जलधारण शक्ति होगी। सूखा चूरा पानी को ग्रहण करने में देर लगाता है अतः पानी की नांद में उसे डुबा देना चाहिए। जब खूब भीग चुकें तब बड़े छन्नों या छाज द्वारा निकाल कर भरना चाहिए। इस तरह भारी परमाणु तथा आवश्यक बालू व धूल धुल कर नीचे बैठ जाती है या पानी में छायी रहती है। अब इस कोयले के

चूरे को मिट्टी या खाद के समान प्रयुक्त करना चाहिए।

चारकोल चूर्ण का शुद्धीकरण

जिस कोयला चूर्ण को पौधे उगाने में प्रयुक्त किया जा चुका हो, उसे धूप में सुखा कर तथा पुनः कीटाणुनाशक घोल के टब में डुबाकर अथवा कड़ाह में उबलते पानी में डालकर तथा छाज से निकाल कर अपेक्षाकृत कम समय में शुद्ध करके पुनः प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त फसलचक्र द्वारा भी कोयलाचूर्ण का दुबारा उपयोग हो सकता है। जब तक जड़ें सूखकर नष्ट न हो जायें तब तक इस चूर्ण को 'परती' छोड़ देने से भी पुनः उपयोग हो सकता है।

खाद का प्रयोग

पौधों के शारीरिक बढ़ाव के कारण, तेज वर्षा के कारण, अथवा अन्य वातावरण की दशाओं के कारण, यह आवश्यक होता है कि निश्चित अवधि के अन्तर से खाद की सूक्ष्म मात्राएं दी जाती रहें। इस प्रकार प्रति सप्ताह खाद की एक खूराक देना व्यावहारिक तथा उपयोगी होता है। खूराक की मात्रा एक सप्ताह के लिए आवश्यकतानुसार निश्चित की जा सकती है। खाद दानेदार रूप में या मिश्रण घोल रूप में दे सकते हैं परन्तु प्रायः घोल रूप में अधिक उपयुक्त रहता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि तीव्रता से बढ़ने वाले तथा पत्तीदर शाक-सब्जियों यथा टमाटर आदि को खाद की अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। लकड़ी या कम पत्तीदार पौधों यथा गुलाब, क्राइसैंथमम आदि में कम खाद की मात्रा की आवश्यकता पड़ती है।

दानेदार खादों, जो घुलनशील तथा कुछ अघुलनशील होती हैं की मात्रा, चौथाई से एक चम्मच प्रतिपौध काफी रहती है। इसे तने तथा पत्तियों से बचाकर कोयले की सतह पर प्रति सप्ताह छिड़काव करें।

यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस समय पौधों में फूल या फल आने वाले हों, उस समय 'नाइट्रोजन' की मात्रा (विशेषकर अधिक पत्तीदार पौधों में) अधिक देनी होती है। इसके लिए यूरिया मुख्य खाद में मिलाकर देनी चाहिए तथा क्रम ऊपर निर्देशित वर्णन के अनुसार ही रखना चाहिए।

यदि यही खाद, मिश्रण या घोल रूप में हो तो किसी प्लास्टिक बाल्टी में २ गैलन जल में 10 औंस यूरिया आधा घण्टा तक रखा रहने के बाद छिड़कें। अधिक मात्रा आवश्यक हो तो 10 से 40 औंस तक यूरिया खूब हिलाकर घोल बना लें तथा पत्तियाँ व तने बचाकर सतह पर प्रति सप्ताह छिड़काव करें।

सिंचाई

पौधों के अनुकुल ही नांदों, गमलों या अन्य पात्रों का आकार रखना जरूरी होता है, ताकि दिन में एक बार ही सिंचाई की जाये तथा आवश्यक मात्रा में पानी धारण हो सके। सुबह सिंचाई करना लाभदायक होता है क्योंकि दिन की तेज धूप में पौधों को प्रकाशसंश्लेषण, ट्रांस्पिरेशन आदि अनेक आन्तरिक क्रियाओं के कारण जल की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है।

जल की अधिक मात्रा देने की एक विधि यह भी है कि एक अलग पात्र में कोयले का चूरा तथा ऊपर कंकर भर कर तथा पानी डालकर उन पर गमलों या नांदों को रख दें। इससे पौधे अपनी जड़ों द्वारा जल खींचते रहेंगे। इस विधि को विदेशों में 'पोटोपैन' (आधार पात्र) विधि कहते हैं।

अन्य सामान्य बातें

कोयलाचूर्ण बीजों को अंकुरित करने, प्रतिरोपण हेतु, पौध तैयार करने आदि के लिए प्रयुक्त होता है। बीज सीधे महीन चूरे में बोये जा सकते हैं तथा बाद को गमले या नांद की आवश्यकतानुसार उन्हें हटाकर कम मात्रा में लगा रहने देना चाहिए। रोग या कीटाणुओं से पौधों की रक्षा विधि सामान्यतः वही है जो मिट्टी में उगाये गये पौधों में की जाती है।

[शेष पृष्ठ 22 पर]

नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाला पहला कृषि वैज्ञानिक

भारत की 'हरित क्रान्ति' का श्रेय बौने गेहूँ को है जिसके जन्मदाता हैं डा० नार्मन अर्नेस्ट बोर्लो (Borlaugh)।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जापान में गेहूँ के 'नोरिन जीनों' की खोज हुई थी। ये जीन एक ओर गेहूँ के पौदे की उत्पादन क्षमता और रोग प्रतिरोधकता बनाये रहते हैं तो दूसरी ओर उसकी ऊँचाई कम करके उसे बौना बना देते हैं। 1946 ई० में जापानी गेहूँ की किस्में अमेरिका पहुँची। वहाँ पर 'गेन्स' नामक शीतकालीन गेहूँ की पहली किस्म जारी की गई। मेक्सिको के कार्यकर्ता डा० बोर्लो ने बसन्तकालीन गेहुँओं में प्रयोग प्रारम्भ किये। कहते हैं कि 1964 तक नई बौनी किस्मों से 140 क्विटल प्रति हेक्टर से भी अधिक उपज प्राप्त हो सकी। नार्मन बोर्लो ने अपने 8 वर्षों के अथक परिश्रम से सोनरा और लरमा रोहो नामक बौनी किस्में विकसित कीं। 1962 में भारत का ध्यान बौने गेहूँ की ओर आकृष्ट हुआ। फलतः 1963 ई०में सरकार ने बोर्लो को भारत में आमंत्रित किया। उन्होंने वापस जाकर भारत को 100 किलोग्राम बीज तथा 613 चुनी जातियों के नमूने भेजे जिन्हे दिल्ली, पन्तनगर, लुधियाना, पूसा, कानपुर, भुवाली तथा वेलिंगटन अनुसन्धान केन्द्रों में उगाया गया। 1965 ई० में देश भर में सोनरा-64 और लरमा रोहो किस्में बोने के लिये संस्तुत की गई और 1966 में 18 हजार टन बीज आयात किया गया। आज 20 लाख हेक्टर में नई बौनी किस्मों की खेती की जा रही है जिससे 1 करोड 80 लाख टन गेहूँ उपजता है। भारत के इतिहास में यह पहली सबसे बड़ी कृषि सफलता रही है जिसका श्रेय डा० बोर्लो के द्वारा खोज किये गये गेहूँ को है।

इतनी महान खोज के लिये डा० बोर्लो को 1968 से ही सम्मान एवं पुरस्कारों का ताँता लगा रहा है। भारत की सोसाइटी आफ जेनेटिक्स तथा प्लाँटब्रीडिंग के वे सम्मानित सदस्य चुने गये। मेक्सिको में एक सार्वजनिक मार्ग का नामकरण उनके नाम पर हुआ। जिसकी नाम पट्टिका में उन्हें "गेहूँ का देवदूत" कहा गया है। संयुक्तराज्य अमरीका ने उन्हे राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी का सदस्य चुनकर सम्मानित किया है।

किन्तु वास्तविक सम्मान स्वीडिश अकादमी ने प्रदान किया है उन्हें नोबेल पुरस्कार प्रदान करके। वैज्ञानिक जगत में कृषि विशेषज्ञ के योगदान की मान्यता का यह सर्वोपरि प्रमाण है। 1970 का यह नोबेल पुरस्कार भविष्य में कृषि वैज्ञानिकों के लिये प्रेरणा का स्रोत बन सकेगा।

कार्बनयुक्त खनिज जल का प्रयोग

पानी में जब कार्बन की मिलावट पायी जाय तो समझ लेना चाहिए कि वह खनिज़ जल है। इसमें प्रति लिटर कुछ

मिलीग्राम से लेकर कुछ ग्राम तक कार्बनडाईअक्साइड हो सकती है। लेकिन प्रति लिटर पानी में अगर 0·75 ग्राम कार्बनडाईआक्साइड स्वतंत्र रूप से मौजूद हो तो उसे कार्बनयुक्त पानी कहा जाता है। कार्बनयुक्त पानी के सम्पूर्ण गैसीय संयोजन में अन्य गैसों की अपेक्षा कार्बन डाईआक्साइड का 95 से लेकर सौ प्रतिशत तक प्राधान्य रहता है। इसके अतिरिक्त, कार्बनयुक्त जलों सहित, सभी खनिज जलों के आयनसंघटन में अत्यधिक असमानता होती है। उनमें धरती की ऊपरी सतह (पपड़ी) के लगभग सभी तत्व पाये जाते हैं।

फिर भी इनमें प्रमुख तत्व कार्बनडाईआक्साइड ही है। इसका जैविक महत्व बहुत अधिक है। यह प्राणि-संश्लेषण की अनेक प्रतिक्रियाओं में सहायक होती है, और रक्त तथा ऊतक क्षेत्र की उभयरोधी तन्त्र-रचना का अंग है, जिससे शरीर में अम्ल-क्षारीय सन्तुलन कायम रहता है। मस्तिष्क के श्वसन केन्द्र के स्नायविक ऊतकों की कोशिकाएं कार्बनडाईआक्साइड के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं। फिर भी यह स्वाभाविक ही है कि मनुष्य कार्बनडाईआक्साइड से सतर्क रहे। अगर हवा में इसका साँद्रण दस प्रतिशत से अधिक हो जाय तो आदमी बेहोश हो जाता है और श्वासयन्त्रीय पक्षाघात से उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

आयुर्विज्ञान ने हालाँकि ऐसे निरीक्षण-परीक्षण किये हैं जिनसे पता चलता है कि कार्बनडाईआक्साइड मानव-शरीर के लिए हितकर है। विभिन्न रोगों का इलाज करने के लिए मनुष्य प्राचीनकाल से कार्बनयुक्त जलों का उपयोग करता आ रहा है, फिर भी, एक लम्बे समय तक शरीर पर उसके प्रभाव की प्रतिक्रिया का स्पष्टीकरण नहीं हो पाया था। खनिज जल चिकित्सा में माहिर डाक्टरों ने वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक में इस समस्या की ओर ध्यान दिया। समय-समय पर डाक्टरों ने कार्बनयुक्त जलों की प्रतिक्रिया में रुचि दिखाई। उन्होंने लक्ष्य किया कि कार्बनडाईआक्साइड त्वचा को रक्ताभ बना देती है, अर्थात् इसकी वजह से रक्तवाही कोशिकाएं फैल जाती हैं। कार्बनडाईआक्साइड एक प्रकार से रुधिरवाहिकाओं को 'प्रशिक्षित' करके दिल से अतिरिक्त सहायता लिये बिना शरीर में खून को अधिक युक्तिसंगत ढंग से वितरित करती है। इसीलिए हृत्संवहनी की चिकित्सा में कार्बनयुक्त स्नान का उपयोग किया जाता है।

कार्बनडाईआक्साइड से साँस लेने में भी मदद मिलती है। यही वजह है कि खून में कार्बनडाइआक्साइड की अधिकता (हाइपरकेप्निया) और साथ ही साथ आक्सीजन की कमी (हाइपौक्सिया) की स्थितियों में कार्बनयुक्त जल का स्नान लेने से धीरे धीरे अधिक स्थिरता आ जाती है।

धमनीय दाब पर असर

कार्बनयुक्त स्नान का धमनीय दाब पर क्या प्रतिक्रिया होती है?—इससे परिधीय वाहिकाओं की शक्ति में सुधार होता है, फलस्वरूप पारद स्तम्भ पर धमनीय दाब 10 से 15 मिलीमीटर तक बढ़ जाता है। स्नान कर चुकने के एक या दो घन्टे बाद त्वचा पर पुनः लाली आ जाती है लेकिन नंगी आँख से इसे कठिनाई से ही देखा जा सकता है। स्नान से पहले की अवस्था की अपेक्षा क्रियाशील कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है, इस कारण धमनीय दबाव घट जाता है। मगर केवल दूसरे दिन ही जाकर कहीं पहले जैसी स्थायी स्थिति लौट पाती है (इसीलिए यह जरूरी है कि एक दिन छोड़कर कार्बनयुक्त जल से स्नान किया जाय)।

कार्बनडाईआक्साइड का प्रभाव खून के बहाव की रफ्तार सहित रक्तप्रवाह के सभी संकेतकों पर पड़ता है। हृत्संवहनी रोगों से पीड़ित रोगियों में खून का घटा हुआ प्रवाह सामान्य बहाव बन जाता है। रक्तप्रवाह की सामान्य गति वाले रोगियों की अवस्था में इससे गतिवर्धन नहीं होता। जहाँ प्रमस्तिष्कीय, बल्कुटीय अथवा गुरदे के रक्त प्रवाह की गड़बड़ी न हो, और जहाँ धमनीय दाब पारदस्तम्भ के हिसाब से 200 मिलीमीटर से अधिक न हो, वहां उच्च रक्तचाप के इलाज में कार्बनयुक्त स्नान प्रभावकारी सिद्ध होता है।

अगर अल्परक्तचाप का सम्बन्ध स्नायविक नियन्त्रण की विकृति और अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की थोड़ी बहुत क्रियात्मक गड़बड़ी से हो तो अल्परक्तचाप के इलाज में कार्बनयुक्त स्नान से दाब में कमी होती है। लेकिन जहाँ अल्प-रक्तचाप शरीर में स्नायविक गड़बड़ी के कारण हो वहाँ कार्बनयुक्त स्नान से कोई लाभ नहीं होता।

कार्बनयुक्त स्नान का असर हृदय की क्रियाशीलता पर भी पड़ता है। इसके सिकुड़ने की संख्या में कमी आ जाती है, रक्तप्रवाह अधिक सामान्य हो जाता है, हृदय-पेशियों की अदलाबदली की प्रक्रिया में सुधार होता है और हृदय अधिक सक्षम तरीके से काम करने लगता है। छः से लेकर बारह महीनों के पश्चात् इस इलाज का परिणाम दृष्टिगोचर होता है।

हाल ही में कुछ वैज्ञानिकों ने हृत्पिण्ड व्यतिक्रम; द्विकपर्दी कपाटों की अपर्याप्तता को दूर करने के लिए किये गये आपरेशनों के पश्चात् और हृत्कपाट की बीमारियों की क्षतिपूर्ति की अवस्था में कार्बनयुक्त स्नान लेने में सावधानी बरतने की जरूरत पर जोर दिया है।

कार्बनडाईआक्साइड की अधिक मात्रा वाली हवा

अधिक कार्बनडाईआक्साइड-अंश वाली हवा खनिज झरना-स्नान चिकित्सा का अनिवार्य अंग है। इस प्रकार की हवा में साँस लेने से श्वसन-पेशियों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। एक मिनट में फेफड़ों में वायु संचार की मात्रा डेढ़ लिटर तक बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप हृत्संवहनी रोगियों की साँस लेने की कठिनाई घट जाती है, श्वसनी दमे के रोगी हमले का मुकाबला ज्यादा अच्छी तरह कर सकते हैं। झरना-स्नान की चिकित्सा शुरू करने से पहले रोगी अगर छः से आठ सेकण्ड तक साँस रोके रह सकता था तो इस इलाज के पश्चात् वह सोलह से लेकर तीस सेकण्ड तक साँस रोक सकने काबिल हो जाता है।

कार्बनडाईआक्साइड के अलग-अलग साँद्रणों के प्रति मानव-शरीर की प्रतिक्रिया अलग होती है। हमने लोगों के एक ऐसे दल का निरीक्षण किया जिन्हें कम कार्बनडाईआक्साइड मिली हवा का सेवन कराया गया था। उन्हें शुद्ध हवा और कार्बनडाईआक्साइड मिली हवा भरे थैलों के साथ जुड़े गैस मास्कों के जरिये से साँस खीचनी पड़ी थी। इसी बीच उन पर कुछ निश्चित बोझा भी लाद दिया गया था। इस जाँच से पता चला कि शान्ति-पूर्वक दस से चौदह मिनिट तक एक प्रतिशत से तीन प्रतिशत कार्बनडाईअक्साइड का कश खींचने से धमनियों में बहने वाले खून की अक्सीजन की मात्रा घटने की अपेक्षा कुछ बढ़ ही गई है इससे गहरी साँस लेने में मदद मिली, फेफड़ों में वायु-संचार की मात्रा स्पष्ट रूप से बढ़ गयी, नाड़ी की गति कुछ धीमी हुई और धमनी-दाब भी नहीं बढ़ा। बल्कि इसमें कमी होने के लक्षण दिखायी दिये, इससे बोझा उठाने में आसानी हुई और थकान कुछ देर बाद महसूस हुई। इस से सिद्ध होता है कि कार्बनडाई-आक्साइड के अल्प मिश्रण से शरीर में चुस्ती और मुस्तैदी पैदा होती है।

स्नायविक तथा अन्य रोगों की चिकित्सा में

प्राचीनकाल से कार्बनयुक्त खनिज जलों का उप-योग स्नायु-सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा के लिए होता आ रहा है। 1948 के फौजी डाक्टरी आँकड़ों के अनुसार कमजोर नसों की अवस्था में कार्बनयुक्त पानी ने सबसे अच्छे परिणाम दिखाये। नवीनतम जाँच-परिणामों से इस बात की पुष्टि होती है। इसके स्नान से स्नायु रोग से पीड़ित रोगियों को—जो विषाद-ग्रस्त हों या दिल के मरीज, जिन्हें ठीक से नींद न आती हो, मेदे और अंतड़ियों की शिकायत हो, और जिनके शरीर की माँसपेशियाँ शिथिल पड़ गयी हों—विशेष लाभ होता है।

प्रयोगात्मक प्रेक्षणों से सिद्ध हो गया है कि कार्बनयुक्त स्नान से ऊतकों की अदलाबदली की प्रक्रिया पर भी असर पड़ता है। एथिरोकाठिन्य की अवस्था में एड्रिनैलिन तथा नौरे, एड्रिनैलिन अन्त: स्राव पर कार्बनयुक्त स्नान के प्रभाव का अध्ययन किया गया था।

इन विशेष अन्तःस्रावों में शोधकर्ताओं ने विशेष रुचि क्यों दिखाई? अधिवृक्क ग्रन्थि के ऊपरीस्तर के अन्तःस्राव

[शेष पृष्ठ 22 पर]

विज्ञान-वार्ता

चन्द्रमा की मिट्टी से आक्सीजन और पानी बनाने की पद्धति का विकास

अमेरिकी अंतरिक्ष एजेन्सी के वैज्ञानिकों ने एक ऐसे सरल और व्यावहारिक तरीके का विकास किया है जिसके द्वारा चन्द्रमा की मिट्टी से आक्सीजन और पानी बनाया जा सकता है।

इस तरीके के विकास से इस बात की सम्भावना का मार्ग खुल जाता है कि चन्द्रमा पर मनुष्य का पोषण हो सकता है और चन्द्रमा को ऐसे अड्डे के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है जहाँ अंतरिक्षयान आवश्यक सामग्री को पुनः प्राप्त कर सके। उदाहरणार्थ, आक्सीजन भी एक ऐसी वस्तु है जिसकी पुनः पूर्ति अंतरिक्षयानों के लिये आवश्यक है क्योंकि आक्सीजन का इस्तेमाल केवल मनुष्य के श्वास लेने तक ही सीमित नहीं है, इसका प्रयोग अंतरिक्षयान के 'प्रणोदक' के रूप में भी होता है।

अमेरिकी अंतरिक्ष एजेन्सी के समानव अंतरिक्षयान केन्द्र के 10 वैज्ञानिकों ने बताया है कि 100 पौण्ड (45 किलोग्राम) चन्द्र-शैलों से 1 पौण्ड पानी बनाया जा सकता है और यदि मिट्टी के हिस्से चुम्बकीय ढंग से परस्पर जुड़े हुए हैं तो 100 पौण्ड (45 किलोग्राम) मिट्टी से 14 पौण्ड (6·35 किलोग्राम) पानी बनाया जा सकता है।

उनके उपकरण में एक दर्पण का इस्तेमाल किया जाता है। सूर्य की किरणें दर्पण के जरिये उस बर्तन पर केन्द्रित की जाती हैं जिसमें चन्द्रमा की मिट्टी होती है। इस तरह उस बर्तन को 600 से 1300 डिग्री सेन्टीग्रेड तक गर्म किया जाता है। इसके बाद उस बर्तन में हाइड्रोजन का समावेश किया जाता है। उससे आक्सीजन के अणु मिट्टी में घुल जाते है और भाप बनने लगती है जिसे ठंडा करने के बाद पानी बन जाता है।

आक्सीजन 'लौह-टाइटेनियम आक्साइड' से प्राप्त होगी जिसे 'इलमेनाइट' कहते हैं और जो चन्द्रमा की मिट्टी में बहुतायत से पायी जाती है। यह जानकारी अपोलो-11 और अपोलो-12 के अंतरिक्षयात्रियों द्वारा लाये गये चन्द्रमा के नमूनों के विश्लेषण से ज्ञात हुई है।

किन्तु, पानी और आक्सीजन बनाने के काम में अमेरिकी अंतरिक्षयात्रियों द्वारा लाए गए चन्द्र-नमूनों का इस्तेमाल नहीं किया गया है।

वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा की कृत्रिम मिट्टी बनाकर अपने प्रयोग किये हैं। कृत्रिम चन्द्र मिट्टी हवाई से साल्ट-राक तथा कनाडा से 'इलमेनाइट' मंगाकर, उसे पीस कर तथा यथोचित अनुपात में दोनों को मिलाकर बनाई गयी।

हाइड्रोजन को अपने साथ चन्द्रमा तक ले जाना होगा किन्तु अधिक आक्सीजन बनाने के लिए उसे कई बार परिचालित करना होगा।

जिंक क्रोमेट नहीं कैल्शियम क्रोमेट

इस्पात की चीजों पर पेंन्टिंग करने से उसके क्षरण का खतरा होने लगता है। किसी भी इस्पात से बनी वस्तु को क्षरण से बचाने के लिये आवश्यक है कि उसकी रंगाई करने से पूर्व कोई क्षरणरोधी रसायन लगाया जाये। हम अभी तक इसके लिये 'लाल-सीस' का उपयोग करते रहे हैं जो बहुत ही मंहगा होता है और विदेशों से आयात किया जाता है। देश के बढ़ते हुये इस्पात उत्पादन और उस इस्पात को क्षरण से बचाने की आवश्यकता के महत्व को

सोचते हुये केन्द्रीय विद्युत रसायन अनुसन्धान संस्थान करा-इकुड़ी ने जिंक क्रोमेट के इस कार्य को उपयोगी बनाने की विधि निकाली। जिंक क्रोमेट अपनी सामान्य अवस्था में जितना प्रभावशाली क्षरण-रोधी है, उससे अधिक उसकी क्षमता बढ़ाने के लिये उक्त संस्थान ने प्रयास किया। फिर ऐसा अनुभव किया गया कि यदि जस्ते के स्थान पर कैल्शियम का उपयोग किया जाये तो विदेशी मुद्रा की बचत ही नहीं, देशीय स्तर पर भी लागत कम की जा सकती है। संस्थान ने सफलता पूर्वक एक कैल्शियम क्रोमेट पाइमर का निर्माण किया है। क्षरण-रोधिता के लिये प्रयोगशाला तथा क्षेत्रीय स्तर पर परीक्षण संतोष-जनक रहे हैं।

प्रोटीन से भरपूर रागी

तमलिनाडु के कोयम्बटूर स्थित कृषि विद्यालय एवं अनुसंधान संस्थान ने रागी की एक ऐसी किस्म निकाली है जिससे पैदावर भी अधिक मिलती है और उसमें प्रोटीन की मात्रा भी 11·5 प्रतिशत तक होती है। इस किस्म को सीओ-9 के नाम से पुकारते हैं। अब इसे खेती करने के लिए किसानों को दे दिया गया है।

सीओ-9 किस्म में कत्थई किस्म की रागी की अपेक्षा पोषक तत्व अधिक होते हैं। उस किस्म के मुकाबले इसका 4 रुपये प्रति क्विंटल मूल्य भी अधिक मिलता है। इसकी फसल को तैयार होने में 103 से 105 दिन लगते हैं। इसकी खेती मानसूनी फसल के रूप में की जाती है लेकिन गर्मियों में सिंचाई करके भी इसे उगाया जा सकता है। भवानीसागर स्थित कृषि अनुसंधान केन्द्र पर किये गये परीक्षणों में इस किस्म से प्रति हैक्टर 4500 किलोग्राम पैदावार मिली। अधिक मात्रा में उर्वरक डालने पर नयी रागी की अधिक पैदावार मिल सकती है।

● ●

[पृष्ठ 17 का शेषांश]

सम्भावनाएं

धान मिलों में व्यर्थ कूड़े के रूप में भी धान की भूसी यथेष्ट मात्रा में प्राप्त हो जाती है, तथा उसका भी कोयला अत्यन्त उपयोगी पाया गया है।

जिनको बाग बगीचों का शौक है, नांदो में नये किस्म के सजावट के पौधे लगाने, तरह-तरह की तरकारियां उगाने का शौक है उनके लिये मृदा रहित खेती से पौधे उगाना बड़ा लाभदायक होगा और धीरे-धीरे वह अवश्य लोकप्रियता प्राप्त कर लेगा। विद्यालयों में भी कोयला-चूर्ण माध्यम से पौधे उगाने के प्रयोग करके व्यावहारिक शिक्षा दी जा सकती है। लानों, पौधघरों तथा उद्यानों में कोयला चूर्ण द्वारा मिट्टी को पुनः उपजाऊ बनाया जा सकता है।

● ●

[पृष्ठ 20 का शेषांश]

अर्थात् एड्रिनैलिन का प्रभाव शरीर के सभी तन्त्रों में महसूस होता है। रक्तप्रवाही अंगों पर एड्रिनैलिन का बहुत गहरा असर पड़ता है। रक्त में ग्लूकोज की कमी के कारण पैदा होने वाली किसी भी चिन्ताजनक अवस्था अर्थात् रक्तस्राव, अतिशीतलन अथवा अल्प ग्लूकोजरक्तता (हाइपोग्लाइ-सेमिया) में एड्रिनैलिन-क्षीण होने लगता है। अध्ययन से पता चल गया कि एड्रिनैलिन की जीव सँश्लेषण प्रक्रिया पर कार्बनयुक्त जलों का धनात्मक प्रभाव पड़ता है और अधिवृक्क ग्रन्थियों में एड्रिनैलिन के सँचयन में सहायता मिलती है।

इस प्रकार आधुनिक अनुसन्धान कर्ताओं ने हरक्युलीज की दन्तकथा में छिपा अर्थ ढूंढ निकाला है : वह यह कि क्रमानुसार कार्बनयुक्त स्नान करने से शरीर आक्सीजन की घटी हुई और कार्बनडाईआक्सइड की बढ़ी हुई मात्रा को बर्दाश्त कर सकने में अधिक सक्षम हो जाता है।

● ●

सम्पादकीय

सी० ओ० एस० टी०—कास्ट

भारत सरकार ने 1958 में "वैज्ञानिक नीति" अपना कर उसके मूलभूत सिद्धान्त स्थिर किये थे किन्तु 12 वर्षों के बाद भी उस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई। इस नीति के अन्तर्गत वैज्ञानिकों को अच्छी नौकरियाँ देना, उनका सम्मान करना तथा जनता को विज्ञान से लाभान्वित कराना सम्मिलित हैं किन्तु 20 वर्षों की आयोजनाओं के बावजूद भी देश का वैज्ञानिक कार्यक्रम अस्तव्यस्त रहा है। न तो विकास, डिजाइन, उत्पादन, विपणन की दिशा में कोई सामञ्जस्य स्थापित हो सका है, न ही शोध को प्राथमिकता प्रदान की गई है। उद्योगों में शोध को विशेष स्थान प्राप्त नहीं हो पाया।

उपर्युक्त अभावों की पृष्ठभूमि में गत 28-30 नवम्बर को देश भर के 150 से अधिक वैज्ञानिकों, तकनीकिज्ञों एवं शिक्षाशास्त्रियों ने दिल्ली में एक सम्मेलन में भाग लिया जिसका नाम है 'कमिटी आन साइंस एन्ड टेकनालाजी' जिसे संक्षेप में C.O.S.T (कास्ट) कहा कहा गया है। इस सम्मेलन में ठीक ही बल दिया गया कि इसे स्वतंत्र संगठन के रूप में कार्य करना होगा। इस सम्मेलन ने यह अनुभव किया कि यद्यपि देश में परमाणु अनुसन्धान, कृषि विज्ञान, भेषज तथा खाद्य विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है किन्तु आज भी देश के भाग्य विधाता नेता हैं, वैज्ञानिक नहीं। नेता की तरह किसी भी वैज्ञानिक को अधिकार प्राप्त नहीं है। विशेष योग्यता होने पर भी वैज्ञानिकों को नौकरी पाने के लिये विभिन्न आयोगों के समक्ष उपस्थित होकर अपनी योग्यता सिद्ध करनी होती है जबकि नेता या प्रशासकों के लिये ऐसी रोक नहीं है। फिर वेतन क्रम में भी विषमता है।

यह अनुभव किया गया कि समय आ गया है जब देश के वैज्ञानिकों को संगठित होकर इन विषमताओं के प्रति आवाज उठानी होगी, "वैज्ञानिक नीति" को कार्यरूप में परिणत करने के लिये सरकार को बाध्य करना होगा, नई वैज्ञानिक प्रतिभाओं की खोज करनी होगी, नौकरी-चुनावों को अमान्य बनाना होगा, वैज्ञानिक शिक्षा में आमूल सुधार करना होगा। यही नहीं देश में जितने वैज्ञानिक संगठन हैं उनमें सामञ्जस्य स्थापित करना होगा और वैज्ञानिक समिति का पुनर्गठन करके राज्य संचालन में वैज्ञानिकों से समुचित परामर्श लिये जाने की व्यवस्था करनी होगी। अधिकार की लड़ाई लड़े बिना वैज्ञानिकों का कल्याण सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक युग में विज्ञानी अपने को समझें और अपने को ऊपर उठाने का यत्न करें।

नये वर्ष की शुभकामनायें

नववर्ष में हम अपने पाठकों लेखकों एवं शुभचिन्तकों को अपनी शुभकामनायें प्रेषित कर रहें हैं। विज्ञान परिवार काफी बड़ा और पुराना है। विज्ञान के समक्ष अनेक आर्थिक एवं बौद्धिक संकट आये किन्तु सभी के सहयोग से विजय मिलती आई है। हमें आशा है कि भविष्य में भी हमें इसी प्रकार सफलता मिलती रहेगी। हम वचनवद्ध हैं देश के भीतर हिन्दी माध्यम से विज्ञान प्रसार एवं प्रचार के लिये। हम तभी सफल हो सकते हैं जब हमारे लेखक, पाठक और ग्राहक तत्परता दिखाते रहें। राष्ट्रीय उन्नयन में पत्रिकाओं का योग होता है और 'विज्ञान' भी अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक है। बस, आप सब लोगों का सहयोग चाहिए।

देश में सांस्कृतिक उत्थान के लिये वैज्ञानिक जागरूकता आवश्यक है। घर घर में कोई न कोई विज्ञान की पत्रिका पहुँचती रहे इसके लिये सम्पादकों, प्रकाशकों एवं पाठकों को सुसंगठित रूप से कार्य करना होगा। कौन नहीं चाहता कि नई नई खोजों की उसे जनकारी हो, वह उन्हें समझे और लाभ उठावे। किन्तु जब तक "समाचार पत्रों" के लिये जैसी व्यग्रता हर सुबह होती है वैसी ही व्यग्रता वैज्ञानिक समाचारों के लिये उत्पन्न नहीं होगी तब तक न तो अधिक पत्रिकायें प्रकाश में आवेंगी और न उनकी बिक्री होगी। अभी हम सबको पठनपाठन की सुरुचि उत्पन्न करनी है और वह निरन्तर किसी वैज्ञानिक पत्रिका के पढ़ने से ही जागृत होगी। नये वर्ष में आपमें यह सुरुचि उत्पन्न हो, यही कामना है।

लेखकों से निवेदन

'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।